PRINCIPLES OF MARKETING

Copyright © 2003, Maharshi Dayanand University, ROHTAK
All Rights Reserved. No part of this publication may be reproduced or stored in a retrieval system or transmitted in any form or by any means; electronic, mechanical, photocopying, recording or otherwise, without the written permission of the copyright holder.

Maharshi Dayanand University
ROHTAK – 124 001

Developed & Produced by EXCEL BOOKS PVT. LTD., A-45 Naraina, Phase 1, New Delhi-110028

विषय सूची

अध्याय 1	विपणन	5
अध्याय 2	विपणन विचार	20
अध्याय 3	विपणन मिश्रण	37
अध्याय 4	विपणन पर्यावरण	41
अध्याय 5	क्रेता व्यवहार	65
अध्याय 6	बाजार विभक्तिकरण	84
अध्याय 7	वस्तु नियोजन एवं विकास	95
अध्याय 8	उत्पाद पहचान	135
अध्याय 9	उत्पाद जीवन चक्र	152
अध्याय 10	कीमत निर्धारण	168
अध्याय 11	वितरण वाहिकाएँ	194
अध्याय 12	थोक वितरण	220
अध्याय 13	फुटकर वितरण	231
अध्याय 14	भौतिक वितरण	242
अध्याय 15	विपणन संचार संमिश्र या संवर्धन संमिश्र	249
अध्याय 16	विज्ञापन	258
अध्याय 17	विज्ञापन प्रति	287
अध्याय 18	वैयक्तिक विक्रय	297
अध्याय 19	विक्रय संवर्द्धन	318

SYLLABUS

Paper-5: Principles of Marketing

Max.: Marks: 100

Time: 3 Hours

Note: Ten questions shall be set in the question paper covering the whole syllabus. The candidates will be required to attempt any five questions.

Introduction: Nature and scope of marketing; Importance of marketing as a business function, and in the economy; Marketing concepts-traditional and modern: Selling vs. marketing, marketing mix; Marketing environment.

Consumer Behaviour and Market Segmentation: Nature, scope, and significance of consumer behaviour; Market segmentation – concept and importance; Bases for market segmentation.

Product: Concept of product, consumer, and industrial goods; Product planning and development; Packaging-role and functions; Brand name and trade market; after-sales service; Product life cycle concept.

Price: Importance of price in the marketing mix; Factors affecting price of a product/service; Discounts and rebates.

Distribution Channels and Physical Distribution: Distribution channels-concept and role; Types of distribution channels; Factors affecting choice of a distribution channel; Retailer and wholesaler; Physical distribution of goods; transportation; Warehousing; Inventory control; Order processing.

Promotion: Methods of promotion; Optimum Promotion Mix; Advertising Media-, Their relative merits and limitations, characteristics of an effective advertisement, Personal Selling, Publicity: Sales promotion and public relations.

अध्याय-1
विपणन
(Marketing)

विपणन का अर्थ एवं उसकी परिभाषाएँ
(Meaning of Marketing and its Definitions)

व्यवहार में 'विपणन' की हर व्यक्ति ने अपनी स्थिति, योग्यता, पद आवश्यकता एवं वातावरण के सन्दर्भ में समझने की चेष्ठा की है। अनेक उपभोक्ताओं ने इसे 'शापिंग' का पर्यायवाची माना है तो विक्रेताओं ने 'विक्रय' का। अनेक ग्रामीण किसानों ने इसे विपणन सहकारी समितियों के रूप में देखा है तो उत्पादन इन्जिनियर्स ने उत्पाद–डिजाइन के अभिकल्पन एवं किस्म निर्धारण के रूप में अनेक विभागीय भण्डारों के प्रबंधकों ने इसे 'फुटकर विक्रय' कहा है तो विज्ञापन अधिशासियों ने 'विज्ञापन', जबकि वास्तविकता में 'विपणन' क्रय–विक्रय विपणन सहकारी समितियों उत्पादन–डिजाइन के अभिकल्पन एव किस्म निर्धारण, फुटकर विक्रय, विज्ञापन आदि से कहीं अधिक ऐसा व्यापक विचार एवं क्रिया क्षेत्र है जिसमें वस्तुओं एव सेवाओं के उत्पादन से पहले कि क्रियाओं से लगाकर उनके वितरण एवं उनके सम्बन्ध में अवश्यक विक्रयोपरान्त सेवाएँ तक सम्मिलित होती हैं।

साधारणतया विपणन का अर्थ वस्तुओं के क्रय एवं विक्रय से लगाया जाता है लेकिन विपणन विशेषज्ञ इसका अर्थ वस्तुओं के क्रय एवं विक्रय तक सीमित नहीं करते बल्कि क्रय एवं विक्रय से पूर्व एवं पश्चात की क्रियाओं को भी इसका अंग मानते हैं। कुछ विद्वान तो क्रय एवं विक्रय के अतिरिक्त समाजिक उत्तरदायित्व निभाने को भी विपणन का एक प्रमूख कार्य मानकर विपणन का अर्थ लगाते हैं। अतः हमने अध्ययन की सुविधा के लिए विपणन के अर्थ की व्याख्या करने वाले विद्वानों को दो भागों में बाँट दिया है।

(i) पुरानी विचारधारा वाले या संकीर्ण अर्थ वाले

(ii) नवीन विचारधारा वाले या विस्तत अर्थ वाले

(i) ***विपणन सम्बन्धी पुरानी विचारधारा (Old Concept of Marketing)***– प्राचीन विचारधारा में विपणन के अन्तर्गत वे सभी क्रियाएं सम्मिलित की जाती थी जो वस्तुओं को उत्पादन केन्द्रों से उठाकर उनको उपभोक्ताओं तक पहुंचाने के लिए की जाती है। इस रूप में इसके अन्तर्गत क्रय, विज्ञापन, संग्रह, यातायात, श्रेणीकरण आदि क्रियाएँ आ जाती थी। विपणन सम्बन्धी पुरानी व संकीर्ण विचारधारा में निम्न विद्वानों द्वारा दी गई परिभषाओं को ले सकते हैं : –

(1) प्रो. पाइल (Pyle) के मत में ''विपणन में क्रय एवं विक्रय दोनों ही क्रियाएं शामिल होती है'', (इसका अर्थ यह है कि विपणन में केवल क्रय एव विक्रय क्रियाओं का ही अध्ययन किया जाता है, शेष अन्य क्रियाएं जैसे, परिवहन भण्डार, वित्त व्यवस्था, जोखिम आदि विपणन की परिभाषा के अन्तर्गत नहीं आते।

(2) एडवर्ड (Edverd) एवं डेविड (David) के अनुसार, ''विपणन एक आर्थिक रीति है जिसके द्वारा वस्तुओं व सेवाओं को बदला जाता है तथा मूल्य मुद्रा में तय किए जाते हैं'' (वास्तव में विपणन एक रीति है जिसके द्वारा वस्तुओं एवं सेवाओं को बदला जाता है तथा इसे बदलने के लिए उन वस्तुओं एवं सेवाओं के मूल्य इसके द्वारा निर्धारित किए जाते हैं)।

(3) टाउसले, क्लार्क एवं क्लार्क के अनुसार ''विपणन में वे सभी प्रयत्न शामिल हैं जो वस्तुओं और सेवाओं के स्वामित्व हस्तातरण को प्रभावित करते हैं और उनके भौतिक वितरण की व्यवस्था करते हैं।''

(4) अमेरिकन मार्केटिंग एसोसियेशन के अनुसार, विपणन उन व्यावसायिक क्रियाओं का निष्पादन है जो कि वस्तुओं एवं सेवाओं के प्रवाह को उत्पादक से उपभोक्ताओं अथवा उपयोगकर्ताओं की ओर निर्देशित करता है।[1]

---

[1] Marketing is concerned with all the resources and activities involved in the flow of goods and services from producer to consumer."

- American Marketing Association.

विपणन की यह परिभाषा लम्बे समय तक मान्य एवं प्रचलित रही है, किन्तु इसे निम्न कारणों से संकीर्ण और परम्परागत माना गया है :

(i) यह विपणन के समग्र विचार को प्रस्तुत नहीं करती है। यह तो केवल विपणन के आर्थिक और भौतिक पहलू (जो कि वस्तुओं एवं सेवाओं के विवरण से सम्बद्ध है) पर बल देती है और मानवीय आवश्यकताओं की सन्तुष्टि तथा विपणन में सन्निहित प्रबन्धकीय निर्णयों से सम्बद्ध विपणन के मानसिक पहलू की उपेक्षा करती है।

(ii) यह विपणन के क्षेत्र को संकुचित कर देती है। इस परिभाषा के अनुसार वस्तुओं एवं सेवाओं के उत्पादन से लगाकर वितरण तक की क्रियायें ही विपणन में सम्मिलित होती हैं जबकि उत्पादन से पूर्व एवं वितरण के बाद की क्रियायें भी विपणन में सम्मिलित की जानी चाहिए।

(iii) यह उत्पादोन्मुखी (Production oriented) है, ग्राहकोन्मुखी (Customer oriented) नहीं। यह परिभाषा बाजार–अनुसन्धानों एवं ग्राहक–अनुसन्धानों को विपणन क्रिया–कलापों का अंग नहीं मानती है और इस दर्शन पर आधारित है कि उत्पादक–विक्रेता यह भली–भाँति जानते हैं कि उपभोक्ता के लिए क्या अच्छा है और उसे किस वस्तु की जरूरत है।[2]

(iv) इस परिभाषा से प्रबन्धक के विपणन सम्बन्धी दायित्वों का ज्ञान नहीं होता।

(5) कनवर्स, ह्यूजे एवं मिचेल के अनुसार, ''विपणन से आशय उन क्रियाओं से है जो वस्तुओं एवं सेवाओं को उत्पादन से उपभोग तक प्रवाहित करती है।

(6) ह्वीलर के अनुसार ''विपणन उन समस्त संसाधनों एवं क्रियाओं से सम्बन्धित है जिनसे वस्तुयें तथा सेवायें उत्पादन से उपभोक्ता तक पहुँचती है।''[1]

अमेरिकन मार्केटिंग एसोसियेशन की परिभाषा जिन दोषों से ग्रस्त है, उनसे मिचेल, क्लार्क, पायले, ह्वीलर अदि की परिभाषाएँ भी ग्रस्त हैं।

विस्तत अर्थ वाली परिभाषाएँ (Definitions in Broad Sense) या नवीन विचारधारा वाले

(1) पीटर एफ. ड्रकर के अनुसार ''विपणन एक प्रक्रिया है जो किसी संसाधन एवं विशिष्ट ज्ञान को विपणि स्थान पर आर्थिक मूल्य वाले योगदान में परिवर्तित करती है।''[2]

यह परिभाषा सामाजार्थिक दष्टिकोण को प्रस्तुत करती है और विपणन को ऐसी प्रक्रिया मानती है जो आर्थिक मूल्य वाली वस्तुओं एवं सेवाओं का निर्माण तथा वितरण करती है और इस कार्य हेतु सामाजिक साधनों एवं ज्ञान को काम में लेती है।

(2) पॉल मजूर के अनुसार, ''विपणन का अर्थ समाज को जीवन–स्तर प्रदान करना है।''[3]

विपणन की यह परिभाषा काफी लघु है, किन्तु साथ ही सरल एवं सामाजिक भी यह सामाजिक सन्तुष्टि के सजन को विपणन का कार्य मानती है। यह उपभोक्ता–प्रधान अथवा ग्राहकोन्मुखी है और विपणन को सामाजिक–आर्थिक क्षेत्र से सम्बद्ध करती है। इतने पर भी यह विपणन क्रिया–कलापों की प्रकृति को स्पष्ट करने में सक्षम नहीं है।

(3) प्रो. माल्कम मॅकनेयर के अनुसार, ''विपणन से आशय समाज के लिये जीवन–स्तर का निर्माण करने तथा समाज को उसकी सुपुर्दगी करने से है।''[4]

---

[2] "Marketing is a process which converts a resource, distinct knowledge into a contribution of economic value in the market place."

- **Peter F. Drucker** "The Practice of Management", 1954, p. 91.

[3] " Marketing is the delivery of a standard of living.

-**Paul Mazur,** The Standards We Raise" (1953) pp. 18-28, Quoted from, "Management in-marketing," Laza and Corbin, p. 71.

[4] " Marketing is the creation and delivery of standard of living".

- **Prof. Malcom MC Nair,** Quoted from **"Fundamentals of Marketing, W. J.** Stanton, p. 5. Fourth edition 1975, McGraw Hill Kogakusha Ltd. Tokyo.

यह परिभाषा पॉल मजूर की परिभाषा पर एक सुधार है। यह विपणन क्षेत्र में उन सभी क्रियाओं को समाविष्ट करती है, जो समाज के लिये जीवन–स्तर के निर्माण एवं उसकी सुपुर्दगी से सम्बन्ध रखती है। इस परिभाषा ने व्यवसाय को समाजोन्मुखी बना दिया है। यह परिभाषा बतलाती है कि विपणन के विकास के साथ समाज का जीवन–स्तर, समद्धि एवं खुशहाली जुड़ी हुई है। यह परिभाषा उत्पादन, वितरण, क्रय–शक्ति और सामाजिक मूल्यों में सीधा सम्बन्ध स्थापित करती है। इतने पर भी यह परिभाषा तकनीकी दष्टि से विपणन की प्रकृति, उसके विशिष्ट क्रिया–कलापों एवं उसके सर्वांगीण पहलुओं पर प्रकाश नहीं डालती है।

(4) हैन्सन के अनुसार, ''विपणन उपभोक्ताओं की इच्छाओं को मालूम करने, उन्हें विशिष्ट वस्तुओं एवं उत्पादों में परिवर्तित करने और तदुपरान्त उन वस्तुओं एवं सेवाओं के जरिये अधिकाधिक उपभोक्ताओं के उपयोग को सम्भव बनाने की प्रक्रिया है।''[5]

हैन्सन की परिभाषा उपभोक्ता–प्रधान है और बतलाती है कि विपणन प्रक्रिया उपभोक्ता की इच्छाओं की खोज के साथ प्रारम्भ होती है तथा उनकी सन्तुष्टि के साथ समाप्त होती है। मानवीय इच्छाओं के जन्म एवं सन्तुष्टि का चक्र निरन्तर चलता रहता है। इसलिए विपणन प्रक्रिया भी अनवरत चलती रहती है।

(5) कौन्सिल ऑफ दि इन्स्टीट्यूट ऑफ मार्केटिंग, यू. के. के अनुसार ''विपणन वह प्रबन्ध–कार्य है जो कम्पनी द्वारा निर्धारित उद्देश्यों या लाभ–लक्ष्यों की प्राप्ति के लिये उन समस्त व्यावसायिक क्रियाओं का संगठन एवं निर्देशन करता है जो कि विशिष्ट उत्पाद अथवा सेवा के लिये ग्राहक की क्रय–शक्ति का अनुमान लगाने एवं उसको प्रभावी मांग में बदलने तथा उत्पाद अथवा सेवा को अन्तिम उपभोक्ता या प्रयोक्ता तक पहुंचाने से सम्बन्ध रखती है।''[6]

यह परिभाषा निम्न गुणों से युक्त है : –

(i) प्रबन्ध तथा प्रबन्धकों पर बल देती है।

(ii) विपणन तकनीकों को आवश्यक व्यावसायिक क्रिया–कलापों से सम्बद्ध करती है।

(iii) कम्पनी के लक्ष्यों एवं विपणन–लक्ष्यों के मध्य प्रगाढ़ सम्बन्ध स्थापित करती है।

(iv) विपणन के प्रबन्धकीय स्वरूप एवं विपणन–प्रक्रिया के स्वरूप में अन्तर बतलाती है।

(6) कंडिफ, स्टिल एवं गोवोनी के अनुसार, ''विपणन वह प्रबन्धकीय प्रक्रिया है जिसके द्वारा बाजारों की जरूरतों के अनुरूप उत्पाद बनाये जाते हैं और उनके स्वामित्व का हस्तान्तरण किया जाता है।''[७]

यह परिभाषा विपणन की दो महत्त्वपूर्ण बातों पर प्रकाश डालती है –

(i) विपणन बाजार एवं उत्पाद की अन्तर्निर्भरता को बतलाने वाला क्रियाक्षेत्र है, तथा

(ii) विपणन के लिए वस्तुओं एवं सेवाओं के स्वामित्व का हस्तान्तरण जरूरी है और विपणन द्वारा वह सम्पन्न होता हैं

इस परिभाषा के लेखकों का कहना है कि ''विपणन एवं उत्पादन क्रियायें परस्पर सम्बद्ध हैं। हम उन्हीं वस्तुओं का विपणन कर सकते हैं जिन्हें उत्पादित किया जा सकता है और हमें उन्हीं वस्तुओं का उत्पादन करना चाहिए जिन्हें बाजार में बेचा जा सकता हो।'' [8]

---

[5] "Marketing is the process of discovering and translating consumer wants into product and service specification and then in turn helping make it possible for more and more consumers to enjoy more of these products and services."

– **Hansen**

[6] Marketing is " the managment function which organises and dircets all these activites involved in assessing and converting customer purchasing power into effetive demand for a specific product of service and in moving the product or service to the final consummer or user so as to achieve the profit target of other objectives set by a company.' - Council codifies a new definition of marketing, an article published in 'Marketing' Oct. 1966, p. 1285.

[7] "Marketing is the managerial process by which products are matched with markets and through which transfers of ownership are effected."

- Edward W. Cundiff, R. R. Still and N. A. P. Govoni, "Fundamentals of Modern Marketing, "1974 p. s. phi

[8] Ibid, p. 5

इस प्रकार विपणन वह प्रक्रिया है जो उत्पादन, वितरण एवं उपभोग में पारस्परिक सम्बन्ध स्थापित करती है।

(7) स्टेन्टन के अनुसार, ''विपणन उन अन्तर्क्रियाशील व्यावसायिक प्रक्रियाओं की सम्पूर्ण प्रणाली है जो वर्तमान एवं सम्भावित ग्राहकों की आवश्यकताओं को सन्तुष्ट करने वाले उत्पादों एवं सेवाओं की योजना बनाने, कीमत निर्धारित करने, विकास करने तथा उनका वितरण करने से सम्बन्ध रखती है।''[9]

स्टेन्टन लिखते हैं कि इस परिभाषा में निम्न विशेषताएँ हैं : –

(i) यह वैधानिक अथवा आर्थिक परिभाषा नहीं है, बल्कि प्रबन्धकीय परिभाषा है।

(ii) यह उपभोक्ता–प्रधान (Consumer oriented) है और ग्राहकों की आवश्यकताओं को प्रभावी ढंग से पहचानने और उनको सन्तुष्ट करने पर बल देती है।

(iii) यह विपणन को एक गतिशील, समग्र एवं एकीकृत व्यावसायिक प्रक्रिया बतलाती है। यह स्पष्ट करती है कि विपणन उन व्यावसायिक क्रियाओं की समग्र प्रणाली है जो परस्पर क्रियाशील हैं, एक–दूसरे पर प्रभाव डालने वाली हैं तथा एक–दूसरे का परिणाम है। इस प्रकार, विपणन स्वयं में कोई क्रिया न होकर कई क्रियाओं की अन्तर्क्रियाशीलता का परिणाम है।

(iv) विपणन कार्यक्रम उत्पाद–विचार के साथ ही शुरू होता है और तब तक समाप्त नहीं होता है, जब तक कि ग्राहकों की आवश्यकताएँ पूरी तरह से सन्तुष्ट नहीं हो जाती हैं।

(v) यह परिभाषा बतलाती है कि सफलता के लिए विपणन द्वारा दीर्घकाल में अधिकतम लाभप्रद विक्रय (जिसकी नींव ग्राहक–सन्तुष्टि पर आधारित हो) किया जाना चाहिए। विपणन कार्यक्रम को न्यूनतम लागत पर पूर्ण प्रभावशीलता के साथ लागू किया जाना चाहिए।

विपणन को विस्तत दष्टिकोण से देखते हुए स्टेन्टन ने लिखा है कि विपणन केवल मात्र एक व्यावसायिक विनिमय क्रिया ही नहीं है बल्कि एक सामाजिक विनिमय क्रिया भी है।

(8) फिलिप कोटलर के अनुसार ''विपणन यह मानवीय क्रिया है जो विनिमय प्रक्रियाओं के जरिये आवश्यकताओं एवं इच्छाओं की सन्तुष्टि की ओर निर्देशित की जाती है।''[10]

उपरोक्त परिभाषा में कोटलर ने विपणन को तीन दष्टिकोणों से देखा है –

(i) विपणन एक विद्या के रूप में (Marketing as a Discipline) विपणन एक विद्या है जो उन मानवीय क्रियाओं व संस्थाओं से सम्बन्धित है जो विपणन प्रक्रियाओं द्वारा वस्तुओं तथा सेवाओं को उपलब्ध करती है।

(ii) विपणन एक उद्योग के रूप में (Marketing as a craft) – विपणन विनिमय व्यवहारों (Transactions) का प्रबन्ध है जिसका मुख्य उद्देश्य विपणकों के लक्ष्यों को पूरा करना है। व्यावसायिक संगठन के अलावा पारस्परिक लाभार्थ संघ, सेवा संगठन तथा जनसेवी समितियों के व्यवहार भी विपणन के क्षेत्र में सम्मिलित हैं।

(iii) विपणन एक दर्शन के रूप में (Marketing as a Philosophy) – विपणन एक दर्शन है जो मानवीय आवश्यकताओं के निर्धारण, पूर्ति एवं सन्तुष्टि से विपणन सम्बंधी प्रयत्नों को जोड़ता है।

उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट है कि विपणन उन समस्त क्रिया-कलापों का अध्ययन है जिनका उद्देश्य व्यक्तिगत और संस्थागत उपभोक्ताओं की इच्छाओं को जागत करना, आवश्यकताओं का पता लगाना तथा उनकी पूर्ति व सन्तुष्टि हेतु प्रत्यक्ष अथवा अप्रत्यक्ष विनिमय सम्बन्ध के आधार पर वस्तु एवं सेवाएं प्रदान कर पूर्व निर्धारित लक्ष्यों को प्राप्त करना है।

विपणन की प्रकृति एवं विभिन्न दष्टिकोण
(Nature of Marketing and Various Approaches)

विपणन की प्रकृति को स्पष्ट करने वाले कुछ प्रमुख दष्टिकोण निम्नलिखित हैं –

(i) **वस्तुओं एवं सेवाओं का विवरण दष्टिकोण (Distribution of Goods and Services Approach):** यह विपणन का परम्परागत दष्टिकोण है । इसे वस्तुगत दष्टिकोण (Commodity Approach) भी कहते हैं। यह बतलाता है कि विपणन

---

[9] "Marketing is a total systems of interacting business activities designed to plan, price, promote and distribute want satisfying products and services to persent potential customers.". W. J. Stanton, op cit, p. 5

[10] **Phillip Kotler** : " Defining the limits of Marketing" Marketing education and Real World published by AMA Fall 1972.

से आशय उन व्यावसायिक क्रिया–कलापों के निष्पादन से है जो उत्पादों और सेवाओं को उत्पादकों से उपभोक्ताओं अथवा प्रयोक्ताओं तक पहुँचते हैं। अमेरिकन मार्केटिंग एसोसियेशन की परिभाषा विपणन के इस दष्टिकोण का प्रतिनिधित्व करती है। यह दष्टिकोण विपणन को एक गति (Motion) मानता है, क्योंकि सम्पूर्ण विपणन प्रक्रिया के संचालन से वस्तुएँ तथा सेवाएँ उत्पादकों से उपभोक्ताओं अथवा प्रयोक्ताओं तक पहुंचती हैं। इस गति अथवा प्रवाह के लिए वस्तुओं के स्वामित्व एवं अधिकार (Ownership and Possession) का हस्तान्तरण तथा मूल्यों (Value) अथवा उपयोगिताओं का संचार होना आवश्यक है।

विपणन का पदार्थगत दष्टिकोण विपणन किये जाने वाले प्रत्येक पदार्थ का अध्ययन पथक्–पथक् रूप से करने पर बल देता है। यह दष्टिकोण इस बात की जानकारी कराता है कि विशिष्ट उत्पादकों से विशिष्ट वस्तुएँ या सेवाएँ उपभोक्ताओं तक कैसे पहुंचती हैं और उन्हें पहुंचाने के लिए कौन–कौन से कार्य करने आवश्यक होते हैं? विपणन के अध्ययन का यह दष्टिकोण बतलाता है कि विभिन्न प्रकार की वस्तुओं एवं सेवाओं का विपणन करने वाली संस्थाओं की विपणन विधियाँ, समस्याएँ, आवश्यकताएँ तथा दष्टिकोण भिन्न–भिन्न होते हैं।

विपणन का यह दष्टिकोण निम्न कमियों के कारण आज अमान्य हो गया है –

(i) यह दष्टिकोण विपणन के कार्य क्षेत्र–को संकुचित करता है और उत्पादन से पहले के कार्यो जैसे–बाजार अनुसन्धान, उत्पाद–नियोजन, उत्पाद अभिकल्पन आदि तथा विक्रय के बाद की विक्रयोपरान्त सेवाओं को विपणन प्रक्रिया का अंग नहीं मानता है।

(iii) यह दष्टिकोण उत्पादोन्मुखी है और इस मान्यता पर आश्रित है कि निर्माणक जो उत्पादन कर रहे हैं, वह उपभोक्ताओं के लिए ठीक है।

(2) **जीवन-स्तर दष्टिकोण (Standard of Living Approach)** विपणन के इस दष्टिकोण के विकास के पॉल मजूर एवं प्रो. मलकाम मकनेयर की परिभाषाओं ने महत्वूपर्ण योगदान किया है। उनके मतानुसार विपणन का अर्थ समाज के लिए जीवन स्तर का निर्माण करना एवं उनकी सुपुर्दगी करना है। यह दष्टिकोण उपभोक्ता–प्रधान है और उच्च जीवन स्तर के निर्माण एवं उसकी सुपुर्दगी के लिए जो भी कार्य आवश्यक है उन्हें विपणन के कार्य–क्षेत्र में उत्पादन से पहले और विक्रय के बाद की क्रियाएं एवं सेवाएँ भी सम्मिलित हो जाती है। वास्तव में यह दष्टिकोण इतना विस्तत है कि सम्पूर्ण व्यवसाय को ही विपणन संगठन में बदल देता है।

विपणन के जीवन–स्तर दष्टिकोण की मान्यता है कि उच्च जीवन–स्तर के निर्माण एवं उसकी उपलब्धि के लिए उत्तम उत्पाद निर्मित किये जाने और वितरित किये जाने आवश्यक हैं। अन्य शब्दों में, उत्पादन, वितरण एवं उपभोग में घनिष्ट किन्तु समुचित सम्बन्ध होना चाहिए और ऐसे सम्बन्ध का आधार व्यावसायिक संगठनों तथा ग्राहकों की आवश्यकता–सन्तुष्टि होना चाहिए। यह दष्टिकोण स्वीकारता है कि विपणन के विकास के साथ ही जीवन–स्तर जुड़ा हुआ है। विपणन का विकास किसी देश में जितना अधिक होगा, उस देश के लोगों का जीवन–स्तर भी उतना ही अधिक ऊंचा होगा।

(3) **उपयोगिता सर्जन दष्टिकोण** (Utility Creation Approach) : उपयोगिता सर्जन दष्टिकोण के समर्थक विद्वान विपणन को एक प्रमुख आर्थिक क्रिया के रूप में देखते हैं और बतलाते हैं कि ''विपणन वह एकीकृत कार्यप्रणाली है जो रूप, स्थान, समय एवं स्वामित्व उपयोगिताओं के सर्जन से वस्तुओं में मूल्य उत्पन्न करती हैं''[11] इस दष्टिकोण के समर्थकों की मान्यता है कि 'विपणन उपयोगिताओं के सर्जन के माध्यम से बाजार अर्थव्यवस्था को जन्म देता है और यह 'बाजार अर्थव्यवस्था' समाज का नियमन एवं संचालन करती है।'[12]

(4) **आय उत्पत्ति दष्टिकोण** (Revenue Generating Approach) आय उत्पति दष्टिकोण के अनुसार, ''विपणन सही वस्तु को सही व्यक्ति तक सही प्रवर्तन करके सही कीमतों पर सही वितरणवाहिका द्वारा पहुंचाने की कला है।'' विपणन का यह दष्टिकोण न तो उत्पादोन्मुखी है न ही ग्राहकोमुखी। यह फर्म–प्रधान दष्टिकोण है। इसके अनुसार संस्था के लिए आय अर्जित करने वाली क्रियाओं को विपणन कहा जाता है। इन दष्टिकोण की कुछ मान्यताओं हैं –

---

[11] Richard Buslirk op. cit.. p5.

[12] Robert Bartles, " The Development of Marketing Thought." 1962.

(i) संस्था को वस्तुओं तथा सेवाओं का उत्पादन और वितरण लाभ पर करना चाहिए क्योंकि लाभ व्यवस्था की विद्यमानता एवं निरन्तरता का आधार होता है।

(ii) फर्म की बिक्री का परिमाण उतना अवश्य होना चाहिए कि फर्म के सभी व्ययों को चुकाने के बाद पर्याप्त कोष बचा रहे ताकि विनियोक्ता आकृष्ट हो सके।

(iii) फर्म के अधिकारियों को संवर्धनात्मक क्रियाओं पर अत्यधिक धन व्यय नहीं करना चाहिए। अत्यधिक व्यय करके आय–उपार्जन उचित नहीं माना जा सकता आय–उपार्जन उचित लागतों का परिणाम होना चाहिए। रिचार्ड बसकिर्क इस सम्बन्ध में लिखते हैं कि ''ऐसी लागत पर आय–उपार्जन विपणन का दायित्व है जो क्रिया–कलापों से उचित लाभ–प्राप्ति की अनुमति देती हो।''

(5) **संस्थागत दष्टिकोण** (Institutional Approach) : आधुनिक युग वहत् पैमाने के उत्पादन का है और इस युग में वितरण का क्षेत्र भी अत्यन्त व्यापक तथा विशाल है। उत्पादकों एवं उपभोक्ताओं के मध्य काफी दूरी है, जिसे संस्थागत दष्टिकोण के अनुसार विपणन क्रियायें समाप्त करती है। यह दष्टिकोण बतलाता है कि वहत् पैमाने पर किया गया उत्पादन वितरण हेतु अनेक मध्यस्थ संस्थाओं की आवश्यकता अनुभव करता है। ये संस्थायें मिलकर जो क्रिया–कलाप करती है, उन्हें विपणन कहा जाता है।

यह दष्टिकोण विपणन प्रणाली के अन्तर्गत उन उत्पादकों, मध्यस्थों एवं अनेक विपणन संस्थाओं का अध्ययन करता है जो संस्था के रूप में विपणन क्रियाओं का निष्पादन करती हैं – माँग–पूर्ति में सन्तुलन स्थापित करती है और उत्पादन केन्द्रों को उपभोक्ता केन्द्रों से जोड़ती हैं। विपणन की व्याख्या का यह दष्टिकोण विपणन को संस्थागत प्रणाली मानता है और इस प्रणाली के अंगों के रूप में उत्पादकों, मध्यस्थों, यातायात संस्थाओं विपणन सेवायें देने वाली संस्थाओं, वित्तीय संस्थाओं तथा उपभोक्ताओं को सम्मिलित करता है।

विपणन अध्ययन के इस दष्टिकोण का प्रमुख दोष यह है कि एक व्यक्ति क्षेत्र की पर्याप्त जानकारी नहीं कर पाता है।

(6) **क्रियात्मक दष्टिकोण** (Functional Approach) : विपणन का यह दष्टिकोण उन विपणन क्रिया–कलापों का अध्ययन करता है जो उत्पादन केन्द्रों से उपभोग केन्द्रों तक वस्तुयें एवं सेवायें पहुंचाने से सम्बद्ध होते हैं। यह दष्टिकोण बतलाता है कि विपणन क्रियाओं को प्रमुखतः वाणिज्ययन, भौतिक वितरण तथा सहायक कार्यों में विभक्त किया जा सकता है। विपणन के अध्ययन का यह दष्टिकोण कार्यों के दोहराव को रोकता है, कार्यों के निष्पादन में आने वाली समस्याओं का विश्लेषण करता है तथा समय के सदुपयोग को बढ़ाता है। किन्तु यह दष्टिकोण विपणन कार्यों को व्यावसायिक प्रणाली में कैसे लागू किया जाता है, इसको नहीं समझा पाया है।

(7) **कला और विज्ञान दष्टिकोण** (Art and Science Approach) : एम. जे. बेकर लिखते हैं कि ''विपणन विज्ञान नहीं है, जबकि इसे विज्ञान होना चाहिए।''[13] विपणन सिद्धान्त के सम्भावित स्रोतों का परीक्षण करते हुए हेलबर्ट ने संकेट दिया है कि ''विपणन ने व्यासाय की अन्य विधाओं (जैसे अर्थशास्त्र, कानून आदि) सामाजिक एवं व्यावहारिक विज्ञानों (जैसे गणित आदि) से बहुत बड़े पैमाने पर तथ्य, सिद्धान्त, समंक, तकनीकें एवं विचारधारायें प्राप्त की हैं। इतना होने पर भी इस सामग्री को अभी तक संश्लेषणात्मक रूप में प्रस्तुत नहीं किया जा सका है जिससे कि एक सर्वमान्य सिद्धान्त निर्मित हो सके। किन्तु यह तो विपणन की प्रकृति के बारे में लिया गया नकारात्मक दष्टिकोण बतलाता है कि विपणन एक सरल सिद्धान्त 'पूर्ति माँग कार्य होना चाहिए' (Supply must be a function of demand) पर आश्रित है। यही सिद्धान्त विपणन व्यक्तियों के विचार से दुर्लभ साधनों के वितरण की समस्या का समाधान करता है और अधिकतम सन्तुष्टि की प्राप्ति में सहायक बनता है। यह सिद्धान्त एडम स्मिथ के कथन का रूपान्तर प्रतीत होता है क्योंकि एडम स्मिथ ने लिखा है कि 'उपभोग उत्पादन का एक मात्र लक्ष्य एवं उद्देश्य है'।

यह दष्टिकोण बतलाता है कि विपणन सही स्थान पर सही रूप में, सही हाथों तक, सही कीमत एवं किस्म वाला उत्पाद पहुंचाने की कला तो है ही, किन्तु यह गतिशील और विकासमान विज्ञान भी है। यह दष्टिकोण पूर्ति को मांग के अनुसार बनाने पर बल देता है, इसलिए ग्राहकोन्मुखी भी है।, विपणन का प्रणालीगत दष्टिकोण इस स्थिति का प्रमाण है। इतने पर भी विपणन को भौतिक विज्ञानों की भांति विशुद्ध विज्ञान नहीं बनाया जा सकता। इसे हमें चिकित्सा एवं इन्जिनियरिंग विज्ञानों की श्रेणी में ही रखना होगा।

---

[13] M. J. Baker, "Marketing, An Introductory Text," p.21

हन्ट ने निम्नलिखित सकारात्मक बिन्दुओं पर विपणन के अध्ययन को विपणन विज्ञान की संज्ञा दी है :[14]

(i) व्यक्तिगत क्रेता–उपभोक्ता व्यवहार, फर्म द्वारा उत्पाद चुनाव, मूल्य निर्धारण, संवर्द्धन, वितरण वाहिका संबंधी निर्णय।

(ii) उपभोग ढाँचा, विपणन का संस्थागत दष्टिकोण विपणन के वैधानिक पहलू, तुलनात्मक विपणन, विपणन की कार्य–क्षमता से क्या विपणन के आर्थिक विकास में वद्धि होती है? क्या गरीब वर्ग को अधिक मूल्य देना पड़ता है? क्या विपणन विचार में उपभोक्ता वर्ग के हितों की पुष्टि होती है? क्या विपणन सार्वभौमिक है?

(iii) अलाभ संगठन द्वारा उत्पाद चुनाव, मूल्य निर्धारण, संवर्द्धन, वितरण वाहिका सम्बन्धी निर्णय किस प्रकार लिये जाते हैं।

(iv) सार्वजनिक महत्त्व की वस्तुओं का मूल्य निर्धारण, उपनके विज्ञान व वितरण का औचित्य इत्यादि।

(8) **विपणन का प्रणालीगत दष्टिकोण (The Systems Approach Marketing):** कोटलर ने इस दष्टिकोण को समझाते हुए लिखा है कि ''विपणन प्रणाली उन महत्त्वपूर्ण संस्थाओं और प्रवाहों का समूह है जो एक संगठन को उसके बाजारों से जोड़ता है।''[15] कोटलर के अनुसार विपणन प्रणाली के मूल तत्त्व निम्नलिखित हैं – (i) कम्पनी (ii) कम्पनी का बाजार (iii) मध्यस्थ पूर्तिकर्ता एवं प्रतियोगी, (iv) पब्लिक जिसमें – वित्तीय संस्थाएँ, स्वतन्त्र प्रेस, सरकारी अभिकरण एवं विधिकर्ता तथा आम जनता सम्मिलित है और (v) समष्टि वातावरण जिसमें अर्थशास्त्र, राजनीति, प्रौद्योगिकी (Technology) , संस्कृति तथा जनांकिकी (Demography) सम्मिलित है।

विपणन–प्रणाली को निम्न दो चित्रों द्वारा भली प्रकार समझा जा सकता है –

चित्र 1.1 विपणन प्रणाली के 'सस्था एवं बाजार, नामक दो महत्त्वपूर्ण तत्त्वों को प्रदर्शित करता है। संस्था उत्पाद एवं सेवाएँ और सूचनाएँ बाजार तक भेजती है और बाजार के विक्रय–राशि एवं सूचनाएँ प्रतिफल में प्राप्त करती हैं।

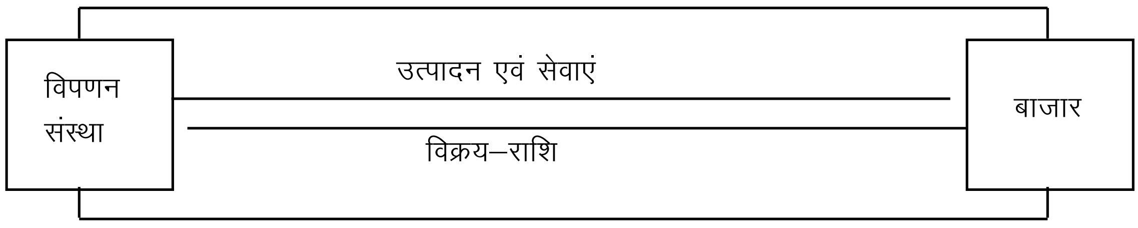

चित्र 1.1 सरल विपणन प्रणाली

चित्र 1.2 विपणन प्रणाली को अपने समस्त मूल तत्त्वों के साथ प्रदर्शित करता है। पूर्तिकर्ता कच्चा माल एवं आवश्यक सामग्री प्रदान करते हैं। विपणन संस्था तथा उसकी

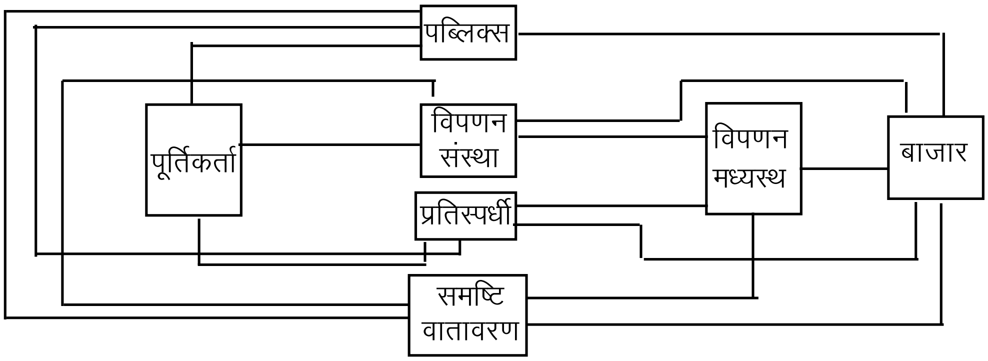

[14] Shellby D. Hunt : The Nature and Scope of Marketing' Journal of Marketing July 1976. Vol. 40.3 pp. 17-28.

[15] " A marketing System is the set of significant institutions and flows that connect and organisation to its markets" Kotler, " Marketing Management : An Analysis. Planning and Control." 1976 p. 12.

प्रतिस्पर्धी संस्थाएँ समष्टि वातावरण एवं पब्लिक्स से सम्पर्क स्थापित करती हुई विपणन मध्यस्थों से सम्पर्क स्थापित करती है ताकि बाजार तक पहुँच सके और उसकी जरूरतों एवं इच्छाओं को सन्तुष्ट कर सकें। बाजार भी पब्लिक्स एवं समष्टि वातावरण से जुड़ा रहता है। विपणन संस्था अथवा प्रतिस्पर्धी संस्थाएँ बाजार से सीधा सम्पर्क भी स्थापित कर सकती है। विपणन मध्यस्थों का सम्पर्क निर्माताओं, बाजार, पब्लिक्स एवं समष्टि वातावरण से रहता है।

विपणन प्रणालियों को मुख्यतः लघु आकार, मध्यम आकार एवं वहत् आकार की श्रेणियों में विभक्त किया जा सकता है। लघु आकार की विपणन प्रणालियों विपणन कार्यों के बीच के सहचर्य को प्रदर्शित करने वाली होती हैं। मध्यम आकार वाली विपणन प्रणालियाँ फर्म के भीतर विपणन एवं अन्य क्रियात्मक क्रियाओं के बीच के सहचर्य को प्रकट करती हैं। वहत् प्रणालियाँ उत्पादकों, फुटकर व्यापारियों, थोक व्यापारियों के बीच के सम्बन्धों को व्यक्त करने वाली होती हैं।

विपणन का यह दष्टिकोण प्रभावपूर्ण निर्णयन के लिए अत्यावश्यक समझा गया है। इसे अतिरिक्त यह दष्टिकोण विपणन में मॉडल्स के उपयोग तथा कमप्यूटर प्रायोगिकी की प्रयुक्ति की दष्टि से भी आवश्यक समझा गया है। प्रणालीगत दष्टिकोण फर्म को विपणन अवसरों, प्रतिस्पर्धी व्यवहारों, क्रम व्यवहारों, अर्थ–व्यवस्था, कानूनों आदि को पूर्णतः समझने का अवसर प्रदान करता है।

(9) **सामाजिक विपणन दष्टिकोण** (Social Marketing Approach) : विगत दो दशकों में विपणन विद्वानों ने सामाजिक संगठनों में विपणन दर्शन की ओर ध्यान आकर्षित किया है। **फर्बर** ने सामाजिक और सार्वजनिक नीति क्षेत्रों में विपणन तकनीकों की उपयोगिता को स्वीकार करते हुए उनके अधिकाधिक प्रयोग पर बल दिया है।[16] **लेविड** का कहना है कि विपणन का कार्य केवल नये उत्पादों की बिक्री से ही सम्बन्धित नहीं हैं बल्कि सामाजिक दष्टिकोण से उत्पादों का मूल्यांकन करना भी है।[17] एक सर्वेक्षण के अनुसार 95 प्रतिशत विपणनकों का विचार है कि विपणन का क्षेत्र न केवल व्यावसायिक संगठनों तक ही सीमित रहे बल्कि अन्य संगठनों में भी विपणन तकनीकों का प्रयोग होना चाहिए।[18]

विपणन के उपर्युक्त वर्णित दष्टिकोणों के विवेचन के आधार पर विपणन की प्रकृति के बारे में निम्नलिखित निष्कर्ष निकाले जा सकते हैं –

(i) विपणन का अन्तर्क्रियाशील व्यावसायिक क्रियाओं की एक समग्र प्रणाली है जो ग्राहक की आवश्यकताओं एवं इच्छाओं की पूर्ति हेतु उत्पादन एवं वितरण को समायोजित करती हैं।

(ii) विपणन का कार्य–क्षेत्र अति व्यापक है। उत्पादन से पूर्व एवं विक्रय के बाद की क्रियायें विपणन के कार्य–क्षेत्र में सम्मिलित होती हैं।

(iii) विपणन मूलतः उत्पादन केन्द्रों में उपभोक्ताओं के हाथों तक वांछित उत्पाद एवं सेवायें पहुँचाने और स्वामित्व हस्तान्तरण करने का प्रवाह है।

(iv) विपणन उपयोगिताओं के सर्जन की प्रक्रिया है।

(v) विपणन उत्पादन, वितरण एवं उपभोक्ता को समाज में उपलब्ध साधनों एवं ज्ञान तथा प्रचलित मूल्यों एवं आवश्यकताओं के अनुरूप परस्पर सम्बद्ध करने की प्रक्रिया है, जिससे समाज को उच्च जीवन स्तर प्राप्त हो सके। इस प्रकार विपणन एक सामाजार्थिक प्रपत्र है जो विपणनकर्ताओं पर सामाजिक दायित्वों को पूरा करने, उपभोक्ता सन्तुष्टि उपलब्ध करने, रोजगार प्रदान करने तथा उत्पाद लागत कम करने का दायित्व भार डालता है।

(vi) विपणन कला एवं विज्ञान दोनों है।

(vii) विपणन का एक मात्र उद्देश्य मानवीय आवश्यकताओं की पूर्ति करना है।

(ix) विपणन एक सार्वभौमिक सामान्य क्रिया है जिसका उपयोग सभी प्रकार के संगठनों व संस्थाओं में किया जा सकता है।[19]

---

[16] Robert Ferber "The Expanding Role of Marketing in the 1970's" Journal of Marketing Vol. 34 (January 1970) . pp. 30

[17] Robert J. Landge "The Growing Responsibilities of Marketing." Journal of Marketing Vol. 34 (January 1970).

[18] Willain G. Nichols "Conflicts in Marketing." Journal of Economices & Business. Vol 26 (Winter 1974). P. 142

[19] Richard P. Bagozzi "Marketing as Exchange" Journal of Marketing, Oct., 1975

विपणन क्रियायें एवं उनका क्षेत्र या विपणन का क्षेत्र
(Marketing Activities and Their Areas or Scope of Marketing)

'विपणन' को व्यवसाय प्रणाली की उन अन्तक्रियाशील क्रियाओं के रूप में परिभाषित किया गया है जो बाजार–स्थान में विद्यमान और सम्भावित माँग को निर्धारित व प्रभावित करती है एवं इस माँग की पूर्ति हेतु ग्राहकों द्वारा वांछित वस्तुओं, सेवाओं तथा विचारों की आपूर्ति को उत्प्रेरित करती है।[20] इसलिए, विपणन को उत्पाद नियोजन, उत्पाद–विकास, उत्पाद परिवर्तन, कीमत–निर्धारण, पेकेजिंग, विक्रयण, विपणन अनुसन्धान, विज्ञापन एवं जन–सम्पर्क क्रियाओं का कुल प्रकार्य माना जा सकता है।[21]

वस्तुतः, विपणन अनेक व्यावसायिक क्रिया–कलापों का मिश्रण है और उनका प्रारम्भिक बिन्दु व अन्तिम लक्ष्य भी है। किन्तु यह ध्यान देने योग्य बात है कि विपणन उत्पादन से पहले ही प्रारम्भ हो जाता है और विक्रय के साथ ही समाप्त नहीं होता है। बल्कि विक्रयोपरान्त भी विपणन क्रियायें सेवाओं के रूप में सम्पन्न की जाती है। विलियम जे. स्टैन्टन ने लिखा है कि ''विपणन क्रियायें जिस प्रकार वस्तु उत्पादन के पहले से ही प्रारम्भ हो जाती है, उसी प्रकार वस्तु की बिक्री के साथ वे समाप्त नहीं होती है।[22]

विपणन के क्षेत्र की जानकारी विपणन–क्रियाओं के द्वारा की जा सकती है। कनवर्स, ह्यूजे एवं मिचेल के अनुसार विपणन प्रक्रिया में सम्मिलित होने वाले कार्य निम्नलिखित हैं।[23]

(1) **स्वामित्व हस्तान्तरण की क्रियाएँ : (अ) क्रय-क्रियायें** (क) आवश्यकताओं के प्रति जागरुकता, (ख) आवश्यकताओं को सन्तुष्ट करने के साधनों का चयन, (ग) पूर्ति के स्रोतों की खोज एवं (घ) मूल्य व शर्तों का निर्धारण । **(ब) विक्रय-क्रियाएँ-** (क) आवश्यकताओं की चेतना को जागत करना (ख) आवश्यकताओं की सन्तुष्टि के साधनों के लिए इच्छा उत्पन्न करना, (ग) वस्तुएँ एवं सेवायें उपलब्ध करना, (घ) उपभोक्ता आवश्यकताओं की सन्तुष्टि के साथ समायोजन करना, एवं (ङ) मूल्य एवं शर्तें निश्चित करना । (च) स्वामित्व का हस्तान्तरण और भुगतान करना । (छ) जोखिम वहन करना ।

(2) **वस्तुओं को पहुँचाने की क्रियाएँ :** (क) यातायात, (ख) संग्रहण (ग) श्रेणीयन, (घ) विभक्तिकरण, (ङ) आदेश प्राप्त करना एवं (च) पैकिंग करना।

(3) **विपणन प्रबन्ध क्रियाएँ :** (क) नीति–निर्माण, (ख) संगठन स्थापना, (ग) उपकरण प्रदान करना, (घ) वित्त प्रबन्धन, (ङ) कार्य–कलापों का पर्यवेक्षण एवं नियन्त्रण करना (च) जोखिम वहन करना एवं (छ) सूचना प्राप्ति।

कंडिफ, स्टिल एवं गोवोनी[24] ने विपणन क्रियाओं को जिन तीन वर्गों में विभक्त किया है इन्हें निम्न रेखाचित्र द्वारा समझा जा सकता है। प्रत्येक क्रिया का संक्षिप्त उल्लेखन इस प्रकार है –

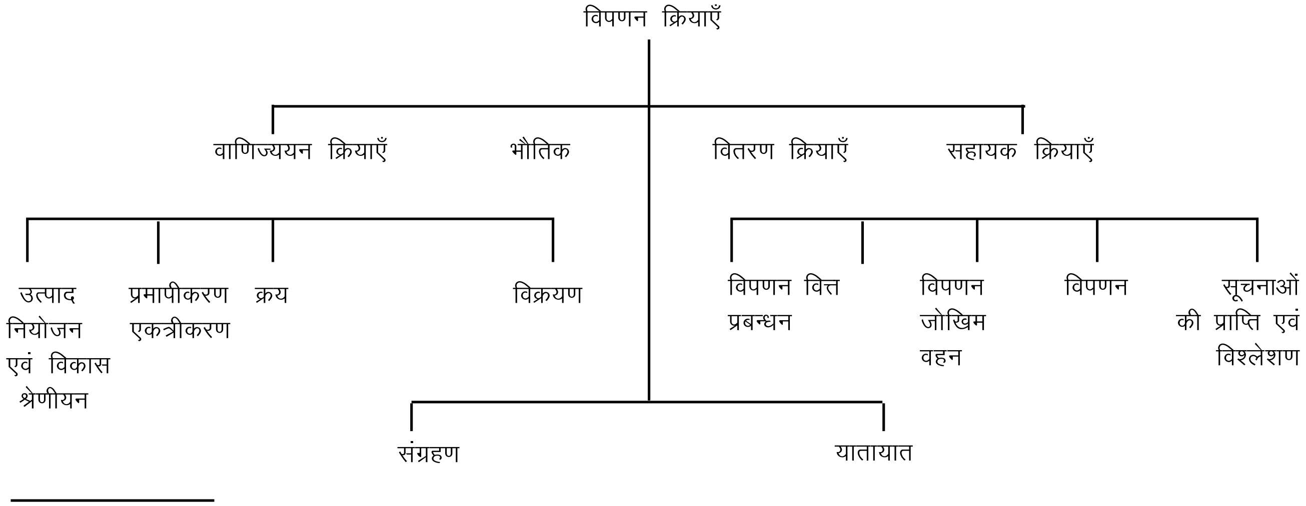

---

[20] H. A. Lpson and J. R. Darling "Introduction to Marketing" An Administrative Approach, pp. 5-6

[21] T.A.A. Latif "The Practice of Marketing" 1976 pp. 2-3

[22] W. J. Stanton op. cit. n.4.

[23] Converse, Hulgy and Mitchell, op. cit. pp. 127-28

[24] Cundiff, Still and Govoni, op. cit. p. 55

(अ) **वाणिज्यन क्रियाएँ (Merchandizing Activities) :** वाणिज्यन में वे समस्त क्रियायें सम्मिलित होती हैं जो किसी बाजार विशेष की माँग को उत्पाद एवं सेवाओं के सम्बन्ध में निर्धारित करने तथा प्रोत्साहित करने हेतु आवयश्क होती हैं। इन क्रियाओं में उत्पाद नियोजन एवं विकास, प्रमाणीकरण एवं श्रेणीयन, क्रय एवं एकत्रीकरण तथा विक्रयण को प्रमुख रूप में सम्मिलित किया जा सकता है:

(1) **उत्पाद नियोजन एवं विकास** – उत्पाद निजोजन एवं विकास संस्था की उत्पादक क्षमता एवं प्रौद्योगिकी को ग्राहक माँग के साथ समायोजित करने का विपणन कार्य है। यह कार्य उत्पादकों एवं मध्यस्थों को उनकी उत्पाद रेखाओं के निर्माण तथा निर्धारण में सहयोग करता है। नये–नये उत्पादों की खोज, जाँच, विकास एवं नये उत्पादों का व्यावसायीकरण, विद्यमान रेखाओं का संशोधन, अलाभकारी मदों का विमोचन आदि वे विपणन क्रियायें हैं जो उत्पाद नियोजन एवं विकास से सम्बन्ध रखती हैं।

(2) **प्रमाणीकरण एवं श्रेणीयन** – प्रमाणीकरण एवं श्रेणीयन के कारण ही ग्राहकों के लिए यह सम्भव होता है कि वे वर्णन द्वारा क्रय कर सकें। ये क्रियायें उत्पादकों को ग्राहकों की इच्छाओं के निकटतम ले जाती हैं। ये क्रियायें उत्पादन में एकरूपता, कीमतों में समानता तथा बिना निरीक्षण के वस्तु विक्रय की सम्भावना में सहयोग करती है। प्रमाणीकरण द्वारा वस्तु के गुण, किस्म, आकार, रंग, डिजाइन आदि के बारे में प्रमाण निश्चित किये जाते हैं और उन प्रमाणों की प्रयुक्ति की जाती है। श्रेणीयन विवरणात्मक प्रमाणों की प्रयुक्ति से सम्बन्ध रखता है। ये विवरणत्मक प्रमाप रंग, आकार अथवा भार आदि से सम्बन्ध रखते हैं। यद्यपि प्रमाणीकरण एवं श्रेणीयन उद्योगों के लिए ऐच्छिक कार्य होते हैं। किन्तु इनकी महत्ता को देखते हुए वे इन्हें अनिवार्य समझते हैं। यही कारण है कि बाटा एवं करोना के जूते, पार्कर पेन, एच.एम.टी. की घड़ियाँ, एवरेडी सेल, डी.सी.एम. एवं बोम्बे डाइंग की चादरें, केमल इंक, लिबर्टी के रेडीमेड वस्त्र, गोदरेज की आलमारियाँ आदि उत्पाद प्रमाणित एवं श्रेणीयत हैं।?

(3) **क्रय एवं एकत्रीकरण** – क्रय को विपणन क्रिया के रूप में अधिप्राप्ति (Procurement) प्रकार्य कहा गया है। यह प्रकार्य अन्तिम उपभोक्ताओं या औद्योगिक प्रयोक्ताओं को वस्तुएँ बेचने अथवा पक्का माल बनाने हेतु आवश्यक कच्चे माल की खरीद करने अथवा मध्यस्थों द्वारा मध्यस्थों को पुनर्विक्रय हेतु वस्तुएँ खरीदने से सम्बन्ध रखता है। एकत्रीकरण प्रकार्य कच्चे माल को विभिन्न स्थानों से प्राप्त करने या पक्के माल को विभिन्न निर्माताओं से एकत्रित करने से सम्बन्ध रखता है। एकत्रीकरण का प्रकार्य मुख्यतः मध्यस्थों द्वारा किया जाता है।

(4) **विक्रयण** – सामान्यतः विक्रयण का अर्थ हम लोग वस्तुओं या सेवाओं के विक्रय अर्थात् उनके स्वामित्व के हस्तान्तरण से लेते हैं। किन्तु कंडिफ, स्टिल एवं गोवोनी का विचार है कि विक्रयण अपने विस्तत अर्थ विक्रय करने के साथ–साथ, भावी ग्राहकों का पता लगाने, माँग को प्रोत्साहित करने और क्रेताओं को सूचनायें तथा सेवायें उपलब्ध करने से, भी सम्बन्ध रखता है। इसलिए विक्रयण में वैयक्तिक विक्रय, विज्ञापन, क्रय–केन्द्र, प्रदर्शन, विक्रय सम्वर्द्धन, पेकेजिंग एवं ग्राहक सेवा सम्बन्धी क्रियायें सम्मिलित की जानी चाहिए।

(ब) **भौतिक वितरण क्रियाएँ (Physical Distribution Activities):** भौतिक वितरण में भंडारण तथा परिवहन क्रियाएँ सम्मिलित होती हैं जो उत्पादन–केन्द्रों से वस्तुओं को उपभोग–केन्द्रों तक पहुंचाने में सहायता करती है। ये क्रियायें समय एवं स्थान उपयोगिता का सर्जन करती है। उत्पादकों एवं उपभोक्ताओं के बीच स्थान सम्बन्धी दूरी और उत्पादन एवं उपभोग समय के बीच के अन्तर को समाप्त करने, कम करने या अनुकूल बनाने में भौतिक वितरण क्रियायें महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाती हैं। आधुनिक विकसित अर्थव्यवस्थाओं में व्यावसायिक जटिलता के बढ़ने के साथ–साथ भौतिक वितरण का महत्त्व भी बढ़ता जा रहा है।

(1) **भण्डारण** – भण्डारण क्रिया समय उपयोगिता का सर्जन करती है। वर्तमान में, भावी मांग का अनुमान लगाकर वस्तु की मांग के उत्पन्न होने से पहले ही उसका उत्पादन कर लिया जाता है। इस उत्पादन को निर्माता, थोक व्यापारी एवं फुटकर व्यापारी अपनी क्षमतानुसार एवं आवश्यकतानुसार स्टॉक कर लेते हैं ताकि समय पर उत्पन्न मांग की पूर्ति की जा सके। स्टॉक के समाप्त होने के साथ–साथ पुनः उसे पूरा करने के

प्रयास भी चलते रहते हैं। भण्डारण की यह महत्त्वपूर्ण क्रिया वहत् पैमाने के उत्पादन, समय पर आवश्यकताओं की पूर्ति तथा कीमतों के उतार–चढ़ाव को कम करने में सहायता करती है। भण्डारण क्रिया कुछ वस्तुओं के मूल्य अर्थात् उपयोगिता को बढ़ाने के लिए भी जरूरी होती है। उदाहरण के लिए चावल, शराब, तम्बाकू एवं मौसमी वस्तुओं का भण्डारण किस्म वद्धि तथा उपभोग की निरन्तरता को बनाये रखने के लिए जरूरी होता है।

(2) **यातायात** – उत्पादन एवं उपभोग केन्द्रों में भौगोलिक दूरी होती है जिसे कम करने के लिए यातायात एक महत्वपूर्ण विपणन क्रिया है। यातायात के विकास के साथ व्यवसाय एवं उद्योग का विकास जुड़ा होता है। यातायात सुविधाओं के विकास–विस्तार ने वहत उत्पादन, विशाल वितरण एवं विशिष्टीकरण को सम्भव बनाया है। वर्तमान में जल, थल एवं नभ मार्गों द्वारा परिवहन हेतु रेलों, ट्रकों, वायुयानों, जहाजों, आदि परिवहन साधनों का उपयोग किया जा रहा है।

(स) **सहायक क्रियायें** (Supporting Activities) : ये वे क्रियाएँ है जो प्रत्यक्ष में वस्तुओं एवं सेवाओं के स्वामित्व के हस्तांतरण से सम्बन्धित नहीं होती है, किन्तु अन्य विपणन क्रियाओं के निष्पादन में सहयोग करती है। इनमें विपणन, वित्त प्रबन्धन, जोखिम वहन तथा विपणन सूचना प्राप्ति एवं विश्लेषण को सम्मिलित किया जा सकता है।

(1) **विपणन-वित्त प्रबन्धन** – उत्पादन केन्द्रों से उपभोक्ताओं के हाथों तक माल पहुँचाने के लिए आवश्यक वित्त की व्यवस्था करना ही विपणन वित्त प्रबन्धन कहलाता है। विपणन संस्थायें सामान्यतः व्यापार साख एवं बैंक साख के जरिये वित्त प्रबन्धन का कार्य सम्पन्न करती है।

(2) **जोखिम-वहन करना** – जोखिम की उत्पत्ति का कारण अनिश्चितता होता है। ऐसी अनिश्चितता माँग–पूर्ति की स्थिति में होने वाले परिवर्तनों अथवा प्राकृतिक घटनाओं से सम्बन्ध रखती हैं। जो विपणन संस्था माँग–पूर्ति में होने वाले परिवर्तनों का सही–सही अनुमान लगा लेती है, उनकी जोखिम कम हो जाती है। व्यवहार में, हर विपणनकर्ता जोखिम वहन करता है। किन्तु भण्डारण या स्टॉकिंग का कार्य करने वाली संस्थाओं को जोखिम अधिक वहन करनी पड़ती है। व्यावसायिक संस्थायें प्राकृतिक संकटों के विरुद्ध बीमा कम्पनियों से बीमा पालिसीज लेकर जोखिम कम कर सकती हैं। इसी प्रकार अन्य जोखिमें सुरक्षा के सौदा द्वारा अथवा परिशुद्ध एवं कुशल विक्रय पूर्वानुमान, अनुसन्धान आदि के द्वारा कम की जा सकती है। उत्पाद–विविधीकरण (Product differentiation) के द्वारा भी कीमत प्रतिस्पर्धा को समाप्त करके जोखिम को कम किया जा सकता है। किन्तु उत्पाद–विविधिकरण को शत–प्रतिशत सफलता प्राप्ति की गारन्टी नहीं माना जा सकता।

(3) **विपणन सूचना प्राप्ति एवं विश्लेषण** – प्रभावी विपणन के लिए समयानुकूल निर्णय लेने होते हैं और इन निर्णयों का आधार विपणन सम्बन्धी सूचनायें तथा उनका निष्पक्ष, विवेकपूर्ण एवं अविलम्ब विश्लेषण होता है। विपणन संस्था की सफलता बाजारों, उत्पादों, प्रतिस्पर्धी दशाओं, मांग एवं पूर्ति, ग्राहक व्यवहारों आदि से सम्बन्धित विविध, पर्याप्त, परिशुद्ध एवं समयानुकूल सूचनाओं की प्राप्ति और उनके उपयोग पर निर्भर करती है। विपणन सूचनाएँ संस्था के विपणन क्रिया–कलापों, साधनों एवं लक्ष्यों में परिवर्तन का आधार बनती है। इसलिए इन सूचनाओं की प्राप्ति समाचार पत्रों, व्यापार–जर्नलों, पेशेवर पत्रिकाओं, सरकारी विभागों, पेशेवर संस्थाओं, बाजार–अनुसन्धानों, पूर्वानुमान तकनीकों आदि के जरिये प्राप्त की जा सकती है। मध्यस्थ श्रंखलायें भी विपणन सम्बन्धी सूचनाओं की उपलब्धि के प्रमुख स्रोत होते हैं।

विपणन के कार्य
(Functions of Marketing)

किसी भी वस्तु को उसके उत्पादक से उपभोक्ता तक पहुँचाने में विभिन्न प्रकार की विपणन क्रियाएँ की जाती है। इन्हीं विपणन क्रियाओं को विपणन कार्य कहा जाता है। उदाहरण के लिए कृषि पदार्थो का क्रय करना, उपज को परिवहन के साधनों से बाजार तक पहुँचाना, प्रमापीकरण एवं वर्गीकरण की क्रिया करना, वित्त प्रबन्ध करना, मूल्यों के उतार–चढ़ाव व उपज के खराब होने की जोखिम सहन करना, कुछ समय के लिए उपज का भण्डार करना, आदि सभी विपणन के कार्य है।

1. **टाउसले, क्लार्क एवं क्लार्क** के मत में, "एक विपणन कार्य एक बहुत विशेष प्रकार की क्रिया है जो विपणन में सम्पादित की जाती है।" [25]

2. **कन्वर्स, ह्यूजी एवं मिचेल** के अनुसार, "विपणन कार्य एक व्यवहार, क्रिया या सेवा है जिसको माल व सेवाओं को वितरित करने की क्रिया में पूरा किया जाता है।"[26]

विपणन क्रियाएँ उत्पादक, मध्यस्थ व उपभोक्ता सभी के द्वारा की जाती हैं। कभी–कभी एक ही विपणन क्रिया कई बार विभिन्न संस्थाओं के द्वारा की जाती है। एक व्यापारी अपने कार्य को प्रारम्भ करने से पूर्व यह पता लगाता है कि उसको कौन–कौन –से कार्य करने है। यह उन कार्यो को इस प्रकार सम्पन्न करता है कि वे कम–से–कम व्यय में पूरे किये जा सकें।

विपणन कार्य कितने हैं इस सम्बन्ध में विपणन विशेषज्ञों में सहमति नहीं है। अर्थशास्त्र के पिता एडम स्मिथ ने अपनी पुस्तक *'The Wealth of Nations'* में थोक व्यापारी के विपणन कार्यो का उल्लेख करते हुए सिर्फ चार कार्य बताये हैं–क्रय, विक्रय, संग्रह, वित्त जबकि फ्रैंकलिन डब्ल्यू. रेपन ने अपने एक लेख में १२० कार्य बताये है। कुछ अन्य विद्वानों के विचार निम्नलिखित हैं

1. **मेक्गेरी** के अनुसार विपणन के छः कार्य हैं[27]
   - (i) ***सम्पर्कीय-*** जिसमें क्रेताओं और विक्रेताओं की खोज की जाती है।
   - (ii) ***वाणिज्यीयन-*** इसमें बाजार के अनुरूप वस्तु बनायी जाती हैं।
   - (iii) ***मूल्य-*** जिसमें ऊँचे मूल्यों का चुनाव किया जाता हैं जिससे कि उत्पादन करना सम्भव हो सके तथा साथ ही यह मूल्य ऐसे होने चाहिए कि उपभोक्ता खरीदने के लिए प्रोत्साहित हों।
   - (iv) ***प्रचार-*** क्रेताओं या विक्रेताओं का वस्तु प्रयोजन के प्रति अनुकूल प्रवत्ति उत्पन्न करना इसके अन्तर्गत आता है
   - (v) ***भौतिक वितरण-*** इसमें वस्तुओं की परिवहन एवं भण्डार सेवाएँ आती हैं।
   - (vi) ***समाप्ति-*** विपणन प्रक्रिया की समाप्ति।

2. **टाउसले, क्लार्क एवं क्लार्क** ने विपणन के आठ कार्य बताये हैं[28]
   - (i) विक्रय
   - (ii) क्रय
   - (iii) परिवहन
   - (iv) संग्रह
   - (v) वित्त
   - (vi) जोखिम
   - (vii) बाजार सूचना व
   - (viii) प्रमापीकरण

3. **ए.डब्ल्यू. शॉ** के अनुसार विपणन के पाँच कार्य हैं[29]–
   - (i) जोखिम उठाना
   - (ii) माल भेजना

---

25 "A marketing function is a major specialised activity performed in marketing." Tousley, Clark & Clark : *Principles of Marketing , p.14*

26 "A marketing function is an act, operation or service performed in the process of distributing goods and services." Converse, Huegy & Mitchell. *The Elements of Marketing, p.26*

27 Edmund D. McGarry: *Theory in Marketing*, pp. 269-273, quoted from Marketing Management by Philip Kotler, p.557.

28 Tousley, Clark & Clark : *Principles of Marketing.*

29 A.W. Shaw : Quoted from Marketing by Duddy & Revzan, p.21

(iii) वित्त प्रबन्ध करना

(iv) विक्रय

(v) एकत्रीकरण करना

4. **कण्डिफ एवं स्टिल** ने अपनी पुस्तक में विपणन कार्यों का तो कोई उल्लेख नहीं किया है लेकिन '*Facilitating Agencies in Marketing*' के अन्तर्गत उन विपणन क्रियाओं की एक सूची दी है जो विपणन कार्य में पूर्ण की जाती हैं। इस सूची में उन आठों कार्यों का उल्लेख किया गया है जो ऊपर टाउसले, क्लार्क एवं क्लार्क द्वारा बताये गये हैं लेकिन एक नवीन कार्य या क्रिया वस्तु नियोजन एवं विकास नाम से जोड़ दी है।[30] **इस प्रकार अध्ययन की सुविधा के लिए हम विपणन कार्यों को निम्न प्रकार रख सकते हैं-**

विपणन के कार्य

(Functions of Marketing)

प्रबन्ध सम्बन्धी कार्य	क्रियात्मक कार्य
(Managerial Activities)	(Functional Activities)
1. नियोजन (Planning)	1. विपणन अनुसंधान (Market Research)
2. संगठन (Organising)	2. उत्पान नियोजन (Product Planning)
3. स्टाफिंग (Staffing)	3. क्रय (Purchase)
4. निर्देशन (Directing)	4. वस्तुओं का एकीकरण (Assembling of Goods)
5. नियन्त्रण (Controlling)	5. श्रेणीयन एवं प्रमापीकरण (Grading & Standardization)
	6. ब्राडिंग (Branding)
	7. संग्रह (Storage)
	8. यातायात (Transport)
	9. पैंकिग (Packing)
	10. मूल्य निधारण (Pricing)
	11. विक्रय (Selling)
	12. विज्ञापन (Advertising)
	13. वित्त (Finance)
	14. जोखिम (Risk)
	15. बाजार सूचना (Market Information)

विपणन में प्रबन्धकीय कार्य
(Managerial Functions in Marketing)

1. **नियोजन करना (Planning)**: विपणन के प्रबन्धकीय कार्यों में प्रथम कार्य नियोजन करना हैं। यहाँ नियोजन से अर्थ उन तरीकों से है जिनके माध्यम से विपणन उद्देश्यों को प्राप्त किया जाता है। किसी समस्या के समाधान के कई तरीके होते हैं। हमें उन तरीकों में से किसी सर्वोत्तम तरीके के सम्बन्ध में निर्णय लेकर आगे बढ़ना होता है।

---

30 Cundiff & Still : *Basic Marketing p.315*

2. **संगठन एवं समन्वय करना (Organisation and Co-ordination)**: विपणन के प्रबन्धकीय कार्यो में संगठन एक महत्त्वपूर्ण कार्य है। यहाँ संगठन से अर्थ उस प्रक्रिया से है जिसमे विभिन्न कार्यो एवं इन कार्यो में संलग्न व्यक्तियों की क्रियाओं को इस प्रकार गठित करना है कि वे सर्वोत्तम कार्यकुशलता एवं सहयोग के साथ कार्य कर अधिकतम उत्पादन कर सकें। बिना अच्छे संगठन के न तो नीतियों का ही पालन किया जा सकता है और न ही लक्ष्यों की प्राप्ति हो सकती है।

3. **स्टाफिंग (Staffing)**: विपणन प्रबन्धक का अन्य महत्त्वपूर्ण कार्य विक्रय प्रबन्धकों, विक्रय कर्त्ताओं आदि की नियुक्ति, प्रशिक्षण एवं वेतन आदि का निर्धारण है। विपणन प्रबन्धक वहीं तरीके तथा प्रक्रिया अपनाता है जो सेविवर्गीय प्रबन्धक द्वारा अपनाए जाते है।

4. **संचालन एवं निर्देशन (Operation and Direction):** जब लक्ष्य निर्धारित हो जाते हैं, नियोजन पूर्ण कर लिया जाता है, कर्मचारियों एवं प्रबन्धकों की नियुक्ति कर दी जाती है, तब उस व्यवसाय में संचालन एवं निर्देशन की आवश्यकता होती है। कोई भी योजना अच्छी नहीं है जब तक कि उसको प्रभावकारी ढंग से लागू न किया जाये।

5. **विपणन कार्यो का नियन्त्रण (Controlling of Marketing Functions)**: बाजार की अवस्थाओं में परिवर्तन, उपभोक्ता की मांग तथा रूचि में परिवर्तन, देश की आर्थिक व्यवस्था में परिवर्तन आदि विपणन योजना में रूकावट उत्पन्न कर देते हैं। यह रूकावट विपणन क्रियाओं के कुशल नियन्त्रण द्वारा रोकी जा सकती है। एक विपणन प्रबन्धक को लगातार विक्रय प्रबन्ध तथा विक्रय–कर्त्ताओं के कार्यो का प्रमापित निष्पादन (Standard performance) के साथ तुलना कर खामियों को दूर करना चाहिए ताकि योजना एवं नियन्त्रण में तालमेल हो सके।

क्रियात्मक कार्य
(Functional Activities)

1. **विपणन अनुसन्धान (Marketing Reserach)**: विपणन अनुसन्धान आधुनिक युग में विपणन का सबसे महत्त्वपूर्ण कार्य हो गया है। इसकी सहायता से यह जाना जा सकता है कि ग्राहक क्या चाहते हैं, कितनी मात्रा, कहां चाहते हैं तथा वस्तु के ग्राहक के हाथ में पहुँच जाने के बाद वह वस्तु के विषय में क्या सोचते हैं। ये महत्त्वपूर्ण तथ्य केवल विपणन अनुसन्धान द्वारा ही पता चलती हैं जो विपणन की सफलता में महत्त्वपूर्ण योगदान (Contribtuion) प्रदान करते हैं।

2. **उत्पादन नियोजन (Product Planning)**: सफलतापूर्वक विपणन इस बात पर आधारित होता है कि हम कहां तक उपभोक्ता की रूचि, विचार तथा मांग को जानने में तथा रूचि के अनुरूप वस्तु का निर्माण करने में सफल होते हैं। विपणन अनुसन्धान की सहायता से प्राप्त तथ्यों के अनुसार वस्तुओं के रूप एवं डिजाइन का निर्धारण करना तथा आवश्यक मात्रा में उस वस्तु के उत्पादन की व्यवस्था करना उत्पादन नियोजन कहलाता है।

3. **क्रय (Buying)**: एक व्यापारी के लिए क्रय बहुत ही महत्त्वपूर्ण होता है। उसकी विक्रय–सफलता उसकी क्रय कार्यकुशलता पर निर्भर करती है। कहां तक वह ग्राहकों की रूचि की वस्तुएं ठीक मूल्य पर क्रय कर पाता है, इस पर ही उसके व्यवसाय की सफलता आधारित होती है। विपणन अनुसंधान द्वारा प्राप्त सूचनाओं के आधार पर ही उसे अपनी क्रय–नीति निश्चित करनी चाहिए। क्या खरीदना है, कब खरीदना है तथा कहां से खरीदना है, के निर्धारण में अत्यधिक सावधानी की आवश्यकता होती है।

4. **परिवहन (Transport)**: परिवहन का कार्य वस्तु को उत्पादन स्थल से उपभोक्ता तक पहुँचाना है। परिवहन की सहायता के कारण ही वहत् उत्पादन, विशिष्टीकरण व वहत् बाजार स्थापित हो गये हैं। उपभोक्ता को भी उपभोग की वस्तुओं की संख्या व मात्रा में वद्धि करने का अवसर परिवहन की सहायता से ही प्राप्त हुआ है।

5. **श्रेणीयन एवं प्रमापीकरण (Grading and Standardization)**: औद्योगिक संस्थाओं के लिए इसका विशेष महत्त्व नहीं होता परन्तु कृषि पदार्थ या कच्चे माल का क्रय–विक्रय करने वाली संस्था के लिए यह क्रिया विशेष महत्त्व की होती है क्योंकि ये पदार्थ एक तरह के नहीं होते। इन वस्तुओं का व्यापार करने वाले व्यापारी इनका एकत्रीकरण करने के बाद अलग–अलग श्रेणी के अनुसार श्रेणीयन करते हैं। इससे विक्रय सरल हो जाता है।

6. **ब्राडिंग (Branding)**: अधिकांश उद्योगों द्वारा निर्मित की जाने वाली वस्तुओं को उनके रूप–रंग के आधार पर अलग–अलग किया जा सकता है। प्रत्येक निर्माता अपनी वस्तु को दूसरे निर्माता की वस्तु से अलग करने के लिए अपनी वस्तु को विशेष नाम दे देता है।

7. **जोखिम सहना (Risk-taking)**: विपणन कार्यो में जोखिम का भी महत्त्वपूर्ण स्थान है। जोखिम अनिश्यितता के कारण उत्पन्न होती है। वस्तु के उत्पादन से लेकर अन्तिम उपभोक्ता तक पहुँचने में बहुत–सी क्रियाएं करनी पड़ती है। जिनमें जोखिम सहना भी होता है। जोखिम के विभिन्न कारण हो सकते हैं जैसे माल को आग, बाढ़, दुर्घटनाओं व चोरी से नष्ट होना, तो कभी जोखिम माल का मूल्य कम होने , तो कभी मांग में परिवर्तन होने की है। इनमें कुछ जोखिमें ऐसी हैं जिनको बीमा के माध्यम से कम किया जा सकता है।

8. **बाजार सूचना (Market information)**: विपणन में बाजार सूचनाएं बहुत ही महत्त्वपूर्ण कार्य करती है। यदि बाजार सूचनाओं का व्यापारी के पास अभाव है तो उसके व्यापार पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ सकता है। विभिन्न व्यापारिक समुदायों, सरकार व अन्य विशिष्ट संस्थानों द्वारा वस्तु में उत्पादन व उपभोग के सम्बन्ध में सूचनाएं एकत्रित की जाती हैं। व्यापारी उन सूचनाओं के आधार पर अपनी विपणन नीति व वस्तु के उत्पादन में परिवर्तन कर लेता है और सम्भावित प्रतिकूल प्रभावों से अपने को बचा लेता है।

9. **पैंकिंग (Packing)**: वस्तुओं को अलग–अलग ब्रांड देने के लिए तथा उन्हें यातायात के योग्य बनाने के लिए उचित पैकिंग करने की आवश्यकता होती है। साथ ही ग्राहकों की अलग–अलग मात्रा में वस्तु की आवश्यकता पड़ती है जिस कारण वस्तु को भिन्न–भिन्न मात्रा में पैक करना पड़ता है। इसके अन्तर्गत वस्तुओं को पैंकिंग के लिए डिब्बों, टिनों, बोतलों, पीपों, बोरियों आदि साधनों के चुनाव की आवश्यकता पड़ती है तथा उपभोक्ताओं की रूचि को ध्यान में रखकर पैंकिंग की मात्रा निर्धारित की जाती है।

10. **वित्त (Financing)**: उत्पादन व उपभोग के बीच समय का काफी अन्तर होता है। उपभोक्ता भी वस्तु प्राप्त करने के लिए पहले से भुगतान नहीं करता है। उत्पादन में कच्चा माल, मशीन, तेल, मजदूरी व संग्रह आदि के लिए भी धन की आवश्यकता होती है। साथ ही दैनिक कार्यो, मौसमी आवश्यकताओं, क्रेताओं की साख के लिए भी धन आवश्यक होता है। धन व साख जिसकी आवश्यकता वस्तु को अन्तिम उपभोक्ता तक पहुँचाने के लिए होती है विपणन के अन्तर्गत वित्त कार्य कहलाता है।

11. **मूल्य निर्धारण (Price Fixation)**: प्रत्येक उत्पादक को अपने वस्तुओं के मूल्य का निर्धारण इस तरह से करना होता है कि जिससे उत्पादक को पर्याप्त लाभ हो सके तथा उपभोक्ता भी वस्तु के प्रति अपनी रूचि रख सके। साथ ही उपभोक्ता के लिए मूल्य निर्धारण के साथ–साथ उन्हें थोक व्यापारी एवं फुटकर व्यापारियों के लिए भी भिन्न–भिन्न निर्धारण करना होता है। ताकि वे भी वस्तु के विक्रय में पर्याप्त रूचि लें। इसके अन्तर्गत विभिन्न ग्राहकों को दी जाने वाली छूट का भी निर्धारण होता है।

12. **विज्ञापन (Advertising or Supplying Information about Goods to Customers)**: ग्राहकों को वस्तुओं के विषय में जो बाजार में बिक रही होती है, पूर्ण ज्ञान नहीं होता। उत्पादक को उपभोक्ताओं को अपने उत्पाद, उसके गुण, मूल्य, प्राप्त होने का स्थान आदि के विषय में ज्ञान प्रदान करना होता है। जिनके बिना विक्रय सम्भव नहीं है। यह कार्य विज्ञापन की सहायता से किया जाता है।

13. **संग्रह (Storage)**: संग्रह वह प्रक्रिया है जिस के माध्यम से वस्तुओं को उपयोग होने तक अच्छी हालात में बनाए रखा जाता है। यह कार्य उत्पादन तथा उपभोग की दूरी कम कर देता है।

14. **विक्रय (Selling)**: विपणन में विक्रय कार्य बहुत ही महत्त्वपूर्ण है। वास्तव में, विपणन की आधारशिला विक्रय ही है। यदि वस्तुओं का बिक्रय न हो तो विपणन क्रिया के अन्य कार्य अप्रभावी ही रह जायेंगे। बिना विक्रय के उत्पादन को भी अधिक काल तक चालू नहीं रखा जा सकता है। विक्रय में ग्राहकों का पता लगाना, उनकी मांग को प्रोत्साहित करना, उनको सलाह देना एवं उनको अच्छी–से–अच्छी सेवा प्रदान करना, आदि आता है।

15. **एकत्रीकरण (Assembling)**: आधुनिक विपणन का उद्देश्य क्रेता की सभी प्रकार की जरूरतें पूरा करना है। विपणन प्रबन्धक अलग–अलग स्रोतों से विभिन्न प्रकार की वस्तुएं (Good) एकत्रित करता है तथा उपभोक्ताओं को उपलब्ध कराता है।

अध्याय-2
विपणन विचार
(Marketing Concept)

विपणन विचार का अर्थ एवं परिभाषाएँ
(Meaning of Marketing Concept and its Definitions)

'विपणन' एवं 'विपणन विचार' पर्यायवाची नहीं हैं। वस्तुतः दोनों में काफी अन्तर है। विलियम जे. स्टेन्टन 'विपणन विचार' एवं 'विपणन' के बीच अन्तर करते हुए लिखते हैं कि 'विपणन विचार' एक दर्शन, अभिवत्ति अथवा व्यावसायिक चिन्तन की दशा है। जबकि विपणन व्यावसायिक क्रियाओं की एक प्रक्रिया अथवा व्यावसायिक कार्यवाही का मार्ग है। स्वाभाविक तौर पर चिन्तन विधि क्रिया के मार्ग का निर्धारण करती है।[1]

वस्तुतः वर्तमान में, 'विपणन–व्यवसाय का पयार्यवाची बनता जा रहा है। विपणन के इस बढ़ते हुए महत्त्व ने व्यावसायिक चिन्तन को एक नवीन दिशा देना प्रारम्भ किया है जिसे 'विपणन विचार' की संज्ञा दी गई है। जान ई. वेकफील्ड ने 'विपणन विचार' को 'व्यवसाय दर्शन' कहा है।[2] सच पूछा जाये तो 'विपणन विचार' प्रबन्ध का वह दर्शन है जो विपणन क्रियाओं का मार्ग–दर्शन करता है।' अन्य शब्दों में, 'विपणन विचार' सामाजिक–आर्थिक सन्तुष्टि की मान्यताओं पर आधारित ऐसा व्यवसाय–दर्शन है जो ग्राहक को समस्त विपणन क्रियाओं का केन्द्र बिन्दु बनाने पर बल देता है।" इस विचारधारा से सम्बन्धित कुछ प्रमुख परिभाषाएँ निम्नानुसार हैं–

1. आर्थर पी. फैल्टन के अनुसार 'विपणन विचार' संस्था की स्थिति है जो समस्त विपणन क्रियाओं के एकीकरण एवं समन्वय पर बल देती है, ताकि ये विपणन क्रियाएँ संस्था के अन्य कार्यों से संयोजित हो सके और संस्था दीर्घकालीन अधिकतम लाभों की उत्पत्ति के मूल लक्ष्य को प्राप्त कर सके।"[3]

2. विलियम जे. स्टेन्टन के अनुसार "समग्र अर्थ में, विपणन विचार व्यवसाय का वह दर्शन है जो ग्राहक की आवश्यकताओं की सन्तुष्टि को कम्पनी के अस्तित्व का आर्थिक एवं सामाजिक औचित्य मानता है। परिणामस्वरूप, कम्पनी के समस्त उत्पादन, विपणन अभियान्त्रिक एवं वित्तीय क्रियाओं का एक मात्र लक्ष्य यह मालूम करना होना चाहिए कि उपभोक्ताओं की आवश्यकताएँ क्या हैं और उन आवश्यकताओं को उचित लाभार्जन के साथ किस प्रकार सन्तुष्ट किया जा सकता है।"[4]

3. दी जनरल इलेक्ट्रिक कम्पनी, अमेरिका के विपणन अधिशासी के शब्दों में हम यह अनुभव करते हैं कि विपणन एक आधारभूत बुनियादी दर्शन है। इस दर्शन का प्रथम आधार, व्यवसाय करने के ग्राहकोन्मुखी तरीकों को स्वीकारना एवं मान्यता देना है। विपणन के अन्तर्गत ग्राहक एक आधार एवं केन्द्र बिन्दु बन जाता है। जिसके चारों ओर व्यवसाय

---

1 W. J. Stanton, op, cit., p. 12

2 "The Marketing Concept is a Philosophy of Business" — John E. Wakefield
"The Ten Cogs in Marketing for Profits" "Sales Management", Oct. 16, 1969, p. 3.

3 "The Marketing concept is a corporate state of mind that insists on the integration and co-ordination of all marketing functions which in turn an welded with all other corporate functions for the basic objective of producing maximum long range corporte profits." — Arthur P. Felton "Making the Marketing Concept Work". Harvard Business Review July-August, 1959, p. 55

4 "In its fullest sense, the marketing concept is a Philosophy of business which states that the customers-want-satisfaction is the economic and social justification of a company's existence. Consequently, all Company activities in production, engineering and finance, as well as in marketing must be devoted to first, determining what the customer's wants are and, then satisfying these wants while still making a reasonable profit. W. J. Stanton, op. cit., p. 11.

सभी सम्बन्धित वर्गों के हितों के लिए चक्कर काटता है। .... द्वितीय आधार जिस पर विपणन दर्शन आधारित है, वह यह है कि इस विचार की जड़ें परिमाण–विचार में नहीं बल्कि लाभ–विचार में हैं।[5]

4. कंडिफ स्टिल एवं गोवोनी के अनुसार "मूलतः विपणन विचार, वह प्रबन्ध–दर्शन है जो इस विचार को अपनाने वाली कम्पनियों के विपणन प्रयासों के प्रबन्ध को सुदढ़तापूर्वक प्रभावित करता है।" [6]
5. फिलिप कोटलर के अनुसार, "विपणन विचार, विपणन प्रयासों के पथ प्रदर्शन का दर्शन है।"[7]

उपर्युक्त विवेचन के आधार पर यह कहा जा सकता है कि "विपणन विचार", विपणन क्रियाओं का मार्ग–दर्शन करने वाला ऐसा प्रबन्ध दर्शन है जो ग्राहकोन्मुखी है और विपणन संस्था की समस्त क्रियाओं को एकीकृत करते हुए उचित लाभार्जन पर बल देता है। इस विचार को आधुनिक माना गया है।

विपणन विचार की मान्यताएँ अथवा विशेषताएँ (Assumptions or Characteristics of the Marketing Concepts)

प्रमुख मान्यताएँ अथवा विशेषताएँ निम्नलिखित हैं:

1. विपणन विचारधारा 'व्यवसाय' एवं 'विपणन' को पयार्यवाची बनाती है और व्यवसाय–संगठन को विपणन संगठन में बदल देती है।
2. विपणन विचार सामाजिक–आर्थिक सन्तुष्टि के सिद्धान्त पर आधारित विचार है जो ग्राहक–सन्तुष्टि को विपणन–प्रक्रिया का हृदय मानता है।
3. विपणन विचार बिक्री की मात्रा पर ध्यान न देकर लाभकारी विक्रय परिणाम पर ध्यान देता है।
4. विपणन विचार एकीकृत अथवा सुग्रथित विपणन पर बल देती है। इसका तात्पर्य यह है कि विपणन क्रियाओं एवं निर्णयों का सम्बन्ध संस्था की अन्य क्रियाओं एवं निर्णयों से होना चाहिए। इसके अतिरिक्त, विपणन, विपणन अधिकारी को संस्था में सर्वोच्च संगठनात्मक पद प्रदान करने पर बल देता है। अन्य शब्दों में, यह विचारधारा संस्था की क्रियाओं को एकीकृत करने एवं संस्था व उसके विभागों के लक्ष्यों में एकरूपता स्थापित करने पर बल देती है।

विपणन विचार एवं उसकी विशेषताओं को निम्न चित्र 2.1 द्वारा प्रदर्शित किया जा सकता है। चित्र 2.1 बतलाता है कि विपणन विचार को अपनाने वाल संस्था सबसे पहले ग्राहकों की विद्यमान एवं सम्भावित जरूरतों और इच्छाओं की जानकारी करती है। तदुपरान्त स्वयं की क्षमताओं एवं साधनों को ध्यान में रखते हुए सम्भावित बाजार अवसरों का निर्धारण करती है। इसके बाद विपणन क्रियाओं को परस्पर सम्बद्ध करता है। इसके पश्चात् निर्मित उत्पादों एवं सेवाओं का विपणन किया जाता है जिससे ग्राहकों को सन्तुष्टि और फर्म को लाभ मिल सके।

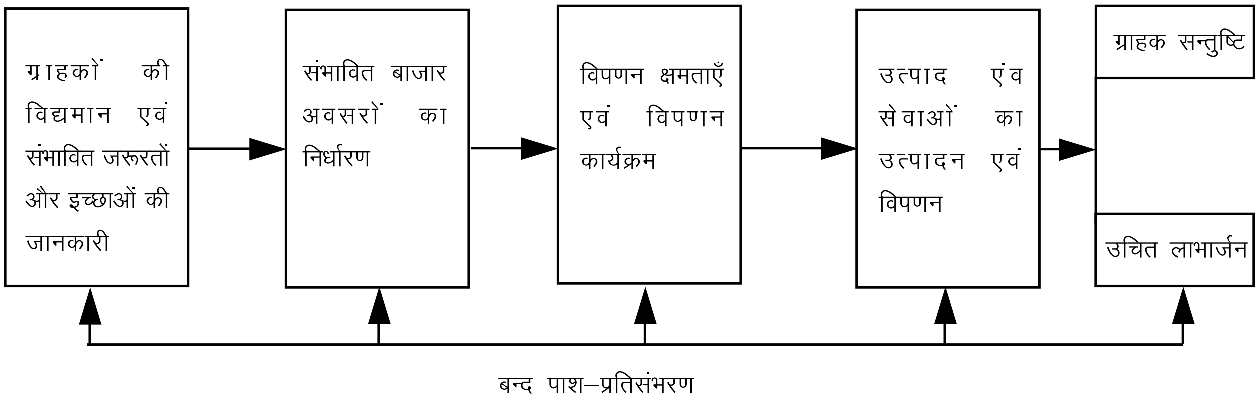

चित्र 2.1

---

[5] Freed J. Borch "The Marketing Philosophy as a way of Business life, the marketing Concepts: Its meaning to Management". AMA Marketing Series No. 99, New York, 1957, pp. 3-5.

[6] Basically, the marketing concept is a philosophy of management that strongly influences the management of marketing efforts in those companies adopting it." Cundiff, Still and Govoni op. cit., p. 16.

[7] Phillip Kitler, op. cit., p. 12.

फिलिप कोटलर का मत है कि "विपणन विचार वह प्रबन्ध अभिस्थापन (Management Orientation) है जो इस बात को बतलाता है कि संगठन का प्रमुख काम किसी लक्ष्य–बाजार की आवश्यकताओं, इच्छाओं और मूल्यों का निर्धारण करना है। तथा प्रतिस्पर्धियों की तुलना में अत्यधिक प्रभावपूर्ण एवं कार्यकुशल तरीके से वांछित सनतुष्टियाँ प्रदान करने हेतु संगठन को अनुकूल बनाना है।" इस विचार की प्रमुख मान्यताएँ निम्नलिखित हैं:[8]

1. संगठन का कार्य किसी निश्चित ग्राहक समूह की आवश्यकताओं एवं इच्छाओं की सन्तुष्टि करना होता है।
2. संगठन यह स्वीकारता है कि ग्राहक इच्छाओं की सन्तुष्टि के लिए ऐसे सक्रिय विपणन कार्यक्रम की जरूरत होती है जो इन इच्छाओं के बारे में जानकारी करता रहता है।
3. संगठन को सुग्रथित अर्थात् एकीकृत विपणन नियन्त्रण की जरूरत होती है।
4. ग्राहक–सन्तुष्टि ग्राहकों की निष्ठा प्राप्त करती है, व्यवसाय की पुनरावत्ति करती है और ख्याति प्राप्त करती है।

विपणन विचार के स्तम्भ (Pillars of Marketing Concept)

"विपणन विचार वस्तुतः ऐसा ग्राहकोन्मुखी दष्किोण है जिसे एकीकृत विपणन का समर्थन प्राप्त है और जिसका लक्ष्य ग्राहक–सन्तुष्टि के जरिये संगठनात्मक लक्ष्यों की प्राप्ति है।" इस विचार के निम्न तीन आधार स्तम्भ हैं:

ग्राहकोन्मुखी दष्टिकोण (Customer-Orientation)

विपणन विचार ग्राहक को सर्वोपरि मानकर चलता है और संस्था को ग्राहक की दष्टि से देखने पर बल देता है। विपणन विचार का यह आधार स्तम्भ उत्पादोन्मुखी (Product-oriented) न होकर ग्राहकोन्मुखी (Customer-oriented) है। यह विचार ग्राहकों को संस्था का मालिक मानता है और संगठनात्मक चार्ट में उन्हें सर्वोपरि स्थान देता है। इस विचारधारा को अपनाने वाली संस्थाएँ संगठन की नीतियों एवं कार्यक्रमों का निर्माण ग्राहक को केन्द्र बिन्दु बना कर करती हैं तथा ग्राहकों की रूचियों एवं आवश्यकताओं में हुए परिवर्तनों के अनुरूप उत्पाद संमिश्र (Product-mix) में परिवर्तन करती है। वस्तुतः यह अवधारणा ग्राहक की प्रभुसत्ता में विश्वास रखती है और ग्राहक द्वारा वांछित उत्पादों के निर्माण को सर्वाधिक महत्त्व देती है।

विपणन विचार के इस ग्राहकोन्मुखी आधार स्तम्भ को व्यवहार में क्रियान्वित करने हेतु निम्नांकित कदम लिये जाने जरूरी हैं–

1. **वास्तविक आवश्यकता का निर्धारणः** विपणन संस्था का प्राथमिक कदम ग्राहकों की वास्तविक आवश्यकताओं का निर्धारण करने से सम्बन्ध रखता है। यदि विपणन संस्था दवाइयाँ बेचती है तो प्रबन्धकों को यह जान लेना चाहिए कि वे दवाइयाँ नहीं अपितु स्वास्थ्य अथवा जीवन बेच रहे हैं। यदि संस्था गर्म कपड़े बेचती है तो यह जानना चाहिए कि सुखद गर्माहट बेच रही है। यदि श्रंगार के सामान बेचती है तो समझना चाहिए कि सौन्दर्य बेचा जा रहा हैं। टेलीफोन बेचती है तो संचार और सम्पर्क बेचा जा रहा है। इस प्रकार, उत्पाद या सेवा अन्तिमतः उपभोक्ताओं के लिए क्या करती है ओर उपभोक्ता उससे क्या आशाएँ रखते हैं, इनकी जानकारी ग्राहकोन्मुखी दष्टिकोण को व्यवहारिक रूप देने में सहायक होती है।
2. **लक्ष्य समूहों का निर्धारणः** जब विपणन संस्था उपभोक्ता की वास्तविक आवश्यकता का निर्धारण कर लेती है, तब उसे बाजार–विभक्तिकरण की रीति–नीति को अपनाकर उन लक्ष्य–समूहों को निर्धारित करना चाहिए। जिन तक वह पहुँचना चाहती है। व्यवहार में विभिन्न बाजार–खण्ड होते हैं जिनकी आवश्यकताएँ भिन्न–भिन्न होती हैं और जिन्हें एक उत्पाद द्वारा पूरा करना सम्भव नहीं होता है। इसलिए साधनों के सीमित होने पर किसी विशिष्ट लक्ष्य–बाजार का चुनाव करना परमावश्यक होता है अथवा साधनों के असीम होने पर 'उत्पाद विविधिकरण' (Product diversification) की रीति–नीति को अपनाना होता है।
3. **उत्पाद एवं सन्देश पहुँचानाः** जब विपणन संस्था निर्धारित लक्ष्य समूहों के लिए उपयुक्त उत्पाद बना लेती है तब

8 Phillip Kotler, op. cit., p. 14.

सही समय पर पर्याप्त मात्रा में सही किस्म एवं कीमत वाला उत्पाद ग्राहकों तक पहुँचाना चाहिए। यदि प्रतिस्पर्धा अधिक है तो 'उत्पाद–विभेदीकरण' (Product differentitation) की रीति–नीति का सहारा लिया जाना चाहिए।

4. **उपभोक्ता अनुसंधान करते रहनाः** दीर्घकाल तक उपभोक्ताओं की आवश्यकतओं एवं रूचियों के अनुरूप उत्पाद को बनाये रखने के लिए विपणन संस्था द्वारा उपभोक्ता अनुसंधान कार्य सतत् रूप से करते रहना चाहिए। यदि उपभोक्ता अन्य निर्माताओं की वस्तुओं के प्रति झुकाव प्रकट करने लगते हैं तो उन प्रतिस्पर्धी उत्पादों तथा उनमें प्रयुक्त औद्योगिकी के बारे में गहरी छानबीन करके स्वयं के उत्पादनों को भी उनसे श्रेष्ठ बनाना चाहिए।

एकीकृत विपणन (Integrated Marketing)

एकीकृत विपणन का आधार स्तम्भ कम्पनी की संगठन संरचना मे परिवर्तन की आवश्यकता को प्रकट करता हैं यह स्तम्भ विपणन कम्पनी की समस्त क्रियाओं में एकीकरण करने तथा उन्हें विपणन लक्ष्यों की प्राप्ति की दिशा में अग्रसर करने पर बल देता है। इस स्तम्भ की मान्यता यह है कि जब तक कम्पनी के सभी विभाग मिलकर किसी एक विशिष्ट अधिकारी के नेतत्व में कार्य नहीं करेंगे, तब तक विपणन लक्ष्यों की प्राप्ति नहीं होगी। इसलिए, विपणन अधिशासी के नेतत्व एवं नियन्त्रण में संस्था के अन्य विभाग जैसे उत्पादन, वित्त, विक्रय, सेविवर्गीय, अनुसन्धान एवं विकास आदि विभाग होने चाहिए ताकि वह अधिशासी

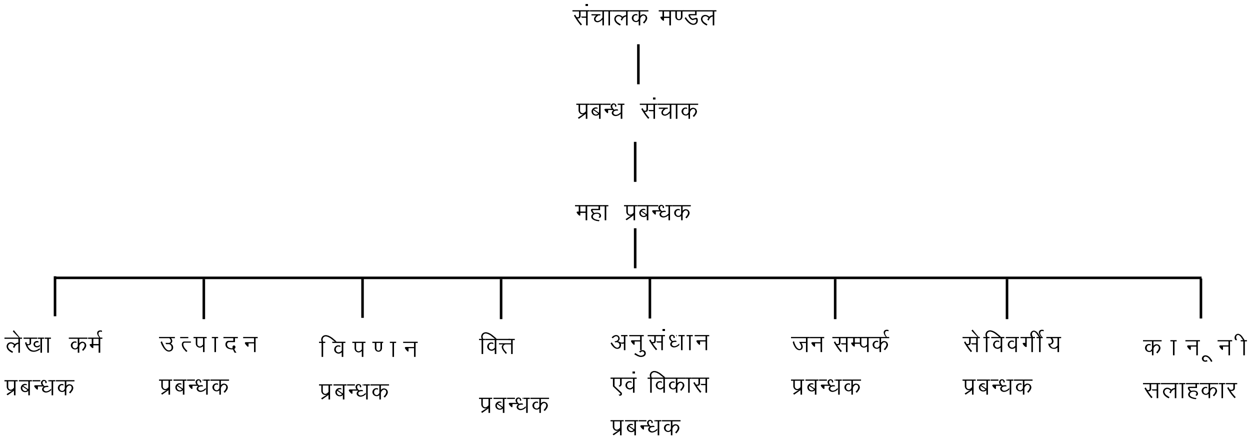

रेखाचित्र 2.3

ग्राहक–सन्तुष्टि को प्रभावित करने वाली समस्त क्रियाओं का प्रबन्ध भली प्रकार कर सके। एकीकृत विपणन को न अपनाने वाली संस्थाओं में संगठन चार्ट निम्न रूप ले सकता है (देखिए चित्र नं. 2.3)

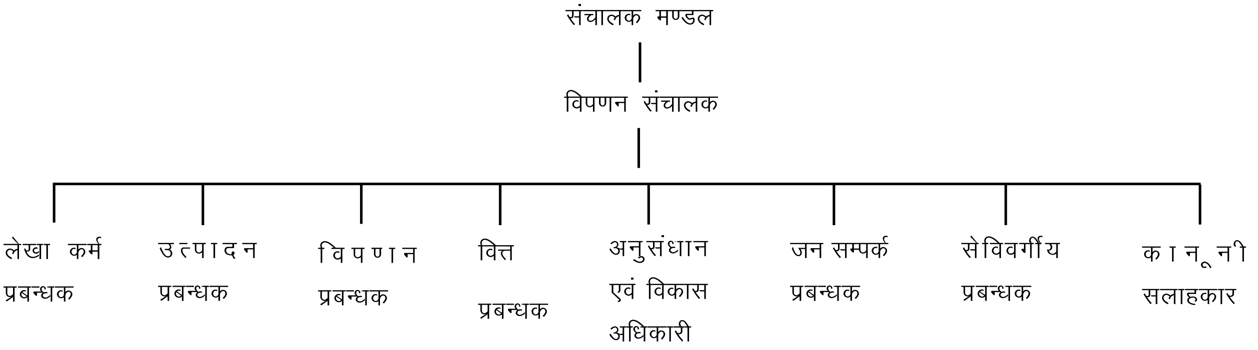

रेखाचित्र 2.4

एकीकृत विपणन के आधार स्तम्भ को अपनाने वाली संस्थाओं का संगठन चार्ट चित्र नं. 2.4 जैसा रूप ग्रहण कर सकता है–

संगठनात्मक लक्ष्यों की पूर्ति का आधार-ग्राहक सन्तुष्टि (Customer Satisfaction as Key to Organisational goals)

विपणन विचार का तीसरा आधार स्तम्भ ग्राहक सन्तुष्टि है। ग्राहक सन्तुष्टि ही संगठनात्मक लक्ष्यों की पूर्ति एवं लाभार्जन का

आधार है। इसलिए, विपणन विचार को अपनाने वाली संस्थाओं को चाहिए कि वे ग्राहक को सदैव सही समझे, और उसे सदैव सन्तोषप्रद सेवाएँ देने हेतु तत्पर रहें। निष्कर्ष के तौर पर कहा जा सकता है कि ग्राहक की सन्तुष्टि को विपणन प्रयासों का लक्ष्य मानना चाहिए, और संस्था के लाभ ग्राहक सन्तुष्टि का परिमाण होना चाहिए।

आधुनिक एवं पुराने विपणन विचार में अन्तर
(Difference between Old and new Concepts of Marketing)

आधुनिक विपणन विचार बदलते हुए प्रबन्ध–दर्शनों का कारण–परिणाम रहा है। पुरानी विचारधारा वस्तुतः आधुनिक विपणन विचार की पष्ठभूमि है और विकासावस्थायें हैं। इनको विपणन साहित्य में 'उत्पाद विचार' एवं विक्रयण विचार के नाम से पुकारा गया है। कुछ विद्वान इन्हें 'उत्पादोन्मुखी विपणन दष्टिकोण' तथा विक्रयोन्मुखी विपणन दष्टिकोण' भी कहते हैं। आधुनिक विपणन विचार के साथ इन दष्टिकोणों का अन्तर जानने से पूर्व 'उत्पाद–विचार' तथा 'विक्रय विचार' को जान लेना अत्यावश्यक है।

'उत्पाद विचार' (Product Concept) उत्पादकों की क्रियाओं का सबसे पुराना मार्गदर्शक तथा नियन्त्रक रहा है। कोटलर के अनुसार, उत्पाद विचार ऐसा प्रबन्ध–अभिस्थापन है जो यह मानकर चलता है कि उपभोक्ता अच्छे एवं उचित कीमत वाले उत्पादों को अपना समर्थन देते हैं और सन्तोषप्रद विक्रयों तथा लाभों के लिए कम्पनी को बहुत कम विपणन प्रयास करने की जरूरत है।

'विक्रयण विचार' (Selling Concept) उत्पादकों की क्रियाओं के मार्गदर्शन और नियन्त्रण की द्वितीय विचारधारा रही है। कोटलर के अनुसार, "विक्रय विचार" ऐसा प्रबन्ध अभिस्थापन है जो यह मानकर चलता है कि पर्याप्त विक्रयण और संवर्द्धन प्रयासों के अभाव में उपभोक्ता कम्पनी की वस्तुओं को अधिक परिमाण में नहीं खरीदेंगे।

विपणन की आधुनिक विचारधारा और उसके कार्यों को निम्न चित्र से अच्छी तरह दर्शाया जा सकता हैः–

विपणन की पुरानी और नयी विचारधारा के अन्तर को निम्न चार्ट की सहायता से अधिक स्पष्ट कर सकते हैं:

विपणन क्रियायें-पुरानी विचारधारा (Marketing Functions - Old Concept)

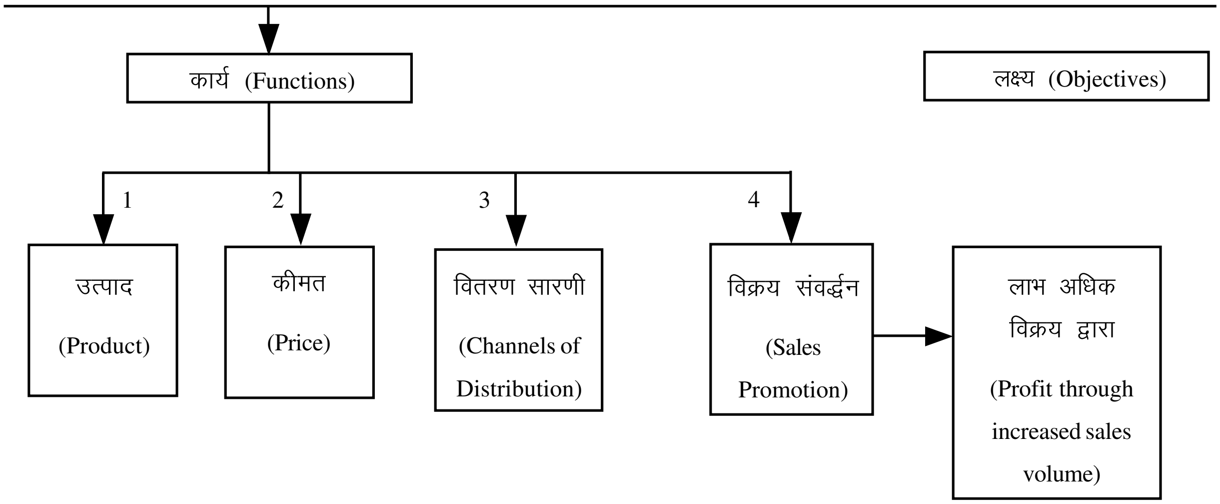

विपणन क्रियायें-नवीन विचारधारा (Marketing Functions - New Concept)

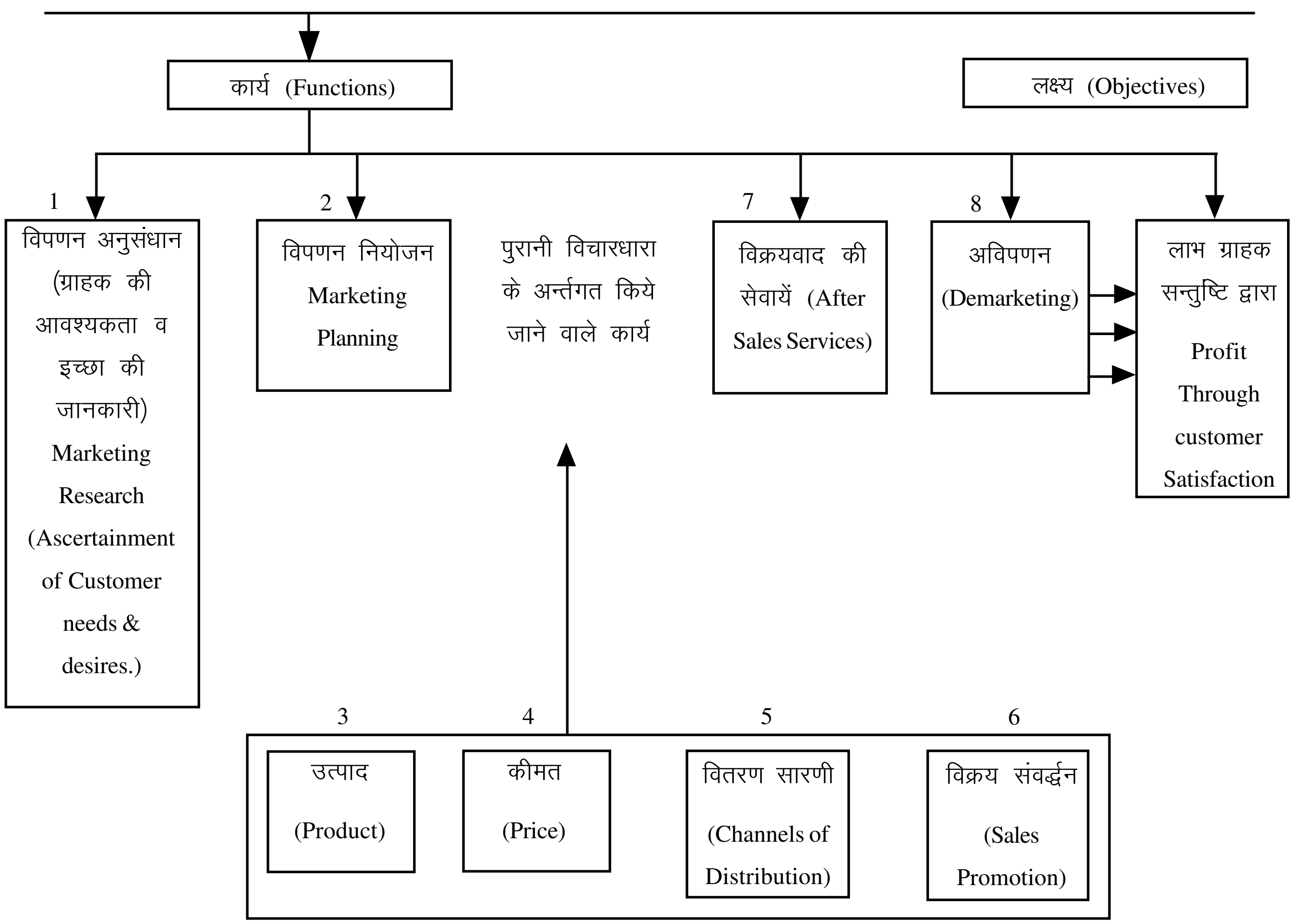

चित्र 2.5 विपणन विचार (Marketing Concept)

उपरोक्त चित्र से यह प्रतीत होता है कि चित्र के पहले भाग में विपणन कार्य 1, 2, 3, 4 पुरानी विचारधारा को बताते हैं, चित्र के दूसरे भाग में 3, 4, 5, 6 तो पुरानी विचारधारा के अर्न्तगत विपणन प्रबन्ध के कार्य हैं तथा नवीन विचारधारा में 1, 2, 7 व 8 कार्य भी विपणन प्रबन्ध के अर्न्तगत आ गये है। पुरानी विचारधारा में ग्राहकों की इच्छा व आवश्यकता को जाने बिना वस्तु बनाई जाती थी। लेकिन नई विचारधारा में वस्तु को बनाने के पूर्व ग्राहकों की आवश्यकता और इच्छा को जाना जाता है। जैसा कि उपरोक्त चित्र में बताया है। पुरानी विचारधारा में विक्रय और उसकी वद्धि की जाती थी लेकिन नई विचारधारा में इसके साथ मांग का पूर्वानुमान और विपणन एकीकरण भी जोड लिया है जिससे व्यापारिक कार्य अधिक सुविधाजनक हो गये हैं। पुरानी विचारधारा में अधिक लाभ विक्रय में वद्धि करके प्राप्त किया जाता था लेकिन आधुनिक विचारधारा में वस्तु को बेचने के बाद ग्राहक की संतुष्टि के लिए विक्रय के बाद सेवाएं और गारन्टी दी जाती है। इस प्रकार उपरोक्त चित्र से विपणन की पुरानी और आधुनिक विचारधारा के बीच के अंतर को आसानी से समझ लेते हैं।

विपणन की पुरानी विचारधारा साधारण विक्रय और विक्रय प्रवर्तन तक थी। लेकिन विपणन की नई विचारधारा विक्रय और प्रवर्तन तक ही सीमित नहीं है। इसमें केवल कोई एक क्रिया ही नहीं ली जाती जैसे विक्रय, विज्ञापन और वितरण बल्कि इसमें विपणन एकीकरण होता है या दूसरे शब्दों में यह विभिन्न व्यापारिक क्रियाओं का एकीकरण करती है। इसका अंतिम उद्देश्य उपभोक्ता की आवश्यकता और इच्छा को तप्त करना है। पॉल मजुर (Paul Mazur) के अनुसार यह "जीवन स्तर की सुपुर्दगी है" (The delivery of standard of livig)। विद्यमान आवश्यकताओं को संतुष्ट करना, उत्तम नई इच्छाओं का निर्माण करना और वस्तुओं में सुधार करना, विपणन उपभोग के तरीकों को बताती है और लोगों के जीवन स्तर को सुधारती है।

विपणन की आधुनिक विचारधारा के अनुसार प्रबन्ध को स्वयं उत्पाद के उत्पादन को ही नहीं सोचना चाहिए, मूल्य के अनुसार ग्राहक को संतुष्ट करने की भी व्यवस्था करनी चाहिए। विपणन की नई विचारधारा का निष्कर्ष यह है कि ग्राहक एक ऐसा चक्र है जिस पर सारी व्यापारिक क्रियाएं चक्कर लगाती है।

पुरानी उत्पादन प्रधान विचारधारा "क्रेता सावधान" (Caveat Emptor) का दष्टिकोण लिए हुए थी जिसका तात्पर्य, ग्राहक को साधान रहना चाहिए, वस्तु को बेचने के बाद विक्रेता का कोई उत्तरदायित्व नहीं है। नयी बाजार प्रधान विचारधारा "विक्रेता सावधान" (Caveat Vendor) जिसका तात्पर्य है विक्रेता को सावधान रहना चाहिए, विक्रेता वस्तु को बेचने के बाद पूर्ण उत्तरदायी होता है। विक्रेता का अंतिम उद्देश्य ग्राहक को संतुष्ट करना है।

आधुनिक एवं पुराने विपणन विचार में अन्तर
(Difference between old and New concept of marketing)

उपभोक्ता संतुष्टि (Consumer Satisfaction) पुरानी विचारधारा वस्तुओं को उत्पादक से उपभोक्ता तक पहुँचाने की थी और उसमें लाभ मुख्य कारक था। लेकिन आधुनिक विचारधारा में उपभोक्ता की सन्तुष्टि अनिवार्य है। कोई भी निर्माता बिना उपभोक्ता की सन्तुष्टि के अपने निर्धारण कार्य को अधिक समय तक नहीं चला सकता है।

लाभ कमाना (Profit earning) पुरानी विचारधारा में लाभ कमाना मुख्य कार्य था लेकिन आज की विचारधारा में उपभोक्ता को सन्तुष्ट करके ही लाभ कमाया जा सकता है।

विपणन कार्यो में पारस्परिक सम्बन्ध (Mutual relationship between marketing functions) पुरानी विचारधारा में विपणन के कार्यो में पारस्परिक सम्बन्ध या तो था ही नहीं या बहुत कम था लेकिन नवीन विचारधारा में विपणन के प्रत्येक क्षेत्र का सम्बन्ध आवश्यकता ही नहीं बल्कि उन सबका नियोजन एवं समन्वय भी अनिवार्य है। बिना इनके एकीकरण के उपभोक्ता सन्तुष्टि नहीं की जा सकती है।

उपभोक्ता-संचालित (Consmer-oriented) पुरानी विचारधारा वस्तु–संचालित थी लेकिन नवीन विचारधारा उपभोक्ता–संचालित है। इसका अर्थ यह है कि पुरानी विचारधारा में निर्माता का ध्यान वस्तु के उत्पादन पर ही केन्द्रित था और वितरण का कार्य मध्यस्थ करते थे लेकिन नवीन विचारधाराओं में निर्माताओं का ध्यान उपभोक्ता पर केन्द्रित है। जिसमें उपभोक्ताओं की आवश्यकताओं का पता लगाया जाता है और उत्पादन को उसी के अनुरूप बनाया जाता है।

उपभोक्ता अनुसन्धान (Consumer research) नवीन विचारधारा उपभोक्ता अनुसन्धान पर पर्याप्त व्यय करने पर जोर देती है। जबकि पुरानी विचारधारा में इसकी आवश्यकता नहीं थी।

उपभोक्ता कल्याण (Consumer Welfare) नवीन विचारधारा का दीर्घकालीन उद्देश्य उपभोक्ता कल्याण है जबकि पुरानी विचारधारा में इसका कोई स्थान नहीं था। इसलिए आज रहन–सहन के स्तर को ऊँचा उठाने का उत्तरदायित्व विपणन का ही माना जाता है।

सामाजिक उत्तरदायित्व (Social Responsibility) नवीन विचारधारा में सामाजिक उत्तरदायित्व को भी अब जोड़ा जाने लगा है जबकि पुरानी विचारधारा में इसका कोई स्थान नहीं था। इस सम्बन्ध में सामाजिक उत्तरदायित्व का अर्थ है कि विपणन करते समय समाज को उचित मूल्य पर उचित प्रकार की वस्तु दी जानी चाहिए।

नवीन व पुरानी विचारधारा को निम्न प्रकार चित्र द्वारा स्पष्ट किया जा सकता है–

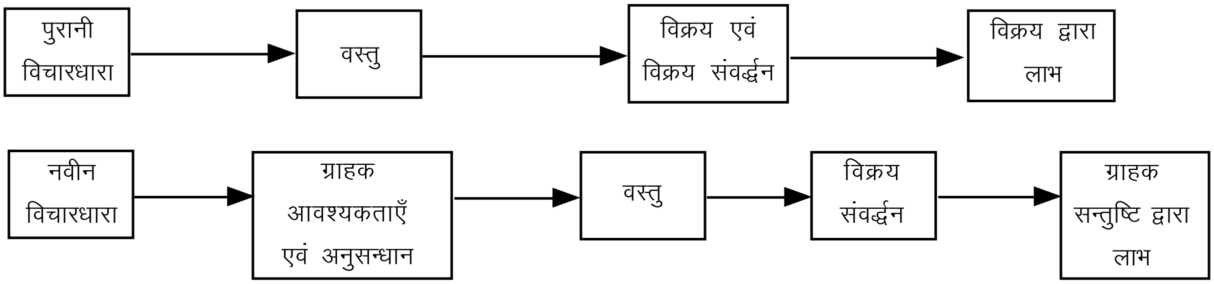

लेकिन कुछ विद्वान इन तर्कों से सहमत नहीं है और उनका कहना है कि आधुनिक विपणन विचारधारा भारत में लागू होती है। अतः वे यह तर्क प्रस्तुत करते है कि (1) यहाँ अनेक उत्पादक व निर्माता हैं जो वस्तु बनाने से पूर्व उपभोक्ताओं की इच्छा व आवश्यकताओं का पता लगाते हैं। तथा इसके बाद उपभोक्ताओं की आशा के अनुरूप उत्पादन करते हैं। (2) विक्रय की व्यवस्था करते हैं तथा विक्रय के बाद सेवा भी देते हैं। इसीलिए यहाँ अनेक वस्तुओं की गारण्टी दी जाती है। यदि उस गारण्टी समय में वस्तु खराब हो जाती है तो उसे बदला जाता है या उसकी मुफ्त मरम्मत की जाती है। (3) उपभोक्ता का रहन–सहन स्तर उठाने के लिए विज्ञापन व अन्य विक्रय सवंर्द्धन के कार्य कर उसको वस्तु खरीदने के लिए विवश किया जाता है। साख व किस्त की सुविधा दी जाती है। (4) यहाँ कुछ निर्माता हैं जिनका लाभ प्राप्ति का उद्देश्य गौण व जन सेवा का उद्देश्य प्राथमिक है।

दोनों पक्षों के तर्कों को ध्यान में रखकर हम इस निष्कर्ष पर आते हैं कि भारत में आधुनिक विपणन विचारधारा आंशिक रूप से लागू है। यहाँ कुछ निर्माता व उत्पादक अवश्यक हैं जो आधुनिक विचारधारा के अनुरूप कार्य करते हैं लेकिन अधिकांश नहीं। परन्तु जैसे–जैसे शिक्षा का प्रसार, जनसंख्या का शहरीकरण, प्रति व्यक्ति आय में वद्धि, रहन–सहन के स्तर में सुधार आदि होता चला जायेगा वैसे–ही–वैसे भारत में आधुनिक विचारधारा की मान्यता बढ़ती चली जायेगी।

विपणन व विक्रय में अन्तर
(Distinction Between Marketing & Selling)

अनेक व्यक्ति विपणन व विक्रय में कोई अन्तर नहीं करते हैं। अतः वे उनका प्रयोग पर्यायवाची शब्दों के रूप में करते हैं। यह उचित नहीं है। वास्तव में दोनों शब्दों में भिन्नता है। विपणन शब्द का अर्थ विस्तत है जिसमें विक्रय भी शामिल है। विक्रय का कार्य वस्तुओं को अन्तिम उपभोक्ता या निर्माण करने वाली संस्था तक पहुँचाना है जबकि विपणन क्रिया तो मस्तिष्क में वस्तु के निर्माण का विचार आते ही प्रारम्भ हो जाती है। विपणन में विपणन अनुसन्धान तथा वस्तु नियोजन से लेकर विक्रय के बाद की सेवाएँ भी शामिल की जाती है। संक्षेप में विपणन व विक्रय में निम्न अन्तर पाये जाते हैं:–

1. विक्रय का क्षेत्र संकुचित जबकि विपणन का क्षेत्र अपेक्षाकृत विस्तत होता है।
2. विक्रय में अधिक विक्रय पर अधिक ध्यान दिया जाता है जबकि विपणन में ग्राहक की आवश्यकताओं के पता लगाने व उन्हें सन्तुष्ट करने पर अधिक जोर दिया जाता है।
3. वस्तु को नकद द्रव्य में बदलना ही विक्रय कहा जाता है लेकिन विपणन के अन्तर्गत ग्राहकों को वस्तु तथा मूल्य सन्तुष्टि देना भी आवश्यक है।
4. विक्रय में वस्तु पर ध्यान केन्द्रित रहता है जबकि विपणन में ग्राहक सन्तुष्टि पर।

विपणन विचारधारा सम्बन्धी विभिन्न दष्टिकोण
(Various views Regarding Marketing Concept)

विपणन की कोई एक सर्वमान्य परिभाषा नहीं है। विपणन का अर्थ विभिन्न विद्वान विभिन्न प्रकार से लगाते हैं। हम इन विद्वानों के विचारों को निम्न मतों में विभाजित कर सकते हैं–

1. वस्तुओं और सेवाओं के वितरण सम्बन्धी विचारधारा,
2. उपयोगिताओं के सजन सम्बन्धी विचारधारा,
3. जीवन–स्तर प्रदान करने सम्बन्धी विचारधारा,
4. प्रणाली दष्टिकोण विचारधारा,
5. उपभोक्ता सन्तुलन विचारधारा,
6. अन्य विचारधाराएँ।

वस्तुओं और सेवाओं के वितरण सम्बन्धी विचारधारा
(The Distribution of Goods and Services Concept)

विपणन सम्बन्धी विचारों को स्पष्ट करते हुए कुछ विद्वानों ने विपणन में केवल उन क्रियाओं को ही सम्मिलित करने का विचार व्यक्त किया है। जो वस्तुओं एवं सेवाओं को निर्माता से उपभोक्ता तक पहुँचाने में की जाती है। इस प्रकार के विद्वानों की कुछ परिभाषाएँ निम्न प्रकार हैः–

1. टाउसले, क्लार्क एवं क्लार्क के अनुसार, "विपणन में वे सभी प्रयत्न शामिल हैं जो वस्तुओं और सेवाओं के स्वामित्व हस्तान्तरण को प्रभावित करते हैं और भौतिक विपणन की व्यवस्था करते हैं।"
2. कन्वर्स ह्यू जी एवं मिचल के मत में, "विपणन में वे क्रियाएँ शामिल की जाती हैं जो वस्तुओं और सेवाओं के उत्पादन के उपभोग तक के बहाव से सम्बन्धित हैं।"
3. अमरीकन मार्केटिंग एसोसिएशन की परिभाषा समिति की राय में, "विपणन का अर्थ व्यापारिक क्रियाओं को पूरा करने से है। यह क्रियाओं को पूरा करने से हैं। यह क्रियाएँ वस्तुओं और सेवाओं को उत्पादक से उपभोक्ता या प्रयोगकर्ता तक के बहाव को निर्देशित करती है।

विपणन के क्षेत्र में उपर्युक्त विचारों को एक लम्बे काल तक मान्यता मिलती रही लेकिन आज इन विचारों की मान्यता समाप्त हो चुकी है और इनको पुरानी विचारधारा का प्रतीक माना जाता है। इसी बात को इस प्रकार भी कह सकते हैं कि यह विचार संकीर्णता लिए हुए हैं। अतः इन विचारों की निम्न आलोचना की जाती है–

1. इन विचारों के अनुसार विपणन कार्य वस्तु के निर्मित हो जाने के बाद ही प्रारम्भ होता है लेकिन वास्तविकता यह है कि वस्तु का निर्माण बहुत पहले से ही प्रारम्भ हो जाता है और वह भी उपभोक्ता एवं विपणन अनुसन्धान के आधार पर इस प्रकार उपभोक्ता एवं विपणन अनुसंधान वस्तु नियोजन, वस्तु डिजाइन, वस्तु पैकेजिंग एवं ब्राण्ड निर्धारण तथा विज्ञापन एवं विक्रय संवर्द्धन का कार्य इन परिभाषाओं की परिधि में नहीं आता है जबकि आजकल यह सभी कार्य विपणन के अंग माने जाते हैं।
2. इस विचारधारा में विक्रय के बाद दी जाने वाली सेवाओं के लिए कोई स्थान नहीं है अर्थात यह सेवाएँ विपणन के क्षेत्र में नहीं आती है जबकि आधुनिक विचारधारा में यह एक महत्त्वपूर्ण उपकरण है।
3. इस विचारधारा की आलोचना इस प्रकार की जाती है कि यह विचारधारा इस बात पर केन्द्रित है कि जो कुछ भी निर्माता द्वारा बनाया जायेगा वह ग्राहकों द्वारा क्रय कर लिया जायेगा अर्थात् यह विचारधारा वस्तु–अभिमुखी है। आजकल तो उपभोक्ता–अभिमुखी विचारधारा पायी जाती है जिसमें उत्पादन उपभोक्ता की रूचि एवं आवश्यकताओं के अनुसार किया जाता है।
4. यह विचार उस समय के लिए उचित थे जबकि उद्योग एवं व्यापार तथा सन्देश वाहन एवं परिवहन साधनों का अधिक विकास नहीं हुआ था तथा उपभोक्ता का जीवन–स्तर एवं उसकी आय कम थी।
5. इस विचारधारा में सामाजिक उत्तरदायित्व का कोई स्थान नहीं है जबकि आजकल सामाजिक उत्तरदायित्व विपणन का एक अंग बन चुका है।

उपयोगिता की सजन सम्बन्धी विचारधारा (The Creation of Utilities Concept)

कुछ विद्वानों का मत है कि विपणन उपयोगिताओं का सजन करने वाली क्रिया है। इस प्रकार का मत व्यक्त करने वाले विद्वानों की परिभाषाएँ इस प्रकार है–

1. कन्वर्स, ह्यू जी एवं मिचल के अनुसार, "विपणन अर्थशास्त्र का वह भाग है जिसमें स्थान, समय एवं अधिकार उपयोगिता की उत्पत्ति का अध्ययन किया जाता है।"
2. रिचर्ड बसकिर्क के मत में, "विपणन एक ऐसी सुग्रथित प्रणाली है जो रूप, स्थान, समय एवं अधिकार उपयोगिताओं के सजन द्वारा वस्तुओं में मूल्य उत्पन्न करती है।" [9]

---

[9] Marketing is an integrated system of action that creates value in goods through its creation of form, place, time and ownership utilities."

— Richard Buskirk : *Principles of Marketing*, p. 5.

अर्थशास्त्रियों के मतानुसार विपणन एक प्रणाली है जो कि वस्तुओं में उपयोगिताओं के सजन द्वारा मूल्य उत्पन्न करती है। यह उपयोगिताएँ कन्वर्स, ह्यू जी उवं मिचल के अनुसार (स्थान, समय एवं अधिकार के रूप में) तीन प्रकार की होती है जबकि रिचर्ड बसकिर्क ने रूप उपयोगिता को और जोड़ दिया है और इस प्रकार इनके अनुसार उपयोगिताएँ चार प्रकार की होती हैं। वास्तव में, विपणन क्रियाओं से, चारों प्रकार की उपयोगिताएँ प्रभावित होती है। जब वस्तु का नियोजन एवं विकास किया जाता है तो विपणन की यह क्रिया रूप उपयोगिता का सजन करती है जबकि वस्तुओं को विभिन्न माध्यमों से विभिन्न विक्रय स्थानों पर बेचने के लिए उपलब्ध कर स्थान उपयोगिता सजित की जाती है। इसी प्रकार विपणन क्रियाओं में जब वस्तु को उसकी माँग से पूर्व ही मध्यस्थों द्वारा अपने स्टॉक में रख लिया जाता है तो यह क्रिया वस्तु में समय उपयोगिता का सजन करती है। विपणन क्रियाओं के अन्तर्गत ही वस्तु के लिए विज्ञापन एवं विक्रय संवर्द्धन किया जाता है। जो वस्तु में स्वामित्व उपयोगिता का सजन करता है।

वास्तव में, इसमें काई दो मत नहीं हैं कि विपणन क्रियाएँ उपयोगिताओं का सजन कर वस्तुओं में मूल्य उत्पन्न करती हैं। उदाहरण के लिए, जंगल में पड़ी लकड़ी की कोई उपयोगिता नहीं है लेकिन जब कोई फर्नीचर निर्माता उसके जंगल से प्राप्त करके तथा काट–छाँटकर मेज व कुर्सी का रूप दे देता है तो वह लकड़ी उपयोगी हो जाती है। और इस प्रकार उस लकड़ी में मूल्य उत्पन्न हो जाता है। इसी प्रकार जब वस्तुएँ निर्माता के यहा गैर–मौसम के कारण स्टॉक में रखी रहती है तो उनमें समय उपयोगिता उत्पन्न हो जाती है लेकिन जब वे उपभोक्ता के पास पहुँच जाती है तो उनमें स्थान उपयोगिता उत्पन्न हो जाती है। इसी प्रकार वस्तु को बेचने के लिए विज्ञापन उनमें स्वामित्व उपयोगिता उत्पन्न करता है।

इन परिभाषाओं का दोष यह है कि ये विपणन की केवल एक क्रिया को ही व्यक्त, करती हैं। अन्य क्रियाओं पर इनमें ध्यान नहीं दिया गया है। साथ ही उपभोक्ता सन्तुष्टि एवं सामाजिक उत्तरदायित्व को कोई स्थान इन परिभाषाओं में नहीं दिया गया है। इन्हीं कारणों से यह परिभाषाएँ पुरानी विचारधारा की मानी जाती है।

जीवन-स्तर प्रदान करने सम्बन्धी विचारधारा (Delivery of Standard of Living Concept)

कुछ विद्वानों ने विपणन का अर्थ जीवन–स्तर से लगाकर परिभाषाएँ निम्न प्रकार दी हैं–

1. पॉल मजूर के अनुसार, "विपणन समाज को जीवन–स्तर प्रदान करता है।"
2. मैल्कम मैकनयर के मत में, "विपणन का आशय जीवन–स्तर का सजन करने एवं उसे उपलब्ध करने से है।"

इन परिभाषाओं के अनुसार, विपणन का कार्य, समाज को जीवन–स्तर प्रदान करना है। यह परिभाषाएँ उपभोक्ता–अभिमुखी हैं तथा इस बात पर बल देती हैं कि इच्छाओं की सन्तुष्टि अवश्य की जाय। अतः वस्तु नियोजन इसके अन्तर्गत आ जाता है। वांछित जीवन–स्तर प्रदान करने के लिए आवश्यक है कि समाज द्वारा माँगी जाने वाली वस्तु एवं वस्तु–विशेषताओं की उचित व्यवस्था की जाय।

विपणन का अर्थ समाज के लिए जीवन–स्तर का सजन करना है। सजन से अर्थ नयी–नयी वस्तुओं का निर्माण कर उनके प्रयोग में वद्धि करना है। जिससे समाज को या तो नया जीवन–स्तर मिल सके या पुराने जीवन–स्तर में सुधार या उन्नति हो सके तथा एक बार समाज को जो जीवन–स्तर मिल जाय उसमें अवनति न होकर उन्नति होनी चाहिए। इसके लिए आक्रमणशील (aggresive) विपणन नीतियाँ काम में लायी जानी चाहिए। समाज को नयी–नयी वस्तुएँ क्रय करने के लिए विवश किया जाना चाहिए। जिस परिवार में जितनी अधिक आराम एवं विलासिता की वस्तुएँ पायी जाती हैं उनका उतना ही अधिक वह परिवार उच्च रहन–सहन के स्तर का माना जाता है।

यही नहीं, समाज के जीवन–स्तर को ऊँचा उठाने के लिए वस्तुओं की उपलब्धता को बढ़ाया जाना चाहिए जिसके लिए प्रत्येक गाँव–गाँव व शहर–शहर में वस्तु उपलब्ध होनी चाहिए। विपणन के विकास के अभाव में सामाजिक स्तर को ऊँचा नहीं उठाया जा सकता है। वास्तव में, विपणन के विकास के ही कारण आज वस्तुएँ स्थान–स्थान पर प्राप्त होने लगी हैं और जन–साधारण अधिक–से–अधिक वस्तुओं का उपयोग करने लगा है।

प्रणाली दष्टिकोण विचारधारा

(System Approach Concept)

प्रणाली दष्टिकोण विचारधारा की परिभाषाएँ इस प्रकार हैं– (1) प्रो. स्टाण्टन के अनुसार, "विपणन का अर्थ उन पारस्परिक व्यावसायिक क्रियाओं की सम्पूर्ण प्रणाली से है जो कई वर्तमान एवं सम्भावित ग्राहकों को उनकी आवश्यकता–सन्तुष्टि की वस्तुओं और सेवाओं के बारे में योजना बनाने, मूल्य निर्धारित करने, संवर्द्धन करने और वितरण करने के लिए की जाती है।" (2) कण्डिफ, स्टिल एवं गोवोनी की राय में, "विपणन एक व्यावसायिक प्रक्रिया है। जिसके द्वारा वस्तुओं को बाजारों के अनुरूप बनाया जाता है और स्वामित्व हस्तान्तरित किये जाते हैं।"[10]

इस विचारधारा के अन्तर्गत विपणन से अर्थ व्यवसाय की सम्पूर्ण प्रणाली से लगाया जाता है। इसमें सभी व्यावसायिक क्रियाएँ सम्मिलित की जाती हैं क्योंकि यह क्रियाएँ पारस्परिक रूप से एक–दूसरे से सम्बन्धित होती हैं तथा एक–दूसरे को प्रभावित करती हैं। कुछ विद्वानों ने प्रणाली के स्थान पर प्रक्रिया शब्द का प्रयोग किया है जैसा कि कण्डिफ एवं स्टिल ने किया है।

वास्तव में, इस प्रकार की विचारधारा आधुनिक विचारधारा के अन्तर्गत आती हैं और विपणन अध्ययन के क्षेत्र में इसका एक महत्वपूर्ण स्थान है। इसमें सभी व्यावसायिक क्रियाओं को सम्मिलित किया जाता है चाहे वे उत्पादन से पूर्व या उत्पादन के बाद की गयी हों।

उपभोक्ता सन्तुष्टि विचारधारा (Consumer Satisfaction Concept)

आधुनिक विपणन विद्वानों की राय है कि उपभोक्ता सन्तुष्टि विपणन क्रियाओं की आधार–शिला है। अतः उन्होंने परिभाषाएँ इस प्रकार दी हैं– (1) प्रो. मैकार्थी के मत में, "उपभोक्ता माँगों की आवश्यकताओं के अनुरूप उत्पादन योग्यताओं को समायोजित करने की आवश्यकता का व्यापारियों द्वारा दिया जाने वाला उत्तर विपणन कहलाता है।" (2) फिलिप कोटलर के अनुसार, "विपणन मानवीय क्रियाओं का एक समूह है जिसको विनिमयों को सुविधाजनक एवं पूर्ण बनाने की ओर निर्देशित किया जाता है।"[11] (3) प्रो. हेन्सन की राय में, "विपणन उपभोक्ताओं की आवश्यकताओ एवं इच्छाओं की खोज करने एवं उस खोज को वस्तुओं और सेवाओं के विशेष विवरणों में परिणित करने की प्रक्रिया है जिसमें इन वस्तुओं और सेवाओं की माँग उत्पन्न की जाती है और फिर उन माँगों में वद्धि की जाती है।

उपर्युक्त सभी परिभाषाएँ आधुनिक विचारधारा की प्रतीक हैं। इनके अनुसार (1) उत्पादन को ग्राहकों की आवश्यकताओं के अनुरूप किया जाता है। इसका अर्थ यह है कि जिस प्रकार की वस्तु ग्राहक चाहते हैं उसी प्रकार की वस्तु बनाकर उनको दी जाती है जिससे कि उन वस्तुओं का विनिमय सुविधानुसार हो सके; (2) ग्राहकों की आवश्यकताओं एवं इच्छाओं का पता लगाने के लिए अनुसन्धान या खोज की जाती हैं; (3) ग्राहकों के अनुसन्धान से प्राप्त सूचनाओं एवं विवरणों के आधार पर वस्तओं एवं सेवाओं का उत्पादन करके उनके लिए माँग उत्पन्न की जाती है और फिर उनमें वद्धि करने का प्रयत्न किया जाता है।

वास्तव में, उन्नत देशों में पहले यह खोज की जाती है कि ग्राहक किस प्रकार की सेवा या वस्तु चाहते हैं? इसका कारण यह है कि वहाँ प्रति व्यक्ति आय अधिक है। अतः प्रत्येक नागरिक आधुनिक से आधुनिक वस्तुओं को क्रय करके अपनी सन्तुष्टि करना चाहता है। जब ग्राहकों की आवश्यकताओं एवं इच्छाओं का पता लग जाता है तो फिर उसी के अनुरूप उत्पादन करके वस्तु को बेचने के लिए प्रस्तुत किया जाता है तथा विपणन व विक्रय संवर्द्धन साधनों से उसकी माँग बढ़ाने का प्रयत्न किया जाता है।

इस विचारधारा में यह बात छिपी हुई है कि निर्माता द्वारा लाभ उपभोक्ता–सन्तुष्टि के बाद ही प्राप्त किया जा सकता है। यदि किसी प्रकार उपभोक्ता रूष्ट है तो लाभ प्राप्त नहीं किया जा सकता।

---

10 "Marketing is the business process by which products are matched with markets and through which transfers of owenership are effected."

—Cundiff, Still & Govoni: *Basic Marketing,* p. 5.

11 Marketing is the set of human activities directed at facilitating and consumating exchanges."

—Philip Kotler: *Marketing Management,* p. 12.

अन्य विचारधाराएँ (Other Concepts)

विभिन्न दष्टिकोण को लेकर विभिन्न विद्वानों ने विपणन की भिन्न–भिन्न विचारधाराएँ दी हैं। कोई विद्वान तो विपणन को व्यावसायिक दर्शन कहता है तो कोई व्यवसाय के प्रबन्ध का तरीका बताता है। इसी प्रकार एक विद्वान विपणन का कार्य सम्पर्क स्थापना बताता है तो दूसरा विपणन की प्रक्रिया बताता है। हम नीचे कुछ ऐसी ही प्रमुख परिभाषाओं को दे रहे हैंः–

1. एफ. जे. बोर्च के मत में, "विपणन एक आधारभूत व्यावसायिक दर्शन है।"[12]
2. सेण्ट थोमस के अनुसार, "विपणन किसी व्यवसाय के प्रबन्ध करने का तरीका है जिसमें प्रत्येक महत्वपूर्ण व्यवसायिक निर्णय इस पूर्ण जानकारी के साथ लिया जाता है कि इस निर्णय का ग्राहक पर क्या प्रभाव पड़ेगा।"[13]
3. ई. एफ. एल. ब्रेच की राय में, "विपणन किसी वस्तु या सेवा की उपभोक्ता माँग का निर्धारण करके उसमें विक्रय को अभिप्रेरित करने एवं लाभ पर अन्तिम उपभोक्ता को वितरित करने की एक प्रक्रिया है।"[14]
4. पॉल टी. चेरिंगटन के अनुसार, "विपणन का कार्य सम्पर्क स्थापित करना है।"[15]

उपर्युक्त विभिन्न विचारधारा के अध्ययन से हम इस निष्कर्ष पर आते हैं कि विपणन की कोई सर्वमान्य परिभाषा नहीं है तथा संकीर्ण या पुरानी विचारधारा का अब कोई महत्व नहीं है। आजकल तो आधुनिक विचारधारा ही महत्वपूर्ण है। हमारी दष्टि में "विपणन का अर्थ उपभोक्ता की आवश्यकता के अनुरूप उत्पादन करके उत्पादन को उपभोग के लिए समर्पित करना है जिससे कि जनसाधारण के रहन–सहन के स्तर में वद्धि हो सके तथा उपभोक्ता को सन्तुष्टि देते हुए लाभ प्राप्त किये जा सकें।"

विपणन विचार के सम्बन्ध भिन्न–भिन्न विद्वानों ने भिन्न–भिन्न परिभाषाएँ दी हैं। इनमें से कुछ महत्वपूर्ण परिभाषाएँ निम्नलिखित हैं–

1. विलियम जे. स्टाण्टन की राय में, "विपणन एक व्यावसायिक दर्शन है, जो यह बताता है कि ग्राहकों की आवश्यकता–सन्तुष्टि ही किसी कम्पनी के अस्तित्व के लिए आर्थिक एवं सामाजिक औचित्य है। परिणामस्वरूप उत्पादन, इंजीनियरिंग एवं वित्त तथा विपणन सम्बन्धी कम्पनी के सभी क्रियाकलाप सर्वप्रथम इस बात के लिए समर्पित होने चाहिए कि ग्राहकों की आवश्यकताएँ क्या हैं और तत्पश्चात् उचित लाभ कमाते हुए उन आवश्यकताओं की सन्तुष्टि करनी चाहिए।"[16]

   (प्रो. स्टाण्टन की राय में (i) विपणन एक व्यावसायिक दर्शन है। (ii) किसी संस्थान के अस्तित्व को आर्थिक एवं सामाजिक दष्टि से उचित बनाने के लिए ग्राहकों की आवश्यकता–सन्तुष्टि आवश्यक है। (iii) एक संस्थान की सभी क्रियाएँ इस बात का पता लगाने के लिए समर्पित होनी चाहिए कि ग्राहकों की आवश्यकताएँ कौन–कौन सी एवं किस प्रकार की है? (iv) संस्थाओं को उचित लाभ कमाते हुए इन आवश्यकताओं की सन्तुष्टि करनी चाहिए।)
2. ए. फेल्टन के अनुसार, "विपणन विचार एक दर्शन है जो कि व्यवसाय के संचालन में लागू किया जाता है, जिसमें ग्राहक एवं उपभोक्ता की आवश्यकताएँ सर्वाधिक महत्वपूर्ण होती हैं। यह आवश्यकताएँ व्यवसाय के प्रत्येक कार्य तथा समस्त योजना के लिए पथक् नियोजन संचालित करेंगी जिनका लक्ष्य पूर्व–निर्धारित लाभ उद्देश्यों को प्राप्त करना है।" [17]

[12] "Marketing is the fundamental business philosophy." —*F.J. Borch*

[13] Marketing is a way of managing a business so that each critical business decision is made with full knowledge of the impact of that decision on the customer". — *St. Thomas*

[14] "Marketing is the process fo determining consumer demand for a product or service, motivating its sale and distributing it into ultimate consumption of profit." — *E. F. L. Brech*

[15] "The function of marketing is the establishment of contact." — *Paul T. Cherington*

[16] "The marketing concept is a philosophy of business which states that the customer's want satisfaction is the economic and social justifucation of a company's existence. Consequently, all company activities in production, engineering and finance, as well as in marketing, must be devoted to, first, determining what the customer's wants are and thus satisfying their wants while still making a reasonable profit."

— Stanton: *Fundamentals of Marketing* p. 11.

[17] The marketing concept is a philosophy applied to the operation of a business in which customer and consumer needs will be uppermost in importance. These needs will govern the separate planning of each functin of the business, as well as the overall plan aimed at achieving its predetermined profit objectives."

— *A. Felton*

(इस विचार में भी विपणन विचार को एक दर्शन बताया गया है तथा ग्राहकों की आवश्यकताओं को सर्वाधिक महत्व दिया गया है। प्रो. फेल्टन के अनुसार यह आवश्यकताएँ व्यवसाय की समस्त योजनाओं को संचालित करती हैं जिससे कि पूर्व–निर्धारित लाभों को प्राप्त किया जा सकता है।)

3. प्रो. आर्थर पी. फेल्टन के मत में विपणन विचार "कम्पनी मस्तिष्क की ऐसी दशा है जो समस्त विपणन कार्यों के एकीकरण एवं समन्वय पर बल देती है। दीर्घकाल में अधिकतम लाभ कमाने का लक्ष्य प्राप्त करने किए यह कार्य कम्पनी के अन्य सब कार्यों से जुड़े हुए हैं।"[18]

(इस विचार में इस बात पर जोर दिया गया है कि एक कम्पनी के सभी कार्यों में एकीकरण एवं समन्वय होना चाहिए जिससे कि दीर्घकाल में अधिकतम लाभ का लक्ष्य प्राप्त किया जा सके।)

(प्रो. फिलिप कोटलर के अनुसार, "विपणन विचार एकीकृत विपणन द्वारा समर्थित ग्राहक अभिमुखी होता है जिसका लक्ष्य ग्राहक सन्तुष्टि उत्पन्न करना होता है, जिससे कि संगठनात्मक लक्ष्यों की सन्तुष्टि की जा सके।"[19])

(प्रो. स्टाण्टन एवं फेल्टन की भाँति यह विचार भी ग्राहकों की आवश्यकताओं की सन्तुष्टि पर अधिक बल देता है जिससे कि लक्ष्यों को प्राप्त किया जा सके।)

उपर्युक्त सभी परिभाषाओं के अध्ययन करने पर हम इस निष्कर्ष पर आते हैं कि (1) विपणन विचारधारा में ग्राहक व उपभोक्ता प्रधान है। (2) उसकी आवश्यकताओं की सन्तुष्टि परम आवश्यक है। (3) बिना आवश्यकता–सन्तुष्टि के अधिकतम लाभ नहीं कमाया जा सकता है। (4) इसके लिए विपणन में ही नहीं बल्कि व्यवसाय की सभी क्रियाओं में एकीकरण एवं समन्वय होना आवश्यक है।

विपणन विचार एवं विपणन में अन्तर
(Distinction between the Marketing Concept and Marketing)

विद्वानों का मत है कि विपणन विचार एवं विपणन में अन्तर है। प्रो. स्टाण्टन के मत में, "विपणन विचार एक दर्शन है, एक मनःस्थिति या एक व्यवसाय के चिन्तन का तरीका है जबकि विपणन एक प्रक्रिया है या व्यवसाय के कार्य करने का एक तरीका है।"[20]

इस प्रकार विपणन एक ओर एक विचार या दर्शन है जबकि दूसरी ओर उसका व्यावहारिक रूप है। यहाँ व्यावहारिक रूप से अर्थ उसके वास्तविक कार्य से है अर्थात् वस्तुओं का विपणन किस प्रकार किया जाता है।

कुछ विद्वान दर्शन एवं विचार में अन्तर करते हैं और वे इन दोनों को पर्यायवाची नहीं मानते हैं। उनका कहना है कि, "दर्शन एक विस्तत छाता है जो समस्त व्यवसायिक जीवन को संचालित एंव नियन्त्रित करता है जबकि विचार दर्शन रूपी छाते द्वारा निर्धारित वातावरण में कार्य करने का एक मान्य तरीका है।"[21]

विपणन का महत्व
(Importance of Marketing)

पुराने समय में मानवीय आवश्यकताएँ सीमित थीं और मानव आत्म–निर्भर था। वह अपनी आवश्यकता की वस्तुओं को स्वयं बना लिया करता था। लेकिन आज उत्पादन वहत् पैमाने पर किया जाता है जो कि व्यक्तिगत या पारिवारिक उपभोग के लिए

---

[18] "Marketing concept is a corporate state of mind that insists on the integration and co-ordination of all marketing functions which, in turn, are welded with all other corporate functions, for the basic objective of producing maximum long-range corporate profits."
— Arthur P. Felton: quoted from the book, *Fundamental of Marketing,* written by Santon, p. 12.

[19] "The marketing concept is customer-oriented backed by integrated marketing aimed at generating customer satisfaction as the key to satisfying organisational goals" — Philip Kotler: *Marketing Management,* P. 17.

[20] "The marketing concept is a philosophy, an attitude, or a course of business thinking, while marketing is a process or a course of business action." — Stanton : *Fundamentals of Marketing* p. 12.

[21] R. Clifton Anderson & Philip R. Cateora: *Marketing Insights,* p. 12.

न होकर राष्ट्रीय व अन्तर–राष्ट्रीय उपभोग के लिए होता है। इसी का परिणाम है कि विभिन्न प्रकार के मध्यस्थों, परिवहन साधनों, गोदाम सुविधाओं, विक्रय कला, विज्ञापन एवं विक्रय संवर्द्धन आदि पर ध्यान दिया जाने लगा है।

आजकल उपभोक्ता विचार को अधिकाधिक मान्यता मिलती जा रही है जिसके परिणाम–स्वरूप विपणन का महत्व ही नहीं बढ़ रहा बल्कि उसमें क्रान्तिकारी परिवर्तन भी हो रहे हैं।

अतः विपणन का अध्ययन विपणन के लिए ही महत्वपूर्ण नहीं है बल्कि (i) समाज, (ii) निर्माता, (iii) उपभोक्ता, (iv) अर्थव्यवस्था के लिए भी महत्वपूर्ण है।

समाज के लिए विपणन का महत्व (Importance of Marketing to Society)

1. **रोजगार की सुविधा (Facility of employment):** विपणन के द्वारा रोजगार सुविधाएँ प्रदान की जाती हैं तथा जैसे–जैसे विपणन क्रियाओं में वद्धि होती जाती है रोजगार पाने वाले व्यक्तियों की संख्या में भी वद्धि होती जाती है। भारत में 1951 में वितरण क्रियाओं (distribution) में 78 लाख व्यक्ति लगे हुए थे जिनकी संख्या 1991 में बढ़कर लगभग 2.13 करोड़ हो गयी है। ऐसा अनुमान है कि यदि वस्तु के निर्माण में 5 व्यक्ति लगे हैं तो 4 व्यक्ति उसके विपणन में लगे हुए हैं।

2. **रहन-सहन का स्तर प्रदान करना (Delivery of standard of living):** विपणन जनसाधारण को नयी–नयी वस्तुएँ उपलब्ध कर उसके रहन–सहन के स्तर में वद्धि करता है। इसके लिए जनसाधारण को नयी–नयी वस्तुओं की जानकारी देने के लिए विज्ञापन एवं विक्रय संवर्द्धन का सहारा लिया जाता है तथा उनको बताया जाता है कि वस्तु उनके लिए किस प्रकार आवश्यक एवं लाभदायक है। जब अधिकाधिक व्यक्तियों द्वारा उसको क्रय किया जाता है तो उनके रहन सहन में वद्धि होती है।

3. **अर्थव्यवस्था को मन्दी काल से बचाना (Save the economy from depression):** विपणन अर्थव्यवस्था को मन्दी से बचाता है। यदि वस्तुओं का विपणन न हो या कम मात्रा में हो या ग्राहकों द्वारा उनके क्रय न किया जाय तो देश में मन्दी काल आ जायेगा जिसके परिणाम द्रुतगामी होंगे। कारखानों में स्टॉक एकत्रित हो जायेगा, मूल्य गिर जायेंगे, बेरोजगारी फैल जायेगी एवं सरकारी आय कम हो जायेगी। इस प्रकार आधुनिक विपणन ग्राहकों की आवश्यकताओं के अनुसार वस्तु का उत्पादन कर एक देश की अर्थव्यवस्था को इन परिणामों से बचाता है।

4. **राष्ट्रीय आय में वद्धि (Increase in national income):** जब विभिन्न प्रकार के ग्राहकों की आवश्यकताओं के अनुसार वस्तुओं का निर्माण किया जाता है तो देश की कुल वस्तुओं और सेवाओं में वद्धि होती है जिसके परिणामस्वरूप राष्ट्रीय आय में में वद्धि होती है। यदि कम प्रकार की वस्तुओं और सेवाओं को उत्पादित या जाता है तो राष्ट्रीय आय कम ही रहती है।

5. **वितरण लागतों में कमी (Reduction in distribution costs):** एक अच्छी वितरण व्यवस्था वस्तु की वितरण लागतों में कमी करती है जिसके परिणामस्वरूप वस्तु के मूल्यों में कमी कर दी जाती है जिससे समाज लाभान्वित होता है।

यदि निर्माता द्वारा इस लाभ को समाज तक नहीं पहुँचाया जाता है तो भी परोक्ष रूप से समाज लाभान्वित होता है। उदाहरण के लिए, यदि निर्माता इस लाभ को कर्मचारियों पर या उपभोक्ता अनुसन्धान पर या वस्तु अनुसन्धान पर या वस्तु विकास अनुसन्धान पर व्यय करता है तो भी समाज लाभान्वित होता है और उसको इनके लाभ मिल जाते हैं।

निर्माता के लिए विपणन का महत्व (Importance of Marketing to the Manufacturer)

1. **नियोजन एवं निर्णयों में सहायक (Helpful in planning and decisions):** एक निर्माता के लिए विपणन का अध्ययन व्यवसाय सम्बन्धी निर्णय सम्बन्धी नियोजन एवं निर्णय लेने में सहायक होता है आजकल उत्पादन सम्बन्धी निर्णय यह सोचकर नहीं लिया जाता है कि हम कितना उत्पादन कर सकते हैं बल्कि यह सोचकर लिया जाता है कि उपभोक्ता किस प्रकार की वस्तु चाहता है? किस मात्रा में चाहता है? किस मूल्य पर चाहता है। इन्हीं सब बातों के आधार पर ही निर्माता द्वारा निर्णय लिया जाता है कि वह किस वस्तु का एवं किस मात्रा में उत्पादन करे। इसी बात को इस प्रकार भी कह सकते हैं कि उपभोक्ताओं की रूचियों एवं आवश्यकताओं के अनुसार ही व्यवसाय में निर्णय लिये जाते हैं।

2. **आय सज न में सहायक (Helpful in income creation):** विपणन का अध्ययन आय सजन में सहायक होता है। एक व्यवसाय में आय कमाने का उत्तरदायित्व विपणन विभाग का ही होता है। इस विभाग पर ही व्यवसाय के अन्य सभी विभाग निर्भर रहते हैं। यदि विपणन विभाग द्वारा कोई गलत निर्णय ले लिया जाता है तो ऐसा निर्णय पूरे व्यवसाय को प्रभावित करता है।
3. **वितरण में सहायक (Helpful in distribution):** विपणन का अध्ययन एक निर्माता को यह बताता है कि वस्तु कम–से–कम लागत पर तथा अधिक–से–अधिक सुविधाजनक केन्द्रों से उपभोक्ताओं को किस प्रकार प्रदान करनी चाहिए। आज के इस प्रतियोगी युग में वही निर्माता सफल हो सकता है जिसकी विपणन लागत कम–से–कम होती है।
4. **सूचनाओं के आदान-प्रदान में सहायक (Helpful in exchanging information):** विपणन के द्वारा ही विभिन्न प्रकार की बदलती हुई परिस्थितियों की सूचनाएँ विपणन प्रबन्धक के पास पहुँचती है। यदि यह सूचनाएँ न दी जायें तो कोई भी व्यवसाय कुशलतापूर्वक नहीं चल सकता है। आजकल निर्माता एवं उपभोक्ता दोनों एक–दूसरे से हजारों किलोमीटर दूर हैं अतः इन दोनों को मिलाने का कार्य विपणन द्वारा ही किया जाता है।

उपभोक्ताओं के लिए विपणन का महत्व (Importance of Marketing to Consumers)

उपभोक्ताओं के लिए भी विपणन का काफी महत्व है। उपभोक्ता को उस आर्थिक प्रणाली का ज्ञान होना चाहिए जिसका कि वह एक अंग है। जिस प्रकार चुनावों के दौरान एक मतदाता अपने विद्धतापूर्ण निर्णय के लिए बहुत–सी बातों की जानकारी करता है। उसी प्रकार उपभोक्ता को भी वस्तु की खरीद के समय विपणन के बारे में जानकारी होनी चाहिए। विपणन के ज्ञान के कारण ही हम देखते हैं कि भारत के उपभोक्ता सहकारी संस्थानों में बराबर वद्धि हो रही है।

विपणन का महत्व इस दष्टि से भी अधिक है कि उपभोक्ता के द्वारा जो मूल्य दिया जाता है उसका लगभग 60 प्रतिशत ही वस्तु की लागत हैं बाकी 40 प्रतिशत वस्तु में विपणन का व्यय है। यही कारण है कि आज हम भारत में श्रंखलाबद्ध दुकानों में बढ़ोत्तरी पाते हैं। अब उत्पादक अपना सीधा सम्बन्ध उपभोक्ताओं से चाहते हैं। जिससे कि विपणन व्यय में कमी करके वस्तु की लागत कम की जा सके तथा उपभोक्ताओं को वस्तु कम मूल्य पर उपलब्ध कर सकें।

अर्थव्यवस्था में विपणन का महत्व (Importance of Marketing in the Economy)

प्रत्येक देश की अर्थव्यवस्था में विपणन का अपना महत्व होता है। यदि कोई देश अपनी जनता को उचित मूल्य पर उचित क्वालिटि की वस्तु उपलब्ध कराना चाहता है तो वह विभिन्न कानूनों का सहारा लेकर ऐसी व्यवस्था करता है लेकिन ऐसा उसी समय किया जाता है जबकि व्यवसायी सरकार के साथ सहयोग करने की भावना नहीं रखता है।

वे देश जो विकास की ओर बढ़ रहे हैं, जहाँ औद्योगीकरण हो रहा है, जहाँ नगरीकरण (urbanisation) का काम चल रहा है वहाँ विपणन की नयी–नयी समस्याएँ सामने आती हैं और साथ–साथ विपणन का महत्व भी बढ़ता चला जाता है।

विपणन के महत्व को देखते हुए भारत सरकार ने सन् 1935 मे कृषि विपणन सलाहकार नियुक्त किया था। वर्तमान में भारत सरकार के कृषि मन्त्रालय में एक विपणन एवं निरीक्षण निदेशालय है जिसका प्रमुख अधिकारी कृषि विपणन सलाहकार हैं राज्यों में भी इसी प्रकार के विपणन विभाग पाये जाते हैं। इस विभाग के अधिकारी समय–समय पर बाजारों का सर्वेक्षण करते हैं, आँकड़े एकत्रित करते हैं व बाजार की बुराईयों को किस प्रकार दूर किया जा सकता है इस सम्बनध में सरकार को सुझााव देते हैं। सरकार इन सुझावों के आधार पर भिन्न–भिन्न प्रकार के कानून बनाकर विपणन में सहयोग करती है।

प्रबन्ध के दर्शन के रूप में विपणन
(Marketing as a Philosophy of Management)
अथवा
आधुनिक विपणन विचारधारा के आधार स्तम्भ
(Pillars of the Modern Marketing Concept)

विपणन की नवीन विचारधारा[22] को प्रबन्ध के दर्शन के रूप में विपणन भी कहते हैं। कुछ विद्वान इसी को विपणन प्रबन्ध

---

[22] "The marketing concept is a customer orientation backed by integrated marketing aimed at generating customer satisfaction as the key to satisfying organizational goals." — Philip Kotler: *Marketing Management,* p, 81.

विचारधारा कहते हैं। विचारधारा के चार स्तम्भ माने जाते हैं:–

(1) उपभोक्ता–अभिमुखी, (2) विपणन एकीकरण, (3), उपभोक्ता सन्तुष्टि, (4) उपभोक्ता कल्याण

उपभोक्ता-अभिमुखी (Consumer-orientation)

नवीन या आधुनिक विपणन विचारधारा या विपणन प्रबन्ध विचारधारा का मुख्य आधार उपभोक्ता है जिसके चारों ओर समस्त व्यावसायिक क्रियाएँ चक्कर काटती हैं। इसमें उपभोक्ता को Boss माना जाता है, निर्माता को नहीं। इसलिए व्यवसाय के संगठन में उपभोक्ता सबसे ऊपर होता है जिसके परिणामस्वरूप उपभोक्ताओं की आवश्यकताओं पर बहुत अधिक ही ध्यान रखा जाता है और उपभोक्ता की दष्टि से निर्माता की ओर देखा जाता है। इसका स्पष्ट अर्थ यह है कि उपभोक्ता जिन वस्तुओं और जिस आकार–प्रकार, रंग, डिजाइन, आदि की वस्तुएँ चाहता है उसी का निर्माण निर्माता द्वारा किया जाता है और यदि उपभोक्ता की इच्छा, स्वभाव, आयु आदि बदल जाती है तो उत्पादन–क्रम को भी उसी अनुसार बदल दिया जाता है जिससे कि वह उपभोक्ता की आवश्यकताओं की पूर्ति कर सके।

इस कार्य के लिए निर्माता को उपभोक्ता की उन आवश्यकताओं की परिभाषा निश्चित करनी पड़ती है जिनकी वह पूर्ति करना चाहता है। यह आवश्यक नहीं है कि इस कार्य के लिए उपभोक्ता की एक ही आवश्यकता को लिया जाय। उपभोक्ता की कई आवश्यकताएँ भी निर्माता के द्वारा ली जा सकती हैं। इन आवश्यकताओं का पता लगाने के लिए निर्माता द्वारा उपभोक्ता अनुसन्धान पर भारी व्यय किया जाता है। यह उपभोक्ता अनुसन्धान बराबर चलाये रखना पड़ता है जिससे कि उपभोक्ता की बदलती हुई आवश्यकताओं के अनुरूप उत्पादन को समायोजित किया जा सके।

एक साथ सभी बाजारों में पहुँचना और लगातार सेवा करते रहना किसी भी निर्माता के बस में नहीं हैं अतः कुछ बाजारों को चुनकर ही उनमें अपनी क्रियाओं का विस्तार किया जाता है।

उपभोक्ता कई प्रकार के होते हैं इसलिए नवीन विपणन विचारधारा में विभेदात्मक वस्तुओं के सिद्धान्त पर चला जाता है। इसका अर्थ यह है कि विभिन्न उपभोक्ताओं की दष्टि से एक ही प्रकार की वस्तुओं मे कुछ परिवर्तन कर दिये जाते हैं जो उनके आकार, रंग, डिजाइन आदि से सम्बन्धित होते हैं जिससे कि उनकी आवश्यकताओं की पूर्ति हो सके। भारत में हिन्दुस्तान लीवर लिमिटेड नामक संस्था साबुन व अपने अन्य उत्पादनों के सम्बन्ध में यही नीति अपनाती है। इस कम्पनी के नहाने के साबुन कई नामों से बेचे जाते हैं। जैसे, लाइफबॉय, रेक्सोना, लिरिल, पीयर्स, लक्स आदि।

उपभोक्ता–अभिमुखी विचारधारा के क्रियान्वयन के सम्बन्ध में प्रो. फिलिप कोटलर ने अपनी पुस्तक "Marketing Management" में यह बताया है कि एक निर्माता को निम्न चार कदम उठाने चाहिए–

1. **आवश्यकता की परिभाषा (Need Definition):** सबसे पहले निर्माता को यह परिभाषित करना होगा कि वह किन आधारभूत आवश्यकताओं की पूर्ति करना चाहता है; जैसे, साबुन निर्माता सफाई की आवश्यकताओं की पूर्ति करते हैं, गैस निर्माता शक्ति की आवश्यकता पूर्ति करते हैं, कपड़े के निर्माता मानव के अंगों के ढकनी की आवश्यकता पूर्ति करते हैं आदि।

2. **लक्ष्य-समूहों की परिभाषा (Target-groups definition):** कोई भी निर्माता एक साथ सभी प्रकार की आवश्यकताओं की पूर्ति नहीं कर सकता है और न सभी स्थानों पर एक साथ की सेवा जा सकती है। अतः एक निर्माता को अपने लक्ष्य–समूहों को परिभाषित करना होगा जिन पर वह पहुँचना चाहता है। इसके लिए बाजार को खण्डों में विभाजित करना होगा। उदाहरण के लिए, कागज निर्माता को यह तय करना होगा कि वह अखबारों की आवश्यकता को पूरा करेगा या विद्यार्थियों की आवश्यकता को।

3. **विभेदात्मक वस्तुएँ (Differentiated Products):** वस्तुओं के ग्राहक एक से नहीं होते हैं अतः एक निर्माता को विभिन्न समूहों पर पहुँचने के लिए विभेदात्मक वस्तु नीति को अपनाना पड़ता है। जिनके अनुसार यद्यपि वस्तु एक ही होती है लेकिन उसमें रंग, रूप, डिजाइन, मूल्य आदि के आधार पर भिन्नता उत्पन्न कर दी जाती है जिससे कि विभिन्न प्रकार के ग्राहकों की आवश्यकताओं की पूर्ति की जा सके।

4. **उपभोक्ता अनुसन्धान (Consumer Research):** इस विचारधारा में उपभोक्ता अनुसन्धान पर भारी व्यय किया जाता है जिससे कि उपभोक्ता की आवश्यकता का पता लगाया जा सके। वास्तव में, यह अनुसन्धान बराबर चलता रहा है। इसका मुख्य कारण यह है कि उपभोक्ता की बदलती हुई आवश्यकताओं एवं रूचियों का पता एक र्निमाता को अवश्य ही रहना चाहिए जिससे की उत्पादन को उसी प्रकार परिवर्तित किया जा सके।

विपणन एकीकरण
(Integration of Marketing)

आधुनिक विचारधारा का यह दूसरा स्तम्भ है। पुरानी विचारधारा में एक निर्माता के विभिन्न विभागों जैसे, उत्पादन, वित्त, कर्मचारी, वस्तु नियोजन व विक्रय आदि अलग–अलग समझे जाते थे और उनके अलग–अलग प्रबन्धक होते थे जो अपने–अपने क्षेत्र में कार्य करने को स्वतन्त्र थे। विक्रय प्रबन्धक का कार्य वस्तुओं का विक्रय करना था। लेकिन आधुनिक विचारधारा में इन सभी विभागों मे समन्वय ही नहीं होना चाहिए बल्कि यह सब एक कुशल अधिकारी के अन्तर्गत कार्यरत होने चाहिए। इस अधिकारी को विपणन प्रबन्धक या विपणन संचालक या अन्य इसी प्रकार के नाम से पुकार सकते हैं।

विपणन के एकीकरण में एक दूसरी बात और आती है कि वस्तु, भौतिक वितरण, मूल्य व संवर्द्धन में भी समन्वय होना चाहिए। इसलिए कुछ संस्थाएँ अपने यहाँ वस्तु प्रबन्धक के नये पदों का सजन करती हैं जिनका कार्य वस्तु से सम्बन्धित सभी कार्यों का नियोजन एवं एकीकरण करना होता है।

उपभोक्ता सन्तुष्टि
(Consumer Satisfaction)

आधुनिक विचाराधारा की तीसरा स्तम्भ उपभोक्ता सन्तुष्टि है। उपभोक्ता व्यावसायिक क्रियाओं में सबसे ऊपर रहता है और उनको सन्तुष्ट बनाये रखने से व्यवसाय की दीर्घकालीन ख्याति बनती है जो उपभोक्ता को पुनः क्रय करने के लिए विवश करती है। इसके लिए व्यवसायी को कुछ सिद्धान्तों के मानना पड़ता है; जैसे, "उपभोक्ता सदा ही सही है।" आजकल के प्रतियोगी उपभोक्ता बाजार में जब तक उपभोक्ता की सन्तुष्टि नहीं होगी तब तक उचित लाभ कमाना कठिन होगा। इसका कारण यह है कि उपभोक्ता को सार्वभौम माना जाता है। अतः विपणन की आधुनिक विचारधारा में उपभोक्ता सन्तुष्टि करके ही लाभ कमाया जाना चाहिए।

अमरीका की मार्शल फील्ड एण्ड कम्पनी नामक संस्था (जो कि अमरीका में विभागीय भण्डार के लिए प्रसिद्ध हैं) ने अपने कर्मचारियों की नियम–पुस्तिका में निम्नलिखित बातों का उल्लेख किया है जो उपभोक्ता सन्तुष्टि की ओर ध्यान दिलाती है–

1. "हम विक्रय करने की अपेक्षा ग्राहक को खुश रखने में अधिक रूचि रखते हैं।"[1]
2. "प्रत्येक व्यापारिक वस्तु या सेवा को ग्राहकों को सन्तुष्ट करने के लिए विनम्रता के साथ वापस ले लिया जायेगा, उसकों बदल दिया जायेगा तथा उसका समायोजन कर दिया जायेगा।"
3. "हम प्रत्येक ग्राहक को पूर्ण सन्तोषप्रद सेवा देने के लिए सचेष्ट है।"

उपभोक्ता कल्याण
(Consumer Welfare)

आधुनिक विचारधारा का यह सबसे नवीनतम स्तम्भ है। इसके अनुसार उपभोक्ता की सन्तुष्टि और कम्पनी के विपणन कार्यों में समन्वय ही आवश्यक नहीं है बल्कि यह भी आवश्यक है कि दीर्घकाल में उपभोक्ता के कल्याण का भी ध्यान रखा जाय जिससे कि सामाजिक कल्याण हो सके। आज के युग में विपणन को समाज कल्याण से अलग नहीं किया जा सकता है। प्रत्येक निर्माता का यह कर्तव्य है कि समाज कल्याण को ध्यान में रखे। यदि ऐसा नहीं किया गया तो सरकारी हस्तक्षेप अवश्यम्भावी हो जायेगा जिसका उस पर बुरा प्रभाव पड़ेगा। अतः सामाजिक दष्टिकोण को ध्यान में रखकर ही विपणन क्रियाएँ की जानी चाहिए।

---

[23] Philip Kotler : *Management,* p. 12

अध्याय-3
विपणन मिश्रण
(Marketing Mix)

विपणन-मिश्रण की विचारधारा
(Concept of Marketing Mix)

प्रत्येक निर्माता का उद्देश्य लाभ प्राप्त करना होता है। यह लाभ उसे उपभोक्ताओं से प्राप्त होगा और उपभोक्ता से यह लाभ तब प्राप्त होगा जब उत्पादक उपभोक्ताओं की पसंद के अनुसार वस्तु का उत्पादन करके उनको अधिकतम संतुष्टि उपलब्ध कराता है। उपभोक्ता बाजार का राजा है (Consumer is the king of Market) अतः निर्माता उन्हीं वस्तुओं का निर्माण करता है जो उपभोक्ता खरीदता है। उपभोक्ता द्वारा की जानी वाली पसंद, उसके द्वारा व्यय करने का ढंग, किसी वस्तु को उत्पादन एवं स्वरूप को निर्धारित करता है। इस प्रकार किस वस्तु का उत्पादन एक उत्पादक द्वारा किया जाए इसका निर्धारण उपभोक्ता द्वारा किया जाता है। उपभोक्ता वस्तु की खरीदने का निर्णय विभिन्न आधारों पर करता है जैसे वस्तु की कीमत, वस्तु की किस्म, वस्तु के सम्बंध में विक्रय स्वर्द्धन, ब्रांडिंग तथा पैकेजिंग आदि। निर्माता की अत्यधिक लाभ कमाने के लिए बाजार पर प्रभावपूर्ण ढंग से नियन्त्रण करना होगा। यह तभी सम्भव है जब निर्माता को ऐसे समस्त विपणन निर्णय की जानकारी हो जिससे विक्रय में वद्धि हो सकती है। विपणन मिश्रण के माध्यम से व्यवसायी यह सब कुछ जान सकता है।

बाजार की सफलतापूर्वक विक्रय करने के लिए एक कम्पनी विपणन मिश्रण के निर्माण की नीति अपनाती है। वह उत्तम सम्भावित परिणाम के लिए विभिन्न विपणन के तत्वों के उपयोग का संयोग (combination) है, विक्रेता के लिए विपणन का उद्देश्य विभिन्न विक्रय के उत्पादन के तत्वों को इस प्रकार संयोग करने से जिसमें वह उस लागत पर उस मात्रा तक आवश्यक विक्रय कर सके जिससे वह उसका वांछनीय लाभ प्राप्त कर सके। ये विक्रय उत्पन्न करने वाले तत्व विपणन मिश्रण को इंगित करते हैं और इसके अन्तर्गत निम्न तत्व हैं–

1. विपणन अनुसंधान (Marketing Research)
2. उत्पाद, ब्रांड, सवेस्टन आदि (Product, Brand, Label, etc.)
3. कीमत (Price)
4. वितरण के माध्यम (Price)
5. विक्रय संवर्द्धन (Sales Promotion)
6. अविपणन (Demarketing)
7. विक्रय के बाद की सेवाए (After Sales Services)

विक्रेता के लिए यह समस्या है कि विपणन मोर्चाबन्दी के लिए इन विभिन्न तत्वों का किस प्रकार एकीकरण करें। प्रत्येक संस्था उपर्युक्त घटकों का सम्मिश्रण इस प्रकार करती है कि किसी एक निश्चित समय व स्थिति में उस व्यवस्था से सबसे अधिक लाभ कमाया जा सके। विपणन मिश्रण के सम्बन्ध में कुछ विद्वानों ने निम्न परिभाषा दी हैः–

1. डा० आर० एस डाबर के अनुसार, ''निर्माता के द्वारा बाजार में सफलता प्राप्त करने के लिए प्रयोग की जाने वाली नीतियाँ विपणन मिश्रण का निर्माण करती है''
2. कीली एवं लेजर के अनुसार ''विपणन मिश्रण उस बड़ी बैटरी की यूक्ति से बना है जिसका ग्राहकों को किसी विशेष वस्तु को क्रय करने के लिए प्रेरित करने के उद्देश्य से काम में लाया जा सकता है।''

3. फिलिप कोटलर के अनुसार, "एक फर्म का उद्देश्य अपनी विपणन चलों के लिए सर्वोत्तम विन्यास को खोजना है यह विन्यास विपणन मिश्रण कहलाता है।

उपरोक्त अर्थ तथा परिभाषाओं के आधार पर यह कहा जा सकता है कि विक्रय में सफलता प्राप्त करने के उद्देश्य से उत्पादक/विक्रेता विभिन्न नीतियों का विश्रण (Mix) करता है। यह विपणन मिश्रण (Marketing Mix) कहलाता है।

विपणन मिश्रण के तत्व

(Elements of Marketing Mix)

विपणन मिश्रण जिन तत्वों का मिश्रण है उनकी एक लम्बी सूची विकसित हो चुकी है। प्रो० फ्रे (Prof. Frey) ने इन तत्वों को दो श्रेणियों में विभक्त किया हैः (1) पहली श्रेणी में उन तत्वों को सम्मिलित किया है जो बाजार में प्रस्तुत की जाने वाली वस्तुओं से सम्बन्ध रखते हैं। इनमें उत्पाद, पैकेज, ब्रांड, कीमत एवं सेवा सम्मलित है। (2) इसमें उन चलों को सम्मलित किया है जो विधियों तथा उपकरणों से सम्बन्ध रखते हैं। इनमें वितरण, वाहिकाएँ, व्यक्तिगत विक्रय, विज्ञापन, विक्रय संवर्द्धन सम्मिलित हैं।

लेजर एवं केली ने विपणन समिश्रण के तत्वों को तीन श्रेणियों में विभक्त किया है– (1) उत्पाद एवं सेवा समिश्रण, (2) वितरण समिश्रणी एवं (3) संचार समिश्र। लेकिन मैकार्थी ने चार 'पी' (Four 'P') का वर्गीकरण देते हुए विपणन मिश्रण के तत्वों में निम्न को सम्मलित किया है

1. उत्पाद (Product)
2. स्थान (Place)
3. संवर्द्धन (Promotion)
4. कीमत (Price)

मेकार्थी का विचार है कि क्रेता उत्पाद, स्थान, संवर्द्धन एवं कीमत से सम्बंध चलों से प्रभावित होते हैं। लिपसन एवं डार्लिंग ने विपणन मिश्रण को निम्न चार तत्वों का मिश्रण माना है।

1. उत्पाद (Product)
1. विक्रय शर्ते (Sales Conditions)
3. वितरण (Distribution)
4. संचार (Communication)

इस प्रकार विपणन मिश्रण के बहुत से तत्व हैं। सामान्य रूप से विपणन तत्वों में निम्नलिखित तत्वों को शामिल किया जाता है–

1. **उत्पाद (Product) –** उत्पाद नियोजन, उत्पाद की किस्म, रंग–रूप, ब्राण्ड, पैकेजिंग, आश्वासन, सेवा का स्तर तथा प्रमापीकरण को उत्पाद के अन्तर्गत शामिल किया जाता है।

   (i) **उत्पाद नियोजन (Product Planning) –** वस्तु नियोजन वस्तु प्रबन्ध का वह भाग है जो वस्तु विकास की संभावनाओं का निर्धारण करता है और किन–किन वस्तुओं का विपणन एवं उनका परित्याग करना है निश्चित करता है अर्थात उत्पादन पंक्ति (Product line) का चयन करना तथा उत्पादन पंक्ति में उत्पादों को जोड़ना या घटाना शामिल है।

   (ii) **ब्रांडिंग (Branding) –** ब्राण्ड एक वस्तु का नाम, प्रतीक, पद या डिजायन अथवा इनका समिश्रण है जिसके द्वारा निर्माता के उत्पादों या सेवाओं की पहचान (Identification) की जाती है तथा उन्हें प्रतियोगी फर्मों से अलग किया जाता है। ब्राण्ड का उद्देश्य वस्तु की पहचान चिन्ह (Marks) निश्चित करना होता है जिसके आधार पर ग्राहक वस्तु की मांग कर सके। जैसे कलकत्ता की चाय पर ताजमहल का चित्र ब्रांड का उदाहरण है।

   (iii) **पैकेजिंग (Packaging) –** उत्पाद की रक्षा तो करता ही है, साथ ही विक्रय में वद्धि करता है। समजातीय

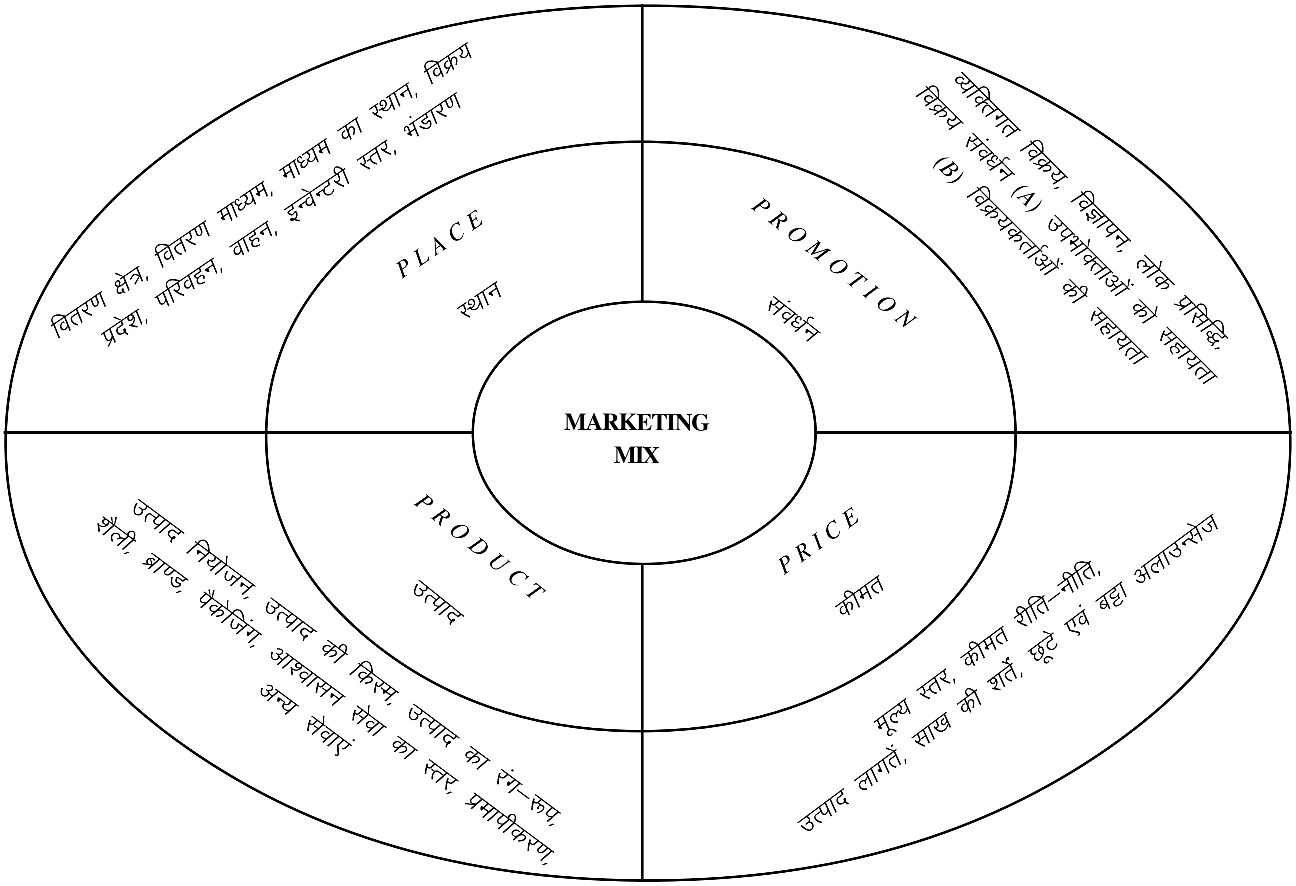

(Homogeneous) उत्पादों की प्रतियोगिता का सामना करने में पैकेजिंग परिवर्तन सहायक है। जैसे–हिन्दुस्तान लीवर कम्पनी ने 'लक्स' (Lux) और 'लाइफबॉय' (Lifebuye) नहाने के साबुनों के पैकेजिंग में परिवर्तन करके प्रतिस्पर्धा फार्मों का सामना किया।

(iv) **वस्तु का डिजाइन एवं आकार (Design & Size of the Product) –** उत्पाद के क्षेत्र में वस्तु का डिजाइन एवं आकार भी शामिल है। यहां डिजाइन का अर्थ वस्तु की शक्ल, ढांचा, रंग–रूप, गन्ध आदि से है। आकार का अर्थ वस्तु की आकृति से है। यह आकृति कई प्रकार की हो सकती है। जैसे–छोटी, बड़ी तथा मध्यम आदि।

2. **स्थान (Place) –** स्थान के अन्तर्गत उचित उत्पाद को, उचित बाजार में प्रस्तुत करने की समस्या शामिल की जाती है। इसके क्षेत्र में वितरण क्षेत्र, वितरण माध्यम, माध्यम का स्थान, विक्रय प्रदेश, परिवहन, वाहक, इन्वेटरी स्तर तथा भंडारण आदि को शामिल किया जाता है। ये उपकार्य समय, स्थान तथा स्वामित्व उपयोगिता (Utility) प्रदान करते हैं। वितरण चैनल (Distribution Channel) निर्माता से उपभोक्ता तक प्रत्यक्ष, (Direct) हो सकता है, अथवा अप्रत्यक्ष अर्थात् निर्माता और उपभोक्ता के बीच कुछ मध्यस्थ हो सकते हैं–जैसे थोक व्यापारी, फुटकर व्यापारी आदि। अप्रत्यक्ष अर्थात् भारी मशीनों और पूंजीगत वस्तुओं के वितरण में प्रत्यक्ष विपणन (Direct Marketing) होता है। इसमें मध्यस्थ नहीं होते इसके विपरीत उपभोक्ता वस्तुओं जैसे–श्रंगार सामग्री और वस्त्रों के वितरण में मध्यस्थों का उपयोग किया जाता है। अर्थात अप्रत्यक्ष विपणन (Indirect Marketing) का इस्तेमाल किया जाता है।

3. **संवर्द्धन (Promotion) –** विक्रय अभिमुखीकरण विचारधारा के अनुसार उपभोक्ता स्वयं कोई वस्तु इच्छानुसार (Voluntarily) नहीं खरीदता जब तक की विक्रेता के द्वारा वस्तु के बेचने के प्रत्यन्त न किए जाएं। इसके साथ–साथ निर्माता द्वारा निर्मित उत्पाद अच्छी किस्म का होने पर भी उसका विक्रय नहीं किया जा सकता जब तक कि उसका संवर्द्धन न किया जाए। बिक्री में वद्धि के लिए संवर्द्धन (Promotion) का सहारा लिया जाता है। विज्ञापन (Advertisement), व्यक्तिगत विक्रय (Personal Selling) और प्रचार (Publicity) के माध्यम से संवर्द्धन (Promotion) संभव है।

(i) **विज्ञापन (Advertisement) –** वस्तु विशेष के बारे में जानकारी देना विज्ञापन कहलाता है। उपरोक्त परिभाषाओं के आधार पर यह कहा जा सकता है कि विज्ञापन एक ऐसी अवैयक्तिक विक्रय कला है जिसमें एक निश्चित प्रयोजक (Identified) के द्वारा उत्पादों, सेवाओं तथा विचारों की सूचना दी जाती है। इन सेवाओं के लिए भुगतान भी किया जाता है।

(ii) **व्यक्तिगत विक्रय (Personal Selling) –** यह विक्रय की वह विधि है जिसमें क्रेता–विक्रेता प्रत्यक्ष रूप से आमने–सामने होते हैं और उनके बीच किसी प्रकार की भौगोलिक दूरी नहीं होती है। विक्रेता अपनी वस्तु को क्रेता के समक्ष प्रस्तुत करता है और क्रेता को पूर्ण संतुष्ट करते हुए बेचने का प्रयास करता है।

4. **कीमत (Price) –** विपणन निर्णयों में मूल्य का महत्वपूर्ण स्थान होता है। प्रत्येक व्यावसायिक उपक्रम का मुख्य उद्देश्य लाभों को अधिकतम (Maximisation of Profit) करना है। इस उद्देश्य की प्राप्ति तभी संभव है जबकि उत्पादों की कीमत उनकी लागत से अधिक हो। उत्पाद की कीमत उपक्रम की बिक्री, लाभों की मात्रा, उत्पाद नियोजन, वितरण, विज्ञापन तथा विक्रय संवर्द्धन कार्यक्रमों (Promotion Programmes) पर महत्वपूर्ण प्रभाव डालती है।

अतः मूल्यों का निर्धारण इस प्रकार किया जाना चाहिए कि मूल्य उपभोक्ता को अधिक प्रतीत न हो, संस्था प्रतियोगिता में टिक कर उचित लाभ प्राप्त कर सके तथा सरकारी नियंत्रणों से भी अपने आप को बचा सके।

अध्याय-4
विपणन पर्यावरण
(Marketing Environment)

आज के इस प्रतिस्पर्धात्मक युग में प्रतिपल बदलते पर्यावरण में व्यवसाय करना आसान कार्य नहीं है। सफलता के चरमोत्कर्ष पर पहुंचने के लिए यह आवश्यक है कि विपणनकर्ता व्यावसायिक पर्यावरण के समानान्तर ही अपनी क्रियाओं का संचालन करें। अतः एक विपणनकर्ता के लिए विपणन पर्यावरण का अध्ययन उसका विश्लेषण करना अत्यन्त आवश्यक है। पर्यावरण अध्ययन के कुछ महत्वपूर्ण उद्देश्य निम्न हो सकते हैं:–

1. व्यवसाय के सफल संचालन हेतु पर्यावरण स्थिति का ज्ञान करना।
2. पर्यावरण में स्थित अवसरों की खोज करना ताकि नयी साहसिक क्रियाओं के विकास के क्षेत्रों का पता लगाया जा सके।
3. पर्यावरण की परिवर्तनशीलता के बारे में ज्ञानार्जन करना ताकि पर्यावरण द्वारा उपस्थित किये जाने वाले प्रतिरोधों एवं चुनौतियों का मुकाबला किया जा सके।
4. उपक्रम को नियंत्रित करने वाली पर्यावरणीय प्रकृति एवं विशेषताओं का अध्ययन किया जा सके ताकि विपणन को अधिकृत दशाओं के साथ समायोजित किया जा सके। तथा बाद में पर्यावरण को व्यवसाय के समधर्मी बनाने हेतु प्रभाव डाला जा सके।

मानव एवं उसकी क्रियाएं पर्यावरण से कितनी प्रभावित होती हैं, इसका महत्व आज के युग में जितना अनुभव किया जा रहा है, उतना पहले कभी नहीं किया गया। क्योंकि आज यह बात पूर्णतया प्रभावकारी हो गयी है कि पर्यावरण का समस्त जीवाणुओं एवं उसकी क्रियाओं पर अत्यधिक प्रभाव पड़ता है। अब प्रश्न यह उठता है कि पर्यावरण है क्या? इसका मानव जीवन एवं उसके द्वारा सम्पादित की जाने वाली विभिन्न आर्थिक एवं अनार्थिक क्रियाओं से क्या संबंध है?

पर्यावरण का सही अध्ययन एवं अर्थ समझने के लिए हमें (Ecology) को समझना होगा। इकोलेजी वह विज्ञान है जो जीवाणु एवं पर्यावरण के अन्तःकरण का अध्ययन एवं विश्लेषण करता है।

पर्यावरण एवं जीवाणुओं के आपसी संबंधों के अध्ययन के कुछ प्रमुख उदाहरण हैं–ध्रुवीय प्रदेश के भालू, मछली, काई, बैक्टीरिया इत्यादि। वर्षाकाल में हम देखते हैं कि आसपास के गड्ढों पानी इकट्ठा हो जाता है वहां काई फलने–फूलने लगती है और बढ़ने लगती है, लेकिन ज्यों–ज्यों पानी कम होने लगता है या सूखने लगता है तो यह भी कम होती चली जाती है और अन्ततः सूख कर समाप्त हो जाती है। अर्थात् कहने का तात्पर्य यह है कि इसका जीवन पूर्णतः पानी के जमाव और इसके बने रहने पर निर्भर करता है। यह स्थिति सम्पूर्ण जगत पर अक्षरशः लागू होती है। संसार के समस्त प्राणी पर्यावरण की अनुकूलता से पल्लवित पुष्पित एवं विकसित होते हैं तथा पर्यावरण के प्रतिकूल होने पर कम हो जाते हैं या प्रायः नष्ट हो जाते हैं।

निष्कर्ष रूप में हम यह कह सकते हैं कि जीवाणु का उद्गम विकास एवं नाश का पर्यावरण से घनिष्ठ संबंध है। मनुष्य की समस्त क्रियाएं जिसमें जीवन साधन भी सम्मिलित हैं एक निश्चित पर्यावरण में ही करनी पड़ती है। इसलिए यह नितान्त आवश्यक हो जाता है कि क्रियाओं एवं पर्यावरण के आपसी संबंधों को समझा जाए एवं इनका विस्तत विश्लेषण किया जाए।

पर्यावरण का अर्थ एवं परिभाषा
(Meaning & Definition of Environment)

''पर्यावरण के अन्तर्गत उन समस्त शक्तियों व तत्वों को सम्मिलित किया जाता है जो क्रियाओं को प्रभावित करती है या प्रभाव डाल सकती है।''

(Environment comprises all forces and entities which influence or have the potentiality to influence activities)

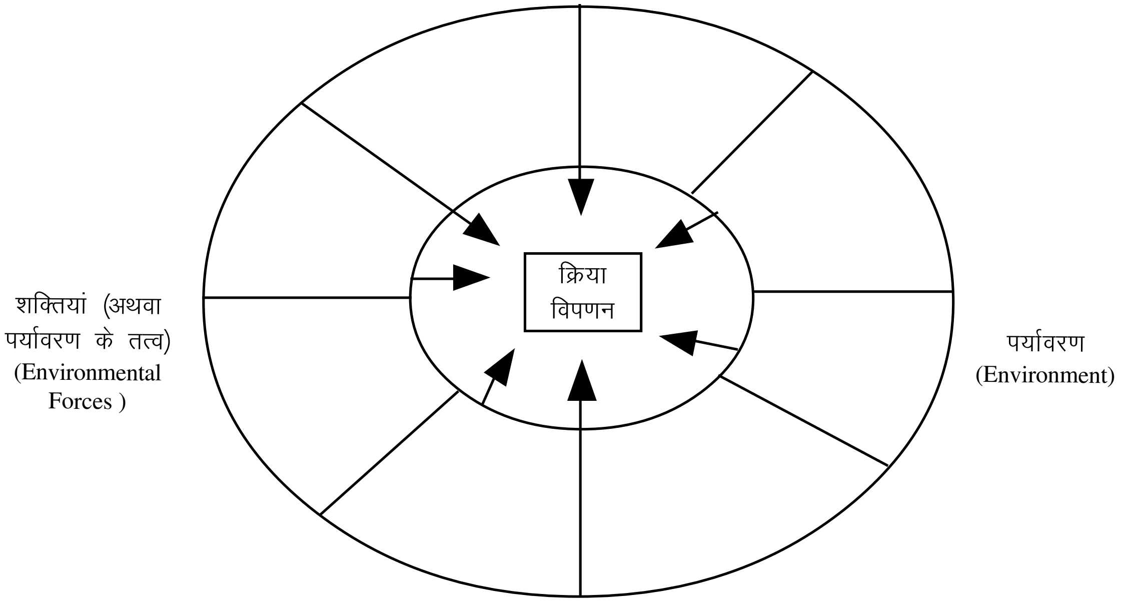

चित्र 4.1: पर्यावरण के तत्व (Environmental Forces)

क्रिया की सफलता या विफलता, तीव्रता या शिथिलता इन शक्तियों की प्रकृति एवं विशेषताओं पर निर्भर करती है।

बहुत से विद्वान पर्यावरण में केवल बाह्य शक्तियों को ही सम्मिलित करते हैं। अर्थात् पर्यावरण की परिभाषा वह निम्न प्रकार से देते हैं:

''पर्यावरण उन बाह्य शक्तियों व तत्वों को कहते हैं जो किसी संस्था की क्रियाओं को प्रभावित करते हैं, अथवा प्रभावित करने की क्षमता रखते हैं।''

यह परिभाषा पर्यावरण की पूर्ण परिभाषा नहीं कही जा सकती क्योंकि समाज के प्रत्येक संगठन एवं संस्था की आन्तरिक शक्तियां व तत्व भी होते हैं और ये आन्तरिक तत्व एवं शक्तियां भी उसकी क्रियाओं को प्रभावित करते हैं।

विपणन पर्यावरण
(Marketing Environment)

विपणन पर्यावरण के अन्तर्गत वह समस्त शक्तियां एवं तत्व सम्मिलित किये जाते हैं जो किसी संस्था की विपणन क्रियाओं को प्रभावित करते हैं, अथवा प्रभावित करने की क्षमता रखते हैं।

(Marketing environment comprises all forces and entities which influence or have the potentiality to influence the marketing activities of a company)

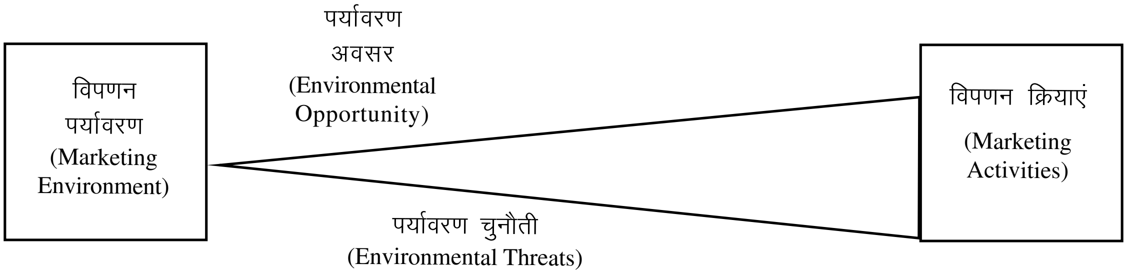

चित्र 4.2: पर्यावरण का प्रभाव (Effect of Environment)

पर्यावरण का प्रभाव
(Effect of Environment)

विपणन पर्यावरण विपणन क्रियाओं को मुख्यतया दो प्रकार से प्रभावित करता है। प्रथम, अनुकूल रूप में अर्थात् अच्छा प्रभाव और दूसरे प्रतिकूल रूप में अर्थात् बुरा प्रभाव। यदि पर्यावरण की शक्तियां एवं तत्व क्रियाओं के पक्ष में है तो उन क्रियाओं पर अच्छा अर्थात धनात्मक प्रभाव पड़ेगा और यदि पर्यावरण की शक्तियां व तत्व क्रियाओं के विरोध में है तो क्रियाओं पर बुरा अर्थात् ऋणात्मक प्रभाव पड़ेगा।

पर्यावरणीय चुनौती
(Environmental Threat)

''पर्यावरण चुनौती एक ऐसी विपरीत प्रकृति अथवा, विशिष्ट उथल–पुथल है जो कि उद्देश्यपूर्ण विपणन कदम के अभाव में, कंपनी के उत्पाद ब्राण्ड अथवा कंपनी की सम्पूर्ण स्थिति को नुकसान पहुंचा सकती है।''

(Environmental threat is a challenge posed by unfavourable trend or specific disturbance in the environment that would lead in the absence of purposeful marketing action, to the stagnation or demise of a company, product or brand).

समय–समय पर पर्यावरण में ऐसे परिवर्तन होते रहते हैं जो किसी कंपनी के विपणन कार्य में अवरोध उत्पन्न करते हें जैसे कच्चा माल मिलना बंद हो जाए, सरकारी नीति में ऐसा परिवर्तन किया जाए कि कंपनी का उत्पाद कई क्षेत्रों में बेचे न जा सकें, कर बढ़ा दिये जाएं, प्रतिस्पर्धी कंपनी अच्छी किस्म का उत्पाद बाजार में प्रस्तुत करे, कंपनी के उत्पाद का फैशन खत्म हो जाए आदि, पर्यावरण में होने वाला कोई भी ऐसा परिवर्तन जो कंपनी विपणन कार्य में अवरोध उत्पन्न पर्यावरणीय चुनौती कहलायेगा। यदि विपणन प्रबंधक ऐसी चुनौतियों का मुकाबला करने के लिए समय रहते उचित कदम न उठायें तो कंपनी को काफी क्षति हो सकती है। तथा अंततः व्यवसाय बंद भी करना पड़ सकता है। भारत में विभिन्न उद्योगों के समक्ष पर्यावरणीय चुनौती के कुछ प्रमुख उदाहरण निम्न सारणी में दिये गये हैं:

सारणी-4.1

पर्यावरणीय चुनौतियां-भारतीय उदाहरण

(Environmental Threats - Indian Examples)

पर्यावरण चुनौती का सामना करने वाले उद्योग/उत्पाद (Environmental Threat to Industry/Product)	चुनौती किससे है। (From)
1. तांगा, बैलगाड़ी, साइकिल, रिक्शा, हाथ का रिक्शा।	ऑटोरिक्शा, ट्रक तथा अन्य मशीन से चलने वाले वाहन
2. सूती कपड़ा उद्योग।	सिन्थेटिक उद्योगों के कपड़े टैरीलीन आदि।
3. सिनेमा उद्योग।	टेलीविजन
4. टेबिल रेडियो।	ट्रांजिस्टर रेडियो।

Contd...

5.	ग्रामोफोन तथा ग्रामोफोन रेकार्ड।	टेप रेकार्डर, कैसेट, वी.सी.आर।
6.	मानवीय मूल्यों में परिवर्तन व्यावसायिक संस्थाओं में अच्छे मानव संबंध।	मानव संबंधी परिवर्तन/गिरावट, हड़ताल, तालाबंदी, अनुशासनहीनता, काम न करने की प्रवति आदेशों का उल्लंघन आदि।
7.	स्याही से लिखने वाले होल्डर, पेन, निब, स्याही।	बाल प्वाइन्ट पेन।
8.	धोती, पगड़ी, लकड़ी के खड़ाऊ व अन्य परम्परागत पहनावा की वस्तुएं।	पेन्ट, कमीज व अन्य आधुनिक पहनावा की वस्तुएं।
9.	लोहे व पीतल के बर्तन, तांबे के बर्तन।	स्टेनलेस स्टील के बर्तन।

पर्यावरणीय अवसर
(Environmental Opportunities)

"पर्यावरण अवसर, विपणन पर्यावरण में आने वाले ऐसे परिवर्तन को कहते हैं, जिनसे ऐसी परिस्थितियां उत्पन्न हो जाती हैं कि उद्देश्यपूर्ण विपणन कदम उठाने पर, सफलता की संभावनाएं बढ़ जाती हैं।

(A marketing environmental opportunity is a challenge to purposeful marketing action that is characterized by a generally favourable set of environmental circumstances and an acceptable probability of success)

पर्यावरण परिवर्तनशील है और समय–समय पर विपणन अवसर प्रदान करता रहता है, परन्तु किसी कंपनी की विपणन सफलता इस बात पर निर्भर करती है कि कंपनी उन अवसरों से कितना लाभ उठा पाती है। किसी कंपनी के लिए विपणन अवसर निम्न रूप में हो सकते हैं–

– नवीन उत्पाद, सेवायें, वितरण, सारणी तथा विक्रय संवर्द्धन के उपाय।
– कार्यक्षमता में सुधार।
– प्रतिस्पर्धा भिन्नताओं का सजन।
– नये बाजारों में विस्तार व प्रवेश की संभावनायें।
– प्रतिस्पर्धा का अंत या कमी।
– सहायक सरकारी नीतियां।
– ग्राहकों की आय एवं क्रय शक्ति में वद्धि।

अवसरों का मूल्यांकन यह जानने के लिए किया जाना चाहिए कि इनसे कहां तक लाभ उठाया जा सकता है। खोया हुआ अवसर वापस नहीं आता। थियोडोर लेविट (Theodore Levitt) के अनुसार "आवश्यकता हो सकती है पर बाजार नहीं–बाजार हो सकता है पर ग्राहक नहीं–ग्राहक हो सकता है पर विक्रेता नहीं", भारत में बहुत से उत्पाद व सेवाओं की आवश्यकता है (परन्तु गरीबी व क्रय शक्ति के बिना देश की लगभग आधी जनसंख्या क्रय करने में असमर्थ है) अर्थात् बाजार है पर ग्राहक नहीं। इसी प्रकार बहुत से उत्पाद व सेवाओं के ग्राहक हैं पर विक्रेता नहीं। अर्थात बाजार में विक्रय अवसर हैं पर विक्रेता नहीं। ऐसे अनेकों उत्पाद व सेवाओं की देश में आवश्यकता है (विपणन अवसर है) परन्तु साहस और व्यावसायिक क्षमता की कमी के कारण लोग ऐसे अवसरों की पहचान नहीं कर पाते और अवसर खाली चले जाते हैं। कुछ लोगों में साहस व व्यावसायिक क्षमता होती है वह अवसरों की पहचान करके उनका लाभ उठाते हैं तथा सफल व्यवसायी बन जाते हैं।

भारतीय पर्यावरण में विपणन अवसर
(Marketing Opportunities in Indian Environment)

हरित क्रांति ने भारत के ग्रामीण बाजारों में उत्पाद व सेवाओं के विपणन अवसरों में बहुत वद्धि की है। इसी प्रकार सफेद क्रांति अर्थात डेरी उद्योग के विकास से भी ग्रामीण इलाकों में समद्धि आई है। पिछले दशक में ग्रामीण जनसंख्या की आय एवं क्रय

शक्ति में वद्धि हुई है। साहसकर्ता एवं विपणनकर्ता ग्रामीण लोगों की आवश्यकताओं का पता लगाकर, आवश्यकतानुसार उत्पाद व उचित विपणन द्वारा भारत के वहत ग्रामीण बाजार की विक्रय संभावनाओं से लाभ उठा सकते हैं। जनसंख्या के आधार पर भारत का ग्रामीण बाजार चीन के बाद विश्व का दूसरा बड़ा संभावित बाजार है।

भारत के शहरी क्षेत्रों में अमीर व मध्यवर्ग की बढ़ती हुई संख्या, बड़े पैमाने पर उत्पाद व सेवाओं की मांग उत्पन्न करती है। उत्पाद एवं सेवाओं के विक्रय के अधिक एवं अच्छे अवसर प्रदान करने वाले घटकों का वर्णन निम्नलिखित है।

सारणी – 4.2

भारत में विपणन के अधिक एवं अच्छे अवसर प्रदान करने वाले तत्व

(Factors Responsible for Providing More and Better Marketing Opportunities in India)

	घटक (Factors)	उत्पाद व सेवाओं के विपणन अवसर (Marketing Opportunities for Product and Services)
1.	साक्षरता की बढ़ती दर (Increasing rate of literacy)	पुस्तकें, पत्र–पत्रिकाएं, समाचार पत्र आदि।
2.	जीवन आयु में वद्धि (Increasing in longevity of life)	खाद्य पदार्थ, फल, सब्जी, अनाज, दवाएं, कपड़े आदि।
3.	गाँव, कस्बों व शहरों का विकास (Vast development of cities & Towns)	घर बनाने का सामान ईंट, पत्थर, चूना, सीमेन्ट आदि।
4.	लोगों के जीवन स्तर में वद्धि (Development in standard of living of people)	फर्नीचर, दरी, कपड़े, जूते, टेलिविजन, रेफ्रीजरेटर, स्कूटर, मोटर आदि।
5.	नये उद्योगों का विकास (Development of new industries)	कच्चा माल, मशीन व उपकरण, ऊर्जा, परिवहन, बिजली, बिजली, पानी, बैंकिंग बीमा तथा अन्य संबंधित उत्पाद व सेवायें।

पर्यावरण के घटक

(Environmental Factors)

पर्यावरण एक विस्तत एवं जटिल उपागम है जिसको अनेकों घटक प्रभावित करते हैं। यह घटक देश, काल एवं परिस्थितियों के आधार पर परिवर्तित होते रहते हैं। पर्यावरण को प्रभावित करने वाले घटकों को हम चार वर्गों में विभाजित कर सकते हैं जैसा कि चित्र (4.3) में दिखाया गया है।

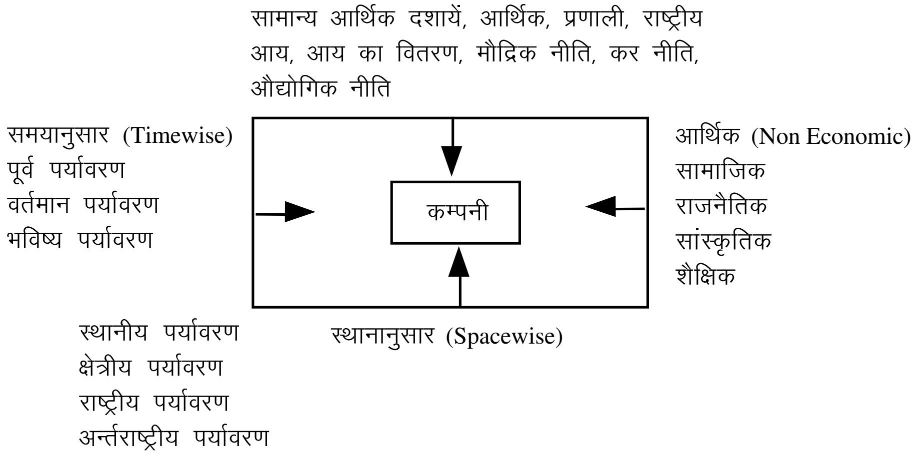

चित्र 4.3 पर्यावरण घटक (Environmental Factors)

आर्थिक (Economic)

आर्थिक एवं अनार्थिक पर्यावरण के घटकों में आपस में अन्तःक्रिया (Interaction) होती रहती है। अर्थात् आर्थिक तत्वों में अनार्थिक तथ्यों का प्रभाव होता है। इसी प्रकार अनार्थिक तथ्यों के आर्थिक पक्ष भी होते हैं। स्थानानुसार (Spacewise) अन्तर्राष्ट्रीय पर्यावरण का प्रभाव राष्ट्रीय पर्यावरण पर पड़ता है तथा इसी क्रमानुसार राष्ट्रीय पर्यावरण का क्षेत्रीय पर्यावरण पर तथा क्षेत्रीय पर्यावरण का स्थानीय पर्यावरण पर प्रभाव पड़ता है। इसी प्रकार पूर्व पर्यावरण का वर्तमान पर और वर्तमान पर्यावरण का भविष्य के पर्यावरण पर प्रभाव पड़ता है।

विपणन पर्यावरण के मुख्य तत्व
(Major Components of Marketing Environment)

बहुत से विद्वानों का यह कहना है कि विपणन पर्यावरण के अन्तर्गत वह बाह्य घटक आते हैं जो कि किसी कंपनी की विपणन क्रियाओं को प्रभावित करते हैं या प्रभावित कर सकते हैं। हमने अपने अध्ययन में, कंपनी के संगठनात्मक पर्यावरण को भी सम्मिलित किया है। किसी कंपनी का अपना आन्तरिक संगठनात्मक पर्यावरण उस कंपनी के समूचे पर्यावरण का एक महत्वपूर्ण भाग है।

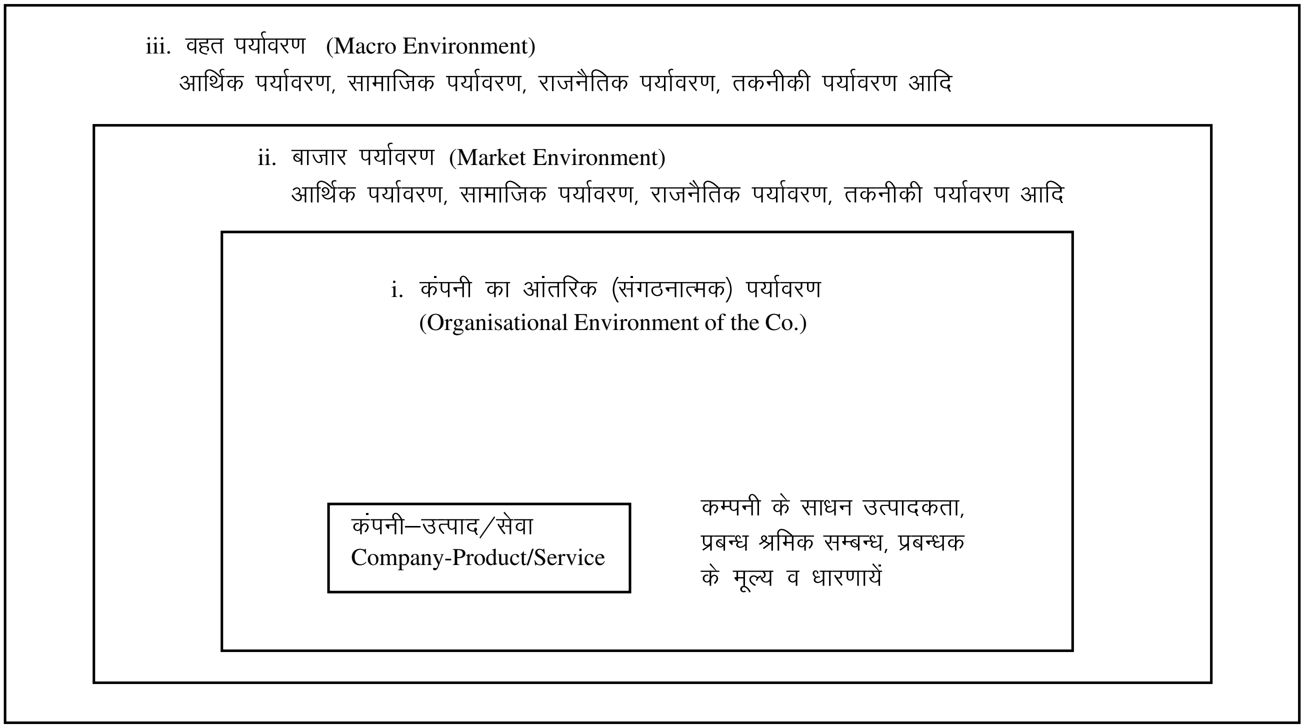

चित्र 4.4: विपणन पर्यावरण के मुख्य तत्व (Major Components of Marketing Environment)

(i) **कंपनी का आन्तरिक (संगठनात्मक) पर्यावरण (Company's Internal Organisational Environment):** किसी भी कंपनी का अपना आंतरिक पर्यावरण उन समस्त शक्तियों का (अर्थात् समूचे पर्यावरण) जो कंपनी की क्रियाओं को प्रभावित करती हैं एक महत्वपूर्ण भाग होता है। आन्तरिक पर्यावरण के मुख्य अंग हैंः श्रम प्रबंध, संबंध, उत्पादकता, कच्चा माल, वित्तीय एवं मानव संसाधन, कर्मचारियों की कुशलता व कार्य के प्रति अभिवति, कर्मचारियों का मनोबल, प्रबन्धकों की कुशलता, मूल्य और धारणाएं आदि।

(ii) **बाजार पर्यावरण (Market Environment):** बाजार पर्यावरण सबसे महत्वपूर्ण शक्ति होती है जो कि किसी कंपनी की विपणन क्रियाओं को प्रभावित करती है। क्योंकि आधुनिक विपणन मुख्यतः बाजार पर केन्द्रित होता है। बाजार पर्यावरण के प्रमुख तत्व हैंः–ग्राहकों की संख्या, आय, क्रय क्षमता, आवश्यकतायें व इच्छायें, क्रय उद्देश्य एवं व्यवहार आदि। प्रत्येक कंपनी तथा प्रत्येक उत्पाद का बाजार पर्यावरण भिन्न होता है। यह स्थान–स्थान तथा समय–समय पर बदलता रहता है। यह परिवर्तनशील तथा अनिश्चित होता है और इसका पूर्वानुमान लगाना बहुत कठिन होता है।

(iii) **वहत पर्यावरण (Macro Environment):** वहत पर्यावरण के अन्तर्गत आर्थिक पर्यावरण, सामाजिक व सांस्कृतिक पर्यावरण, तकनीकी पर्यावरण, राजनैतिक पर्यावरण तथा प्रतिस्पर्धा पर्यावरण आते हैं।

(क) ***आर्थिक पर्यावरण (Economic Environment):*** सामान्य राष्ट्रीय आर्थिक पर्यावरण आर्थिक प्रणाली की प्रकृति के रूप में होता है जिसके अन्तर्गत सम्पत्ति के अधिकार, नियोजन का स्वरूप, कीमत प्रणाली की कार्यविधि आते हैं। इन दष्टिकोणों से देखने पर देश की आर्थिक प्रणाली की प्रकृति पूंजीवादी (स्वतंत्र साहस), समाजवादी, साम्यवादी या मिश्रित हो सकती है।

अर्थव्यवस्था की संरचना के अन्तर्गत राष्ट्रीय उत्पाद की संरचना, कार्यरत क्षमता का भिन्न क्रियाओं में वितरण, पूंजी निर्माण का स्वरूप, व्यापार का स्वरूप आदि आते हैं। यही घटक देश के भिन्न उत्पादन वर्ग जैसे–कृषि, उद्योग व सेवाओं में साम्यता (Equilibrium) अथवा असाम्यता (Disequilibrium) प्रदर्शित करते हैं। राष्ट्रीय अर्थव्यवस्था भिन्न उत्पाद वर्गों के अन्तःकरण से ही कार्य करती है। व्यापार वर्ग अन्य सभी वर्गों से सौदे करता है। यही सौदे (लेन देन, व्यवहार) व्यवसाय के आर्थिक पर्यावरण को परिभाषित करता है।

आर्थिक पर्यावरण के कुछ प्रमुख तत्व हैं, जिनका विपणन क्रियाओं के दष्टिकोण से अधिक महत्व है, वह हैं सकल राष्ट्रीय उत्पाद (GNP), राष्ट्रीय आय, प्रति व्यक्ति आय, व्यक्तितगत आय की विशेषताएं (पारिवारिक बजट का विभिन्न मदों पर व्यय का प्रतिशत) मुद्रा पूर्ति, मुद्रा का मूल्य, मुद्रा स्फीति/संकुचन दशाएं, वितरण वाहिकायें उनके प्रकार व विशेषताएं आदि।

(ख) ***तकनीकी पर्यावरण (Technological Environment):*** आज के युग में जबकि मानव ज्ञान में क्रांतिकारी विकास एवं परिवर्तन आ रहा, तकनीकी पर्यावरण में तीव्र गति से परिवर्तन हो रहा है। एक उत्पाद के जीवन चक्र काल में ही तकनीकी विकल्प एवं परिवर्तन हो जाते हैं। कुछ उत्पादों के क्षेत्र में तो तकनीकी पर्यावरण में बदलाव इतना शीघ्र हो रहा है कि पर्यावरण बवन्डर (Environmental Turbulence) की स्थिति उत्पन्न हो गई है। उदाहरण के लिए क्षीण विद्युत संदेश को तेज करने के तकनीकी ज्ञान (Technical know-how) में पिछले कुछ दशकों में पांच बार विकास हुआ है। शून्य व्यूह (Vacuum Tube) से ट्रांजिस्टर (Tranistor) से मिनियचराइजड सरकेटस (Miniaturised Circuits) से माइक्रो मिनियचराइजड चिप्स (Micro-Miniaturised Chips) से औपटिक्ल फाइबर (Optical Fibre) के इतने शीघ्र परिवर्तन के मुख्य कारण हैं कंपनियों के शोध व विकास विभागों द्वारा सामूहिक वैज्ञानिक अनुसंधान पर बल, तकनीक में परिवर्तन तथा नई तकनीक एवं प्रबन्धकों के लिए एक चुनौती के रूप में आती है।

(ग) ***सामाजिक एवं सांस्कृतिक पर्यावरण (Social & Cultural Environment):*** सामाजिक एवं सांस्कृतिक पर्यावरण के अन्तर्गत ज्ञान, मान्यताएं, कला, नैतिकता, कानून, परम्पराएं, रीति–रिवाज और वह सब क्षमताएं व आदतें आती हैं जो मनुष्य ने समाज के सदस्य के रूप में ग्रहण की हैं। कुछ महत्वपूर्ण सामाजिक व सांस्कृतिक घटक जो विपणन क्रियाओं से अधिक जुड़े हुए हैं वह हैं हमारे धार्मिक, सामाजिक व जातीय तीज–त्यौहार, रस्में, मेले आदि तथा इन अवसरों पर लिए जाने वाले उत्पाद व सेवाएं, हमारी विवाह प्रणाली, रहन–सहन, पहनावा, परम्परायें, त्यौहार, धार्मिक मान्यताएं, संयुक्त परिवार, आदि तत्व व्यावसायिक एवं विपणन क्रियाओं को प्रभावित करते हैं।

(घ) ***राजनैतिक एवं कानूनी पर्यावरण (Political & Legal Environment):*** विपणन के राजनैतिक कानूनी पर्यावरण के अन्तर्गत निम्नलिखित तत्व आते हैं:

(1) *राजनैतिक संगठन (Political Organisation):* सरकार का आदर्श, राजनैतिक पार्टियों की विचारधारा, नौकरशाही, लालफीताशाही आदि।

(2) *राजनैतिक स्थिरता (Political Stability):* कानून व्यवस्था की स्थिति, झगड़े, आन्दोलन, सरकार व प्रशासन का स्तर, केन्द्रीय एवं प्रान्तीय सरकारों की स्थिरता।

(3) *सरकारी नीतियां (Govt. Policies):* व्यापार नीति, आयात नीति, तटकर नीति, आर्थिक गठबंधन आदि।

(4) *कानून की व्यवहारिकता व लोच, विदेशी बाजारों में देश की ख्याति।*

भारत में विपणन एवं सरकार
(Government & Marketing in India)

प्रत्येक देश विकास करना चाहता है तथा गरीबी एवं पिछड़ापन मिटाने, आत्मनिर्भरता प्राप्त करने व देश के नागरिकों की भलाई व जीवन स्तर में सुधार लाने का प्रयास करता है। आर्थर लिविस (Arthur Lewis) के अनुसार ''किसी देश का आर्थिक विकास समझदार सरकार तथा सक्रिय सरकारी लगाव के बिना संभव नहीं है।'' सरकारी हस्तक्षेप एवं नियमन जनता के हित में तथा आर्थिक विकास प्रक्रिया के भाग के रूप में स्वीकार किया जाता है।

राज्य नियमन के कारण
(Causes of State Regulation)

राज्य (सरकार) द्वारा आर्थिक व विपणन क्रियाओं के नियमन, तथा नियंत्रण के निम्नलिखित कारण हैं:

1. **उपभोक्ता संरक्षण (Consumer Protection):** विपणन क्रियाओं की गलत विधियों से उपभोक्ताओं को संरक्षण प्रदान करना जैसे–मिलावट, कम तोल, घटिया किस्म, अधिक कीमत आदि।
2. **देश के संसाधनों की सम्हाल व बचत (To Preserve & Conserve Country's Resources):** अत्यधिक विज्ञापन व्यय, भण्डारण सुविधाओं के अभाव में बर्बादी, उत्पाद में बनावटी परिवर्तन।
3. **विदेशी व्यापार का नियमन (Regulation of Foreign Trade):** भुगतान संतुलन को देश के पक्ष में अथवा नियंत्रित सीमाओं में बनाए रखने के लिए तथा देश के उद्योगों के संरक्षण के लिए।
4. सार्वजनिक एवं निजी क्षेत्रों में असमानता कम करने के लिए।
5. सार्वजनिक वितरण नीति व व्यवस्था, विदेशी सहयोग तथा साझेदारी।

राज्य में विपणन संबंधित विधान
(Legislation relating to Marketing in India)

भारत में विपणन से संबंधित बहुत से अधिनियम हैं। विपणन पर्यावरण को समझाने के दष्टिकोण से हम कुछ प्रमुख अधिनियिमों को ले रहे हैं जिनका विस्तत विवरण आगे दिया गया है। विपणन क्रियाओं से संबंधित कुछ प्रमुख अधिनियम निम्नलिखित हैं:

	विषय	अधिनियम का नाम
1.	कीमत, उत्पादन (पूर्ति) व वितरण क्रियाओं के निमयमन के सम्बंध में। (Regulation of Pricing Production & Distribution activities)	(i) आवश्यक वस्तुएं अधिनियम, 1955. (Essential Commodity Act, 1995) (ii) एकाधिकारी एवं प्रतिबन्धात्मक व्यापारिक पद्धतियां, अधिनियम 1959. (Monopolies & Restrictive Trade Practices Act, 1959). (iii) भारत सुरक्षा नियम (Defence of India Rules) (iv) औद्योगिक विकास एवं नियमन अधिनियम 1951 (Industrial Development & Regulation Act, 1951)
2.	प्रतिभूतियों के क्रय एवं विक्रय के संबंध में (Purchase and sale of Securities)	प्रतिभूति अनुबंध नियमन अधिनियम, 1956 (Securities Contract, Regulation Act, 1956)
3.	अग्रिम प्रसंविदों के संबंध में (Regulation of Forward Contracts)	अग्रिम प्रसंविदे नियमन अधिनियम, 1952 (Forward Contracts Regulation Act, 1952)
4.	खाद्य पदार्थों में मिलावट के संबंध में (Adulteration in Food Products)	खाद्य मिलावट निवारण अधिनियम, 1954 (The Prevention of Food Adulteratoin Act, 1954)
5.	नाप तौल के प्रमानीकरण के संबंध में (Standardisation of Weights & Measures)	बाट एवं माप–मान अधिनियम, 1976 (The Standards of Weights & Measures Act, 1976)

Contd....

6.	नकली वस्तुओं के संबंध में (Regulation of Fake Products)	व्यापार एवं व्यापारिक चिन्ह अधिनियम, 1958 (The Trade and Merchandise Marks Act, 1958)
7.	पैकेजिंग एवं लेबलिंग के संबंध में (Regarding Packaging & Labelling)	पैकेजिंग वस्तु आदेश, 1975 (Packaged Commodity Order 1975) अब बाट एवं माप अधिनियम, 1976 के अन्तर्गत कर दिया है। (Now Icorporated in Packaged Commodities Regulation Order, 1976)

(1) **कीमत, उत्पादन व वितरण क्रियाओं का नियमन**

(i) ***आवश्यक वस्तु अधिनियम-1995 (Essential Commodities Act, 1955):*** भारत सुरक्षा नियमों के अन्तर्गत सर्वप्रथम 1939 में कुछ वस्तुओं के उत्पादन पूर्ति एवं वितरण पर प्रतिबंध लगाये गये थे जो 30 सितम्बर, 1946 तक लागू रहे। इन प्रतिबन्धों को लागू रखने की आवश्यकता को स्वीकार करते हुए सरकार ने एक अध्यादेश के माध्यम से इनको जारी रखा और इस अध्यादेश का स्थान आवश्यक पूर्ति (अस्थायी अधिकार) अधिनियम (Essential Supplies (Temporary Powers), Act, 1946) ने लिया। इस अधिनियम का जीवन केवल 1 अप्रैल, 1947 तक सीमित था लेकिन समय–समय पर इसके जीवन को बढ़ाया जाता रहा जो अंत में 26 जनवरी, 1955 को समाप्त हो गया। लेकिन इसकी आवश्यकता को स्वीकार करते हुए फिर एक अध्यादेश जारी कर सरकार ने उन सभी अधिकारों को पुनः प्राप्त कर लिया। इस अध्यादेश का स्थान आवश्यक वस्तु अधिनियम (Essential Commodities Act) 1955 ने ले लिया। यह अधिनियम 1 अप्रैल, 1955 से लागू किया गया प्रारम्भ में यह अधिनियम अस्थायी था और केवल दो वर्षों के लिए लागू किया गया था लेकिन बाद में इसको स्थायी बना दिया गया।

आवश्यक वस्तु अधिनियम का क्षेत्र एवं उद्देश्य

(Area & Scope of Essential Commodities Act)

यह अधिनियम जम्मू व कश्मीर राज्य को छोड़कर सम्पूर्ण भारत में लागू होता है। इस अधिनियम की धारा 3(1) बहुत ही महत्वपूर्ण है और यह उद्देश्य एवं नीति को दर्शाती है। इसके अनुसार यदि केन्द्रीय सरकार की राय में यह जरूरी है कि किसी वस्तु की पूर्ति बनाये रखी जाए या बढ़ायी जाए या समान वितरण करने के लिए उचित मूल्य पर वस्तु उपलब्ध बनी रहें या भारत की सुरक्षा के लिए या सैनिक कार्यवाही को कुशलतापूर्वक चलाने के लिए किसी वस्तु का प्राप्त करना आवश्यक है तो एक आदेश से ऐसी वस्तु के उत्पादन पूर्ति एवं वितरण और उसके व्यापार पर प्रतिबंध लगा सकती है या उसका नियमन कर सकती है। इसमें समान वितरण एवं उचित मूल्य बहुत ही महत्वपूर्ण है, यदि जनहित में किसी वस्तु के उचित मूल्य पर समान वितरण की आवश्यकता है तो सरकार अपने अधिकार का प्रयोग कर सकती है।

आवश्यक वस्तुएंः

वे वस्तुएं जिनका प्रयोग मानव जीवन में आवश्यक है उनको इस अधिनियम में आवश्यक वस्तुएं बताया गया है। अधिनियम की धारा 2 (अ) के अनुसार निम्न वस्तुएं इसके अन्तर्गत आती हैंः

(1) जानवरों के खाने वाला चारा जिसमें खल व अन्य Concentrates शामिल हैं, (2) कोयला, (3) सूती एवं ऊनी कपड़े, (4) खाद्य पदार्थ (तिलहन एवं तेल सहित), (5) लोहा एवं इस्पात (इसकी बनी हुई वस्तुएं सहित), (6) कागज (कागज न्यूजप्रिंट, गत्ता आदि), (7) पैट्रोलियम एवं इसके पदार्थ, (8) कच्ची रूई एवं बिनौले, (9) दवाईयां, (10) कच्चा जूट, (11) मोटर गाड़ियों के पुर्जे एवं अन्य सहायक सामान, (12) अन्य कोई वस्तु जिसको केन्द्रीय सरकार आवश्यक समझती है तो एक आदेश जारी कर उसको भी आवश्यक वस्तुएं मान सकती है।

उपर्युक्त अधिकारों का प्रयोग कर केन्द्रीय सरकार ने इन वस्तुओं को भी आवश्यक घोषित कर दिया है–दवाएं, जूट के बने कपड़े या टाट, भारी रसायन, सिनेमा फिल्मस, पावरलूम, सीमेंट, साबुन, सिल्क के बने कपड़े या दियासलाई, साईकिल के टायर एवं ट्यूब, बिजली की ट्यूब लाइट, सोडा ऐश, बैटरी के सैल, लालटेन, रबर, गहस्थी के यंत्र जैसे बिजली का लोहा आदि इस समय 67 पदार्थों पर यह अधिनियम लागू है।

केन्द्रीय सरकार के अधिकार

जैसा कि ऊपर बताया गया है केन्द्रीय सरकार को आवश्यक वस्तुओं के उत्पादन पूर्ति और वितरण आदि के संबंध में पर्याप्त अधिकार हैं और केन्द्रीय सरकार इन अधिकारों का प्रयोग करते हुए कोई भी आदेश दे सकती है जिसमें निम्नलिखित बातों की व्यवस्था हो सकती है–

(i) किसी आवश्यक वस्तु के उत्पादन या निर्माण को लाइसेंस, परमिट या अन्य किसी प्रकार से नियमित करना, (ii) किसी भूमि पर खाद्य फसलों या अन्य प्रकार की फसलों की खेती करना, (iii) आवश्यक वस्तु के क्रय विक्रय का मूल्य निर्धारित कर उसका मूल्य नियंत्रित करना, (iv) किसी आवश्यक वस्तु का भंडार, परिवहन, वितरण, बिक्री प्राप्त करना काम में लाना या उपभोग जो लाइसेंस परमिट या अन्य प्रकार से नियमित करना, (v) किसी आवश्यक वस्तु की बिक्री को रोकने के लिए आदेश देना (vi) किसी भी व्यक्ति को आदेश देना कि वह अपना स्टाक या उत्पादन या प्राप्तियां भावी उत्पादन पूरा या उसका कोई भाग केन्द्रीय सरकार या प्रान्तीय सरकार या इन सरकारों के प्रतिनिधि को सौंप दें, (vii) जनहित में खाद्य पदार्थ या सूती वस्त्र से संबंधित आर्थिक या वाणिज्य सौदे पर रोक लगाना या उनका नियमन करना, (viii) नियमन करने के उद्देश्य से उपर्युक्त वर्णित किसी भी मद से संबंधित सूचनाएं या आंकड़े एकत्रित करना। (ix) किसी भी व्यक्ति की जो किसी आवश्यक वस्तु के उत्पादन, पूर्ति या वितरण में लगा हो पुस्तकें रखने एवं उनका अवलोकन करने और सूचनाओं को देने के लिए कहना (x) किसी भी मकान, जहाज, मोटर वाहन, जानवर की तलाशी लेना और उनको अपने अधिकार में लेना।

दण्ड (Penalty)

यदि कोई व्यक्ति उपर्युक्त वर्णित (vii) व (ix) के संबंध में आदेशों की अवहेलना करता है तो उसको एक वर्ष तक की सजा एवं जुर्माना किया जा सकता है।

उपर्युक्त वर्णित (viii) व (ix) के अतिरिक्त अन्य मामलों में अवहेलना करने पर कम से कम तीन माह की सजा दी जा सकती है व जुर्माना भी किया जा सकता है। लेकिन इस सजा की अवधि सात वर्ष तक हो सकती है।

यदि कोई व्यक्ति झूठे बयान या सूचनाएं देता है तो उसको पांच वर्ष की सजा या जुर्माना दोनों किये जा सकते हैं।

सरकारी तौर पर जांच का अधिकार

इस अधिनियम की धारा 12 ए के अन्तर्गत केन्द्रीय सरकार को अधिकार दिया गया है कि यदि उसकी राय में ऐसी स्थिति पैदा हो गई है कि उत्पादन, पूर्ति या वितरण के हित में सरसरी तौर पर जांच आवश्यक है तो वह इस आशय की एक अधिसूचना जारी कर सकती है। ऐसी स्थिति में इन अधिकारों का उपयोग एक प्रथम श्रेणी के न्यायाधीश के द्वारा किया जायेगा। जिसको एक वर्ष तक की सजा देने का अधिकार होगा। लेकिन यदि न्यायाधीश यह समझते हैं कि मामला इस प्रकार का है कि दण्ड एक वर्ष से अधिक की सजा देने का है तो वे मामले को सुनकर ऐसा आदेश दे सकते हैं तदुपरान्त किसी भी गवाह को सुनने या पुनः सुनने के लिए नियामनुसार कार्य कर सकते हैं।

यदि न्यायाधीश सरसरी तौर पर मामले की सुनवाई कर एक महीने से अधिक की सजा या दो हजार रुपये से अधिक जुर्माना या दोनों नहीं देते हैं तो ऐसे आदेश के विरुद्ध कोई अपील नहीं की जा सकती है।

अधिकारों का उपयोग

अधिनियम में प्राप्त अधिकारों के अन्तर्गत केन्द्रीय सरकार ने बहुत से आदेश जारी किये हैं जैसे न्यूजप्रिंट कण्ट्रोल आदेश 1962, चीनी नियंत्रण आदेश, 1966 दवाई(मूल्य नियंत्रण) आदेश, 1970 मिट्टी का तेल उपयोग (पर नियंत्रण) आदेश, 1960 वनस्पति तेल नियंत्रण आदेश आदि। इस समय 61 वस्तुओं के संबंध में इस प्रकार के आदेश जारी किये गये हैं।

एकाधिकारी एवं प्रतिबन्धात्मक व्यापारिक पद्धतियां अधिनियम-1969

(Monopolies & Restricted Trade Practices Act-1969)

इस अधिनियम का उद्देश्य इस बात के लिए सुनिश्चित करना है कि देश की आर्थिक प्रणाली सामान्य हितों के विरुद्ध आर्थिक

शक्ति का केन्द्रीयकरण नहीं करती है और ऐसी एकाधिकारी एवं प्रतिबंधात्मक व्यापारिक पद्धतियां को रोकना है जो जनहित के विरुद्ध हैं।

एकाधिकार जांच आयोग, 1964 की सिफारिशों के आधार पर अधिनियम बनाया गया है जो संसद द्वारा 18 दिसम्बर, 1969 को पास होकर और 27 दिसम्बर, 1969 को राष्ट्रपति की स्वीकृति के बाद एकाधिकार तथा प्रतिबन्धात्मक व्यापारिक पद्धतियां अधिनियम 1969 के रूप में बनाया गया। यह अधिनियम 1 जून 1970 से सारे देश में लागू हो गया है। इस अधिनियम की मुख्य बातें निम्न हैं।

(क) **एकाधिकार तथा प्रतिबन्धात्मक व्यापारिक पद्धतियां आयोग की स्थापना (Establishment of Monopolies & Restrictive Trade Practices Commission):** इस अधिनियम के अन्तर्गत एक आयोग को स्थापित करने की व्यवस्था की गयी है जिसकी सदस्य संख्या कम से कम 2 और अधिक से अधिक 8 तक हो सकती है। इसके अतिरिक्त, इसका एक अध्यक्ष होगा। इन सभी की नियुक्ति केन्द्रीय सरकार करेगी। इस आयोग का अध्यक्ष या तो उच्चतम न्यायालय या उच्च न्यायालयों का वर्तमान या निवर्तमान न्यायाधीश या न्यायाधीश की योग्यता रखने वाला कोई भी व्यक्ति बनाया जा सकता है। प्रथम नियुक्ति में आयोग के सदस्यों का कार्यकाल अधिक से अधिक 5 वर्ष तक का हो सकता है, जिसको अगले पांच वर्ष के लिए बढ़ाया जा सकता है। लेकिन कोई भी सदस्य 65 वर्ष की उम्र तक ही आयोग के सदस्य के रूप में कार्य कर सकता है।

इस अधिनियम की धारा 10 के अनुसार यह आयोग (1) स्वेच्छा से या (2) सरकार के अनुरोध पर या (3) जनता अथवा उपभोक्ता की शिकायतों पर या (4) रजिस्ट्रार, प्रतिबन्धात्मक व्यापारिक पद्धतियों के आग्रह पर किसी भी प्रतिबन्धात्मक व्यापारिक कार्य की जांच का आदेश दे सकता है। इस संबंध में आयोग को न्यायालय के अधिकार प्राप्त हैं। इस आयोग को यह भी अधिकार है कि यदि वह जनहित में आवश्यक समझे तो चल रहे व्यापार को बंद करा दे या उन्हें नियंत्रित करने के लिए उनके समझौते को रद्द कर दे या उनमें संशोधन का आदेश दे दें। इस आयोग की स्थापना जून, 1970 में की जा चुकी है। इसके अध्यक्ष सहित तीन सदस्य हैं।

(ख) **एकाधिकारी व्यापारिक प्रवत्तियों पर नियंत्रण (Control of Monopolistic Trade Practices):** यदि कोई एकाधिकारी व्यापारिक प्रवत्ति (1) प्रतिस्पर्धा को कम करती है या (2) बाजार में वस्तुओं का अभाव पैदा करती है या (3) वस्तुओं या सेवाओं के गुणों में गिरावट लाती है या (4) वस्तुओं के मूल्यों में अभिवद्धि करती है या (5) वस्तु अथवा सेवा की उत्पादन लागत, विवरण या पूर्ति की लागत में अन्यायोचित ढंग से वद्धि करती है तो एकाधिकार आयोग की सिफारिश पर सरकार द्वारा इन प्रवत्तियों पर आवश्यक रोक लगायी जा सकती है।

(ग) **प्रतिबन्धात्मक व्यवहारों संबंधी समझौतों का रजिस्ट्रेशन (Registration of Restrictive Trade Practices Agreements):** धारा 33 के अनुसार ऐसे सभी प्रतिबन्धात्मक व्यवहारों संबंधी समझौतों का रजिस्ट्रेशन कराना आवश्यक है जो निम्न में से किसी भी प्रकार की श्रेणी में आते हैंः

(1) वह समझौता जो किसी तरीके से उस व्यक्ति या व्यक्तियों पर प्रतिबंध लगा सकता है या प्रतिबंध लगा देता है जिन्हें माल बेचा जाता है या जिनसे माल खरीदा जाता है। (2) कोई समझौता जो क्रेता को माल खरीदते समय किसी अन्य माल को खरीदने की शर्त लगाता है। (3) कोई समझौता जो क्रेता को अपने व्यवसाय के दौरान किसी अन्य विक्रेता के माल का व्यापार करने पर प्रतिबंध लगाता है। (4) कोई समझौता जो माल को निश्चित मूल्य पर या शर्तों पर क्रय करने या बेचने के लिए या क्रय करने वालों के द्वारा किया गया है। (5) कोई भी समझौता जो व्यवहारों में रियायत या सुविधा देने के लिए है जिसमें भत्ता, छूट या साख शामिल है। (6) कोई समझौता जो किसी वस्तु के उत्पादन या पूर्ति को सीमित करता है या उस पर प्रतिबंध लगाता है या माल की बिक्री के लिए क्षेत्र या बाजारों को आवंटित करता है। (7) कोई समझौता जो माल की पुनः बिक्री पर यह शर्त लगाता है कि विक्रेता द्वारा निर्धारित मूल्य पर माल बेचा जायेगा। (8) कोई समझौता जो माल के बनाने में किसी तरीके, मशीन या प्रक्रिया के काम में न लेने का है या इनके प्रयोग को प्रतिबंधित कर देता है। (9) कोई समझौता जो माल को ऐसे मूल्य पर बेचने के लिए है जिसका प्रभाव प्रतियोगिता या प्रतियोगी को समाप्त करने का है। (10) कोई भी समझौता जो उल्लिखित प्रकार का नहीं है। केन्द्रीय सरकार एकाधिकारी आयोग कि सिफारिश पर अपने बजट में प्रकाशित कर सकती है। इस प्रकार

के समझौते का रजिस्ट्रेशन भी अवश्य होगा। (11) कोई भी समझौता जो उपयुक्त प्रकार के समझौते को लागू करने के लिए किया गया हो।

रजिस्ट्रेशन करते समय (1) समझौते में शामिल पक्षों के नाम, तथा (2) समझौते की शर्तें देना आवश्यक है। यह रजिस्ट्रेशन समझौते की तिथि से 60 दिन अन्तर पर करा लिया जाना चाहिए। वे समझौते जो जनहित के विरुद्ध है उनको रद्द करने या उनमें संशोधन करने का आदेश देने का अधिकार एकाधिकार आयोग (MRTPC) को है।

(घ) **आर्थिक सत्ता के केन्द्रीयकरण को रोकना (Prevention of Concentration of Economic Power):** यदि कोई उद्योग जिसकी सम्पत्ति 100 करोड़ रुपये या इससे अधिक है या वह संस्था अपने व्यवसाय में 1/3 से अधिक भाग को नियंत्रित करती है, अपना विस्तार करना चाहती है और विस्तार से उद्योग की सम्पत्ति या उत्पादन क्षमता में 85% की अभिवद्धि होती है तो वह अपना विस्तार तब तक नहीं कर सकती है जब तक कि केन्द्रीय सरकार इसके लिए अनुमति न दे दे। ऐसी अनुमति तभी दी जायेगी जबकि विस्तार कार्य के परिणामस्वरूप आर्थिक सत्ता के केन्द्रीयकरण का भय नहीं होगा।

इसी प्रकार 100 करोड़ रुपये से ज्यादा सम्पत्ति वाली संस्था केन्द्रीय सरकार की पूर्व अनुमति के स्थापित नहीं हो सकती है और न संयोजन ही कर सकती है।

(ङ) **पुनः विक्रय कीमत अनुरक्षण को रोकना (Prevention of Maintaining Resale Prices):** अधिनियम की धारा 39 के अनुसार कोई भी व्यक्ति ऐसा प्रसंविदा या समझौता अपने थोक या फुटकर विक्रेताओं के साथ नहीं कर सकता है, जिसमें न्यूनतम मूल्य पर पुनः बिक्री करने को कहा गया है। ऐसा समझौता या प्रसंविदा व्यर्थ माना जायेगा।

कोई भी पूर्तिकर्ता इस आधार पर अपनी वस्तु की पूर्ति उस व्यक्ति को नहीं रोकेगा जिसमें पुनः विक्रय मूल्य से कम मूल्य पर बिक्री की है या उसके द्वारा उसे पुनः विक्रय से कम मूल्य पर बिक्री करने की संभावना है। लेकिन एकाधिकार आयोग को इसमें छूट देने का अधिकार है।

(च) **सूचनाओं को प्राप्त करने एवं निरीक्षकों को नियुक्त करने का अधिकार (Power to obtain Information & Appointment Inspectors):** प्रतिबन्धित व्यापारिक पद्धतियों के रजिस्ट्रार को अधिकार है कि वह किसी भी पक्ष से सूचनाएं प्राप्त कर लें जो कि समझौते में एक पक्ष है और जिस समझौते का इस अधिनियम के अन्तर्गत रजिस्ट्रेशन होना था लेकिन नहीं किया गया है।

केन्द्रीय सरकार भी किसी साधारण या विशेष आदेश से किसी भी प्रकार के उद्यमों को समय–समय पर सूचनाओं को देने के लिए आदेश दे सकती है। यदि केन्द्रीय सरकार की राय में कोई उद्यम एकाधिकारी या प्रतिबन्धात्मक पद्धतियों में लगा हुआ है। या किसी उद्यम पर नियंत्रण करने का प्रयत्न कर रहा है। तो वह ऐसे उद्यम की जांच के लिए निरीक्षक नियुक्त कर सकती है।

(छ) **अपराध एवं दण्ड (Offences & Penalties):** यदि कोई व्यक्ति बिना सूचना अपने उद्यम का विस्तार कर लेता है तो उसको एक लाख रुपये तक जुर्माना किया जा सकता है। इसी प्रकार यदि कोई व्यक्ति ऐसा नया उद्यम स्थापित कर लेता है जो अन्तः संबंधित की परिभाषा में आता है या बिना अनुमति के सम्मिश्रण या विलय कर लेता है तो ऐसे व्यक्तियों को एक लाख रुपये तक जुर्माना किया जा सकता है लेकिन यदि उसके बाद भी अपराध चलता रहता है तो जब तक अपराध चलता रहता है तब तक पचास रुपये प्रतिदिन तक जुर्माना किया जा सकता है। इसी प्रकार यदि कोई व्यक्ति किसी समझौते को रजिस्टर नहीं कराता है जिसे इस अधिनियम के अन्तर्गत रजिस्टर कराना था तो ऐसे व्यक्ति पर एक हजार रुपये तक जुर्माना किया जा सकता है। यदि इसके बाद भी अपराध चलता रहता है तो जब तक अपराध चलता रहे पचास रुपये प्रतिदिन तक जुर्माना और किया जा सकता है। यदि किसी व्यक्ति के द्वारा मांगने पर सूचनाएं नहीं दी जाती हैं तो उसको तीन माह की सजा व दो हजार रुपये जुर्माना या दोनों किये जा सकते हैं। यदि गलत सूचनाएं दी जाती हैं तो 6 माह तक की सजा या पांच हजार रुपये जुर्माना या दोनों किये जा सकते हैं।

धारा 39 व 40 के अन्तर्गत यदि पुनः विक्रय मूल्य नीति जारी रखी जाती है तो ऐसे व्यक्ति को तीन माह की सजा या 5 हजार रुपये तक का जुर्माना या दोनों किये जा सकते हैं।

(i) ***भारत सुरक्षा नियम (Defence of India Rules):*** केन्द्रीय सरकार को भारत सुरक्षा नियमों के अन्तर्गत बहुत ही व्यापक अधिकार मिले हुए हैं जिनके अनुसार सरकार किसी भी वस्तु के निर्माण, वितरण, क्रय विक्रय, मूल्य, स्टाक आदि के संबंध में आदेश गजट में प्रकाशित कर उन अधिकारों का उपयोग कर सकती है।

(ii) ***औद्योगिक विकास एवं नियमन अधिनियम–1951 (Industrial Development & Regulation Act. 1951):***इस अधिनियम के बनाने का मुख्य उद्देश्य केन्द्रीय सरकार द्वारा निर्धारित औद्योगिक नीति को कार्यरूप में परिणत करना है जिससे कि निम्नलिखित बातें की जा सकें।

(i) औद्योगिक विकास का नियमन करना एवं योजना प्राथमिकताओं तथा लक्ष्यों के अनुसार साधनों के प्रवाह को मोड़ देना, (ii) एकाधिकार को दूर रखना एवं धन के केन्द्रीयकरण को रोकना, (iii) वहत स्तरीय उद्योगों की अनुचित प्रतिस्पर्धा से लघु स्तरीय उद्योगों को संरक्षण देना, (iv) नये उद्यमियों को उद्योग स्थापित करने के लिए प्रोत्साहित करना, (v) विभिन्न क्षेत्रों में औद्योगिक विकास का वितरण अधिक व्यापक रूप से करना, तथा (vi) आर्थिक इकाईयों की स्थापना करना एवं आधुनिक विधियों के प्रयोग से उद्योगों में तकनीकी एवं आर्थिक सुधार का प्रयत्न करना है। यह अधिनियम 8 मई, 1952 से कार्यशील हुआ है तथा इस समय यह जम्मू एवं कश्मीर को शामिल करते हुए सम्पूर्ण भारत में लागू होता है। इस अधिनियम की मुख्य बातें निम्नलिखित हैंः

(1) उपक्रमों का पंजीकरण एवं लाइसेंस

यह अधिनियम बहुत से उद्योगों जैसे, बिजली के यंत्र, वैज्ञानिक यंत्र, खादें, कैमिकल्स, वस्त्र, कागज व गत्ता, वनस्पति तेल, ग्लास, सिगरेट आदि पर लागू होता है। इन 38 उद्योगों को बिना केन्द्रीय सरकार से लाइसेंस प्राप्त किये न तो स्थापित किया जा सकता है और न ही ऐसी किसी स्थापित इकाई का विस्तार किया जा सकता है। लेकिन यदि इकाई की स्थायी सम्पत्तियों (भूमि, मकान एवं सम्पन्न मशीनरी में विनियोग), 5 करोड़ रुपये के मूल्य से अधिक न हो तो उसकी स्थापना के लिए लाइसेंस लेने की आवश्यकता नहीं है। केन्द्रीय सरकार लाइसेंस देते समय उद्योग की स्थापना का स्थान एवं उस उद्योग द्वारा निर्माण की जाने वाली वस्तु के आकार आदि के संबंध में शर्त लगा सकती है। साथ ही ऐसे उद्योग किसी नवीन वस्तु का निर्माण नहीं कर सकते हैं जिसका लाइसेंस इनको नहीं मिला है।

यदि किसी उपक्रम ने मिथ्या वर्णन करके केन्द्रीय सरकार से लाइसेंस ले लिया है तो ऐसे लाइसेंस को रद्द करने का अधिकार केन्द्रीय सरकार को है। (धारा 10 अ)। इसी प्रकार यदि लाइसेंस प्राप्त कर लेने के बाद भी निर्धारित समय के अन्तर्गत उपक्रम की स्थापना नहीं होती है तो केन्द्रीय सरकार को ऐसी संस्था के लाइसेंस को निरस्त करने या उसमें परिवर्तन करने का अधिकार है। (धारा 12)

(2) अनुसूचित उद्योगों या औद्योगिक उपक्रमों के बारे में जांच

(धारा 15) केन्द्रीय सरकार किसी भी अनुसूचित उद्योग या औद्योगिक उपक्रम के बारे में जांच कर सकती है जबकि (1) उसके उत्पादन की मात्रा में कमी हो रही है या कमी होने की आशंका है या (2) उसकी क्वालिटी में गिरावट हो गयी है या गिरावट होने की आशंका है या (3) बिना उचित कारणों के उनकी वस्तु या वस्तुओं के मूल्य बढ़ रहे हैं या बढ़ने की आशंका है या (4) किसी राष्ट्रीय साधनों की रक्षा की आवश्यकता है जिसका वह उद्योग या उपक्रम उपयोग कर रहा है।

यदि जांच के बाद केन्द्रीय सरकार संतुष्ट है कि ऐसे उद्योग या उपक्रम के बारे में निर्देश दिये जाएं जिससे कि उत्पादन नियमित हो सके, प्रमाप निर्धारित हो सके, उसका विकास हो सके, मूल्य नियंत्रित हो सके या वितरण नियमित हो सके तो उसे ऐसा करने का अधिकार है।

(3) सरकार द्वारा प्रत्यक्ष प्रबंध एवं नियंत्रण

यदि किसी औद्योगिक इकाई का प्रबंध संतोषजनक नहीं है या वह इकाई सरकारी आदेशों व निर्देशों की अवहेलना करती है तो सरकार ऐसी इकाई का नियंत्रण एवं प्रबंध 17 वर्ष के लिए अपने हाथ में ले सकती है

सर्वप्रथम इस अधिकार का उपयोग 5 वर्ष तक के लिए किया जायेगा। लेकिन इसके बाद प्रति दो वर्ष के लिए वद्धि की जायेगी। इसके लिए संसद की स्वीकृति लेना आवश्यक है। (धारा 18 ए)

किसी औद्योगिक उपक्रम के संबंध में यदि केन्द्रीय सरकार के पास पर्याप्त प्रमाण है तो वह बिना जांच पड़ताल कराये ऐसे उपक्रम को अधिकार में ले सकती है। (धारा 18 ए)

(4) वस्तुओं की पूर्ति, विवरण, मूल्य आदि पर नियंत्रण

धारा 18 जी के अनुसार केन्द्रीय सरकार को यह अधिकार है कि वह वस्तुओं के उचित वितरण एवं मूल्यों का उचित स्तर बनाये रखने के लिए उनकी बिक्री को नियमित एवं नियंत्रित कर सके। इसके लिए (i) वस्तुओं की खरीद एवं बिक्री के लिए मूल्य निर्धारित किये जा सकते हैं, (ii) लाइसेंस परमिट आदि से वितरण किया जा सकता है, (iii) बिक्री को रोका जा सकता है, (iv) वस्तु उत्पादन किसी एक निश्चित व्यक्ति या संस्था को बेचने के लिए कहा जा सकता है, (v) वस्तु संबंधी अन्य व्यापारिक या वित्तीय व्यवहारों को नियंत्रित किया जा सकता है।

(5) दण्ड

यदि कोई व्यक्ति अपने उपक्रम का पंजीकरण नहीं कराता है या कोई नया उपक्रम लाइसेंस नहीं लेता है या नयी वस्तु को उत्पादित करने की अनुमति नहीं लेता है या वस्तु के वितरण पूर्ति एवं मूल्य संबंधी दिये गये आदेशों का पालन नहीं करता है तो ऐसे व्यक्ति को 6 महीने की सजा या 5,000 रुपये का जुर्माना या दोनों किये जा सकते हैं। यदि कोई व्यक्ति आदेश की अवहेलना लगातार करता रहता है तो ऐसे व्यक्ति को 500 रुपये प्रतिदिन तब तक जुर्माना किया जा सकता है जब तक कि वह आदेशों की पूर्ति न कर दे।

2. ***प्रतिभूति अनुबंध नियमन अधिनियम (Securities Contracts Regulation Act, 1956):*** प्रतिभूतियों के संबंध में अवांछित सौदों को रोकने, विकल्प व्यवहारों को समाप्त करने या ऐसी परम्पराएं डालने के लिए जो अवांछित परिकल्पना को समाप्त करें और सभी सौदे निर्धारित नियमों के अनुसार हों, यह अधिनियम बनाया गया है। इस अधिनियम के मुख्य प्रावधानों का वर्णन निम्न प्रकार हैः

   (i) *स्कन्ध विनिमयों की मान्यता (Recognition of Stock Exchanges):* कोई भी स्कंध विनिमय बिना केन्द्रीय सरकार की मान्यता के कार्य नहीं कर सकता और न कोई नया स्कंध विनिमय केन्द्रीय सरकार की पूर्व अनुमति के खोला जा सकता है।

   (ii) *केन्द्रीय सरकार के अधिकार (Powers of Central Govt.):* इस अधिनियम में केन्द्रीय सरकार को विस्तत अधिकार प्रदान किये गये हैं। केन्द्रीय सरकार मान्यता वापिस दे सकती है। विभिन्न प्रकार की सूचनाएं मांग सकती है। स्कंध विनिमय की प्रबंध समिति कुछ समय के लिए बंद रहने का आदेश दे सकती है।

   (iii) *प्रतिभूतियों में सौदे (Dealings in Securities):* विकल्प व्यवहार अवैधनिक घोषित कर दिये गये हैं। तत्काल सौदों को नियमित करने का अधिकार सरकार को है।

   (iv) *स्कंध विनिमयों की कार्य प्रणाली पर नियंत्रण (Control of the Working of Stock Exchanges):* केन्द्रीय सरकार विनिमय के खुलने व बंद होने का समय निर्धारित कर सकती है। निरंतर हस्तान्तरण व बदले को नियमित या समाप्त कर सकती है। फीस, दलाली, जुर्माना आदि निर्धारित कर सकती है।

   (v) *सदस्यता (Membership):* कोई भी व्यक्ति जो 21 वर्ष से कम का है या भारत का नागरिक नहीं है दिवालिया है या उसने लेनदारों को पूरा धन नहीं चुकाया है या जो धोखादेही या बेईमानी के लिए दण्डित किया जा चुका है या जो प्रतिभूतियों के अतिरिक्त अन्य व्यापार करता है तो ऐसा व्यक्ति स्कन्ध विनिमय का सदस्य नहीं हो सकता।

   (vi) *हिसाब किताब की पुस्तकों का अनुरक्षण:* प्रत्येक सदस्य को आवश्यक प्रलेख, बहियां किताबें आदि 5 वर्ष तक सुरक्षित रखनी होंगी।

3. ***अग्रिम प्रसंविदे (नियमन) अधिनियम, 1952 (Forward Contracts Regulation Act, 1952):*** अग्रिम सौदों के नियमन के लिए एक अधिनियम अग्रिम प्रसंविदे (नियमन) अधिनियम, 1952 देश में लागू है। इस अधिनियम का

उद्देश्य उन अग्रिम सौदों पर प्रतिबंध लगाना है जो जनहित के विरुद्ध हैं। इस अधिनियम के मुख्य प्रावधान निम्नलिखित हैंः

(i) *वस्तु या उपज विनिमयों को मान्यता (Recognition of Commodity or Produce Exchanges):* वस्तु या उपज विनिमयों को अग्रिम बाजार आयोग की सिफारिश पर केन्द्रीय सरकार द्वारा मान्यता प्रदान की जाती है। केवल मान्यता प्राप्त विनिमयों पर ही अग्रिम अनुबंध के सौदे किये जा सकते हैं। केन्द्रीय सरकार मान्यता देने के लिए शर्तें लगा सकती है। एक बार मान्यता देने के बाद किसी भी विनिमय की मान्यता को केन्द्रीय सरकार वापस ले सकती है।

(ii) *अग्रिम बाजार आयोग की स्थापना (Establishment of Forward Markets Commission):* जन साधारण के हितों की रक्षा करने व अधिनियम के अन्तर्गत मान्यता प्राप्त संघों की देखभाल करने के लिए अग्रिम बाजार आयोग स्थापित किया जायेगा जिसमें कम से कम 2 व अधिक से अधिक 4 सदस्य होंगे। इसका सभापति सरकार मनोनीत करेगी।

(iii) *केन्द्रीय सरकार के अधिकार (Powers of Central Govt.):* इस अधिनियम के अन्तर्गत केन्द्रीय सरकार को निम्न अधिकार प्राप्त हैंः (a) अग्रिम प्रसंविदों पर रोक लगाने का अधिकारः केन्द्रीय सरकार को अधिकार है कि किसी भी पदार्थ या किसी स्थान पर सरकारी गजट में विज्ञापन देकर मान्यता प्राप्त संघों के सदस्यों के बीच हुए प्रसंविदों के अतिरिक्त अग्रिम प्रसंविदों पर रोक लगाएं। संघों को इस प्रकार के अग्रिम प्रसंविदें करने की आज्ञा निश्चित पदार्थों, निश्चित समयों व निश्चित क्षेत्र के लिए ही दी जायेगी, (b) सूचनाएं मांगने का अधिकारः केन्द्रीय सरकार समय–समय पर सूचनाएं व वार्षिक प्रतिवेदन मांग सकती है, तथा इस अधिनियम की धाराओं के उल्लंघन पर दण्ड भी दिला सकती है, (c) संचालक मनोनीत करने का अधिकारः संघों का कार्य प्रबंध मण्डलों द्वारा चलाया जाता है अतः केन्द्रीय सरकार प्रत्येक विनिमयों पर 4 संचालक तक मनोनीत कर सकती है (d) नियमों में परिवर्तन का अधिकारः मान्यता प्राप्त संघों के नियम, उपनियम व विधान, आदि में परिवर्तन बिना सरकार की अनुमति के नहीं हो सकता है। सरकार स्वयं ऐसे विधानों, नियमों व उप नियमों में परिवर्तन कर सकती है, (e) विनिमय के प्रबंध मण्डल को भंग करने का अधिकारः प्रबंध मण्डल को सरकार द्वारा भंग किया जा सकता है। व मान्यता प्राप्त संघों को या उनके सदस्यों को कार्य करने से रोका जा सकता है।, (f) प्रसंविदों को छूट देने एवं रोकने का अधिकारः हस्तान्तरणीय विशेष सुर्पुदगी प्रसंविदे को अधिनियम से छूट देना, स्थान्तरणीय विशेष सुपुर्दगी प्रसंविदों को नियमन के अन्तर्गत लेना या ऐसे प्रसंविदों पर प्रतिबंध लगाना व किसी अग्रिम प्रसंविदे को नियमन से छूट देने आदि का अधिकार सरकार को होगा। सरकार द्वारा अग्रिम प्रसंविदे किसी वस्तु में रोका जा सकते हैं।

(iv) *दण्ड व कार्यविधिः* यदि कोई व्यक्ति गलत बयान या गलत सूचना देता है तथा मान्यता प्राप्त संघों के कार्य निलम्बन के दौरान अग्रिम प्रसंविदे करता है या अधिनियम के विरुद्ध कोई कार्य करता है तो उसे प्रथम अपराध के लिए दो हजार रुपये तक जुर्माना या एक वर्ष तक की सजा या दोनों दिये जा सकते हैं। द्वितीय अपराध पर सजा इससे अधिक होगी।

4. ***खाद्य मिलावट निवारण अधिनियम, 1954 (Prevention of Food Adulteration Act, 1954):*** खाद्य मिलावट निवारण अधिनियम, 1954 का मुख्य उद्देश्य सामाजिक बुराई, खाद्य पदार्थों में मिलावट, को रोकना एवं जनता को शुद्ध खाद्य वस्तुओं को दिलाना है। इस अधिनियम की मुख्य बातें निम्नलिखित हैंः

(i) *कुछ वस्तुओं के बनाने व बेचने आदि पर रोकः* कोई भी व्यक्ति न तो ऐसी वस्तु बनायेगा, न बेचेगा, न संग्रह करेगा और न वितरित करेगा जो (क) कोई मिलावटी खाद्य पदार्थ हो, (ख) कोई धोखे वाली ब्राण्ड या खाद्य पदार्थ हो, (ग) कोई खाद्य पदार्थ जिसकी बिक्री पर स्वास्थ्य अधिकारी द्वारा रोक लगा दी गयी हो, (घ) कोई मिलावटी वस्तु हो, या (ड) कोई खाद्य पदार्थ जिसकी बिक्री के लिए कोई लाइसेंस लेना आवश्यक है।

(ii) *कुछ खाद्य पदार्थों के आयात पर रोकः* कोई भी व्यक्ति (क) मिलावटी खाद्य पदार्थ, (ख) कोई धोखे देने वाली ब्राण्ड का खाद्य पदार्थ, (ग) कोई खाद्य पदार्थ जिसके आधार के लिए लाइसेंस लेना आवश्यक है, (घ) कोई खाद्य पदार्थ इस अधिनियम के प्रावधानों के विरुद्ध हो आयात नहीं करेगा।

(iii) *खाद्य निरीक्षकों की नियुक्ति एवं अधिकारः* केन्द्रीय या प्रान्तीय सरकारें गजट में प्रकाशित करके खाद्य निरीक्षकों की नियुक्ति कर सकती हैं जिनको अधिकार है कि वे किसी भी विक्रेता या ऐसे व्यक्ति से जो वस्तुओं को दे रहा है नमूना ले सकते हैं। इस कार्य के लिये खाद्य निरीक्षक, जहां देशी वस्तुएं बन रही हों या संग्रह की गयी हों या रखी गयी हों घुस सकता है और ऐसी वस्तु का नमुना ले सकता है लेकिन इसके लिए मूल्य देना होगा जो कि सामान्य मूल्य होगा। इसके साथ–साथ वह पुस्तकों व किताबों को भी कब्जे में ले सकता है। खाद्य मिलावट निवारण नियम, 1955 के अनुसार नमूने लेते समय उसकी मात्रा का ध्यान रखा जाए जो दूध के लिए 220 मिली लीटर घी व मक्खन के लिए 150 ग्राम छाँछ व आटे के लिए 125 ग्राम आदि के बराबर होना चाहिए।

(iv) *नमूने का विश्लेषण एवं मुकदमाः* खाद्य निरीक्षक ने जो नमूना लिया है वह जन विश्लेषक (Public Analyst) को भेजा जायेगा। जिसकी नियुक्ति केन्द्रीय सरकार या प्रान्तीय सरकारों द्वारा की जायेगी। यह जन विश्लेषक निर्धारित फार्म पर अपनी रिपोर्ट देगा। रिपोर्ट प्राप्त हाने पर यदि यह पाया गया कि वस्तु मिलावटी है तो उचित न्यायालय में मुकदमा दायर कर दिया जायेगा। न्यायालय द्वारा ऐसे मामलों में कम से कम 6 माह की सजा और जुर्माना जो एक हजार रुपये से कम नहीं होगा किया जा सकता है। लेकिन यह सजा तीन वर्ष की जा सकती है। कुछ मामलों में कम से कम तीन माह की सजा जिसको 2 वर्ष तक भी किया जा सकता है तथा कम से कम 500 रुपये का जुर्माना किया जा सकता है। यदि राज्य सरकार द्वारा अधिकृत कर दिया जाये तो मुकदमें संक्षेप में भी सुने जा सकते हैं। ऐसी स्थिति में न्यायाधीश को एक वर्ष तक ही सजा देने का अधिकार होगा।

5. ***बाट एवं माप मान अधिनियम-1976 (Standards of Weights & Measures Act, 1956):*** बाट एवं माप मान अधिनियम का उद्देश्य तोल एवं माप के मान स्थापित करना तथा तोल, माप व अन्य वस्तुएं जो तोल, माप या अंक से बेची या वितरित की जाती है उनके अन्तर्राज्यीय व्यापार या वाणिज्य को नियमित करना है एवं इनसे संबंधित कार्य करना है। इस अधिनियम की मुख्य बातें निम्नलिखित हैंः

(i) *तोल एवं माप मानों की स्थापनाः* बाट एवं माप की प्रत्येक इकाई मैट्रिक प्रणाली पर आधारित होगी। इसके लिए मीटर, किलोग्राम, एम्पीयर, केलर्बिन आदि को काम में लाया जायेगा।

(ii) *गैर मान वाट, माप या अंक के प्रयोग तथा उनके बनाने पर प्रतिबंधः* गैर मान के बाट व मान के प्रयोग पर प्रतिबंध लगा दिया गया है।

कोई भी व्यक्ति किसी भी वस्तु के बेचने के लिए भाव गैर मान के बाट एवं माप में नहीं बता सकता है, न छाप सकता है, न केशमीमों, बिल या बीजक आदि बना सकता है। यदि कोई परम्परा, रीति या तरीका ऐसा है जिसमें मान से कम या अधिक वस्तु की मांग की जाती है या वस्तु की सुपुर्दगी की जाती है तो इस प्रकार की मांग या सुपुर्दगी व्यर्थ होगी।

यदि कोई व्यक्ति बाट, माप या अंक को बनाता, बेचता या वितरित करता है या उनकी मरम्मत करता है तो उसको इस प्रकार की वितरण विक्रय या मरम्मत का रिकार्ड रखना होगा।

(iii) *मान उपकरणों का सत्यापनः* प्रत्येक मान पर प्रमाणित होने की मुहर लगवाना आवश्यक है। यह मुहर निर्धारित अधिकरण द्वारा निर्धारित फीस लेकर लगायी जायेगी। यदि किसी मान पर मुहर नहीं लगी है तो उसका प्रयोग वर्जित है। सभी प्रयोग में आने वाले मापों व बाटों पर एक निश्चित समय के बाद मुहर लगवाना अनिवार्य है।

(iv) *सरकारी अधिकारियों के अधिकारः* इस अधिनियम के अन्तर्गत नियुक्त निदेशक या उसके द्वारा अधिकृत कोई भी व्यक्ति किसी भी ऐसे स्थान पर उचित समय में घुस सकता है तथा तोल, माप या उससे संबंधि

ात रिकार्ड को अपने कब्जे में ले सकता है जहां इस अधिनियम के अन्तर्गत दण्डनीय अपराध माप मान के संबंध में किया जा रहा है या किये जाने की संभावना है। यदि कोई अप्रमाणित तोल व माप के बाट पाये जायेंगे तो उनको जब्त करने का अधिकार केन्द्रीय सरकार को है।

(v) *दण्डः* यदि कोई व्यक्ति निर्धारित मान के मापों व बाटों का उपयोग नहीं करता है तो उसको प्रथम अपराध पर 6 माह तक की सजा या एक हजार रुपये तक जुर्माना दोनों किये जा सकते हैं। लेकिन द्वितीय व बाद के अपराधों पर दो वर्ष तक की सजा व जुर्माना किया जा सकता है। (धारा 50)। यदि कोई व्यक्ति बाटों व मापों को बनाते समय मान का ध्यान नहीं रखता है तो उसको 2 वर्ष तक की सजा या 5,000 रुपये का जुर्माना दोनों किये जा सकते हैं।

6. ***व्यापार एवं व्यापारिक चिन्ह अधिनियम-1958 (Trade & Merchandise Marks Act, 1958):*** भारत में ट्रेडमार्क के पंजीकरण के लिए एक अधिनियम है जिसको व्यापार एवं व्यापारिक चिन्ह अधिनियम, 1958 के नाम से पुकारते हैं। जब कोई भी निर्माता अपनी वस्तु की पहचान कोई चिन्ह या नाम याद रखने के लिए कोई चिन्ह, नाम, शब्द, डिजाइन या इनके सम्मिश्रण से कोई चिन्ह या नाम बनाकर अपनी वस्तु पर छाप देता है तो उसे ब्राण्ड कहते हैं। लेकिन जब इस ब्राण्ड का पंजीकरण इस अधिनियम के अन्तर्गत करा लिया है तो वहां ब्राण्ड ट्रेडमार्क हो जाता है। इससे निर्माता या विक्रेता को लाभ होता है। अब इस प्रकार के ट्रेडमार्क की नकल कोई और नहीं कर सकता है और इसके प्रयोग का एकमात्र अधिकार पंजीकरण कराने वाले को मिल जाता है।

   भारत में इस अधिनियम के अन्तर्गत ट्रेडमार्क के पंजीकरण का कार्य पेटेण्ट डिजाइंस, ट्रेडमार्क, महानिदेशक बंबई के द्वारा किया जाता है जो इस अधिनियम के अन्तर्गत ट्रेडमार्क रजिस्ट्रार कहलाता है। इनकी तीन शाखा एवं दफ्तर कलकत्ता, मद्रास व नई दिल्ली में हैं।

7. ***पैकेजिंग वस्तु नियमन अधिनियम-1976 (Packagad Commodities Regulation Order, 1976):*** भारत सरकार ने 18 जुलाई, 1975 को भारत सुरक्षा अधिनियम के अन्तर्गत एक आदेश जारी किया जिसके अनुसार प्रत्येक पैकेज पर वस्तु को पैक करते समय शुद्ध मात्रा, अधिकतम मूल्य, बनने की तारीख एवं निर्माता का नाम एवं पता होना अनिवार्य है। यह आदेश 1 जनवरी 1976 से लागू किया गया। इस आदेश का नाम पैकेज्ड वस्तु नियमन आदेश, 1975 (Packaged Commodities Regulation Order, 1975) था लेकिन 1 अप्रैल 1980 से यह आदेश बाट एवं माप मान अधिनियम, 1976 (Standards of Weights & Measures Act) के अन्तर्गत कर दिया गया है जिसका मुख्य विवरण निम्न प्रकार है।

   1. कोई भी व्यक्ति वस्तुओं को बेचने के लिए पैक नहीं करेगा जब तक कि प्रत्येक पैकिट पर एक लेबिल निम्न बातों के संबंध में नहीं लगा देता।
      (अ) पैकिट के अन्दर वस्तु की पहचान।
      (ब) पैकिट में रखी हुई वस्तु की मात्रा या वजन या माप।
      (स) तारीख जिस दिन पैकिट तैयार किया गया है, माह एवं वर्ष सहित।
      (द) पैकिट का मूल्य।
   2. कोई भी व्यक्ति ऐसे पैकिट को न बेचेगा, न वितरित करेगा और न देगा जिस पर उपर्युक्त में लिखी हुई बातें नहीं हैं।
   3. पैकिट या लेबिल पर जो मूल्य दिया गया है उससे अधिक मूल्य पर कोई भी डीलर उस वस्तु को नहीं बेचेगा।
   4. प्रत्येक पैकिट पर निर्माता या पैक करने वाले का पूरा नाम एवं पूरा पता होगा।
   5. लेबिल या पैकेज पर जो विवरण वजन, माप या नम्बर के बारे में दिया है वह किसी भी प्रकार से शर्त सहित नहीं होगा।

6. वे वस्तुएं जिन पर सरकारी मूल्य नियन्त्रण लागू है उन पर नियंत्रित मूल्य ही दिये जायेंगे।
7. पैकिट के मूल्य में स्थानीय टैक्स शामिल नहीं होंगे।
8. पैकिट में वस्तु के वजन की घोषणा में उसके पैकिंग सामान का वजन शामिल नहीं होगा।
9. यदि किसी वस्तु का रैपर (Rapper) या आधान पत्र (Container) बेचा जाता है तो उस रैपर या आधान पत्र पर यह सूचनाएं दी जायेंगी।
10. यदि पैकिट पर सकल मात्रा व मूल्य लिखना असंभव या अव्यावहारिक हो तो पैकिट के साथ एक लेबिल या मुहर लगा दी जाय जिस पर सकल मात्रा व मूल्य दिया हो।

सरकार द्वारा जारी विज्ञप्ति के अनुसार उपर्युक्त आदेश उन वस्तुओं पर लागू नहीं होता है जो किसी उद्योग में कच्चे माल माल के रूप में काम आती है या थोक पैकिट के रूप में बेची जाती है या वे वस्तुएं जो खाने के काम में आती हैं। यह आदेश बहुत छोटे पैकिटों पर भी लागू नहीं होता है। बीड़ी और अगरबत्ती इस आदेश की सीमा से बाहर हैं। यह आदेश उन वस्तुओं पर लागू होता है जो आम जनता के उपयोग की वस्तुएं हैं जैसे कॉफी, चाय, खाने का तेल, वनस्पति तेल, साबुन, बिस्कुट, सीमेण्ट, बच्चों का दूध, दवाईयां, सौंदर्य प्रसाधन वस्तुएं आदि।

इस आदेश के जारी होने से उपभोक्ता को काई विशेष लाभ नहीं हुआ है। इसका कारण यह है कि वस्तु पर जो अधिकतम मूल्य डाले गये हैं दुकानदार उससे कहीं अधिक मूल्य स्थानीय करों के नाम से वसूल करता है। साथ ही निर्माताओं ने इस आदेश को लागू होने के समय जो मूल्य थे उससे कहीं अधिकतम मूल्य निर्धारित कर दिये हैं। इस प्रकार यह आदेश जनता के लिए अधिक लाभकारी नहीं हो रहा है यद्यपि कम वजन या माप की शिकायतों में अवश्य कमी हुई है।

सार्वजनिक वितरण प्रणाली
(Public Distribution System)

सार्वजनिक वितरण प्रणाली से अर्थ उस प्रणाली से है जिसमें उपभोक्ता वस्तुओं को सार्वजनिक रूप से इस प्रकार वितरित किया जाता है कि वे सभी उपभोक्ताओं को निर्धारित मूल्यों पर उचित मात्रा में प्राप्त हो सके। इस प्रणाली में सरकारी सहयोग आवश्यक होता है तथा सरकार द्वारा निर्धारित मध्यस्थ विक्रेता ऐसी वस्तुओं का विक्रय करते हैं। इस प्रकार की प्रणाली में मध्यस्थ विक्रेता के लाभ की मात्रा निश्चित होती है। वस्तुओं के विक्रय मूल्य भी निश्चित होते हैं जिनसे कम या अधिक वस्तु की बिक्री नहीं की जा सकती है। प्रत्येक मध्यस्थ विक्रेता को विक्रेता को बिक्री का पूरा हिसाब–किताब रखना पड़ता है जिसकी समय–समय पर जांच सरकारी अधिकारी करते रहते हैं। यदि मध्यस्थ विक्रेता द्वारा कोई अनियमितता की जाती है तो उसके विरुद्ध अनुशासनात्मक कार्यवाही की जाती है जिसमें उसकी दुकान रद्द की जा सकती है। उसकी जमा सिक्योरिटी जब्त की जा सकती है। तथा गम्भीर अपराध में देश के सामान्य नियमों के अनुसार दण्ड भी दिलाया जा सकता है।

भारत में सार्वजनिक वितरण प्रणाली

द्वितीय विश्व युद्ध के आरम्भ होने के समय तक उपभोक्ता वस्तुओं का वितरण भारत में साधारण व्यापारिक स्रोतों–थोक, फूटकर बिक्री आदि द्वारा संतोषजनक रूप से हो रहा था लेकिन युद्ध के काल में विशेष कमी खाद्यान, वस्त्र, चीनी तथा कागज आदि की अनुभव हुई। इन्हीं परिस्थितियों में राशन व्यवस्था प्रारम्भ हुई। गेहूं, चावल, चीनी आदि पदार्थ एक सीमित मात्रा में सरकार द्वारा स्थापित की गयी राशन की दुकानों पर राशन कार्डों पर मिलने लगे। खाने की वस्तुओं की कमी के साथ–साथ कपड़े की कमी भी हो गयी। इसके लिए भी कपड़े की दुकानें मुहल्ले के हिसाब से निश्चित मूल्य पर एक निश्चित मात्रा में कपड़ा मिल सकता था। कागज की भी बहुत भारी कमी हो गयी थी। विद्यार्थियों को कापियां खरीदने के लिए आज्ञा पत्र (परमिट) मिलते थे जिनके आधार पर एक निश्चित मूल्य पर कागज की कापियां मिलती थीं।

युद्ध समाप्त होने के पश्चात् भारत में स्वतंत्र राज्य की स्थापना हुई वास्तव में यहीं से मूल्य की वद्धि और मुद्रा–स्फीति का इतिहास आरंभ होता है। ऐसी परिस्थितियां उत्पन्न हो गयीं जिनमें निर्बल वर्ग के लोगों को उनके जीवन निर्वाह की वस्तुओं का मिलना कठिन हो गया। इस नवीन परिस्थिति में राशन प्रणाली स्थायी सी बन गयी। खाद्यानों की कमी लगातार चलती

आयी और बड़ी मात्रा में खाद्यान आयात करके निश्चित मूल्यों पर बड़े नगरों में राशन की दुकानों से कमजोर वर्गों के लोगों को बांटने का प्रबन्ध करना पड़ा।

इसी बीच में समय–समय पर किसी–किसी वस्तु की कमी होती आयी है और उसके उचित मूल्य और उचित मात्रा में वितरण का प्रबन्ध कुछ विशेष दुकानों पर करना पड़ा है। कुछ समय मिट्टी का तेल मिलना कठिन हो गया तो इसकी बिक्री का प्रबन्ध भी राशन की दुकानों पर करना पड़ा। कभी वनस्पति घी और कभी सरसों के तेल की कमी हो गयी तो इन वस्तुओं के निर्धारित मूल्य पर बिक्री का प्रबन्ध भी राशन की दुकानों तथा कुछ अन्य दुकानों पर करना पड़ा।

वर्तमान सार्वजनिक वितरण प्रणाली की विशेषतायें
(Characteristics of the Present Public Distribution System)

भारत में वर्तमान सार्वजनिक वितरण प्रणाली की मुख्य विशेषतायें इस प्रकार हैः

(i) **उचित मूल्य या राशन की दुकानें (Fair Price or Ration Shops):** सारे देश में खाद्यानों को उचित मूल्य पर बेचने वाली राशन की दुकानें हैं। इनकी संख्या लगभग चार लाख है। इन दुकानों पर गेहूं, गेहूं से बनी हुई वस्तुएं–आटा, मैदा, सूजी, चावल तथा चीनी सरकार द्वारा निर्धारित मूल्यों पर उपभोक्ताओं को राशन कार्ड के आधार पर एक निश्चित मात्रा में बेची जाती है। इन दुकानों को उचित मूल्य की दुकानें (Fair Price Shops) भी कहा जा सकता है। इन्हीं दुकानों पर आवश्यकतानुसार कभी–कभी वनस्पति, सरसों का तेल, तथा मिट्टी का तेल भी उपलब्ध कर दिया जाता है।

(ii) **सहकारी उपभोक्ता भण्डार (Consumer's Cooperative Stores):** सहकारी उपभोक्ता भण्डार भी सार्वजनिक वितरण प्रणाली का एक अंग है। इन भण्डारों में उपभोक्ताओं की आवश्यकता की वस्तुओं के साथ–साथ कण्ट्रोल की वस्तुओं की भी बिक्री का प्रबन्ध होता है। इस समय 585 केन्द्रीय उपभोक्ता भण्डार, उनकी 4,310 शाखाएं, 15,980 प्राथमिक उपभोक्ता सहकारी समितियां, 21 राज्यस्तरीय उपभोक्ता फैडरेशन कार्य कर रहे हैं, जिन्होंने 1983-84 में 1338 करोड़ रुपये के मूल्य की बिक्री की है।

(iii) **नियंत्रित कपड़े की बिक्री की दुकानें (Shops for the Sale of Controlled Cloth):** सस्ते कपड़े की दुकानों की संख्या उतनी अधिक नहीं है किन्तु फिर भी यह दुकानें देश के सभी भागों में हैं। इन दुकानों पर सरकार की सस्ते कपड़े की योजना के अंतर्गत बना हुआ कपड़ा राशन कार्डों के आधार पर बेचा जाता है।

(iv) **सॉफ्ट कोक डिपो (Soft Coke Depots):** उपभोक्ताओं को उचित मूल्य पर सॉफ्ट कोक बेचने के लिए सरकार द्वारा मान्यता प्राप्त कोयले के डिपो सब बड़े नगरों में काम कर रहे हैं जिनकी संख्या 2.45 लाख है। इन दुकानों की सहायता से ईंधन की समस्या सुलझाने में सुविधा होती है।

(v) **सुपर बाजार (Super Bazar):** सुपर बाजारों की स्थापना दिल्ली जैसे बड़े–बड़े नगरों में हो गयी है। इन भण्डारों में तो साधारण उपभोग की सभी वस्तुएं उपलब्ध होती हैं। इस समय ये भण्डार 125 के लगभग हैं। यहां कुछ राशन की वस्तुओं जैसे, कपड़ा, चीनी, खाद्यान आदि का विक्रय भी होता है।

मिट्टी के तेल के विक्रेता (Kerosene Oil Retail Shops)

इस समय मिट्टी का तेल नियंत्रित वस्तुओं के अंतर्गत आता है जिसकी बिक्री के लिए लगभग तीन लाख विक्रेता हैं जो सरकार द्वारा निर्धारित मूल्य पर मिट्टी के तेल का विक्रय करते हैं।

सार्वजनिक वितरण प्रणाली में कठिनाईयां
(Problems of Public Distribution System)

(i) **नगरों तक सीमित**– इस समय जो सार्वजनिक वितरण प्रणाली काम कर रही है इसका विस्तार साधारणतया नगरों तक ही सीमित है। ग्रामीण क्षेत्रों में राशन की दुकानें नहीं हैं। इन क्षेत्रों में दुकानों को पहुंचाने में कठिनाईयां भी हैं। बड़े नगरों में पूर्ति के लिए सरकारी भण्डार मौजूद हैं। इन भण्डारों से ग्रामीण क्षेत्रों के दुकानों की पूर्ति करना सरल काम नहीं है।

(ii) **ग्रामीण क्षेत्रों के लिए निर्धारित वस्तुओं का गांवों में वितरण न होना**– दूसरे, ग्रामीण क्षेत्रों के निकट जो कस्बे हैं उनमें खुले बाजार में खाद्यान साधारणतया मिलते ही रहते हैं यद्यपि उनके लिए कई बार अधिक मूल्य देना पड़ता है। देश के कई हिस्सों में जहां सरकार ने निकट के नगरों से चीनी का कोटा दिलवाने का प्रबन्ध कर रखा है, वहां स्थिति बड़ी विचित्र है। जिन लोगों के नाम गांव का कोटा है वे शायद ही कभी चीनी कस्बे से गांव में ले जाकर बांटते हैं। अधिकतर ऐसा होता है कि वे लोग अधिक मूल्य पर चीनी शहर में बेच जाते हैं। खरीद और बिक्री के मूल्य का अन्तर उनका लाभ बन जाता है।

(iii) **अन्य वस्तुओं को बेचे जाने की अनुमति न होना**– उचित मूल्यों की दुकानों से बिकनी वाली वस्तुओं की संख्या में और अधिक वस्तुओं को इच्छानुसार जोड़ देना सरल कार्य नहीं है। इन दुकानों पर बिकने वाली वस्तुओं को सरकार को स्टॉक में रखने की आवश्यकता होती हैं बिना स्टॉक रखे शासन प्रणाली नहीं चलायी जा सकती है।

(iv) **पूर्ति कम होने पर दबाव बढ़ जाना**– राशन की दुकानों के काम करने में और भी कुछ बाधाएं हैं। जिस समय खाद्यान की पूर्ति कम होती है तो इन दुकानों पर कार्ड वालों का दबाव बहुत बड़ जाता है और सामान देने में घंटों लग जाते हैं। किन्तु जब खुले बाजार से अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति करने लगते हैं और कभी–कभी तो राशन की दुकानों पर चीनी को छोड़कर और किसी वस्तु की बिक्री नहीं रहती। इन दुकानों को अपना खर्च निकालना मुश्किल पड़ जाता है।

(v) **किस्म का चुनाव करने में कठिनाई**– जब खुले बाजार में वस्तुएं मिलती हैं तो लोग खुले बाजार को ही पसंद करते हैं। राशन की दुकानों से नहीं खरीदना चाहते क्योंकि खुले बाजार में वस्तु की किस्म का चुनाव करने का अवसर प्राप्त है जो राशन की दुकान पर नहीं है।

(vi) **खुले बाजार में कार्य कर रहे व्यक्तियों का समावेश**– इन बातों को ध्यान में रखते हुए सार्वजनिक वितरण प्रणाली को विस्तत बनाने के लिए इस बात पर विचार करना भी परमावश्यक है कि खुले बाजार में काम करने वाले खुदरा दुकानदारों को किस प्रकार इस प्रणाली में सम्मिलित कर लिया जाय ताकि जो लोग रोजगार में लगे हैं वह लगे रहें और प्रणाली भी स्थायी बन जाये और वस्तुएं सुविधाओं के साथ उपभोक्ता के निवास स्थान के निकट ही मिल जायें और समय भी अधिक नष्ट न हो।

सार्वजनिक वितरण प्रणाली की आलोचना
(Criticism of Public Distribution System)

सार्वजनिक वितरण प्रणाली अच्छी है लेकिन भारत जैसे देश में इसके सफल होने में आशंका है। अतः इसकी आलोचना निम्न आधारों पर की जाती हैः

(i) **खुदरा व्यापार का राष्ट्रीयकरण**– सार्वजनिक वितरण प्रणाली एक प्रकार से समस्त खुदरा व्यापार का सरकारीकरण है। भारत में राष्ट्रीयकृत संस्थाओं का अनुभव सुखद नहीं है। अतः यह प्रणाली भी लाभप्रद रूप से चल सके इसमें संदेह है।

(ii) **अफसरशाही**– सरकारी तंत्र में अफसरशाही अधिक चलती है। इसलिए ऐसा तंत्र हमेशा अत्यधिक खर्चीला बन जाता है। उन अफसरों का वेतन भी वितरित वस्तुओं की लागत में शामिल किया जायेगा इसलिए ''उचित दर पर नाम'' रहते हुए भी उपभोक्ता को वस्तु ''अनुचित दर'' पर ही मिलेगी।

(iii) **सरकारी तंत्र में भ्रष्टता**– भ्रष्टता में जितनी शिकायतें व्यापारियों के संबंध में की जाती हैं वे ही सब शिकायतें सरकारी तंत्र के दुकानदारों से नहीं पनप सकेगी। अभी तक इसका कोई प्रमाण नहीं मिला है। जिन वस्तुओं का उत्पादन कम होता है वे काले बाजार में पहुंच जाती हैं। अक्सर यह देखा जाता है कि जो वस्तुएं दुलर्भ हो जाती हैं वे सुपर बाजार या उचित दर की दुकानों पर भी नहीं मिल पाती हैं।

निर्यात संवर्द्धन
(Export Promotion)

निर्यात संवर्द्धन का अर्थ
(Meaning of Sales Promotion)

''निर्यात संवर्द्धन से अर्थ निर्यात प्रोत्साहन से लगाया जाता है जिसमें निर्यात वद्धि के लिए पुराने निर्यातकर्ताओं को तथा नवीन कार्यकर्ताओं को निर्यात करने के लिए प्रोत्साहित किया जाता है।'' (i) इनके लिए उन्हें नगद सहायता दी जाती है। (ii) बैंकों से ऋण प्रदान किये जाते हैं। (iii) कुछ पूंजीगत एवं अन्य आवश्यक मशीनों व कच्चे माल को निर्यात के बदले में आयात करने की अनुमति दी जाती है। (iv) निर्यात के लिए भेजे जाने वाले माल व रेल भाड़े व सामुद्रिक भाड़े में छूट दी जाती है। (v) निर्यात करने वाली संस्थाओं को आय–कर में छूट दे दी जाती हैं।

भारत में निर्यात संवर्द्धन की आवश्यकता
(Need for Export Promotion in India)

भारत में निर्यात संवर्द्धन की आवश्यकता निम्न कारणों से अधिक है।

(i) **प्रतिकूल व्यापार संतुलन को कम करने के लिए (To lessen imbalance in Balance of Trade):** स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात् भारत का व्यापार दो वर्षों को छोड़कर शेष सभी वर्षों में प्रतिकूल (unfavourable) रहा है। अतः असंतुलित व्यापार को संतुलित करने के लिए निर्यात संवर्द्धन की आवश्यकता है।

(ii) **विदेशी ऋण भार को कम करने के लिए (To lessen the burden of foreign debt):** असंतुलित विदेशी व्यापार एवं आर्थिक योजनाओं के दबाव ने भारत सरकार के लिए आवश्यक कर दिया कि वह विदेशी सरकारों व अंतर्राष्ट्रीय संस्थानों से ऋण ले। यह क्रम वर्षों चलने के उपरान्त विदेशी ऋणों की मात्रा दिनों–दिन बढ़ती चली गयी है। इन ऋणों की वापसी व ब्याज आदि के भुगतान के लिए आवश्यक है कि निर्यात संवर्द्धन की नीति अपनायी जाये।

(iii) **विकास योजनाओं की सफलताओं के लिए (For the success of Development Plans):** निर्यात वद्धि के फलस्वरूप ही विकास योजनाओं के लिए आवश्यक मशीनरी व साज–सज्जा आयात की जा सकती है। अतः निर्यात संवर्द्धन आवश्यक है।

(iv) **नवीन वस्तुओं के निर्यात के लिए (For the Export of New Products):** आर्थिक योजनाओं के अंतर्गत देश के अनेक नये–नये कारखाने स्थापित हुए हैं। जो देश की आन्तरिक आवश्यकताओं की पूर्ति के बाद निर्यात करने में समर्थ हो सकेंगे। अतः यह उचित ही है कि नवीन वस्तुओं से निर्यात के लिए कोई प्रोत्साहन कार्यक्रम अपनाया जाये।

(v) **स्वावलम्बी अर्थव्यवस्था बनाने के लिए (For the Development of Self Sufficient Economy):** देश को विदेशी ऋणों के भार से मुक्ति दिलाने एवं आत्मनिर्भर बनाने के लिए यह आवश्यक है कि निर्यात बढ़ाये जायें।

निर्यात वद्धि के लिए सरकार द्वारा अपनाये गये उपाय
(Measures taken by Govt. to increase Exports)

स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद से ही भारत सरकार ने इस संबंध में प्रयास किये हैं तथा अनेक समितियां बिठायी हैं जैसे–गोरेवाला समिति 1949. डिसूजा समिति 1957, मुदालियर समिति 1961, टण्डन समिति 1970 तथा अलैक्जेण्डर समिति 1977। इन समितियों की सिफारिशों के फलस्वरूप निर्यात वद्धि के लिए भारत सरकार ने निम्न प्रयास किये हैं।

1. **व्यापार बोर्ड (Board of Trade):** देश के विदेशी व्यापार से संबंधित समस्याओं एवं नीतियों की समीक्षा करने एवं अपनी सलाह केन्द्रीय सरकार को देने के लिए 1962 में व्यापार बोर्ड की स्थापना की गयी है।

2. **निर्यात संवर्द्धन परिषदें (Export Promotion Councils):** निर्यात व्यापार में उपयोजनाओं, उत्पादकों एवं निर्यातकों के सहयोग को प्राप्त करने के लिए निर्यात परिषदें स्थापित की गयी हैं। यह परिषदें उत्पादकों को निर्यात वद्धि के लिए सलाह देती हैं। आजकल इस प्रकार की 19 परिषदें हैं जो अलग–अलग वस्तुओं के लिए हैं जैसे– काजू, सूती वस्त्र, रेशम, रासायनिक पदार्थ, खेल का सामान, मामले, तम्बाकू, चमड़ा आदि।

3. **वस्तु मण्डल (Commodity Boards):** सरकार ने कुछ वस्तुओं के लिए अलग–अलग वैधानिक निगम स्थापित किये हैं जिनका कार्य अपनी–अपनी वस्तु के उत्पादन विकास एवं निर्यात के लिए कार्य करना है। यह वस्तु हैं–चाय, कॉफी, इलायची, रबर व तम्बाकू।

4. **भारतीय विदेशी व्यापार संस्थान (Indian Institute of Foreign Trade):** नयी दिल्ली में 1964 में भारतीय विदेशी व्यापार संस्थान के नाम से एक संस्था स्थापित हो गयी है जिसका मुख्य कार्य विदेशी व्यापार के लिए कार्यकर्ताओं को प्रशिक्षण देना व विदेशी व्यापार के संबंध में बाजार सर्वेक्षण एवं अनुसंधान करना है।

5. **निर्यात निरीक्षण परिषद (Export Inspection Council):** निर्यात (किस्म नियंत्रण एवं निरीक्षण अधिनियम), 1963 के अन्तर्गत, निर्यात निरीक्षण परिषद बनायी गयी है। इसका कार्य निर्यात के लिए माल लादने से पूर्व वस्तुओं का निरीक्षण करना है जिससे कि क्वालिटी की वस्तुएं ही निर्यात हो सकें।

6. **व्यापार विकास संस्थान (Trade Development Authority):** इस संस्थान की स्थापना 18 फरवरी, 1971 में हुई है। इसका कार्य छोटे एवं मध्यम आकार वाली संस्थाओं के साहसियों को निर्यात के लिए प्रेरित करना तथा उनको इस कार्य के लिए आवश्यक सहायता प्रदान करना है।

7. **निर्यात साख एवं गारण्टी निगम (Export Credit and Guarantee Corporation):** यह निगम 1964 में स्थापित किया गया है। इसका कार्य निर्यात संबंधी जोखिम का बीमा करना एवं निर्यातकर्ताओं को इस संबंध में आर्थिक साख की सुविधाएं देना है।

8. **भारतीय व्यापार मेला एवं प्रदर्शनी परिषद तथा वाणिज्यक प्रचार निदेशालय (Indian Council for Trade Fair & Exhibitions and Directorate of Commercial Publicity):** परिषद एक स्थायी संस्था है जिसका कार्य देश व विदेश में निर्यात संवर्द्धन के उद्देश्य से विदेशों में औद्योगिक एवं व्यापारिक मेले एवं प्रदर्शनियां आयोजित करना है जिससे वहां की जनता भारतीय वस्तुओं के बारे में जान सके। भारत सरकार का वाणिज्यिक प्रचार निदेशालय भी इसमें सहायता करता है और एक पूरक संस्था का पार्ट अदा करता है। इसके द्वारा विदेशों में आयोजित अन्य प्रदर्शनियों में भारतीय मण्डप लगता है जिसमें भारतीय वस्तुओं का प्रदर्शन किया जाता है। अब यह कार्य भारतीय व्यापार मेला प्राधिकरण (Trade Fair Authority of India) देखता है।

9. **निर्यात गह (Export House):** 1 जुलाई, 1968 से सरकार के द्वारा उन प्रमुख संस्थाओं को मान्यता प्रदान की जाती है जो निर्यात में अग्रणी हैं। इन मान्यता प्राप्त संस्थाओं को विपणन विकास निधि से सरकार द्वारा उनकी अनेक क्रियाओं के लिए आर्थिक सहायता प्रदान की जाती है।

10. **शत प्रतिशत निर्यातोन्मुख इकाइयों की सुविधा (Hundred Percent Export-Oriented Units):** जनवरी 1981 से सरकार ने शत–प्रतिशत निर्यात करने वाली संस्थाओं को बढ़ावा देने के लिए एक योजना लागू की है जिसके अन्तर्गत इन इकाईयों को निर्यात करने के लिए सभी प्रमुख संभव सुविधाएं दी जाती हैं।

11. **भारतीय पैकेजिंग संस्थान (Indian Institute of Packaging):** यह संस्थान 1966 में बम्बई में स्थापित किया गया है। इसका कार्य निर्यात एवं आन्तरिक सामान के पैकेजिंग का अध्ययन कर उन्नति के सुझाव देना है। इसके लिए प्रशिक्षण प्रोग्राम व विचारगोष्ठी आदि की व्यवस्था इसके द्वारा की जाती है।

12. **भारतीय पंचायत परिषद (Indian Council of Arbitration):** भारतीय पंचायत परिषद् 1965 में स्थापित की गयी है जिसका कार्य व्यापारिक विवादों विशेष रूप से विदेशी व्यापार संबंधी विवादों को निपटाना है।

13. **समुद्री वस्तु निर्यात विकास संस्था (Marine Products Export Development Authority):** 1972 में कोचीन में समुद्री वस्तु निर्यात विकास संस्थान स्थापित की गयी जिसका कार्य समुद्री वस्तु उद्योग का विकास, निर्यातों की दष्टि से विशेष रूप से करना है।

14. **निर्यात प्रक्रियन क्षेत्र (Export Processing Zone):** बम्बई में सान्ताक्रुज, काण्डला, कोचीन, मद्रास, फाल्टा व नोएडा में निर्यात प्रक्रियन क्षेत्र स्थापित किये गये हैं। जिन इकाईयों को प्रवेश दिया जाता है उन्हें अपना शत–प्रतिशत उत्पादन निर्यात करना अनिवार्य होता है।

15. **भारतीय राज्य व्यापार निगम (State Trading Corporation of India):** भारतीय राज्य व्यापार निगम की स्थापना मई 1956 में हुई है। इसकी स्थापना का उद्देश्य उन वस्तुओं एवं पदार्थों में आयात एवं निर्यात करना है जिनको निगम निश्चित करें। भारतीय राज्य व्यापार निगम के कार्यों में सहायता प्रदान करने के लिए पांच निगम और गठित किये गये हैं। (1) परियोजना एवं उपस्कर निगम, (2) हस्तशिल्प तथा हस्तकरघा निर्यात निगम, (3) भारतीय काजू निगम, व (4) राज्य रसायन एवं भेषज निगम, (5) भारतीय चाय व्यापार निगम। इसके अतिरिक्त खनिज पदार्थों के तथा धातुओं के लिए ''खनिज एवं धातु व्यापार निगम'' (Mines & Minerals Trading Corporation) की स्थापना की गई है।

16. **व्यापारिक समझौते (Trade Agreements):** भारत ने बहुत से देशों से द्विपक्षीय व बहुपक्षीय व्यापारिक समझौते किये हैं जिनके फलस्वरूप निर्यातों में वद्धि हुई है।

17. **व्यापारिक प्रतिनिधि (Trade Representative):** भारत सरकार ने निर्यातों में वद्धि करने के उद्देश्य से अपने 50 से भी अधिक दूतावासों कार्यालयों में व्यापारिक प्रतिनिधियों की नियुक्ति की है। इन प्रतिनिधियों का कार्य उन देशों में सर्वेक्षण कर इस बात का पता लगाना है कि वहां भारत की किन वस्तुओं की मांग हो सकती है।

18. **निर्यात को प्राथमिक क्षेत्र के रूप में मान्यता (Export Trade Recognised as a Priority Sector):** निर्यात करने वाली संस्थाओं को प्राथमिकता के आधार पर सरकार व रिजर्व बैंक द्वारा साख सुविधाएं उपलब्ध की जाती है। उनसे कम दर पर ब्याज ली जाती है। बैंक लदान से पूर्व व लदान के बाद (Pre-Shipment & Post Shipment) दोनों पर अग्रिम प्रदान करती है। रिजर्व बैंक इस प्रकार के अग्रिम व ऋणों पर पुनर्वित सुविधाएं प्रदान करती है।

19. **निर्यात आयात बैंक (Export-Import Bank):** 1 जनवरी, 1982 को निर्यात आयात बैंक की स्थापना की गयी है जिसका कार्य विदेशी व्यापार में वित्तीय सुविधाएं प्रदान करना है।

20. **विपणन विकास निधि (Marketing Development Fund):** भारत सरकार ने जुलाई 1963 में विपणन विकास निधि की स्थापना की है। इस निधि में से उन भारतीय उत्पादकों व निर्माताओं को वित्तीय सहायता प्रदान की जाती है जो विदेशों में भारतीय वस्तुओं के निर्यात के लिए प्रयत्न करते हैं।

21. **अन्य उपाय (Other Methods):** निर्यात वद्धि के लिए कई उपाय किये गये हैं जैसे– (i) निर्यात प्रक्रिया को सरल बनाना, (ii) निर्यात की जाने वाली वस्तुओं के लिए आयातों पर कम आयात शुल्क लगाना या बिल्कुल न लगााना, (iii) कुछ वस्तुओं के लिए निर्यात लाइसेंस आवश्यक न होना, (iv) निर्यात के लिए नगद सहायता देना, आदि।

निर्यात वद्धि के लिए सुझाव
(Suggestions for Export Promotion)

भारत के निर्यात व्यापार में और वद्धि लाने के लिए निम्नलिखित सुझाव दिये जाते हैंः

(1) **निर्यात विपणन अनुसंधान (Export Marketing Research):** भारत सरकार, व्यापारिक संघों व भारतीय विदेशी व्यापार संस्थान आदि को विपणन अनुसंधान कराना चाहिए और इस बात का पता लगाना चाहिए कि विदेशों में किन–किन वस्तुओं की मांग है जिससे कि उस प्रकार की वस्तुओं का उत्पादन कर निर्यात किया जा सके।

(2) **अधिक एवं प्रभाव प्रचार (More and Effective Publicity):** भारत सरकार व व्यापारियों को विदेशों में भारतीय वस्तुओं का विज्ञापन एवं प्रचार करना चाहिए जिससे कि वहां पर उत्पाद की मांग उत्पन्न हो सके और उसको पूरा कर निर्यातों को बढ़ाया जा सके।

(3) **निर्यात उत्पादों की किस्म एवं डिजाइनों में सुधार (Improveemnt in Quality & Design of Export Products):** विदेशों में प्रतिस्पर्द्धा से मुकाबला करने के लिए भारतीय निर्माताओं को अपनी–अपनी वस्तुओं की किस्में व डिजाइनों में सुधार करना चाहिए तथा किस्म नियंत्रण पर विशेष आंख रखनी चाहिए जिससे कि विदेशियों को अपनी आशाओं के अनुरूप वस्तु मिल सके। इससे निर्यात वद्धि को सहायता मिलेगी।

(4) **वस्तुओं की लागत में कमी (Reduction in Costs):** निर्माताओं को वस्तुओं की लागतों में कमी करनी चाहिए जिससे कि वस्तुएं अन्तर्राष्ट्रीय लागतों पर तैयार हो सकें और प्रतियोगिता में सफलता प्राप्त कर सकें।

(5) **निर्यात प्रोत्साहन प्रेरणाएं (Incentives to Export Promotion):** भारत सरकार को निर्यात प्रोत्साहन के लिए और अधिक प्रेरणा देनी चाहिए। इसके लिए (1) सहायता (2) आयात अधिकार जैसे कारगर हथियारों का अधिकाधिक उपयोग किया जा सकता है। सहायता से अर्थ निर्यात की रकम का एक निश्चित प्रतिशत निर्यातकर्ता को नकद देने से है। आयात अधिकार में निर्यातकर्ता को उसके द्वारा अर्जित विदेशी मुद्रा की मात्रा का एक निश्चित प्रतिशत के मूल्य की वस्तुओं के आयात के लिए अनुमति दे दी जाती है।

(6) **वित्तीय व अन्य सुविधाएं (Financial & Other Facilities):** यद्यपि निर्यात करने वाले उद्योगों को रिजर्व बैंक व अन्य वित्तीय संस्थाओं द्वारा वित्तीय सहायता दी जा रही है लेकिन फिर भी इसमें गति लाने की आवश्यकता है। इसके अतिरिक्त इन उद्योगों को कच्चा माल व बिजली आदि को भी प्राथमिकता के आधार पर उपलब्ध कराया जाना चाहिए जिससे कि वे अवरुद्ध उत्थान कर सकें और निर्यात वद्धि में अपना पूर्ण योग दे सकें।

(7) **व्यापारिक समझौते (Trade Agreements):** जिन देशों ने विदेशी माल के आयात पर प्रतिबन्ध लगा रखे हैं उन देशों से भारत को द्विपक्षीय व बहुपक्षीय समझौते करने चाहिए जिससे कि भारतीय माल वहां प्रवेश कर सके और कुल निर्यात बढ़ सके।

अध्याय-5
क्रेता व्यवहार
(Consumer Behaviour)

परिचय
(Introduciton)

क्रेता का अर्थ वस्तु के क्रय करने वाले से है। यह क्रेता दो प्रकार के होते हैं – एक तो वे जो वस्तुओं को कच्चे माल के रूप में क्रय करते हैं; जैसे कारखाने के मालिक द्वारा वस्तु बनाने के लिए वस्तुओं को क्रय करना, दूसरे वे जो वस्तुओं को स्वयं उपभोक्ता के लिए क्रय करते है यहां क्रेता का अर्थ उन उपभोक्ताओं से है जो वस्तुओं को स्वयं उपभोग के लिए क्रय करते हैं। विपणन में उपभोक्ता की भूमिका का बहुत बड़ा महत्व है। इसी कारण आज विपणन उपभोक्ता उन्मुखी (Consumer Oriented) है और उपभोक्ता को (The Consumer is King) राजा माना जाता है। विपणन की प्रत्येक क्रिया में उपभोक्ता का अपना महत्वपूर्ण स्थान है। उपभोक्ता विपणन क्रियाओं का केन्द्र बिन्दू है। ग्राहकों से सही तथा इच्छित परिणामों को प्राप्त करने के उद्देश्य से उचित विपणन मिश्रण प्रदान करना ही विपणन रीति नीति (Marketing Strategy) का अन्तिम उद्देश्य है क्रेता व्यवहार का अध्ययन विपणन योजना तथा नीति का आधार होता है अतः क्रेता व्यवहार का अध्ययन अत्यंत अनिवार्य है।

क्रेता व्यवहार का अर्थ
(Meaning of Consumer Behaviour)

'व्यवहार' विशिष्ट 'आचरण' अथवा 'तरीके' का द्योतक है। इस दष्टि से वस्तुओं एवं सेवाओं की खरीद के समय जो आचरण क्रेताओं द्वारा किया जाता है या किया जा सकता है। उसे क्रेता व्यवहार की संज्ञा दी जा सकती है। विपणन क्षेत्र के विद्वानों का कहना है कि – क्रेता व्यवहार वह प्रक्रिया है जो किसी वस्तु या ब्रांड के क्रय सम्बन्धी निर्णयों तथा चयन को बताती हैं। अन्य शब्दों में, "क्रेता अपनी आवश्यकताओं और इच्छाओं की संतुष्टि के लिए क्या, कब, कितनी कैसी, कहाँ तथा किससे वस्तुऐं एवं सेवाएँ खरीदते हैं और ऐसी खरीद जिस व्यवहार का परिणाम होती है, उसे क्रेता व्यवहार कहा जा सकता है। "क्रेता या उपभोक्ता व्यवहार से अर्थ उपभोक्ताओं या ग्राहकों की क्रय आदतों, क्रय प्रवत्तियों, क्रय ढंगों व क्रय प्रेरणाओं के अध्ययन से लगाया जाता है।"

वस्तुओं तथा सेवाओं को क्रय करते समय जो आचरण, व्यवहार या तरीका क्रेताओं/उपभोक्ताओं के द्वारा अपनाया जाता है क्रेता व्यवहार अथवा उपभोक्ता व्यवहार कहलाता है।

"दूसरे शब्दों में, उपभोक्ता व्यवहार के अन्तर्गत इन चार बातों का अध्ययन किया जाता है—1. उपभोक्ता कब (When) क्रय करते हैं? 2. क्रय कौन (Who) करता है? (3) उपभोक्ता कैसे (How) क्रय करते हैं? 4. उपभोक्ता कहां (Where) क्रय करते हैं?

1. **उपभोक्ता कब क्रय करते हैं?** (When Consumers Buy?)—विपणन प्रबन्धक को सबसे पहले यह पता लगाना चाहिए कि उपभोक्ता वस्तु को कब क्रय करते हैं? यहां 'कब' से अर्थ तीन बातों से लगाया जाता हैः i. मौसम (Season), ii. सप्ताह का दिन (The day of the week), व iii. दिन का समय (The time of the day)। इन तीनों का विपणन में काफी महत्व है। इन्हीं के अनुरूप विपणन प्रयत्नों को नियोजित किया जाता है।

   कुछ वस्तुएं ऐसी होती हैं जिनकी मांग किसी खास मौसम में काफी होती है। उदाहरण के लिए, शादी के मौसम में बर्तनों व कपड़ों की मांग, जाड़ों में चाय, काफी व ऊनी कपड़े की मांग, गर्मियों में ठंडे पेय पदार्थ की मांग, आदि।

नौकरी वर्ग के व्यक्ति छुट्टी वाले दिन ही क्रय करते हैं। अतः विपणन प्रबन्धक को अपना विज्ञापन छुट्टी वाले दिन से पहले वाले दिन या छुट्टी वाले दिन के प्रातःकाल या छुट्टी वाले दिन को करना चाहिए।

विपणन में उपभोक्ता के क्रय का समय भी महत्वपूर्ण है। समय से अर्थ है कि उपभोक्ता किस समय क्रय करता है—सुबह, दोपहर, शाम व रात्रि। अतः यह कह सकते है कि समय, दिन तथा मौसम का विपणन में काफी महत्व है।

2. **क्रय कौन करता है?** (Who does the buying?)—क्रय करने का कार्य कौन करता है इसके अन्तर्गत निम्न तीन तत्वों को शामिल करते हैं i. वास्तविक रूप में क्रय कौन करता है? ii. क्रय करने का निर्णय कौन लेता है? iii. वस्तु को वास्तविक रूप में प्रयोग में कौन लाता है? साधारणतया बच्चों के लिए क्रय उनके माता–पिता के द्वारा किया जाता है। पत्नी के लिए क्रय उसके पति के द्वारा किया जाता है। पति अपने लिए भी स्वयं क्रय कर सकते हैं। एक शिक्षित परिवार में पत्नी अपने लिए, बच्चों के लिए व पति के लिए भी क्रय करती है।

   विपणन पर इस बात का प्रभाव पड़ता है कि क्रय कौन करता है? जैसे क्रय करने वाले होते हैं उसी के अनुरूप वस्तु बनायी जाती है और वैसे ही वितरण माध्यम अपनाया जाता है। उन्हीं के अनुरूप समस्त विज्ञापन कार्यक्रम, विज्ञापन अपीलें, विज्ञापन कापी, रेडियो और टेलीविजन विज्ञापन, आदि किये जाते हैं तथा विपणन नीतियां व रण नीतियां अपनायी जाती हैं। यदि वस्तु बच्चों द्वारा क्रय की जाती है तो ऐसी वस्तु में वे सभी गुण होने चाहिए जो बच्चे चाहते हैं तथा विज्ञापन के विक्रय प्रवर्तन के ढंग भी ऐसे होने चाहिए जो उन तक पहुंच सकें।

3. **उपभोक्ता कैसे क्रय करते हैं?** (How consumer buy?)—उपभोक्ता कैसे क्रय करते है इसका असर विपणन क्रियाओं पर पड़ता है। उपभोक्ता कैसे क्रय करते हैं इसके अन्तर्गत उपभोक्ता की आदतों तथा व्यवहार (Habits & Behaviour) का अध्ययन किया जाता है। बाजार में क्रेता विभिन्न तरह के होते है।

   कुछ नकद खरीदना पसन्द करते हैं तो कुछ उधार। यदि किसी स्थान पर उधार लेने वालों की संख्या अधिक है तो व्यवसायी को उधारी देने की नीति अपनानी चाहिए। यदि ऐसा नहीं किया गया तो व्यवसायी अपने उद्देश्यों में सफल नहीं होगा। इसी प्रकार जो उपभोक्ता बड़े पैकिंग में वस्तु क्रय करना पसन्द करते हैं उनको वस्तु बड़े पैकिंग में दी जानी चाहिए। व्यवसाय में सफलता पाने के लिए क्रय आदतों एवं व्यवहारों के अनुसार वस्तु एवं मूल्य संबंधी नीतियां निर्धारित की जाती हैं, विपणन कार्यक्रम बनाये जाते हैं, तथा प्रबन्धकीय निर्णय लिये जाते हैं।

4. **उपभोक्ता कहां क्रय करते हैं?** (Where consumer buy?)—उपभोक्ता कहां क्रय करते है के अर्न्तगत—i. उपभोक्ता क्रय करने का निर्णय कहां लेता है और ii. वास्तविक रूप से क्रय कहाँ से होता है? को शामिल किया जाता है।

   प्रायः यह पाया गया है कि उपभोक्ता कुछ वस्तुओं के संबंध में क्रय करने का निर्णय अपने परिवार के सदस्यों के साथ बैठकर घर पर ही लेता है। जैसे रेडियो, टेलीविजन, आदि कुछ वस्तुएं को खरीदने का निर्णय करके वस्तु को क्रय करने नहीं जाता है बल्कि उसको जो वस्तु किसी दुकान या स्टोर पर अच्छी लगती है उसको क्रय करने का निर्णय वहीं दुकान पर ले लेता है। कुछ मामलों में क्रय करने का निर्णय तो घर पर लेता है लेकिन ब्राण्ड की पसन्द दुकान पर ही करता है। ऐसी स्थिति में वस्तु की पैकेजिंग अच्छी होनी चाहिए। विज्ञापन भी किया जाना चाहिए जिससे कि उपभोक्ताओं को वस्तुओं की ब्राण्ड की जानकारी हो सके और उनको अपनी ओर आकर्षित किया जा सके।

   उपभोक्ताओं का निर्णय स्थान, निर्माता एवं मध्यस्थों के विक्रय स्थान संबंधी निर्णयों एवं वस्तु संबंधी निर्णयों को प्रभावित करता है।

क्रेता व्यवहार के अध्ययन का महत्व

(Importance of Studying Buyer Behaviour)

उत्पाद अभिमुखीकरण (Production Oriented) विपणन विचारधारा के अनुसार अधिक से अधिक ध्यान उत्पादन तथा वितरण पर देना चाहिए। इस विचारधारा के अनुसार जितना माल बनाया जाएगा बिक जाएगा। परन्तु उपभोक्ता अभिमुखीकरण (Consumer Oriented) विचारधारा के अनुसार विपणन के अन्तर्गत यदि प्रबन्धक उपभोक्ता संतुष्टि (Consumer satisfaction) तथा उपभोक्ता कल्याण (Consumer welfare) की तरफ ध्यान नहीं देता वह बाजार से बाहर कर दिया जाएगा। आज के युग में क्रेता बाजार का राजा है (Consumer is the king) इसलिए क्रेता व्यवहार के अध्ययन का महत्व अधिक हो जाता है। निम्नलिखित बिन्दु (Points) क्रेता व्यवहार के महत्व को स्पष्ट करते हैं—

1. **गला-काट प्रतियोगिता** (Cut-throat Competition)—प्रत्येक वस्तु के अनेक उत्पादक तथा विक्रेता हैं। प्रत्येक उत्पादक अपनी वस्तु को बाजार में बेचना चाहता है। इसलिए बाजार में तीव्र प्रतियोगिता ही नहीं, अपितु गला–काट प्रतियोगिता है यानी विक्रेता अपनी वस्तु को उत्पादन लागत से भी कम कीमत पर विक्रय कर देता है। इस कड़ी प्रतियोगिता से वही उत्पादक अपना अस्तित्व बचाए रख सकता है जिसने अपने क्रेताओं के व्यवहार के अनुसार अपने विपणन कार्यक्रम और नीतियों का निर्माण किया हो।

2. **विक्रय संवर्द्धन निर्णय** (Sales Promotion Decision)—वस्तु के विक्रय वद्धि के लिए विक्रय प्रवर्तन संबंधी नीति क्रेता/उपभोक्ताओं के क्रय–व्यवहार से कुछ सीमा तक प्रभावित होती है। इस प्रकार क्रेता व्यवहार के अध्ययन के बिना विक्रय संवर्द्धन के प्रयास सफल नहीं हो सकते हैं; क्योंकि वस्तु कौन खरीद रहा है? किसके द्वारा वस्तु खरीदी जा रही है? वस्तु की खरीद के निर्णय को कौन प्रभावित कर रहा हैं? क्रेता वस्तु को किस समय खरीद रहा है? कहां से खरीद रहा है? और कैसे खरीद रहा है? आदि बातें विक्रय प्रवर्तन तथा प्रचार कार्यक्रमों को प्रभावित करती हैं। विज्ञापन (Advertisement) वैयक्तिक विक्रय रीति–नीति (Personal Selling Strategy) संबंधी निर्णय क्रेता के व्यवहार के आधार पर ही लिए जाते हैं अतः क्रेता व्यवहार का अध्ययन अत्यन्त अनिवार्य है।

3. **उत्पाद नीतियां** (Production Policies)—उत्पत्ति से संबंधित रीतियों–नीतियों के निर्धारण में क्रेता व्यवहार का अध्ययन बहुत आवश्यक है क्योंकि यदि विक्रेता को यह पता चल जाए कि उसकी वस्तु की पैकिंग को क्रेता बहुत अधिक पसंद करता है इसलिए उसकी वस्तु बाजार में अधिक बिकती है, तो विक्रेता उस वस्तु की पैकिंग या अमुक गुण पर विशेष ध्यान देकर अधिक उत्पादन कर लाभों में वद्धि कर सकता है।

4. **मूल्य नीतियां** (Price Policies)—बाजार में अनेक वस्तुएं क्रेताओं के द्वारा इसलिए खरीदी जाती हैं कि उन वस्तुओं से क्रेता का समाज में मान–सम्मान बढ़ता है। विक्रेता ऐसी वस्तुओं का मूल्य अधिक रख सकता है जैसे—हीरे और जवाहरात का मूल्य बहुत अधिक होने के कारण धनी वर्ग इनको खरीदता है। यदि इनका मूल्य बहुत कम हो जाए तो इनकी मांग कम हो जायेगी क्योंकि धनी वर्ग फिर इनको नहीं खरीदेगा। इसी प्रकार धनी वर्ग सोने (Gold) के आभूषण खरीदना पसन्द करता है, चांदी के नहीं, क्योंकि स्वर्ण का मूल्य अधिक है तथा इसके आभूषण पहनना सम्मान का प्रतीक होता है। वस्तु की प्रकृति तथा उसकी सामाजिक स्थिति उसकी खरीद पर प्रभाव डालती है। इस प्रकार प्रभावी प्रतियोगी तथा स्वीकारणीय कीमत तथा वितरण नीतियों के विकास में क्रेता व्यवहार अध्ययन बहुत अधिक उपयोगी हो सकता है।

5. **बाजार भिन्नतायें** (Market Difference)—वर्तमान बाजारों में अनेक भिन्नतायें होती हैं। इसलिए एक–सी विपणन रीतियां–नीतियां और कार्यक्रम इन बाजारों की आवश्यकताओं की पूर्ति नहीं कर सकते हैं। वर्तमान बाजारों की विशेषताओं को देखते हुए यह नहीं कहा जा सकता कि जिस विक्रेता या फर्म ने इस वस्तु के विक्रय में सफलता प्राप्त कर ली है वह विक्रेता या फर्म दूसरी वस्तु के विपणन में भी सफल होगी। क्योंकि प्रत्येक बाजार में क्रेता अलग–अलग होते हैं, उनकी अलग–अलग आवश्यकतायें तथा विशेषतायें होती हैं। प्रत्येक बाजार में क्रेता का व्यवहार (Buyer Behaviour) तथा क्रय प्रयोजन (Buyer Motive) भिन्न–भिन्न होता है जिसका अध्ययन किये बगैर विपणन नीतियों–रीतियों का निर्धारण नहीं किया जा सकता है।

क्रेता-व्यवहार के निर्धारक तत्व
(Determinants of Buyer Behaviour)

उपभोक्ता या क्रेता–व्यवहार सदा एक–सा नहीं रहता है। उसमें समय–समय पर परिवर्तन होता रहता है, यह परिवर्तन विभिन्न घटकों के कारण होता है। इस प्रकार कहा जा सकता है कि उपभोक्ता या क्रेता–व्यवहार को निर्धारित करने वाले बहुत से घटक हैं।

1. मनोवैज्ञानिक घटक
(Psychological Factors)

मानवीय व्यवहार दिमागी प्रक्रिया (Mental Process) की उपज है तथा लक्ष्य अभिमुखी (Goal oriented) होती है। मस्तिष्क प्रणाली की आधारभूत आवश्यकताएं, छवि तथा सीखने–सिखाने जैसे शब्दों के माध्यम से समझाया जा सकता है।

a. **आधारभूत आवश्यकताएं** (Basic needs)—क्रेता की कुछ आवश्यकताएं आधारभूत होती हैं जिनको क्रेता सर्वप्रथम पूरा करना चाहता है। इन आवश्यकताओं के पूरा करने के बाद ही उसका ध्यान अन्य वस्तुओं पर जाता है। ए. एस. मास्लो के अनुसार यह आवश्यकताएं क्रमानुसार इस प्रकार की होती हैं—i. **शरीर-विज्ञान आवश्यकताएं**—इनमें वे आवश्यकताएं होती हैं जिनको पूरा करना मानव जीवन को बनाये रखने के लिए आवश्यक है; जैसे, खाना, पीना, सोना आदि। ii. **सुरक्षा आवश्यकताएं**—आजकल प्रत्येक व्यक्ति शारीरिक सुरक्षा तो चाहता ही है लेकिन उसके साथ आर्थिक व सामाजिक सुरक्षा भी चाहता है। iii. **प्रेम आवश्यकताएं**—प्रत्येक व्यक्ति अपने पारिवारिक सदस्यों से प्रेम करता है। जिस परिवार में जितना अधिक प्रेम होता है समाज में उसकी उतनी ही अधिक प्रतिष्ठा होती है। iv. **सम्मान आवश्यकताएं**—प्रत्येक व्यक्ति समाज में अपना स्थान ऊंचा चाहता है। यदि उसका स्थान समाज में नीचा होता है तो उसके मन में हीनता की भावना घर कर जाती है। उच्च सम्मान आत्मविश्वास को पैदा करता है। v. **स्वयं यथार्थवाद की आवश्यकता**—ये आवश्यकताएं अधिकतम शिक्षा तथा योग्यता प्राप्त करने से संबंधित होती हैं।

b. **छवि** (Image)—किसी विषय के संबंध में एक व्यक्ति के मस्तिष्क में जो छाप होती है उसको छवि कहते हैं। छवि एक प्रकार की तस्वीर है जो एक व्यक्ति के मस्तिष्क में होती है। इसका आधार वास्तविक हो ऐसा सभी अवसरों पर संभव नहीं है। एक क्रेता का व्यवहार इस छवि से अवश्य ही प्रभावित होता है। छवि कई प्रकार की होती हैं, जैसे i. आत्म–छवि, ii. वस्तु–छवि, एवं iii. ब्राण्ड–छवि। i. **आत्म-छवि**—आत्म–छवि एक तस्वीर है जो कि एक व्यक्ति अपने संबंध में रखता है। विभिन्न व्यक्तियों की विभिन्न आत्म–छवियां होती हैं। इनका प्रभाव विपणन क्रियाओं पर पड़ता है। जैसे प्राइमरी स्कूल के अध्यापक का व्यवहार एक विश्वविद्यालय के प्रोफेसर से भिन्न होता है, क्योंकि दोनों की आत्म–छवि भिन्न–भिन्न है। व्यक्ति उन वस्तुओं को क्रय करना पसन्द करता है जिसकी छवि उसकी आत्म–छवि से मिल जाती है। ii. **वस्तु-छवि**—जब एक व्यक्ति एक वस्तु के बारे में सोचता है तो एक तस्वीर उसके मस्तिष्क में आ जाती है इसी को वस्तु–छवि कहते हैं। यह छवि एक वस्तु के बारे विभिन्न व्यक्तियों में भिन्न–भिन्न होती है। यह वस्तु–छवि एक व्यक्ति से वस्तु क्रय करने के व्यवहार पर प्रभाव डालती है। iii. **ब्राण्ड-छवि**—एक निर्माता की एक ब्राण्ड के बारे में एक उपभोक्ता जो छाप अपने मस्तिष्क में बना लेता है वह ब्राण्ड–छवि कहलाती है। यह छवि ब्राण्ड के प्रयोग से या व्यक्तियों के कहने से या निर्माता की ख्याति से या वस्तु के पैकिंग से या ब्राण्ड के नाम से या विज्ञापन आदि से बनती है।

c. **सीखना** (Learning)—एक उपभोक्ता या क्रेता बाहरी घटकों के साथ–साथ आन्तरिक घटकों से भी प्रभावित होता है। इन घटकों में सीखना (Learning) भी एक है। एक व्यक्ति की प्रेरणाएं उसकी क्रियाओं का निर्देशन करती हैं। वे क्रियाएं जो उसकी प्रेरणाओं से मेल खा जाती हैं उनको पूरा करने से उसको संतुष्टि व प्रसन्नता होती है।

सीखने का तरीका अनुकूलन (Conditioning) है। बार–बार दुहराना व अनुकूलन सीखने में सहायक होते हैं। लेकिन यह दोनों प्रेरणाओं पर आधारित हैं। यदि वस्तु क्रेता की प्रेरणा के अनुसार है तो वह उसके बारे में सीख लेता है। लेकिन जो वस्तु उसकी प्रेरणा के अनुसार नहीं होती है उसको सीखने में देर लगती है। यदि एक व्यक्ति के दातों में पानी लगता है व मांजते समय खून निकलता है तो उसको उस मंजन एवं उसके निर्माता का नाम याद बना रहता है जो यह विज्ञापन करता है कि उसका मंजन इन दोनों में लाभ देने वाला है। साथ ही कुछ नामों को आसानी से सीखा (Learn) जा सकता है जैसे 'एस्प्रो' या 'एनासिन' लेकिन यदि इन दवाओं का नाम 'सरदर्द दूर करने की दवा' रखा जाये तो उसको याद नहीं रखा जा सकता है।

यदि क्रेता को किसी बात की याद है अर्थात् उसने किसी वस्तु के बारे में सीखा है तो उसका व्यवहार उस क्रेता जैसा नहीं होगा जिसने इस संबंध में कुछ भी नहीं सीखा है। अतः सीखना भी क्रेता–व्यवहार को प्रभावित करता है।

इस प्रकार हम इस निष्कर्ष पर आते हैं कि छवि एक मनोवैज्ञानिक तथ्य है जिससे एक क्रेता के वस्तु क्रय व्यवहार पर प्रभाव पड़ता है।

2. आर्थिक घटक
(Economic Factors)

आर्थिक तत्वों से अभिप्राय उन तत्वों से है जो उपभोक्ता की आर्थिक स्थिति से संबंधित हैं, आर्थिक तत्वों के अन्तर्गत निम्नलिखित तत्वों को सम्मिलित किया जाता है–

i. **व्यक्तिगत आय** (Personal income)—व्यक्तिगत आय क्रेता की क्रयशक्ति को बहुत प्रभावित करती है। व्यक्ति की आय यह निर्धारित करती है कि उपभोक्ता किस सीमा तक वस्तुओं तथा सेवाओं को क्रय कर सकता है। व्यक्ति की आय में वद्धि प्रायः उसके उपभोग में वद्धि करती है तथा कभी उसके उपभोग में कमी भी कर देती है क्योंकि उपभोक्ता अपनी आय का एक भाग ही व्यय करता है तथा आय का शेष भाग बचत के रूप में रखता है।

ii. **पारिवारिक आय** (Family income)—एक परिवार की आय उसकी बचत एवं क्रय करने के तरीके को प्रभावित करती है। यदि पारिवारिक आय गरीबी की पंक्ति (Poverty Line) से नीचे है तो उनका व्यय आय से अधिक होगा और उनका क्रय–व्यवहार उन व्यक्तियों जैसा नहीं होगा जिनकी आय गरीबी की पंक्ति से काफी ऊंची है।

iii. **उपभोक्ता साख** (Consumer credit)—यदि किसी क्रेता को कोई वस्तु उधार मिल रही है तो उसका व्यवहार कुछ और होता है। लेकिन जब वस्तु नकद मिलती है तो उसका व्यवहार कुछ और होता है। विपणन में उपभोक्ता–साख एक महत्वपूर्ण उपकरण है जिससे बाजार का विकास व संकुचन किया जा सकता है।

iv. **आय की आशाएं** (Income expectations)—यदि किसी व्यक्ति को कुछ आय निकट भविष्य में होने की आशा है तो उसका क्रय–व्यवहार कुछ भिन्न प्रकार का होगा। साधारण तथा भावी आय की आशा एक व्यक्ति को अधिक क्रय करने को प्रेरित करती है जबकि भविष्य में आय की संभावना न होने पर कम क्रय की भावना रहती है।

v. **स्वाधीन आय** (Discretionary income)—एक परिवार की आवश्यक आवश्यकताओं की पूर्ति के बाद यदि उसके पास आय का कुछ भाग व्यय करने के लिए बचा रहता है तो इसी को हम स्वाधीन आय कहते हैं। जैसे खाने, कपड़े व मकान के व्यय के बाद यदि कुछ बचा रहता है तो उनके पास बहुत–से विकल्प होते हैं जिन पर व्यय किया जा सकता है। स्वाधीन आय का परिणाम अधिक व्यय होता है। इसकी विपरीत स्थिति में उपभोक्ता क्रय करने को टाल सकता है। यदि किसी वर्ष स्वाधीन आय है तो फर्नीचर, पंखे, प्रेशर कुकर, आदि को क्रय करने का निर्णय लिया जा सकता है अन्यथा पुराने फर्नीचर, पुराने पंखे व पुराने प्रेशर कुकर से काम चलाया जा सकता है।

सामाजिक घटक
(Social Factors)

मानव सामाजिक प्राणी (Social animal) है और उसका व्यवहार तथा दष्टिकोण सामाजिक घटकों से प्रभावित होता है जैसे परिवार, संस्कृति, पेशा तथा जीने का ढंग आदि।

परिवार (Family)—परिवार एक शक्तिशाली हथियार है जो न केवल व्यक्ति के निर्णयों को ही प्रभावित करता है बल्कि परिवार के सभी सदस्यों के निर्णयों को प्रभावित करता है। पारिवारिक ढांचा, साईज, तथा दष्टिकोण व्यक्ति की ब्राण्ड (Brand) तथा प्राथमिकताओं को निर्धारित करते हैं।

व्यवसाय/पेशा वर्ग (Occupation Group)—किसी व्यक्ति विशेष का पेशा/व्यवसाय क्रय व्यवहार को प्रभावित करता है। जैसे वकील के क्रेता व्यवहार को आसानी से अध्यापक के क्रेता व्यवहार से विभेदात्मक (Differentiate) किया जा सकता है। कम्पनी विभिन्न व्यवसाय वर्ग के लिए अलग से रीति–नीति तय कर सकती है।

सामाजिक वर्ग (Social Class)—समाज विभिन्न स्तर की श्रेणियों (Status Class) में बंटा हुआ है इनका बटवारा आयु, शिक्षा तथा पेशे के आधार पर किया जा सकता है। व्यक्तियों को तीन वर्गों में रखा गया है उच्च, मध्यम तथा निम्न वर्ग। उच्च वर्ग के अन्तर्गत जमींदार, तथा उद्योगपतियों को शामिल किया गया है। डाक्टर तथा वकील को मध्यम वर्ग में रखा गया है तथा निम्न वर्ग में फैक्टरी श्रमिक को रखा गया है।

वातावरण घटक
(Environmental Determinants)

क्रेता व्यवहार बाह्य घटकों द्वारा भी प्रभावित होता है। बाह्य घटकों के अन्तर्गत, राजनैतिक स्थिति, तकनीक, कानून तथा जीवन चक्र शामिल है।

तकनीक (Technology)—तकनीकी परिवर्तन वस्तु अथवा उत्पाद के चुनाव में भिन्नता ला देते हैं। उपभोक्ता द्वारा टेलीविजन (Television), कम्प्यूटर (Computer), मोटर कार (Motor Car) क्रय करते समय तकनीकी विशेषज्ञ की सलाह ली जाती है।

जीवन चक्र (Life Cycle)—मनुष्य को अपने जीवन काल में चार अवस्थाओं—बाल्यावस्था (Childhood), युवावस्था (Adolescene), प्रौढ़ावस्था (Adulthood) और वद्धावस्था (Oldage) से गुजरना पड़ता है जैसे—जैसे जीवन चक्र में परिवर्तन आता है इस प्रकार का परिवर्तन क्रेता व्यवहार को प्रभावित करता है वैसे ही मनुष्य की रूचि, प्रवति तथा प्राथमिकताओं में भी परिवर्तन आ जाता है।

क्रेता व्यवहार एवं क्रय प्रक्रिया
(Buyer Behaviour and Buying Process)

क्रय प्रक्रिया द्वारा भी क्रेता व्यवहार को जाना जा सकता है और तदनुकूल विपणन कार्यक्रमों में संशोधन किये जा सकते हैं क्रय प्रक्रिया के अग्रलिखित पांच चरण बतलाए गए हैं।

इस क्रय निर्णय प्रक्रिया को थोड़ा सरल रूप में पाँच चरणों में विभाजित कर एक माडल के रूप में प्रस्तुत कर सकते हैं।

क्रय प्रक्रिया का माडल
(Model of Buying Process)

चरण (Stages)

I	II	III	IV	V
आवश्यकता की पहचान Need Recognition	उत्पाद की जानकारी/ ध्यान आकर्षण Attention/ Product Awareness	रूचि Interest	विकल्पों का मूल्यांकन Evaluation of Alternatives	क्रय निर्णय एवं क्रय उपरांत व्यवहार Output purchase Decision and Post Purchase Behaviour

1. **आवश्यकता की पहचान (Need Recognition):** क्रय प्रक्रिया का पहला चरण है किसी आवश्यकता का अनुभाव, एक इच्छा अथवा कोई उपभोग की समस्या जिसकी संतुष्टि के बिना तनाव उत्पन्न होने लगे।

2. **उत्पाद की जानकारी ध्यान आकर्षण (Attention/Product Awareness):** एक अत्यधिक व्यस्त व्यक्ति स्कूटर या गाड़ी की आवश्यकता महसूस करे जिसमें अफिस व अन्य स्थान के आने जानें में समय की बचत है। इस आवश्यकता की पहचान होने के कारण उस व्यक्ति का ध्यान किसी स्कूटर, मोटर साइकिल अथवा कार की तरफ आकर्षित हो यह भी हो सकता है कि कुछ स्कूटर व मोटर साइकिल ब्रांडों की उसको जानकारी हो, इस सम्भावना को स्वीकार करते हुए क्रय प्रक्रिया के पहले व दूसरे चरणों के बीच तीर को दोनों दिशाओं में दिखाया गया है। उत्पाद जानकारी के चरण में उपभोक्ता को ऐसे उत्पाद की जानकारी होती है जो उसकी आवश्यकता पूरी कर सकता है। यह जानकारी उपभोक्ता द्वारा स्वयं खोजकर प्राप्त की गई हो अथवा विक्रेता कंपनियों के या मध्यस्थों के विज्ञापन या व्यक्तिगत विक्रय द्वारा मिली हो सकती है।

3. **रूचि (Interest):** रूचि मस्तिष्क में उत्पन्न हुई ऐसी स्थिति को कहते हैं जबकि उपभोक्ता को अपनी आवश्यकता के संदर्भ में उपलब्ध उत्पादों के बारे में जानकारी हो। उपभोक्ता की रूचि का अनुमान इस बात से लगता है कि वह उत्पाद के बारे में अधिक सूचना प्राप्त करने का प्रयास करता है। ऐसी स्थिति में उपभोक्ता सक्रिय रूप में क्रय प्रक्रिया में संलग्न होता है और उत्पाद के बारे मे पूरा ध्यान देता है। यदि उसकी रूचि खत्म हो जाती है तो उसका ध्यान दूसरी ओर चला जाता है और क्रय प्रक्रिया का अन्त हो जाता है।
4. **विकल्पों का मूल्यांकन (Evaluation of Alternatives):** क्रय प्रक्रिया का अगला चरण विकल्पों का मूल्यांकन करना है। इसमें विभिन्न विकल्पों के लाभों और कमियों का मूल्यांकन किया जाता है। और सर्वोत्तम विकल्प के चयन का प्रयास किया जाता है। इस क्रिया में क्रेता का अनुभव व ज्ञान, मित्रों की सलाह, उत्पाद के प्रति झुकाव, पारिवारिक सदस्यों की राय आदि बातों का प्रभाव पड़ता है।
5. **नतीजा-क्रय विर्णय एवं क्रय उपरान्त व्यवहार (Output-Purchase Decision & Post-Purchase behaviour):** क्रय निर्णयः, क्रय प्रक्रिया का अन्तिम नतीजा क्रय के निर्णय तथा क्रय के बाद के व्यवहार के रूप में प्रकट होता है। उपलब्ध उत्पाद किस्मों के मूल्यांकन के उपरान्त उपभोक्ता किसी एक ब्राण्ड के क्रय का निर्णय लेता है। यदि उपभोक्ता उत्पाद को प्रथम बार क्रय कर रहा है तो व्यवहार के दष्टिकोण से यह जांच क्रय (Trial Purchase) ही समझी जायेगी। उपभोक्ता उस उत्पाद को दोबारा क्रय तभी करेगा जबिक वह उससे संतुष्ट हो।

उपभोक्ता व्यवहार सम्बंधी सिद्धांत
(Principles of Consumer Behaviour)

यहाँ हम व्यवहार संबंधी कुछ विचारों ओर सिद्धातों पर संक्षेप में विचार करेंगे और यह देखेंगे कि इनमें उपभोक्ताओं और औद्योगिक प्रयोक्ताओ के क्रय संबंधी आचरण कहां तक शासित होते हैं। ये सिद्धान्त निम्नांकित हैंः–

(अ) स्वाभाविक बनाम सीखे हुए (Inherent vs. Learned)

(ब) भावनात्मक बनाम विवेकपूर्ण (Emotional vs. Rational)

(स) उपभोक्ता एवं उत्पाद सम्बंधी मनोवैज्ञानिक विशेषतायें (Consumer & Product Variables)

(द) निजी छवि का विचार (Concept of Self Image)

(य) समूह प्रभाव (Group Influence)

(अ) स्वाभाविक बनाम सीखे हुए (कत्रिम) उद्देश्यः
(Inherent Vs. Learned Motives)

आचरण या व्यवहार संबंधी अध्ययन अभिप्रेरणा की जानकारी से शुरू होता है। "अभिप्रेरण" (Motivation) का आशय उस व्यवहार से है जो कि किसी व्यक्ति की अन्तर्निहित आवश्यकताओं द्वारा प्रेरित है और इन आवश्यकताओं को पूरा कर सकने वाले लक्ष्यों की प्राप्ति हेतु संचालित होता है।"* इस प्रकार अभिप्रेरण एक तीन अवस्थाओं वाला चक्र (Three stage cycle) है। प्रथमतः एक आवश्यकता, प्रयोजन या इच्छा होती है। यह आवश्यकता "दैहिक" हो सकती है। (जैस कि भूख) अथवा "सीखी हुई कृत्रिम (जैसे कि सामाजिक प्रतिष्ठा के लिए इच्छा) आवश्यकता के द्वारा तनाव (Tension) उत्पन्न होता है, जो फिर व्यक्ति को चक्र की द्वितीय अवस्था साधन संबंधी व्यवहार या आचरण में जो कि तनाव को घटायेगा और आवश्यकता की पूर्ति करेगा, ढकेल देता है। तीसरी अवस्था, "आवश्यकता की पूर्ति करने वाले लक्ष्यों की प्राप्ति" है। उदाहरणार्थ, एक व्यक्ति को आकर्षक उद्यान की आवश्यकता हैं यह आवश्यकता आचरण हो कार्य का नियोजन करना एवं घास के बीज, उर्वरक और उपकरणों का चुनाव करना उत्प्रेरित करती है। वह बीज बोकर और उसकी वद्धि की देखभाल करके अपने लक्ष्य की प्राप्ति करता है।

व्यवहार संबंधी एक प्राचीन सिद्धांत के अनुसार मानवीय क्रिया कुछ मूल प्रवतियों पर आधारित होती है, जोकि मनुष्यों में पायी

---

* Motivation may be defined as "Behaviour that is insitigated by needs within the individual and is directed toward goals that can satisfy these needs."

— Clifford T Morgan: Introduction to Psychology, p. 56

जाती है। अतः विपणनकर्ता सहज विशेषताओं की एक सूची बनाया करते थे ओर यह देखा करते थे कि कौन सी विशेषतायें उनके उत्पादों के क्रय को प्रभावित करती हैं। किन्तु यह सिद्धान्त अपूर्ण प्रमाणित हुआ, क्योंकि इससे यह स्पष्ट नहीं हो सका कि क्यों दो व्यक्ति या दो समूह दिये हुए उत्पादों, ब्रांडों, विज्ञापनों या भण्डारों के प्रति विभिन्न प्रकार से प्रतिक्रियाऐं दिखाते हैं। इस सिद्धान्त की अपूर्णतायें मुख्यतः इस तथ्य के कारण थीं कि व्यवहार पर सीखने सिखाने का जो प्रभाव पड़ता है उसकी इसने उपेक्षा कर दी थी।

अब कुछ समय से मनोविज्ञानियों ने यह अनुभव किया है कि मानवीय व्यवहार वातावरण संबंधी (अथवा सीखी हुई आवश्यकताओं से भी उत्प्रेरित होता है, मात्र सहज दैहिक प्रयोजनों से नहीं। निस्संदेह, हमारी भोजन, पेय, शारीरिक आराम, सेक्स और स्वरक्षा संबंधी दैनिक आवश्यकताएं बहुत शक्तिशाली हैं, किन्तु उनके अतिरिक्त हमारी कुछ सामाजिक आवश्यकतायें भी होती हैं जैसे कि प्रशंसा स्वीकति, हैसियत, प्रतिष्ठा एवं शक्ति प्राप्ति संबंधी आवश्यकताएं। साथ ही सीखी हुई (प्राप्त या कृत्रिम) आर्थिक, राजनैतिक एवं धार्मिक आवश्यकतायें भी क्रियाशील देखी जाती हैं।

दूसरी महत्वपूर्ण बात चक्र की दूसरी अवस्था–साधन रूपी व्यवहार (Instrumental behaviour) के बारें में हैं हमारा अधिकांश साधन व्यवहार मूल प्रवति की अपेक्षा सीखने सिखाने पर निर्भर होता हैं उदाहरणार्थ एक शिशु भूख लगने पर रोयेगा। यह क्रिया का सहज या बिना सीखा हुआ रूप है। बाद में शिशु यह सीख जाता है कि रोना भोजन प्राप्ति का साधन है और इस प्रकार यह (रोना) अब एक सीखा हुआ व्यवहार बन जाता है। अधिक बढ़ा हाने पर व्यक्ति या भूख संतुष्टि संबंधी व्यवहार उसके ज्ञान से अधिकाधिक प्रभावित होने लगता है। उदाहरणार्थ, उसके धार्मिक विश्वास (सीखा हुआ व्यवहार) मांस के उपभोग को प्रभावित करते हैं। उसके सामाजिक प्रयोजन भी उसके वस्त्र, आश्रय, और सेक्स संबंधी व्यवहार को शासित करने लगते हैं। विपणनकर्ता के दष्टिकोण से सीखी हुई (या कृत्रिम) आवश्यकतायें स्वाभाविक (या दैहिक) आवश्यकताओं की अपेक्षा अधिक महत्वपूर्ण हो सकती हैं वयस्क होने के उपरान्त गिन चुने प्रयोजन ही एक स्वाभाविक या बिना सीखे तरीके में संतुष्ट किये जाते हैं। अतः विपणनकताओं को यह पता लगाने की चेष्ठा करनी चाहिए कि कृत्रिम प्रयोजनों और कृत्रिम साधन–व्यवहार से क्रिया किस प्रकार प्रभावित होती है। किन्तु ऐसे सब प्रयोजनों को जानना और सूचीबद्ध करना शायद असंभव होगा।

भावनात्मक बनाम विवेकयुक्त
(Emotional vs. Rational)

क्रय प्रयोजनों को भावनात्मक एवं विवेकयुक्त में बांटने की भी परम्परा रही हैं इस प्रकार का वर्गीकरण अब से 50 वर्ष पूर्व प्रो. मेलविन टी. कोपलैंड की रचनाओं में प्रस्तुत किया गया था भावात्मक प्रयोजनों (Emotional Motives) में भूख, प्यास, साथी के लिए इच्छा, वैयक्तिक सुख–सुविधा, सुरक्षा, हैसियत, प्रतिष्ठा, गौरव आदि सम्मिलित हैं। इसीलिए तो एक खाद्य निर्माता यह विज्ञापित करता है कि उसके शुष्क खाद्य के ब्रांड को अग्रणी खिलाड़ियों द्वारा प्रयोग में लाया जाता है। इसी प्रकार श्रंगार प्रसाधन बेचने वाली फर्म नवयुवतियों से अनुरोध करती है कि उसके उत्पादों का प्रयोग करके अपने सामाजिक आकर्षण में वद्धि करें। ये अनुनय (Appeals) भावात्मक क्रय प्रयोजनों से संबंधित हैं। विवेकयुक्त प्रयोजनों (Rational Motives) के निम्न उदाहरण हैं: क्रय मूल्य मितव्ययिता, टिकाऊपन, उपयोगिता सुविधा, विश्वसनीयता एवं कुशलता सबंधी गुण। उदाहरणार्थ, एक कार निर्माता चालन कुशलता पर बल देता है। गेसोलिन बेचने वाली कंपनी सर्दियों में अपने ब्रांड की विश्वसनीयता की गारण्टी देती है। ये अनुनय विवेकयुक्त प्रयोजनों से संबंधित है।

भावात्मक या विवेकयुक्त क्रय प्रयोजनों में भेद करने का बहुप्रचलित आधार समय व ध्यान की वह मात्रा जोकि क्रय में लगायी जाती हैं क्रिया संवेगी क्रय (Impulse buying) को भावात्मक प्रयोजनों की प्रतिक्रिया माना जाता हैं इसके विपरीत, विवेकयुक्त क्रय में सावधानी के साथ एक तर्कपूर्णक्रिया का अनुसरण किया जाता है, किन्तु भेद करने का यह आधार आपत्तिजनक है। उदाहरणार्थ एक सुविज्ञ और चतुर खरीददार बहुत शीघ्र ही किसी उत्पाद को क्रय करने का निर्णय ले सकता है। शीघ्र निर्णय लेने पर भी उसका निर्णय विवेकयुक्त है दूसरी ओर, एक व्यक्ति किसी उत्पाद के क्रय करने में काफी समय लगाता है क्योंकि वह बार–बार विचार करता रहता है कि अमुक मद को खरीदने में उसे क्या प्रतिष्ठा (या सुख) मिलेगा। यहां क्रय निर्णय लेने में काफी समय लगाते हुए भी क्रय "भावनात्मक" ही कहलायेगा। एक अधिक उत्तम आधार वह ध्यान हो सकता है जो कि उत्पाद

की शुद्ध दीर्घकालीन लागत पर दिया जाये। यदि कोई व्यक्ति जान बूझकर एक नीची शुद्ध लागत का उत्पाद खरीदने की चेष्टा करे, तो उसका क्रय प्रयोजन विवेकयुक्त कहलायेगा। (यहां लागत में विश्वसनीयता, किस्म टिकाऊपन आदि के गुण सम्मिलित हैं)।

किसी क्रय के दोनों ही प्रयोजन हो सकते हैं – भावात्मक भी एवं विवेकयुक्त भी। उदाहरणार्थ, एक विशेष प्रकार की मोटर गाड़ी खरीदनें का निर्णय भावात्मक हो सकता है, किन्तु ब्रांड संबंधी निर्णय विवेकयुक्त। मान लीजिये कि राम एक नई गाड़ी खरीदना चाहता है, ताकि वह श्याम से प्रतिस्पर्धा कर सके। बाजार मे ऐसे कई ब्रांड सुलभ हैं, जोकि उसके भावात्मक प्रयोजन को पूरा करते हैं। परिणामस्वरूप, इन विभिन्न ब्रांडों में से वह विवेक के आधार पर चलता हुआ उस विशेष ब्रांड को चुनेगा जोकि दीर्घकाल में सबसे नीची लागत वाला प्रमाणित हो। स्मरण रहे कि "विवेकयुक्त प्रयोजन रखना" और "क्रय का विवेकीकरण (Rationalising a Purchase) अनुपूरक विचार है। विवेकयुक्त प्रयोजन प्रितिष्ठित एवं समाज अनुमोदित माने जाते हैं। क्रेता किसी वस्तु के क्रय को उचित ठहराने के लिए एक विवेकयुक्त प्रयोजन बता दिया करता है, जबकि यथार्थ में उसने वस्तु किन्ही भावात्मक कारणों से खरीदी थी। विक्रेतागण इस प्रकार के व्यवहार से परिचित होते हैं और इसीलिये उनके विज्ञापनों में क्रय के लिये विवेक आधारित कारणों के साथ–साथ भावात्मक अपीलें भी प्रस्तुत की जाती हैं। उदाहरणार्थ "मारूती" के लिये विज्ञापन में एक आधुनिक आफिस भवन के सामने खड़ी कार में से ड्राइवर की सीट से बाहर निकलते हुए आकर्षक वेष भूषा में व्यवसाय प्रबंधक को दिखाया जा सकता है। विज्ञापन प्रति में यह भी कहा गया हो सकता है कि इस कार रखने का व्यय मामूली है, व्यपारिक मूल्य ऊंचा तथा इसके निर्माण में बढिया कारीगरी का प्रयोग किया गया है। निश्चय ही ऐसा विज्ञापन संभावित ग्राहक को अपने क्रय के "विवेकीकरण" का अवसर प्रदान करता है।

विपणनकर्ताओं को चाहिये कि प्रयोजनों के भावात्मक बनाम विवेकयुक्त वर्गीकरण की दुर्बलताओं को अच्छी तरह समझ लें। यह वर्गीकरण इस तथ्य को छुपा लेता है कि व्यवहार में यह बहुत से प्रयोजनों का संयुक्त फल है। ऊपरी आधार प्रायः भ्रम में डालने वाले होते है। उदारहणार्थ, एक नई कार का क्रय प्रगटतः श्याम आदि से स्पर्द्धा करने के लिए प्रयोजन से प्रेरित है, यह यथार्थ में वह ठोस विनियोग के रूप में भी हो सकता है। यहां तक कि एक प्रगट रूप में विवेकपूर्ण व्यवहार (जैसे पिछले वर्ष का माडल प्रयोग करना) भी भावात्मक आवश्यकताओं से उत्प्रेरित हो सकता है। यही नहीं दो व्यक्ति समान प्रयोजन (जैसे कि परिवार के प्रति स्नेह) रखते हुए भी विपरीत रूप से आचरण कर सकते हैं। उदाहरणार्थ, एक पिता अपने बालों के लिये प्रत्येक चीज बढ़िया क्रय करने पर बल देता है, जबकि दूसरा पिता यह सोचता है कि सस्ते वस्त्र एवं खिलौने पर्याप्त अच्छे हैं, क्योंकि उसके बच्चे "रूपये की कीमत" समझ सकेंगे और वयस्क जीवन की परिस्थितियों का सामना करने के लिए आवश्यक सामर्थ्य अर्जित कर सकेंगे।

उपभोक्ता एवं उत्पाद संबंधी विशेषतायें

(Consumer vs. Product Variables)

जबकि समस्त उपभोक्ता व्यवहार अभिप्रेरित हैं, किये गये वास्तविक चयन दो मनोवैज्ञानिक चलों, क्रेता का व्यक्तित्व और उत्पाद की विशेषताओं से निर्धारित होते हैं। उदाहरण के लिये, एक व्यक्ति खाने के लिये इसलिये उत्प्रेरित हो सकता है क्योंकि वह भूखा है या खाने का समय हो गया है, किन्तु वह क्या चीज खायेगा, यह इस प्रकार के अभिप्रेरण से असंबंधित होगा। वह खाने के लिए फल चुन सकता है, क्योंकि ये सहज ही उपलब्ध है या फल खाने की आदत है अथवा फल खाना सामाजिक परम्परा है या कोई अन्य कारण भी हो सकता है।

क्रेता का व्यक्तित्व (Personality of the Buyer)

उपभोक्ताओं की आदतें, उनकी प्रज्ञाशक्ति और उनके प्रयोजन क्रय के समय उन्हें विभिन्न प्रकार से आचरण करने पर विवश कर देते हैं। यद्यपि व्यक्ति विशेष सभी परिस्थितियों में समान ढंग से कार्य नहीं करता है, तथापि औसतन लोग एकरूपता से ही कार्य करते हैं। परिणास्वरूप क्रय व्यवहार के अनुसार हम उपभोक्ताओं के निम्नांकित छह वर्ग बना सकते हैंः–

(क) आदत नियंत्रित ब्रांड भक्त उपभोक्ताओं का वर्ग

(Habit determined group of brand loyal consumers)

जोकि पिछले क्रय, किये गये उत्पाद या ब्राण्ड से संतुष्ट रहा करते हैं।

(ख) प्रज्ञाशील उपभोक्ताओं का वर्ग (Cognitive group of consumers)

जोकि विवेकपूर्ण उद्घोषणाओं से प्रभावित होता है।

(ग) कीमत संज्ञानी उपभोक्ताओं का वर्ग (Price congnitive group of consumers)

जोकि मुख्यतः कीमत या किफायत संबंधी तुलना के आधार पर निर्णय लेता है।

(घ) संवेगी उपभोक्ताओं का वर्ग (Impulse group of consumers)

जोकि भौतिक अनुरोधों के आधार पर क्रय करता है और ब्रांड नाम के प्रति अपेक्षतः असंवेदनशील होता है।

(च) भावात्मक प्रतिकर्मियों का वर्ग (Group of Emotional reactors)

जो उत्पाद प्रतीकों के प्रति संवेदनशील होते हैं और छवियों या आदर्शों से बहुत प्रभावित हैं।

(छ) नये उपभोक्ताओं का वर्ग (Group of new consumers)

जिन्होंने अपने आचरण के मनोवैज्ञानिक मान (Psychological dimensions) को अभी स्थिर नहीं किया है।

उत्पाद विशेषतायें (Product Characteristics)

कुछ उत्पादों के विशेष गुणों का क्रय संबंधी व्यवहार पर मनोवैज्ञानिक प्रभाव पड़ता है। मनोवैज्ञानिक अपील के संदर्भ में उत्पादों के निम्नांकित छः वर्ग किये जा सकते हैं:—

(क) **प्रतिष्ठा उत्पाद (Prestige Products):** वे हैं जोकि बन जाते हैं न केवल ये एक छवि या वैयक्तिक संबंधी गुण को सूचित करते हैं वरन् उसके साथ उनका तादात्म्य स्थापित हो जाता है। उदाहरणार्थ, एक प्रतिष्ठायुक्त कार का स्वामित्व सफलता का प्रतीक या चिन्ह मात्र नहीं है वरन् सफलता का साक्ष्य भी है। महंगे घर, कलात्मक वस्तुएं, कुछ पत्रिकायें इसी श्रेणी में आते हैं।

(ख) **वयस्कता उत्पाद (Maturity Products):** वे हैं जिन्हें लाक्षणिक रूप से नवयुवकों से अलग रखा जाता है, क्योंकि नवयुवकों के लिए इनका प्रयोग करना सामाजिक प्रथा के विरूद्ध होगा। परिणामस्वरूप, ऐसे उत्पादों का प्रारम्भिक प्रयोग यह दर्शाता है कि उपभोक्ता ने प्रौढ़ता का एक निश्चित स्तर प्राप्त कर लिया है। सिगरेट, श्रंगार प्रसाधन, शराब आदि इसी श्रेणी में सम्मिलित हैं।

(ग) **हैसियत उत्पाद (Status Products):** वे हैं जोकि अपने प्रयोगकर्ताओं पर वर्ग विशेष की सदस्यता थोपते हैं। कुछ ब्राण्ड इसलिए चुने जाते हैं क्योंकि उपभोक्ताओं का यह विश्वास है कि ऐसे ब्रांण्ड्स प्रयोक्ता में सफलता, किस्म या अन्य गुण अध्यारोपित (Impute) करते हैं। कहा जा सकता है कि प्रतिष्ठा उत्पाद "नेताई" के सूचक हैं, जबकि हैसियत उत्पाद सदस्यता के।

(घ) **उद्वेग उत्पाद (Anxiety Products):** वे हैं जो किसी वैयक्तिक या सामाजिक धमकी के निवारण के लिये चुने जाते हैं। इस श्रेणी में साबुन, सुंगन्धियां और रेजर सम्मिलित किये जा सकते हैं। ये उत्पाद अंहकार की रक्षा करते हैं, जबकि पूर्ववर्णित वर्गो के उत्पाद अंहकार में वद्धि।

(च) **सुखवादी उत्पाद (Hedonic Products):** वे हैं जो कि मुख्यतः इन्द्रियों की अपील पर निर्भर होते हैं। यह अपील तत्कालिक होती है और बहुधा संवेगी क्रय (Impulse buying) को जन्म देती है। इस श्रेणी में नाश्ते की मदें, अनेक प्रकार के वस्त्र, मिठाइयां और दश्यगत शैलीय गुण (जैसे कि डिजाइन व रंग) आते हैं।

(छ) **कार्यात्मक उत्पाद (Functional Products):** वे हैं जिनका सामाजिक या सांस्कृतिक महत्व अल्प होता है। अधिकांश मुख्य खाद्यान्न, फल व सब्जियां तथा अनेक इमारती सामग्रियां इसी वर्ग में आती हैं।

प्रतिस्पर्धात्मक विपणन की दशा में उत्पादों का वर्गीकरण अनेक कंपनी नीतियों को निर्धारित कर सकता है। उदाहरणार्थ, जहां अहंकार भावना (Ego) का विकास किया जा सकता हो, वहीं किसी ब्रांड में उपभोक्ता की रूचि उत्पाद छवि (Product image) के आधार पर निर्मित की जा सकती है। क्रेतागण आदत शासित नही हैं, कि वे सहज

ही ब्राण्ड बदल देंगे। अतः जहां अहंकार की भावना मौजूद है, वहां विक्रेताओं को अभिप्रेरणात्मक विक्रय (Motivational Selling) पर बहुत निर्भर रहना पड़ेगा।

"स्व-छवि" एक व्यवहार निर्धारक के रूप में (Role of self image in Behaviour Determination)

"स्व–छवि" (Self Image) का आशय उस तरीके से है जिसमें कि एक व्यक्ति स्वयं को देखता है और साथ ही एक ऐसा चित्र है जो (उसके मतानुसार) अन्य लोगों ने उसके बारे में कल्पित किया हुआ है। कुछ सीमा तक स्व छवि सिद्धांत अन्य मनोवैज्ञानिक एवं समाज शास्त्रीय विचारों से (जिनका वर्णन ऊपर किया जा चुका है) प्रभावित होता है। उदाहरण के लिए, एक व्यक्ति की स्व छवि सहज एवं कृत्रिम दैहिक, मनोवैज्ञानिक एवं सामाजिक आवश्यकताओं से प्रभावित होती है। आर्थिक व जनांकिक घटक एवं सामाजिक समूह की विशेषतायें भी उस पर प्रभाव डालती हैं।

उपभोक्ताओं की स्व–छवियों को निर्धारित करना सरल कार्य नही है और न ही इन्हें सुपरिभाषित श्रेणियों में रखा जा सकता है। व्यक्तियों की स्व छवि एक जटिल चीज है और प्रायः इसमें परस्पर विरोधी तत्वों का समावेश होता है। उदाहरणार्थ एक महिला सेक्रेटरी एक ओर तो अपनी आय को एक कुशल, प्रभाव पूर्ण एवं अमूल्य व्यावसायिक सम्पत्ति के रूप में देखती है, किन्तु दूसरी ओर अपने को आकर्षक, सुसज्जित एवं वांछनीय महिला भी मानती है। यहीं नहीं, विभिन्न वर्गों के व्यक्ति विभिन्न स्व छवियां रखते हैं।

यदि यह मालूम हो जाये कि व्यक्ति की स्व छवि क्या है, तो उन लक्ष्यों को मालूम किया जा सकता है जोकि उस व्यक्ति के व्यवहार को शासित करते हैं। किन्तु ध्यान रहे कि एक व्यक्ति की स्व छवि हमें कवेल इतना बताती है कि उसके ''लक्ष्य" क्या है, यह नही बताती है कि उसकी स्व छवि जैसी वैसी "क्यों है अथवा विभिन्न व्यक्तियों की स्व छवियां भिन्न–भिन्न क्यों होती हैं। उससे केवल इतना ही समझने में सहायता मिलती है कि लोग अपने बारे में विभिन्न स्व–छवियां रखते हैं हमारा काम है कि व्यक्ति स्व छवि क्या है, इसका पता लगायें। तब ही हम यह जान सकेंगे कि उसके लक्ष्य क्या हैं और बाजार में उसका व्यवहार क्या होगा?

समूह प्रभाव (Group Influence)

अन्य लोगों के साथ उपभोक्ता के जो संबंध होते हैं उनसे उपभोक्ता के व्यवहार में बहुत संशोधन हो जाया करता है। मनुष्य एक सामाजिक प्राणी है और साधारणतः एकान्त में नहीं रहता। परिणामस्वरूप सामाजिक समूह क्रय संबंधी व्यवहार पर काफी प्रभाव डालता है। अन्य शब्दों में यहां हमारा संबंध संदर्भ समूह सिद्धांत (Reference Group Theory) से है। यह सिद्धांत सामाजिक वैज्ञानिकों द्वारा बहुत समय से माना जाता रहा है। इसके अनुसार इस व्यक्ति का व्यवहार उस संदर्भ समूह से प्रभावित होता है जिससे कि वह सम्बद्ध है या सम्बद्ध होना चाहता है। समूह का आदर्श (Group norm) एक ऐसी संदर्भ अवस्था बन जाता है जोकि व्यक्ति के लिए अनुकरणीय है और जिससे तुलना द्वारा वह अपनी कार्य निष्पति (Performance) का मूल्यांकन करता है। कोई भी निर्णय लेने से पूर्व वह इस बात पर विचार करता है कि समान परिस्थितियों में उसका समूह क्या करता अथवा यदि वह एक अमूक ढंग से निर्णय न लेकर किसी दूसरे ढंग से निर्णय ले, तो उसका समूह उसके बारे में क्या सोचेगा। स्पष्ट है कि विपणन प्रबंधकों को उस प्रभाव की जानकारी होनी चाहिये जोकि छोटे संदर्भ समूह एवं बड़े सामाजिक वर्ग उपभोक्ता के क्रय सम्बन्धी व्यवहार पर डाला करते है।

क्रेता व्यवहार के अध्ययन के ढंग
(Techniques of Studying Buyer Behaviour)

प्रेरणा अनुसन्धान के निम्न चार ढंग हैं जिनमें से किसी एक को प्रेरणा अनुसन्धान करने के लिए प्रयोग किया जा सकता है। इन्हीं ढंगों को क्रय प्रेरणाएँ जानने की विधियाँ या उपभोक्ता व्यवहार के अध्ययन के ढंग से भी कहते हैं।

प्रलम्बन तकनीकें

(Projective techniques)

क्रेता की क्रय प्रेरणाओं को जानने के लिए इस विधि का प्रयोग किया जाता है। इस विधि में क्रेता से इसकी प्रेरणाओं के बारे में प्रत्यक्ष रूप से नहीं पूछा जाता है बल्कि अप्रत्यक्ष रूप से ऐसी विधि का सहारा लिया जाता है कि जिसको देखकर क्रेता स्वयं अपने व्यवहार या क्रय प्रेरणा बताने को प्रोत्साहित हो जाता है और वह अपने विचारों को व्यक्त कर देता है। इस

विधि में क्रेता से अनुरोध किया जाता है कि वह स्वयं को किसी अन्य व्यक्ति की स्थिति में रखे औ यह बताये कि उसकी राज्य में वह अन्य व्यक्ति इस विज्ञापन, वस्तु या अन्य विज्ञापन की बात के बारे में क्या सोचेगा या कहेगा। कभी–कभी क्रेता से एक पूर्णतः क्षतिरहित परिस्थिति में अपना विचार व्यक्त करने को कहा जाता है। इस विधि को अपनाने से क्रेता की वास्तविक भावनाएँ, प्रेरणाएँ व विश्वासों को ज्ञात किया जा सकता है। मुख्य प्रलम्बन प्रक्रियाएँ (Projective techniques) निम्न हैः–

1. **चित्त का आत्म-ज्ञान सम्बन्धी परीक्षण (Thematic apperception test):** परीक्षण की इस विधि में चित्रों का प्रयोग होता है। इसमें उत्तर देने वाले को एक–एक करके तस्वीरें दी जाती हैं और उससे तस्वीर के सम्बन्ध में कहानी सुनाने के लिए कहा जाता है। जो कुछ उसके द्वारा कहा जाता है। उसको एक विशेषज्ञ अंकित कर लेता है जो बाद में इनका विश्लेषण करता है। यहाँ जो कुछ उत्तर, उत्तर देने वाले द्वारा दिया जाता है वह उसका स्वयं का नहीं होता है बल्कि वह उस तस्वीर के बारे में हैं जो उसकी भावनाओं को व्यक्त करती हैं। उस परीक्षण के ढंग को चित्र का आत्म–घात सम्बन्धी परीक्षण (T. A. T) भी कहते हैं।

2. **वाक्य पूर्ण परीक्षण (Sentence completion test):** इस तरीके में उत्तर देने वाले के समक्ष कुछ वाक्य रखे जाते हैं और उनको पूरा करने के लिए कहा जाता है; जैसे, "मैं 'नेस्केफे कॉफी का प्रयोग करता हूँ क्योंकि .... ।" एक व्यक्ति "कोका कोला इसलिए पसन्द करेगा क्योंकि .... ।" इन वाक्यों को पूरा करते समय एक व्यक्ति अपनी प्रेरणाओं को प्रदर्शित करता है।

3. **कार्टून परीक्षण (Cartoon test):** इस पद्धति में उत्तर देने वाले के समक्ष एक कार्टून व अपूर्ण शीर्षक रखे जाते हैं और उससे यह कहा जाता है कि वह कार्टून को देख अपूर्ण शीर्षक वाक्य को पूरा करे। ऐसा करने में यह समझा जाता है कि वह अपनी आन्तरिक प्रेरणाओं को व्यक्त कर रहा है।

4. **शब्द-संयोग परीक्षण (Word association test):** यह एक प्रकार का खेल सा है। इसमें वस्तु के सम्बन्ध मे एक शब्द अनुसन्धानकर्ता द्वारा कहा जाता है और उत्तर देने वाले से यह अपेक्षा की जाती है कि वह उस शब्द को बताये जो सबसे पहले मस्तिष्क में उत्तर देने के लिए आता है। इसमें उत्तर देने के लिए कुछ सेकण्ड ही दिये जाते हैं।

5. **युगल-चित्र परीक्षण (Paired pictures test):** परीक्षण के इस ढंग में तस्वीरों के जोड़ का प्रयोग होता है। उत्तर देने वाले के समक्ष दो तस्वीरें रखी जाती हैं जो एक–दूसरे से भिन्न होती हैं और उससे कहा जाता है कि इनमें से किसी एक के बारे में टिप्पणी करे। उदाहरण के लिए, एक व्यक्ति के समक्ष दो तस्वीरें रखी जाती हैं जिनमें से एक तस्वीर मे एक युवती फिलिप रेडियो के बटन को खोलती हुई दिखायी जाती है और दूसरे में बुश रेडियो के बटन खोलती हुई। अब उससे कहा जाता है कि वह इनमें से किसी भी युवती के बारे में कुछ कहे। ऐसा करने से उस व्यक्ति की आन्तरिक प्रेरणा का पता लग जाता है।

साक्षात्कार तकनीकें
(Interview Techniques)

प्रेरणा अनुसन्धान के इस तरीके का उपयोग बहुत अधिक किया जाता है। इसमें भेंटकर्ता उत्तर देने वाले से सहज वातावरण में बातचीत करता है और उसके द्वारा जो भी बताया जाता है उसको लिख लेता है । उत्तर देने वाला बातचीत करते समय प्रसंग से हट जाय इसलिए उसको टोका जा सकता है अन्यथा उत्तर देने वाले को टोका नहीं जाता। इस पद्धति से प्रश्न करने से गहराई तक पहुँच सकते हैं तथा वस्तुओं की कमियों एवं आलोचनाओं का भी पता लगा सकते हैं। इसीलिए इसको गहन साक्षात्कार प्रणाली भी कहते है। इस पद्धति से निकाले हुए निष्कर्ष अधिक विश्वासप्रद माने जाते हैं। लेकिन इसमें आवश्यकता इस बात की है कि भेंटकर्ता बहुत ही कुशल व व्यावहारिक होना चाहिए जिससे कि वह उत्तर देने वाले के साथ घुल–मिल जाये और सही सूचनाएँ प्राप्त कर सके।

प्रश्नावली तकनीक
(Questionnaire technique)

यह एक परमपरागत तरीका है जिसमें कुछ प्रश्नों की प्रश्नावली बनायी जाती है और फिर उसको कुछ चुने हुए उपभोक्ताओं के पास इस प्रार्थना के साथ भेज दिया जाता है कि वे उस प्रश्नावली को भर कर भेज दें। कभी–कभी उपभोक्ता इस प्रश्न

का उत्तर भेजना टाल जाता है या वह उसके भेजने में रूचि नहीं लेता है या उसकी समझ में प्रश्न ही नहीं आते तो ऐसी स्थिति मे अनुसन्धानकर्ता को स्वयं ही उन उपभोक्ताओं से सम्पर्क स्थापित करना चाहिए तथा सूचनाएँ प्राप्त करनी चाहिए।

अनुभव एवं ज्ञान तकनीक
(Experience and Knowledge technique)

विपणन अधिकारी का अनुभव व ज्ञान भी क्रय प्रेरणाओं का पता लगाने के लिए काम में लाया जा सकता है। वे स्वयं ही यह निर्धारित कर सकते हैं कि उपभोक्ता में क्या क्रय प्रेरणाएं रही हैं।

क्रय-प्रेरणायें
(Buying-Motives)

'क्रय-प्रेरणा' से आशय
(Meaning of Buying Motives)

"क्रय प्रेरणा वह शक्ति है जो क्रेता को अपनी आवश्यकताओं की सन्तुष्टि हेतु किसी वस्तु अथवा सेवा को खरीदने की प्रेरणा देती है।" विलियम जे. स्टेन्टन ने लिखा है कि "एक प्रेरणा उस समय क्रय–प्रेरणा बन जाती है जब व्यक्ति किसी वस्तु के क्रय द्वारा सन्तुष्टि प्राप्त करने का प्रयत्न करता है।" डी. जे. ड्यूरिन के अनुसार, "क्रय प्रेरणाएँ वे प्रभाव अथवा विचार हैं जो क्रय करने, कार्य करने अथवा वस्तुओं या सेवाओं की खरीद मे पसन्दगी को निर्धारित करने हेतु प्रेरणा प्रदान करते है।"[1] स्पष्ट है कि 'क्रय–प्रेरणा' वह शक्ति, प्रभाव, विचार, उद्दीपन, चालक अथवा लालसा है जो क्रेताओं को उनकी आवश्यकताओं की सन्तुष्टि हेतु विशिष्ट वस्तुओं और सेवाओं को खरीदने की प्रेरणा देती है।"

क्रय-प्रेरणाओं का वर्गीकरण
(Classification of Buying Motives)

प्रत्येक सामान्य व्यक्ति स्वहित मे रूचि रखने वाला होता है और स्वयं की इच्छाओं, भावनाओं, चालकों लालसाओं, साधनों और बुद्धि के अनुरूप व्यवहार करता है। यही कारण है कि विपणन क्षेत्र में, विभिन्न प्रकार की क्रय–प्रेरणाएँ और क्रय–व्यवहार दिखाई देते हैं। किर्कपेट्रिक ने स्पष्ट शब्दों में लिखा है कि "बुनियादी क्रय–प्रेरणाएँ कितनी हैं न तो इस पर ही मतैक्य है और न ही पदावली पर।" इतने पर भी उनका विचार है कि "हर व्यक्ति अपनी सन्तुष्टियों को अधिकतम करने की एक मात्र बुनियादी इच्छा से अभिप्रेरित होता हैं।"[2] वस्तुतः क्रेताओं को अभिप्रेरित करने वाली क्रय–प्रेरणाएँ तीन प्रेरणा–युग्मों में विभक्त की जा सकती हैं– (1) अधिकार की इच्छा एवं अनुमोदन की इच्छा, (2) हानि होने का भय एवं लाभ होने की आशा, तथा (3) आनन्द का उपभोग एवं पीड़ा निवारण।[3]

चार्ल्स बी. रोथ का विचार है कि "भूख, स्वभाव, यौन, ईर्ष्या, भय, डाह, संघर्ष, उत्सुकता, सामाजिक प्रभुत्व, प्रेम, अभिमान, आराम, लोभ और वैयक्तिक प्रगति सामान्य प्रेरणाएँ हैं।[4] ई. जी. मेकार्थी की मान्यता है कि "चेतनाओं की सन्तुष्टि (Satisfaciton of senses), जाति–संरक्षण (Preservation of Species), भय, आराम और मनोरंजन, गर्व, मिलनसारिता (Sociability), विलक्षणता (Curiosity) एवं संघर्ष (Striving) प्रमुख क्रय–प्रेरणाएँ हैं।"[5] विलियम जी. कार्टर द्वारा तैयार की गई क्रय–प्रेरणा सूची बतलाती है कि "मुद्रा अभियान, प्राप्ति–इच्छा (Acquisitiveness), प्रतिद्वन्द्विता, श्रृंगार, स्वच्छा, संग्रहण या परिग्रह, मनोविनोद, निर्माण, सहचर्य, मानसिक संस्कृति, स्वीकरण–प्रवत्ति (Approbativeness), महत्त्वकांक्षा, सम्मान, स्नेह, सामाजिक उपलब्धि, रोमान्स,

---

1 "Buying motives are those influences or considerations which provide the impulse to buy, induce action or determine choice in the purchase of goods or services." — D. J. Durian

2 Kirk Patrick: "Salesmanship", p. 176, 1970.

3 Ibid., p. 176.

4 Charles B. Roth: 'Prefessional Salesmanship', p. 73.

5 E. J. McCarthy: Marketing : A Managerial Approach'.

सुख, सौन्दर्य–रूचियाँ, यौन, नकल विलक्षणता, स्व–रक्षण, सहानुभूति, आभार (Gratitude), देशभक्ति आदि प्रमुख क्रय–प्रेरणाएँ है।[6]

मैल्विन एस. हैटविक ने क्रय–प्रेरणाओं को निम्न दो श्रेणियों में वर्गीकृत किया है।

1. **प्राथमिक क्रय-प्रेरणाएँ (Primary Buying Motives)**— इनमें खाना व पीना, सुख, विपरीत यौनाकर्षण, प्रियजनों का कल्याण, भय व खतरे से मुक्ति, श्रेष्ठ बनने की इच्छा, सामाजिक अनुमोदन, दीर्घायु आदि को सम्मिलित किया गया है।

2. **गौण अथवा सहायक क्रय-प्रेरणाएँ (Secondary Buying Motives)**— इनमें सौदेबाजी, सूचना, स्वच्छता, कार्यकुशलता, सुविधा, निर्भरता, किस्म, शैली, सौन्दर्य मितव्ययिता, लाभ, विलक्षणता आदि को सम्मिलित किया जा सकता है।

सुविधा की दष्टि से क्रय–प्रेरणाओं को निम्नलिखित श्रेणियों में विभक्त किया जा सकता है– (i) भौतिक, मनोवैज्ञानिक एवं सामाजिक क्रय–प्रेरणायें; (ii) अर्जित एवं अन्तर्वर्ती क्रय–प्रेरणायें; (iii) उत्पाद एवं संरक्षण क्रय–प्रेरणायें; (iv) प्राथमिक एवं चयनात्मक क्रय–प्रेरणायें; (v) जागरूक एवं सुप्त क्रय–प्रेरणायें एवं (vi) विवेकात्मक एवं भावनात्मक क्रय–प्रेरणायें। प्रत्येक का उल्लेख इस प्रकार है–

भौतिक, मनोवैज्ञानिक एवं सामाजिक क्रय-प्रेरणाएं
(Physical, Psychological and Sociological buying motives)

उपभोक्ता–अभिप्रेरण अनुसंधान कार्य करने वाले व्यक्तियों का कहना है कि उपभोक्ता, शारीरिक या भौतिक, मनोवैज्ञानिक एवं सामाजिक क्रय–प्रेरणाओं की प्रतिवचन (Response) प्रदर्शित करते हैं। क्रेता–व्यवहार से सम्बद्ध सिद्धान्त भी इन प्रेरणाओं के महत्त्व को अभिव्यक्त करते हैं। भौतिक क्रिया प्रेरणाएँ भूख, प्यास, नींद, यौन, आराम एवं जीवन संचालन से सम्बद्ध प्रेरणाओं को स्वयं में सम्मिलित करती है। मनोवैज्ञानिक क्रय–प्रेरणायें व्यक्तिपरक होती हैं और इनमें गर्व, भय आदि प्रेरणाओं को सम्मिलित किया जाता है। सामाजिक क्रय–प्रेरणायें वर्तमान एवं अपेक्षित सामाजिक स्थिति से सम्बद्ध प्रेरणाओं का समूह होती हैं।

अर्जित एवं अन्तर्वर्ती क्रय-प्रेरणायें
(Acquired or Inherent buying motives)

समग्र क्रय–प्रेरणाओं की अर्जित एवं अन्तर्वर्ती क्रय–प्रेरणाओं को दो श्रेणियों में विभक्त किया जा सकता है। अर्जित क्रय–प्रेरणायें, ऐसी प्रेरणायें हैं जो सीखी हुई (Learned) हैं और क्रेताओं के वातावरण से सम्बन्धित होती हैं। इन्हें 'गौण' अथवा 'सहायक' क्रय–प्रेरणायें भी कहा गया है। उपभोक्ता को इन क्रय–प्रेरणाओं का विकास करना होता है। वे अपने सामाजिक परिवेश एवं वातावरण को देखकर इन क्रय–प्रेरणाओं का विकास करते हैं। इन क्रय–प्रेरणाओं में मितव्ययता, सूचनायें, कार्यकुशलता, लाभ, स्वच्छता, सुविधा, किस्म, विश्वसनीयता या निर्भरता, सौन्दर्य फैशन, टिकाऊपन, विलक्षणता, सामाजिक प्रतिष्ठा, मान्यता आदि को सम्मिलित किया जा सकता है। उपभोक्ताओं को इनमें मिलने वाली सन्तुष्टि ही इन प्रेरणाओं का मूल्यांकन आधार बनाती है। इन क्रय–प्रेरणाओं पर सामाजिक–आर्थिक स्थितियाँ और शिक्षा स्तर पर महत्त्वपूर्ण प्रभाव डालते हैं।

अन्तर्वर्ती क्रय–प्रेरणायें, ऐसी प्रेरणायें हैं जिन्हें सीखना नहीं पड़ता है। इसके विपरीत, ये प्रेरणायें हर क्रेता में जन्म से ही विद्यमान होती है। हर सामान्य व्यक्ति इन प्रेरणाओं के साथ ही जन्म लेता है अथवा उनको विकसित करने की क्षमता के साथ जन्म लेता है। इन प्रेरणाओं में भौतिक, मनोवैज्ञानिक एवं सामाजिक आवश्यकताओं को पूरा करने हेतु आवश्यक वस्तुओं और सेवाओं की खरीद को प्रोत्साहित करने वाली प्रेरणाओं को सम्मिलित किया जाता है। अन्य शब्दों में भूख, प्यास, नींद, आराम, प्रशंसा, शक्ति–प्राप्ति, सुरक्षा, क्रीड़ा एवं आनन्द, अस्तित्व–रक्षण, प्रियजनों का कल्याण आदि से सम्बद्ध प्रेरणायें अन्तर्वती क्रय प्रेरणायें हैं।

---

6 William G. Carter: "Sales Counter Craft", p. 111.

7 See for detail Malvin S. Hatvick: "How to Use Psychology for Better Advertising."

संक्षेप में, यह कहा जा सकता है कि अन्तर्वर्ती क्रय–प्रेरणायें सहज एवं मूल मानवीय प्रवत्तियों (Basic human instincts) से सम्बन्ध रखती हैं, जबकि अर्जित क्रय–प्रेरणायें वातावरण से सम्बन्धित होती हैं। अन्तर्वर्ती क्रय–प्रेरणायें प्राथमिक प्रेरणायें हैं और अत्यधिक स्पष्ट हैं, सुनिश्चित हैं। किन्तु, अर्जित क्रय–प्रेरणायें गौण प्रेरणायें है और अपेक्षाकृत कम स्पष्ट हैं।

उत्पाद एवं संरक्षण क्रय-प्रेरणायें

(Product and Patronage Buying Motives)

उत्पाद क्रय–प्रेरणायें, वे प्रेरणायें हैं जो किसी विशिष्ट उत्पाद की खरीद हेतु प्रोत्साहित करती हैं। ऐसा प्रोत्साहन उस विशिष्ट वस्तु के भौतिक अथवा मनोवैज्ञानिक आकर्षणों से उत्पन्न होता है। वस्तु की डिजाइन, रंग, आकार, निष्पादन, पैकेज अथवा कीमत उत्पाद क्रय–प्रेरणाओं का आधार होती है।

संरक्षण क्रय–प्रेरणायें वे प्रेरणायें हैं जो क्रेताओं को किसी विशिष्ट विक्रेता से ही वस्तुएँ क्रय करने को प्रोत्साहित करती हैं। विक्रेताओं में निर्माता, थोक व्यापारी, फुटकर व्यापारी और फुटकर विक्रेता सभी सम्मिलित होते हैं। विक्रेताओं में निर्माता, थोक व्यापारी, फुटकर व्यापारी और फुटकर विक्रेता सभी सम्मिलित होते हैं। कोपलैण्ड लिखते हैं कि "उपभोक्ता और मध्यस्थ दोनों ही खरीद करते समय उन घटकों को अधिक महत्त्व देते हैं जो कि प्रत्यक्ष रूप से वस्तुओं से सम्बन्ध नहीं रखते हैं, बल्कि वे विक्रेतओं के साथ अपने पिछले अनुभवों अथववा सतत् भावी सम्बन्धों की समस्या से सम्बद्ध होते हैं। इन घटकों को ही संरक्षण–प्रेरणायें कहा जाता है।"[8] कोपलैंड के विचारानुसार विक्रेता की विश्वसनीयता, सुपुर्दगी में समय की पाबन्दी, सुपुर्दगी में शीघ्रता, वस्तुओं से पूर्ण सन्तुष्टि, विभिन्न किस्में और विश्वसनीय मरम्मत सेवाओं की इन्जीनियरिंग एंव डिजायनिंग वे घटक हैं जो संरक्षण क्रय–प्रेरणाओं के आधार हैं।[9] किर्कपैट्रिक लिखते हैं। कि विक्रेता–क्रेताओं को सेवाओं, दुकान की स्थिति (Location) विभिन्न किस्में (Assortment), कर्मचारी, पारस्परिक सौजन्यता, एवं कीमत के आधार पर अपनी ही दुकान से वस्तुएँ खरीदने की प्रेरणायें देते हैं। जिन्हें संरक्षण क्रय–प्रेरणाएँ कहा जाता है।[3] प्रदर्शन, सजावट, उधार सुविधायें, वापसी सुविधायें, गह सुपुर्दगी, ख्याति आदि भी वे घटक हैं जो संरक्षण क्रय प्रेरणाओं के आधार पर बनते हैं।

संक्षेप में, यह कहा जा सकता है कि उत्पाद क्रय–प्रेरणायें, उत्पाद की विशेषताओं और गुणों से सम्बन्धित होती हैं और ऐसी विशेषताओं अथवा गुणों को ग्राहकों के आकर्षण का आधार मानती हैं जबकि संरक्षण क्रय–प्रेरणायें, विक्रेता की ख्याति, दुकान की स्थिति, उसके द्वारा प्रदत्त सेवाओं एवं सुविधाओं, विभिन्न किस्मों की उपलब्धि, ईमानदारी और उसके विक्रेताओं के व्यवहार को क्रेताओं के आकर्षण और उसकी दुकान से वस्तु–क्रय की सम्भावनाओं को आधार बनाती हैं।

प्राथमिक एवं चयनात्मक क्रय-प्रेरणायें

(Primary and Selective Buying Motives)

प्राथमिक क्रय–प्रेरणायें, वे क्रय–प्रेरणायें हैं जो वस्तुओं के क्रय सामान्य क्रय हेतु प्रेरणा देती है।[4] उदाहरण के लिए रेडियों अथवा टेलिविजन अथवा कार अथवा मोटरसाइकिल आदि के क्रय को प्रोत्साहित करने वाली प्रेरणायें 'प्राथमिक क्रय–प्रेरणाएँ' कहलाती हैं। ये प्रेरणायें वस्तुओं की सामान्य माँग को बढ़ाने वाली मानी गयी हैं और किसी ब्राण्ड विशेष की खरीद हेतु प्रेरणा नही देती हैं।

चयनात्मक क्रय–प्रेरणायें, वे प्रेरणायें हैं जो किसी विशिष्ट ब्राण्ड की खरीद के निर्णय को प्रभावित करती हैं।[5] अन्य शब्दों में किसी ब्राण्ड की खरीद को प्रोत्साहित करने वाली प्रेरणायें, चयनात्मक क्रय–प्रेरणायें कही जाती हैं। उदाहरण के लिए एजदी मोटर साइकिल अथवा बजाज स्कूटर अथवा हिन्द साइकिल अथवा मरफी रेडियो के क्रय हेतु प्रोत्साहित करने वाली प्रेरणाओं को चयनात्मक क्रय–प्रेरणाएँ कहा गया है। किर्कपेट्रिक ने चयनात्मक क्रय–प्रेरणाओं के क्षेत्र को व्यापक बनाते हुए उसमें केवल

---

1. H.R. Tosdal, "Principles of Personal Selling", pp. 106-107.
2. Lbid., p. 311
3. Kirk Patrick, op. cit., p. 178.
4. Lipson and Darling, "Introduction to Marketing : An Administrative Approach, "1971, p. 343.
5. lbid., p. 343.

ब्राण्ड चयन को ही नहीं, अपितु विक्रेता चयन को भी सम्मिलित करने पर बल दिया है। वे लिखते हैं कि "चयनात्मक विचार उपभोक्ता की ब्राण्ड पसन्दगी, स्रोत (निर्माता और / या फुटकर पसन्दगी अथवा विक्रय–व्यक्ति पसन्दगी) को आदेशित करते हैं।"[1]

जागरूक एवं सुप्त क्रय-प्रेरणायें

(Conscious and Dormant Buying Motives)

'जागरूक क्रय–प्रेरणाएँ, 'वे प्रेरणाएँ हैं जिन्हें क्रेता विपणन क्रियाओं की सहायता के बिना ही स्पष्टतापूर्वक पहचान लेते हैं और अभिव्यक्ति करते हैं।[2] अन्य शब्दों में, सचेतकर धरातल पर विद्यमान आवश्यकताओं की पूर्ति हेतु क्रेताओं की खरीद को प्रोत्साहित करने वाली क्रय–प्रेरणायें 'जागरूक प्रेरणाएँ' कही जाती हैं। ये प्रेरणाएँ स्वतः ही क्रेताओं के मस्तिष्क में उत्पन्न होती रहती है। बाहरी वातावरण की आवश्यकता इन प्रेरणाओं की उत्पत्ति कि लिये अपेक्षाकृत कम होती हैं। किन्तु बाहरी वातावरण एवं विपणन कार्यक्रम इन क्रय–प्रेरणाओं में तीव्रता पैदा कर सकते हैं।

'सुप्त क्रय–प्रेरणायें,' 'वे प्रेरणाएँ हैं जिन्हें क्रेता उस समय तक नही पहचान पाते हैं जब तक कि विपणन क्रियाओं द्वारा उनका ध्यान क्रय–प्रेरणाओं की ओर आकृष्ट न किया जाये।"[3] ये प्रेरणायें उन आवश्यकताओं की पूर्ति हेतु क्रेताओं का ध्यान आकृष्ट करती हैं जिनके बारे में क्रेताओं को स्वयं ही ध्यान नहीं होता हे और जो अचेतन धरातल पर विद्यमान होती हैं।

विवेकात्मक एवं भावनात्मक क्रय-प्रेरणायें

(Rational and Emotional Buying Motives)

'विवेकात्मक क्रय–प्रेरणाओं' को आर्थिक क्रय–प्रेरणाएँ भी कहा गया है। इन क्रय–प्रेरणाओं के पीछे यह मान्यता है कि व्यक्ति आर्थिक मनुष्य है और अपने उद्देश्यों की पूर्ति के लिये विवेकपूर्ण तरीके से कार्य करता है। वह जो कुछ खरीदता है सोच–समझकर किफायत के साथ खरीदता है। वस्तुओं और सेवाओं की खरीद करते समय वह विवेक, बुद्धि तर्क–शक्ति एवं उपलब्ध सूचनाओं का पूरा–पूरा उपयोग करता है। खरीद में भावनाओं को वह कोई स्थान नहीं देता है। इन कथनों का यह तात्पर्य नहीं है कि क्रेता की हर खरीद विवेकसम्मत होती है। व्यवहार में, अनेक बार क्रेता भावनाओं में बहकर अथवा संवेगाधीन होकर वस्तु क्रय कर लेते हैं। और क्रय को विकवेकपूर्ण बतलाने के लिए युक्तियुक्त कारण ढूंढते रहते हैं। क्रेता–व्यवहार की आर्थिक विचारधारा बतलाती है कि खरीद करते समय मितव्ययिता, टिकाऊपन, कुशलता, सहायक सेवाओं की विश्वसनीयता आदि घटकों को आधार बनाकर क्रेता वस्तु क्रय करते हैं। औद्योगिक उत्पादों, सरकारी क्षेत्रों, वितरकों एवं गैर–सरकारी संस्थाओं द्वारा की जाने वाली खरीद पूर्णतः विवेक–सम्मत मानी गयी है।[4] लिपसन एवं डारलिंग ने लिखा है कि "विवेकात्मक क्रय–प्रेरणायें सावधानी, तर्क–शक्ति एवं स्व–अनुमोदन से जुड़ी हुई हैं। इन प्रेरणाओं में बहनीय सुविधा (Handliness), उपयोग व परिचालन में कुशलता, उपयोग में निर्भरता, विश्वसनीय सहायक सेवायें, सम्पत्ति की उत्पादकता में वद्धि और मितव्ययी क्रय या उपभोग जैसी प्रेरणाओं को सम्मिलित किया जाता है।" [5]

'भावनात्मक क्रय–प्रेरणायें' वे प्रेरणायें हैं जो क्रेताओं की भावनाओं को विशिष्ट वस्तुओं अथवा सेवाओं की खरीद हेतु उकसाती हैं। ये क्रय–प्रेरणायें विवेक, बुद्धि या तर्क के दायरों पर होती हैं और मनुष्य की भावनाओं से, उसके संवेगों से सीधा सम्बन्ध स्थापति करती हैं। लिपसन एवं डारलिंग के अनुसार, "इन क्रय–प्रेरणाओं में इन्द्रियों की सन्तुष्टि, जाति–रक्षण, भय, आराम एवं मनोरंजन, गर्व, मिलनसारिता, उद्यम रहस्य के प्रति उत्सुकता आदि प्रेरणाओं को सम्मिलित किया जा सकता है।"[6] यद्यपि भावनात्मक क्रय–प्रेरणाओं की कोई सम्पूर्ण सूची अब तक तैयार नहीं की गई है, फिर भी इन प्रेरणाओं में अग्रलिखित को प्रमुखतः सम्मिलित किया जा सकता है–

---

1. Kirk Patrick, op., cit., p. 177.
2. Lipson and Darling, p. 343
3. lbid., p. 343.
4. Kirk Patrick, op. cit., p. 178.
5. Lipson and Darling, p. 342.
6. lbid., p. 342

इन्द्रियों का परितोषण
(Gratification of Senses)

विपणनकर्त्ता इन्द्रियों के परितोषण सम्बन्धी क्रय–प्रेरणाओं की उपलब्धि हेतु स्पर्श, रूप, गन्ध, शब्द एवं स्वाद जैसी बुनियादी चेतनाओं को जाग्रत करने का प्रयास करते हैं। क्रय–प्रेरणाओं के इस समूह में प्रमुखतः क्षुधा की सन्तुष्टि एवं स्वादपूर्ण भोजन की इच्छा, व्यक्तिगत आराम, यौन सुख की लिप्सा आदि क्रय–प्रेरणाओं को सम्मिलित किया जा सकता है।

बड़े–बड़े होटल, केन्टीनें, रेस्तराँ तथा भोजनालय क्षुधा सन्तुष्टि और स्वादिष्ट भोजन, अल्पाहारादि के विविध आश्वासन देकर क्रेताओं को उनके यहाँ निमन्त्रित करते हैं। चाय, कॉफी, सिगरेट, खुली एवं डिब्बाबन्द खाद्य वस्तुएँ, तैयार–मिश्रण आदि वस्तुएँ अत्यधिक सन्तुष्टि, सुविधा तथा सुख प्रदान करने का वचन देती हैं और ग्राहकों को उनकी खरीद के लिए प्रेरित करती हैं। ताजमहल के आँगन में जीनतअमान को चाय पीते और पिलाते हुए दिखाकर व्यवसायी ग्राहकों को वैसा ही सुख ताजमहल चाय खरीद कर प्रदान करने की प्रेरणा देते हैं।

डनलप पिलों, 'यू–फोम' बेशकीमती वस्त्र एवं कालीनें, कूलर, पंखे, एयरकंडीशनर्स, अनेक प्रकार की औषधियाँ, फ्रीज, कारें सोफासेट्स आदि वस्तुओं के विपणनकर्त्ता आराम एवं सुविधा उपलब्ध कराने के आश्वासन देकर क्रेताओं को उनकी खरीद हेतु प्रोत्साहित करते हैं। मध्यमवर्गीय और उच्च–वर्गीय क्रेताओं को इन वस्तुओं का विक्रय आसानी से किया जा सकता है।

यौन सुख तथा रोमान्स से सम्बन्द्ध इच्छाओं, आकांक्षाओं, महत्त्वकांक्षाओं आदि की सन्तुष्टि को अभिवद्धित करने वाली वस्तुएँ भी क्रेताओं के लिए ऐन्द्रिक सुख का साधन होती हैं। इसलिए, सुन्दर वस्त्र, शरीर को आकर्षक बनाने वाले उपकरण, आभूषण, नत्य, चलचित्र, कामोत्तेजक साहित्य, आदि के विक्रेता और निर्माण, क्रेताओं को महानतम ऐन्द्रिक सुख की उपलब्धि का आश्वासन देकर वस्तुओं की खरीद हेतु क्रेताओं को प्रोत्साहित करते हैं। इन क्रय प्रेरणाओं की उपलब्धि में विज्ञापन महत्त्वपूर्ण भूमिका निभा रहे हैं। अधिकांश विज्ञापन मानव–मन की यौन सुख प्राप्ति की लिप्सा को बढ़ाने हेतु यौन प्रतीकों के रूप में वस्तुओं की उपयोगिताओं को प्रदर्शित कर रहे हैं। कोका–कोला, रिमझिम, विल्स सिगरेट, लक्मे वेनेशिंग क्रीम तथा लक्में लेवेंडर टेल्क के विज्ञापन यौन इच्छाओं की पूर्ति के महान साधनों के रूप में वस्तुओं को प्रकट कर रहे हैं और क्रेताओं को आकृष्ट कर रहे हैं। वर्तमान में सेक्स एक प्रमुख क्रय प्रेरणा बनता जा रहा है।

जाति संरक्षण
(Preservation of Species)

मानव–जाति अपने संरक्षण एंव सतत् विकास की प्रबलतम इच्छा रखती है। इस इच्छा की पूर्ति हेतु मनुष्य विवाह करते हैं और समाज को स्वस्थ सन्तान प्रदान करते हैं। विपणनकर्ता उन वस्तुओं और सेवाओं के क्रय के लिए क्रेताओ को प्रोत्साहित कर सकते हैं। जिनकी सहायता से वैवाहिक जीवन सफलता के साथ सतत् रूप से चलता रहता है और बच्चों का भली प्रकार पालन–पोषण होता रहता है। विवाह से पूर्व तथा विवाह के बाद वैवाहिक जीवन की सफलता एवं निरन्तरता के लिए व्यक्तियों को अपने जीवन–साथियों को अनेक वस्तुएँ खरीदकर देनी पड़ती हैं और शादी की वर्षगांठ पर भी देनी पड़ती हैं। इसके अतिरिक्त बच्चों के प्रति हर माता–पिता में जो उत्कट स्नेह और प्रेम होता है उसको भी आधार बनाकर विपणनकर्ता अनेक प्रकार के खिलौने, मिठाईयाँ, बिस्कुट, विटामिन, तैयार वस्त्र, शिक्षण सामग्री, टाफियाँ, जूते, छाते, आदि के क्रय हेतु क्रेताओं को प्रेरित कर सकते हैं।

भय अथवा सुरक्षा
(Fear or Safety)

भय से मुक्ति एवं खतरों से सुरक्षा मानव की प्रबलतम भावना होती है जो मनुष्य को दिन–रात उन वस्तुओं और सेवाओं के क्रय हेतु प्रोत्साहित करती है जिनसे वह भय–मुक्त हो सके, खतरों से बचा रह सके, और स्वंय को सुरक्षित अनुभव कर सके। यही कारण है कि आज विपणनकर्ता, इस नकारात्मक किन्तु शक्तिशाली क्रय–प्रेरणा का हर सम्भव लाभ उठाकर नाना प्रकार की वस्तुएँ बेचने में सफलता हासिल कर रहे हैं। उदाहरण के लिए अंधेरे से बचने के लिए टार्च बेची जा रही है। जंगली जानवरों तथा दुश्मनों से बचाव के लिए पिस्तौल बेची जा रही है। दाँतो को गिरने से बचाने के लिए टुथ ब्रश एवं पेस्ट बेचे जा रहे हैं।

त्वचा की सुरक्षा के लिए पाउडर और क्रीम बेची जा रही है। बालों को गिरने एवं सफेद होने से बचाने के लिए तेल, शेम्पू आदि बेचे जा रहे हैं। मत्यु के बाद परिवार के सदस्यों की सुरक्षा हेतु बीमा पॉलिसीज बेची जा रही हैं। आग, दुर्घटना चोट आंधी तूफान आदि से होने वाली क्षति की पूर्ति हेतु व्यावसायिक बीमा पल, दुर्घटना सुरक्षा बीमा पत्र बेचे जा रहे हैं। मोटर साइकिल चालकों को हेल्मेट बेचे जा रहे हैं। अनावश्यक सन्तानोत्पत्ति से बचाने के लिए निरोध तथा अन्य साधन बेचे जा रहे हैं। मोटापे से बचने या शरीर–वद्धि के लिए व्यायाम–उपकरण बेचे जा रहे हैं। स्वास्थ्य–रक्षण के लिए विटामिन बेचे जा रहे हैं। भावी जरूरतों की पूर्ति हेतु बचत योजनायें बेची जा रही हैं। इन उदाहरणों से स्पष्ट है कि आत्मरक्षा तथा अन्य व्यक्तियों की रक्षा से सम्बद्ध भावनायें उपयोगी और प्रबल क्रयप्रेरणाएँ हैं।

विश्रांति

(Rest)

अधिकाधिक आराम करने की इच्छा हर व्यक्ति रखता है और साधन तथा अवसर प्राप्त होने पर उसकी पूर्ति का प्रयास करता है। कुशल विपणनकर्ता इस मानवी भावना को उनके विपणन कार्यक्रमों का आधार बनाकर क्रेताओं को विशिष्ट वस्तुओं की खरीद हेतु प्रोत्साहित कर सकते हैं। मनोवैज्ञानिकों ने इस वर्ग की क्रय–प्रेरणाओं में मुख्यतः निम्न क्रय–प्रेरणाओं को सम्मिलित किया है– (अ) शारीरिक श्रम के बचत की प्रेरणा, (ब) अवकाश अवसरों (Leisure Opportunities) के उपयोग की प्रेरणा, (स) मनोरंजन–सुख प्राप्ति की प्रेरणा, (द) विनोद क्रीड़ाओं से सम्बद्ध प्रेरणा, एवं (घ) घरेलू सुख–सुविधा प्रेरणा।

आज शारीरिक श्रम की बचत एवं घरेलु सुख–सुविधा उपलब्धि हेतु विपणनकर्ता मशीनी वस्तुएँ बेचने लगे हैं और क्रेताओं को खरीद हेतु प्रोत्साहित करने लगे हैं। उदाहरण के लिए मक्खन निकालने की मशीनें, मिक्सी, प्रेशर कूकर्स, हीटर्स, वाशिंग मशीनें, स्कूटर, कारें, फ्रीज आदि के प्रयोग पर बल दिया जाने लगा है। अवकाश–अवसरों का पूरा–पूरा उपयोग करने, मनोरंजन एवं मनोविनोद करने, एकाकीपन दूर करने तथा ऊब जाने से बचने के लिए रेडियो, ट्रान्जिस्टर्स, टेपरिकार्डर, पुस्तकें, तैरने के सामान, टेलिविजन, खिलौने, खेल–सामग्री पेय पदार्थ, पर्यटन, तैयार वस्त्र आदि अनेक साधनों के क्रय हेतु क्रेताओं को प्रोत्साहित किया जाने लगा है। आय एवं कार्य–काल में वद्धि होने के साथ–साथ विश्रांति और मनोरंजन के साधनों की माँग भी दिन–ब–दिन बढ़ती जा रही है।

सामाजिक प्रतिष्ठा एवं गर्व

(Social Prestige and Pride)

मनुष्य एक सामाजिक प्राणी है और वह समाज में अपना एक विशिष्ट स्थान बनाने तथा उचित सम्मान पाने के लिए सदैव यत्नशील रहता है। वह सदैव चाहता रहता है कि अन्य लोग उसकी प्रशंसा करें, उसका सम्मान करें और उसे प्रतिष्ठित व्यक्ति मानें, इसलिए वह नाना प्रकार की ऐसी वस्तुएँ खरीदता रहता है जो उसकी सामाजिक प्रतिष्ठा में वद्धि करती हों, उसे आत्म–गौरव एवं आत्म–सन्तुष्टि का बोध कराती हों, और उसके सम्मान में बढ़ोतरी करती हों। मनोवैज्ञानिकों का कहना है कि उत्तम वस्त्र, सिक्के, टिकट, कलात्मक वस्तुएँ, ज्वैलरी, श्रेष्ठ फर्नीचर, अत्याधुनिक बिजली के उपकरण, कारें, मोटर गाड़ियाँ, रेफ्रिजरेटर्स, पंखे, कूलर, एयरकंडीशनर्स आदि वस्तुओं का उपभोग व्यक्ति में गर्व और प्रतिष्ठाा की भावना पैदा करता है और व्यक्तियों उनकी खरीद हेतु प्रेरित होते हैं। साबुन, कीटनाशन दवाइयाँ, डिटरजेन्ट, विशिष्ट सौन्दर्य प्रसाधन औषधियाँ, जूते एवे उनकी पॉलिस आदि वस्तुएँ भी क्रेताओ द्वारा आत्म–गौरव और आत्म–सन्तुष्टि की भावना से खरीदी जाती हैं। अतएव, विपणनकर्ताओं को चाहिए कि क्रेताओं को उनके वैयक्तिक रूप, सम्पत्ति के रूप, स्वच्छता और कलात्मक रूचियों की अभिव्यक्ति को मुखरित करने वाली वस्तुओं की खरीद हेतु प्रेरित करें। वस्तुतः इन क्रय–प्रेरणाओं के मूल में दिखावा, अभिमान और परिग्रह की भावनाएँ छिपी हुई हैं।

मिलनसारिता

(Sociability)

मिलनसारिता एक सामाजिक गुण है जो कम अथवा ज्यादा मात्रा में हर व्यक्ति मे विद्यमान रहता है। व्यक्ति दूसरों को अपने यहाँ बुलाकर आदर–सत्कार करने की इच्छा रखता है। पारस्परिक सौजन्यता एवं समाजशीलता के निर्वाह के लिए व्यक्ति

अनेक प्रकार की वस्तुएँ खरीदने को प्रेरित होता है। अतएव, विपणनकर्ता क्रेताओं की इस भावना को उजागर करते हुए उन्हें शराब, कोकाकोला, बियर, चाय, कॉफी, विस्कुट, शर्बत, सिगरेट, हुक्का, पान–मसाले आदि अनेक वस्तुओं की खरीद करने के के लिए प्रेरित कर सकते हैं, ताकि वे सामाजिक मेल–जोल बढ़ा सके मेलजोल बढ़ाने के लिए पुस्तकों, रिकार्ड प्लेयर, वाध यन्त्र, स्टीरियोसिस्टम आदि वस्तुओं को भी उपयोगी पाया जाता है।

उद्यम

(Striving)

मनुष्य स्वभाव से ही महत्त्वकांशी होता है। वह जीवन में कुछ न कुछ करने और बनने का प्रयास करता है। उदाहरण के लिए कोई वकील बनना चाहता है, तो कोई चित्रकार, कोई व्यवसायी बनना चाहता है तो कोई कलाकार। कोई कुशल गहणी बनना चाहती है तो कोई सिने तारिका। कोई लेखक बनना चाहता है तो कोई खिलाड़ी। कोई नेता बनना चाहता है तो कोई अभिनेता। हर व्यक्ति कुछ न कुछ बनना चाहता है। और विशिष्ट निपुणता हासिल करना चाहता है। किन्तु, जीवन में कुछ करने के लिए और निपुणता विशिष्ट हासिल करना चाहता है। किन्तु, जीवन में कुछ न कुछ करने के लिए निपुणता हासिल करने के लिए अनेक उपकरणों और साधनों की जरूरत होती है जिनकी प्राप्ति के लिए व्यक्ति सदैव तत्पर रहता है। प्रतियोगी परीक्षाओं में बैठने वाले युवक–युवतियाँ नाना प्रकार की पुस्तकें खरीदने को उद्धत रहते हैं। गहणियाँ सिलाई–कढ़ाई तथा पाक–शास्त्र की पुस्तकें खरीदने की लालसा रहती हैं। नेता, अभिनेता, तारिकाएँ, लेखक आदि विशिष्ट व्यक्तित्व का निर्माण करने का प्रयास करते रहते हैं। अतएव विपणनकर्ताओं को चाहिए कि वे उद्यम कि वे उद्यम भावना को भी क्रय–प्रेरणाओं का आधार बनावें। इस वर्ग में सामाजिक उपलब्धि (Social Achievement), प्रवीणता (Proficiency), महत्त्वकांक्षा (Ambition), विशिष्टता (Distinctiveness), अनुस्पर्धा (Emulation) आदि क्रय–प्रेरणाओं को सम्मिलित किया जा सकता है।

कौतूहल

(Curiosity)

कौतूहल अथवा जिज्ञासा भी एक प्रमुख मानवीय भावना है जो मनुष्य को विभिन्न स्थानों पर पर्यटन करने, विभिन्न प्रकार के आविष्कार करने और नित–नूतन वस्तुओं क परीक्षण और उपभोग करने को प्रेरित करती हैं। इस भावना के वशीभूत होकर वर्तमान में क्रेता नित–नई वस्तुओं को खरीदने को प्रेरित होते हैं ताकि न केवल वे स्वयं को विशिष्ट बतला सकें अपितु नूतन वस्तुओं के उपभोग की लालसा को पूरा करके आत्म–सन्तोष भी प्राप्त कर सकें। पुस्तक विक्रेता, अखबार विक्रेता, टूरिस्ट संस्थाएँ, चलचित्र निर्माता, खिलौने बनााने वाली फर्में एवं रेडीमेड वस्त्रों के निर्माता ओर वितरक क्रेताओं में कौतूहल पैदा करके विक्रय–वद्धि करने में सफलता प्राप्त कर रहे हैं।

उपर्युक्त विवेचना से स्पष्ट है कि क्रेता विवेकात्मक और भावनात्मक क्रय–प्रेरणाओं से प्रेरित होते हैं। केवल विकवेकात्मक अथवा केवल भावनात्मक क्रय–प्रेरणाएँ क्रेता–व्यवहारों के स्पष्टीकरण देने में सक्षम नहीं है। हाल ही के सर्वेक्षण बतलाते हैं कि क्रेताओं की खरीद के पीछे दोनों ही प्रकार की प्रेरणाएँ होती हैं।[1] उदाहरण के लिए यदि एक युवक अपनी प्रेमिका को भेंट देने का निर्णय लेता है और तत्पश्चात् उपयुक्त वस्तु की खरीद हेतु व्यवस्थित एवं विस्तत रूप से दुकानों पर पहुँचाता है। और अन्ततः खरीद लेता है। ऐसी स्थिति में उसी खरीद के निर्णय में भावना है और खरीद प्रक्रिया विवेक है। अतएव, यह कहना ही अधिक सही है कि क्रेता विभिन्न प्रकार की क्रय–प्रेरणाओ से खरीद हेतु प्रोत्साहन पाते हैं। इस स्थिति ने कुछ विशेषज्ञों को क्रय–प्रेरणाओ को क्रेताओं द्वारा प्राप्त किये जाने वाले लाभों के आधार पर समूहित करने की प्रेरणा दी है। ऐसे आधार का 'हित–विभक्तिकरण' (Benefit Segmentation) कहा गया है।[2]

---

1. Kirk Patrik: op. cit., pp. 178-199.
2. Russel I. Haley : "Benefit Segmentation: A Decision-Oriented Research Tool", Journal of Marketing, July, 1968, pp. 30-.35.

अध्याय-6
बाजार विभक्तिकरण
(Market Segmentation)

बाजार विभक्तिकरण से हमारा अभिप्राय किसी वस्तु या ब्रांड के ग्राहकों को उनकी समान प्रकृति, रूचियों, गुणों और आवश्यकताओं के अनुसार समजातिय वर्गों अथवा खण्डों में (Homogeneous Groups) में बांटना है ताकि प्रत्येक खण्ड की ग्राहक विशेषताओं को ध्यान में रखकर उनके लिए प्रभावशाली विपणन कार्यक्रम लागू किए जा सके।

बाजार विभक्तिकरण का विचार इस बात पर आधारित है कि बाजार समजातिय (Homogeneous) न होकर विजातिय (Heterogeneous) होते है। समजातिय बाजार से अभिप्राय ऐसे बाजार से है जिसमें किसी उत्पाद या वस्तु के दो क्रेताओं या सम्भावित क्रेताओं में सभी मामलों में पूरी तरह समानता पाई जाती है अर्थात् स्वभाव, गुण और प्रकति की दष्टि से वे सब एक से होते हैं। इसके विपरित विजातिय बाजार से अभिप्राय किसी वस्तु के सम्भावित क्रेताओं में सभी मामलों में पूर्ण रूप से समानता नही होती अर्थात क्रेता स्वभाव से प्रकति एवं गुण की दष्टि से एक नही होते इसी प्रकार एक निर्माता एक प्रकार के ग्राहकों के समुदाय के लिए एक प्रकार की वस्तु बनाता है। और दूसरे प्रकार के ग्राहकों के समुदाय के लिए दूसरे प्रकार की। इस प्रकार वह अपने बाजार को विभिन्न खण्डों में विभाजित कर लेता है इस प्रकार का खण्डीकरण बाजार विभक्तिकरण कहलाता है।

उदाहरणार्थ, एक वस्त्र निर्माता अपने वर्तमान और भावी ग्राहकों की स्त्री समूह, पुरुष समूह और बच्चों के समूह में विभक्त कर प्रत्येक समूह के लिए अनुकूल विज्ञापन, मुख्य निर्धारण वितरण विधि और विक्रय नीति व कार्यक्रम तैयार करता है तो इस विज्ञापन प्रयास क्यों बाजार विभक्तिकरण रीति–नीति कहा जाएगा और प्रत्येक ऐसे समूह को बाजार खण्ड मानकर उनके अनुरूप विपणन कार्यक्रम बनाए जाएंगे।

कुछ परिभाषाओं का उल्लेख निम्नानुसार हैः

फिलिप कोटलर के अनुसार ''एक बाजार को ग्राहकों के समजातिय उपवर्गों में विभाजित किया जाना बाजार विभक्तिकरण है जिससे किसी भी उपवर्ग को बाजार लक्ष्य मानकर विशिष्ट विपणन मिश्रण के साथ उस तक पहुंचा जा सके''।

स्टाण्टन के अनुसार ''बाजार विभक्तिकरण का आशय किसी वस्तु के सम्पूर्ण विजातिय बाजार को अनेक उपबाजारों या उपखण्डों में इस प्रकार विभाजित करने से है कि प्रत्येक उपबाजार या उपखण्ड में सभी महत्वपूर्ण पहलुओं में समजातीयता हो।''

रोबर्ट के अनुसार ''बाजार विभक्तिकरण किसी उत्पाद के बाजार को टुकड़ों में विभक्त करने की रीति–नीति है ताकि उन पर विजय प्राप्त की जा सके।''

आर एस डावर की राय में, ''....ग्राहकों का समूहीकरण अथवा बाजार को टुकड़ो में बांटना ही बाजार विभक्तिकरण कहलाता है।

उपरोक्त परिभाषाओं के विवेचन से यह प्रकट होता है कि बाजार किसी वस्तु के क्रेताओं का समूह है। परन्तु इन क्रेताओं की वस्तु क्रय की मात्रा, किस्म सम्बन्धी आवश्यकताएं, प्राथमिकताएं, रूचियाँ व उनके क्रय निर्णयों को प्रभावित करने वाले घटकों तथा क्रय व्यवहारों में समानता नहीं होती। अतः एक ही प्रकार के विपणन प्रयासों से सभी प्रकार के क्रेताओं पर सफलता प्राप्त नहीं की जा सकती। एक निर्माता किन्हीं लक्षणों जैसे, आय, उम्र, लिंग इत्यादि के आधार पर मिलते–जुलते ग्राहकों से अलग–अलग समुदाय बनाकर प्रत्येक समुदाय की आधारभूत आवश्कताओं के अनुकूल विपणन प्रयास करता है तो इसे बाजार – विभक्तिकरण की संज्ञा देते हैं।

बाजार–विभक्तिकरण और बाजार खण्ड में अन्तर है! बाजार – विभक्तिकरण एक क्रिया है जिसके द्वारा बाजार को विभिन्न खण्डों में विभाजित किया जाता है। बाजार खण्ड कुल बाजार का एक ऐसा भाग है जिसमें प्रत्येक ग्राहक के क्रय–व्यवहार में समानता पायी जाती है।

बाजार विभक्तिकरण का महत्व (Importance of Market Segmentation)

निम्नलिखित तथ्य बाजार विभक्तिकरण के महत्व को स्पष्ट करते हैं:

1. **प्रभावी विपणन कार्यक्रम (Effective Marketing Programme):** एक निर्माता अपने सम्पूर्ण बाजारों को खण्डों में विभाजित कर भिन्न–भिन्न प्रभावी विपणन कार्यक्रम बना सकता है और ग्राहकों की कम लागत पर अच्छी सेवा कर सकता है। भिन्न–भिन्न प्रभावी कार्यक्रम से अर्थ प्रत्येक खण्ड के लिए अलग–अलग विपणन कार्यक्रम बनाने से है और इस प्रकार बाजार पर विजय प्राप्त की जा सकती है।
2. **साधनों का उचित उपयोग (Proper Utilisation of Resources):** निर्माता के द्वारा बाजार विभक्ति के आधार पर विपणन–बजट को बांधकर अधिकतम लाभ कमाया जा सकता है। जिन स्थानों पर वस्तुओं के विक्रय की सम्भावनाएं कम हैं इन स्थानों का विपणन–बजट उसी के अनुसार कम रखा जा सकता है। ऐसा करने से एक विक्रेता व्यर्थ के खर्चों से बच सकता है तथा अधिक लाभ कमा सकता है।
3. **मांग में संतुलन स्थापित करना:** बाजार विभक्तिकरण विपणन प्रबन्धकों को विभिन्न बाजार खंडों को गहराई से समझने में सहायता करता है। परिणामस्वरूप संस्था के प्रबंधक अपनी वस्तु के गुणों और बाजार के सम्पूर्ण खंडों के क्रेताओं की मांग में उचित संतुलन स्थापित कर सकते हैं।
4. **विपणन अवसरों का पता लगाना (Spoting Marketing Opportunities):** बाजार विभक्तिकरण एक निर्माता को अपनी वस्तु बेचने की संभावनाओं का पता लगाने में सहायक होता है। जिस स्थान पर वस्तु कम बिकती है वहां पर विपणन सुविधाओं में हेर–फेर कर उपभोक्ताओं को संतुष्ट कर बिक्री बढ़ायी जा सकती है।
5. **प्रतियोगिता का सामना करना आसान:** बाजार विभक्तिकरण द्वारा विभिन्न बाजार खंडों के लिये प्रतिस्पर्धा के अनुरूप भिन्न–भिन्न विपणन रीति–नीति (Strategy) का प्रयोग करके प्रतिस्पर्धा का प्रभावशाली ढंग से सामना किया जा सकता है।
6. **नए क्षेत्रों का पता लगाना (Find Out New Areas):** बाजार विभक्तिकरण कर नए क्षेत्रों का पता लगाकर नवीन ग्राहक बनाए जा सकते हैं।

विपणन प्रबन्धक अपनी वस्तु की बिक्री के लिए उपयोगी मानता है। जैसे—उपभोक्ता को भौगोलिक क्षेत्र के आधार पर बांटा जा सकता है। राष्ट्रीय बाजार, राज्य बाजार, स्थानीय बाजार और शहरी–ग्रामीण बाजार आदि भौगोलिक क्षेत्र के अन्तर्गत आते हैं। बाजार का खण्डीकरण मौसमी दशाएं (Climate Conditions) के आधार पर किया जा सकता है उदाहरण के लिए गर्म, ठंडा तथा बरसाती क्षेत्र (Rainy Region) आदि।

B. **जनांकिकी आधार** (Demographic)—आयु, आय, लिंग भेद, शिक्षा, व्यवसाय, जीवन चक्र, धर्म, रंग तथा जाति आदि के आधार पर बाजार का बंटवारा जनांकिकी खंडीकरण कहलाता है।

   a. **लिंग भेद** (Sex)—लिंग के आधार पर भी बाजार विभक्तिकरण किया जा सकता है क्योंकि स्त्री और पुरुष की भौतिक, मानसिक, मनोवैज्ञानिक आवश्यकताओं तथा आदतों में बहुत अन्तर पाया जाता है।

   b. **आय** (Income)—उपभोक्ता की आय का स्तर बाजार खंडीकरण का सबसे ज्यादा प्रचलित रूप है क्योंकि एक व्यक्ति की आय उसकी क्रय शक्ति (Purchasing Power) को निर्धारित करती है। इस खंडीकरण के अनुसार ग्राहकों को विभिन्न आय वर्गों में बांटा जाता है जैसे 1,000 रु. से कम आय वाले व्यक्ति, 1,000-2,000 रु. आय वाले व्यक्ति, 2,000-5,000 रु. आय वाले व्यक्ति आदि। इस प्रकार का खंडीकरण कीमत निर्धारण तथा उत्पाद विकास मोर्चाबन्दी (Strategy) में सहायक होता है।

c. **आयु** (Age)—आयु के आधार पर भी बाजार विभक्तिकरण किया जा सकता है क्योंकि आयु के अन्तर के कारण क्रेताओं की पसन्द, रूचि, गुण, आवश्यकताएं अलग–अलग होती हैं जैसे—एक वस्त्र निर्माता अलग–अलग आयु के क्रेताओं के अलग–अलग डिजाइनों, रंगों आदि के वस्त्र बनायेगा। जॉनसन एण्ड जॉनसन Johnson & Johnson कम्पनी ने आयु को बाजार खंडीकरण का आधार मानते हुए विभिन्न प्रकार के उत्पाद बाजार में उतारे जैसे बेबी पाउडर (Baby Powder), बेबी साबुन (Baby Soap) तथा बेवी आयल (Baby Oil) इत्यादि।

d. **शिक्षा** (Education)—शिक्षा के आधार पर भी बाजार विभक्तिकरण किया जा सकता है जैसे—मैट्रिक तक शिक्षा प्राप्त व्यक्ति, स्नातक (Graduation) तक शिक्षा प्राप्त व्यक्ति, तथा उच्च शिक्षा प्राप्त यानी स्नातकोत्तर (Post-graduation) तक शिक्षा प्राप्त व्यक्ति के अलग–अलग समूह बनाए जा सकते हैं।

e. **धंधा/पेशा/व्यवसाय** (Occupation/Profession/Business)—धंधा/व्यवसाय/पेशा के आधार पर भी बाजार विभक्तिकरण किया जा सकता है क्योंकि अलग–अलग व्यवसाय वर्ग के व्यक्तियों का रहन–सहन, सोचने और विचारने का तरीका तथा खर्च करने के तरीके में बहुत अन्तर होता है। जैसे—व्यापारी वर्ग, कृषक वर्ग, उद्योगपति तथा नौकरी करने वालों का वर्ग आदि। डाक्टर, वकील, अध्यापक को पेशे के आधार पर खंडीकरण कर बाजार में विजय प्राप्त की जा सकती है।

f. **परिवार का आकार** (Size of the Family)—परिवार के आकार को आधार मानकर बाजार खंडीकरण किया जा सकता है। जैसे छोटा परिवार (Small Family), बड़ा परिवार (Large Family) तथा संयुक्त परिवार (Joint Family)।

g. **धर्म एवं जात** (Religion and Caste)—निर्माता तथा विक्रेता कुछ परिस्थितियों में धर्म तथा जात (Religion & Caste) को खंडीकरण का आधार बनाकर विभिन्न प्रकार के उत्पादो का निर्माण करते है तथा बाजार में प्रवेश करते है। हिन्दू, मुस्लिम, सिख, ईसाई, तथा पारसी (Parsis) इसके उदाहरण है।

विभक्तिकरण के उदाहरण
(Examples of Segmentation)

1. **टेलीविजन** (Television)—टेलीविजन, रेडियो तथा चलचित्र दोनों आवश्यकताओं की पूर्ति करता है। आज घर पर बैठे–बैठे ही विश्व में घटने वाली घटनाओं से लेकर, संगीत एवं फिल्मों का आनन्द ले सकते हैं। टेलीविजन के प्रकार बहुत से हैं जैसे—ब्लैक एण्ड व्हाइट टेलीविजन, रंगीन टेलीविजन, छोटी स्क्रीन वाले टेलीविजन, बड़ी स्क्रीन वाले टेलीविजन, सस्ते टेलीविजन, महंगे टेलीविजन, इन्टरनेट टेलीविजन (Internet Television) व्यक्ति अमीर हो, गरीब हो, सभी अपने यहां टेलीविजन रखना चाहते हैं। किन्तु प्रत्येक क्रेता अलग–अलग ब्राण्ड तथा सस्ते और महंगे टेलीविजन सेट खरीदता है। कुछ ग्राहक ब्लैक एण्ड व्हाइट टेलीविजन खरीदते हैं तो कुछ रंगीन टेलीविजन खरीदते हैं।

प्रभावी विभक्तिकरण की विशेषताएं
(Characteristics of Effective Segmentation)

बाजार के श्रेष्ठ विभाजन के लिए उपयुक्त ग्राहक विशेषताओं का चुनाव करने में विक्रेता को निम्नांकित शर्तों की पूर्ति पर बल देना चाहिए:

1. मापने योग्य (Measurable): इस शर्त का आशय यह है कि क्रेता संबंधी विशेषताओं के बारे में विक्रेता को पर्याप्त सूचना होनी चाहिए। दुर्भाग्यवश अनेक संकेतपूर्ण विशेषताएं सरलता से मापनीय नहीं हैं। उदाहरणार्थ, ऐसे कार क्रेताओं की संख्या को नापना कठिन है जो मुख्यतः मितव्ययिता, हैसियत या गुण संबंधी विचार से प्रेरित होते हैं।
2. सुगम पहुंच (Easily Asscessible): इस शर्त का आशय यह है कि फर्म अपने विपणन प्रयासों को चुने हुए खंडों पर प्रभावशाली रूप से केन्द्रित करने में समर्थ होनी चाहिए। इस दष्टि से विभक्तिकरण के सभी आधार उपयुक्त नहीं होते। उदाहरणार्थ यह अच्छा होगा कि विज्ञापन प्रयास सम्मति नेताओं (opinion leaders) अर्थात् ऐसे व्यक्ति जिनकी राय या सम्पति से अन्य लोग प्रभावित होते हैं (जिसे कि फिल्म अभिनेता) पर केन्द्रित रखे जाएं। किन्तु यहां कठिनाई

यह है कि नेताओं की विज्ञापन माध्यम संबंधी पसदें सदा इनके अनुयायियों की माध्यम संबंधी पसंदों के समान नहीं होती हैं।

3. **पर्याप्त विस्तति (Substantial):** इस शर्त का आशय यह है कि जो बाजार खंड बनें वह पर्याप्त बड़े होने चाहिए, ताकि प्रत्येक वर्ग के लिए विपणन योजनाएं पथक–पथक बनाना लाभदायक हो सकें। दूसरे शब्दों में खंड वह लघुतम इकाई होनी चाहिए जोकि एक पथक विपणन कार्यक्रम बनाने की दष्टि से व्यावहारिक हो। खंडीय विपणन बड़ा व्ययशील होता है। उदाहरणार्थ यदि एक निर्माता बौने पुरुषों के लिए विशेष प्रकार की सीटों के विकास का प्रयास करे तो इसमें इतना अधिक खर्च आयेगा कि उसे सहना कठिन हो सकता है।

बाजार विभक्तिकरण की व्यूहरचनायें
(Strategies of Market Segmentation)

सामन्यतया बाजार विभाजन के संदर्भ में उपयोग के लिए तीन प्रकार की मोर्चाबंदी होती है।

1. अभिन्न विपणन (Undifferentiated Marketing)
2. भिन्न विपणन (Differentiated Marketing)
3. केन्द्रित विपणन (Concentrated Marketing)

1. **अभिन्न विपणन (Undifferentiated Marketing):** अभिन्न विपणन मोर्चाबंदी में विक्रेता विभिन्न वर्ग या ग्राहकों के प्रकारों के बीच भिन्नता नहीं करता। सामान्य विपणन कार्यक्रम से सब ग्राहकों के लिए केवल एक किस्म की वस्तु उत्पादित की जाती है और बाजार में बेची जाती है। भारत में अधिकांश फर्म अभिन्न विपणन मोर्चाबंदी का ही उपयोग करती है।

2. **भिन्न विपणन (Differentiated Marketing):** भिन्न विपणन व्यूहरचना में बाजार विभाजन चल के आधार पर विभिन्न प्रकार के ग्राहकों में होता है। विक्रेता विभिन्न ग्राहकों के विभाजन के लिए विभिन्न प्रकार और किस्म की वस्तुएं उत्पादित करता है और बेचता है, प्रत्येक विभाजन के लिए विभिन्न विपणन कार्यक्रम बनाए जाते हैं और उपयोग किए जाते हैं।

केवल बाजार बिना किसी विभाजन के

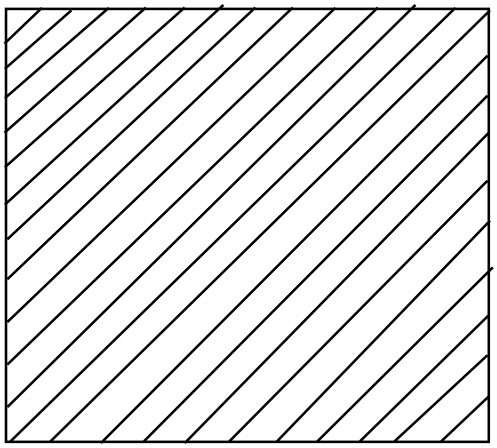

No Segmentation only one market

चित्र 1: अभिन्न विपणन व्यूहरचना (Undifferentiated Marketing Strategy)

विभाजन नहीं एक विपणन – एक उत्पाद तथा एक ही उत्पाद योजना (No Segmentation–one Marketing–one product and one Marketing Programme)

3. **केन्द्रित विपणन (Concentrated Marketing):** केन्द्रित विपणन मोर्चाबंदी में विक्रेता के तमाम विपणन प्रयत्न एक या अधिक बाजार विभाजनों की ओर निर्देशित होते हैं। दूसरे शब्दों में फर्म उसके विपणन प्रयत्न कुछ चुने हुए बाजार विभाजनों की तरफ केन्द्रित करती है जो अधिक लाभदायक हो सकता है।

भारत में ''शीतल पेय'' (Soft Drink) के निर्माता अभिन्न विपणन मोर्चाबंदी की व्यवस्था करते हैं जैसे – पैप्सी कोला, थम्स अप, 77 आदि जो केवल एक ही स्वाद का और एक ही बोतल के आकार में बेचा जाता है जबकि सिगरेट के निर्माता भिन्न विपणन का प्रयोग करते हैं, जैसे विल्स केपस्टन गोल्ड फ्लेक विभिन्न आकार में उपलब्ध हैं। फिल्टर वाले, बिना फिल्टर वाले विभिन्न पैकिंग बाजार कई भागों में विभाजित किया जाता है – विपणन प्रयास एक या अधिक विभाजनों की ओर केन्द्रित होता है। (Market divided into segments – marketing effort concentrated to one or more segments)

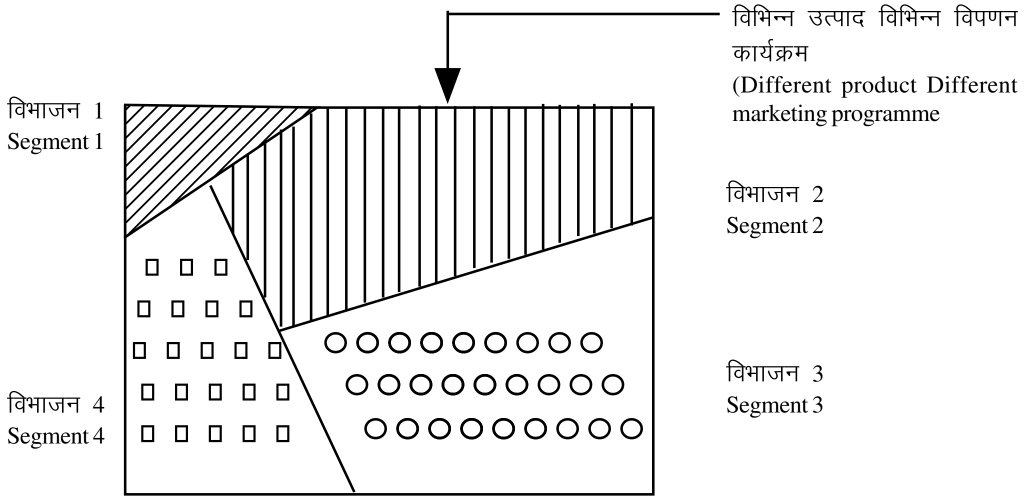

चित्र 2: भिन्न विपणन व्यूहरचना (Differentiated Marketing Strategy)

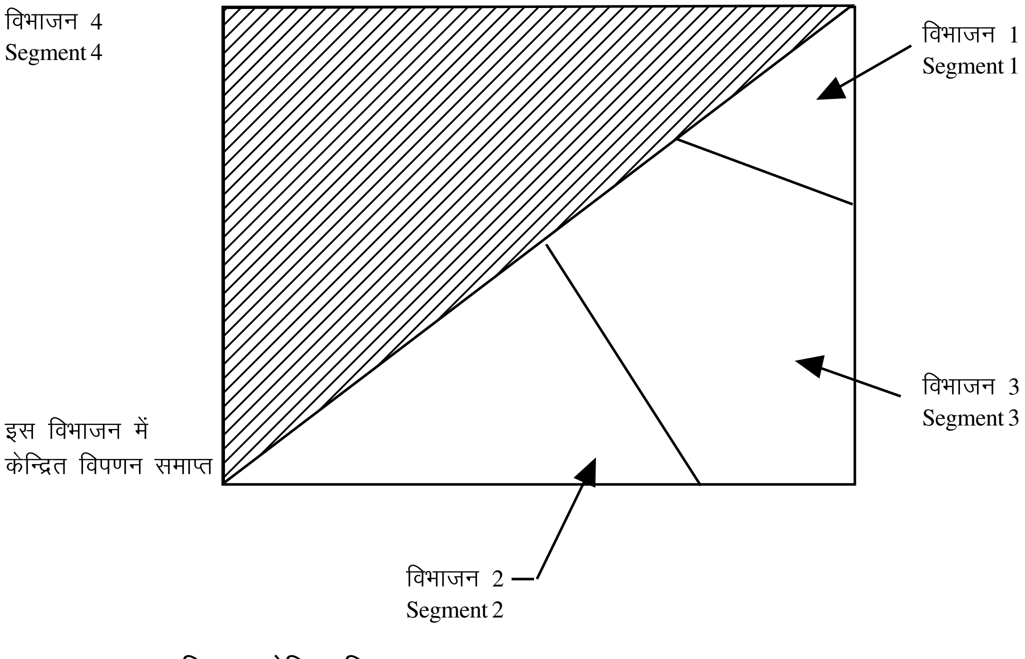

चित्र 3: केन्द्रित विपणन व्यूहरचना (Concentrated Marketing Strategy)

विभिन्न वर्ग के ग्राहकों के लिए विभिन्न किस्म और विभिन्न मूल्यों में मिलते हैं। फर्म द्वारा मोर्चाबंदी के चुनाव का निर्णय करना कई घटकों पर निर्भर है, जैसे फर्म के स्रोत, वस्तु सजातीयता, जीवनचक्र में वस्तु की अवस्था, बाजार सजातीयता और प्रतिस्पर्धा विपणन में मोर्चाबंदी।

उपयुक्त विभक्तिकरण व्यूहरचना का चयन
(Selecting an Appropriate Segmentation Strategy)

जिन तीन विपणन नीतियों का वर्णन ऊपर किया गया है उनमें से कोई विशेष नीति व्यवहार में कभी–कभी इतनी जबर्दस्त होती है कि चुनाव का प्रश्न ही नहीं उठता। अथवा, कोई नीति व्यवहार में कभी–कभी इतनी स्पष्टता से अनुपयुक्त पाई जाती है कि चुनाव निर्णय शेष दो नीतियों तक सीमित हो जायेगा। एक साधारण नियम के रूप में वास्तविक चुनाव को विक्रेता, उत्पाद या बाजार के विशिष्ट लक्षण निबाधित और सीमित करते हैं। किसी नीति विशेष के चुनाव के लिए सबसे महत्वपूर्ण घटक निम्न हैं – कंपनी प्रसाधन, उत्पाद एकरूपता, जीवन चक्र, में उत्पाद–प्रावस्था, बाजार एकरूपता और प्रतिस्पर्धी विपणन नीतियां।

1. **कंपनी प्रसाधन (Company Resources):** इस घटक की चर्चा संकेन्द्रित विपणन का विवेचन करते समय की गयी थी। जहां फर्म के प्रसाधन इतने सीमित हैं कि बाजार के संपूर्ण क्षेत्र पर कार्य नहीं किया जा सकता, वहां संकेन्द्रित विपणन ही एक वास्तविक विकल्प होगा।

2. **उत्पाद एकरूपता (Product Homogeniety):** इसका तात्पर्य उत्पाद संबंधी विशेषताओं की अपरिवर्तनीयता या अचलता से है। उदारणार्थ, अधिकांश उपभोक्ता नमक, गेसोलीन जैसी बुनियादी वस्तुओं में कोई अन्तर नहीं देखते, जिससे ऐसी वस्तुओं के लिए भेदित या संकेन्द्रित विपणन व्यूहरचना के बजाए अभेदित विपणन की व्यूहरचना अपनाना ही अधिक स्वाभाविक है। दूसरी और कैमरा, कार जैसे उत्पादों के लिए जो कि बहुत ही परिवर्तनीय होते हैं, भेदित या सकेन्द्रित विपणन अधिक उपयुक्त है।

3. **जीवन चक्र में उत्पाद प्रावस्था (Product stage in the life Cycle):** यह घटक चुनी जाने वाली विपणन नीति को विशेषतः बाजार प्रवेश और बाजार संतप्ति संबंधी चरम स्थितियों में बहुत प्रभावित करता है।

   जब कोई कंपनी बाजार में नया उत्पाद प्रचलित करती है तो प्रायः उसे यह व्यावहारिक प्रतीत नहीं होता कि उत्पाद के एक से अधिक रूप प्रचलित करे। कंपनी को प्राथमिक मांग के विकास में अधिक रूचि रहती है, अतः वह अभेदित विपणन की नीति को सर्वोपयुक्त समझती है। वैकल्पिक नीति यह हो सकती है कि कंपनी बाजार के एक खंड विशेष के लिए उत्पाद का विकास करते हुए अपने प्रयासों को वहीं संकेन्द्रित कर दे। जैसे–जैसे उत्पाद अपने जीवन चक्र के संतप्तीकरण की स्थिति की ओर बढ़ता है अपनी बिक्री बढ़ाने हेतु कंपनी नई–नई और अशोषित आवश्यकताओं की गहन खोज आरंभ कर देती है। इस प्रकार उत्पाद के जीवन चक्र की परिपक्व अवस्था में कंपनी भेदित विपणन की नीति का अनुसरण करने लगती हैं

4. **बाजार एकरूपता (Market Homogeniety):** ''बाजार एकरूपता'' का तात्पर्य उस अंश से है जिस तक आवश्यकताओं प्राथमिकताओं और विशेषताओं की दष्टि से ग्राहकों में समानता हो। ऐसे बाजारों का खंडीकरण तब ही संभव है जबकि वहां इसके लिए एक अनुकूल स्थिति पैदा कर दी जाए। अर्थात फर्म को ऐसे उपाय करने होंगे। जिनसे प्रेरित होकर ग्राहक भिन्न–भिन्न प्राथमिकतायें विकसित कर ले। साधारणतः एकरूपता वाले बाजारों का विदोहन अभेदित विपणन के द्वारा सर्वोत्तम प्रकार से किया जा सकता है, जबकि विविधतामय बाजारों का भेदित विपणन अथवा सकेन्द्रित विपणन के द्वारा।

5. **प्रतिस्पर्धात्मक विपणन नीतियां (Competitive Marketing Strategies):** प्रतिस्पर्धात्मक विपणन नीतियों का तात्पर्य प्रतियोगियों के कार्यकलापों से है। यदि प्रतियोगियों ने सक्रिय खंडीकरण किया हुआ है, तब फर्म के लिए अभेदित विपणन द्वारा प्रतियोगिता करना कठिन होगा। अधिकांश संघर्षों में उसे मात खानी पड़ेगी। दूसरी ओर जब प्रतियोगियों ने अभेदित विपणन अपनाया हो, तब फर्म सक्रिय विभक्तिकरण की नीति पर चलते हुए लाभान्वित हो सकती है, विशेषतः जबकि कुछ पूर्व वर्णित घटक उसका समर्थन करने वाले हों।

व्यापार विभक्तिकरण के आधार

(Basis for Market Segmentation)

बाजार विभक्तिकरण के आधार बहुत से हो सकते है जैसे आर्थिक, सामाजिक, राजनीतिक, प्रतियोगिता, उपभोक्ता की आयु, शिक्षा, व्यवहार करने का ढंग, रहने का स्थान, उपभोग की मात्रा आदि कण्डिफ और स्टिल ने औद्योगिक बाजार व उपभोक्ता बाजार के विभक्तिकरण के लिए निम्न आधार बनाए है।

उपभोक्ता बाजार के विभक्तिकरण के आधार	औद्योगिक बाजार के विभक्तिकरण के आधार
1. उपभोक्ता की आय	1. व्यवसाय की किस्म
2. उपभोक्ता की आयु	2. सामान्य क्रय का तरीका
3. उपभोक्ता का लिंग	3. उपभोक्ता का आकार
4. उपभोक्ता में नगरीकरण की स्थिति	4. भौगोलिक विभाजन
5. उपभोक्ता बाजार का भौगोलिक बाजार विभक्तिकरण	
6. उपभोक्ता की शिक्षा	
7. उपभोक्ता का धर्म	

लेकिन फिलिप कोटलर ने बाजार विभक्तिकरण के निम्न आधार बताए है जो कण्डिफ एवं स्टिल की पुस्तक के आधारों से कहीं अच्छे दिखाई देते हैं।

कोटलर ने बाजार–विभक्तिकरण के निम्न आधार बताये हैं:

1. **भौगोलिक आधार:** भौगोलिक आधार में जनसंख्या का फैलाव, घनत्व, जलवायु, क्षेत्र इत्यादि तत्त्वों का समावेश होता है भौगोलिक विभक्तिकरण में इन भौगोलिक क्षेत्रों का निर्धारण किया जाता है जिन्हें विपणन प्रबन्धक उत्पाद की बिक्री के लिए अनुकूल मानता है। उदाहरणार्थ, ऊनी–वस्त्र निर्माता के लिए उत्तरी पश्चिमी भारत के शहर भौगोलिक दष्टि से महत्त्वपूर्ण बाजार–खण्ड हो सकते हैं क्योंकि सर्दी में इस भौगोलिक क्षेत्र का जलवायु अधिक ठंडा हो जाने से गर्म कपड़ों की अधिक आवश्यकता होती है। इन शहरों में रहने वाले व्यक्तियों की समान एवं असमान रुचियों को ध्यान में रखते हुए विभिन्न प्रकार के ग्राहकों के लिए अनुकूल ऊनी–वस्त्र तैयार करके उपयुक्त विज्ञापन माध्यमों द्वारा एक ऊनी–वस्त्र निर्माता बिक्री बढ़ा सकता है। विज्ञापन की दष्टि से भी भौगोलिक खण्डों का बहुत महत्त्व है। विज्ञापनदाता को ऐसे साधन अथवा माध्यम अपनाने चाहिए जो उसके विभिन्न बाजार–खण्डों के लक्षणों के अनुरूप हैं।
2. **जनांकिकी आधार**– जनांकिकी आधार के अन्तर्गत निम्न तत्वों का समावेश किया जाता है – आय, आयु, लिंग, पेशा, शिक्षा, परिवार–आकार और जीवन–चक्र, धर्म राष्ट्रीयता और सामाजिक वर्ग।

जनांकिकी पर आधारित बाजार–विभक्तिकरण के लिए एक या अधिक जनांकिकी तत्वों को आधार मानकर समजातीय ग्राहक समूह निर्धारित किये जा सकते हैं। उदाहरणतया एक वस्त्र–निर्माता किशोरियों को अलग बाजार खण्ड मानकर विपणन प्रयास लक्षित करता है तो वह बाजार–खण्ड लिंग और उम्र जैसे तत्वों के आधार पर होगा। इस बाजार–खण्ड के शिक्षा, आय इत्यादि आधारों पर अनेक उपखण्डो का निर्माण किया जा सकता है और प्रत्येक खण्ड के लिए विपणन–प्रयासों की लाभदेयता मालूम की जा सकती है। अधिकांशतया बाजार–विभक्तिकरण जनांकिकी तथ्यों के आधार पर किये जाते है। अतः बाजार विभक्तीकरण के लिये प्रयोग मे लिये जाने वाले महत्वपूर्ण जनांकिकी आधारो का विस्तत विवेचन यहाँ किया जाना उचित होगा।

i. **आय**– किसी भी व्यक्ति की आय उसकी क्रय शक्ति का प्रतीक है। कुछ वस्तुएँ ऐसी होती हैं जो सभी वर्गों द्वारा काम मे लायी जाती हैं। ऐसी वस्तुओं को हम आधारभूत आवश्यकताओं की श्रेणी मे सम्मिलित करते हैं। इसके विपरीत अधिकांश निर्मित विशिष्ट आय–वर्गों द्वारा ही क्रय की जाती हैं। अतः निर्माता को उन विशिष्ट वर्गों के लक्षणों तथा आवश्यकताओं पर अपना ध्यान केन्द्रित करना होता है। निम्न आय वर्ग के लोग प्रायः मूल्य अथवा कीमत पर अधिक ध्यान देते हैं। उच्च आय वर्ग के लोग वस्तुओं के गुण, साज–सज्जा तथा सामाजिक प्रतिष्ठाा से अधिक प्रभावित होते हैं। अतः निर्माता को इन वर्गो के अनुरूप कीमत वाली वस्तुओं का विक्रय करना चाहिए। विभिन्न आय–वर्ग के लिए विज्ञापन, प्रचार, वितरण विधि, साज–सज्जा, पैकिंग तथा अन्य सुविधाएँ उनके स्वभाव एवं प्रकृति के अनुरूप होने पर विपणन प्रयास में सफलता की सम्भावना बढ़ जाती है।

ii. **आयु**– आयु के आधार पर भी बाजार–विभक्तिकरण करना सम्भव है। बालक, किशोर, वद्ध के स्वभाव, आदतें, रूचि व क्रय शक्ति में अन्तर पाया जाता है। अतः इनको अलग–अलग बाजार खण्ड मानकर उनके अनुरूप विपणन प्रयास करने चाहिए। उदाहरणतया एक टूथ–पेस्ट निर्माता जवानों की ओर लक्षित विज्ञापन अपील में दातों की चमक और वद्धों को की गई अपील में दाँतों की चमक और वद्धों को की गई अपील में दाँतों का खोखलापन (Cavity) रोकने सम्बन्धी टूथपेस्ट के गुणों पर अधिक जोर देगा।

iii. **यौन अथवा लैंगिक भेद**– इस गुण के आधार पर भी बाजार विभक्तिकरण किया जा सकता है क्योंकि स्त्री व पुरूष की भौतिक, मानसिक एवं मनोवैज्ञानिक आवश्यकताओं, प्रवत्तियों तथा अभिप्रेरकों में भिन्नता पाई जाती है। इसलिए स्त्रियों व पुरुषों के लिए विज्ञापन की अपीलों की रचना में भेद पाया जाता है।

iv. **शिक्षाः** शिक्षा की दष्टि से भी ग्राहकों को अनेक खण्डों में विभाजित किया जा सकता है। उदाहरणार्थ प्राथमिक स्तर तक पढ़े–लिखे व्यक्ति और स्नातक तथा स्नाकोत्तर शिक्षा प्राप्त व्यक्तियों के अलग वर्गसमूह बनाए जा सकते हैं। फिल्मों का निर्माण करने वाले व्यक्तियों के शिक्षा–स्तर का ध्यान रखकर फिल्म का निर्माण करते हैं अर्थात् बाजार खण्डों का निर्माण करते हैं अर्थात् बाजार खण्डों का निर्माण शिक्षा–स्तर के अनुसार किया जाता है। जैसे–ऊँचे स्तर के चलचित्र केवल बुद्धिजीवियों के लिये निर्मित किये जाते हैं।

v. **व्यवसाय वर्गः** व्यवसाय की दष्टि से भी हम ग्राहकों को अनेक वर्गों में विभाजित कर सकते हैं। उदाहरणार्थ–नौकरी पेशा वर्ग, व्यापारी वर्ग, कषक वर्ग इत्यादि। इन सभी वर्गों के रहने, सोचने तथा खर्च करने के तरीकों में भिन्नता पाई जाती है।

3. **मनोवैज्ञानिक आधारः** ग्राहकों की मनोवैज्ञानिक विशेषताओं को भी बाजार–विभक्तिकरण का आधार बनाया जा सकता है। ये मनोवैज्ञानिक विशेषताएंग्रहक के व्यक्तित्व से सम्बन्धित होती है; जैसे–जीवन–शैली, वस्तु–उपभोग इत्यादि। कुछ लोग नई वस्तुओं के प्रयोग के लिये तत्पर रहते हैं, कुछ स्वभाव से भीरू होते हैं तथा समरस जीवन के अभ्यस्त हो जाते हैं, कुछ स्वभाव से साहसी होते हैं तथा जीवन में एकरसता अथवा समरसता को अभिशाप समझते हैं। अतः सभी व्यक्तियों के लिये एक ही प्रकार का विज्ञापन संदेश तैयार करने से विपणन प्रयासों में सफलता मिलने की सम्भावना कम हो जाती है।

मनुष्यों की जीवन–शैली तथा जीवन के प्रति दष्टिकोण उनके क्रय–व्यवहारों को प्रभावित करता है। जीवन–शैली से हमारा अभिप्राय एक व्यक्ति अथवा किसी वर्ग के उपभोग, कार्य और अवकाश का उपभोग कसे के तरीके से हैं। संयुक्त–राज्य अमेरिका, फ्रांस इत्यादि देशों में जीवन–शैली के आधार पर बाजार–खण्डों के अनुरूप विपणन प्रयास को अधिक महत्व दिया जाने लगा है।[1] इन देशों में स्त्री–वस्त्र निर्माता स्त्री–वर्ग को तीन भागों जैसे साधारण, फैशनेबल और पुरूष–गुण सम्पन्न को ध्यान में रखते हुए उनके के लिए अलग–अलग प्रकार के वस्त्र व विज्ञापन–संदेश तैयार करते हैं। जीवन के प्रति दष्टिकोण भी बाजार–माँग को प्रभावित करता है। हमारे देश में फैशन की और झुकाव बढ़ता जा रहा है। अतः वस्त्र–निर्माता भी फैशनेबल वस्त्रों के निर्माण की ओर अधिक ध्यान देने लगे हैं।

व्यक्तित्व सम्बन्धी घटकों का प्रभाव अनेक उत्पादों और ब्रांडों की बिक्री पर पड़ते देखा गया है। कुछ दशक–पूर्व किये गये एक अध्ययन से पता लगा कि फोर्ड और शिवरलेट मोटरकारों के ग्राहकों में व्यक्तित्व सम्बन्धी भिन्नता पाई जाती है।[2] फोर्ड मोटर कार के स्वामी "स्वामी, आत्मविश्वासी, परिवर्तन के प्रति सजग, आवेगी और पौरूषी" होते हैं; जबकि शिवरलेट मोटर–कार के स्वामी "रूढ़िवादी, मितव्ययी, प्रतिष्ठा अभिलाषी, कम पौरूषी और अति से बचने वाले" होते हैं।

4. **विपणन तत्त्व**– बाजार तत्त्वों के आधार पर भी बाजार विभक्तिकरण किया जा सकता है। उदाहरणतया एक बाजार को तीन ग्राहक समूहों में अर्थात् बाजार–खण्डों में विभक्त किया जा सकता है। जैसे (i) वस्तु मूल्यों से

---

1 Mark Hinan: "Life Styled Marketing"
(New York: American Management Association, 1972)

2 Franklin B. Evans: "Psychological and Objective factors in the prediction of brand choice: Ford versus Cheverlet."
Journal of Business, Oct. 1959, pp. 340-369

प्रभावित होने वाले ग्राहक, (ii) वस्तु किस्म से प्रभावित होने वाले ग्राहक, (iii) वस्तु से प्रभावित होने वाले ग्राहक। एक निर्माता को इन तीनों बाजार–खण्डों के लिए अलग–अलग विपणन प्रयास करने में अधिक सफलता मिल सकती है।

5. **उत्पान प्रयोग दर**– मनस्थिति, वस्तुज्ञान और वस्तु उपभोग–दर भी बाजार विभक्तिकरण का आधार हो सकता है। यथेष्ट क्रय–क्षमता होने पर भी अगर उपभोक्ता वस्तु–क्रय में रूचि नहीं रखता है तो क्रय के लिए उन्हे बाध्य नहीं किया जा सकता। अनेक व्यक्ति ऐसे हो सकते हैं जिनकी मनस्थिति को परिवर्तन कर भावी ग्राहक बनाया जा सकता है। विमुख व्यक्तियों को नई वस्तु के प्रति आकर्षित करने के लिए अलग प्रकार की विपणन रीति–नीति अपनानी होगी। वस्तु की उपभोग दर बाजार–खण्डीकरण का एक लाभदायक आधार होती है। इस आधार पर निर्माता अपनी वस्तु बाजार को तीन भागों में विभक्त कर सकता है। जैसे वस्तु का कम प्रयोग करने वाले ग्राहक, भारी प्रयोग करने वाले ग्राहक और प्रयोग न करने वाले ग्राहक। प्रयोग न करने वाले ग्राहकों को पुनः निम्न भागों में विभक्त किया जा सकता हैः (i) असम्भावित क्रेता और (ii) सम्भावित क्रेता।

   असम्भावित क्रेता वर्ग में उन व्यक्तियों को शामिल किया जाता है जो उत्पाद का प्रयोग नहीं करेंगे। **सम्भावित क्रेता** वे हो सकते हैं जो मनोवैज्ञानिक संकोच के कारण अथवा उत्पाद अनभिज्ञता की वजह से अथवा निष्क्रियता के कारण उत्पाद क्रय नहीं करते हैं। ऐसे वर्ग के क्रेताओं के लिए उत्पाद के बारे में विस्तत सूचना देने, बार–बार विज्ञापन द्वारा तथा संकोच को दूर करने की विधियां अपनाने से उन पर विजय पाई जा सकती है।

6. **लाभों के आधार परः** अनेक उपभोक्ता अनुसंधानों से यह ज्ञात हुआ है कि क्रेता–वस्तुओं को लाभ–प्राप्ति के उद्देश्य से क्रय करते हैं। अनेक क्रेताओं के लाभ–प्राप्ति सम्बन्धी क्रय–प्रेरकों (Buying Motives) में भिन्नता पाई जाती है। एक अध्ययन से पता चला कि कुछ क्रेता टूथ पेस्ट की एक ब्राण्ड को दांतों की चमक बनाए रखने के लिए खरीदते हैं जबकि अन्य ब्राण्ड को अच्छी सुगन्ध की वजह से क्रय करते हैं। एक क्रेता–वर्ग ऐसा भी पाया गया जो इस ब्राण्ड को इसके मितव्ययिता के गुण की वजह से क्रय करता है। अतः एक विपणन प्रबन्धक को अपने विपणन संवर्द्धन कार्यक्रम तैयार करते समय क्रय के इस अन्तरभेद को ध्यान में रखना पड़ेगा। दूसरे शब्दों में एक विपणन प्रबन्धक द्वारा ग्राहकों के उत्पाद विशेष लाभ के प्रति झुकाव को ध्यान में रखकर ही बाजार–विभक्तिकरण करना चाहिए ताकि प्रत्येक बाजार–खण्ड के अनुकूल विपणन प्रयास किया जा सके।

   ग्राहकों की विशेष लाभ–प्राप्ति–प्रवृत्ति के अनुसार बाजार–विभक्तिकरण करने में सबसे बड़ी कठिनाई यह आती है कि ग्राहक कई बार अनेक लाभ–प्राप्ति के उद्देश्यों से वस्तु को क्रय करता है; अतः समान लाभ–प्राप्ति उद्देश्य वाले ग्राहकों का पता लगाना कठिन हो जाता है।[3]

7. **ब्राण्ड-निष्ठाः** विक्रेता अपने क्रेता को ब्राण्ड–निष्ठा के आधार पर भी वर्गित कर सकते हैं। निर्माता अपने वर्तमान निष्ठ ग्राहकों की विशेषताओं का पता लगाकर उन व्यक्तियों को ग्राहक बनाने की चेष्ठा करते हैं जिनमें इस प्रकार की विशेषताएँ पाई जाती हों परन्तु यहाँ सबसे बड़ी समस्या यह आती है कि ब्राण्ड निष्ठा का पता किस प्रकार लगाया जाये। कई बार यह भी देखने में आया है कि जैसे–जैसे कम्पनी के ग्राहक ब्राण्ड को खरीदना छोड़ते जाते हैं, ब्राण्ड–निष्ठा शायद बढ़ जाती है, क्योंकि कम निष्ठावान ग्राहक ब्राण्ड को पहले छोड़ते हैं। अतः ब्राण्ड–निष्ठा बाजार–खण्ड का सदैव आधार नहीं माना जा सकता है।[4]

---

[3] Paul E. Green, Arun K. Jain – "Benefit Bundle Analysis."

[4] Ronald E. Frank: "Is brand loyalty-an useful basis for Market Segmentation".

विभक्त चलों के प्रयोग
(Application of Segmentation Variables
या
विभक्तिकरण के कुछ उदाहरण
(Some Examples of Segmentation)

किसी वस्तु के चल उस वस्तु की विपणन नीति को निर्धारित करते हैं। अतः बाजार विभक्तिकरण करते समय वस्तु के चलों का अध्ययन ठीक प्रकार से अवश्य कर लिया जाना चाहिए जिससे कि निर्धारित लक्ष्य तक पहुंचा जा सके और उपभोक्ता की सेवा कर लाभ अर्जित किया जा सके। हम इससे सम्बन्धित कुछ उदाहरण दे रहे हैं–

1. **मोटर-गाड़ियाँ (Motor-cars)**–एक मोटर–कार का आधारभूत उद्देश्य परिवहन की आवश्यकता की सन्तुष्टि करना है। हम बाजार में देखते हैं कि विभिन्न निर्माताओं की मोटर–कारें विभिन्न आकारों एवं विभिन्न मूल्यों की मिलती हैं। इनका कारण यह है कि मानवीय आवश्यकताएँ निर्माताओं पर प्रभाव डालती हैं। एक निर्माता को इन आवश्यकताओं को ध्यान में रख कर ही वस्तुओं का निर्माण करना पड़ता है। इसके अतिरिक्त क्रेता की आय व उसकी सामाजिक स्थिति का भी ध्यान रखा जाता है। अकेले आय से काम नहीं चलता है।

   एक निर्माता की विपणन रणनीति बाजार की धारणा के अनुरूप ही होनी चाहिए। यदि क्रेता सस्ती व अधिक चलने वाली कार चाहता है तो कार निर्माता को ऐसी ही कार का निर्माण करना चाहिए।

2. **घड़ियाँ (Watches)**–घड़ी का मुख्य कार्य सही समय बताना है। लेकिन कुछ व्यक्ति ऐसे होते हैं जो कि यह चाहते हैं कि घड़ी समय के साथ–साथ दिन, तारीख व सन् भी बताये। कुछ ऐसे होते हैं कि केवल समय देखने के लिए ही घड़ी चाहते हैं। कुछ शादी के मौके पर देने के लिए सुनहरे केस वाली चाहते हैं तो कुछ स्टील केस वाली। इसी प्रकार स्त्रियों के लिए घड़ी के डिजाइन कुछ होते हैं तो पुरुषों के लिए कुछ। अतः एक घड़ी बनाने वाली फर्म को इन विभिन्नताओं का पता लगाकर अपनी वस्तु पंक्ति के सम्बन्ध में निर्णय लेना चाहिए जिससे कि आवश्यकतानुसार उचित घड़ियों का निर्माण किया जा सके।

3. **सिर दर्द की टिकिया (Aspirin)**–एक सिर दर्द की टिकिया का आधारभूत उद्देश्य सिर दर्द या बुखार को दूर करना है। हम देखते हैं कि इस प्रकार बहुत–सी टिकियाएं विभिन्न निर्माताओं द्वारा बनायी जाती हैं; जैसे, भारत में Aspro व Anacin यह दोनों टिकियाएँ दो अलग–अलग निर्माताओं द्वारा बनायी व बेची जाती हैं। इन टिकियाओं के खरीदने वाले सिर दर्द या बुखार निवारण वाले या मानसिक अशान्ति दूर करने वाले या इसी प्रकार के अन्य व्यक्ति हो सकते हैं। कुछ व्यक्ति तो ऐसी टिकियाओं को प्रतिदिन लेने के आदी होते हैं। अतः इन टिकियाओं के निर्माताओं द्वारा विपणन रणनीति इन बातों को ध्यान में रखकर ही निर्धारित की जाती है।

4. **सिले-सिलाये कपड़े (Ready-made garments)**–सिले–सिलाये कपड़ों का मुख्य कार्य व्यक्ति को अनेक परेशानियों से बचाकर और बिना इन्तजार किये पहनने के कपड़े उपलब्ध कराना है। यह सिले हुए कपड़े बच्चे, युवक, युवतियों व वद्ध सभी के लिए हो सकते हैं अतः सिले हुए कपड़ों के बाजार को छोटे बच्चों, लड़के–लड़कियों, स्कूल जाने वाले लड़के–लड़कियों, कॉलेज जाने वाले युवक–युवतियों, शादी–विवाह के योग्य युवक–युवतियों, व वद्ध पुरुष व स्त्रियों में विभक्त कर बाजार का लाभ प्राप्त कर सकते हैं।

5. **बैंकिंग सेवाएँ (Banking service)**–बैंकों का मुख्य उद्देश्य जनता का धन अपने पास जमा करना और जनता को आवश्यकता के समय उधार देना है। एक बैंक को अपनी विपणन नीति का निर्धारण करते समय इस बात का ध्यान रखना पड़ता है कि अधिक–से–अधिक जमा उनकी बैंकों में हो। इसके लिए उनके द्वारा अल्प बचत योजना, पेंशन योजना, जमा योजना, जमा–बीमा योजना, आदि को अपनाया जाता है। इसी प्रकार ऋण की मात्रा बढ़ाने के लिए बैंकों अधिविकर्ष, नकद साख, ऋण, आदि को प्रोत्साहित करती हैं।

वस्तु विभेदीकरण विभिन्नता एवं बाजार विभक्तिकरण
(Product Differentiation and Market Segmentation)

वस्तु विभेदीकरण विभिन्नता एवं बाजार विभक्तिकरण दो वस्तु रण–नीतियाँ हैं जिनका उपयोग निर्माताओं द्वारा किया जाता है। यह नीतियाँ उन निर्माताओं के द्वारा अपनायी जाती हैं जो गैर–मूल्य प्रतियोगिता करना चाहते हैं। एक निर्माता द्वारा इन नीतियों के अपनाने पर विज्ञापन एवं संवर्द्धन प्रयत्नों पर काफी व्यय किया जाता है।

''वस्तु रण–नीति व वस्तु विभिन्नता में विज्ञापनकर्ता की वस्तु एवं प्रतियोगियों की वस्तुओं में अन्तर विकसित करने एवं बढ़ाने की चेतना को शामिल किया जाता है।''[4] इस नीति का उद्देश्य गैर–मूल्य प्रतियोगिता के आधार पर अपनी वस्तु को प्रतियोगिता से अलग रखना और ग्राहकों को इस बात की जानकारी देकर विश्वास दिलाना है कि उनकी वस्तु अन्य प्रतियोगिता निर्माताओं की वस्तु से भिन्न है और उन सब से उत्तम हैं। सामान्यतया यह नीति साबुन, सिगरेट, बीड़ी, माचिस, आदि में अपनायी जाती है। इस नीति के अपनाने में वस्तु को मनोवैज्ञानिक आधार पर भिन्न बताया जाता है लेकिन आमतौर पर यह पाया जाता है कि वस्तु के भौतिक एवं रासायनिक गुणों में कोई अन्तर नहीं होता है। कभी–कभी तो भिन्नता केवल वस्तु के पैकिंग या ब्राण्ड नाम की ही होती है।

बाजार विभक्तिकरण की नीति अपनाने में निर्माता की यह धारणा रहती है कि उसका कुल बाजार एक–सी छोटी–छोटी इकाइयों से मिलकर बना है तथा प्रत्येक एक–सी इकाई की आवश्यकताएँ एवं अन्य विशेषताएँ समान हैं। अतः प्रत्येक इकाई के लिए भिन्न–भिन्न वस्तुओं का विकास किया जाता है। औद्योगिक वस्तुओं के सम्बन्ध में बाजार विभक्तिकरण आसानी के किया जा सकता है क्योंकि क्रेता की आवश्यकता के अनुसार निर्माण किया जाता है। उपभोक्ता वस्तुओं में भी बाजार विभक्तिकरण किया जा सकता है। वास्तव में, आजकल तो इसका प्रयोग इस सम्बन्ध में काफी हो रहा है।

बाजार विभक्तिकरण वस्तु–मिश्रण के विस्तार से सम्बन्धित है। यह इस बात पर आधारित है कि कुछ वस्तुएँ सभी के लिए हैं।

वस्तु विभेदीकरण विभिन्नता एवं बाजार विभक्तिकरण में अन्तर निम्न आधार पर किया जा सकता है–

1. **उद्देश्य**–वस्तु विभेदीकरण विभिन्नता का उद्देश्य एक विस्तत बाजार की सेवा करना है जबकि बाजार विभक्तिकरण का उद्देश्य एक सीमित बाजार की विशेष सेवा करना है। इस प्रकार वस्तु विभन्नता वस्तोन्मुखी है जबकि बाजार विभक्तिकरण ग्राहकोन्मुखी है।
2. **क्रय**–पहले बाजार विभक्तिकरण की नीति अपनायी जा सकती है लेकिन बाद में जब प्रतियोगिता बढ़ जाती है तब वस्तु विभेदीकरण विभिन्नता की नीति अपनायी जा सकती है।
3. **माँ-पूर्ति सामंजस्य**–बाजार विभक्तिकरण में माँग का पूर्ति से सामंजस्य बिठाया जाता है जबकि वस्तु विभन्नता में पूर्ति का माँग से सामंजस्य बिठाया जाता है। जबकि वस्तु विभेदीकरण विभन्नता में पूर्ति का माँग से सामंजस्य बिठाया जाता है।
4. **खण्ड**–बाजार विभक्तिकरण में प्रत्येक खण्ड एक अलग खण्ड माना जाता है लेकिन वस्तु विभेदीकरण विभिन्नता में सम्पूर्ण बाजार को एक ही बाजार माना जाता है।
5. **वस्तु-पंक्ति-रेखा**–बाजार विभक्तिकरण के अन्तर्गत वस्तु–पंक्ति–रेखा का विस्तार किया जाता है जिससे कि प्रत्येक खण्ड के लिए भिन्न–भिन्न वस्तुओं का विकास कर पूर्ति की जा सके। लेकिन वस्तु विभेदीकरण के अन्तर्गत वस्तु में भिन्नता वास्तविक न होकर मनोवैज्ञानिक अधिक होती है। इस प्रकार इसमें वस्तु–पंक्ति–रेखा सीमित ही रहती है।,

महत्वपूर्ण प्रश्न

1. बाजार विभक्तिकरण एवं विपणन रणनीति पर एक विस्तत लेख लिखिए।
   Write a detailed note on market segmentation and marketing strategy.
2. बाजार विभक्तिकरण किसे कहते हैं? आप किस आधार पर सिले–सिलाये कपड़ों के बाजार का विभक्तिकरण करेंगे?
   What is market segmentation? On what basis shall you segment market for ready-made garments?

---

[5] "As a product strategy, product differentiation involves developing and promoting an awareness of difference between the advertiser's product and the product of Competitors." – Stanton: Fundamentals of Marketing, p. 197

अध्याय-7
वस्तु नियोजन एवं विकास
(Product Planning and Development)

उत्पाद विचार
(Production Concept)

उत्पाद क्या है? उत्पाद भौतिक सेवाएँ और सूचक विवरण है जो क्रेताओं के लिए संतुष्टि या लाभ की आशा उत्पन्न करती है। उत्पाद ग्राहकों को प्रदान की गई भौतिक या मनोवैज्ञानिक संतुष्टि की व्यवस्था का योग है। कई वस्तुओं में भौतिक संतुष्टि का महत्व होता है जैसे रोटी, नमक आदि लेकिन कई वस्तुओं के मामले में वस्तु की मनोवैज्ञानिक संतुष्टि की विशेषता का अधिक महत्व होता हैं। उदाहरण के लिए नई साड़ी, कार या ग्रामोफोन रिकार्ड आदि ग्राहक को भौतिक ही नहीं मनोवैज्ञानिक संतुष्टि भी देते हैं।

प्रोफेसर हेरी एल हेन्सन (Prof. harry L. Hensen) के अनुसर वस्तु तीन चीजों का कुल योग है।

1. वास्तविक विशेषता – उसकी सामग्री ओर निर्माण।
2. इसकी कार्य करने की योग्यता।
3. इसका संवेस्ठन, चिन्ह, ट्रेडमार्क ओर इसके साथ लगे हुए अदश्य योग या उत्पाद की छवि।

ये तीनों भाग संयुक्त रूप से 'उत्पादन छवि' (Product Image) से जाने जाते हैं। प्रो0 फिलिप कोटलर (Prof. Philip Kotler) ने वस्तु विचारधारा को तीन भागों में विभाजित किया हैः–

1. मूर्त (वास्तविक) वस्तु (Tangible Product)
2. विस्तारित वस्तु (Extended Product)
3. प्रजातिय वस्तु (Generic Product)

सर्वप्रथम यह समझ लेना आवश्यक है कि उत्पाद शब्द के अन्तगर्त केवल भौतिक उत्पाद जैसे– घड़ी, कपड़ा, बर्तन, जूते अदि ही नहीं आते वरन् सेवाएँ भी आती है। सेवाओं के अन्तर्गत – बैंकिंग, परिवहन, इन्श्योरेन्स, सिनेमा, सर्कस, होटल आदि का समावेश होता है। उत्पाद शब्द को विस्तत एवं संकीर्ण दोनो ही अर्थो मे परिभाषित किया गया है। संकीर्ण अर्थ में उत्पाद शब्द का आशय सदश्य भौतिक और रासायनिक गुणों से निहित पहचान योग्य आकृति से है। विपणन की आधुनिक विचारधारा उत्पाद के संकीर्ण अर्थ को उपयुक्त नहीं मानती, विस्तत अर्थो में उत्पाद शब्द का आशय भौतिक वस्तुओं और सेवाओं दोनों को शामिल किया जाना है।

एक उपभोक्ता द्वारा वस्तु का क्रय इसलिए किया जाता है कि उस वस्तु के कुछ ऐसे तत्व होते हैं जो उपभोक्ताओं की आवश्यकता की संतुष्टि करते हैं प्रत्येक व्यावसायिक फर्म उत्पाद विक्रय का कार्य करती हैं। भले ही यह दिखाइ दे या नहीं। उदाहरणार्थ, एक लाण्ड्री जो कि कपड़े धोने की सेवा का विक्रय करती है उसी प्रकार उत्पाद विक्रय के कार्य में संलग्न है। जिस प्रकार एक फुटकर विक्रेता उन कपड़ों को बेचने में, जिनकी धुलाई वह लाण्ड्री कर रही है। कोई भी फर्म, जो किसी उत्पाद का विक्रय करती है। वास्तव में उस उत्पाद के एक भाग के रूप में सेवाओं का भी विक्रय करती है। अतः विक्रेता वास्तव में किसी उत्पाद का विपणन नहीं करता बल्कि उसके माध्यम से भौतिक एवं मनोवैज्ञानिक संतोषों का विपणन करता है। इस सन्दर्भ में जार्ज फिस्क के विचार उललेखनिय हैं उन्हों ने उत्पाद को "मनोवैज्ञानिक सन्तुष्टियों का एक पुलिन्दा कहा है।", (Product is a cluster of psychological satisfaction)

उत्पाद की परिभाषा

(Definition of Product)

वस्तु की परिभाषाएँ विभिन्न विद्वानों ने विभिन्न प्रकार से दी हैं उनमें से कुछ प्रमुख परिभाषाएँ निम्न प्रकार हैंः–

1. एल्डरसन के अनुसार, "एक वस्तु उपयोगिताओं की एक गठरी है जिसमें वस्तु की विभिन्न विशेषताएँ ओर उनके साथ की सेवाएँ शामिल हैं।[1] (जब कोई व्यक्ति एक टाई खरीदता है तो इसका अर्थ यह नहीं है कि वह टाई गले में बाँधने के लिए खरीद रहा है बल्कि साथ में वह विक्रेता की सलाह, बेचने वाली संस्था की ख्याति, टाई बनाने वाली संस्था की ख्याति और पसन्द न आने पर वापसी की सुविधा भी खरीद रहा है। अतः वस्तु का अर्थ वस्तु की भौतिकता से ही नहीं है बल्कि वस्तु की उपयोगिता से भी हैं जो मनोवैज्ञानिक सन्तुष्टि देती है।)

   इसी को और अधिक स्पष्ट करते हुए विलियम जे. स्टाण्टन ने वस्तु की परिभाषा इस प्रकार दी हैः

2. विलियम जे. स्टाण्टन के मत में, "वस्तु दश्य एवं अदश्य विशेषताओं का एक सम्मिश्रण हैं जिसमें पैकेजिंग, रंग, मूल्य, निर्माता की ख्याति, फुटकर विक्रेता की ख्याति और निर्माता एवं फुटकर विक्रेता द्वारा दी जाने वाली वे सेवाएँ भी शामिल हैं, जिन्हें उपभोक्ता अपनी आवश्यकताओं को सन्तुष्ट करने के लिए स्वीकार कर सकता है।"[2] (इस प्रकार प्रो. स्टाण्सन के अनुसार वस्तु में उसके भौतिक व रसायनिक लक्ष ही शामिल नहीं है बल्कि इससे कहीं अधिक लक्षण शामिल हैं। सिद्धान्त के अनुसार आवश्यकता–सन्तुष्टि प्रमुख हैं। उदाहरण के लिए, यदि कोई ग्राहक जय इंजीनियरिंग वर्क्स लिमिटेड, कलकत्ता द्वारा निर्मित ऊषा सिलाई की मशीन को खरीदता है तो इसका अर्थ है कि वह ऊषा मशीन के साथ कम्पनी की ख्याति, विक्रय के बाद सेवा व डीलर की ख्याति भी खरीद रहा है।)

3. आर एस डावर के शब्दों में, "विपणन की दष्टि से वस्तु को उन सुविधाओं का पुलिन्दा माना जा सकता है जो उपभोक्ता को प्रस्तुत की जा रही है।"[3]

4. फिलिप कोटलर की राय में, "एक वस्तु क्रेता को सन्तुष्टियाँ अथवा सुविधाएँ प्रदान करने वाले भौतिक सेवा एवं चिन्हात्मक विवरणों का पुलिन्दा है।"[4]

5. जॉर्ज फिक के अनुसार, "वस्तु मनोवैज्ञानिक सन्तुष्टियों का पुलिन्दा है।"[5]

संक्षेप में निष्कर्ष के तौर पर कहा जा सकता है कि "उत्पाद उन गोचर एव अगोचर गुणों का संयोजन है जो ग्राहकों की उत्पाद–जन्य लाभों, उपयोगिताओं, मानसिक संतुष्टियों तथा सेवाओं की उपलब्धि कराते हैं और जो स्वंय में प्रतिकात्मक होते हैं।"

उत्पाद का महत्व

(Importance of Product)

''वस्तु (Product) **समस्त विपणन क्रियाओं का केन्द्र-बिन्दु है।''** बिना वस्तु के कोई भी विपणन क्रिया नहीं हो सकती है। विक्रय, विज्ञापन, विक्रय संवर्द्धन, आदि सभी वस्तु पर ही निर्भर हैं। वस्तु का मूल्य, उसका वितरण एवं उससे सम्बंधित नीतियां उसी पर आधारित हैं।

---

1 "A product is a bundle of utilities consisting of various product features and accompanying services".

—W. Alderson: *marketing Behaviour and Executive Action,* p. 274.

2 "A product is a complex of tangible and intangible attributes, including packaging, colour, price, manufacturer's prestige and retailer's prestige and manufacturer's and retailer's services which the buyer may accept as offering satisfaction of wants or needs."

—William J. Stanton: *Fundamentals of Marketing,* p. 178.

3 "A product therefore may be regarded from te marketing viewpoint a bundle of benefits which are being offered to the consumer."

—R. S. Davar : *Marketing Management,* p. 197.

4 "A product is a bundle of physical service and symbolic particulars expected to yield satisfactions or benefits to the buyer."

—Philip Kotler: *Marketing Management,* p. 289.

5 "A product is a cluster of psychological satisfactions."

— George Fisk: *Marketing System –An Introductory Analysis,* p. 506.

उपरोक्त तथ्य स्पष्ट करते हैं कि विपणन की दष्टि से उत्पाद अथवा वस्तु क ा अत्यधिक महत्व है। वास्तव में समाज के विभिन्न वर्गों क्रेता (Buyers), विक्रेता (Sellers), विपणन प्रबन्धक (Marketing Managers), समाज (Society) के लिए उत्पाद का अलग–अलग महत्व है। दूसरे शब्दों में उत्पाद के महत्व को निम्न वर्गों में विभाजित किया जा सकता है।

i. क्रेता के दष्टिकोण से (Buyer's Point of View),

ii. विक्रेता के दष्टिकोण से (Seller's Point of View),

iii. विपणन प्रबन्धक के दष्टिकोण से (Marketing Manager's Point of View),

iv. सामाजिक दष्टिकोण से (Society's Point of View)।

i. **क्रेता के दष्टिकोण से** (Buyer's Point of View)—वस्तु क्रेता की क्रयशक्ति, उसका जीवन स्तर, मानसिक संतुष्टि एवं आवश्यकताओं की पूर्ति को प्रभावित करती है। उत्तम वस्तुओं का चयन एक क्रेता के जीवन को सफल बनाता है तथा वस्तुओं का अभाव उसमें अशान्ति उत्पन्न करता है।

'क्रेता बाजारों' की स्थापना ने भी व्यावसायिक संस्थाओं के जीवन में उत्पादों के महत्व को बढ़ा दिया है। वर्तमान में विश्व के अधिकतर राष्ट्रों की अर्थव्यवस्थाओं में 'विक्रेता–बाजारों' के स्थान पर 'क्रेता बाजारों' की स्थापना होने लगी है। इस परिवर्तन के परिणामस्वरूप, 'क्रेता' अर्थव्यवस्था का सम्राट बनता जा रहा है। अधिकतर अर्थव्यवस्थायें ग्राहकोन्मुखी (Customer-oriented) होती जा रही हैं। आधुनिक विपणन विचारधारा के समर्थक व्यवसायी एवं उद्योगपति उनके द्वारा प्रस्तुत किए जाने वाले उत्पादों को उपभोक्ता–सन्तुष्टि की कसौटी पर परखने की तीव्र आवश्यकता अनुभव करने लगे हैं। अतः हम कह सकते हैं कि उत्पाद अथवा वस्तु का क्रेता के दष्टिकोण से अधिक महत्व है।

ii. **विक्रेता के दष्टिकोण से** (Seller's Point of View)—विक्रेताओं की दष्टि से भी वस्तु काफी महत्वपूर्ण है। वास्तव में, वस्तु विपणन कार्यक्रमों की जन्मदाता और आधारशिला है। बिना वस्तु के न तो विपणन कार्यक्रम बन सकता है और न उसकी बिक्री हो सकती है। इसमें कोई अतिशयोक्ति नहीं है कि वस्तु सभी व्यावसायिक क्रियाओं की प्रारम्भिक बिन्दु है। वस्तु पर ही (1) विक्रय ढाँचा, (2) विक्रय संवर्द्धन क्रियाएँ, (3) विपणन अनुसन्धान एवं विकास, आदि क्रियाएँ आधारित हैं।

वास्तव में, देखा जाये तो वस्तु पर ही सभी व्यावसायिक क्रियाएँ आधारित हैं। यदि वस्तु नहीं है तो, न तो वस्तु के बेचने वाले मिलेंगे और न वस्तु के बेचने में सहायता देने वाले मध्यस्थ। इस प्रकार न तो विक्रयकर्ता होंगे और न परिवहन, भण्डार, वित्त, आदि सेवा प्रदान करने वाले।

इसी प्रकार जब वस्तु ही नहीं है तो, न तो विज्ञापन होगा और न विक्रय संवर्द्धन क्रियाएँ। अतः इन क्रियाओं में लगने वाले व्यक्तियों की आवश्यकता ही नहीं होगी और इस प्रकार इन सेवाओं की आवश्यकता न होने के कारण विस्तार ही नहीं होगा।

iii. **विपणन प्रबन्धक के दष्टिकोण से** (Marketing Manager's Point of View)—एक कुशल विपणन प्रबन्धक को व्यावसायिक सफलता प्राप्त करने के लिए अपने उपक्रम के उत्पाद के गुणों एवं विशेषताओं पर अधिक–से–अधिक ध्यान देना चाहिए। इस सम्बन्ध में कहा भी गया है कि यदि विपणन का प्रथम निर्देश अपने ग्राहकों को जानना है तो दूसरा निर्देश अपने उत्पाद को जानना है। यदि किसी उपक्रम का उत्पाद दोषपूर्ण है तो अल्प समय में भले ही उस उपक्रम को सफलता मिल जाये परन्तु ऐसे उपक्रम को दीर्घकाल में असफलता का ही मुंह देखना पड़ता है। अतः उपक्रम को सफल बनाने के लिए अपनी उत्पाद के गुणों और विशेषताओं में निरन्तर सुधार करते रहना चाहिए। विपणन प्रबन्धकों का यह सामाजिक दायित्व है कि वे उत्पादों की उचित पूर्ति बनाये रखें, उत्पादों के उचित मूल्य निर्धारित करें और उत्पाद की किस्म में गिरावट न होने दें।

iv. **सामाजिक दष्टिकोण से** (Society's Point of View)—सामाजिक दष्टिकोण से भी उत्पाद का बड़ा महत्व है। एक ओर जहां उत्पाद से उपभोक्ताओं की आवश्यकताओं की सन्तुष्टि होती है वहां दूसरी ओर उत्पादों के उत्पादन, विज्ञापन, विक्रय संवर्द्धन एवं वितरण क्रियाओं में करोड़ों लोगों को रोजगार भी मिला हुआ है।

निष्कर्ष

(Conclusion)

उत्पाद ही समस्त विपणन क्रियाओं का केन्द्र बिन्दु है अर्थात् बिना उत्पाद के कोई भी विपणन क्रिया सम्पादित नहीं की जा सकती, चाहे उत्पाद हो या विक्रय, विज्ञापन हो या विक्रय संवर्द्धन, कीमत निर्धारण हो या वितरण। यदि व्यावसायिक जगत

में किसी व्यावसायिक उपक्रम को शरीर, उसके प्रबन्ध को हृदय और बाजार को रक्त की संज्ञा प्रदान की जाये तो इस बात से नकारा नहीं जा सकता कि उत्पाद पूरे व्यावसायिक उपक्रम का प्राण होता है। जिस प्रकार प्राण के अभाव में शरीर एवं उसके विभिन्न अंग सारहीन हो जाते हैं, ठीक उसी प्रकार व्यावसायिक उपक्रम में यदि उत्पाद न हो तो व्यावसायिक उपक्रम के अन्य सभी साधन निष्क्रिय हो जायेंगे क्योंकि उत्पाद के अभाव में कीमत नीति, विज्ञापन एवं विक्रय संवर्द्धन नीति और वितरण नीति का निर्धारण सम्भव नहीं है। सार रूप में कहा जा सकता है कि उत्पाद ही वह केन्द्र बिन्दु है जिसके चारों ओर समस्त व्यावसायिक जगत चक्कर काटता रहता है।

उत्पाद-वर्गीकरण
(Product-Classification)

विपणन की दष्टि से उत्पादों को दो प्रमुख वर्गों– औद्योगिक उत्पाद एवं उपभोक्ता उत्पाद– में विभक्त किया जा सकता है। ऐसा वर्गीकरण विपणन संस्था के 'उत्पाद–सेवा संमिश्र' (Product-Service mix) के निर्धारण में उपयोगी रहता है। ऐसे वर्गीकरण को आधार बनाकर संस्था उपभोक्ता–उत्पादों एवं औद्योगिक उत्पादों के विपणन के लिए पथक्–पथक् विपणन नीतियाँ और कार्यक्रम बना सकती है। विपणन हेतु वर्तमान में उत्पाद–वर्गीकरण के निम्न रूप में अत्यधिक प्रचलित हैं।

औद्योगिक-उत्पाद
(Industrial-Product)

औद्योगिक उत्पाद तथा माल से आशय उन वस्तुओं से है जिनके उपयोग द्वारा अन्य वस्तुयें उत्पादित की जाती हैं अथवा सेवायें प्रदान की जाती हैं। अमेरिकन मार्केटिंग एसोसिएशन के अनुसार, "औद्योगिक माल, वह माल है जो प्रमुखतः अन्य वस्तुओं के उत्पाद अथवा सेवाओं की उपलब्धि हेतु बनाया गया है।–"[5] इन औद्योगिक उत्पादों में निम्नलिखित माल सम्मिलित किया जा सकता है–

1. एक लम्बी अवधि तक काम मे आने वाले खर्चीले वहद् साज–सामान (Large installations) जो कि अन्तिम उत्पाद का हिस्सा नहीं होते हैं।
2. अतिरिक्त अथवा सहायक उपकरण (Accessory equipment) जैसेः– ड्रिल्स, लेथ्स, लिफ्ट, ट्रक्स, आदि जो अन्तिम उत्पाद का हिस्सा नहीं होते हैं।
3. वह कच्चा माल जो कि अन्तिम उत्पाद का भौतिक हिस्सा बनता है और जिसे प्रविधियन (Processing) से गुजरना पड़ता है।
4. संघटन हिस्से (Component parts)।
5. वे औद्योगिक सेवायें (Industrial Services) जो कि संयन्त्र की क्रियाओं को सुगम एवं सुविधाप्रद बनाती हैं।

इन उपर्युक्त वर्णित औद्योगिक उत्पादों को कुछ विद्वान निम्नलिखित तीन श्रेणियों में वर्गीकृत करते हैं:

1. **गढ़ाई का सामान (Fabricating Materials):** ऐसे सामान में उन वस्तुओं को सम्मिलित किया जाता है जो अपनी मूल अवस्थाओं में उपभोक्ताओं के काम नहीं आ पाती है अथवा पूरी तरह नही बनी होती है और जिन्हें उपयोगी बनाने हेतु या तो कुछ औद्योगिक प्रविधियन से गुजरना होता है अथवा अन्य वस्तुओं के संघटक हिस्से के रूप में जड़ दिया जाता है। ट्यूब, छड़े, चद्दरें बॉयलर, पाइप, पहिये, टायर, विद्युत मोटर्स, आदि गढ़ाई की वस्तुओं के कुछेक उदाहरण हैं। सामान्य तौर पर गढ़ाई का सामान प्रमापित होता हैं इन सामानो के निर्माता अथवा उत्पादक उनके विपणन हेतु उपभोक्ता–विपणन तथा औद्योगिक विपणन की व्यवस्थाओं को अपनाते हैं।
2. **उपकरण उत्पाद (Equipement Production):** ऐसे सामान में उन वस्तुओं को सम्मिलित किया जाता है जिन्हें कल–कारखानों में स्थायी तौर पर अथवा एक लम्बी अवधि के लिय संस्थापित (Installed) किया जाता है। मशीनें, उनके सहायक उपकरण आदि इसी कोटि में आते हैं। ऐसे उत्पाद बने हुए भी मिलते हैं और कोई निर्माता अपनी विशिष्ट आवश्यकताओं के अनुरूप बनवा भी सकता है। कल–पुर्जे, दफ्तर का सामानादि सामान्यता पहले से ही बना

5 "Industrial goods are those destined to be sold primarily for use in producing other goods or rendering services...." – by committee on Marketing Definitions in. "A Glossary of Marketing Terms," 1960, p. 14

हुआ खरीदा जाता है, किन्तु बिजली अथवा यान्त्रिक–शक्ति संचालन हेतु आवश्यक उपकरण उनकी क्षमता को ध्यान में रखते हुए खास तौर पर बनाये जाते हैं। ये वस्तुएँ अन्तिम वस्तु का हिस्सा नहीं बनती हैं।

3. **आपूर्ति उत्पाद (Supplies Products):** इनमें उन वस्तुओं को सम्मिलित किया जाता है जिनकी सहायता से संयंत्र की क्रियाएँ सम्पन्न की जाती हैं और जो अन्तिम उत्पाद का हिस्सा नहीं बनती हैं। ये वस्तुएँ उपकरण–उत्पादों को चलाने में भी सहायता करती हैं। उदाहरण के लिए, ईंधन (जैसे कोयला, तेलादि), चिकनाई (Lubricants) कार्यालय मे काम आने वाली स्टेशनरी आदि को ऐसे आपूर्ति–उत्पादों में सम्मिलित किया जा सकता है। इन उत्पादों की खरीद बड़े पैमाने पर की जाती है और परीक्षण के बाद की जाती है। इनके विपणन हेतु विपणनकर्ता को अत्यधिक प्रयत्न करने जरूरी होते हैं।

4. **कच्चा व अर्द्धनिर्मित उत्पाद (Raw and Semi-finished Product):** यह वह सामग्री है जिसकी सहायता से पक्की वस्तुएँ बनती हैं और इस सामग्री को प्रविधियन से गुजरना पड़ता है।

उपभोक्ता-उत्पाद

(Consumer-products)

अमेरिकन मार्केटिंग एसोसिएशन के अनुसार, "उपभोक्ता–माल, वह माल है जो अन्तिम उपभोक्ताओं या परिवारों के प्रयोग के लिये बनाया गया है और ऐसी शक्ल में है कि उसे बिना वाणिज्यिक प्रक्रिया के प्रयोग में लाया जा सकता है।"[1] उपभोक्ता–उत्पादों को प्रमुखतः उपभोक्ता की आदतों और मनोवत्तियों के आधार पर निम्नलिखित श्रेणियों मे वर्गीकृत किया जा सकता है–

1. **सुविधा-उत्पाद (Convenience-products):** सुविधा–उत्पादों से आशय उन वस्तुओं से है जिन्हें उपभोक्ता न्यूनतम प्रयत्नों के साथ शीघ्र पहुँच–योग्य स्थानों से खरीदता है और जिनका वितरण भी व्यापक स्तर पर किया जाता हैं। ऐसी वस्तुएँ उपभोक्ताओं द्वारा बारम्बार क्रय की जाती हैं और इनको क्रय करते समय वे अत्यधिक तुलनात्मक अध्ययन नहीं करते हैं। ये वस्तुएँ प्रायः कम कीमत वाली होती हैं और ग्राहक उन्हें स्वभाववश खरीदता हैं ऐसी वस्तुओं की कीमतें भी सामान्यतया उपभोक्ताओं को मालूम रहती है। और वे इनका संग्रहण नहीं करके आवश्यकतानुसार क्रय करते रहते हैं। ऐसी वस्तुएँ गुण एवं मूल्य की दष्टि से प्रमापित होती हैं तथा अधिकतर ब्राण्ड के आधार पर बिकती हैं। इन वस्तुओं के विक्रय क्षेत्र में अत्यधिक प्रतिस्पर्धा होती है तथा उत्पादकों एवं वितरकों को माँग उत्पन्न करने के लिए विज्ञापन संवर्द्धनात्मक उपायों का सहारा लेना पड़ता है। पेन, पेन्सिल, स्याही, कागज, साबुन, सिगरेट, तम्बाकू, बीड़ी, दियासलाई, अखबार, स्टोव–पिन, आदि सुविधा–उत्पादों के कुछेक उदाहरण हैं।

2. **सौदा-उत्पाद (Shopping-products):** सौदा–उत्पादों से आशय उन वस्तुओं से है जिन्हें उपभोक्ता उनकी कीमत, किस्म, डिजायन, रंग, शैली आदि आधारों पर तुलना करके खरीदते है। उदाहरण के लिए, फर्नीचर, जूते, पहिनने के वस्त्र, चीनी के बर्तन, आदि वस्तुएँ सौदा–उत्पाद मानी जाती हैं जिन्हें खरीदते समय उपभोक्ता उनकी कीमत, किस्म, डिजायन, रंग, शैली, टिकाऊपन आदि अनेक लक्षणों को ध्यान में रखता है। चूँकि इन वस्तुओं पर उपभोक्ताओं को अपेक्षाकृत अधिक खर्च करना पड़ता है। इन वस्तुओं के क्रय की बारम्बारता भी सुविधा उत्पादों की तुलना में कम होती है। इन वस्तुओं की बिक्री के लिए प्रायः प्रत्येक बड़े–छोटे नगरों में विशेष स्थान होते हैं, जिन्हें 'शॉपिंग सेन्टर्स' कहा जाता है। इन सेन्टर्स पर विभिन्न निर्माताओं का माल उपलब्ध रहता है जिससे उपयुक्त चयन में सुविधा रहती है। इन वस्तुओं के निर्माता अपनी वस्तुओं को थोक व्यापारी के बिना भी सीधे ही फुटकर व्यापारियों को बेच सकते हैं।

3. **विशिष्टता-उत्पाद (Speciality-product):** विशिष्टता–उत्पादों से आशय उन वस्तुओं से है जिनके प्रति उपभोक्ता का एक विशेष आकर्षण होता है और जिन्हें खरीदने के लिए वे विशेष प्रयास करने हेतु तत्पर रहते हैं। घड़ियाँ, रेफ्रिजरेटर, कारें, मोटर–साइकिलें, विद्युत–उपकरण, खेल–सामग्री, चित्रकारी की वस्तुएँ, श्रंगार–प्रसाधन आदि विशिष्टता–उत्पादों के कुछ उदाहरण हैं। ऐसी वस्तुएँ बहुत कम बार खरीदी जाती हैं और उपभोक्ता इनके क्रय हेतु विशेष प्रयास करता है। इसलिए इनका वितरण सीमित पाया जाता है। इनके विक्रेताओं को काफी पूँजी की आवश्यकता होती है और उन्हें विक्रयोपरान्त सेवाओं (After-sale services) की भी व्यवस्था करनी पड़ती हैं। ऐसी

अनेक वस्तुओं की बिक्री एजेन्सी आधार पर की जाती है। इन वस्तुओं मे से अधिकतर मार्का वाली (Branded) होती हैं जिनकी जानकारी उपलब्ध करने के लिए व्यापाक विज्ञापन का सहारा लेना पड़ता है।

यहाँ यह बतलाना अनुपयुक्त नहीं होगा कि किसी एक क्रेता के लिये कोई वस्तु विशिष्ट–उत्पाद हो सकती हैं और किसी अन्य क्रेता के लिए सुविधा–उत्पाद।[6] इसलिए, कुछ विद्वानों की राय में विशिष्टता–उत्पादों, सौदा–उत्पादों तथा सुविधा–उत्पादों में किसी प्रकार का अन्तर करना ठीक नहीं है, क्योंकि विशिष्टता–उत्पाद अन्य श्रेणियों के साथ परस्परव्यापी है।[7] इतने पर भी विपणन कार्यक्रमों, नीतियों एवं दाव–पेंचों (Strategies) की दष्टि से उत्पाद–वर्गीकरण अत्यावश्यक है।

टिकाऊ एवं अटिकाऊ उत्पाद
(Durable and Non-durable Products)

उत्पादों का वर्गीकरण उनके प्रयोए एवं जीवन–काल के आधार पर भी किया जा सकता हैं। इस दष्टि से वस्तुओं को दो श्रेणियों– टिकाऊ अटिकाऊ वस्तुओं के रूप में विभक्त किया जा सकता है। टिकाऊ वस्तुएँ वे उत्पाद है जो अनेक बार प्रयोग मे ली जा सकती हैं और काफी लम्बे समय तक काम में आती रहती हैं। अमेरिकन मार्केटिंग एसोसिएश्रन की परिभाषा समिति के अनुसार, "टिकाऊ माल, वह दश्य माल है जो अनेक बार प्रयोग में आता है।" उदाहरण के लिए घड़ी, फर्नीचर, मशीनें, पंखे, रेडियो, ट्रान्जिस्टर, टेलिवजन, रेकार्ड–प्लेयर आदि टिकाऊ उत्पादों मे सम्मिलित किये जा सकते है। इसके विपरीत, अटिकाऊ उत्पादों से आशय उन वस्तुओं से है जो सामान्यतः एक बार अथवा कुछ बार प्रयोग में लाने के बाद समाप्त हो जाती हैं। अमेरिकन मार्केटिंग एसोसिएशन की परिभाषा समिति के अनुसार, "अटिकाऊ माल वह दश्य माल है जो सामान्यतः एक अथवा कुछ प्रयोगों में समाप्त हो जाता है।" साबुन, खाद्य पदार्थ, दूध, खेल का सामान, बीड़ी–सिगरेट आदि अटिकाऊ माल की श्रेणी में सम्मिलित किये जा सकते हैं। अटिकाऊ उत्पादों का जीवन अपेक्षाकृत अत्यन्त अल्प होता है। अटिकाऊ वस्तुओं के वितरण हेतु व्यापक विपणन नीति को अपनाना होगा, कीमतें भी कम रखनी होंगी ओर ग्राहकों को ब्रान्ड–जागरूक बनाना होगा। किन्तु टिकाऊ वस्तुओं के लिए व्यक्तिगत विक्रय की व्यवस्था को भी अपनाया जा सकता है। लाभ की मात्रा भी अधिक रखी जा सकती है। ऐसी वस्तुओं के लिए विक्रयोपरान्त सेवाओं की भी व्यवस्था करनी पड़ती है।

उत्पाद-लक्षण वर्गीकरण
(Product-Characteristics Classificaction)

उत्पादों के इस वर्गीकरण को विकसित करने का श्रेय प्रोफेसर लियो एसपिनवाल (Leo Aspinwall) को दिया जाता है। इस वर्गीकरण को विकसित करने के पीछे खोज प्रक्रिया एवं विपणन संमिश्र के मध्य पाये जोने वाले सम्बन्ध को प्रकट करना है। उत्पादों को सुविधा, सौदा एवं विशिष्टता उत्पादों की श्रेणियों मे वर्गीकृत करने से केवल क्रेता–व्यवहार की जानकारी ही विपणनकर्ता को हो पाती है और विपणनकर्ता यह जान पाता है कि एक क्रेता किसी उत्पाद या सेवा विशेष की खोज के लिए अन्य उत्पादों या सेवाओं की तुलना में अधिक समय क्यों खर्च करता है। किन्तु यह परम्परागत उत्पाद–वर्गीकरण क्रेता की खोज–प्रक्रिया और विपणन संमिश्र के बीच के सम्बन्ध को अभिव्यक्त करने में असमर्थ रहता है। इस समस्या को दूर करने के लिए प्रो. लियो एसपिनवाल ने उत्पाद–वर्गीकरण हेतु 'उत्पाद–लक्षण एवं समानान्तर प्रणाली सिद्धान्त (Characteristics of Goods and Parallel Theory) विपणन जगत के सम्मुख प्रस्तुत किया है।[8]

लियो एसपिनवाल ने उत्पाद–वर्गीकरण हेतु पाँच महत्त्वपूर्ण उत्पाद–लक्षणों का चुनाव किया हैः (i) प्रतिस्थापन दर (Replacement Rate) (ii) सकल अन्तर (Gross Margin), (iii) समायोजन (Adjustments) (iv) उपभोग–काल (Consumption Time) एवं (v) तालाशी काल (Searching Time)। प्रतिस्थापन दर इस बात को बतलाती है कि कोई वस्तु बाजार मे कितनी बार खरीदी और प्रयुक्त की जाती हैं। सकल अन्तर प्रारम्भिक उत्पाद–लागत तथा अन्तिम विक्रय कीमत के अन्तर को बतलाता है।

---

6 W. Lazer, "Marketing Management: A Systems Perspective." 1971, p. 241.

7 Richard H. Holton, "The distinction between convenience goods, shopping goods and speciality goods," Journal of Marketing, Vol. DXXIII, July, 1958, pp. 53-56.

8 उनके सिद्धान्त का सर्वप्रथम प्रकाशन सन् 1956 में, 'Cost and Profit Outlook' by the consulting firm, Alderson and Sessions में, हुआ था, देखिये, Introduction to Marketing : An Administrative Approach, by Lipson and Darling, pp. 604-607.

समायोजन ग्राहकों की आवश्यकताओं की पूर्ण सन्तुष्टि हेतु वस्तुओं के प्रति लागू होता है। उपभोग–काल, उपभोग में लगने वाले समय को बतलाता है। तलाशी–काल, समय एवं प्रयत्न की उस मात्रा को बतलाता है जिसे क्रेता वस्तु की प्राप्ति हेतु खर्च करने को तत्पर रहता है।

इन पाँच लक्षणों के आधार पर लियो एसपिनवाल ने उत्पादों को तीन वर्गों में वर्गीकृत किया है– लाल (Red) उत्पाद, पीले (Yellow) उत्पाद तथा नारंगी (Orange) उत्पाद। उत्पादों की इन इन तीनों श्रेणियों का आधार एसपिनवाल ने प्रत्येक उत्पाद लक्षण को मूल्यांक (Score Value) प्रदान करके निश्चित किया है। जिन उत्पादों का मूल्यांकन नीचा हो उन्हें 'लाल उत्पाद' श्रेणी, जिन उत्पादों का मूल्यांकन ऊँचा हो उन्हें 'पीले–उत्पाद' श्रेणी तथा जिन उत्पादों का मूल्यांकन न्यूनतम एवं उच्चतम मूल्यांकनों के बीच में हो उन्हें 'नारंगी–उत्पाद' श्रेणी में रखा गया है।

उत्पादों को लाल, नारंगी एवं पीली रंग की श्रेणियों में बाँटने पर विपणनकर्ता सुविधापूर्वक विपणन नीति एवं दाँवपेच निर्धारित कर सकता है। एसपिनवाल ने बतलाया है कि 'लाल–उत्पादों' के विपणन हेतु दीर्घ वितरण प्रणाली (Long Channel of Distributin) एवं व्यापक स्तरीय विज्ञापन को आवश्यकीय तौर पर अपनाना चाहिए। पीले–उत्पादों के विपणन के लिए छोटी वितरण श्रंखला तथा प्रत्यक्ष संवर्द्धन प्रयासों जैसे– वैयक्तिक विक्रय को अपनाना चाहिए। नारंगी रंग के उत्पादों के विपणन के लिए न तो दीर्घ और न ही छोटी वितरण श्रंखला को अपनाना चाहिए तथा संवर्द्धन हेतु विज्ञापन एवं वैयक्तिक विक्रय तरीकों को मिश्रित रूप में अपनाना चाहिए।

प्रो. एसपिनवाल के इस वर्गीकरण को संशोधित एवं समुन्नत बनाने का उल्लेखनीय कार्य जिन विद्वानों ने किया है उनमें गोर्डन ई. मिरेकल[9] (Garden E. Miracle) तथा लिपसन एवं डारलिंग को प्रमुखतः सम्मिलित किया जा सकता है। लिपसन एवं डारलिंग ने उत्पाद–विशेषताओं की सूची में सात लक्षणें को सम्मिलित किया है[10] – (i) क्रेता के लिए उत्पाद का महत्त्व (ii) क्रय–प्रक्रिया में क्रेता द्वारा खर्च किये जाने वाले समय एवं प्रयासो की मात्रा, (iii) उत्पाद परिवर्तन, फैशन अथवा प्रौद्योगिकी की दर, (iv) क्रेता की दष्टि से उत्पाद की तकनीकी जटिलता, (v) सौदे के समय एवं सौदे के बाद की आवश्यक सेवाएँ (vi) उत्पाद–क्रय एवं प्रयुक्ति की बारम्बारता दर, तथा (viii) उत्पाद का प्रयुक्ति विस्तार एवं विभिन्न उपयोग। इन सात लक्षणों को आधार बनाकर लिपसन एवं डारलिंग ने पाँच उत्पाद–समूहों का निर्धारण किया है और प्रत्येक लक्षण को मूल्य प्रदान करने हेतू पाँच श्रेणियाँ बनायी हैं। उपभोक्ता–उत्पादों के सम्बन्ध में बनाये गये पाँच समूह इस प्रकार है।

समूह 1 : इसमें सिगरेट, केण्डी बार्स, रेजर ब्लेड एवं कोमल पेय सम्मिलित किये जा सकते हैं।

समूह 2 : इसमें ड्राई ग्रोसरी (जैसे चाय, चीनी, बोतल या डिब्बे बन्द खाद्य पदार्थ आदि) दवायें, लघु लौह–वस्तुएँ, प्रसाधन, ज्वैलरी तथा सामान्य वस्त्रों को सम्मिलित किया जा सकता है।

समूह 3 : इसमें रेडियो, टेलिविजन, टायर्स, बैट्रियाँ, घरेलू उपकरण, महिला वस्त्र, खेलकूद के समान सम्मिलित किये जा सकते हैं।

समूह 4 : इसमें उच्च किस्म के कैमरे, कारें, कीमती फर्नीचर, श्रेष्ठ ज्वैलरी एवं निर्धारित दवाईयाँ सम्मिलित की जा सकती हैं।

समूह 5 : इसमें मकान, पुरातन फर्नीचर, उच्च किस्म की कलात्मक वस्तुएँ आदि सम्मिलित की जा सकती है।

इन उपर्युक्त पाँच उत्पाद–समूहों के साथ–साथ पाँच मूल्य श्रेणियाँ भी निर्धारित की गई हैं। जो इस प्रकार हैं: अति निम्न (Very Low), निम्न (Low), मध्यम (High), उच्च (High) एवं अति उच्च (Very High)। इन श्रेणियों में आने वाले उत्पादों के लिये अपनायी जाने वाली विपणन नीतियों एवं कार्यक्रमों की विविधता पर भी दोनों विद्वान लेखकों ने विस्तार से प्रकाश डाला है। उन्होंने अपने वर्गीकरण की तुलना एसपिनवाल के वर्गीकरण से भी की हैं और बतलाया है कि प्रथम समूह लाल–उत्पाद श्रेणी

---

9 सन् 1965 में, प्रो. मिरेकल ने एसपिनवाल के सिद्धान्त को समुन्नत करके आगे बढ़ाया था। मिरेकल ने उत्पाद–लक्षणों की सूची को ६ तक बढ़ा दिया था और उत्पाद–वर्गीकरण हेतु ५ वर्ग बनाये थे। See, G. E. Meracel, "Product Characteristics a Marketing Strategy." Journal of Marketing (Jan. 1965) pp. 18-24.

10 Lipson and Darling, op. cit., pp. 608-609.

को बतलाता है द्वितीय, ततीय एवं चतुर्थ समूह लाल उत्पाद श्रेणी से पीले उत्पादों को श्रेणी के बीच आने वाली वस्तुओं को बतलाता है तथा पंचम समूह पीली–उत्पाद की श्रेणी को बतलाता है। इतने पर भी एसपिनवाल एवं लिपसन व डारलिंग के उत्पाद–वर्गीकरण में एक मूल अन्तर यह है कि लिपसन व डारलिंग के उत्पाद–वर्गीकरण में एक मूल अन्तर यह है कि लिपसन व डारलिंग का वर्गीकरण एसपिनवाल के वर्गीकरण की भाँति स्थैतिक न होकर गतिशील है। कोई भी उत्पाद एक लम्बे समय तक किसी एक श्रेणी विशेष में नहीं रहता है। इसलिए लिपसन एवं डारलिंग का उत्पाद वर्गीकरण विपणन–मिश्र एवं उत्पाद–मिश्र के परिवर्तन को सतत् आवश्यक बनाता है जिससे संस्था की प्रतिस्पर्धी स्थिति मजबूत बनी रहती है।

उपभोक्ता उत्पाद और औद्योगिक उत्पाद में अन्तर
(Difference between Consumer Products and Industrial Products)

अन्तर का आधार	उपभोक्ता उत्पाद (Consumer Products)	औद्योगिक उत्पाद (Industrial Products)
1. ग्राहकों की प्रकृति	उपभोक्ता उत्पाद के ग्राहक अन्तिम उपभोक्ता होते हैं।	औद्योगिक उत्पाद के ग्राहक उद्योगपति या निर्माता होते हैं।
2. ग्राहकों की संख्या	उपभोक्ता उत्पादों के ग्राहकों की संख्या अधिक होती है।	औद्योगिक उत्पादों के ग्राहकों की संख्या कम होती है।
3. माँग की प्रकृति	उपभोक्ता उत्पाद की माँग प्रत्यक्ष रूप से की जाती है।	औद्योगिक उत्पाद की माँग अप्रत्यक्ष रूप में की जाती है।
4. उत्पाद विश्लेषण	उपभोक्ता उत्पाद के क्रेता उत्पादों के सापेक्षिक गुणों और अवगुणों से भली–भांति परिचित नहीं होते। अतः वे ऐसी उत्पादों को प्रयोग करने से पहले उनका इतनी गहनता से विश्लेषण नहीं करते।	औद्योगिक उत्पाद के क्रेता उत्पादों के सापेक्षिक गुणों और अवगुणों से परिचित होते हैं। अतः वे ऐसे उत्पादों का प्रयोग करने से पहले उनका गहन विश्लेषण करते हैं।
5. बाजार का विस्तार	उपभोक्ता उत्पादों का बाजार अधिक विस्तत होता है।	औद्योगिक उत्पादों का बाज़ार अपेक्षाकृत कम विस्तत होता है
6. विपणन रीति–नीति	उपभोक्ता उत्पादों की अधिक बिक्री के लिए विस्तत विज्ञापन कार्यक्रमों पर अधिक ध्यान दिया जाता है।	औद्योगिक उत्पादों की अधिक बिक्री के लिए क्रेताओं के साथ व्यक्तिगत सम्बन्धों पर अधिक ध्यान दिया जाता है।

उत्पाद नियोजन का अर्थ
(Meaning of Product Planning)

वस्तुतः विपणनकर्ता किन उत्पादों का निर्माण या वितरण करे, उत्पादों का स्वरूप कैसा हो, उत्पाद रेखा के उद्देश्य क्या हों, फर्म स्वयं अग्रणी बनकर नेतत्व करे या अन्य फर्मो का अनुसरण करे, आदि अनेक प्रश्नों के समाधान के कार्य क्षेत्र को उत्पाद नियोजन कहा जाता है।

विलियम लेजर[11] जैसे विद्वानों ने उत्पाद नियोजन एंव विकास[12] को पर्यायवाची बतलाते हुए उन्हें उत्पाद प्रबन्ध के उस अंग से परिभाषित किया है जो संस्था की उत्पादक क्षमता एवं औद्योगिकी को ग्राहक–माँग के साथ समायोजित करता हैं इस अर्थ में, "उत्पाद नियोजन" उत्पाद प्रबन्ध का यह कार्यक्षेत्र है जिसमें उन समस्त क्रियाओं को समाविष्ट किया जाता है जो कि

11 W. Lazer, op. cit., p. 242.

12 उत्पाद नियोजन एवं उत्पाद विकास पर्यायवाची नहीं माने जा सकते। उत्पाद विकास उत्पाद नियोजन का एक अंग है तथा उत्पाद अनुसंधान, इन्जीनियरिंग एवं डिजायन से सम्बन्धित होता है।

उत्पादकों एवं मध्यस्थों को उनकी उत्पाद रेखाओं के निर्माण तथा निर्धारण में सहायता करती है।[12]

उत्पाद नियोजन का विचार उद्योग की विक्रय सम्भावनाओं, लागत आवश्यकताओं, विपणि सम्भावनाओं और उत्पादन की लाभ सम्भावनाओं की अपेक्षाओं पर बल देता है तथा उत्पाद विकास की सम्भावना (Feasibility) का निर्धारण करता है। इस दष्टि से कुछ विद्वानों ने 'उत्पाद नियोजन' को उत्पाद विकास की सम्भावनाओं के निर्धारण से परिभाषित किया है।

कार्ल एच. रियेटजन के अनुसार, "नये—नये उत्पादों की खोज, जाँच, विकास एवं नये उत्पादों का व्यावसायीकरण, विद्यमान रेखाओं का संशोधन और अलाभकारी मदों का विलोपन उत्पादन नियोजन है।[13] रियेटजन की परिभाषा के अनुसार उत्पाद नियोजन से आशय— (i) नये उत्पादों के विकास करने, (ii) वर्तमान उत्पाद रेखाओ में सुधार करने तथा, (iii) अलाभकारी उत्पादो के विपणन को समाप्त करने से है।

जॉनसन के अनुसर "उत्पाद नियोजन, उपभोक्ताओं की अनेक इच्छाओं की पूर्ति करने वाली तथा उत्पादों में विक्रय—योग्यता जोड़ने वाली विशेषताओं का निर्धारण करना और उन विशेषताओं को अन्तिम उत्पादों मे सम्मिलित करना है।"[14] ये विशेषतायें उत्पाद के आकार—प्रकार, रंग, डिजायन, मूल्य, पैकेजिंग, गारण्टी, सेवाएँ आदि से सम्बन्ध रखती हैं।

उपर्युक्त विचारों से स्पष्ट है कि "उत्पाद नियोजन" उत्पाद प्रबन्ध का वह हिस्सा है जो उत्पाद विकास की सम्भावनाओं का निर्धारण करता है, किन उत्पादों का विपणन एवं किनका विलोपन करना है, इसे निश्चित करता है, और विपणन किये जाने वाले उत्पादों की विशेषताओं को निश्चित करके उन्हें अन्तिम उत्पादों में सम्मिलित करता है। इनकी प्रमुख विशेषताएँ निम्नलिखित हैः—

1. उत्पाद नियोजन एक व्यापक विचार है जिसमें उत्पाद विकास तथा उत्पाद नवाचार दोनों क्रियाएँ सम्मिलित होती हैं। इसे उत्पाद प्रबन्ध का आधार कहा जा सकता है।
2. उत्पाद नियोजन सम्पूर्ण विपणन कार्यक्रम का प्रारम्भिक बिन्दु है तथा उत्पाद विकास की सम्भवता के निर्धारण, नये उत्पादों के विकास, विद्यमान उत्पाद रेखाओं के संशोधन एवं विलोपन आदि से सम्बन्ध रखता है।
3. उत्पाद नियोजन ग्राहक—माँग को सन्तुष्ट करने वाले उत्पाद—लक्षणों को मालूम करने तथा उन्हें अन्तिम उत्पादों में समाविष्ट करने का महत्वपूर्ण कार्य है। इस रूप में, उत्पाद नियोजन मूलतः एक तकनीकी कार्य है जो उत्पादन विभाग तथा अनुसंधान उवं विकास विभाग से सम्बन्ध रखता है।

उत्पाद नियोजन का महत्त्व
(Importance of Product Planning)

उत्पाद नियोजन के महत्त्व को निम्न दष्टिकोणों से भली—भाँति समझा जा सकता है—

1. **प्रारम्भिक बिन्दु धुरी** — उत्पाद नियोजन समस्त विपणन क्रियाकलापों का पारम्भिक बिन्दु[15] होने के साथ—साथ वह धुरी भी है जिसके चारो ंऔर फर्म की समस्त क्रियायें घूमती रहती हैं। क्या उत्पादन करना है, कितना उत्पादन करना है, किन उत्पादों को संशोधित करना है, किन उत्पादों को उत्पाद—रेखा से पथक् करना है, किन नये उत्पादों का विकास करना है, आदि अनेक मूल प्रश्न उत्पाद नियोजन से जुड़े हुए हैं। इसके अतिरिक्त कीमत निर्धारण, विक्रय संवर्द्धन, विज्ञापन, वितरण—श्रंखलाओं का चयन आदि विपणन कार्यक्रम भी उत्पाद नियोजन से गहरे जुड़े हुए हैं। यही

---

12 "Product planning embraces all activitites which enable producers and middlemen to determine what should constitute a company's line of productios."

— W. J. Stanton, op cit., p. 179.

13 "Product planning" may be defined as "the act of marking out and supervising the search, screening, development, and commercialisaton of new products; the modification of existing lines, and the discontinuance of marginal or up-profitable items."

— Karl H. Tiet Jen "organising the product planning function," AMA Research Study, 59, AMA inc. New York, 1973, p.11

14 "Product planning" determines the characteristics of products, best meeting the consumers numerous desires, characteristics that add saleability to products, and incorporates these characteristics into the finished products," Johnson, Sales and Marketing Management. ed. 1957. p. 51.

15 W. J. Stanton, op. cit., p. 174

कारण है कि इसे अतिव्यापक एवं दूरगामी प्रभाव डालने वाली ऐसी क्रिया माना गया है जो स्वभाव से तकनीकी है तथा लाभों की बुनियादी निर्धारक हैं। चूंकि फर्म की सफलता एवं विफलता उत्पाद नियोजन पर निर्भर करती है।

2. **सामाजिक दायित्वों की पूर्ति का साधन** – उत्पाद नियोजन व्यवसाय के सामाजिक दायित्वों की पूर्ति का एक अनुपम साधन है। है। व्यवसाय के सामाजिक दायित्यवों की विचारधारा व्यवसाय से यह अपेक्षा करती है कि वह अपने साधनों का पूर्ण सदुपयोग करे, क्षमताओं को निष्क्रिय न छोड़े, ग्राहक–स्वीकरण को बढ़ाकर ख्याति प्राप्त करे, अपने कर्मचारियों को आकर्षक मजदूरी दे, समाज के सदस्यों को रोजगार के अवसर उपलब्ध करे, करों का भुगतान ईमानदारी से करे तथा ग्राहकों को उच्च जीवनस्तर उपलब्ध करे। इन दायित्वों की पूर्ति उत्पाद नियोजन के द्वारा विपणन करने वाली फर्म सही उत्पाद, सही स्थान पर, सही समय में, सही कीमतों पर पर्याप्त मात्रा में पहुँचाकर कर सकती है; क्योंकि उत्पाद नियोजन विपणन के महत्त्वपूर्ण कार्य–कलाप के रूप में सही उत्पाद, सही कीमतों पर, सही स्थान पर, सही समय एवं सही हाथों में, पर्याप्त मात्रा में पहुँचाने का कार्य करता है।[16] इस प्रकार उत्पाद–नियोजन, फर्म के आर्थिक–सामाजिक औचित्य को ठोस आधार प्रदान करता है। इस दष्टि से उत्पाद नियोजन एवं विकास कार्यक्रमों का महत्त्व दिनों–दिन बढ़ता जा रहा है।

3. **प्रबन्धकीय योग्यता का परिचायक** – उत्पाद नियोजन प्रबन्धकीय योग्यताओं का परिचायक एवं मूल्यांकक होता है। इसलिए, विपणन क्षेत्र के विद्वानों का कहना है कि "उत्पाद नियोजन का अभाव संगठन में प्रबन्धकीय दिवालियापन का परिचायक है और इस स्थिति की ओर संकेत करता है कि व्यवसाय को उसके भाग्य के भरोसे छोड़ दिया गया है।" यह कथन बतलाता है कि यदि कोई फर्म उत्पाद नियोजन नहीं करती है तो यह माना जायेगा कि उसके प्रबन्धक वद्धि एवं विवेक के क्षेत्र में दिवालिया हैं, और वे प्रबन्धक कहलाने के अधिकारी नहीं है। यह कथन, इस बात को भी प्रकट करता है कि जैसे लहरों के सहारे नाव छोड़ देने से वह अपने लक्ष्य पर नहीं पहुँच सकती, उसी प्रकार उत्पाद नियोजन के अभाव में कोई भी फर्म उत्पाद नीति लक्ष्यों को प्राप्त नहीं कर सकती। अतएव, फर्म के सभी उत्पादों को परस्पर युक्तियुक्त तरीके से सम्बद्ध करने और फर्म की प्रतिस्पर्धी स्थिति को मजबूत करने हेतु उत्पादन नियोजन की आवश्यकता वर्णन से परे है।

4. **प्रतिस्पर्धी हथियार** – उत्पाद नियोजन के महत्त्व को एलेक्जेण्डर क्रॉस एवं हिल नामक विद्वानों ने उसे प्रतिस्पर्धी हथियार कह कर प्रकट किया है।[17] उनका विचार है कि तीव्र प्रतिस्पर्धा आधुनिक विपणन की एक प्रमुख विशेषता बन गयी है और गत्यात्मक एवं जटिल अर्थव्यवस्थाओं तथा अभिवद्धित प्रतियोगी स्थितियों में स्वयं के अस्तित्व को टिकाये रखने के लिए उत्पाद नियोजन जैसे महत्त्वपूर्ण हथियार का प्रयोग अनुपेक्षणीय बन गया है। कीमत निर्धारण, ग्राहक सेवायें, विक्रय एवं विज्ञापन कार्यक्रम आदि प्रतिस्पर्धा व्यवहारों की सफलता भी उत्पाद नियोजन व्यवहार पर निर्भर करती है। अतएव बाजार की विधि मांग के अनुरूप उत्पाद मिश्र को समायोजित करने के लिए उत्पाद नियोजन एवं विकास कार्यक्रम का महत्त्व सतत् बढ़ता जा रहा है।

5. **व्यापक क्षेत्र** – उत्पाद नियोजन का क्षेत्र अति व्यापक है जिसमें उत्पाद विकास तथा उत्पाद नवाचार जैसे महत्त्वपूर्ण पहलू सम्मिलित होते है। इसलिए भी उत्पाद नियोजन का महत्त्व बढ़ता जा रहा है। स्टेन्टन[18] का कहना है कि उत्पाद नियोजन में निम्न क्षेत्रों से सम्बद्ध निर्णय लेने तथा कार्यक्रम के निर्धारण की क्रियायें सम्मिलित होती हैं:–

   1. कौन से उत्पादों का निर्माण किया जाना चाहिये तथा कौन से उत्पाद खरीदे जाने चाहिए?
   2. संस्था को उत्पाद रेखा का विस्तार करना चाहिए अथवा सरलीकरण करना चाहिए।
   3. प्रत्येक वस्तु के नये–नये उपयोग कौन–कौन से हो सकते हैं?
   4. क्या उत्पाद की किस्म वांछित बाजार एवं उपयोग के अनुसार है या नहीं?
   5. उत्पादों के लिए कौन–सी ब्रांड, पैकिंग एवं लेबल का प्रयोग ठीक रहेगा?
   6. उत्पादों को किस शैली, आकार–प्रकार, एवं डिजायन में विकसित किया जाना है तथा कौन से रंग व सामग्री का उपयोग ठीक रहेगा?

---

16 W. Lazer, op. cit., p. 242.

17 Alexander, Cross and Hill, op.cit., pp. 17-34.

18 W. J. Stanton, op. cit., p. 174.

7. उत्पादन मात्रा कितनी होनी चाहिए तथा उसका इन्वेन्टरी नियन्त्रण कैसा होगा?
8. उत्पादों का मूल्य निर्धारण कैसे किया जायेगा व मूल्य कितना होगा?

उत्पाद विकास का अर्थ
(Meaning of Product Development)

उत्पाद विकास का अर्थ उत्पाद–विचार को वास्तविक उत्पाद मे परिवर्तित करने से लिया जाता है। यह वह प्रक्रिया है जो तकनीकी एवं विपणन क्षमताओं को संयोजित करती है और पतनोन्मुख उत्पादों के पुनर्स्थापनों के रूप में नये उत्पाद अथवा संशोधित उत्पाद बाजार में प्रस्तुत करती है।[19]

स्टेन्टन के शब्दों में "उत्पाद अनुसंधान इंजीनियरिंग एवं डिजायन सम्बन्धी तकनीकी क्रियाएँ, उत्पाद विकास कहलाती है।"[20] इस परिभाषा के अनुसार विद्यमान उत्पादों में सुधार, उनका पुनर्डिजाइनिंग तथा नये उत्पादों का विकास कार्य 'उत्पाद विकास' से सम्मिलित होता है।

लिपसन एवं डारलिंग के शब्दों में, "उत्पाद विकास वह प्रक्रिया है जिसमें, सामान्यतः एक वर्ष की प्रदत्त समयावधि के लिए उत्पाद रेखा में नवीन उत्पाद जोड़े जाते है, चालू उत्पाद हटाये जाते हैं। और संशोधित किये जाते हैं।[21]

उपर्युक्त परिभाषाओं से स्पष्ट है कि 'उत्पाद विकास' का अर्थ उत्पाद रेखा मे नवीन उत्पादों को जोड़ने, चालू उत्पादों की डिजायनों, आकारों, उपभोगों, गुणों एवं पैकेज विशेषताओं में सुधार करने तथा अवांछित उत्पादों को पथक करने से होता है। अन्य शब्दों में बाजार की वास्तविक जरूरतों को पूरा करने हेतु 'उत्पाद तैयार करना' उत्पाद विकास कहलाता है।[22]

'उत्पाद-नीति', 'उत्पाद-नियोजन' एवं 'उत्पाद-विकास' में सम्बन्ध (Relation between 'Product-Policy', 'Product-Planning' and 'Product-Development') – 'उत्पाद–नीति', 'उत्पाद–नियोजन' एवं 'उत्पाद विकास' तीनों ही परस्पर घनिष्ट रूप से जुड़े हुए है और उत्पाद–प्रबन्ध के उपकरण हैं। इस दष्टि से 'उत्पाद–नीति', 'उत्पाद–नियोजन', तथा उत्पाद विकास से कहीं अधिक व्यापक विपणन क्रिया है जिसमें अन्य दोनों क्रियायें सम्मिलित हो जाती हैं। उत्पाद–नीति फर्म के उस सामान्य पथ का निर्धारण करती है जिसका अनुसरण फर्म द्वारा किया जाता है तथा जो संगठन के सभी व्यक्तियों एवं विभागों को लाभ देय प्रत्यायों की प्राप्ति की दिशा की ओर अग्रसर करती है। 'उत्पाद–नियोजन' एवं 'उत्पाद–विकास' दोनों ही उत्पाद–नीति के अंग एवं साधन होते हैं।

'उत्पाद–नियोजन' उत्पाद–नीति के लक्ष्यों एवं उद्देश्यों की प्राप्ति के लिए उसके द्वारा निर्धारण सीमाओं एवं स्तरों के अनुसार उत्पाद सम्बन्धी योजनाएँ और कार्यक्रम तैयार करता है तथा उन उत्पाद विशेषताओं का निर्धारण करता है जो उपभोक्ताओं की विविध माँग को भली प्रकार सन्तुष्ट कर सके। वस्तुतः 'उत्पाद नियोजन' का कार्य तकनीकि रूप से निर्णय लेना तथा कार्यक्रमों का विकास करना है। उत्पाद–नीति के लक्ष्यों एवं उद्देश्यों की प्राप्ति हेतु संस्था की उत्पाद रेखायें कैसी होनी चाहिएँ, उनमें कैसे संशोधन आवश्यक हैं, तथा उत्पाद–विकास की सम्भावनायें लाभोपयोगी हैं अथवा नहीं, आदि प्रश्नों के समाधान उत्पाद–नियोजन उपलब्ध कराता है। 'उत्पाद विकास' 'उत्पाद नियोजन का अभिन्न अंग होता है। वस्तुतः उत्पाद–नियोजन प्रशासनिक अधिक है, जबकि 'उत्पाद–विकास' प्रकृति से क्रियात्मक अधिक है।'

"उत्पाद–विकास" उत्पाद–नियोजन के निर्णयों को व्यवहार में कार्यरूप प्रदान करने के लिए उत्पादों से सम्बन्धित उत्पाद अनुसन्धान, उत्पाद–डिजाइनिंग, नव–उत्पाद विकास जैसी तकनीकि क्रियाओं को सम्पन्न करने की प्रक्रिया है। यह प्रक्रिया

---

19 William Lazer, op. cit., p. 243. विलियम लेजर ने उत्पाद विकास को उत्पाद नियोजन का पर्यायवाची मानते हुए विस्तत अर्थो में स्वीकारा है।

20 WJ Stanton. op cit., p. 180.

21 "Product development involves the adding, dropping, and modification of item specifications in the product line for a given period of time, usually one year."

— Lipson and Darling, op. cit., p. 626.

22 "The product development may be defined as devising a product to meet the exact requirement of the market."

— SV Kodvekar "Key Role of R & D Developing Products" as article published in Economic Times, Jan., 17, 1972, p.v.

संस्था की तकनीकी एवं विपणन क्षमताओं को वास्तविक रूप से संयोजित करती है ताकि संस्था हर सम्भव विपणन अवसर का लाभ उठा सके। उत्पाद–विकास, उत्पाद विचार को वास्तविक उत्पाद में बदलने से सम्बन्ध रखता है। यह उत्पाद नियोजन द्वारा निर्धारित विशेषताओं को तकनीकि रूप से उत्पादों में समाविष्ट करता है।

'उत्पाद–नीति', 'उत्पाद–नियोजन एवं 'उत्पाद विकास' के क्रियाकलाप उच्चस्तरीय प्रबन्धकों के दायित्व माने गये हैं। उच्चस्तरीय प्रबन्धक उत्पाद–नीति का निर्धारण करते हैं। तथा उत्पाद–नियोजन एवं उत्पाद–विकास के तकनीकी पहलुओं का मार्गदर्शन करते हैं। यद्यपि उत्पाद–नियोजन एवं उत्पाद–विकास के कार्यों को सम्पन्न करने का दायित्व विशेषज्ञ प्रबन्धकों पर होता है।, फिर भी इनसे सम्बन्धित निर्णय अत्यन्त जोखिमपूर्ण तथा व्यापक प्रभाव वाले होते हैं, इसलिए उच्चस्तीय प्रबन्धकों का अनुमोदन लिया जाना जरूरी होता है।

उत्पाद विकास के तत्त्व
(Elements of Product Development)

'उत्पाद–विकास' सही उत्पाद को सही रूप में सही कीमतों पर सही मात्रा में सही स्थान पर पहुँचाने से सम्बन्ध रखता है इस कार्य को करने के लिए उत्पाद विकास प्रक्रिया के निम्नलिखित तीन तत्त्वों को विकसित किया गया है–

1. **उत्पाद नवाचार (Product Innovation):** नवाचार का अर्थ नये विचारों की खोज एवं उनकी लाभप्रद प्रयुक्ति से होता है। उत्पाद नवाचार की सहायता से उत्पादों को बाजार खण्ड की आवश्यकताओं के अनुरूप बनाया जाता है, उत्पाद–रेखा में नवीन उत्पाद सम्मिलित किये जाते हैं और उन अवस्थाओं की खोज की जाती है। जिनमें लाभप्रद रूप से नये उत्पादों का विकास एवं विपणन सम्भव होता है। कोई भी फर्म और उसके प्रबन्धक वर्तमान प्रतिस्पर्धी स्थितियों में चालू उत्पादों से सन्तुष्ट नहीं रह सकते, भले ही वे उत्तम एवं लाभप्रद क्यों न हों। यही कारण है कि उत्पाद नवाचार अर्थात् नये उत्पादों के विकास का कार्य दिनों–दिन अधिकतम प्रबन्धकीय स्वीकरण प्राप्त करता जा रहा है।

   उत्पाद नवाचार के महत्त्व को निम्नलिखित घटकों के सन्दर्भ में मूल्यांकित किया जा सकता है–

   1. नवीन तकनीकी आविष्कारों एवं उपलब्धियों का समुचित लाभ उठाने के लिए नवाचार क्रार्यक्रम को अपनाना अनिवार्य है।
   2. संस्था की निष्क्रिय कार्यक्षमता का उपयोग करने के लिए नवाचार जरूरी है।
   3. बाजार एवं उपभोक्ता माँग में होने वाले परिवर्तनों के साथ समायोजन करने के लिए नवाचार आवश्यक है।
   4. संस्था के कार्यक्षेत्र एवं लाभों में वद्धि के लिए नवाचार परमावश्यक है।

2. **उत्पाद सुधार (Product Improvement):** उत्पाद सुधार का अर्थ बाजार–माँग, फैशन, ग्राहक–रूचियों आदि के अनुसार उत्पादों में उन गुणों को उत्पन्न करने से है जो उपभोक्ताओं को अधिकतम सन्तुष्टि उपलब्ध करा सकें। उत्पादों की किस्म, आकृति, शैली, रंग, डिजाइन, उपयोग आदि विशेषताओं में किये जाने वाले परिवर्तन उत्पाद सुधार में सम्मिलित किये जाते हैं। यद्यपि उत्पाद सुधार जोखिम पूर्ण होता है, किन्तु उत्पादों के विकास की तुलना में कम जोखिमपूर्ण होता है। और फर्म की प्रतियोगी स्थिति को बनाये रखने के लिए परमावश्यक होता है।

3. **संवेष्टन सुधार (Packaging Improvement):** संवेष्टन का अर्थ वस्तुओं को डिब्बों, पैकेटों अथवा अन्य कन्टेनर्स में इस प्रकार बन्द करने से होता है कि ग्राहक उन्हें आसानी से पहचान सके, ले जा सके, सुरक्षित रख सके, टूट–फूट न हो तथा वे ग्राहक की प्रतिष्ठा का प्रतीक बन सके। संवेष्टन वस्तुओं के मूल्य एंव बिक्री को प्रभावित करता है। और उत्पाद विभेदीकरण दाँवपेंचों का एक अनुपम उपकरण होता है। संवेष्टन सम्बन्धी कानून उवं नियम भी ग्रहकों को धोखाधड़ी एवं ठगी से बचाने के लिए अधिकांश राष्ट्रों में, पारित किये जा चुके हैं। भारत में भी हाल ही में ऐसा कानून बना दिया गया है जो डिब्बों अथवा पैकटों में आने वाली वस्तुओं के नाम, उत्पादकों के नाम, उनकी मात्रा, मूल्य आदि के बारे में पैकेज पर विवरण देना कानूनन आवश्यक मानता है। इन समस्त स्थितियों ने संवेष्टन सुधार को पथक से उत्पाद विकास प्रक्रिया का एक प्रमुख तत्त्व बना दिया है।

उत्पाद विकास का महत्व
(Importance of Product Development)

उत्पाद विकास की नयी परिस्थितियों के निर्माण एवं विद्यमान परिस्थितियों के पूँजीकरण से सम्बन्ध रखता है। इसलिए व्यावसायिक फर्म, समाज और राष्ट्र के दष्टिकोण से यह अत्यन्त महत्त्वपूर्ण विपणन क्रिया है। इसके महत्त्व को निम्न बिन्दुओं से समझा जा सकता हैः–

1. **औद्योगिक स्थिरता को प्रोत्साहन** – व्यावसायिक संस्थाओं के उत्पाद विकास कार्यक्रम उत्पाद रेखाओं का विस्तार तथा संकुचन करते हैं जिससे अर्थव्यवस्था में माँग–पूर्ति सन्तुलित रहती है, रोजगार के अवसरों मे कमी नहीं होने पाती है और परिणामस्वरूप आर्थिक प्रगति में स्थायित्व आता है। इसके अलावा व्यवसायिक संस्थाओं के उत्पाद विविधिकरण कार्यक्रम एवं उत्पाद सुधार कार्यक्रम औद्योगिक प्रगति को गत्यात्मकता प्रदान करते हैं।

2. **ग्राहक-सन्तोष मे वद्धि** – उत्पाद विकास फर्म की तकनीकी एवं विपणन क्षमताओं को बाजार माँग के साथ इस प्रकार संयोजित करता है ताकि फर्म की उत्पाद रेखाएँ विविध ग्राहक–आवश्यकताओं की पूर्ति अधिकतम सन्तुष्टि उपलब्ध करते हुए कर सके। नवाचार नये उत्पादों के विकास को सम्भव बनाता है तथा सरलीकरण उत्पाद रेखाओं की अनावश्यक जटिलता को दूर करके ग्राहकों के उत्पाद चयन को विवेकपूर्ण सुगमता उपलब्ध कराता है। उत्पाद सुधार एवं संवेष्टन सुधार ग्राहकों को सामाजिक प्रतिष्ठा एवं मनोवैज्ञानिक सन्तुष्टि उपलब्ध करते है ंकुल मिलाकर यह कहा जा सकता है कि उत्पाद विकास ग्राहक–सन्तोष में वद्धि करता है, ग्राहकों को स्थायी बनाता है और नये बाजारों का विकास करता है।

3. **फर्म के लाभों में वद्धि** – उत्पाद विकास कार्यक्रम फर्म के लाभों में वद्धि करते हैं क्योंकि नवाचार फर्म की निष्क्रिय क्षमता की प्रयुक्ति एवं नूतन औद्योगिकी के लाभों की उपलब्धि को नव उत्पादों के विकास द्वारा सम्भव बनाता है, प्रमापीकरण से फर्म की क्षमताओं का पूर्ण सदुपयोग होता है, विशिष्टीकरण से फर्म की ख्याति बढ़ती है और सरलीकरण से फर्म के साधनों का सदुपयोग सम्भव होता है। इस प्रकार फर्म की प्रतिस्पर्धी स्थिति एवं लाभों की मात्रा में सुधार होता है।

संक्षेप में यह कहा जा सकता है कि 'उत्पाद विकास' नये उत्पादों के विकास द्वारा फर्म के बाजारों का विकास करता है, यह भावी उत्पाद रेखाओं पर प्रकाश डालता है, उत्पाद रेखाओं के विस्तार संकुचन को बतलाता है; कीमतों, विक्रय संवर्द्धन, सेवाओं, आश्वासनों आदि पर उत्पादों के प्रभाव को प्रदर्शित करता है और उत्पादों के सुधार तथा निष्पाद–मूल्यांकन के आधारों के विकास को समझाता है। अतएव उत्पाद विकास व्यावसायिक संस्थाओं के विकास–विस्तार, अस्तित्व, विनियोगो पर प्रत्याय दर, स्थिति, जन–धारणा एवं वैयक्तिक और प्रबन्धकीय लक्ष्यों की प्राप्ति से जुड़ा होने के कारण उनका जीवन रक्त कहा जा सकता है।

वस्तु-विकास के सिद्धान्त
(Principles of Product Development)

विपणन क्षेत्र के विद्वानों ने वस्तु–विकास के तीन सिद्धान्त बतायें हैं जो आधुनिक वस्तु–विकास के कार्यक्रमों के बुनियादी एवं अभिन्न अंग बन चुके हैं। इन सिद्धान्तों का विस्तत विवरण, निम्न प्रकार हैः–

1. **प्रमापीकरण का सिद्धान्त (Principle of Standardization)**: "प्रमाप वह मापदण्ड है जो वास्तविक परिणामों की जाँच हेतु आधार प्रदान करता है।" अन्य शब्दों में, "प्रमापीकरण उन विशिष्ट भौतिक एवं रासायनिक गुणों को स्थापित करने की प्रक्रिया है जो अन्य मदों की तुलना के आधार होते हैं। (वस्तुओं के विकास में प्रमापीकरण से अर्थ उसके आकार, रूप, रंग, मात्रा, किस्म व भौतिक व रासायनिक लक्षणों से है जो एक वस्तु में होने चाहिए।

   भारत में प्रमापीकरण की शुरूआत 1947 में हुई थी। वर्तमान में भारतीय मानक ब्यूरो (Bureau of Indian Standards) नामक संस्था कार्यरत है। इस संस्था ने अब तक, 15,800 मानक या प्रमाप निर्धारित किये हैं जिनका उपयोग ऐच्छिक है। यहाँ 12 हजार संस्थाएँ ऐसी हैं जो मानक के उपयोग करने के लिए लाइसेन्स प्राप्त करती हैं जो 4,000 करोड़ रूपये के मूल्य की वस्तुओं का उत्पादन प्रतिवर्ष करती है।

2. **सरलीकरण का सिद्धान्त (Principle of simplification):** सरलीकरण का सिद्धान्त अनावश्यक वस्तु भिन्नताओं, आकार–प्रदान, किस्म, डिजाइन, आदि में कमी करता है। विपणन कार्यक्रमों को सरल बनाता है। भण्डार लागतों व उत्पादन तथा वितरण लागतों मे कमी करता है तथा वस्तु अप्रचलन देर से करता है।

3. **विशिष्टीकरण का सिद्धान्त (Principle of specilization):** विशिष्टीकरण का सिद्धान्त वस्तु–विकास के क्षेत्र में अनावश्यक वस्तु विविधीकरण को समाप्त करने पर जोर देता है तथा विशिष्ट क्षेत्र में नेतत्व प्रदान करता है जिससे कर्मचारी की कुशलता बढ़ती है तथा व्ययों में मितव्ययता होती है। इससे ग्राहकों को भी अधिकतम सन्तुष्टि मिलती है।

उपर्युक्त तीनों सिद्धान्त अलग–अलग हैं लेकिन वे एक–दूसरे से जुड़े हुए हैं। सरलीकरण के अभाव में न तो प्रमापीकरण हो सकता है और न विशिष्टीकरण। इसी प्रकार प्रमापीकरण के अभाव में न तो सरलीकरण हो सकता है और न प्रमापीकरण। इस प्रकार वस्तुओं के विकास में इन तीनों सिद्धान्तों का ही अनुसरण किया जाना चाहिए।

वस्तु-नियोजन एवं वस्तु-विकास का क्षेत्र
(Scope of Product-planning and Product Development)

वस्तु–नियोजन एवं वस्तु–विकास का क्षेत्र काफी व्यापक है। इसमें वस्तु से सम्बन्धित सभी बातें आती हैं; जैसे, वस्तु का आकार, प्रकार, डिजाइन, मूल्य, रंग, ब्राण्ड, सर्वेश्रेष्ठन आदि। साथ ही के सभी बातें भी इसके क्षेत्र के अन्तर्गत आती हैं जिनसे वस्तु के बाजार पर प्रभाव पड़ता है। इसके क्षेत्र में मुख्यतया निम्न बातें आती हैं–

1. **वस्तु-निर्णय (Product-decision):** किसी वस्तु का निर्माण करने से पूर्व निर्माता को पहले यह निर्णय करना पड़ता है कि वह किस वस्तु का निर्माण करना चाहता है जिससे कि उसी के अनुरूप साधनों को जुटाया जा सके। इस प्रकार वस्तु–निर्णय नियोजन की प्रथम सीढ़ी है।

2. **वस्तु की डिजाइन व आकार (Design and Size of the Product):** वस्तु नियोजन के क्षेत्र में वस्तु की डिजाइन भी आती है। यहाँ डिजाइन के अर्थ में उस वस्तु का ढाँचा, शक्ल, रंग–रूप, गन्ध आदि से है। आकार का अर्थ वस्तु की आकृति से है। यह आकृति कई प्रकार की हो सकती है; जैसे, छोटी, बड़ी व मध्यस्थ वस्तु–नियोजन के क्षेत्र में यह बातें भी आती हैं।

3. **वस्तु का नाम (Name of the Product):** वस्तु के नियोजन एवं विकास में वस्तु का नाम भी आता है। वस्तु के नाम से अर्थ वस्तु का नाम तय करना हैं यह नाम ऐसा होना चाहिए जिसको आसानी से पुकारा जा सके, याद रखा जा सके तथा जो वस्तु की क्वालिटी व निर्माता के नाम को प्रदर्शित करता हो; जैसे, फिलिप्स बल्ब, विलसन पैन, ऐवरेडी बैटरी आदि।

4. **वस्तु का रंग (Colour of the product):** यदि वस्तु का बाजार निर्माता बाजार है तब तो रंग, आदि का ध्यान रखने की आवश्यकता नहीं है लेकिन यदि इसके विपरीत स्थिति है तो उपभोक्ता की रूचि का भी ध्यान रखना होगा। वास्तव में, रंग वस्तु को बेचनें में बहुत सहायक होता है। भारत में अधिकांश वस्तुओं के सम्बन्ध में अभी निर्माता बाजार ही हैं लेकिन कुछ वस्तुओं के सम्बन्ध में परिवर्तन होता दिखायी दे रहा है।

5. **वस्तु का मूल्य (Price of the product):** वस्तु का मूल्य, वस्तु–नियोजन मे एक बहुत ही महत्वपूर्ण घटक है। यदि मूल्य–नियोजन में कोई गलती या भूल हो जाती है तो व्यवसायी का सारा प्रयत्न असफल हो सकता है। अतः मूल्य नियोजित करते समय वस्तु की माँग व उसकी चयनशीलता, प्रतियोगिता, उपभोक्ता की देय क्षमता, वस्तु का वर्गीकरण (सुविधा, विशिष्ट व सौदे का माल) वितरण तरीका, वस्तु के मूल्य पर सरकारी प्रतिबन्ध आदि का ध्यान रखना चाहिए।

6. **वस्तु का ब्राण्ड, पैकेजिंग व लेबिल (Brand, packaging and label of te product):** वस्तु–नियोजन में वस्तु का ब्राण्ड, उसका पैकेजिंग व लेबिल भी तय करना पड़ता है। ब्राण्ड एक प्रकार का चिन्ह है जिसका प्रयोग वस्तु का नाम याद रखने के लिए किया जाता है जिससे कि ग्राहक उस वस्तु को आसानी से पहचान कर क्रय कर सके। भारत में इसके बहुत–से उदाहरण मिलते हैं; जैसे, खजूर ब्राण्ड डालडा, वनस्पति घी, तितली छाप जूतों की पॉलिस आदि।

पैकेजिंग वस्तु को लाने–ले–जाने में सुविधा देने, उसके खराब होने से बचाने, मध्यस्थों द्वारा की जाने वाली जालसाजी को रोकने व वस्तु के विज्ञापन के लिए किया जाता है। भारत में अधिकांश दवाईयाँ काँच की शीशियों या टीन या प्लास्टिक के डिब्बों में पैक की हुई मिलती है।

वस्तुओं पर एक लेबिल और लगाया जाता है जिससे उसके पैकेजिंग व वस्तु में जालसाजी न की जा सके। यह लेबिल साधारणतया कागज का होता है जिसमें वस्तु के गुण, उसमें मिली हुई वस्तुओं की मात्रा, ब्राण्ड आदि छपा रहता है।

7. **वस्तु के नये प्रयोग (New uses of the product):** वस्तु के नये–नये उपयोगों का पता लगाना भी वस्तु–नियोजन के क्षेत्र में आता है। नये प्रयोगों का अर्थ है वस्तु किन–किन नये कार्यों में आ सकती है? इस कार्य के लिए अनुसन्धान किया जाता है जो उपभोक्ता व वस्तु दोनों के बारे में हो सकता है।

8. **वस्तु की गारण्टी एवं सेवा (Guarantee & Service of the product):** वस्तुनियोजन का शायद यह अन्तिम कार्य है। उपभोक्ता को गारण्टी दी जाती है कि यदि वस्तु जल्दी खराब हो जायेगी तो बदल दी जायेगी या उसकी मुफ्त मरम्मत कर दी जायेगी। इस प्रकार की गारण्टी भी एक सेवा है जो विक्रय के बाद की जाती है। गारण्टी का उद्देश्य उपभोक्ता को इस बात का विश्वास दिलाना है कि उसको मूल्य का उचित प्रतिफल दिया जा रहा है।

इस प्रकार वस्तु–नियोजन एवं विकास–वस्तु के बनने व बेचने पर ही समाप्त नहीं हो जाता है बल्कि उपभोक्ता को उचित सन्तोष देने के लिए बाद में भी किया जाता है।

वस्तु-नियोजन का उत्तरदायित्व
(Responsibility of Product Planning)

वस्तु–नियोजन का उत्तरदायित्व किसका है? इसका उत्तर साधारण है कि यह कार्य संस्था के मालिक का है। लेकिन जब वस्तुओं का निर्माण कम्पनियों के द्वारा किया जाता है जो इस कार्य का उत्तरदायित्व कम्पनी के संचालक मण्डल का है। बड़ी–बड़ी व्यावसायिक संस्थाएं इस कार्य को एक संचालक को सौंप देती हैं और उस संचालक को वस्तु–नियोजन एवं विकास संचालक कहते हैं। कुछ संस्थाएं अलग से संचालक नहीं रखतीं और यह कार्य विपणन संचालक को सौप देती हैं जबकि कुछ यह कार्य वस्तु नियोजन समिति के माध्यम से करती हैं। यह समिति अपने कार्य को आसान करने के उद्देश्य से प्रत्येक वस्तु के लिए अलग–अलग वस्तु प्रबंधक नियुक्त कर देती है और इस प्रकार वस्तु नियोजन का कार्य अलग–अलग वस्तु प्रबन्धकों पर पहुँच जाता है। वस्तु–नियोजन समिति स्वयं उन सभी कार्यो में समन्वय करती है और संचालक–मण्डल के लिए उत्तरदायी होती है।

वस्तु-नियोजन एवं विकास के लिए संगठन
(Organisation for Product-Planning and Development)

वस्तु–नियोजन एवं विकास के लिए संगठन विभिन्न संस्थाओं में विभिन्न प्रकार के होते हैं, और साथ ही यह संगठन विभिन्न व्यवसायों के लिए भी विभिन्न प्रकार के होते हैं लेकिन इन संगठनों में कुछ समानताएँ पायी जाती हैं।

साधारणतया जब कोई विचार सामने आता है तो उसकी स्वीकृति व्यवसाय के प्रबन्ध द्वारा की जाती है। यह विचार एक नयी वस्तु के बनाने के सम्बन्ध में या पुरानी वस्तु में परिवर्तन के सम्बन्ध में हो सकता है। विचार की स्वीकृति मिल जाने पर वस्तु–नियोजन विभाग द्वारा प्रारम्भिक जाँच–पड़ताल की जाती है और वस्तु सम्बन्धी विशेषताओं को एकत्रित किया जाता है। यह सभी सूचनाएँ इंजीनियरिंग विभाग को एक मॉडल बनाने के लिए भेज दी जाती है। यह विभाग एक मॉडल बनाकर निर्माण विभाग को भेज देता है। अब निर्माण विभाग वस्तु का थोड़ी सी मात्रा में निर्माण करता है और तदुपरान्त विक्रय या विपणन परीक्षण विभाग को परीक्षण हेतु सौंप देता है। यह विभाग एक निश्चित क्षेत्र में वस्तु की बिक्री करता है और इस सम्बन्ध में उपभोक्ता एवं मध्यस्थों आदि सभी की प्रतिक्रियाओं को उल्लिखित करता है और इनके अनुसार आवश्यक फरे–बदल हेतु इंजीनियरिंग विभाग को फिर परिवर्तन करने के लिए कहा जाता है। यह विभाग उसमें परिवर्तन कर निर्माण विभाग को सौंप देता है जो उस वस्तु का वाणिज्यीकरण के आधार पर निर्माण करता है। ग्राहकों को वस्तु के बारे में में जानकारी व उन्हें खरीदने के लिए लालायित करने के उद्देश्य से विज्ञापन एवं विक्रय संवर्द्धन विभाग भी कार्यवाही करता है। और अन्त में वस्तु

उपभोक्ता पर पहुँच जाती है। यदि उपभोक्ताओं द्वारा अब भी वस्तुओं में फेर–बदल की आवश्यकता व्यक्त की जाती है तो फिर विपणन अनुसन्धान कर वही क्रम अपनाया जाता है। एक संस्था में साधारणतया वस्तु–नियोजन एवं विकास के लिए निम्न प्रकार जैसा संगठन पाया जाता है:–

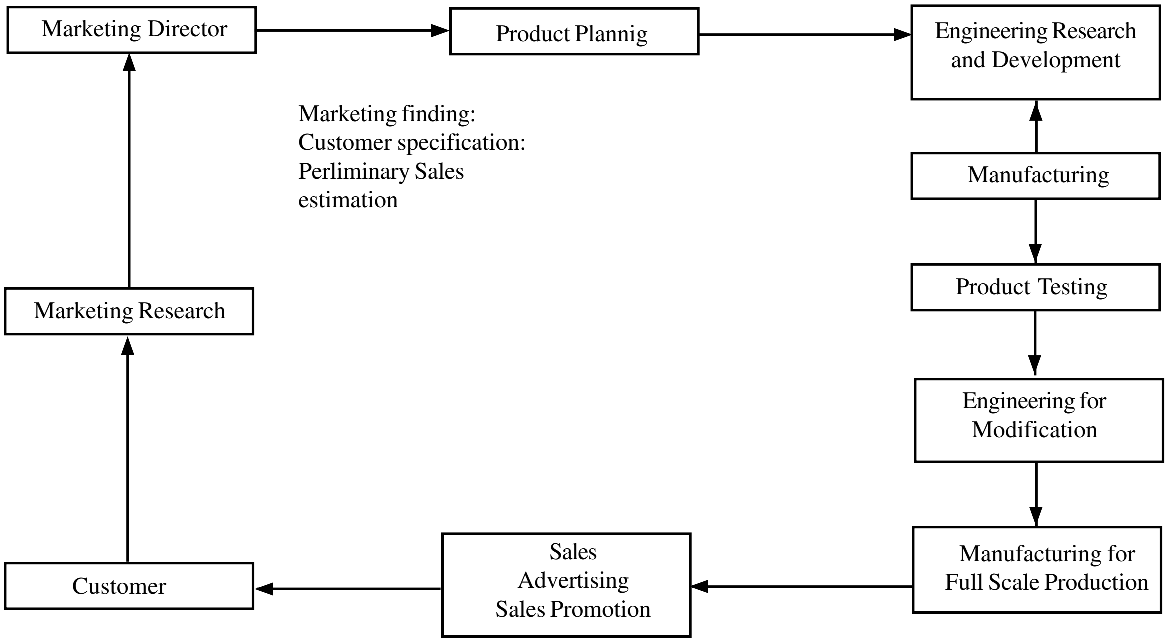

इस संगठन में विपणन प्रबन्धक को उत्तरदायी बनाया गया है लेकिन सदा ही ऐसा नहीं होता है। कुछ संस्थाएं इसके लिए वस्तु प्रबन्धक नियुक्त करती हैं। जबकि कुछ वस्तु–नियोजन समिति।

वस्तु परिवर्तन निर्णय
(Product-Change Decision)

एक निर्माता के समक्ष जब वस्तु–परिवर्तन के निर्णय की बाती आती है तो विभिन्न पहलुओं पर विचार करने के पश्चात् उसको तीन में सक एक निर्णय लेना पड़ता हैं इसी बात को इस प्रकार भी कह सकते हैं कि वस्तु सम्बन्धी निर्णय तीन प्रकार के होते हैं – (i) वस्तु संशोधन निर्णय, (ii) वस्तु परित्याग निर्णय, (iii) नयी वस्तु–निर्माण निर्णय।

एक वस्तु का जीवन चक्र इन तीनों पर प्रभाव डालता है। वे वस्तुएँ जो परिपक्व अवस्था में हैं उन्हें पैकेजिंग व अन्य प्रकार से संशोधन करने के निर्णय लेने की आवश्यकता होती है लेकिन वे वस्तुएँ जो अवनति अवस्था पर पहुँच चुकी हैं उन्हें अपने वस्तु–मिश्रण से परित्याग का निर्णय लेने की आवयश्यकता होती है क्योंकि अब उनकी बिक्री के बढ़ने की कोई सम्भावना नहीं है। बल्कि इसके विपरीत उनकी बिक्री के तीव्र गति से घटने की ही सम्भावना है। ऐसी हालत में नयी वस्तुएँ निर्माण करने का निर्णय लिया जा सकता है।

वस्तु-संशोधन का निर्णय
(The Product -Modification Decision)

"किसी वस्तु के भौतिक लक्षणों या उसके पैकेजिंग में जान–बूझकर परिवर्तन करने को वस्तु संशोधन कहते हैं।"[23] यह वस्तु–संशोधन सभी वस्तुओं में सम्भव नहीं होता है। यह वस्तु–संशोधन सभी वस्तुओं में सम्भव नहीं होता हैं विशेष रूप से उन वस्तुओं मे जहाँ उनके कच्चे माल व रासायनिक पदार्थ में कोई अन्तर नहीं है। उदाहरण के लिए, साधारण मिट्टी का तेल भारत

[23] "A product-modification is any deliberate alteration in the physical attributes of a product or its packaging.

— Philip Kotler: *Marketing Management*, p. 452.

मे 'इण्डियन ऑयल', भारत पैट्रोलियम व हिन्दुस्तान पैट्रोलियम नामक तीन बड़ी कम्पनियों द्वारा तैयार किया व बेचा जाता है। लेकिन इसके भौतिक लक्षणों में कोई अन्तर नहीं है। अतः ऐसे मामलों में मनोवैज्ञानिक अन्तर व मर्चेण्डाइजिंग से परिवर्तन कर विपणन किया जाता है।

प्रत्येक निर्माता समय–समय पर इस बात का पता लगाता रहता है कि क्या वस्तुओं में संशोधन कर अधिक लाभ कमाया जा सकता है। यह संशोधन वस्तु के आकार, स्वाद, सामग्री, कार्य, इंजीनियरिंग, व शैली आदि मे से किसी एक में या कई को मिलाकर किये जा सकते हैं।

आज के इस पविर्तनशील युग में बहुत–से कारण हैं जो एक निर्माता को अपनी वस्तुओं में संशोधन करने के लिए विवश कर देते है। जिससे कि लाभ को बनाये रखा जा सके या उसमे वद्धि की जा सके। ये कारण निम्नलिखित हैंः–

1. **प्रतिस्पर्द्धा (Competition):** प्रतिस्पर्द्धा सबसे महत्वपूर्ण एवं प्रमुख कारण है जो वस्तु में संशोधन के लिए बाध्य करती है।
2. **तकनीकी उन्नति (Technical Progress):** देश में उन्नत तकनीक उपलब्ध होने के कारण भी वस्तु में संशोधन करना अनिवार्य हो जाता है। उदाहरण के लिए, दाढी बनाने वाले ब्लेड। भारत में वह ब्लेड लोहे की पत्ती के होते थे लेकिन अब स्टेनलैस स्टील के उपलब्ध हैं। इसी प्रकार पहले साधारण टाइपराइटर थे लेकिन अब बिजली के टाइपराइटर भी उपलब्ध हैं।
3. **विक्रय गिरावट (Sales Decline):** वस्तु की गिरती हुई बिक्री वस्तु–संशोधन के लिए बाध्य कर देती है।

उपर्युक्त कारणों से वशीभूत होकर वस्तु–संशोधन किया जाता है जिसमें कभी तो उसका पैकेजिंग बदल दिया जाता है तो कभी वस्तु नवाचार कर दिया जाता है तो कभी बिल्कुल नयी वस्तु प्रस्तुत कर दी जाती है। कभी–कभी तो उस वस्तु के नये–नये मॉडल प्रतिवर्ष निकाल दिये जाते हैं। भारत में 'प्रीमियर–प्रेसीडेण्ट, 'हिन्दुस्तान कार' व 'मारूति कार' के मॉडल इन्हीं कारणों से प्रतिवर्ष या कुछ वर्ष बाद निकाले जाते हैं।

वस्तु–सुधार या संशोधन की बहुत–सी रीति–नीतियाँ हैं लेकिन मुख्य निम्न तीन हैंः–

1. **किस्म-सुधार रीति-नीति (Quality-improvement strategy):** इस रीति–नीति का उद्देश्य वस्तु के प्रति विश्वास एंव टिकाऊपन मे वद्धि करना है। यह कार्य वस्तु की सामग्री या उसकी तान्त्रिक बातों में फेर–बदल कर किया जाता है और यह नीति उस समय अपनायी जाती है जबकि (i) निर्माता प्रतियोगिता में पीछे नहीं रहना चाहता है, या (ii) निर्माता अपनी निम्न क्वालिटी के उत्पादन के लिए प्रसिद्ध है और अब उच्च क्वालिटी की वस्तु बनाकर अपनी प्रसिद्धि चाहता है, या (iii) निर्माता अपने विपणन उद्देश्यों की पूर्ति करना चाहता है। यह उद्देश्य किसी बाजार में अपनी स्थिति प्रमुख बनाने के लिए हो सकते हैं।

   यह नीति एक अच्छी नीति है लेकिन शर्त यह है कि (i) वस्तु में परिवर्तन इस प्रकार किया जाय कि वह परिवर्तन साफ–साफ दिखायी दे, एवं (ii) क्रेताओं की पर्याप्त संख्या वस्तु की किस्म सम्बन्धी तथ्यों की जानकारी से प्रेरित होनी चाहिए।
2. **शैली-सुधार रीति-नीति (Style-improvement Strategy):** इस रीति–नीति के अपनाने में वस्तु में सौन्दर्य सम्बन्धी आकर्षण बढ़ाया जाता है। कम्पनियों द्वारा मोटरगाडियों के जो मॉडल प्रतिवर्ष निकाले जाते है वे शैली प्रतियोगिता के कारण ही निकाले जाते हैं। लेकिन यह शैली प्रतियोगिता बहुत–सी समस्याएँ उत्पन्न करती है। यह कहना कठिन है कि नयी शैली को ग्राहकों द्वारा अपना लिया जायेगा। इसी प्रकार यदि नयी शैली की वस्तुओं का निर्माण करना शुरू होता है तो निर्माता पुरानी शैली की वस्तुओं का उत्पादन बन्द कर देता है। इसका परिणाम यह होता है कि शैली–सुधार रीति–नीति के अपनाने में निर्माता वस्तु के कुल बाजार में अपना स्थायी हिस्सा बना लेता है।
3. **कार्य सम्बन्धी सुधार रीति-नीति (Functional featres improvement strategy):** इस रीति–नीति का उद्देश्य वास्तविक या कल्पित प्रयोक्ता–लाभों में वद्धि करना है। इसमें वस्तु–सुधार इस प्रकार किया जाता है कि वह अधिक सुविधाजनक, कुशल एवं सुरक्षित बन सके।

उपर्युक्त तीनों रीति–नीतियाँ एक–दूसरे से स्वतन्त्र हैं लेकिन व्यवहार मे यह पाया जाता है कि निर्माता उपर्युक्त तीनों को ही एक साथ अपनाते हैं। प्रायः यह पाया जाता है कि किसी एक रीति–नीति का प्रयोग न करके इन रीति–नीतियों के मिश्रित रूप को अपनाते हैं। एक संस्था को अपनी प्रतियोगी स्थिति बनाये रखने के लिए वस्तु की किस्म, शैली एवं कार्यात्मक सुधार सम्बन्धी नवीनताओं को अपनाते रहना चाहिए।

लेकिन वस्तु–संशोधन करने मे जोखिम रहती है। अतः संस्था को जोखिम घटाने वाले उपायों पर विचार अवश्य कर लेना चाहिए। जोखिम कम करने के उद्देश्य से वस्तु में संशोधन धीरे–धीरे किया जा सकता है। विपणन अनुसन्धान पर पर्याप्त मात्रा मे व्यय करके सम्भावित विक्रय प्रभावों का पता लगाया जा सकता है तथा नयी संशोधित वस्तुओं के साथ पुरनी वस्तुओं को भी चालू रखा जा सकता है।

वस्तु परित्याग का निर्णय
(Product Elimination Decision)

जब एक निर्माता अपनी निर्माण–तालिका में से किसी वस्तु को निकाल देता है तो इसको वस्तु समाप्ति या वस्तु लोप या वस्तु परित्याग कहते हैं। इसमें निर्माता के द्वारा उस निकाली हुई वस्तु का निर्माण बन्द कर दिया जाता है। जैसे, यदि किसी दवाइयों के निर्माता द्वारा 10 दवाईयों का निर्माण एवं विक्रय किया जा रहा है लेकिन कुछ समय बाद वह 9 दवाइयों का निर्माण एवं विक्रय करता है और दसवीं दवा का निर्माण एवं विक्रय बन्द कर देता है तो इसी को हम वस्तु लोप या वस्तु परित्याग का नाम देते हैं।

अब यह प्रश्न उठता है कि वस्तु–समाप्ति या लोप का निर्णय एक निर्माता द्वारा क्यों लिया जाता है? या इसी को हम इस प्रकार कह सकते हैं कि एक निर्माता को ऐसा निर्णय लेने के लिए बाध्य करने वाले कौन–कौन से कारण या घटक हैं? ऐसा निर्णय लेने के कारण या घटक निम्न हो सकते हैं:–

1. **गिरती हुई बिक्री (Declining sale):** जब किसी वस्तु की बिक्री प्रतिवर्ष गिरती जा रही है और उसके उठने की कोई सम्भावना दिखायी नहीं देती है तो निर्माता के लिए वस्तु समाप्ति का निर्णय लेने का यह उचित अवसर होता है।
2. **गिरते हुए लाभ (Delining profits):** यदि किसी वस्तु के लाभों में बराबर कमी होती जाती है और उनके उठने की कोई सम्भावना प्रतीत नहीं होती है तो वस्तु परित्याग का निर्णय लिया जा सकता है।
3. **गिरते मूल्य (Declinig prices):** यदि वस्तु के मूल्यों में गिरावट की प्रवत्ति दिखायी देती है और उसके रूकने का कोई स्थान दष्टिगोचर नहीं होता है तो निर्माता के द्वारा वस्तु–समाप्ति का निर्णय लिया जा सकता है।
4. **वस्तु का जीवन-चक्र (Life-cycle of the product):** कभी–कभी वस्तु का जीवन चक्र भी वस्तु की समाप्ति मे सहायक होता है। जब वस्तु अपने जीवन–चक्र मे परिपक्वता की अवस्था में पहुँच जाती है तो कुछ समय बाद अवनति वाली अवस्था प्रारम्भ हो जाती है और लाभ कम होने लगते हैं। ऐसी स्थिति में एक निर्माता द्वारा वस्तु–समाप्ति या परिवर्तन की बात सोची जा सकती है और उस पर निर्णय लिया जा सकता है।
5. **प्रबन्धकीय समय (Managerial time):** यदि किसी वस्तु के विपणन पर प्रबन्धकों को अन्य वस्तुओं की तुलन में अधिक ध्यान देना पड़ता है जिससे अन्य वस्तुओं की लाभदेयता विपरीत रूप से प्रभावित होती है तो ऐसी स्थिति में वस्तु के परित्याग का निर्णय लिया जा सकता है।
6. **वस्तु की प्रभावशीलता मे कमी (Reduction in product's effectiveness):** यदि वस्तु उन उद्देश्यों की पूर्ति नहीं कर पा रही है जिनके लिए उसे वस्तु–रेखा–पंक्ति में शामिल किया गया था तो ऐसी वस्तु के परित्याग का निर्णय लिया जा सकता है।
7. **प्रतिस्थापित वस्तु (Substitute product):** प्रतिस्थापित वस्तु का अर्थ है एक वस्तु द्वारा दूसरी वस्तु का स्थान ले लेना। लेकिन यह स्थान उस समय लिया जाता है जबकि नयी प्रतिस्थापित वस्तु पहले निर्माता की वस्तु से उन्नत होती है। ऐसी स्थिति मे पहली वस्तु के निर्माता द्वारा उसमें फेर–बदल या समाप्ति के बारे में निर्णय लिया जा सकता है।

एक अच्छे निर्माता द्वारा समय–समय पर अपनी वस्तुओं की समीक्षा की जाती है और जिन वस्तुओं में ऊपर लिखे जैसे चिन्ह प्रस्तुत होते दिखायी देते हैं तो उसके द्वारा समाप्ति के निर्णय पर विचार अवश्य किया जाना चाहिए। विचार का अर्थ यह कदापि नहीं है कि एकदम समाप्ति का निर्णय ले लेना चाहिए। समाप्ति निर्णय लेने से पूर्व यह देख लेना चाहिए कि क्या वस्तु में संशोधन या नवाचार कर उसकी माँग, उसके लाभ व अन्य बातों को यथाविधि बनाये रखा जा सकता है? यदि सम्भव हो तो पहले यही निर्णय लेना चाहिए। किसी प्रकार उस वस्तु में सुधार का अवसर नहीं है तो समाप्ति का निर्णय अवश्य ले लिया जाना चाहिए। किसी भी दिशा में बीमार वस्तुओं को अपने उत्पादन में बनाये रखना उचित नहीं है क्योंकि इससे राष्ट्रीय साधनों का दुरूपयोग होता है।

साधारणतया यह देखा जाता है कि व्यवसाय वस्तु के परित्याग का निर्णय लेने को टालता है और वह हमेशा यह प्रयत्न करता है कि वस्तु–संशोधन या नवीन वस्तु–विकास करके ही काम चला लिया जाय और वस्तु का परित्याग न किया जाय। वह उस वस्तु को अपने वस्तु–मिश्रण में उस समय तक रखना चाहता है जिस समय तक वह चल सकती है। इसका परिणाम यह होता है कि (i) उस व्यवसाय के साधन अनावश्यक रूप से घिरे रहते हैं जिनकों अन्यत्र लगाया जा सकता है और लाभ को बढ़ाया जा सकता है, (ii) लाभ की मात्रा कम हो जाती है, और (iii) संस्था नये अवसरों को हाथ से छोड़ देती है।

दुर्बल वस्तुओं की लागत
(Cost of Weak Products)

वे वस्तुएँ जो कम बिकती हैं तथा जिनसे लाभ भी कम ही होते हैं लेकिन फिर भी वे एक व्यवसाय की वस्तु–पंक्ति मे बनी रहती है दुर्बल वस्तुएं कहलाती हैं।

ऐसी वस्तुएँ एक व्यवसायी के लिए महंगे बोझ के समान हैं और इनके परित्याग का निर्णय ले लिया जाना चाहिए। लेकिन व्यवसायी ऐसा नहीं करता है। वह इनको अपनी वस्तु पंक्ति मे तब तक निभाता रहता है जब तक ऐसी वस्तुओं से प्रत्यक्ष निर्माणी लागत बिक्री के रूप में मिलती रहती है लेकिन व्यवसायी यह भूल जाता है कि वस्तु की प्रत्यक्ष निर्माणी लागत के अतिरिक्त कुछ अन्य लागतें भी होती हैं जिनका पता बही–खाते आदि से भी नहीं लगता है, जिन्हे छिपी लागतें कहते हैं। यह लागतें भी वस्तु की प्रत्यक्ष लागत के साथ प्राप्त होनी चाहिए। यह छिपी हुई लागत निम्न प्रकार की होती हैः–

1. दुर्बल वस्तुओं के विज्ञापनं एवं विक्रय सवंर्द्धन पर तुलनात्मक दष्टि से अधिक व्यय करना पडता है लेकिन यदि इतनी ही रकम अन्य स्वस्थ वस्तुओं पर व्यय की जाये तो अधिक लाभ उठाया जा सकता है।
2. दुर्बल वस्तुओं के मूल्यों व उनके स्टॉक में समय–समय पर परिवर्तन करना पड़ता है।
3. प्रबन्धकों को दुर्बल वस्तुओं के बारे में सोचने पर अधिक समय व्यतीत करना पड़ता है और अधिक ध्यान देना पड़ता है।
4. ऐसी वस्तुओं की कमियाँ ग्राहक के मन में भ्रम उत्पन्न कर देती हैं कि निर्माता वस्तु को क्यों नही सुधार रहा है और इस प्रकार उस निर्माता की छवि बिगड़ सकती है।
5. एक दुर्बल वस्तु की उत्पादन–चाल में बहुत समय एवं धन व्यय होता है। इसका कारण यह है कि ऐसी वस्तु की उत्पादन–चाल में बहुत समय एवं धन व्यय होता है। इसका कारण यह है कि ऐसी वस्तु का उत्पादन बार–बार कम करने के लिए उत्पादन–चाल बार–बार सेट करनी पड़ती है।

इस प्रकार दुर्बल वस्तुओं के बनाये रहने में लागत बढ़ती है व प्रतिस्थापन वस्तुओं के ढूँढ़ने में देर लगती है और वस्तु–मिश्रण सन्तुलित नहीं रह पाता। साथ ही आगे चलकर संस्था भी कमजोर हो जाती है। अतः उचित समय पर वस्तु परित्याग का निर्णय अवश्य ले लिया जाना चाहिए।

परित्याग निर्णय न लेने के कारण
(Reasons for not taking Elimination Decision)

एक निर्माता यह जानते हुए कि दुर्बल वस्तु को वस्तु–पंक्ति मे बनाये रखने से लागत बढ़ती है, लाभ कम होते हैं। भावी योजनाओं

पर प्रभाव पड़ता है, लेकिन फिर भी वह उनको अपनी वस्तु–पंक्ति में बनाये रखता है। आर. एस. अलेक्जेण्डर के मत में, "इसका मुख्य कारण भावुकता है।" सामान्यतया वस्तु परित्याग निर्णय न लेने के निम्न कारण बताये जाते हैं–

1. **घटकों में परिवर्तन (Change in factors):** प्रबन्धकों की यह धारणा रहती है कि वस्तु की कम बिक्री बाहरी घटकों के कारण है जो शीघ्र ही बदल जायेंगे और आगे चलकर आर्थिक या बाजारू घटक अनुकूल हो जायेंगे तथा बिक्री बढ़ जायेगी।
2. **वस्तु-संशोधन द्वारा प्रोत्साहन (Boosting by product-modification)**: प्रबन्ध यह सोचता है कि वस्तु–संशोधन के द्वारा बिक्री को प्रोत्साहित कर लिया जायेगा।
3. **विपणन कार्यक्रम में संशोन (Modification in marketing programme):** प्रबन्ध द्वारा कभी–कभी यह भी सोचा जाता है कि वस्तु में कोई कमी नहीं है बल्कि यह कमी विपणन कार्यक्रम की है जिसको ठीक किया जा सकता है तथा इसके लिए डीलरों को प्रोत्साहित किया जा सकता है। विज्ञापन बजट में वद्धि एवं विज्ञापन में परिवर्तन करके या अन्य विपणन घटकों मे संशोधन करके बिक्री को बढ़ाया जा सकता है।
4. **अन्य वस्तुओं की बिक्री में सहायक (Helpful in the sale of othe products):** एक दुर्बल वस्तु को इसलिए भी बनाये रखा जा सकता है कि उससे अन्य वस्तुओं की बिक्री में सहायता मिल रही है। यह वस्तु ललचाने वाली वस्तु है जिससे कि अन्य वस्तुओं के ग्राहक फँसाये जाते हैं।
5. **उपरिव्ययों की प्राप्ति (Receipt of overhead expenses):** इस वस्तु की बिक्री उपरिव्ययों को पूरा कर देती है और निर्माता के पास अपने साधनों को काम में लगाये रखने का इससे अच्छा साधन और कोई नहीं है।
6. **कर्मचारियों का हित (Interest of personnel):** निहित स्वार्थों के कारण भी दुर्बल वस्तु को बनाये रखे रहते हैं। संगठन के भीतर और बाहर कुछ ऐसे व्यक्ति होते हैं जिनकी रोजी–रोटी इसी वस्तु पर निर्भर हैं; जैसे वस्तु–प्रबन्धक, कर्मचारी व ग्राहक। यदि वस्तु को वस्तु पंक्ति से निकाल दिया जायेगा तो उसका उत्पादन बन्द होने पर उनकी सेवाएँ समाप्त कर दी जायेंगी या उनका कार्य बदलना होगा। कभी–कभी मनोभाव ऐसा वस्तु परित्याग निर्णय लेने में एक शक्तिशाली घटक बन जाता है और वस्तु वर्षों तक निर्माता की वस्तु–पंक्ति में बनी रहती है।
7. **कमियों को छिपाना (Hiding of defeacts):** वे व्यक्ति जो संगठन में हैं और जिनका हित वस्तु परित्याग से प्रभावित होता है वे वस्तु की कमियाँ छिपाते रहते हैं, जैसे, वस्तु की किसी प्रकार बिक्री कर उपभाक्ता के स्टॉक में धकेल देना; कृत्रिम तरीके के विवरण प्रबन्ध को देना; या वस्तु सम्बन्धी बातों को प्रबन्ध से छिपाना।

वस्तु परित्याग तरीका
(Product Abandonment Practice)

वस्तु परित्याग का सबसे अच्छा तरीका अभी तक स्थापित नहीं हुआ है। साधारणतया यह देखा जाता है कि वस्तु परित्याग की कार्यवाही तीन में से किसी एक के आधार पर की जाती हैः–

1. **टुकड़ों के आधार पर (On a piecemeal basis):** इसमें वस्तु का परित्याग पूर्ण रूप से न करके धीरे–धीरे किया जाता है। यह उस समय किया जाता है जबकि वस्तु का मूल्य गिरता चला जा रहा है।
2. **संकट के आधार पर (On a crisis basis):** जब वस्तु की कुल बिक्री गितरी चली जाती है या लागत बढ़ती चली जाती है या उसका स्टॉक भारी मात्रा में गोदाम में एकत्रित होना शुरू हो जाता है तो वस्तु परित्याग का निर्णय इस संकट के आधार पर ले लिया जाता है और वस्तु का उत्पादन तुरन्त बन्द कर दिया जाता है। इस प्रकार वस्तु निर्माता की वस्तु–पंक्ति से निकल जाती है।

   लेकिन उपर्युक्त दोनों ही तरीके उचित नहीं है। इसका कारण यह है कि वस्तु अनावश्यक होते हुए भी निर्माता की वस्तु–पंक्ति में खिंचती रहती है और इसका निर्माण चलता रहता है।
3. **सावधिक वस्तु समीक्षा विधि (Periodic product review method):** एक सुव्यवस्थित तरीका यह हो सकता है कि उन वस्तुओं की समीक्षा, जिनके औसत लाभ कम हो रहे हैं, एक निश्चित समय के अन्तर पर अवश्य कर ली जाय; जैसे, हर तीन माह के पश्चात्। यह तरीका सही दिशा में एक कदम है और ऐसा करने से वस्तु के सम्बन्ध मे निर्णय

लेने का समय अवश्य आ जाता है और उसको टाला नहीं जा सकता है। इस समीक्षा से दो लक्ष्यों की की पूर्ति हो जाती है – (i) बदलती हुई परिस्थितियों के सन्दर्भ में जिन वस्तुओं को बदलने या निकालने की आवश्यकता होती है उनका पता लग जाता है। इससे संस्था के लाभों में वद्धि करने के लक्ष्यों की पूर्ति हो सकती है। (ii) वे अधिकारी जिन पर किसी वस्तु का उत्तरदायित्व है और यदि उनका कार्य अच्छा है तो उनको प्रेरणा दी जा सकती है। इसी प्रकार अकुशल कर्मचारियों के विरूद्ध कार्यवाही भी की जा सकती है।

वस्तु परित्याग निर्णय की अवस्थाएँ
(Stages of Product Elimination Decision)

वस्तु परित्याग का निर्णय छोटे व्यवसायों में तो व्यवसायी स्वयं ले लेता है लेकिन बड़े व्यवसाय में इस निर्णय के लिए एक समिति बना दी जाती है जिसको वस्तु निरूपण समिति कहते हैं। इस समिति में उस व्यवसाय के विपणन, उत्पादन एवं निन्यत्रण विभागों के अधिकारी होते हैं। जिनकी नियुक्ति व्यवसाय का प्रबन्ध करता है। जब कोई समिति इस प्रकार बन जाती है तो फिर यह समिति अपने उद्देश्य निर्धारित करते हुए वस्तु के परित्याग निर्णय पर आने के लिए जिस तरीके को अपनायेगी उसका निर्धारण करती है।

वस्तु परित्याग के दो तरीकों मे दो प्रकार की अवस्थाएँ होती हैं। ऊपर जो बताया गया है वह सजनात्मक अवस्थाएँ कहलाती हैं। इसको निम्न प्रकार दर्शाया जा सकता हैः–

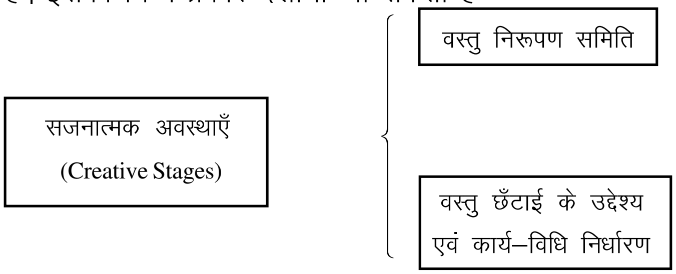

दूसरी अवस्था को प्रचालन अवस्थाएँ (Operational stages) कहते है। इसमें निम्न अवस्थाएं होती हैंः–

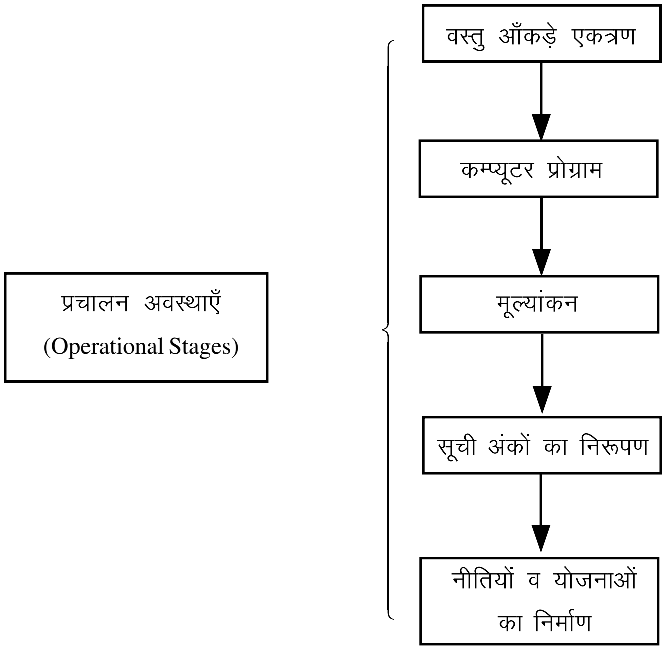

1. **वस्तु आँकड़े एकत्रण (Collection of product data):** इस अवस्था में सर्वप्रथम उन वस्तुओं से सम्बन्धित आँकड़े एकत्रित किये जाते हैं जिनकी बिक्री कम हो रही है या जिनका स्टॉक बढ़ता चला जा रहा है या जिन लाभ पर की

मात्रा कम होती जा रही है। यह आँकड़े या सूचनाएँ बिक्री, लागत, मूल्य व अन्य बातों से सम्बन्धित पिछले कई वर्षों के होते हैं जिससे कि तुलना की जा सके।

2. **कम्प्यूटर प्रोग्राम (Computer Programme):** यह दूसरी अवस्था है। इसमें पहली अवस्था में जो सूचनाएँ एकत्रित की गई हैं उनको कम्प्यूटर में डाल देते हैं और उन वस्तुओं को छाँटते हैं जो संदिग्ध हैं। यह कार्य पहले से निर्धारित सिद्धान्तों के अनुसार किया जाता है।

3. **मूल्यांकन (Rating):** जब कम्प्यूटर से उन वस्तुओं की सूची प्राप्त हो जाती है तो फिर उनको शुद्ध सिद्धान्तों के आधार पर वस्तु निरूपण समितियों द्वारा मूल्यांकन किया जाता है। इसके लिए प्रत्येक अंक को भार देकर सूची अंक तैयार किया जाता है।

4. **सूची अंकों का निरूपण (Review of indices):** ऊपर जो सूची अंक तैयार किया गया है वस्तु निरूपण समिति इसके आधार पर वस्तुओं के परित्याग का निर्णय लेती है।

5. **नीतियों व योजनाओं का निर्माण (Formulation of Policies and plants):** जब वस्तुओं के परित्याग का निर्णय ले लिया जाता है तो फिर अन्त में उन नीतियों व योजनाओं का निर्माण करना पड़ता है जिनके अनुसार वस्तु का परित्याग किया जायेगा।

वस्तु को त्यागते समय एक निर्माता को इन बातों को भी ध्यान में रखना चाहिए कि जो वस्तुएँ अब तक बेची हैं उनके लिए पुर्जे किस प्रकार उपलब्ध हो सकेंगे? डीलरों व अन्य के साथ कोई आभार (obligation) तो नहीं है? क्या कोई अन्य ऐसा निर्माता है जो परित्याग की गयी वस्तु को क्रय कर ले ? आदि।

नयी वस्तुओं का निर्माण
(Manufacture of New Products)

नयी वस्तु के निर्माण से हमारा अर्थ नई वस्तु के विकास से है। इसमें (i) नए उत्पाद विचारों की खोज (ii) विचारों की छानबीन (iii) आर्थिक विश्लेषण (iv) उत्पाद का प्रायोगिक उत्पादन (v) परीक्षात्मक विपणन (vi) विपणन, आता है। इन सभी का विस्तत विवरण आगे इसी अध्याय में किया गया है।

उत्पाद का विकास
(New Product Development)

वह घटक जो नये विकास के लिए प्रेरणा देते हैं दो भागों में बांटे जा सकते हैं।

1. सामान्य प्रेरक (General Incentives)
2. विशेषक प्रेरक (Specific incentives)

उत्पाद विकास के लिए सामान्य प्रेरक
(General Incentives For Product Development)

सामान्य प्रेरक के अंतर्गत वे घटक आते हैं जो उत्पाद विकास के लिए बड़े रूप में उत्तेजित करते हैं। साधारणतया ये घटक ग्राहकों की रूचि में परिवर्तन, विकास के लिए अन्वेषण और ग्राहकों की क्रय शक्ति तथा दूसरी ओर प्रतिस्पर्धा की स्थिति में अस्थिरता आदि हैं। अगर निर्माता को विश्वास है कि वर्षों तक उपभोक्ता की इच्छा एक समान ही रहेगी और दूसरे निर्माता नये उत्पाद के उत्पादन में व उत्पाद के परिवर्तन में रूचि नहीं लेंगे तो ऐसे बहुत कम कारण होंगे जिससे निर्माता वस्तु के विकास की ओर ध्यान दें। ये प्रेरक निम्न हैंः–

(अ) **विकास के लिए मानवीय अंतरचालना (Human Quest for Growth):** मानव में स्वाभाविक धारणा है कि वह विकास, उन्नति और समद्धि चाहता है। इसी तरह व्यापारी में भी यह प्रवति होती है कि वे अपने व्यापार का अधिक विकास करें। ऐसा करने के लिए वह निरंतर नई वस्तु का विकास करता है और चालू वस्तु को सुधारता है। यह उत्पाद विकास का महत्वपूर्ण कारण है।

प्रत्येक क्षेत्र में संपूर्ण उद्योग विकास करता है। उदाहरण के लिए, वाशिंग एजेंट इंडस्ट्री ने धोने के साबुन से धोने के पाउडर और धोने की टिकिया में विकास किया। वर्तमान प्रवत्ति तरल साबुन की ओर है और सामान्यतया व्यक्तिगत मामले में और अनिवार्य रूप से उद्योग में विकास की ओर बढ़ने की प्रवति होती है।

(ब) **प्रतिस्पर्धी स्थिति को सुधारना और बनाए रखना (To Maintain and Improve Competitive Position):** व्यवसाय का एक महत्वपूर्ण शक्तिशाली उद्देश्य लाभ प्राप्ति है। निर्माता अपनी प्रतिस्पर्धी स्थिति को बनाए रखने एवं सुधारने हेतु अनेक नीतियां अपनाते एवं बदलते हैं। वे अनुसंधान और विकास विभाग, वाणिज्यक और निजी जांच ब्यूरो तथा ग्राहकों की आवश्यकता और इच्छा का अध्ययन कर अपने विक्रय की वद्धि की कोशिश करते हैं। इस कार्य के लिए वे अपने निकटतम प्रतिस्पर्धा के उत्पाद और क्रिया को देखते हैं और इस जानकारी का अपने उत्पाद के विकास को निर्धारित करने में उपयोग करते हैं। प्रतिस्पर्धियों की विभिन्न क्रियाओं का गहन अध्ययन करने से उनके उत्पाद के विक्रय मे वद्धि होती है। फलतः अधिक लाभ बढ़ जाता है। क्योंकि प्रतिस्पर्धी द्वारा नये उत्पाद की बाजार में अधिक बिक्री होती है। अपने भाग को बाजार में बनाए रखने के लिए प्रत्येक निर्माता समान लेकिन अलग प्रकार के उत्पाद के उत्पादन का प्रयास करता है। उदाहरण के लिए, जैसे ही हिन्दुस्तान लीवर ने धुलाई की टिकिया रिन का विकास किया तो टाटा द्वारा तुरंत ही बाजार में अपने भाग को बनाए रखने के लिए, उसकी धुलाई की टिकिया, बोनस को बाजार में लाया गया।

(स) **ग्राहकों की क्रयशक्ति एवं आवश्यकता (Purchasing Power and Needs of Customers):** जनसंख्या में वद्धि, शिक्षा में वद्धि, गाँवों से शहरों की ओर जाने और लोगों की क्रय शक्ति की वद्धि में विकास हो रहा है। इन सबके परिणामस्वरूप ग्राहकों की रूचि और मांग में भी परिवर्तन हुआ है। विपणन क्रिया का गतिशील स्वभाव बताता है कि ग्राहकों की परिवर्तनशील आवश्यकता को संतुष्ट करने के लिए उत्पाद में सुधार और नई उत्पाद का विकास किया जाए। जैसे उपभोक्ता बड़े रेडियों के स्थान पर पाकिट रेडियो, लकड़ी के फर्नीचर के स्थान पर फोल्डिंग स्टील फर्नीचर, जाम, जैली आदि खाद्य पदार्थो को पसंद करता है।

(द) **उत्पाद रेखा में नेतत्व (Leadership in Product Line):** कई कंपनियां ग्राहकों की आवश्यकता को पूरी करने के लिए नई उत्पाद के निर्माण और पुरानी उत्पाद में सुधार के लिए सबसे आगे रहने में अपना गौरव समझती हैं। इस प्रकार का नेतत्व नये उत्पाद में विकास और पुराने उत्पाद मे सुधार के लिए शक्तिशाली प्रेरणा उतपन्न करता है।

ऊषा सिलाई मशीन कंपनी विभिन्न प्रकार की विभिन्न उपयोग वाली सिलाई मशीनों का उत्पादन करती है।

(य) **तकनीकी परिवर्तन (Changes in Technology):** निर्माता तकनीकी मे परिवर्तन केवल पुराने उत्पाद के लिए ही बाजार का विस्तार नहीं करता, बल्कि साथ ही पूर्णतया नये उत्पाद का निर्माण कर नए बाजार को बनाता है। जैसे सूती वस्त्र के स्थान पर सैंथेटिक वस्त्र सामान्य सेल के स्थान पर लीक प्रूफ सेल, साधारण ब्लेड के एवं रेजर के स्थान पर विद्युत रेजर एवं स्टेनलेस स्टील ब्लेड।

उत्पाद विकास की विशिष्ट प्रेरणाएं
(Specific incentives for Product Development)

विशिष्ट प्रेरणाएं वस्तु विकास के लिए सामान्य प्रेरणाओं की तरह सामान्यतया उपयोग में नहीं आती लेकिन ये विभिन्न कंपनियों में विभिन्न परिस्थितियों के अनुसार भिन्न–भिन्न होती है। कुछ इस प्रकार की प्रेरणाएं इस प्रकार हैंः–

1. अधिक उत्पादन क्षमता का उपयोग (Utilization of excess production capacity)
2. प्रतिस्पर्धियों की नई और सुधारी हुई वस्तु (New & improved product of competitor)
3. सामान्य स्रोतों से पूर्ति के पाने में अयोग्यता (Inability to secure supplies from normal sources)
4. व्यर्थ वस्तु का उपयोग (Utilization of waste products)
5. व्यापारिक व्यवस्था (Trade Practices)
6. सरकारी नियम और नियंत्रण (Govt. Regulation & control)
7. नई मांग की मान्यता (New demand)

8. ऊंचे मूल्य प्रयोग के लिए कच्चे माल का उपयोग (Utilization of materials for a higher value use)
9. बाजार से सुझाव (Suggestions from the market)
10. वितरण नीति में परिवर्तन की आवश्यकता, जैसे अधिक पूर्ण उत्पादन की रेखा के विकास से फुटकर व्यापारी को मितव्ययिता पूर्ण वितरण (Need for change in distribution policy i.e., Full line production resulting in economy in distributions)

उत्पाद का प्रारंभिक विकास
(Initial Development of a Product)

गत कुछ वर्षों से विपणन प्रतिस्पर्धा में कई नई और महत्वपूर्ण तकनीकियां उल्लेखनीय हैं। जिनमें काफी प्रयास करने के बाद तरक्की हुई है तथा नए उत्पादों के विपणन, विकास व खोज की ओर भी ध्यान दिया गया है। हमने निम्न परिच्छेदों में, नई वस्तु का विकास कैसे होता है, इसकी व्याख्या की है।

नई उत्पाद के विचारों के स्रोत
(Sources of New Product Ideas)

नये उत्पाद के विकास का सबसे कठिन भाग उत्तम विचारों की खोज है। निर्माताओं का अनुभव है कि विचारों की कमी नहीं है लेकिन अच्छे विचारों की कमी है। 95 से 98% नए विचार व्यर्थ या अमितव्ययी सिद्ध होते हैं। विभिन्न स्रोत हैं जिनमें से नई वस्तु के विचार निकलते हैं, जैसेः–

1. कंपनी के स्वंय के कर्मचारी, विक्रय कर्मचारी, अनुसंधान और विकास विभाग तथा विपणन अनुसंधान विभाग आदि (Co's own staff).
2. प्रतिस्पर्धियों की वस्तुएं (Competitive Products).
3. वितरणकर्ता – थोक व्यापारी और फुटकर व्यापारी (Distributors – Wholesalers & Retailers).
4. सामान्य जनता या ग्राहकों से सुझाव (Suggestions from Customers & General Public).
5. उत्पादन इंजीनियर्स (Production Engineers).
6. पत्रिकाएं और अनुसंधान जर्नल्स (Magazines & Research Journals).
7. विज्ञापन एजेंसी (Advertising Agency).
8. विश्वविद्यालय और अनुसंधान प्रयोगशालाएं (Universities & Research Laboratories).
9. सरकारी अनुसंधान प्रयोगशालाएं (Govt. Research Laboratories).

भारत में सरकार द्वारा अनुसंधान प्रयोगशाला के विभिन्न विज्ञान और तकनीकी क्षेत्रों में ''वैज्ञानिक एवं औद्योगिक अनुसंधान परिषद'' (Council of Scientific & Industrial Research) (सी.एस.आई.आर.) नई दिल्ली के समग्र नियंत्रण में कार्य करने के लिए भिन्न क्षेत्रों में अनुसंधानशालाएं स्थापित की गई हैं। ये अनुसंधान संस्थाएं भारत में नये उत्पाद के विकास के महत्वपूर्ण स्रोत हैं। इनमें से कुछ संस्थाएं अग्रलिखित हैंः

1. राष्ट्रीय भौतिक अनुसंधान शाखा, नई दिल्ली (National Physical Laboratory, New Delhi).
2. राष्ट्रीय रसायन अनुसंधानशाला, पूना (National Chemical Laboratory, Pune).
3. केन्द्रीय उर्जा शोध संस्थान, धनबाद(National Fuel Research Institute, Dhanbad).
4. केन्द्रीय ग्लास एवं सिरेमिक्स शोध संस्थान, कलकत्ता, (Central Glass & Ceramics Research Institute, Calcutta).
5. केन्द्रीय खाद्य एवं तकनीकी शोध संस्थान, मैसूर (Central Food & Technological Research Institute, Mysore).
6. राष्ट्रीय धातु अनुसंधानशाला, जमशेदपुर (National Metallurgical Laboratory, Jamshedpur).
7. केन्द्रीय दवाई शोध संस्थान, लखनऊ (Central Drug Research Institute, Lucknow).

8. केन्द्रीय चमड़ा शोध संस्थान, मद्रास (Central Leather Research Institute, Madras).
9. केन्द्रीय विद्युतीय इंजीनियरिंग शोध संस्थान, पिलानी (Central Electronics Engineering Research Institute, Pilani).
10. केन्द्रीय मैकेनिकल इंजीनियरिंग शोध संस्थान, दुर्गापुर (Central Mechanical Engineering Research Institute, Durgapur).
11. क्षेत्रीय शोध रसायन शाखाएं जोरहाट, जम्मूतवी हैदराबाद, भुनेश्वर (Regional Research Laboratories – Jorhat, Jammu Tawi, Hyderabad & Bhubaneshwar).
12. केन्द्रीय वैज्ञानिक कलपुर्जे संगठन, चंडीगढ़ (Central Scientific Instruments Organisation, Chandigarh).

ऊपर की संस्थाओं के अतिरिक्त कई अनुसंधान संगठन हैं जिनकी पूर्ति निजी संस्थाओं, उद्योगों और सरकार की सहायता से होती है। जैसे हैफकिन संस्थान (Hafkin Institute), बंबई जो टीका लगाने की दवा, सिअरा और दूसरे जीवन वैज्ञानिक वस्तुओं का अनुसंधान करती है। कई विदेशी सहायता प्राप्त संगठन संस्थाएं, दवाइयां, इंजीनियरिंग तथा मशीनरी के उत्पादन क्षेत्र में अनुसंधान विभाग प्रारंभ किए गए हैं।

नए उत्पाद विकास के चरण

(Stages in New Product Development)

नीचे दिया गया चित्र यह दर्शाता है कि उत्पाद के कितने विचार खोजने, स्क्रनिंग करने, तांत्रिक व विपणी शोध करने तथा परीक्षण करने के बाद नया उत्पाद बाजार में रखा जाता है।

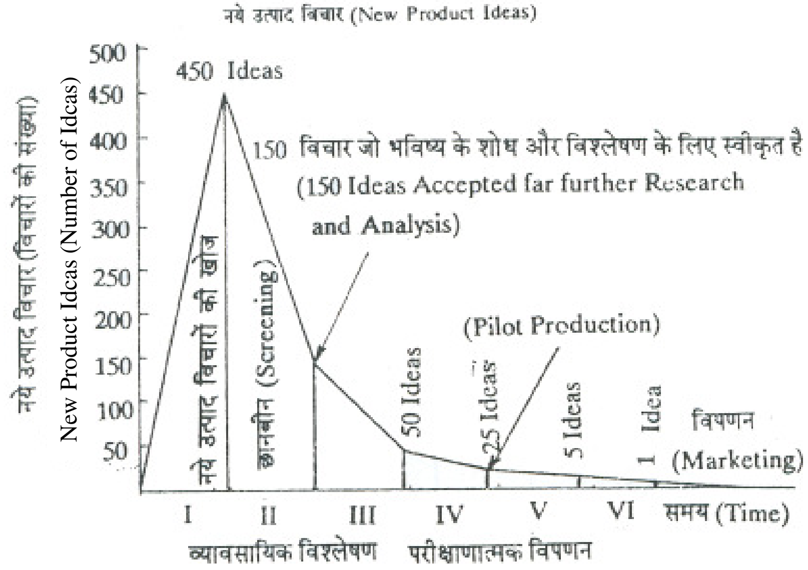

चित्र 7.1: नये उत्पाद विकास के चरण

1. नये उत्पाद विचारों की खोज (Search for New Product Ideas)
2. विचारों की छानबीन (Screening of Ideas)
3. आर्थिक विश्लेषण (Economic Analysis)
4. उत्पाद का प्रायोगिक उत्पादन (Experimental Pilot Production)
5. परीक्षात्मक विपणन (Test Marketing)
6. विपणन (Marketing)

1. **नये उत्पाद विचारों की खोज (Search for New Product Ideas)**– उत्पाद वद्धि की पहली अवस्था का मुख्य उद्देश्य है अच्छे विचारों की संख्या में वद्धि करना। बाद की अवस्थाओं का उद्देश्य है विचारों की संख्या घटाना। कंपनी को न तो सभी नये उत्पाद विचारों का विकास करने में रुचि होती है और न उसके पास इतने साधन ही होते हैं कि इन सबका विकास करे। फिर सभी विचार समान रूप से अच्छे नहीं होते। इस प्रकार, उत्पाद वद्धि प्रक्रिया में अब मूल्यांकन एवं निर्णय संबंधी प्रकार्य भी सम्मिलित हो जाते हैं। विचारों को छांटने की पहली अवस्था है ''स्क्रीनिंग''।

2. **विचारों की छानबीन (Screening of Ideas)**– छानबीन का उद्देश्य अधिक कार्यवाही की दष्टि से उन उत्पाद विचारों को पथक करना है, जो कि या तो कंपनी के उद्देश्यों से अथवा कंपनी के प्रसाधनों से असंगत है। नये उत्पाद संबंधी प्रस्ताव एक–एक करके लिए जाते हैं और पहला काम यह पता लगाना है कि क्या प्रस्ताविक उत्पाद कंपनी के लक्ष्यों के अनुरूप हैं। कंपनी के उद्देश्य निम्न हो सकते हैः लाभ, विक्रय स्थिरता, विक्रय वद्धि और कंपनी छवि आदि। यदि प्रस्ताव इनमें से किसी भी उद्देश्य से संगति न रखता हो, तो उसे अगली कार्यवाही से निकाल देना चाहिए, भले ही अन्य उद्देश्यों से उसकी यथेष्ट संगति हो। दूसरा काम यह पता लगाना है कि क्या उत्पाद कंपनी के प्रसाधनों (पूंजी, तकनीकी ज्ञान, भौतिक सुविधायें आदि) से संगति रखता है। यदि इनमें से किसी भी प्रसाधन की कमी हो, तो फिर यह प्रश्न पूछा जाये कि क्या वह उचित लागत पर मिल सकता है? इनमें से किसी भी प्रश्न का उत्तर नहीं में निकलने पर विचार को अगली कार्यवाही में शामिल नहीं किया जायेगा।

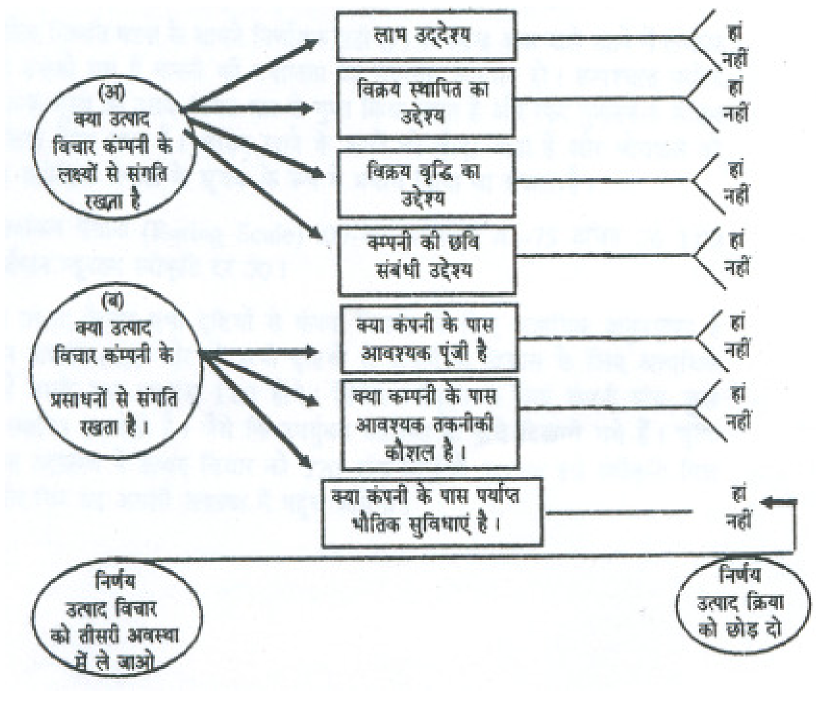

चित्र 7.4: विचारों के छानबीन की विधि (A Screening Method)

उत्पाद संबंधी विचारों के क्रम निर्धारण की युक्तियां
(Product Idea Rating Devices)

अनेक विचारों की छंटाई छानबीन विधि के द्वारा हो जाती है, किन्तु जो फर्में प्रत्येक अवधि में एक बड़ी संख्या में उत्पाद विचार प्राप्त करती हैं उनके सामने एक अन्य समस्या भी आती हैं जो प्रस्तावों को महत्वानुसार क्रम में रखने से संबंधित है, ताकि कंपनी प्रसाधन के अनुरूप सबसे आकर्षक प्रस्ताव चुना जा सके। इस आशय के लिए प्रबंधकों को एक क्रम निर्धारित करने वाला साधन चाहिए। जांच की अवस्था में उत्पाद मूल्यांकनों को व्यवस्थित करने के लिए कंपनियां जांच सूचियां बहुत पसंद करती हैं। एक बड़ी कपंनी द्वारा कराये गए मूल्यांकन में दो वैकल्पिक उत्पाद विचारों की जो स्थिति रही उसे जांच तालिका द्वारा दिखाया

सारणी 7.1

संक्षिप्त उत्पाद क्रमांक (Summary Product Ranking)

केस–1 सामान्य रूप से अनुकूल नमूना

	अत्युत्तम (Very Good)	उत्तम (Good)	उचित (Fair)	अपर्याप्त (Poor)	बहुत अपर्याप्त (Very Poor)
विक्रय परिमाण	√				
प्रतियोगियों की संख्या व प्रकार	√				
तकनीकी सुअवसर	√				
पेटेन्ट सुरक्षण		√			
कच्चे माल		√			
उत्पादन भार		√			
मूल्य की वद्धि		√			
प्रमुख व्यवसाय से समानता			√		
वर्तमान उत्पादों पर प्रभाव					

सारणी 7.2

केस–2 सामान्य रूप से प्रतिकूल नमूना

	अत्युत्तम (Very Good)	उत्तम (Good)	उचित (Fair)	अपर्याप्त (Poor)	बहुत अपर्याप्त (Very Poor)
विक्रय परिमाण	√				
प्रतियोगियों की संख्या	√				
तकनीकी सुअवसर	√				
पेटेन्ट सुरक्षण		√			
कच्चे माल		√			
उत्पादन भार		√			
मूल्य की वद्धि		√			
प्रमुख व्यवसाय से सादश्य वर्तमान			√		
उत्पादों पर प्रभाव					

गया है। इसमें नौ महत्वपूर्ण घटकों को विचार में लिया गया है। और प्रत्येक का क्रम निर्धारण एक पांच बिंदु पैमाने के अनुसार किया गया है। पहला प्रस्ताव सामान्य रूप से अनुकूल स्थिति और दूसरा प्रस्ताव सामान्य रूप से प्रतिकूल स्थिति दिखाता है। यदि यह मान लिया जाए कि सभी नौ घटक बराबर महत्व के हैं, तो स्पष्ट ही प्रथम प्रस्ताव दूसरे, प्रस्ताव की अपेक्षा उत्तम है। यदि रूपरेखा कम अतिवादी होती, तो क्रम निर्धारण संबंधी निर्णय कठिन हो जाता तथा कोई सीमित करने वाली तकनीक अपनाना आवश्यक होता।

परिणात्मक जांच सूची
(Quantitative Checklist)

उपरोक्त जांख सूची को उत्पाद प्रस्तावों के आंकिक क्रम निर्धारण की युक्ति में बदला जा सकता है। इसका एक उदाहरण आगे दी गई तालिका में प्रस्तुत है। तालिका के दायीं और "अत्युत्तम से लेकर बहुत अपर्याप्त तक विभिन्न विशेषणों का संग्रह देने के बजाए एक ग्यारह बिन्दु आंकिक पैमाना (जो 0 से लगाकर 10 तक है) दिया गया है। बायीं ओर उन घटकों को सूचीबद्ध किया गया है जो कि उत्पाद की छानबीन में महत्वपूर्ण समझे गये हैं। यदि किसी घटक के संदर्भ में प्रस्ताव को 0 अंक मिले, तो इसका आशय यह है कि कंपनी उस घटक की दष्टि से बहुत ही अप्रभावशाली निष्पति दिखा सकेगी और यदि 1.0 का अंक मिले, तो कंपनी की निष्पति उस घटक की दष्टि से बहुत प्रभावशाली होगी। उत्पाद की श्रेष्ठता का एक अकेला सर्वोपरि सूचकांक प्राप्त करने हेतु भार निर्धारित कर दिये जाते हैं, जिससे यह मालूम हो जाए कि उत्पाद की सफलता में प्रत्येक घटक का सापेक्षिक महत्व क्या है। अपने उदाहरण में हमने ऐसे भार लिये हैं जिनका कुल जोड़ 1.0 होता है।

प्रत्येक निष्पति घटक के सामने निर्णायक सही (√) का चिन्ह अंक वाले खाने में लगाता है, जो कि उसकी राय में कंपनी की पर्याप्तता का सर्वोत्तम अनुमान हो। तत्पश्चात प्रत्येक घटक के अंक मूल्य को उसके नियत भार से गुणा किया जाता है और फिर गुणनफल अंतिम खाने में लिख दिया जाता है। अंतिम खाने के अंकों को जोड़ा जाता है और योगफल को उत्पाद की सापेक्षिक श्रेष्ठता के सूचक के रूप में प्रयोग किया जा सकता है।

मूल्यांकन पैमाना (Rating Scale) 0.00–40 अपर्याप्त, 0.41–0.75 उचित 0.76 -1.00 उत्तम। वर्तमान न्यूनतम स्वीकृति दर 0.70।

जो उत्पाद विचार सभी दष्टियों से कंपनी विकास के लिए अत्यधिक अनुपयुक्त है उसके कुल प्राप्तांक 0.00 और जो सभी दष्टियों से कंपनी के विकास के लिए अत्यधिक उपयुक्त हैं उसके कुल प्राप्तांक 1.00 होंगे। विचार स्वीकृति के लिए कंपनी प्रायः कुछ सीमान्तर स्थापित कर देती है। जैसे कि उपर्युक्त तालिका के नीचे दिखाये गये हैं। चूंकि इस कल्पित उदाहरण में उत्पाद विचार को 0.720 अंक मिले हैं, इसलिए इसे स्वीकृति मिल जायेगी और फिर यह अगली अवस्था में पहुंच जायेगा।

सारणी 7.3

मूल्यांकन संपुटक-उत्पाद - उपयुक्तता

(Ecaluation Matrix – Product Appropriateness)

कार्य निष्पति का क्षेत्र (Sphere of Performance)	(अ) सापेक्षिक भारव	(ब) उत्पाद उपयुक्ता मूल्य .0	.1	.2	.3	.4	.5	.6	.7	.8	.9	1.0	मूल्यांकन (अ x ब)
कंपनी व्यक्तित्व एवं साख	·20							✓					.120
विपणन	·20										✓		·180
अनुसंधान एवं विकास	·20								✓				.140
सेविवर्ग	·15							✓					.090
वित्त	·10								✓				.090
उत्पादन	·05									✓			.040
स्थिति एवं सुविधाएं	·05				✓								.015
क्रय एवं आपूर्तियां	·05										✓		.045
योग	1.00												.720*

आर्थिक विश्लेषण
(Economic Analysis)

इस अवस्था का उद्देश्य अध्ययन व विश्लेषण करके यह पता लगाना है कि अमुक उत्पाद विचार को कार्यान्वित करना कंपनी के लिए संभव (Feasible) एवं लाभदायक (Profitable) है।

1. **आर्थिक संभाविता (Economic Feasibility):** यह अनुमान लगाया जाता है कि प्रस्तावित उत्पाद/सेवा के विपणन के लिए कितने धन की आवश्यकता होगी? इस अनुमान में स्थायी एवं चल पूंजी दोनों की आवश्यकताएं सम्मिलित होंगी, फिर यह देखा जाता है कि क्या कंपनी अपने साधन तथा अन्य स्रोतों से साधन प्राप्त करके इतनी पूंजी एकत्रित कर सकती है?

2. **आर्थिक लाभदायकता (Economic Viability):** अर्थात क्या इस नवीन उत्पाद का उत्पादन व विक्रय कंपनी को लाभदायक होगा? अन्य शब्दों में एक निर्दिष्ट समयावधि के दौरान विक्रय, लागत और लाभों को कैसे प्रभावित करेगा। एक अनुसंधान कार्यवाहक ने इस अवस्था के स्वभाव को निम्न प्रकार से व्यक्त किया हैः ''जब हमें कोई ठोस विचार प्राप्त होता है, तब हम एक व्यावसायिक मॉडल बनाते हैं। मॉडल लेखाकर्म संबंधी उन्हीं सिद्धांतों पर बनाया जाता है जिन्हें कि हम दिन प्रतिदिन के कार्यकलापों में प्रयोग करते रहते हैं। इसमें वैसी ही आंकड़े दिये जायेंगे जैसे कि पूंजी विनियोजन संबंधी आवेदन में, अर्थात् संयंत्र लागतें, सेवा सुविधा लागतें और कार्यशील पूंजी संबंधी अनुमान, ताकि आवश्यक कुल प्रचालन संपतियां (Total Operating Assets) ज्ञात हो जायें। कच्चे माल, रूपान्तरण पेकिंग, भंडार और घिसाई संबंधी लागतों के अनुमानों से कुल निर्माणी लागत प्राप्त हो जाती है। इससे विक्रय लागतें एवं संस्था उपरिव्यय जोड़कर कुल विक्रय लागतें ज्ञात कर ली जाती हैं। मॉडल में कीमत और परिमापण संबंधी आंकड़े भी शामिल कर लिये जाते हैं। ताकि प्रचालन संबंधी विनियोग से प्राप्त आय ज्ञात हो सके......विश्लेषण में कुछ अन्य घटक (जैसे की अनुसंधान एवं विकास लागतें पूर्ण होने में लगने वाला समय तथा सफलता की संभावनायें) भी सम्मिलित कर ली जाती हैं।''

   अन्य सब तरह से अच्छा होते हुए भी ''आय दर विश्लेषण'' में जिसे उपरोक्त कथन में समझाया गया है, एक दुर्बलता है, जो यह है कि न लाभ न हानि विश्लेषण (Break Even Analysis) या आय दर विश्लेषण (Rate of Return Analysis) में (जोकि परस्पर संबंधित है।) अनेक फमें विपणन व्ययों और बिक्री के फलनात्मक संबंध को भुला देती हैं। किन्तु एक लागत घटक एवं एक विक्रय प्रोत्साहक के रूप में विपणन प्रयास जो दोहरी भूमिका निभाता है, उसे इस विश्लेषण में अवश्य ही शामिल करना चाहिए। विशेषतः व्यावसायिक कार्यवाहक को चाहिए कि उत्पाद का विपणन करने के वैकल्पिक ढंगों संबंधी लाभ परिणामों का अनुमान अवश्य ही लगाएं। (कैसे लगाएं यह एक उदाहरण द्वारा आगे समझाया जाएगा)।

   ''न लाभ, न हानि विश्लेषण'' (Break Even Analysis) में पहला कदम यह अनुमान लगाना है कि लागतों की भरपाई के लिए कितनी इकाईयां बेचना आवश्यक होगा। इकाईयों की ऐसी संख्या को ''न लाभ, न हानि परिमाण'' (Break Even Analysis) कहा जाता है। ऐसे परिमाण का अनुमान लगाने हेतु यह देखना होगा कि विभिन्न विक्रय परिमाणों पर कुल आगम और कुल लागत कैसे भिन्नता दिखलाते हैं। कुल आगम (Total Revenue, R) का अभिप्राय किसी विशेष विक्रय परिमाण पर उस परिमाण और इकाई मूल्य के गुणनफल से है। यहां इकाई मूल्य का तात्पर्य उस इकाई मूल्य से है जो कि शीघ्र भुगतान, अधिक मात्रा में क्रय और भाड़ा आदि के लिए छूट का समायोजन करके निकलता है। कुल आगम की गणना तो सरल है किन्तु लागत की गणना में कठिनाई होती है, क्योंकि इसका उत्पादन मात्रा से अ–रेखिक संबंध (Non-Linear Relationship) है। किन्तु व्यवहारिक दष्टि से एक रेखिक कुल लागत फलन का प्रयोग करना पर्याप्त रहेगा। कुल लागत स्थिर (Fixed) और परिवर्तनशील (variable) लागतों का योग होती है। ''न लाभ, न हानि'' परिमाण (Qb) पर कुल आगम (R) कुल लागत (C) के बराबर होती है। किन्तु कुल आगम स्वयं (Qb) और (P) के गुणनफल के बराबर, तथा कुल लागत ''स्थिर लागत'' (F) और परिवर्तनशील लागत (V) तथा

न लाभ, न हानि परिमाण के गुणनफल'' इन दोनों का योग है। बीजरूप में–

$$R = C$$
$$P\,Qb = F + V\,Qb$$
$$\text{or} \quad Qb = F$$
$$= P\text{-}V$$

यहां P-V ''कीमत'' और इकाई परिवर्तनशील लागत का अन्तर है और स्थिर लागतों के प्रति इकाई योगदान (Unit Contribution to Fixed Cost) कहलाता है।

उदाहरण– अ, ब, स इलैक्ट्रोनिक्स कंपनी जो ट्रांजिस्टर एवं क्लॉक रेडियो बनाती है, उत्पाद पंक्ति में वद्धि करने के उद्देश्य से अन्य इलैक्ट्रोनिक उत्पादों की समीक्षा करने में व्यस्त है। ऐसा एक संभावित उत्पाद छोटा पोर्टेबल टेपरिकार्डर है। हाल ही में बाजार में छोटे, नूतन टेप रिकार्डर प्रस्तुत हुए हैं। और उनका 200 रु0 से 500 रु0 तक के बीच फुटकर विक्रय किया जा रहा है। कंपनी के विपणन अनुसंधान–विभाग ने बाजार का सर्वे किया और पता लगाया कि इस मद में लोगों को यथेष्ट रुचि है।

इस उत्पाद की संभावित लाभदायकता पर विचार करने के लिए कंपनी ने कार्य समिति नियुक्त की है। उत्पादन विभाग का अनुमान है कि विशिष्ट नयी साज–सज्जा और सुविधाओं में कंपनी को 6,00,000 रु० विनियोग करने होंगे। तथा विनियोग का अनुमानित जीवन 5 वर्ष होगा। लेखाकर्म विभाग की सूचना के अनुसार सहायक सुविधाओं, किराये, दरें, कार्यवाहकों के वेतन पूंजी की लागत आदि के मूल्य की भरपाई के लिए उत्पाद को प्रतिवर्ष 2,60,000 रु० के सामान्य उपरिव्ययों का भार सहना होगा। विपणन विभाग का सुझाव है कि उत्पाद के विज्ञापन के लिए 2,00,000 रु० और वितरण के लिए 3,00,000 रु० प्रारंभिक राशियों के बतौर बजट में रखी जायें। उसने यह भी सलाह दी है कि मूल्य 180 रु० (F.O.B.) फैक्टरी रखा जाए तथा कोई व्यापारिक छूट न दी जाए। अंत में, विभिन्न प्रचालन विभागों का अनुमान है कि नये उत्पाद पर प्रत्यक्ष सामग्री और श्रम लागत के रूप में 100 रु० प्रति इकाई व्यय होंगे।

उक्त अनुमानों से प्रकाश में बताइये कि क्या कंपनी को इस नये उत्पाद का विकास करना चाहिए और क्या प्रस्तावित विपणन मिश्रण (Proposed Marketing Mix) उपयुक्त है?

''न लाभ, न हानि विश्लेषण'' के अनुसार, हमें सर्वप्रथम ''न लाभ न हानि परिमाण'' का अनुमान लगाना चाहिए। यहां परिवर्तनशील लागतों को 100 रु० प्रति इकाई पर स्थिर मान लिया गया है। इस उदाहरण में निम्न स्थिर लागतें दी गई हैं। वार्षिक हाल की लागत (सरल रेखा पद्धति के आधार पर) 1,20,000 रु० है। नये उत्पाद पर 2,60,000 रु० के सामान्य उपरिव्ययों (Normal Overheads) का वार्षिक भार है। इसके अतिरिक्त कंपनी को हर वर्ष 2,00,000 रु० विज्ञापन और 3,00,000 रु० वितरण पर व्यय करने होंगे। इस प्रकार स्थिर लागतें (1,20,000 + 2,60,000 + 2,00,000 + 3,00,000) = 8,80,000 रु० हुई हैं। यहां P–V (180 रु० - 100 रु०) 80 रु० है। फलतः ''न लाभ न हानि परिमाण'' (Qb) = 11,000 इकाइयां (रु० 8,80,000 ÷ रु० 80) है, जिनको बेचकर स्थिर लागतें वसूल की जा सकेंगी।

यहां हमको चाहिए कि Qb को स्थिर (Constant) न मानते हुंए विपणन मिश्रण के घटकों का फलन मानें। ऐसा समझने पर वह (Qb) उत्पाद मूल्य और विपणन प्रयास की राशि के अनुसार परिवर्तित (Variable) होगाः

$$Qb = \frac{\text{रु० } 1,20,000 + \text{रु० } 2,60,000 + A + D}{P - \text{रु० } 100} = \frac{\text{रु०} 380,000 + A + D}{P - \text{रु०} 100}$$

जहां

P = थोक विक्रेता को इकाई विक्रय मूल्य

A = विज्ञापन बजट

D = विपणन बजट

नीचे की तालिका से यह स्पष्ट हो जायेगा कि ''न लाभ, न हानि परिमाण'' विपणन मिश्रण संबंधी निर्णय से बहुत प्रभावित होता है।

सारणी 7.4

विभिन्न विपणन मिश्रण के लिए संभावित विक्रय परिमाण एवं ''न लाभ, न हानि परिमाण'' की तुलना

(Estimated Sales Amount and Break Even Point under different Marketing Mixes)

मिश्रण क्रम संख्या	विपणन मिश्रण (Marketing Mix)			न लाभ न हानि परिमाण	संभावित परिमाण	न लाभ हानि न हानि परिमाण पर संभावित परिमाण का अधिक्य	लाभ Z* रू.
	मूल्य –P रु.	विज्ञापन –A रु.	वितरण –D रु.	Qb	Q	Q-Qb	
1.	160	1,00,000	1,00,000	9667	12400	2733	163980
2.	160	1,00,000	5,00,000	16333	18500	2167	130020
3.	160	5,00,000	1,00,000	16333	15100	–1233	–73,980
4.	160	5,00,000	5,00,000	23000	22600	–400	–24000
5.	240	1,00,000	1,00,000	4143	5500	1357	1,89,980
6.	240	1,00,000	5,00,000	7000	8200	1200	1,68000
7.	240	5,00,000	1,00,000	7000	6700	–300	–42000
8.	240	5,00,000	5,00,000	9857	10,000	143	20,020

*Z = (P–V) (Q–Qb) जिसमें V = इकाई परिवर्तनशील लागत

मिश्रण 1 के अन्तर्गत कंपनी को न लाभ न हानि परिमाण के रूप में 9,667 टेप रिकार्डर बेचने पड़ते हैं, मिश्रण 5 के अन्तर्गत केवल 4,143, मिश्रण 4 के अन्तर्गत उसको 23,000 टेप रिकार्डर न लाभ न हानि परिमाण के रूप में बेचने होते हैं। इस प्रकार हम देखते हैं कि किस विपणन मिश्रण को अपनाया जाता है। इसका निर्णय ''न लाभ, न हानि परिमाण'' को बहुत प्रभावित करता है। यह एक ऐसा तथ्य है जिसकी हमें उपेक्षा नहीं करनी चाहिए।

दूसरे, विभिन्न विपणन मिश्रण न केवल विभिन्न ''न लाभ,न हानि परिमाणों'' को सूचित करते हैं, वरन् यह भी प्रकट करते हैं कि ''न लाभ न हानि परिमाण'' से हुए ''विचलनों'' (Deviations) के प्रति लाभ की संवेदनशीलता भिन्न–भिन्न होती है। उदाहरणार्थ, मिश्रण 8 का ''ऊँचे मूल्य, ऊँचे प्रवर्तन व्यय'' वाला स्वभाव (The High Price, High Promotion Character) न लाभ न हानि परिमाण के स्तर से हुए विचलनों के लिए अधिक हानि (अथवा अधिक लाभ) की संभावना प्रस्तुत करता है। मिश्रण 8 के अन्तर्गत स्थिर लागतें अधिक ऊंची हैं, किन्तु एक बार ये वसूल हो जाएं तो फिर अतिरिक्त परिमाण ऊंचे मूल्य के कारण बहुत 'आय–उत्पादक'' होगा।

मांग एवं लाभ विश्लेषण = आर्थिक लाभदायकता

(Demand & Profit Analysis = Economic Viability)

अनुकूलतम विपणन अन्तर्लय की पहचान के लिए ''न लाभ न हानि विश्लेषण'' एक अपर्याप्त तकनीक है। यह इस बात को सूचित करती है कि क्या परिमाण प्राप्त करने हैं। किन्तु क्या परिमाण प्राप्त होने की संभावना है, इसकी सूचना नहीं देती। यहां यह पता नहीं चलता है कि विपणन मिश्रण के विभिन्न घटक विक्रय के वास्तविक परिमाण को किस तरह प्रभावित करेंगे।

आदर्शतः कंपनी को आवश्यकता है एक मांग–समीकरण की जिसमें बिक्री को मूल्य, विज्ञापन, वितरण आदि घटकों के फलन के रूप में दिखाया गया हो। स्थापित उत्पादों के लिए ऐतिहासिक आंकड़े उपलब्ध होते हुए भी जब ऐसे समीकरण बनाने कठिन होते हैं, तब नये उत्पाद विचारों के लिए समीकरण बनाना तो असंभव सा है, क्योंकि यहां ऐतिहासिक आंकड़े उपलब्ध होने का प्रश्न ही नहीं है। फिर भी जो विपणन सूचना इकट्ठी हो सके उसी के आधार पर कार्यवाहकों से प्रत्येक विपणन मिश्रण के लिए सबसे अधिक संभावित विक्रय परिमाण (Q) का अनुमान लगाने के लिए कहना चाहिए। उपरोक्त तालिका के पांचवें खाने में इस प्रकार के अनुमानित विक्रय परिमाण दिखाये गये

हैं। अनुमान लगाते समय ध्यान रखिए कि ''विक्रय परिमाण'' मूल्य की विपरीत दिशा में और विज्ञापन व वितरण–व्ययों की समान दिशा में चलता है। किन्तु प्रवर्तन वद्धि के फलस्वरूप विक्रय परिमाण में घटती हुई दर से वद्धि होने की संभावना है।

अब हम प्रत्येक अंतर्लय के लिए संभावित परिमाण (Q) और ''न लाभ न हानि परिमाण'' (Qb) की तुलना कर सकते हैं। ऐसी तुलना से ज्ञात हुए विचलन (Deviation) तालिका के छठे खाने में प्रदर्शित किये गये हैं। सबसे अधिक अतिरिक्त परिमाण (Q-Qb) मिश्रण–1 के अन्तर्गत प्राप्त होता है। किन्तु अतिरिक्त परिमाण ही सर्वोत्तम मिश्रण का पर्याप्त सूचक नहीं है। अतिरिक्त परिमाण को इकाई मूल्य (P–V) से गुणा किया जाना चाहिए क्योंकि एक ऊँचे मूल्य वाला मिश्रण (जो कि छोटा अतिरिक्त परिमाण प्रदान करे) एक नीची कीमत वाले मिश्रण से (जो कि एक विशाल अतिरिक्त परिमाण प्रदान करे) श्रेष्ठ हो सकता है। इस प्रकार, प्रत्येक मिश्रण के लिए Z = (P–V) (Q–b) की गणना करनी होती है। और जो परिणाम (लाभ) निकले उन्हें तालिका के अंतिम खाने में दिखाएं (जैसा कि हमने उक्त उदाहरण में किया है) उस लाभ को जिसकी प्राप्ति विभिन्न विपणन मिश्रणों से होने की संभावना है द्वारा मापा गया है। मिश्रण 5 सर्वाधिक लाभ–संभावना रखता है। इस मिश्रण में इस बात का संकेत है कि उत्पाद को ऊंची कीमत पर थोड़े प्रवर्तन प्रयास के द्वारा बेचा जायेगा। यह नीति ऐसी दशा में अपनाई जाती है, जबकि कंपनी का इस बात का विश्वास हो कि उसके उत्पाद की बनत कुशलता से हुई है। और वह खुद–ब–खुद बिकेगा।

उल्लेखनीय है कि संभावित लाभ प्रोजेक्ट की वित्तीय आकर्षकता का एक अल्पकालीन मापक है। चूंकि इसने लागत, प्रतियोगिता, आर्थिक उतार–चढ़ाव आदि के संबंध में दीर्घकालीन प्रवत्तियों को विचार में नहीं लिया है, इसलिए यह एक दीर्घकालीन मापक नहीं हो सकता। फिर कंपनियों को भी अल्पकालीन संभावनाओं में विशेष रुचि होती है।

संक्षेप में, व्यावसायिक विश्लेषण अवस्था का उद्देश्य कंपनी के उद्देश्यों और प्रसाधनों से संगति रखने वाले विचारों को अंगीकार करते हुए संभावित जोखिम एवं लाभदायकता का सावधानी से विश्लेषण करना है। इस हेतु लागतों एवं बाजार के आकार व स्वभाव के विषय में विस्तत सूचना प्राप्त करनी होती है, इसलिए उत्पाद लक्षणों एवं विपणन मिश्रणों के विभिन्न विकल्पों के लिए अनुमान लगाने चाहिए। सर्वोत्तम बाजार मिश्रण के संभावित लाभ ही इस प्रश्न के निर्णय का आधार बनते हैं कि कंपनी को नये उत्पाद का विकास करना चाहिए या नहीं।

उत्पादों का प्रायोगिक निर्माण

(Experimental-Pilot Production of Product)

जो विचार व्यावसायिक दष्टिकोण से ठीक प्रकट हुए हैं उन्हें अब अनुसंधान और विकास–विभाग के हवाले किया जा सकता है। यह एक महत्वपूर्ण कदम है, क्योंकि (1) इसके द्वारा उत्पाद को एक ठोस यथार्थ या मूर्त रूप देने का पहला प्रयास किया जाता है। अभी तक, वह केवल एक विचार मात्र था अधिक से अधिक ड्राइंग के रूप में रहा होगा। (2) इसके लिए भारी विनियोग करना होता है, जो कि प्रारंभिक अवस्थाओं में किये गये व्ययों की तुलना में एक ''दैत्य'' के सदश्य है, एवं (3) इस कार्य से इस प्रश्न का जवाब मिलता है कि क्या विचार तकनीकी एवं वाणिज्यिक दष्टि से एक उपर्युक्त उत्पाद में परिणित किया जा सकता है। (यदि ऐसा नहीं किया जा सकता है, तो कंपनी ने अब तक जो विनियोग किया वह सब व्यर्थ हो गया है।)

उत्पाद विकास अवस्था में जो कार्यवाही की जायेगी वह उत्पाद की प्रकृति के अनुसार विभिन्न होगी। उदाहरणार्थ, निर्मित टिकाऊ माल दशा में इंजीनियरी परीक्षाओं का विशेष महत्व होगा, जबकि नाशवान उपभोक्ता माल की दशा में इनका मामूली महत्व होता है, अधिक महत्व है उपभोक्ता रुचि–परीक्षाओं का। उत्पाद के विकास हेतू जो विभिन्न क्रियायें करनी होंगी उन्हें आगे समझाया जाता है।

1. **आदर्श रूपों का विकास (Developing Prototypes):** निर्मित टिकाऊ माल की दशा में जो विचार व्यावसायिक विश्लेषण की अवस्था को पार कर चुका है उसे आदर्श रूपों के विकास हेतु इंन्जीनियरिंग विभाग को सौंप दिया जाता है। उद्देश्य एक ऐसे आदर्श रूप पर पहुंचना है जो कि कठिनाई मुक्त हो, मितव्ययिता से निर्मित किया जा सकता हो और ग्राहकों को लुभाने वाला हो। ऐसे आदर्श रूप पर पहुंचने के लिए अनेक विभिन्न रूपों पर विचार करना पड़ता है। तब कहीं एक संतोषप्रद रूप की प्राप्ति हो पाती है।

2. **उपभोक्ता रुचि परीक्षायें (Consumer Preference Testing):** एक नाशवान उपभोक्ता माल जैसा कि एक खाद्य उत्पाद की दशा में उत्पाद विकास की अवस्था में उपभोक्ता रुचि–परीक्षाओं की भूमिका प्रधान होती है। इनका उद्देश्य

है उपभोक्ताओं की दष्टि से विभिन्न उत्पाद लक्षणों के सर्वोत्तम चिताकर्षक संयोग पता लगाना। इंजीनियरी रूप परीक्षायें एक साधारण भूमिकायें निभाती है, और उनका उद्देश्य केवल यह सुनिश्चित करना है कि पसंद किये गये उत्पाद लक्षण उत्पाद के रूप में सुरक्षित एवं सप्रभाविक रूप से निर्मित हो जायें।

मुरब्बों का निर्माता उपभोक्ता रुचि परीक्षायें इसलिए लेता है ताकि उसे उत्पाद के मिठास का सर्वोत्तम स्तर पता चल जाए। प्रक्षालकों का निर्माता झाग के सजन का सर्वोत्तम स्तर पता लगाने और खाद्य सामग्री के पैकिंग के लिए रैपर बनाने वाला निर्माता इसकी सर्वोत्तम चौड़ाई मालूम करने के लिए उपभोक्ता रुचि परीक्षायें आयोजित करता है। इन सभी मामलों में निर्माता एक विशेष उत्पाद–लक्षण के विभिन्न स्तरों के लिए उपभोक्ताओं की रुचियों का वितरण जानने का प्रयत्न करता है और फिर ऐसी जानकारी उत्तम उत्पाद के विकास का आधार बन जाती है। उपभोक्ता रुचियों का वितरण मालूम करने के लिए विभिन्न ढंग अपनाये जाते हैं, जैसे–युग्म तुलनायें (Paired Comparisons) बहु गुणी छांट (Multiple Choice) एवं क्रम निर्धारण–विधि (Ranking Procedure)।

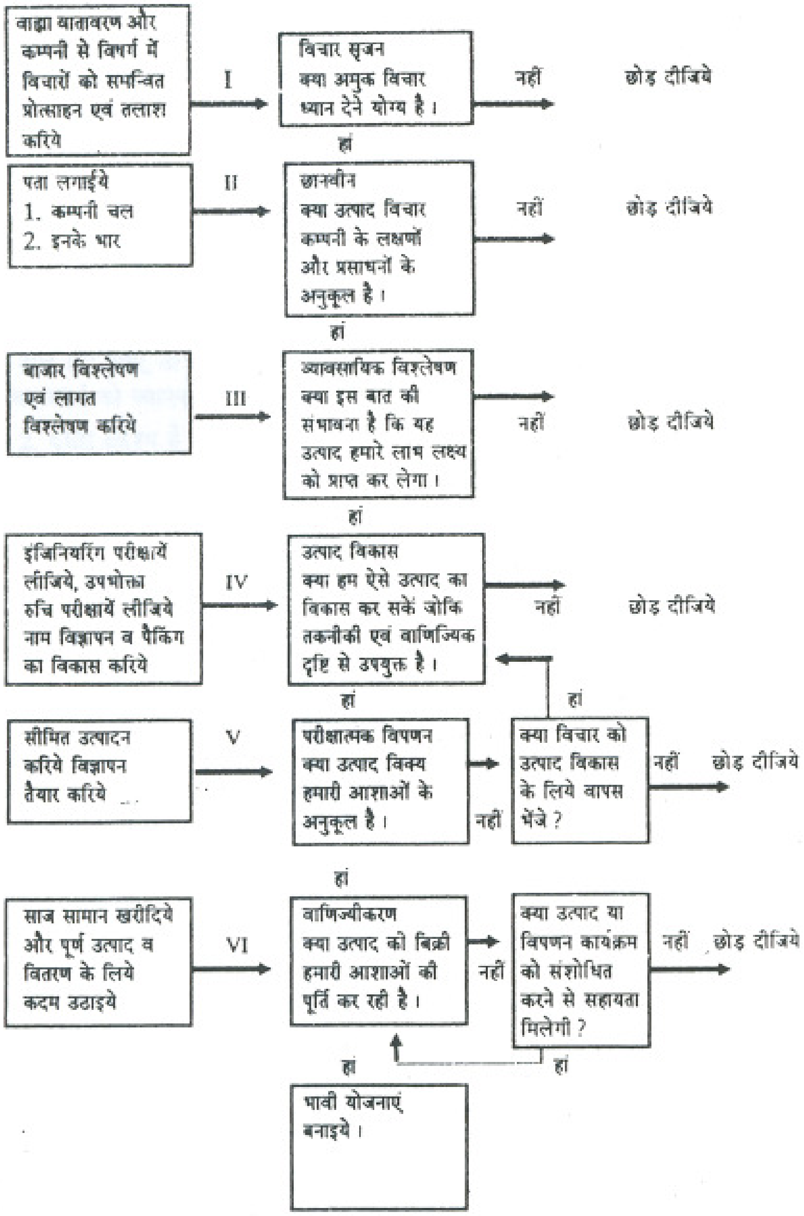

चित्र 7.5 नये उत्पाद के विकास से सम्बंधित निर्णय प्रक्रिया
(Decision Process relating to New Product Development)

एक विशेष उत्पाद–लक्षण के लिए रुचि वितरण (Preference Distribution) ज्ञात कर लेने के बाद फर्म को यह निर्णय करना होता है कि वह किस बाजार खंड में सबसे अधिक लाभदायकता के साथ सेवा कर सकती है। उसे ''बहुमत'' भ्रम (Majority Fallacy) से बचना चाहिए (इसका उल्लेख हम बाजार – विभक्तिकरण के सम्बन्ध में कर चुके हैं) चूंकि अनेक प्रतियोगी फर्में शायद बाजार के ''बड़े'' खंड में विक्रय कर रही होती हैं, इसलिए प्रस्तुत कंपनी अपेक्षाकृत उपेक्षित खंडों पर ध्यान दे सकती है। जो भी हो, विभिन्न खंडों में संभावित बिक्री और इनकी सेवा करने की लागत का अनुमान लगाकर कंपनी यह निश्चय कर सकती है कि कौन सा बाजार खंड सबसे लाभप्रद है ओर तदनुसार ही अपने उत्पाद का विकास कर सकती है।

3. **पैकिंग आदि:** उत्पाद–विकास में अन्य क्रियाएं भी करनी होती हैं, जैसे–पैकेजिंग डिजाइन, विज्ञापन–कार्यक्रम का निर्माण, ब्रांड–नाम का चुनाव, पेटेन्ट्स और कॉपी राइट्स के लिए आवेदन करना, आदि। इन सबकी तैयारी आसन्न (या सन्निकट) परीक्षा के पूर्व ही कर लेनी चाहिए। इस विषय में अगले अध्यायों में सविस्तार प्रकाश डाला गया है।

परीक्षात्मक-विपणन

(Test Marketing)

परीक्षात्मक विपणन ही वह अवस्था है जिसमें संपूर्ण उत्पाद और विपणन कार्यक्रम पहली बार अल्प संख्या में सावधानी से चुने गये वास्तविक विक्रय वातावरण में आजमाया जाता है। किन्तु सभी कंपनियां परीक्षात्मक विपणन का मार्ग नहीं चुनती हैं। परीक्षात्मक विपणन करने या न करने का निर्णय इस बात पर निर्भर होता है कि नये बाजार में निर्माता को कितना विश्वास है। मान लीजिए कि एक विशेष मामले में अनुमान लगाया गया है कि परीक्षात्मक विपणन पर 1,00,000 रु० खर्च होंगे। मान लीजिए (कंपनी का अनुमान है कि) यदि उत्पाद असफल रहे, तो कंपनी को अधिकतम 20 लाख रु० की हानि हो सकती है। यदि प्रबन्धक यह समझे कि इस उत्पाद के असफल होने की संभावना 100 में एक है तो तत्काल ही संपूर्ण बाजार के लिए प्रयास करने से संभावित हानि 20,000 रु० होगी (= 20,00,000 x 1/100) होगी जो कि परीक्षात्मक विपणन अपनाने पर कंपनी को होने वाली 1,00,000 रु० की निश्चित हानि का 1/5 है। यदि प्रबंधकों को यह जंचे कि सफलता के आसार केवल 50% हैं, तो परीक्षात्मक विपणन के लिए 1,00,000 रु० का खर्च उठाना उचित होगा, क्योंकि कंपनी एक अधिक बड़ी राशि में अपने हित की रक्षा के लिए एक छोटी राशि ही खर्च करती है। इस प्रकार, परीक्षात्मक विपणन एक प्रकार से जोखिम नियंत्रण का कार्य करता है।

परीक्षात्मक–विपणन का प्रयोग औद्योगिक वस्तु निर्माताओं की अपेक्षा उपभोक्ता वस्तु निर्माताओं द्वारा अधिक किया जाता है, क्योंकि औद्योगिक वस्तु निर्माताओं को अपने उत्पाद के प्रति क्रेताओं की प्रतिक्रिया अनौपचारिक ढंगों से ही पता चल जाया करती है। उदाहरणार्थ, जब एक औद्योगिक फर्म किसी नये उत्पाद का विकास करती है तो उसके विक्रय प्रतिनिधि इसे (नये उत्पाद को) संभावित ग्राहकों के एक प्रतिनिधि समूह के पास ले जाते हैं, ताकि इनकी प्रतिक्रियाएं मालूम हो सकें। बहुधा वे वार्तालाप के दौरान ऐसे विचार और सुझाव पा जाते हैं कि जो फिर कंपनी को उत्पाद संबंधी उपयुक्त संशोधन करने में समर्थ बनाते हैं। जब कंपनी इस बात से संतुष्ट हो जाए कि पर्याप्त संख्या में संभावित ग्राहक उत्पाद को नवीनतम रूप में पसंद करेंगे, तो कंपनी उत्पाद को अपने सचित्र सूचीपत्र में सम्मिलित कर लेती है और उसके व्यापक विक्रय के लिए तैयारी करती है। इस प्रकार, औद्योगिक क्षेत्रों में परीक्षात्मक विपणन एक ''बाजार–जांच'' (Market Probe) के तुल्य होता है।

किन्तु नये उपभोक्ता–उत्पादों का परीक्षात्मक विपणन कहीं अधिक संगठित और समारोहपूर्ण होता है। इस पर काफी व्यय होता है इसके अंतर्गत 3 से 6 विभिन्न शहरों को चुना जाता है और 6 सप्ताह से लेकर 2 वर्ष तक (जो पुनः क्रय–दर की स्थापना के लिए आवश्यक प्रतीत हो) परीक्षा चलती है।

परीक्षात्मक विपणन के लाभ या कारण

नये उत्पाद के परीक्षात्मक विपणन द्वारा कंपनी को कई लाभ होने की आशा की जाती है, जैसे–

1. परीक्षा का प्राथमिक उद्देश्य (Primary Motive) संभावित उत्पाद विक्रय के बारे में ज्ञान बढ़ाना है। यदि परीक्षा में बाजारों में उत्पाद की बिक्री ''न लाभ न हानि परिमाण'' से भी नीचे गिर जाए, तो कंपनी सावधान हो जायेगी। इस

प्रकार एक छोटी धनराशि व्यय करके वह स्वयं को व्यापक उत्पाद असफलता के भारी व्यय और परेशानी से बचा लेती है।

2. दूसरा उद्देश्य है वैकल्पिक विपणन–योजनाओं का पूर्व परीक्षण करना। उदाहरणार्थ, सन् 1960 में कॉलगेट पामओलिव कंपनी ने अपने नये साबुन का परीक्षात्मक विपणन करने हेतु चार में से प्रत्येक शहर में एक भिन्न विपणन–अपील इस्तेमाल की थी। ये चार प्रकार की अपीलें निम्नांकित थीः

   (अ) औसत मात्रा में विज्ञापन, साथ में निःशुल्क नमूनों का द्वार वितरण।

   (ब) भारी विज्ञापन, साथ में नमूने भी।

   (स) औसत मात्रा में विज्ञापन, साथ में डाक से भेजे गये शोधनीय कूपन, एवं

   (द) औसत मात्रा में विज्ञापन, बिना किसी विशेष परिचयनात्मक प्रस्ताव के।

   उक्त परीक्षात्मक विपणन से कॉलगेट कंपनी को यह पता चला कि तीसरे विकल्प के फलस्वरूप सर्वोत्तम बिक्री हुई है। इस प्रकार उसे विपणन मिश्रणों के सापेक्षिक गुण दोषों के बारे में उपयोगी जानकारी मिली।

3. कुछ अन्य लाभ भी होते हैं, जैसे–

   (अ) कभी–कभी कंपनी को उत्पाद के ऐसे दोष का पता चल जाता है, जो कि उत्पाद विकास अवस्था में उसके ध्यान से चूक गया था।

   (ब) वितरण स्तर की समस्याओं के बारे में कंपनी को महत्वपूर्ण सुराग मिल सकते हैं। उदाहरणार्थ उसके सेल्समैन यह जान सकते हैं कि मध्यजन नये उत्पाद के प्रति कैसी प्रतिक्रियायें दिखलाते हैं तथा कैसे उसे अंतिम ग्राहकों को बेचते हैं। यही नहीं, बाजार में संगठित विभिन्न समूहों के बारे में भी कंपनी को अधिक जानकारी प्राप्त हो जाती है। फलस्वरूप कंपनी के लिए अपने विपणन कार्यक्रम के विभिन्न पहलुओं को अधिक सही फोकस में लाना संभव हो जाता है।

परीक्षात्मक विपणन की क्रियाविधि

यदि उक्त लाभों को प्राप्त करना है, तो कंपनी को चाहिए कि परीक्षात्मक विपणन योजनायें बनाने में यथाशक्ति उत्तम से उत्तम सलाह प्राप्त करें। परीक्षात्मक विपणन शीघ्रता से एक विज्ञान का रूप ग्रहण करता जा रहा है अथवा कम से कम वह एक अतिविकसित कला तो है ही। जिन बड़ी कंपनियों ने बहुत अनुभव संचित कर लिया है, वे प्रायः अपनी परीक्षा योजनायें खुद ही बना लेती हैं, किन्तु कम अनुभवी कंपनियां सामान्यतः विज्ञापन एजेन्सियों, विशिष्टीकृत सलाहकारों अथवा बड़ी विपणन सेवाओं (जैसे कि अमेरिका में ए.सी.नीलसेन कंपनी) पर निर्भर रहा करती है। परीक्षात्मक विपणन के लिए अपनाई जाने वाली क्रियाविधि संक्षेप में निम्नप्रकार हैः

1. **परीक्षा के लिए चुने जाने वाले शहरों की संख्या का निश्चय करनाः** विभिन्न बाजार परीक्षणों में प्रयोग के लिए चुने गये शहरों की संख्या बहुत भिन्न देखी गई है। परीक्षा के लिए कितने शहरों का चुनाव करना चाहिए, इस संबंध में दो बुनियादी विचारणायें हैंः–प्रतिरूपता एवं लागत। दुर्भाग्यवश ये विचारणायें एक दूसरे के विपरीत चलती हैं। जैसे जैसे प्रतिरूप आकार बढ़ेगा, परिणाम अधिक प्रतिनिधिक होते जायेंगे, क्योंकि अतिरिक्त शहर कंपनी को अधिक अच्छे प्रयोगात्मक नियंत्रण स्थापित करने, अधिक वैकल्पिक सम्मिश्रणों (अन्तर्लयों) की परीक्षा करने और क्षेत्रीय भिन्नताओं के लिए अधिक सावधानी से खोज करने में समर्थ बनाते हैं। किन्तु शहरों की संख्या के साथ–साथ व्यवस्था और अंकेक्षण के व्यय भी बढ़ते जाते हैं। अतः यह देखना चाहिए कि परीक्षा में एक अतिरिक्त शहर को शामिल करने से जो लाभ होगा वह उस पर बढ़ने वाले व्यय की तुलना में अधिक हो। सामान्यतः व्यापक विक्रय द्वारा जितनी बड़ी हानि की संभावना हो वैकल्पिक विपणन योजनाओं की जितनी बड़ी संख्या हो, क्षेत्रीय–विभिन्नताओं की जितनी अधिक संख्या हो, अनिश्चितता जितनी अधिक हो और प्रतियोगियों द्वारा परीक्षा में जितना अधिक विघ्न पड़ने की संभावना हो, परीक्षा हेतु चुने जाने वाले शहरों की संख्या भी उतना ही बड़ी होनी चाहिए।

2. **परीक्षा के लिए चुने किन शहरों को चुना जाए?** भारत में कोई एक शहर अकेला ही सारे देश या राष्ट्र का प्रतिनिधित्व नहीं कर सकता, किन्तु शहर ऐसे हैं जो संपूर्ण राष्ट्रीय विशेषताओं को अन्य शहरों की अपेक्षा अधिक अच्छी

तरह प्रतिबिम्बित कर सकते हैं। अतः ऐसे शहर परीक्षात्मक विपणनों के लिए बहुत लोकप्रिय हो गये हैं जैसे–देहली, बंबई, कानपुर आदि। परीक्षा हेतु चुने जाने वाले शहर किस प्रकार के लक्षण वाले हों, इसे प्रत्येक कंपनी को स्वयं ही परिभाषित करना चाहिए। प्रायः चुनाव में निम्नांकित लक्षणों को ध्यान में रखना उपयोगी हैः–

(i) कई उद्योगों की विद्यमानता,

(ii) औसत प्रतियोगिता,

(iii) पर्याप्त संख्या में श्रंखला भंडारों की उपस्थिति,

(iv) जनसंख्या की आलोचनात्मक प्रवत्ति,

(v) उपर्युक्त साधन रखने वाले नागरिक,

प्रत्येक उत्पाद के लिए साधारणतः अलग अलग लक्षणों वाले शहर चुनने होते हैं।

3. **परीक्षा कब तक चलनी चाहिए?:** बाजार परीक्षायें कई महीने से लेकर कई वर्षों तक जारी देखी गई हैं। परीक्षाकाल का निर्णय परीक्षा की परिस्थितियों के अनुसार किया जाता है। यूँ तो अनेक घटकों पर विचार किया जाता है, किन्तु निम्न तीन घटकों का विशेष ध्यान रखना चाहिएः औसत पुर्नःक्रय काल, प्रतिस्पर्धा संबंधी स्थिति और परीक्षात्मक विपणन लागत।

औसत पुनःक्रय काल (Average Repurchase Period) का तात्पर्य उस समय की अवधि से है जो कि क्रेता द्वारा उत्पाद को पुनः स्टाक करने से पूर्व साधारणतः व्यतीत होता है। नया उत्पाद एक निशुल्क नमूने के रूप में आ सकता है अथवा आवेगवश खरीदा जा सकता है या उसके क्रय के लिए विशेष सौदा किया जा सकता है। इसका प्रयोग कर लेने के बाद ग्राहक से उसकी राय पूछना उसकी अगली खरीद के लिए प्रतीक्षा करने का उचित विकल्प नहीं है। एक ही पुर्नःक्रय अवधि छोटी है उनके संबंध में तो कोई समस्या नहीं है लेकिन लंबी पुनःक्रय पर्यवेक्षण कठिनाई से पर्याप्त होता है। नये ब्रांड के एक बार के प्रयोग के बाद ग्राहक अपने पुराने ब्रांड को पुनः खरीद सकता है, ताकि दोनों की तुलना कर सके, अथवा दो चार बार खरीदने के बाद नये उत्पाद से असंतोष अनुभव करते हुए उसको छोड़ सकता है। अतः यह वांछनीय होगा कि अवलोकन कार्य कई पुनःक्रय अवधियों तक जारी रखा जाए। जिन वस्तुओं की पुनःक्रय अवधि छोटी है उनके संबंध में तो कोई समस्या नहीं है लेकिन लंबी पुनःक्रयअवधियों वाले नये उत्पादों के संबंध में कई पुनःक्रय अवधियों तक अवलोकन करने का निर्णय एक बड़ी समस्या बन जाता है, क्योंकि कंपनी को परीक्षा कार्य एक या दो वर्षों तक जारी रखना पड़ सकता है अथवा उसे क्रयोत्तर साक्षात्कार पर निर्भर रहना होगा।

दूसरा प्रभाव डालने वाला घटक है प्रतिस्पर्धा की दशा। एक कंपनी यह तो चाहेगी कि बाजार परीक्षा इतनी समयावधि तक जारी रखी जाये कि उपयोगी सूचना प्राप्त करना संभव हो सके, किन्तु इस समयावधि को वह इतना लंबा नहीं रखना चाहेगी, के इस बीच प्रतियोगी भी तैयार होकर बाजार में आ जायें। सही समयावधि पता लगाना सचमुच एक कठिन कार्य है।

तीसरा महत्वपूर्ण प्रभावकारी घटक, जो बाजार परीक्षा की कालावधि को निर्धारित करता है, परीक्षण पर आने वाली लागत है। परीक्षात्मक विपणन की कुल परीक्षा काल के साथ प्रत्यक्ष रूप से परिवर्तित होती है। कुल लागतों में विक्रय परिणामों का अंवेक्षण करने के शुल्क और परीक्षा की देखभाल के व्यय तो सम्मिलित रहते ही हैं, उत्पाद को शीघ्र ही प्रचलित न करने की अवसर लागतें भी सम्मिलित होती हैं।

परीक्षा के लिए चुने जाने वाले शहरों की संख्या के चुनाव में निर्णायक के सम्मुख जैसी दुविधा प्रस्तुत होती है वैसी ही दुविधा परीक्षाकाल नियत करने में होती है। परीक्षाकाल जितना लंबा रखा जायेगा, परीक्षा के परिणाम उतना ही अधिक सूचनाप्रद होंगे किन्तु साथ ही परीक्षण लागतें बढ़ जायेंगी।

4. **परीक्षा की अवधि में क्या सूचना इकट्ठी की जानी चाहिए?:** किसी बाजार परीक्षा के लिए योजनायें बनाते समय नियोजन को यह निर्णय करना चाहिए कि नये उत्पाद के गुण दोषों का मूल्यांकन करने हेतु क्या विक्रय एवं अन्य सूचना आवश्यक है। तत्पश्चात उसे इस सूचना के एकत्रीकरण के लिए कंपनी के विपणन अनुसंधान विभाग और बाह्य वाणिज्यिक सेवाओं से व्यवस्थायें करनी चाहिए। ये व्यवस्थायें निम्नांकित हैं–

(i) ***उत्पाद के लदान संबंधी आंकड़े:*** जब नये स्टाक के लिए व्यापारियों के आर्डर आते हैं, तो उनको उत्पाद का लदान किया जाता है। अतः साप्ताहिक लदान के आंकड़े फुटकर विक्रय की दर के विषय में कुछ सूचना उपलब्ध कर सकते हैं–

(ii) ***भण्डार अंकेक्षण (Store Audits):*** फुटकर बिक्री की वास्तविक गति से स्वयं को परिचित रखने के लिए कंपनी के लिए यह जरूरी होता है कि सामयिक भंडार अंकेक्षणों की, व्यवस्था करें। वह या तो किसी नियमित वाणिज्यिक सेवा से रिपोर्ट खरीद सकती है अथवा विशेष अंकेक्षण के लिए व्यवस्था कर सकती है। रिपोर्ट में प्रमुख प्रतिस्पर्धा ब्रांडों के लिए भण्डार विक्रयों और स्टाक मात्राओं संबंधी संक्षिप्त सूचना दी होती है। इस व्यवस्था का परीक्षात्मक विपणन के लिए एक सीमित उपयोग ही होता है, क्योंकि प्रथम तो यह अंकेक्षण हर दूसरे महीने या दो माही किया जाता है और रिपोर्ट कई हफ्तों बाद मिल पाती है। दूसरे, यह रिपोर्ट क्रेता विशेषताओं के बारे में कोई प्रकाश नहीं डालती जैसे कि यह नहीं बताती कि दोहराने वाले क्रेताओं की तुलना में नये क्रेताओं का अनुपात क्या है।

(iii) ***उपभोक्ता समितियां (Consumer Panels):*** जब नये उत्पाद को उपभोक्ता समितियों के सदस्यों द्वारा खरीदा जाता है, तो कभी–कभी क्रेता विशेषताओं संबंधी उपयोगी सूचना प्राप्त की जा सकती है। प्रत्येक सदस्य अपनी खरीद ब्रांड, कीमत, विशेष सुविधा आदि के बारे में साप्ताहिक सूचना भेजता है। इन आंकड़ों से कंपनी यह पता लगा सकती है कि उसके ब्रांड की कितनी बिक्री दोहराई जा रही है, किन क्षेत्रों में उसे ग्राहक मिल रहे हैं ओर किन में वह ग्राहक खो रही है, नये ब्रांड में किस प्रकार के ग्राहक सबसे अधिक रुचि दिखा रहे हैं, आदि आदि। इन सूचनाओं के आधार पर कंपनी बाजार में अपने भावी भविष्य का पूर्वानुमान लगा सकती हैं।

(iv) ***क्रेता सर्वेक्षण (Buyer Surveys):*** नये उत्पाद के प्रति क्रेता प्रवत्तियों और प्रतिक्रियाओं के बारे में प्रत्यक्ष सूचना प्राप्त करने हेतु कंपनी प्रतिनिधिस्वरूप कुछ नये ग्राहकों के नाम मंगाकर उनसे साक्षात्कार के लिए व्यवस्था कर सकती है। इन साक्षात्कारों के द्वारा क्रेता विशेषताओं तथा उनकी प्रचलित उत्पाद के विषय में सामान्य एवं नवीन उत्पाद के विषय में विशिष्ट प्रतिक्रियायें ज्ञात की जा सकती हैं।

तात्पर्य यह है कि कंपनी जितना अधिक संग्रह कर लेगी, सही निर्णय लेने के अवसर भी उतने ही बढ़ जायेंगे ओर साथ ही लागत भी बढ़ जाती है। अतः सूचना की सही मात्रा और किस्म का निर्णय परीक्षात्मक विपणन के उद्देश्यों, बाजार जोखिमों और सूचना लागतों के आधार पर किया जाना चाहिए।

5. **परीक्षा के बाद क्या कार्य करने चाहिए?:** जब परीक्षात्मक विपणन पूर्ण हो जाए तब फिर अंतिम निर्णय लेना होता है। बाजार परीक्षा के परिणाम के संदर्भ में हमें कई विकल्प उपलब्ध होते हैं, जो कि चित्र 7.6 में प्रदर्शित किये गये हैं।

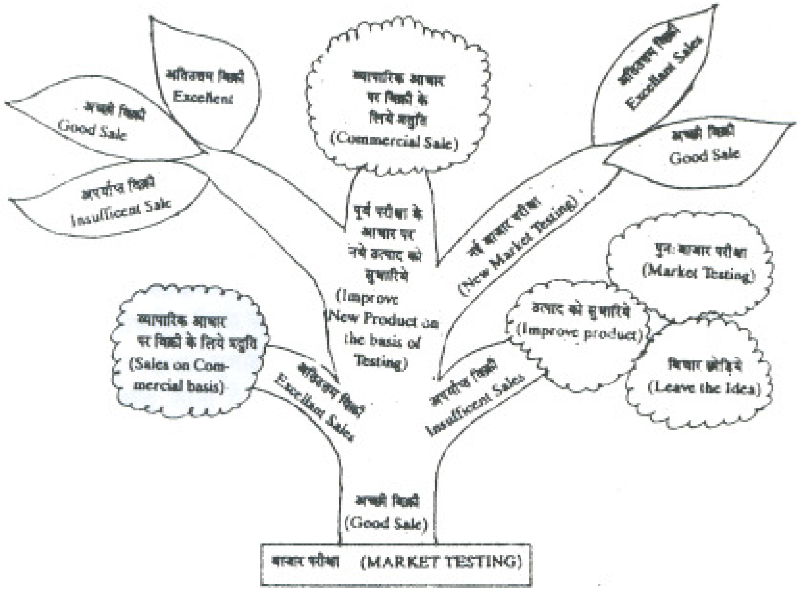

चित्र 7.6: निर्णय वक्ष-बाजार परीक्षा के बाद वैकल्पिक निर्णय
(Decision-Tree-Decision After Market Testing)

यदि बाजार परीक्षा से पता चले कि बिक्री अत्युत्तम है, तो हम सीधे नये उत्पाद को व्यापारिक रूप से प्रस्तुत करने का निर्णय ले सकते हैं।

यदि बाजार परीक्षा से पता चले कि बिक्री काफी अच्छी है, तो हम या तो एक नई बाजार परीक्षा के लिए व्यवस्था का निर्णय ले सकते हैं। अथवा पूर्व बाजार परीक्षा से जिन सुधारों की आवश्यकता प्रतीत हुई हो उन्हें करके नये उत्पाद को व्यापारिक रूप से प्रस्तुत करने का निर्णय ले सकते हैं, अथवा यह भी हो सकता है कि हम उत्पाद में सुधार करके, फिर दूसरी बाजार परीक्षा लेने का निर्णय करें। किन्तु हमें याद रखना चाहिए कि दूसरी परीक्षा लेने का मतलब है दुबारा द्रव्य खर्च होना। अतः दूसरी परीक्षा लेने के संभावित लाभों और अतिरिक्त खर्चों की सावधानी से तुलना करनी चाहिए, अथवा एक विकल्प यह भी हो सकता है कि नये उत्पाद संबंधी विचार को सर्वथा ही छोड़ दें, क्योंकि बिक्री केवल काफी अच्छी है (बहुत अच्छी या अत्युत्तम नहीं) निर्णय लेना अवश्य चाहिए, चाहे वह कैसा भी हो। निर्णय को स्थगित करना ठीक नहीं होता है जबकि दुर्भाग्यवश व्यवहार में ऐसा ही होता है। प्रायः हम अंतिम निर्णय लेने में संकोच करते हैं और संकोच के कारण ही अधिकाधिक सूचना पाने पर बल देने लगते हैं। फलस्वरूप जो व्यय हो चुका है उसके व्यर्थ जाने की आशंका रहती है।

यदि परीक्षात्मक विपणन से पता चले कि बिक्री अपर्याप्त या असंतोषजनक है, तो हम नये उत्पाद का विचार सर्वथा त्याग सकते हैं। अथवा उसमें बाजार परीक्षा द्वारा इंगित सुधार करके पुनः बाजार परीक्षा लेने का निर्णय कर सकते हैं। इसके विपरीत हम, ऐसा भी सोच सकते हैं कि जो बाजार परीक्षा ली गई थी वह उपर्युक्त या विश्वसनीय नहीं थी और इसलिए परीक्षा क्षेत्र का दुबारा रूपावण करना व नई बाजार परीक्षा लेना आवश्यक है।

जब नये उत्पाद के समारंभ का निर्णय हो जाए, तो उपर्युक्त विपणन स्ट्रेटेजी का निर्णय करना होगा। विपणन स्ट्रेटेजी संबंधी निर्णय बाजार परीक्षा से प्राप्त सूचना पर आधारित होना चाहिए।

6. **विपणन (Marketing):** उत्पाद को वाणिज्यिक रूप से प्रस्तुत करने में काफी काम करना होता है। यह एक महत्वपूर्ण प्रश्न है। अन्य बातों के साथ–साथ कंपनी को उत्पादन के समस्त लक्षणों और पैकेज को अंतिम रूप देना होता है, नये साज सामान व अन्य सुविधाएं प्राप्त करने में धन का विनियोग करना पड़ता है, ताकि बड़े पैमाने पर उत्पादन संभव हो सके। विक्रय कर्मचारियों की सभाओं का आयोजन करना पड़ता है और विज्ञापन एवं संवर्द्धन संबंधी पूर्ण कार्यक्रम बनाना होता है। इन सब कार्यों में व्यय तेजी से किये जाते हैं और इनकी राशि के सम्मुख अब तक के व्ययों की राशि तुच्छ लगती है। इस व्यय के लिए धन जुटाने हेतु प्रायः कंपनी को मुद्रा बाजार की शरण लेनी पड़ती है।

सामान्यतः उत्पाद राष्ट्रव्यापी स्तर पर एक ही बार में प्रस्तुत नहीं किया जाता, वरन् वह पहले मुख्य बाजारों में प्रस्तुत किया जाता है और फिर शनैः शनैः द्वितीयात्मक एवं ततीयक बाजारों में। अन्य शब्दों में, नियोजित बाजार विस्तार की नीति अपनाई जाती है। नियोजित बाजार विस्तार की गति क्या होगी यह कई घटकों पर निर्भर है। यदि परीक्षात्मक विपणन के परिणाम बहुत उत्साहप्रद हैं और यह प्रतीत होता है कि उत्पाद खूब मुद्रा उपार्जन करेगा तो निसंदेह कंपनी उत्पाद को एक क्रेश आधार पर प्रस्तुत करेगी। यदि इस बात की संभावना है कि प्रतियोगी लोग उत्पाद की नकल जल्द ही कर लेंगे तो क्रेश कार्यक्रम के अनुसार प्रस्तुति के लिए वह अधिक सचेष्ट हो जायेगी। किन्तु कंपनी अपने साधनों द्वारा निर्धारित गति से अधिक तेज नहीं बढ़ सकेगी। फिर यह भी प्रश्न है कि वह अपनी उत्पादन सुविधाओं का विस्तार कितनी तेजी से कर सकती है और अपने विक्रय कर्मचारियों को कितनी जल्दी प्रशिक्षित कर सकती है। इस बात की भी समस्या है कि वांछित दर से बाजार विस्तार के लिए पर्याप्त पूंजी की व्यवस्था करना संभव होगा या नहीं।

जिन कंपनियों को अपने नये उत्पाद में पूर्ण विश्वास नहीं है वे बाजारों में धीमी गति से प्रवेश करना चाहेंगी। ऐसा करते हुए वे अपनी हानि को सीमित करने के लिए लाभ सीमित रखने की नीति का ही पालन करती है।

चाहे कंपनी अपना नया उत्पाद क्रमशः प्रस्तुत करे अथवा सीधे राष्ट्रीय स्तर पर, दोनों ही दशाओं में यह आवश्यक है कि वह उत्पाद के वाणिज्यिक प्रस्तुतीकरण के लिए समय तालिका सावधानी से बनायें। वाणिज्यिकरण अवस्था में जो सैकड़ों क्रियाएं की जाती हैं उनके सहज समन्वय और प्रकमणन के लिए कुछ उन्नत नियोजन एवं समय अनुसूचियन तकनीकों को प्रयोग करना आवश्यक होता है।

जीवन चक्र की प्रारंभिक एवं पश्चाद्वर्ती अवस्थाओं से होकर नये उत्पाद को आगे बढ़ाते रहने के उद्देश्य से मार्गदर्शन हेतु कंपनी को आवश्यक नीति निर्णय लेने होंगे। समय–समय पर इन नीतियों में परिवर्तन करते रहना होगा। ताकि बाजार हाथ से न निकलने पाये।

उत्पाद सुधार

(Product Improvement)

उत्पाद सुधार या परिवर्तन इच्छानुसार भौतिक गुण या वस्तु के संवेष्टन में परिवर्तन है। जब उत्पाद के विक्रय में कमी आती है या वह वस्तु जीवन चक्र की परिपक्वता की अवस्था में पहुंचती है तब उत्पाद सुधार अधिक आवश्यक होता है। कुछ वस्तुओं के संबंध में, जैसे रासायनिक और कच्ची सामग्री में किसी भी प्रकार के परिवर्तन का महत्व नहीं है। लेकिन कई वस्तुओं में ठोस परिवर्तन और उसके भौतिक गुणों में सुधार की क्षमता होती है, दो महत्वपूर्ण घटक हैं, जो निर्माताओं को उसकी वस्तु सुधारने के लिए मजबूर करते हैं।

1. नई तकनीकी विकास (New Technology), और
2. प्रतिस्पर्धात्मक आवश्यकता (Competitive Necessity)

इस प्रकार तमाम निर्माताओं को तकनीकी परिवर्तन तथा प्रतिस्पर्धियों द्वारा वस्तु सुधार का सामूहिक पुनरावलोकन करना पड़ता है। वे यह भी विचार करते हैं कि उत्पाद परिवर्तन से उनके व्यापार में लाभ होगा या नहीं।

उत्पाद में कुछ सामान्य भौतिक गुण होते हैं जिन्हें परिवर्तित किया जाता है। जैसे सामग्री, रंग आकार, आकृति, स्वाद कार्य की विशेषता, ढंग आदि।

सामान्यतः उत्पाद सुधार के लिए निर्माता द्वारा तीन प्रकार की वस्तु सुधार मोर्चाबन्दी का उपयोग किया जाता है। यह मोर्चाबन्दी की किस्म, ढंग और आकृति में सुधार है।

उत्पाद सुधार का उद्देश्य उत्तम सामग्री मशीन से वस्तु की सापेक्षिक वद्धि और टिकाऊपन में वद्धि करना है। ढंग में परिवर्तन करने का उद्देश्य सौंदर्य अपील को कार्य अपील के अनुसार करना है। मोटरकार, स्कूटर, साइकल में वस्तु सुधार अधिकतया कार्य सुधार की अपेक्षा ढंग और दिखावट में होता है। भोजन की वस्तुओं में जहां सुधार संभव नहीं होता वहां संवेष्टन ढंग में सुधार किया जाता है।

गुण (लक्षण) आकृति में सुधार करने का उद्देश्य

वास्तविक या इच्छुक उपभोक्ताओं को दिए गए लाभ को बढ़ाना है एवं लाभों में वद्धि करना है। जैसे अधिक आराम देना, सुरक्षा, क्षमता या वस्तु बदलने की व्यवस्था करना। वस्तु सुधार ग्राहकों के दिमाग में वस्तु की नई धारणा उत्पन्न करने के लिए किया जाता है। और इसलिए अधिकांश तरक्की की हुई वस्तुओं के लिए न्यू शब्द का प्रयोग किया जाता है। जिससे प्रभावशाली विज्ञापन को सहायता मिलती है। जैसे न्यू बिनाका टाप, न्यू सुपर सर्फ, प्रिंटिंग रोटरी मशीन, कंप्यूटर्स गाइडेड मशीनें, सिथेंटिक कपड़ों की उत्पादन तकनीकियां।

उत्पाद विकास एवं उपभोक्ता अंगीकरण
(Product Development and Consumer Adoption)

उपभोक्ता अंगीकरण प्रक्रिया

(The Consumer Adoption Procewss)

उपभोक्ता अंगीकरण प्रक्रिया वहां से शुरू होती है जहां कि कंपनी का उत्पाद विकास कार्य खत्म होता है। इसका तात्पर्य उस प्रक्रिया से है जिसके द्वारा संभावित ग्राहक नये उत्पाद के बारे में जानने लगते हैं, उसे आजमाते हैं और फिर अन्त में उत्पाद को या तो अंगीकार कर लेते हैं अथवा अस्वीकार।[1] एक निर्माता को इस अंगीकरण प्रक्रिया का ज्ञान होना आवश्यक है, ताकि

1. "It deals with the process by which potential customers come to learn about the new product, try it and eventually adopt or reject it." – Philip Kotler, Marketing Management, p. 342

वह जन चेतना और आजमायशी प्रयोग का मार्ग शीघ्र ही बना सके। जबकि उपभोक्ता अंगीकरण प्रक्रिया का संबंध नये उत्पाद के निर्माता से है, तब उपभोक्ता निष्ठा प्रक्रिया का संबंध स्थापित उत्पाद के निर्माता से होता है। अतः दोनों में महत्वपूर्ण अन्तर है।

1. **नवाचार की विभाज्यता (Innovation's Divisibility):** नवाचार की विभाज्यता अंगीकरण–दर को बढ़ाने में सहायक होती है। प्रारम्भिक अंगीकरण करने वालों की तुलना में विलम्ब से अंगीकार करने वालों की अधिक विभाज्यता की आवश्यकता पड़ सकती है, क्योंकि वे अधिक जोखिम लेते हैं।

2. **नवाचार की संप्रेषणशीलता (Innovation's Communicability):** जो नवाचार दूसरों पर प्रदर्शित किये जा सकते हैं उनका प्रसार समाज में जल्दी हो जाता है।

   उक्त विशेषतायें उत्पाद के डिजाइन, सम्बर्द्धन और विपणन दष्टियों से भी महत्वपूर्ण हैं। फर्म का नये उत्पाद की विशेषताओं पर नियंत्रण होता है, किन्तु केवल कुछ सीमाओं के अन्तर्गत। उत्पाद के डिजाइन के लिए उत्पाद विशेषताओं का मार्गदर्शन यह है कि फर्म को एक ऐसे उत्पाद का सजन करना चाहिए जिसमें उस उत्पाद पर जिसका प्रतिस्थापन किया जा रहा है अधिकतम सापेक्षिक लाभ हो, अंगीकार करने वालों के आदर्शों के साथ अधिकतम अनुरूपता हो एवं न्यूनतम जटिलता हो। दुर्भाग्यवश ये विशेषतायें बहुधा एक दूसरे के विपरीत कार्यशील होती हैं, जैसे मिकेनिकल ईक्विपमेंट को अधिक परिवर्तनक्षम बनाया जा सकता है किन्तु ऐसा करने में उसकी जटिलता बढ़ जाती है।

अध्याय-8

उत्पाद पहचान

(Product Identification)

भिन्न–भिन्न निर्माताओं द्वारा निर्मित वस्तुएं एक ही आकार–प्रकार, गुण, रंग–रूप एवं मूल्य की होती हैं तो प्रत्येक निर्माता यह चाहता है कि उसकी वस्तु पर कोई छाप, लेबिल, चिह्न या इसी प्रकार की क्रिया की जाये जिससे कि उपभोक्ता उस छाप, चिह्न या लेबिल को देखकर उस वस्तु को आसानी से पहचान सके। ऐसे चिन्हांकन का कार्य ब्राण्डिंग; (Branding), व्यापार चिन्ह (Trade Mark), पैकेजिंग (Packaging), तथा लेबिलिंग (Labelling) क्रियाओं द्वारा पूरा किया जाता है। उत्पाद–पहचान की इस प्रक्रिया को ही 'उत्पाद पहचान' (Product-Identification) कहा जाता है।

ब्राण्डिंग और ट्रेडमार्क (Branding & Trade Mark)—आधुनिक समय में लगभग सभी प्रकार की वस्तुओं के लिए ब्राण्ड का प्रयोग किया जाता है—

ब्राण्ड का मुख्य उद्देश्य एक पहचान (Identification) निश्चित करना होता है। जो वस्तु क्रेताओं को सन्तुष्ट कर चुकी है, उस वस्तु की क्रेता उसी पहचान चिन्ह के आधार पर मांग कर सकें और उत्पादनकर्त्ता उस मांग को पूरी कर सके।
ब्राण्ड व ट्रेडमार्क के सम्बन्ध में विभिन्न विद्वानों ने भिन्न–भिन्न परिभाषाएं दी हैं। इस सम्बन्ध में कुछ प्रमुख परिभाषाएं निम्नलिखित हैं—

1. **अमरीकन मार्केटिंग एसोसिएशन** के अनुसार ब्राण्ड एक नाम, शब्द, चिह्न या डिजाइन या इनका एक सम्मिश्रण है जिसका उद्देश्य एक विक्रेता या एक समूह के विक्रेताओं के माल या सेवाओं को पहचानना है और प्रतियोगियों के माल या सेवाओं से भेज करना है।''

   इस प्रकार ब्राण्ड में नाम हो सकता है, कुछ शब्द हो सकते हैं, एक डिजाइन हो सकता है, या इन सबको मिलाकर एक ब्राण्ड बनाया जा सकता है। भारत में ब्रण्ड का प्रयोग आधुनिक वहत् उत्पादन वाले निर्माताओं के द्वारा किया जाता है; जैसे, हिन्दुस्तान लीवर लिमिटेड, मुम्बई का 'खजूर छाप डालडा घी', एसोसिएटेड सीमेण्ट कम्पनी का 'ए. सी. सी. सीमेण्ट'।

2. **अमेरिकन मार्केटिंग एसोसिएशन** के मत में, ''ट्रेडमार्क एक ब्राण्ड है जिसको वैधानिक संरक्षण दे दिया गया है क्योंकि इसको कानून के अन्तर्गत केवल एकमात्र विक्रेता द्वारा अपनाया जा सकता है।''

3. **कॉपलैण्ड** के विचार में, ''ट्रेडमार्क को किसी संकेत, चिह्न, प्रतीक, अक्षर या अक्षरों से परिभाषित किया जा सकता है जो किसी वस्तु के उद्‌गम या स्वामित्व को बतलाते हैं तथा वस्तु को उसकी क्वालिटी से भिन्न करते हैं और समान उद्देश्य हेतु उनके प्रयोग का अन्य को समान अधिकार प्रदान नहीं करते हैं।''

4. **स्टाण्टन** के शब्दों में ''सभी ट्रेडमार्क ब्राण्ड हैं और इस प्रकार इनमें वे शब्द, लेख या अंक शामिल हैं जिनका उच्चारण हो सकता है। इनमें तस्वीर का डिजाइन भी शामिल है।''

उपर्युक्त विवरण से हम इस निष्कर्ष पर आते हैं कि ब्राण्ड में यह विशेषताएं पायी जाती है। : 1. ब्राण्ड का नाम, शब्द, चिह्न व डिजाइन है। 2. इसका उद्देश्य एक विक्रेता या संस्था की वस्तुओं को पहचानना तथा प्रतियोगी वस्तुओं से भिन्नता उत्पन्न करना है। 3. सभी ब्राण्ड ट्रेडमार्क नहीं हैं लेकिन सभी ट्रेडमार्क ब्राण्ड माने जाते हैं। 4. ब्राण्ड का क्षेत्र सीमित है जबकि ट्रेडमार्क का क्षेत्र विस्तत है।

ब्राण्ड (मार्का) एवं व्यापार चिन्ह
(Brand and Trade Mark)

ब्राण्ड से आशय (Meaning of Brand)–ब्राण्ड (मार्का) एक विस्तत अर्थ वाला शब्द है जिसमें कोई अक्षर, नाम, चिन्ह, डिजाइन या चित्र अथवा इन सबके मिश्रण को सम्मिलित किया जाता है। इसका प्रयोग निर्माता अथवा मध्यस्थों के द्वारा अपने उत्पादों को दूसरों के उत्पादों से भिन्नता रखने के लिए किया जाता है।

व्यापार चिन्ह से आशय (Meaning of Trade Mark)–जब किसी अक्षर, नाम, चिन्ह, डिजाइन या चित्र अथवा इन सबके मिश्रण का कानून के अन्तर्गत, पंजीयन करा लिया जाता है तो इसे व्यापार चिन्ह कहते हैं। वास्तव में व्यापार चिन्ह कानूनी संरक्षण प्राप्त ब्राण्ड ही है जब कोई निर्माता विभिन्न उत्पादों का उत्पादन करता है तो वह भिन्न उत्पादों के लिए भिन्न–भिन्न ब्राण्डों का प्रयोग कर सकता है लेकिन उन सबको लिए एक ही व्यापार चिन्ह का प्रयोग करता है।

सामान्यत ब्राण्ड के साथ उत्पाद योजना वद्धि का एक भाग होता है। **अमेरिकन मार्केटिंग एसोसिएशन** के अनुसार "ब्राण्ड शब्द एक शब्द, नाम, चिन्ह या साधन या किसी सम्मिश्रण से परिभाषित किया जा सकता है, जो निर्माता या व्यापारी द्वारा उसके उत्पाद या सेवा को पहचानने के लिए उपयोग में लाया जाता हो और दूसरे निर्माताओं द्वारा निर्मित वस्तु जो बेची गई या सेवाएं जो की गई दोनों में भिन्नता प्रकट करने के लिए उपयोग में लाया जाता है।"[1]

प्रत्येक कंपनी अपनी वस्तु को पहचानने और बाजार में दूसरे प्रतिस्पर्धियों की वस्तु से अलग दिखाने की इच्छा रखती है। वस्तु को पहचानने के लिए एक महत्वपूर्ण पद्धति है जिसे ब्राडिंग कहा जाता है। इसमें वस्तु को कुछ नाम चिन्ह आदि दिया जाता है। उत्पाद को ब्राण्ड प्रदान करना विक्रय विकास का एक आधार होता है। ब्राडिंग उसके लिए कंपनी की स्वतंत्रता और सुरक्षा की व्यवस्था करती है। ब्राडिंग द्वारा कंपनी अपने संभावित ग्राहक को विज्ञापन और दूसरे विक्रय प्रवर्तन के साधनों द्वारा यह बता सकती है कि यह हमारा उत्पाद है और इसमें फलां–फलां गुण हैं तथा बाजार के दूसरी उत्पादों से यह अच्छी है। ग्राहक बाजार में ऐसी वस्तु को शीघ्र ही पहचान लेते हैं क्योंकि वे विज्ञापन में ब्रांड या चिन्ह आदि देखे हुए होते हैं या कंपनी के प्रतिनिधियों से इसके बारे में सुन चुके होते हैं। सामान्यता उपभोक्ता वस्तुओं पर ही ब्रांड लगाया जाता है लेकिन इन दिनों (वर्तमान समय में) औद्योगिक वस्तुओं पर भी ब्रांड लगाने की प्रवति में वद्धि हुई है।

अच्छे ब्रांड नाम की विशेषता
(Characteristics of a Good Brand Name)

एक व्यापारिक नाम अच्छा या बुरा हो सकता है, वह विक्रय में वद्धि या रुकावट कर सकता है। एक अच्छे ब्रांड में निम्न विशेषताएं होती है।

(1) **उच्चारण करने में सरल हो (Easy to Pronounce)**–क्योंकि भारत में कुछ राज्यों के लोग निश्चित ध्वनियों या आवाज में नहीं बोल सकते और साथ ही कभी–कभी वे कुछ निश्चित शब्दों का सही उच्चारण भी नहीं कर पाते। इस कारण वे ऐसी वस्तुओं को पूछने में सकुचाते हैं। ब्रांड नाम ऐसा होना चाहिए जिसका सरलता से उच्चारण किया जा सके।

(2) **स्मरणीय (Memorable)**–नाम याद करने योग्य हो या याद करने में सरल हो।

(3) **वह छोटा हो (Small)**–छोटा व्यापारिक नाम उच्चारण और याद करने में सरल होता है। वह बड़े आकार से कम जगह में लिखा जा सकता है। जैसे टाटा, बिन्नी, सर्फ, डेट आदि।

(4) **सही एवं सूचनाप्रद (True and Suggestive)**–ग्राहक को (वस्तु के बारे में) सही सूचना देनी चाहिए। हर समय ग्राहक व्यापारिक नाम देखता है, उसे सुनता है और कुछ सीमा तक उसके दिमाग में उसके बारे में एक अंदाज जम जाता है। इस अंदाज का वस्तु के साथ सही संयोग होना चाहिए, जैसे काफी के लिए "नैस्कैफे।"

---

[1] A brand may be defined as any letter, word, name, symbol or device or any combination there of which is adopted and used by a manufacturer or merchant to identify his goods and services, and to distinguish them from these manufactured, sold or, in the case of services, performed by others."

–Marketing Definitions: A Glossary of Marketing Terms: American Marketing Association, p.9

(5) **पंजीकृत (Registered)**—यह कानूनी तौर से सुरक्षित होना चाहिए। कोई जातिगत नाम, भौगोलिक, ऐतिहासिक या अन्य कोई नाम जो सामान्य लोगों द्वारा सामान्य अर्थ में प्रयोग में लाया जाता है, इसमें उपयोग नहीं होना चाहिए। जैसे ऐस्प्रिन, कोला, ट्रांजिस्टर, ताजमहल आदि। निर्माताओं द्वारा अधिक रुचिकर नाम का निर्माण किया जाता है जैसे सर्फ, नैस्कैफे, अमूल, बोनस आदि।

यहां पर व्यापारिक चिन्ह के समकक्ष कुछ शब्दों की व्याख्या करना उचित होगा। जब कभी व्यापारिक चिन्ह उचित रूप से वैधानिक अधिकारी से पंजीकृत होता हैं तब वह ट्रेडमार्क नाम से जाना जाता है। इस प्रकार ट्रेडमार्क शब्द व्यापारिक शब्द है। यह उत्पाद का व्यापारिक नाम है। जब वैधानिक शब्दावली में उपयोग किया जाता है तब ट्रेडमार्क बन जाता है।

सारणी 8.1

कुछ सफल व जाने पहचाने भारतीय ब्रांड (Successful Indian Brands)

उत्पाद वर्ग (Product Category)	सफल भारतीय ब्रांड (Successful Indian Brands)
1. साबुन	लीरिल, लक्स, हमाम, रेक्सोना।
2. स्टील फर्नीचर	गोदरेज।
3. दंत मंजन व पेस्ट	कोलगेट, बिनाका, फोरहन्स, डाबर दंत मंजन, बजाज दंत मंजन।
4. वनस्पति तेल	डालडा, रथ, पोस्टमैन, मधुरम।
5. जूते की पालिश	चैरी, ब्लोसम, किवी।
6. क्रीम	पोन्डस, अफगान स्नों।
7. मक्खन	अमूल, पोलसन।
8. जूते	बाटा, फ्लेक्स।
9. रेडियो	फिलिप्स, मरफी, बुश, नेशनल।
10. चाय	ब्रुक बाण्ड, लिप्टन, ताजमहल, रेड लेबिल।
11. टाई	जोडियाक।
12. टाइपराइटर	गोडरेज, रेमिन्गटन, फैसिट, जेके।
13. टायर	डनलप, एम.आर.एफ., एपोलो, जे.के।
14. टेलिविजन	वेस्टन, अपट्रोन, ओनिडा, रीको, बेलटेक, डायनोरा।
15. शीतल पेय	लिम्मा गोल्डस्पॉट, डबल सेवन, थम्स अप, पेप्सी कोला।
16. कपड़े धोने के पाउडर	सर्फ, निरमा।
17. स्कूटर	बजाज, राजदूत, विजय सुपर, वेस्पा।
18. बिस्कुट	पार्ले ग्लूकोज, क्रैकजैक, ब्रिटानिया, डालिमा, मंगाराम।
19. डबल रोटी	मोर्डन, ब्रिटानिया।
20. बैटरी	जीप, तोशिबा, आनन्द, नोविनो, एवरेडी।
21. साइकिल	हीरो, बी.एस.ए.।
22. घड़ियां	एच.एम.टी. क्वार्टज, जैको।
23. पेन	विलसन, केमलिन, लक्सर, स्वान।
24. कपड़े	मफतलाल, बिन्नी केलिको, बोम्बे डाइंग, डी.सी.एम. विमल, वेरेली, ग्वालियर, रेयन, भीलवाड़ा, एन.टी.सी.।

व्यापारिक चिन्ह
(Trade Mark)

व्यापारिक नाम और ट्रेड मार्क का सामान्यता एक दूसरे के पर्यायवाची के रूप में उपयोग किया जाता है। यद्यपि इनमें मामूली सा अंतर है। ट्रेड मार्क का अर्थ कुछ विस्तत रूप में उपयोग किया जाता है। जो वस्तु के प्रकार को बताता है। यह एक निर्माता द्वारा उत्पादित एक प्रकार की विशेष मद को बताता है।

ट्रेड मार्क किसी नाम को विशिष्ट ढंग से लिखने से भी बन जाता है, जैसे बाटा इण्डिया लिमिटेड या बाटा या बी.एस.सी. का चिन्ह। साधारणतया ब्राण्ड व ट्रेडमार्क में कोई अंतर नहीं माना जाता है लेकिन वास्तव में दोनों में अंतर हैं दोनों के अर्थ भिन्न हैं।

अमरीकन मार्केटिंग एसोसिएशन के मत में "ट्रेडमार्क एक ब्राण्ड है जिसको वैधानिक संरक्षण दे दिया गया है क्योंकि इसको कानून के अन्तर्गत केवल एकमात्र विक्रेता द्वारा ही अपनाया जा सकता है।"[2]

कापलेण्ड के विचार में "ट्रेडमार्क को किसी संकेत, चिन्ह प्रतीक, अक्षर या अक्षरों से परिभाषित किया जा सकता है जो किसी वस्तु के उद्‌गम या स्वामित्व को बतलाते हैं तथा वस्तु को उसकी क्वालिटी से भिन्न करते हैं और समान उद्देश्य हेतु उनके प्रयोग का अन्य को समान अधिकार प्रदान नहीं करते हैं।"

स्टाण्टन के शब्दों में "सभी ट्रेडमार्क ब्राण्ड हैं और इस प्रकार इनमें वे शब्द लेख या अंक शामिल हैं जिनका उच्चारण हो सकता है। इसमें तस्वीर का डिजाइन भी शामिल है।

भारत में ट्रेडमार्क के रजिस्ट्रेशन के लिए व्यापार एवं उत्पाद चिन्ह अधिनियम 1958 (The Trade and Merchandise Marks Act, 1958) है जिसके अंतर्गत रजिस्ट्रेशन हो जाने पर उस चिन्ह, नाम, शब्द या डिजाइन के प्रयोग का एकमात्र अधिकार रजिस्ट्रेशन कराने वाली संस्था को मिल जाता है। भारत में इस सुविधा का प्रयोग बहुत सी संस्थाएं करती हैं, जैसे दवाई बनाने वाली कंपनी साराभाई केमिकल्स को SQUIBB आगफागेवर्ट इण्डिया लिमिटेड AGFA जो फोटो खींचने वाले कैमरों को बनाती है, आयुवेंद सेवाश्रम लिमिटेड, उदयपुर द्वारा निर्मित गाय छाप काला दंत मंजन।

उपर्युक्त विवरण से हम इस निष्कर्ष पर आते हैं कि ब्रांड में निम्न विशेषताएं पाई जाती हैंः

(i) ब्रांड एक नाम, शब्द, चिन्ह व डिजाइन है। (ii) इसका उद्देश्य एक विक्रेता या संस्था की वस्तुओं को पहचानना तथा प्रतियोगी वस्तुओं से भिन्नता उत्पन्न करना है। (iii) सभी ब्रांड ट्रेडमार्क नहीं हैं लेकिन सभी ट्रेडमार्क ब्रांड माने जाते हैं। (iv) ब्रांड का क्षेत्र सीमित है जबकि ट्रेडमार्क का क्षेत्र विस्तत है।

ब्राण्ड (मार्का) एवं व्यापार चिन्ह में अन्तर
(Difference between Brand and Trade Mark)

क्रम. स. (S. No.)	आधार (Basis)	ब्राण्ड (Brand)	व्यापार चिन्ह (Trade Mark)
1.	पंजीयन (Registration)	ब्राण्ड का पंजीयन कराना आवश्यक नहीं है।	व्यापार चिन्ह का पंजीयन कराना अनिवार्य है।
2.	कानूनी संरक्षण (Legal Protection)	ब्राण्ड की नकल अन्य प्रतिस्पर्धियों द्वारा की जा सकती है और उनके विरुद्ध कार्यवाही भी नहीं की जा सकती है।	व्यापार चिन्ह की नकल करने वाले प्रतिस्पर्धियों के विरुद्ध कानूनी कार्यवाही करके हर्जाना वसूल किया जा सकता है।
3.	क्षेत्र (Scope)	ब्राण्ड का क्षेत्र सीमित है।	व्यापार चिन्ह का क्षेत्र विस्तत है।
4.	पहचान (Identification)	ब्राण्ड से उत्पाद के गुणों की पहचान होती है।	जबकि व्यापार चिन्ह से व्यावसायिक उपक्रम की पहचान होती है।
5.	प्रकृति (Nature)	सभी ब्राण्ड व्यापार चिन्ह नहीं होते।	सभी व्यापार चिन्ह ब्राण्ड होते हैं।

[2] "A brand which is given legal protection because under the law it has been appropriated exclusively by one seller"

– American Marketing Association

ब्राण्ड परीक्षण
(Brand Testing)

जो निर्माता एवं विक्रेता ब्राण्ड का प्रयोग करना चाहते हैं वे उसको काम में लाने से पूर्व इस बात का पता लगाना चाहते हैं कि ब्राण्ड सभी प्रकार से उपयुक्त है अथवा नहीं। इस कार्य के लिए ब्राण्ड (नाम या चिन्ह) का परीक्षण करते हैं। इस परीक्षण में निम्न पांच ढंग अपनाये जाते हैं–

(1) **स्मरण परीक्षण (Memory Test)**–परीक्षण के इस ढंग में उपस्थित जनसमुदाय से अभिरुचि व्यक्त करने को कहा जाता है और जिस नाम को अधिक व्यक्तियों द्वारा प्रथम वरीयता (first preference) दी जाती है उसी नाम को ब्राण्ड के लिए चुन लिया जाता है।

(2) **वरीयता परीक्षण (Preference Test)**–परीक्षण के इस ढंग में उपस्थित जनसमुदाय से अभिरुचि व्यक्त करने को कहा जाता है और जिस नाम को अधिक व्यक्तियों द्वारा प्रथम वरीयता (first preference) दी जाती है उसी नाम को ब्राण्ड के लिए चुन लिया जाता है।

(3) **अधिगम परीक्षण (Learning Test)**–इस तरीके से विभिन्न नामों के उच्चारण व आसानी से लिखने को मापा (measure) जाता है। जिस नाम को सबसे अधिक व्यक्तियों द्वारा सही व आसानी से उच्चारित किया जाता है वही नाम ब्राण्ड के लिए चुन लिया जाता है।

(4) **समागम परीक्षण (Association Test)**–इसमें ब्राण्ड नामों को उपस्थित जन–समुदाय को पढ़कर सुना दिया जाता है या कार्ड पर लिखकर दिखा दिया जाता है और बाद में उसके मस्तिष्क में जो नाम पहले आता है उसको लिखने के लिए कहा जाता है।

(5) **अनोखा परीक्षण (Uniqueness Test)**–इस परीक्षण में उपस्थित जनसमुदाय को अपने प्रस्तावित ब्राण्ड नाम बताये जाते हैं और उनसे यह प्रार्थना की जाती है कि वे इन प्रस्तावित नामों से मिलते–जुलते अन्य ब्राण्ड नामों को लिखें। इससे निर्माता को यह पता लग जाता है कि उसकी प्रस्तावित ब्राण्ड किा ब्राण्ड से (जो पहले से बाजार में है) Confuse कर सकती है और इस प्रकार इस परीक्षण के आधार पर उचित निर्णय लिया जा सकता है।

एक निर्माता ब्राण्ड नाम तय करते समय उपर्युक्त ढंगों में से किन्हीं भी ढंगों को अपना सकता है। यह उसके साधन व सुविधा पर निर्भर है। कभी–कभी एक ढंग न अपनाकर कई ढंगों को अपनाया जाता है और जो निष्कर्ष सर्वोत्तम समझे जाते हैं उन्हें ब्राण्ड के लिए चुन लिया जाता है।

ब्राण्ड के लाभ या ब्राण्ड का महत्व
(Advantages or Importance of Branding)

ब्राण्ड मार्क प्रयोग में लाने से विभिन्न समुदायों को लाभ होता है। इन्हीं लाभों को ब्राण्ड के महत्व के रूप में भी प्रदर्शित किया जा सकता है। **कुछ विद्वान इन लाभों को ब्राण्ड प्रयोग के कारण भी कहते हैं।** इन लाभों का अध्ययन तीन मदों के आधार पर कर सकते हैं–(I) उत्पादकों को लाभ, (II) मध्यस्थों को लाभ, (III) उपभोक्ताओं को लाभ।

(I) उत्पादकों को लाभ
(Advantages to Producers)

(1) **मुल्य नियन्त्रण (Price Control)**–एक निर्माता ब्राण्ड निश्चित करने के साथ–साथ उस ब्राण्ड का मूल्य भी निश्चित कर देता है जिस पर उस वस्तु को उपभोक्ताओं को (मध्यस्थों एवं विक्रयकर्ताओं द्वारा) बेचा जाता है। इसका अर्थ यह हुआ कि मध्यस्थ या विक्रयकर्ता मूल्यों में मनमानी नहीं कर सकते हैं और इस प्रकार यह निर्माता अपनी वस्तु के विक्रय मूल्य पर नियन्त्रण कर सकता है।

(2) **बाजार नियन्त्रण (Market control)**–ब्राण्ड निश्चित होने से बाजार पर नियन्त्रण किया जा सकता है अर्थात् निर्माता जिन बाजारों में वस्तु को बेचना चाहता है उन्हीं बाजारों में उसको बेच सकता है, शेष में नहीं। यदि उसकी वस्तु

पर कोई ब्राण्ड नहीं है तो वस्तु को मध्यस्थों द्वारा कहीं भी बेचा जा सकता है जिसका पता उसको नहीं लग सकता है।

(3) **विक्रय में सहायता को प्रोत्साहन (Help in Sales)**—यदि ग्राहक ब्राण्ड वाली वस्तु से सन्तुष्ट है तो उसी वस्तु को पुनः खरीदेगा। ऐसा होने से पुनः विक्रय को प्रोत्साहन मिलता है। यदि वस्तु ब्राण्ड वाली नहीं है तो दुकानदार उस वस्तु के समाप्त होने पर या उसकी दुकान पर न होने के कारण दूसरी वस्तु उससे अच्छी बताकर दे सकता है और इस प्रकार पहली वस्तु के साथ अन्याय कर सकता है।

(4) **प्रतियोगिता से बचाना (Saves from Competition)**—ब्राण्ड वाली वस्तुओं के क्रेताओं में ब्राण्ड के प्रति वफादारी पैदा हो जाती है जिससे वे उसी ब्राण्ड की वस्तु को क्रय करते हैं। उनकी यह आदत निर्माता को प्रतियोगिता से बचाती है।

(5) **मध्यस्थों की आसानी से उपलब्धता (Easy availabilty of middlemen)**—ब्राण्ड वाली वस्तु को बेचने के लिए मध्यस्थ आसानी से मिल जाते हैं। साथ ही अच्छी ब्राण्ड वाली वस्तु को बेचने के लिए इन मध्यस्थों को पारिश्रमिक भी कम देना पड़ता है।

(6) **विज्ञापन व्ययों में मितव्ययता (Economy in promotional expenses)**—ब्राण्ड वाली वस्तुओं के सम्बन्ध में विज्ञापन, आदि करने में व्यय कम ही होते हैं क्योंकि ब्राण्ड के नाम से ही काम चल जाता है साथ ही ऐसे विज्ञापन कम स्थान घेरते हैं।

(7) **अन्य लाभ (Other advantage)**—ब्राण्ड से एक निर्माता को उपर्युक्त लाभों के अतिरिक्त (अ) वस्तु पहचान का लाभ, (ब) ब्राण्ड का पंजीकरण होने से नकल न होने के लाभ भी मिल जाते हैं।

(II) मध्यस्थों को लाभ
(Advantages to Middlemen)

ब्राण्ड चिन्ह अपनाने से मध्यस्थों को समझने में आसानी, कम जोखिम, प्रवर्तन की आवश्यकता न होना, एवं साख वद्धि के लाभ मिलते हैं।

(1) **ग्राहकों को समझाने में आसानी (Easiness in consumers' understanding)**—ब्राण्ड निश्चित होने से मध्यस्थों को अपने ग्राहकों को समझाने में आसानी रहती है। साधारणतया यह देखा जाता है कि ग्राहक स्वयं ही उस वस्तु को मांगते हुए आते हैं। यदि वे वस्तु को मांगते हुए नहीं भी आते हैं तो अच्छे ख्याति प्राप्त निर्माता की वस्तु के लिए उसको थोड़े समय में ही समझाकर सन्तुष्ट किया जा सकता है।

(2) **कम जोखिम (Less risk)**—ब्राण्ड वाली वस्तुओं के मूल्य में घटा—बढ़ी बहुत ही कम होती है अतः मध्यस्थों को मूल्य की घटा—बढ़ी सम्बन्धी जोखिम भी कम रहता है।

(3) **संवर्द्धन की आवश्यकता न होना (Less need for promotion)**—ब्राण्ड वाली वस्तुओं के लिए मध्यस्थों द्वारा संवर्द्धन व्यय करने की आवश्यकता नहीं रहती है क्योंकि ब्राण्ड वाली वस्तुओं का विज्ञापन एवं संवर्द्धन कार्य तो स्वयं निर्माता द्वारा ही किया जाता है और ऐसे विज्ञापनों में उस मध्यस्थ का नाम भी दिया रहता है। कभी—कभी मध्यस्थ भी संवर्द्धन व्यय कर देता है लेकिन उसके व्ययों की क्षतिपूर्ति उस वस्तु के निर्माण द्वारा कर दी जाती है।

(4) **साख में वद्धि (Increase in goodwill)**—जो मध्यस्थ अच्छे ख्यति प्राप्त निर्माताओं की ब्राण्ड वाली वस्तुओं को बेचते हैं उनकी साख बाजार में बढ़ जाती है।

(II) उपभोक्ताओं को लाभ
(Advantages to Consumers)

वस्तुओं पर ब्राण्ड चिन्ह होने के कारण उपभोक्ताओं को क्वालिटी स्थिरता, मूल्य स्थिरता, गारण्टी, सुगम पहचान एवं अच्छे पैकेजिंग के लाभ मिलते हैं।

(1) **क्वालिटी में स्थिरता (Stability in quality)**—ब्राण्ड वाली वस्तुओं की क्वालिटी स्थिर रहती है। उसमें सामान्यता गिरावट नहीं आती है। यदि सम्भव होता है तो उसमें सुधार ही किया जाता है। ऐसा होने से उपभोक्ता को अच्छी क्वालिटी की वस्तु मिलती है।

(2) **मूल्य स्थिरता (Fixed price)**—ब्राण्ड वाली वस्तुओं के मूल्य निर्माता द्वारा निश्चित किये जाते हैं और उन मूल्यों में निर्माता द्वारा परिवर्तन बहुत ही कम किया जाता है। मध्यस्थों को मूल्यों में परिवर्तन करने का अधिकार नहीं होता है। इसका परिणाम यह होता है कि मूल्यों को वापस करने का आश्वासन दिया जाता है। ऐसा होने से उपभोक्ताओं को वस्तु अच्छी क्वालिटी की मिलती है। यह गारण्टी बीमा का काम करती है।

(3) **गारण्टी (Guarantee)**—सामान्यता ब्राण्ड वाली वस्तुओं की उनकी उपयोगिता के बारे में गारण्टी भी दी जाती है कि यदि वस्तु में कथित उपयोगिताएं न हों तो वस्तु को बदलने या उसका मूल्य वापस करने का आश्वासन दिया जाता है। ऐसा होने से उपभोक्ताओं को वस्तु अच्छी क्वालिटी की मिलती है। यह गारण्टी बीमा का काम करती है।

(4) **सुगम पहचान (Easy identification)**—ब्राण्ड वाली वस्तु को आसानी से पहचाना जा सकता है और दुबारा क्रय करने में सुविधा रहती है। यदि वस्तु ब्राण्ड वाली नहीं होती है तो उसके देखने एवं उसके बारे में सोचने में समय लग सकता है।

(5) **अच्छा पैकेजिंग (Good packaging)**—साधारणतया यह पाया जाता है कि अच्छे ब्राण्ड की वस्तुओं का पैकेजिंग भी अच्छा होता है जिससे वस्तु सुरक्षित रहती है। यदि वस्तु प्रयोग से बच जाती है तो उसको उसी पैकजिंग में काफी लम्बे काल तक रखा जा सकता है।

क्या ब्राण्ड सामाजिक दष्टिकोण से उचित है?
(Is Branding Socially Desirable?)

क्या ब्राण्ड का उपयोग सामाजिक दष्टि से उचित है? यह एक ऐसा प्रश्न है जिसका कोई एक उत्तर नहीं हो सकता। कुछ विद्वानों की **दष्टि में इसका उपयोग सर्वथा उचित** है क्योंकि (1) उपभोक्ता का चुनाव करने में आसानी रहती है। (2) मध्यस्थों द्वारा मूल्य वद्धि नही की जा सकती है। (3) इनके द्वारा धोखेबाजी की सम्भावनाएं भी कम हो जाती है। (4) फुटकर मूल्य साधारण स्थिर रहते हैं। (5) निर्माता को भी अपनी वस्तु की क्वालिटी में स्थिरता रखनी पड़ती है जिससे उपभोक्ता को क्वालिटी—वस्तु मिलती रही है।

लेकिन **कुछ विद्वान ब्राण्ड के प्रयोग को सामाजिक दष्टि से उचित नहीं मानते हैं और** उनके द्वारा यह तर्क प्रस्तुत किये जाते है कि (1) ब्राण्ड उपभोक्ता को विवेकहीन (irrational) बना देता है और अच्छी वस्तु उपलब्ध होने पर भी वह अच्छी वस्तु का उपयोग नहीं कर पाता है। (2) इससे उसको अपने धन का उचित प्रतिफल नहीं मिल पाता है और उसको वस्तु की क्वालिटी की तुलना में अधिक मूल्य देना पड़ता है। (3) जब निर्माता या विक्रेता द्वारा एक ब्राण्ड के विषय में प्रसिद्धि प्राप्त कर ली जाती है तो वह उसकी क्वालिटी की ओर अधिक ध्यान नहीं देता है। (4) भविष्य में उसके द्वारा मूल्य वद्धि कर अधिक लाभ कमाने का प्रयत्न किया जाता है।

कुछ भी क्यों न हो लेकिन यह तो उचित ही है कि यदि ब्राण्ड के विषय पर कुछ कानूनी प्रतिबन्ध लगा दिये जायें या उपभोक्ता अवरोध हो तो उसका उपयोग सामाजिक दष्टिकोण से भी वांछनीय है क्योंकि इससे समाज को लाभ अवश्य ही मिलता है।

ब्राण्ड निश्चित करने का ढंग
(Methods of Branding)

ब्राण्ड निश्चित करने के कई तरीके हैं, लेकिन मुख्य हैं—1. निर्माता के नाम पर, 2. विशेष नाम, (3) विशेष चिह्न।

1. **निर्माता के नाम पर (On the name of the manufacturer)**—बहुत—से निर्माता अपनी वस्तु का ब्राण्ड अपने नाम पर निश्चित कर लेते हैं। इसके बहुत—से उदाहरण भारत में मिलते हें; जैसे, एक जूते एवं चप्पल बनाने वाली कम्पनी की सभी वस्तुएं 'बाटा' के नाम से प्रचलित हैं। इस प्रकार यह बाटा कम्पनी की ब्राण्ड है।

2. **विशेष नाम (Special Name)**—कभी—कभी निर्माता अपने नाम को ब्राण्ड के लिए नहीं चुनते बल्कि अपने से भिन्न नाम चुन लेते हैं; जैसे जय इन्जीनियरिंग वर्क्स लिमिटेड, कलकत्ता द्वारा निर्मित बिजली के पंखे और सिलाई की मशीनें, वाटर कूलर, प्रेशर कुकर आदि 'ऊषा' के नाम से प्रचलित हैं।

3. **विशेष चिह्न (Special Mark)**—कुछ निर्माता अपनी उत्पादों के ब्राण्ड के लिए किसी विशेष चिन्ह को चुन लेते हैं, जैसे—खजूर मार्का घी, रथ मार्का घी, मशाल मार्का सरसों का तेल आदि।

ब्राण्ड का वर्गीकरण अथवा ब्राण्ड के प्रकार (Classification of Brands or Types of Brands)

ब्राण्ड का वर्गीकरण विभिन्न आधारों पर किया जा सकता है लेकिन मुख्य आधार निम्न हैं :—

- अ. स्वामित्व के आधार पर (Ownership Basis)
  1. निर्माता का ब्राण्ड
  2. मध्यस्थों का ब्राण्ड
- ब. बाजार क्षेत्र के आधार पर (Market Area Basis)
  1. स्थानीय ब्राण्ड
  2. प्रान्तीय ब्राण्ड
  3. क्षेत्रीय ब्राण्ड
  4. राष्ट्रीय ब्राण्ड
- स. वस्तुओं की संख्या के आधार पर (Number of Products)
  1. पारिवारिक ब्राण्ड
  2. व्यक्तिगत ब्राण्ड
- द. प्रयोग के आधार पर (Use Basis)
  1. लड़ने वाली ब्राण्ड
  2. प्रतियोगी ब्राण्ड

I. **स्वामित्व के आधार पर (On the basis of Ownership)**—स्वामित्व के आधार पर ब्राण्ड को निम्न भागों में बांटा जा सकता है—

1. **निर्माता का ब्राण्ड** (Manufacturer's brand)—निर्माता द्वारा प्रयोग किया जाने वाला ब्राण्ड निर्माता ब्राण्ड कहलाता है, जैसे, फिलिप्स कम्पनी द्वारा निर्मित रेडियो, बल्ब, ट्रांजिस्टर, आदि पर Philips की छाप लगी रहती है। ए. सी. सी. कम्पनी द्वारा निर्मित सीमेण्ट पर A.C.C. की छाप लगायी जाती है।

2. **मध्यस्थों का ब्राण्ड** (Middlemen's brand)—जब निर्माता अपने उत्पादनों पर किसी प्रकार की छाप या मुहर का प्रयोग नहीं करता है तो बड़े–बड़े थोक व्यापारी या फुटकर व्यापारी उन उत्पादनों पर अपनी ब्राण्ड की मुहर या छाप लगाकर बेचते हैं तो इस प्रकार की ब्राण्ड को मध्यस्थ ब्राण्ड कहते हैं।

II. **बाजार क्षेत्र के आधार पर (On the basis of Market Area)**—

i. **स्थानीय ब्राण्ड** (Local Brand)—वह ब्राण्ड जिसका प्रयोग स्थानीय बाजार के लिए किया जाता है स्थानीय ब्राण्ड कहते हैं।

ii. **प्रान्तीय ब्राण्ड** (Provincial Brand)—वह ब्राण्ड जो एक राज्य विशेष में ही प्रचलित है उसका प्रान्तीय या राज्य ब्राण्ड (State brand) कहते हैं।

iii. **क्षेत्रीय ब्राण्ड** (Regional Brand)—जब एक निर्माता राष्ट्र को अपने विक्रय के लिए कई क्षेत्रों में बांट लेती है और प्रत्येक क्षेत्र में नयी–नयी ब्राण्डों का प्रयोग करता है तो उसकी इन ब्राण्डों को क्षेत्रीय ब्राण्ड कहते हैं।

iv. **राष्ट्रीय ब्राण्ड** (National Brand)—यह ब्राण्ड निर्माता ब्राण्ड भी कहलाती है। जब एक निर्माता सम्पूर्ण देश के लिए केवल एक ही ब्राण्ड का प्रयोग करता है तो उसकी एक ब्राण्ड राष्ट्रीय कहलाती है।

v. **अन्तर्राष्ट्रीय ब्राण्ड** (International Brand)—जब कोई निर्माता अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार के लिए अपनी उत्पाद का एक ही ब्राण्ड प्रयोग करता है तो इसे अन्तर्राष्ट्रीय ब्राण्ड कहते है।

III. **उत्पादों की संख्या के आधार पर (On the basis of Number of Products)**—संख्या के आधार पर तीन भागों में बांटा जा सकता है—

1. **पारिवारिक ब्राण्ड** (Family Brand)—जब कोई व्यावसायिक उपक्रम अपने सभी प्रकार के उत्पादों के लिए एक ही ब्राण्ड का प्रयोग करता है तो उसे पारिवारिक ब्राण्ड कहते हैं, उदाहरण के लिए बजाज ग्रुप के द्वारा अपने

सभी उत्पादों जैसे—बल्ब, ट्यूबलाइट, आयरन, टोस्टर, स्कूटर आदि के लिए बजाज शब्द का प्रयोग किया जाता है। पारिवारिक ब्राण्ड को समूहगत ब्राण्ड (Blanket Or Umbrella Brand) भी कहते हैं।

2. **व्यक्तिगत ब्राण्ड (Individual Brand)**—जब कोई व्यावसायिक उपक्रम अपने सभी उत्पादों के लिए भिन्न–भिन्न ब्राण्ड का प्रयोग करता है तो इसे व्यक्तिगत ब्राण्ड कहते हैं। उदाहरण के लिए, हिन्दुस्तान लीवर लिमिटेड के द्वारा अपने विभिन्न प्रकार के नहाने के साबुनों के लिए लाइफबॉय, लक्स, रेक्सोना, आदि ब्राण्डों का प्रयोग किया जाता है।

3. **उत्पाद पंक्ति ब्राण्ड** (Product Line Brand)—जब कोई व्यावसायिक उपक्रम भिन्न–भिन्न प्रकार की उत्पाद पंक्तियों के लिए भिन्न–भिन्न प्रकार के ब्राण्डों का प्रयोग करता है तो इसे उत्पाद पंक्ति ब्राण्ड कहते हैं जैसे—वनस्पति घी की उत्पाद पंक्ति के लिए डालडा, डिटरजेन्ट पाउडर की उत्पाद पंक्ति के लिए सुपर सर्फ आदि।

IV. **प्रयोग के आधार पर (According to Use)**—प्रयोग के आधार पर ब्राण्डों को दो प्रकार से वर्गीकृत किया जा सकता है—

1. **लड़ने वाला ब्राण्ड** (Fighting Brand)—जब बाजार में प्रतिस्पर्धा अधिक होती है तो निर्माता कम मूल्य की उत्पाद से बाजार में प्रस्तुत करते हैं। ऐसे उत्पाद के ब्राण्ड को ही लड़ने वाला ब्राण्ड कहते हैं। उदाहरण के लिए आई. टी. सी. लिमिटेड ने हाल ही में सिगरेट के नाम फिल्टर किंग्स ब्राण्ड को बाजार में लड़ने वाला ब्राण्ड के रूप में प्रस्तुत किया है।

2. **प्रतियोगी ब्राण्ड** (Competitive Brand)—जब विभिन्न निर्माताओं की उत्पादों के आकार–प्रकार गुण एवं मूल्य आदि में कोई विशेष अन्तर नहीं होता तो विभिन्न निर्माताओं की इस प्रकार की उत्पादों के ब्राण्ड को प्रतियोगी ब्राण्ड कहते हैं। उदाहरण के लिए, कपड़े धोने के साबुनों में जैसे—मोदी साबुन, 555 साबुन, आदि।

ब्राण्ड नीतियां और रीति-नीतियां
(Brand Policies and Strategies)

ब्राण्ड नीतियों और रीति–नीतियों को निम्न तीन शीर्षकों के अन्तर्गत वर्गीकृत किया जा सकता है—

I. निर्माताओं द्वारा अपनाई जाने वाली ब्राण्ड नीतियां एवं रीति–नीतियां,

II. मध्यस्थों द्वारा अपनाई जाने वाले ब्राण्ड नीतियां एवं रीति–नीतियां, तथा

III. अन्य ब्राण्ड नीतियां एवं रीति–नीतियां।

I. **निर्माताओं द्वारा अपनाई जाने वाली ब्राण्ड नीतियां एवं रीति-नीतियां (Brand Policies and Strategies adopted by the Manufacturers)**—इनमें निम्नलिखित ब्राण्ड नीतियां एवं रीति–नीतियों को सम्मिलित किया जाता है—

1. **निर्माता द्वारा अपने ब्राण्ड के अन्तर्गत विपणन करना** (Marketing under Manufacturer's Own Brand)—इस रीति–नीति के अन्तर्गत निर्माता अपनी उत्पादों को अपने ब्राण्ड के नाम से बेचते हैं। इसके लिए वे—i. व्यक्तिगत ब्राण्ड (Individual Brand); ii. उत्पाद पंक्ति ब्राण्ड (Product Line Brand); iii. पारिवारिक ब्राण्ड (Family Brand); iv. स्थानीय ब्राण्ड (Local Brand); v. राज्य ब्राण्ड (State Brand); vi. क्षेत्रीय ब्राण्ड (Provincial Brand); vii. राष्ट्रीय ब्राण्ड़ (National Brand); viii. अन्तर्राष्ट्रीय ब्राण्ड (International Brand); ix. लड़ने वाला ब्राण्ड (Fighting Brand); एवं x. प्रतियोगी ब्राण्ड (Competitive Brand) आदि में से किसी भी ब्राण्ड रीति–नीति का चयन कर सकते हैं।

लाभ—ब्राण्ड की इस रीति–नीति को अपनाने से—i. निर्माता की ख्याति में वद्घि होती है; ii. उत्पादों के विज्ञापन एवं विक्रय संवर्द्धन कार्यक्रमों में सुविधा रहती है; iii. उत्पादों के मूल्यों में स्थायित्व बना रहता है; iv. बाजार नियन्त्रण में आसानी रहती है; एवं v. उत्पाद मिश्रण में सहायता मिलती है।

हानि—इस रीति–नीति का प्रमुख दोष यह है कि प्रायः मध्यस्थ वर्ग निर्माता के ब्राण्ड के उत्पादों के विक्रय को प्रोत्साहित नहीं करते हैं। दूसरा वस्तु सम्बन्धी प्रचार एवं विज्ञापन को बराबर करते रहना पड़ता है तथा क्वालिटी स्तर को भी बनाये रखना पड़ता है।

2. **मध्यस्थों के ब्राण्ड के अन्तर्गत विपणन करना** (Marketing under Middlemen's Brand)—इस रीति–नीति के अन्तर्गत निर्माता अपनी उत्पादों के लिए किसी ब्राण्ड का प्रयोग नहीं करता अर्थात् निर्माता अपनी उत्पादों को बिना किसी ब्राण्ड के मध्यस्थों को बेच देते हैं। ऐसी स्थिति में मध्यस्थ अपने ब्राण्ड नाम के अन्तर्गत उत्पादों को बेचते हैं।

लाभ—ब्राण्ड की इस रीति–नीति को अपनाने से—i. निर्माता को अपनी उत्पादों के विपणन पर अपना ध्यान केन्द्रित नहीं करना पड़ता, ii. निर्माता अपने सम्पूर्ण साधनों का प्रयोग श्रेष्ठ उत्पादन करने के लिए कर सकता है।

हानि—इस रीति–नीति का प्रमुख दोष यह है कि इसमें निर्माता को मध्यस्थों की कृपा दष्टि पर निर्भर रहना पड़ता है। यदि मध्यस्थों को किसी दूसरे निर्माता की उत्पाद कम मूल्य पर मिल जाती है तो वे पुराने निर्माता की उत्पाद लेना बन्द कर देते हैं जिससे पुराने निर्माता की स्थिति अत्यन्त दयनीय हो जाती है।

II. **मध्यस्थों द्वारा अपनायी जाने वाली ब्राण्ड नीतियां (Middlemen's Brand Policies)**—एक मध्यस्थ के द्वारा निम्न ब्राण्ड नीतियों में से किसी को चुना जा सकता है और अपनाया जा सकता है :

1. **केवल निर्माताओं की ब्राण्ड का प्रयोग करना** (Use of Manufacturer's brand only)—साधारणतया अधिकांश मध्यस्थ इसी नीति को अपनाते हैं। इस नीति में एक मध्यस्थ निर्माताओं के ब्राण्ड को ही बेचता है और अपनी ब्राण्ड नीति को नहीं अपनाता है। इसका अर्थ यह है कि वह अपनी ब्राण्ड नाम से किसी का वस्तु का विक्रय नहीं करता है।

लाभ—निर्माताओं के ब्राण्ड सुविख्यात होने के कारण अधिक आसानी से बिक जाते हैं और उनकी अधिक बिक्री होने से लाभ में वद्धि हो जाती है, यद्यपि लाभ की दर बहुत कम होती है।

हानि—इस रीति–नीति का प्रमुख दोष यह है कि इसमें मध्यस्थों के अपने अस्तित्व का विकास नहीं होता।

2. **निर्माता के ब्राण्ड एवं मध्यस्थ के ब्राण्ड का साथ-साथ प्रयोग** (Joint Use of manufacturer's Brand and Middlemen's Brand)—इस रीति–नीति के अन्तर्गत मध्यस्थ निर्माताओं के ब्राण्ड के उत्पादों के साथ–साथ स्वयं के ब्राण्ड के उत्पादों को भी बेचते हैं।

लाभ—इस रीति–नीति को अपनाने से—i. मध्यस्थों के अपने अस्तित्व का विकास होता है; ii. चूंकि मध्यस्थों के अपने ब्राण्ड की उत्पादों के मूल्य कम होते हैं और उनकी उत्पादों में निर्माता के ब्राण्ड की उत्पादों की तुलना में विशेष अन्तर भी नहीं होते, इस कारण विवेकशील उपभोक्ता मध्यस्थों के ब्राण्ड की ओर आकर्षित होते हैं, एवं iii. इसमें मध्यस्थों को यह डर भी रहता कि निर्माता द्वारा उनको अपनी उत्पाद न दिये जाने की स्थिति में वे क्या करें?

हानि—इस रीति–नीति का प्रमुख दोष यह है कि प्रायः निर्माता ऐसे मध्यस्थों को पसन्द नहीं करते क्योंकि इस रीति–नीति के अन्तर्गत निर्माता के ब्राण्ड की उत्पादों की बिक्री कम होती है।

III. **अन्य ब्राण्ड नीतियां (Other Brand Policies)**—वस्तुओं के ब्राण्ड के सम्बन्ध में कुछ अन्य नीतियां भी हैं जो निम्न प्रकार हैं:

1. **बहुब्राण्ड नीति** (Multiple Brand Policy)—यह वह नीति है जिसमें एक समान वस्तुओं व किस्मों के लिए अलग–अलग ब्राण्डों का उपयोग किया जाता है जिससे कि विभिन्न बाजारों की विभिन्न विक्रय अपीलों को सन्तुष्ट किया जा सके। लेकिन विद्वानों का कहना है कि यह नीति विपणन हेतु तो उपयुक्त है, परन्तु जोखिमपूर्ण है।

2. **वस्तु-रेखा ब्राण्डिंग** नीति (Product-line Branding Policy)—यह नीति उन संस्थाओं द्वारा अपनायी जाती है जो कई वस्तु–रेखा की वस्तुएं बनाती हैं। इसमें वे प्रत्येक रेखा के लिए एक वस्तु–रेखा ब्राण्डिंग नीति अपनाती हैं।

पैकेजिंग का आशय एवं परिभाषा
(Meaning and Definition of Packaging)

वस्तु–नियोजन वस्तु की उन विशेषताओं को तय करता है जिनसे कि उपभोक्ताओं की असंख्य इच्छाओं को सर्वोत्तम ढंग से पूरा किया जा सके, वस्तुओं में विक्रय योग्यता को जोड़ा जा सके और उन विशेषताओं को तैयार वस्तुओं में शामिल किया जा सके। पैकेजिंग वस्तु (Product) की उन विशेषताओं में से एक है जो तय करता है कि उपभोक्ताओं (Consumers) की इच्छाओं को सर्वोतम ढंग से कैसे पूरा क्या जा सकता है।

पैकेजिंग वस्तु–नियोजन से सम्बन्धित है यह वस्तु के सुरक्षित एवं उपयोग हेतु आधानपात्र (Containers) व लपेटने (Wrapping) के समान बनाने एवं वस्तुओं को उस आधानपात्र में रखने या लपेटने के पदार्थों में बन्द करने से सम्बन्धित है।

पैकेजिंग की परिभाषा
(Definition)

पैकेजिंग का अर्थ भिन्न–भिन्न विद्वानों ने भिन्न–भिन्न प्रकार से लगाया है। इस सम्बन्ध में कुछ प्रमुख परिभाषाएं निम्न प्रकार हैं—

1. **प्रो. विलियम जे. स्टाण्टन** के अनुसार, "पैकेजिंग को वस्तु–नियोजन की उन सामान्य क्रियाओं के समूह की परिभाषित किया जा सकता है जिसमें किसी वस्तु के लिए लपेटने या आधानपत्र का उत्पादन करने और उनका डिजाइन बनाने से सम्बन्धित हैं।''

2. **प्रो. आर. एस. डावर** के शब्दों में, "पैंकेजिंग वह कला और/या विज्ञान है जो एक वस्तु को किसी आधानपत्र में बन्द करने या आधानपात्र को वस्तु के संवेष्ठन के उपयुक्त बनाने हेतु सामग्रियों, ढंगों और साज–सज्जा के विकास एवं प्रयोग से सम्बन्धित है जिससे वस्तु वितरण की विभिन्न अवस्थाओं से गुजरते समय पूर्ण रूप से सुरक्षित रहे।''

3. **मैसन व रथ** के मत में, "आधानपात्र व लपेटने वाले सामान का उपयोग पैकेजिंग है जिसमें लेबिल लगाना व सजाना भी शामिल है जिससे वस्तु सुरक्षित रहे, उसकी बिक्री करने में सहायता मिले तथा उस वस्तु को उपभोक्ता के द्वारा काम में लाने में सुविधा रहे।''

इन परिभाषाओं से यह बात स्पष्ट हो जाती है कि पैकेजिंग में आधानपात्र व लपेटने वाले समान ही नहीं आते बल्कि उनका निर्माण करना भी आता है। इन दोनों बातों के अतिरिक्त इसमें लेबिल लगाना, आधानपात्र की डिजाइन बनाना व उनको सजाना भी शामिल है।

पैकेज के लक्षण या विशेषताएं
(Characteristics of Package)

पैंकेजिंग की प्रमुख विशेषताएं निम्नलिखित हैं—

1. पैकेजिंग का मुख्य उद्देश्य वितरण की विभिन्न अवस्थाओं के समय उत्पाद को सुरक्षित पहुंचाना है।
2. पैकिंग सामग्री (कन्टेनर्स एवं रेपर्स) के निर्माण तथा डिजाइनिंग तथा उत्पादों के पैकिंग से सम्बन्धित है।
3. पैकेजिंग के अन्तर्गत लेबलिंग एवं ब्रांडिग की क्रियाएं भी शामिल हैं।
4. पैकिंग, पैकेजिंग का ही अंग है।
5. ग्राहक के मन में उत्पाद के प्रति रुचि उत्पन्न करना है।
6. ग्राहक का उत्पाद से पहचान कराता है।

पैकेजिंग क्रियायें एवं नीतियां
(Packaging Activity and Policies)

'पैकेजिंग' से आशय (Meaning of Packaging)–विपणन के क्षेत्र में पैकेजिंग एक नया व्यवहार तथा अपूर्व संवर्द्धनात्मक तकनीक है।[3] **विलियम जे. स्टेन्टन** के शब्दों में "पैकेजिंग को उत्पाद नियोजन की क्रियाओं के उस सामान्य समूह से परिभाषित किया जात सकता है जिसमें उत्पाद के लिए कन्टेनर अथवा रेपर का निर्माण एवं अभिकलन सम्मिलित होता है।"[4] **मेसन एवं रथ** के शब्दों में, "पैकेजिंग से आशय आधानपात्र (Container) एवं लौटने वाले (Wraper) सामान जिसमें लेबिल लगाना एवं सजाना सम्मिलित है के उपयोग से है ताकि उत्पाद सुरक्षित रहे, उसके विक्रय में सहायता मिले, और उसके प्रयोग में उपभोक्ता को सुविधा रहे।[5] भारतीय विद्वान् **आर.एस.डावर** के शब्दों में "पैकेजिंग वह कला और या विज्ञान है जो एक उत्पाद को किसी कन्टेनर में बन्द करने या कन्टेनर को उत्पाद के पैकिंग के उपयुक्त बनाने हेतु सामग्रियों, विधियों एवं उपकरणों के विकास तथा उपयोग से सम्बन्धित है ताकि वितरण की विभिन्न अवस्थाओं के दौरान उत्पाद पूर्णतः सुरक्षित रहे।"[6]

उपर्युक्त परिभाषाओं से स्पष्ट है कि **"पैकेजिंग एक ऐसी कला एवं विज्ञान है जो उत्पाद के सुरक्षित वितरण एवं उपभोग हेतु उपयुक्त कन्टेनर्स और रेपर्स बनाने में तथा उत्पाद को उन कन्टेनर्स में बन्द करने से सम्बन्ध रखता है।"** पैकेजिंग की प्रमुख विशेषतायें इस प्रकार हैं–

(1) पैकेजिंग एक विज्ञान है।

(2) पैकेजिंग उत्पाद नियोजन की उन क्रियाओं का समूह है जो पैकिंग सामग्री अर्थात् कन्टेनर्स एवं रेपर्स के निर्माण तथा डिजाइनिंग और वस्तुओं की पैकिंग से सम्बन्धित होती है।

(3) पैकजिंग एवं पैकिंग में अन्तर होता है। पैकिंग वस्तुतः वस्तुओं को कन्टेनर्स एवं रेपर्स में बन्द करना होता है जबकि पैकेजिंग में कन्टेनर्स एवं रेपर्स का निर्माण तथा उपयोग सम्मिलित होता है।

(4) पैकेजिंग में लेबलिंग एवं ब्रांडिंग की क्रियाएं स्वतः ही सम्मिलित हो जाती हैं क्योंकि लेबल पैकेज पर लगाया जाता है तथा ब्राण्ड प्रायः लेबल पर लगी होती है।

(5) पैकेजिंग का प्रमुख उद्देश्य वितरण की विभिन्न अवस्थाओं के दौरान वस्तु को सुरक्षित पहुंचाना और ग्राहकों को उपयोग–सुविधायें एवं संरक्षण आश्वासन प्रदान करना होता है।

पैकेजिंग के उद्देश्य
(Objectives of Packaging)

पैकेजिंग कार्यक्रमों का मूलभूत उद्देश्य फर्म के लाभों में वद्धि करना, लागतों में कमी करना[7] और ग्राहकों को वस्तु संरक्षण एवं उपयोग में सुविधायें उपलब्ध करना होता है। पैकेजिंग के प्रमुख उद्देश्य निम्नानुसार हैं।[6८]

1. **उपभोक्ता जरूरतों को पूरा करना**–पैकेजिंग द्वारा उपभोक्ताओं की वस्तु–संरक्षण एवं उपयोग–सुविधा सम्बन्धी जरूरतें पूरी की जाती हैं। उपभोक्ता एक स्थान से दूसरे स्थान पर वस्तु को सुविधापूर्वक लाना–ले जाना भी चाहते हैं। उदाहरण के लिए पिकनिक पर जाते हुए उपभोक्ता ट्रान्जिस्टर या रेकॉर्ड–प्लेयर ले जाना चाहेंगे, अथवा कैमरा ले जाना चाहेंगे। उनकी ये जरूरते तभी पूरी हो सकती हैं, जबकि पैकेजिंग परिवहन एवं उसके दौरान टूट–फूट से बचाव करे।

2. **कुल उपभोक्ता-मांग में वद्धि करना** –विपणन संस्था की दष्टि से पैकेजिंग का उद्देश्य वस्तु की बिक्री को बढ़ाना होता है। पैकेजिंग के द्वारा इस उद्देश्य की पूर्ति भली प्रकार की जा सकती है। पैकजिंग उत्पाद–परिचय देता है तथा उत्पाद

---

3 Cundiff, Still and Govoni op. cit., p. 268.

4 W.J. Stanton, op. cit., p. 228.

5 Mason and Rath, "Marketing and Distribution", p. 286.

6 R.S. Daver, op. cit., p. 280.

7 W.J. Stanton, ot. cit., pp. 229-230.

8 Based on R.S. Daver, op. cit., p. 281.

के स्मरण में ग्राहकों को सहयोग करता हैं। अनेक संस्थाओं का स्पष्ट कहना है कि हम वर्षों से केवल पैकेज–परिवर्तन ही कर सके हैं।[9] पैकेजिंग विक्रय सन्देश ग्राहकों तक पहुंचाता है और उन्हें क्रय निर्णय लेने में सहयोग करता है जिससे उपभोक्ता–मांग बढ़ती है।[10]

3. **विद्यमान उपभोक्ता मांग का अनुकूल पुनर्वितरण करना**–पैकेजिंग का अन्य उद्देश्य किसी संस्था के उत्पाद की गिरती हुई दशा को सुधारना एवं विद्यमान मांग को अपने अनुकूल पुनर्वितरित करना भी होता है। इस उद्देश्य की पूर्ति हेतु नये, आकर्षक एवं पुनः प्रयोग–योग्य पैकेज[11] काम में लिये जाते हैं।

4. **वितरण के दौरान वस्तु संरक्षण एवं लागतों में कमी करना**–उत्तम पैकेजिंग उत्पादन केन्द्र से उपभोक्ता–केन्द्रों तक वस्तु के परिवहन में वस्तु की पूरी सुरक्षा करता है, उसे धूल, पानी, नमी, कीड़ों–मकोड़ों एवं मिलावट से बचाता है और टूट–फूट से उसका बचाव करता है ताकि वस्तु खराब नहीं होती है, छीजन नहीं हो पाता है और बदलने या उसकी कीमत में कमी नहीं करनी पड़ती है। ये बचतें वितरण लागत में कमी कर देती हैं।

5. **उत्पाद व्यक्तित्व को अभिव्यक्त करना**–पैकेजिंग का अन्य महत्वपूर्ण उद्देश्य उत्पाद व्यक्तित्व को अभिव्यक्त करना है और उत्पाद की छवि को समुन्नत बनाना है। यह ध्यान देने योग्य बात है कि पैकेजिंग का कार्य उत्पाद के व्यक्तित्व का निर्माण करना नहीं है। जिस प्रकार उत्तम सौन्दर्य–प्रसाधन एक सुन्दर लड़की के व्यक्तित्व को निखार देते हैं उसी प्रकार, उत्तम पैकजिंग उत्पाद की छवि एवं उसके व्यक्तित्व को नाटकीय किन्तु सरलता से पहचान–योग्य रूप में अभिव्यक्त कर देता है।[12]

पैकेज के कार्य
(Functions of Package)

पैकेज से आशय उत्पाद–रेखा की मदों के लिए कन्टेनर अथवा रेपर से लिया जाता है जो ब्राण्ड–पहचान पैदा करने एवं बनाये रखने में महत्वपूर्ण भूमिका अभिनीत करती है।[13] विपणन क्षेत्र में जहां स्व–सेवा के आधार पर क्रय की प्रवत्ति सुपर बाजारों की स्थापना के बढ़ने के साथ–साथ बढ़ती जा रही है, वहां पैकेज विक्रय–प्रतिनिधि अर्थात् विक्रेताओं का स्थान ग्रहण करते जा रहे हैं। अन्य फुटकर भण्डारों या दुकानों पर भी विक्रेताओं से पहले पैकेज ग्राहकों से क्रय–अपील करते दिखाई देते हैं।[14] इस स्थिति ने पैकेज की क्रियात्मक भूमिका में परिवर्तन करना प्रारम्भ कर दिया हे और पैकेज के कार्य विक्रेताओं के कार्यों का स्थान ग्रहण करने लगे हैं। आज पैकेज ऐसा विक्रेता बनाता जा रहा है और उपभोक्ताओं के साथ निजी सम्पर्क स्थापित करने का दायित्व निभा रहा है जिस पर संस्था के प्रबन्धक पूर्ण नियन्त्रण रख सकते हैं। इस प्रकार पैकेज उत्पाद छवि एवं व्यक्तित्व के प्रदर्शन का परमावश्यक कार्य कर रहा है। पैकेज के अन्य परम्परागत कार्य निम्नानुसार हैं–

1. **संरक्षण (Protection)**–पैकेज उत्पादन केन्द्रों तक वस्तुओं के परिवहन के दौरान, उनके संग्रहण के समय और ग्राहकों के घर में तथा उनके वर्तमान उपोग व भावी उपयोग की स्थितियों में उनका संरक्षण करता है। पैकेज वस्तुओं की जिन्दगी को बढ़ा देता है और निर्माता, वितरक एवं ग्राहक वर्ग को आर्थिक लाभ उपलब्ध करता है।

2. **सुविधा (Convenience)**–पैकेज वस्तुओं को लाने–ले–जाने, खोलने–बन्द करने, उठाने–रखने आदि के समय उत्पादकों, वितरकों एवं ग्राहकों को सुविधायें उपलब्ध करते हैं।

3. **पहचान (Identification)**–पैकेज ग्राहकों एवं उपभोक्ताओं के मस्तिष्क में उत्पाद–पहचान उत्पन्न करता है और प्रतिस्पर्धी वस्तुओं के प्रतिस्थापन को रोकने का कार्य करता है। इस प्रकार पैकेज विज्ञापन का कार्य करता है।

---

9 Libson and Darling, op. cit., pp. 641-642.

10 Cundiff, Still and Govoni, op. cit., p. 268.

11 उदाहरण के लिए वनस्पति घी के पैकेज, चाय या काफी के पैकेज, तेल या क्रीम की शीशियां, दूध के डिब्बे, प्लास्टिक–थैलियों में बन्द खाद्य–सामग्री के पैकेज अन्य वस्तुओं के भण्डारण हेतु काम में आते हैं। ग्राहक वस्तु के क्रय के समय पैकेज की कीमत भी आंकता है।

12 Ernest Dichter “the man in the Pakage” vid the book, “Readings in Marketing Management” edited by Harper W. Boyal, Jr. and M.C. Kappor, 1967, p. 309.

13 Lipson and Darling, op. cit., p. 641.

14 Ernest Dichter, op. cit., 307.

4. **विभेदीकरण (Differentiation)**—पैकेज एक फर्म के उत्पादों को अन्य प्रतिस्पर्धी फर्मों के उत्पादों से भिन्न प्रकट करता है। जहां उत्पाद गुण, मूल्य एवं आकार में एक समान होते हैं वहां पैकेज भिन्नता ही प्रायः ग्राहक–क्रय निर्णयों का आधार बनती है। यहा कारण है कि नये पैकेज सफलता के साथ प्रतिस्पर्धा करते हुए दिखाई देते हैं और ब्राण्ड–स्थापना का महत्वपूर्ण कार्य आसानी से कर लेते हैं।[15] पैकेज कीमत–विहीन प्रतियोगिता में महत्वपूर्ण हथियार का कार्य करता है।

5. **विक्रय सहायक (Helps the Selling)**—पैकेज बिक्री–प्रक्रिया में तथा दुकानों पर विज्ञापन में वस्तुओं के आकर्षण को बढ़ा देता है और उत्पाद–लाभों व उनके प्रयोग की रीतियों के बारे में वितरकों एवं उपभोक्ताओं को शिक्षित करता है। परिणामस्वरूप विक्रय–प्रक्रिया में पैकेज बिक्री समाप्ति में सहयोग करता हैं इसे पैकेज का बिक्री कार्य एवं संवर्द्धनात्मक कार्य कहा जा सकता है।

पैकेजिंग एवं पैकिंग में अन्तर
(Distinction between Packaging and Packing)

प्रायः लोग पैकेजिंग और पैकिंग को एक ही मानते हैं एवं दोनों का समान अर्थों में ही उपयोग करते हैं। किन्तु इन दोनों में अन्तर है। पैकिंग (Packing) में उत्पादों को आधानपात्रों (Containers) तथा लपेटनों (Wrapping) में बन्द करना होता है, जबकि पैकेजिंग में इन आधानपात्रों तथा लपेटनों का निर्माण एवं उपयोग भी सम्मिलित है। अतः पैकिंग वास्तव में पैकेजिंग का ही अंग है।

पैकेजिंग के लाभ
(Advantages of Packaging)

पैकेजिंग के लाभों को तीन भागों में वर्गीकृत किया जा सकता हैः—

1. निर्माताओं को लाभ—i. **सुरक्षा**—पैकेजिंग वस्तु को खराब होने से बचाता है तथा उसकी क्वालिटी में अन्तर नहीं आने देता। ii. **मिलावट में रुकावट**—वस्तुओं में मिलावट की सम्भावनाएं कम हो जाती हैं। iii. **विक्रय संवर्द्धन**—पैकेजिंग से विज्ञापन करने एवं उस पर ब्राण्ड छापने में आसानी रहती है जो विक्रय संवर्द्धन का कार्य करता है। iv. **भण्डार में सुविधा**—वस्तु को बिकने तक के समय तक आसानी से भण्डार किया जा सकता है। v. **ख्याति वद्धि**— अच्छी पैकेजिंग निर्माता की ख्याति में वद्धि करता है।

2. **मध्यस्थों को लाभ**—i. **भण्डार में सुविधा**—मध्यस्थों को पैकेजिंग को भण्डार करने में सुविधा रहती है। ii. **मार्ग में सुविधा**—वस्तुओं को एक स्थान से दूसरे स्थान पर भेजने में सुविधा रहती है। iii. **ग्राहकों को दिखाने में आसानी**—ग्राहकों को दिखाने में आसानी रहती है। iv. **स्वयं विज्ञापन**—अच्छा पैकेजिंग वस्तु का स्वयं ही विज्ञापन करता है जिससे उसको वस्तु बेचने में सुविधा रहती है।

3. **उपभोक्ताओं को लाभ**—i. **लाने में सुविधा**—पैकेजिंग उपभोक्ताओं को लाने में सुविधा प्रदान करता है। ii. **मिलावट की सम्भावनाएं कम**—उपभोक्ता को वस्तुएं मूल रूप में मिलती हैं और उनमें मिलावट की सम्भावनाएं कम हो जाती हैं। iii. **सलाह**—पैकेजिंग के साथ छपा हुआ साहित्य उपभोक्ता को वस्तु के उचित प्रयोग की सलाह देता है जिससे उपभोक्ता उसका पूरा–पूरा लाभ उठा लेते हैं।

पैकेजिंग नीतियां एवं रीति-नीतियां
(Packaging Policies and Strategies)

पैकेजिंग की कुछ प्रमुख रीति–नीतियां निम्न प्रकार हैंः—

1. **पैकेज परिवर्तन** (Changing the Package)—प्रायः कम्पनियां अपने उत्पाद को नवीन रूप देने और उपभोक्ताओं की संतुष्टि हेतु पैकेज परिवर्तन की रीति–नीति का अनुसरण करती हैं। सामान्य रूप से कम्पनियों द्वारा पैकेज परिवर्तन निम्न दो

---
[15] Lipson and Darling, op. cit., p. 642.

अवस्थाओं में किया जाता है—1. विक्रय में कमी, एवं 2. नये ग्राहक समूहों को आकर्षित कर बाजार विस्तार करना।

इसके अतिरिक्त जब कम्पनी को अपने विद्यमान पैकेज में कोई दोष दिखाई देने लगे तो भी वह उसे सुधारने हेतु परिवर्तन का निर्णय ले सकती है, जैसे—पैकेज पर्याप्त हवाबन्द (Air Tight) नहीं है अथवा खोलने के पश्चात् वह रिसने (Leak) लगता है।

2. **उत्पाद-पंक्ति पैकेजिंग** (Packaging Product Line)—एक कम्पनी को यह निर्णय लेना पड़ता है कि वह सभी उत्पादों के लिए सामान्य विकसित करने वाले पैकेजों का प्रयोग करें अथवा भिन्न–भिन्न प्रकार के उत्पादों के लिए भिन्न–भिन्न दिखने वाले पैकेजों का प्रयोग करें। पारिवारिक या वर्गनुमा पैकेजिंग (Family Packaging) के अन्तर्गत सभी उत्पादों के लिए समान पैकेज तैयार किया जाता है अथवा सभी पैकेज पर कुछ समान विशेषताओं या लक्षणों का प्रयोग किया जाता है। वर्गनुमा पैकेजिंग का प्रयोग करने से मुख्य लाभ यह होता है कि नवीन उत्पादों को भी पुराने उत्पादों की प्रतिष्ठा का लाभ मिल जाता है, साथ ही ग्राहकों के लिए कम्पनी के उत्पादों की पहचान करना सरल हो जाता है। जिन उत्पादों के लिए वर्गनुमा पैकेजिंग की रीति–नीति का प्रयोग किया जाये वे प्रयोग की दष्टि से संबंधित और समान किस्म के हों।

3. **पुनः प्रयोग पैकेजिंग** (Re-use Packaging)—पैकेजिंग की इस रीति–नीति के अन्तर्गत ऐसे पैकेज का प्रयोग किया जाता है जो उत्पाद का उपभोग करने के पश्चात् भी अन्य कार्यों में प्रयुक्त किया जा सके, जैसे—डालडा और रथ घी के डब्बे घी के प्रयोग के पश्चात् भी घरों में अन्य समान रखने में प्रयुक्त किये जाते हैं। इस रीति–नीति का तभी प्रयोग किया जाना चाहिए जबकि इसके द्वारा ग्राहकों पर यह प्रभाव डाला जा सके कि उन्हें अतिरिक्त लागत के प्रतिफल में अतिरिक्त लाभ या उपयोगिता मिल रही है। साथ ही रीति–नीति से पुनः क्रय को प्रोत्साहन मिलना चाहिए, अन्यथा पुनः प्रयोग में आने वाले पैकेज निर्माता के लिए लाभप्रद सिद्ध नहीं होगा।

4. **बहु-इकाई पैकेजिंग** (Multiple Packaging)—बहु–इकाई पैकेजिंग की रीति–नीति भी काफी प्रचलित है। इसके अन्तर्गत पैकेज में उत्पादन की अनेक इकाइयां रखी जाती हैं। अनेक उत्पादों के संबंध में यह रीति–नीति देखने को मिलती है, जैसे—चादरें, तौलिये, बनियान, फाउण्टेन पेन, टेनिस या गोल्फ खेलने की गेदें, साबुन आदि। बहु–इकाई पैकेजिंग से उत्पाद के कुल विक्रय और इकाई विक्रय में वद्धि होती है। इस रीति–नीति द्वारा नवीन उत्पादों के लिए ग्राहकों की स्वीकृति प्राप्त करने में काफी सहायता मिलती है।

पैकेजिंग निर्णय
(Packaging Decision)

साधारण शब्दों में पैकेजिंग के संबंध में निर्णय लेना पैकेजिंग कहलाता है। विस्तत शब्दों में पैकेजिंग निर्णय के अन्तर्गत पैकेज डिजाइन (Package Design), पैकेज आकार (Package Size), पैकेज लागत (Package Cost), पैकेज परीक्षण (Package Test) तथा पैकेजिंग आधार (Packaging criteria) संबंधी निर्णय लिए जाते हैं।

1. **पैकेज डिजाइन** (Package Design)—पैकेज के डिजाइन के संबंध में पांच प्रकार के निर्णय लिये जाते हैं—

   i. पैकेज के लिये किस प्रकार के माल का प्रयोग करना चाहिए?

   ii. पैकेज का डिजाइन क्या होगा?

   iii. पैकेज पर किन रंगों का प्रयोग किया जाएगा?

   iv. पैकेज पर क्या लिखा या दर्शाया जायेगा?

   v. पैकेज पर ब्राण्ड का नाम एवं व्यापारिक चिन्ह क्या होगा?

   इसके अतिरिक्त पैकेज के डिजाइन के संबंध में निर्णय लेते समय मध्यस्थों और उपभोक्ताओं की सुविधा को भी ध्यान में रखा जाता है जिससे कि उत्पादन को उठाने रखने में असुविधा न हो। पैकेज के डिजाइन के निर्णय को कुछ अन्य

घटक भी प्रभावित करते हैं जैसे—उत्पाद का स्वभाव, लागत, प्रचलित मूल्य, आकार, विज्ञापन एवं कानूनी प्रतिबन्ध आदि।

2. **पैकेज आकार** (Package Size)—उत्पाद के पैकेज के आकार का निर्णय उपभोक्ताओं द्वारा उत्पाद की क्रय की जाने वाली मात्रा पर निर्भर करता है, जैसे—सिगरेट, प्रायः थोड़ी मात्रा में खरीदी जाती है। इसीलिए इनके पैकेज साधारणतया 10 या 20 सिगरेटों के होते हैं।

3. **पैकेज लागत** (Package Cost)—उत्पाद के पैकेज के निर्णय लेने में पैकेज की लागत को भी ध्यान में रखना चाहिए। पैकेज की लागत के संबंध में निर्णय लेते समय उत्पाद की सुरक्षा एवं उपभोक्ता की क्रय—शक्ति को भी ध्यान में रखना चाहिए।

4. **पैकेज परीक्षण** (Package Test)—पैकेज के संबंध में उपरोक्त निर्णय लेने के बाद पैकेज परीक्षण से यह देखा जाता है कि पैकेजिंग निर्णय उचित है या नहीं। इसके लिए चार प्रकार के परीक्षण किए जाते हैं—

   i. **तांत्रिक परीक्षण**—पैकेज डिजाइन उत्पाद की सुरक्षा के लिए उचित है अथवा नहीं?

   ii. **दष्टिगत परीक्षण**— पैकेज देखने की दष्टि से सुन्दर और आकर्षक है अथवा नहीं?

   iii. **मध्यस्थ परीक्षण**—मध्यस्थों के दष्टिकोण से पैकेज उचित है अथवा नहीं?

   iv. **उपभोक्ता परीक्षण**—उपभोक्ता उस पैकेज को पसन्द करते हैं अथवा नहीं?

   यदि कोई पैकेज परीक्षण की इन चारों कसौटियों पर खरा उतरता है तो उस पैकेज के संबंध में अन्तिम निर्णय ले लिया जाता है, अथवा पैकेजिंग निर्णय की प्रक्रिया को फिर दोहराया जाता है।

5. **पैकेजिंग आधार** (Packaging Criteria)—पैकेज उत्पाद का सही प्रतिनिधित्व करने वाला होना चाहिए। इस आधारभूत घटक को ध्यान में रखते हुए सुविधा (Convenience), अपनाने योग्य (Adaptability), सुन्दरता आदि आवश्यक विशेषताओं के साथ स्तर की छवि (Image of Status) और निर्भरता तथा विश्वस्तता (Dependability) के गुणों को भी पैकेज में सम्मिलित किया जाना चाहिए।

लेबिलिंग
(Labelling)

पैकेजिंग और ब्राण्ड के साथ लेबिल का घनिष्ठ संबंध होता है। साधारणतया यह पैकेज का ही एक भाग होता है। कभी—कभी लेबिल के लिए उत्पाद के साथ में अलग से एक चिट संलग्न कर दी जाती है। वस्तु के साथ विक्रेता के बारे में या उत्पाद के बारे में प्रायः सूचना दी हुई होती है। जिस पैकेज या चिट पर यह सूचना दी हुई होती है उसे लेबिल कहते हैं।

विलियम जे. स्टेण्टन (William J. Stanton) के अनुसार, ''लेबिल उत्पाद का वह भाग है जिस पर उत्पाद और विक्रेता (निर्माता या मध्यस्थ) के संबंध में मौखिक सूचना दी गई होती है। एक लेबिल पैकेज का भाग हो सकता है या उत्पाद के साथ प्रत्यक्ष रूप से संलग्न की गई एक चिट के रूप में हो सकता है।''

मैसन एवं रथ (Meson and Rath) के अनुसार, ''लेबिल सूचना देने वाली चिट, लपेटने वाला कागज या सील है जो उत्पाद या पैकेज के साथ जुड़ी हुई होती है।''

उपरोक्त परिभाषाओं के विश्लेषणात्मक अध्ययन के आधार पर यह कहा जा सकता है कि लेबिल, उत्पाद, उसके निर्माता या विक्रेता के संबंध में सूचना देने वाली चिट होती है जो उत्पाद या उसके पैकेज के साथ लगी होती है। लेबिल लपेटने वाले कागज या सील के रूप में भी हो सकते हैं।

लेबिलों के प्रकार
(Type of Labels)

लेबिलों के प्रकारों का वर्गीकरण निम्नांकित चार शीर्षकों के अन्तर्गत किया जा सकता है:—

1. **ब्राण्ड लेबिल** (Brand Label)—ब्राण्ड लेबिलों में केवल उत्पाद के ब्राण्ड का नाम ही दिया जाता है, जैसे—ब्रुक ब्राण्ड की ताजमहल चाय। यह उत्पाद या उसके पैकेज पर लगाया जाता है अर्थात ब्राण्ड लेबिल के लिए अलग से कोई चिट संलग्न नहीं की जाती। ऐसे लेबिलों से ग्राहकों को उत्पाद के संबंध में कोई सूचना नहीं मिलती। इस कारण नए ग्राहकों को आकर्षित नहीं किया जा सकता।

2. **वर्ग अथवा श्रेणी लेबिल** (Grade Label)—मैसन एवं रथ के मत से लेबिल में कोई शब्द, अंक, या अक्षर लिखे रहते हैं जो उस वस्तु की क्वालिटी या वर्ग (Quality or grade) को प्रदर्शित करते हैं। जैसे जय इंजीनियरिंग वर्क्स लिमिटेड, कलकत्ता द्वारा निर्मित पंखे 'ऊषा' ब्राण्ड के नाम से बिकते हैं परन्तु इनमें भी क्वालिटी के आधार पर अन्तर होता है और उन पर Prima, Deluxe व Continental के लेबिल लगे रहते हैं।

3. **विवरणात्मक लेबिल्स** (Descriptive Labels)—ये वे लेबिल्स होते हैं जो उत्पाद की विशेषताओं के बारे में छपी हुई सूचनाएं देते हैं। इन्हें कुछ व्यक्ति 'सूचनात्मक लेबिल्स' (Informative Labels) भी कहते हैं। किन्तु सूचनात्मक लेबिल्स वस्तुतः उत्पाद अंगों के बारे में विशिष्ट समंक जानकारी देते हैं। दवाइयां बनाने वाली कम्पनियां साधारणतः विवरणात्मक एवं सूचनात्मक लेबिल्स का प्रयोग करते हैं।

4. **संयोजन लेबिल्स** (Combination Labels)—ये वे लेबिल्स होते हैं जिनमें उपर्युक्त वर्णित तीनों प्रकार के लेबिल्स के तत्वों को अपने में सम्मिलित करते हैं। ऐसे लेबिल्स का प्रचलन तेजी से बढ़ता जा रहा है।

अध्याय-9
उत्पाद जीवन चक्र
(Product Life Cycle)

उत्पाद जीवन चक्र का महत्त्व
(Importance of Product Life Cycle)

मनुष्यों, पशुओं एवं पेड़–पौधों की भाँति उत्पादों का भी जीवन–चक्र होता है।[1] उत्पाद भी जन्म लेते हैं, युवावस्था में प्रवेश करते हैं, वद्ध होते हैं और अन्तिमतः मत्यु को प्राप्त होते हैं। इन विभिन्न अवस्थाओं के साथ होने वाला समायोजन उनके जीवन की सफलता का निर्धारण करता है।[2] प्राणी मात्रा की भाँति यदि उत्पाद अपने निर्माण काल में शक्ति का संचार एवं संचय नहीं करता है तो परिपक्वता (Maturity) के काल में उसकी सफलता सापेक्षिक रूप से संदिग्ध–सी हो जाती है। इतनी समानतायें होते हुए भी उत्पाद के जीवन–चक्र एवं मानव के जीवन–चक्र में कुछ महत्त्वपूर्ण भिन्नतायें होती हैं। सबसे प्रमुख भिन्नता तो यह होती है कि प्रत्येक मनुष्य औसतन 50 से 70-75 वर्ष तक जीवित रहता है। किन्तु, मनुष्य के जीवन–काल की भाँति किसी उत्पाद का न तो औसत जीवन–काल होता है और न ही उसे विवेक के आधार पर निश्चित किया जा सकता है।[3] यदि हम उत्पादों का जीवन–काल निश्चित भी करना चाहें तो यह औसत जीवन–चक्र प्रत्येक उत्पाद के साथ वैसे अलग–अलग होता है जैसे कि विभिन्न पेड़–पौधों एवं पशुओं का जीवन–काल अलग–अलग होता है। इसके अतिरिक्त, उत्पाद जीवन–चक्र की विचारधारा मानव जीवन–चक्र की विचारधारा की तुलना में काफी सरल भी होती है। इतने पर भी, मानव जीवन चक्र की भाँति उत्पाद जीवन–चक्र का अध्ययन विपणन प्रबन्धकों को अमूल्य जानकारी उपलब्ध कराने में सहयोग होता है। इसके अध्ययन से संस्थाओं के जीवन को गतिशीलता प्रदान की जा सकती है, प्रतियोगी स्थिति को बनाये रखा जा सकता है, लाभों का पूर्वानुमान लगाया जा सकता है, नये उत्पाद प्रस्तुतीकरण के समय को पहचाना जा सकता है एवं विपणन कार्यक्रमों को प्रभाव–पूर्ण रूप प्रदान किया जा सकता है।

उत्पाद जीवन-चक्र से आशय
(Meaning of Product Life Cycle)

उत्पाद–प्रस्तुतीकरण से लेकर बाजार–पतनावस्था तक उत्पाद विक्रय का क्रम 'उत्पाद जीवन–चक्र' कहा जाता है। फिलिप कोटलर के शब्दों में, उत्पाद जीवन–चक्र, उत्पाद के विक्रय इतिहास में विशिष्ट अवस्थाओं को पहचानने का एक प्रयास है। ऐसा विक्रय इतिहास चार अवस्थाओं से होकर गुजरता है जिन्हें प्रस्तुतीकरण, विकास, परिपक्वता एवं पतन के नाम से जाना जाता है।[4]

लिपसन एवं डारलिंग के शब्दों में, ''उत्पाद जीवन–चक्र से आशय बाजार–स्वीकरण की उन अवस्थाओं से है जिनमें एक उत्पाद अपने बाजार प्रस्तुतीकरण से लेकर अपने बाजार–प्रस्तुतीकरण, बाजार–विकास, बाजार–संतप्ति, बाजार–पतन एवं

---

1 Lipson and Darling, op cit., p.614

2 W.J. Stanton, op. cit., pp. 186-187 and Lipson and Darling, op. cit., p. 614 For a very perceptive discussion analysis of the life cycle of market offerings which is a wider term than the "Product life cycle", See Theodore Levitt, "Exploit the Product Life Cycle," HBR. Nov. Dec., 1965, pp. 81-94.

3 Arch Patton, "Top Management's Stake in a Product life cycle". Management Review, June 1959, pp. 9-14 & 67-71.

4 "The Product Life Cycle is an attempt to recognize distinct stages in the sales history of the product...the sales histories pass through four stages, known as introduction, growth, maturity and decline." –Phillip Kotler "Marketing management," p.429.

बाजार–मत्यु की अवस्थायें सम्मिलित होती हैं।[5]"

आवश्यकीय रूप से, उत्पाद जीवन–चक्र की विचारधारा निम्नलिखित तत्त्वों का स्वयं में समावेश करती हैं[6]:

(1) प्रत्येक उत्पाद का, व्यक्तियों, पेड़–पौधों एवं अन्य प्राणियों की भाँति एक जीवन–क्रम होता है।

(2) ऐसा जीवन–क्रम हर उत्पाद के बाजार–परिचय अर्थात् प्रस्तुतीकरण से प्रारम्भ होता है और बाजार–विकास एवं बाजार–परिपक्वता की अवस्था से गुजरता हुआ उसकी बाजार–मत्यु की अवस्था तक पहुंचकर समाप्त होता है।

(3) उत्पाद जीवन–चक्र की विभिन्न अवस्थाओं में उत्पाद के गुजरने की गति में भिन्नता होती है।

(4) इकाई लाभ विकासावस्था में तेजी से बढ़ते हैं और परिपक्वता की अवस्था में प्रतिस्पर्धा दबावों के कारण गिरने लगते हैं। इतने पर भी परिपक्वता की अवस्था में बिक्री मात्रा बढ़ती रहती है।

(5) लाभदेयता में परिवर्तन होने के साथ–साथ उत्पाद के सफल विदोहन हेतु उत्पाद के जीवन–चक्र की विभिन्न अवस्थााओं के दौरान इन्जीनियरिंग व अनुसन्धान, उत्पादन विपणन एवं वित्तीय नियंत्रण क्रियाओं में परिवर्तन करते रहना परमावश्यक होता है।

उत्पाद जीवन-चक्र की अवस्थायें एवं उनका प्रबन्ध
(Stages of Product Life Cycle and Their Management)

उत्पाद जीवन–चक्र को व्यावहारिक दष्टि से निम्न चार अवस्थाओं में विभक्त किया जा सकता हैः

I. **बाजार प्रस्तुतीकरण अवस्था (Market Introduction Stage):** उत्पाद जीवन–चक्र का प्रारम्भ उत्पाद को बाजार में प्रस्तुत करने के साथ होता है। इस अवस्था को जन्मवास्था अथवा परिचयावस्था भी कहा जाता है। इस अवस्था में संस्था उत्पाद का उत्पादन पूर्ण पैमाने पर करती है और विपणन कार्यक्रम भी पूर्ण स्तर पर विकसित एवं क्रियान्वित किये जाते हैं। इस अवस्था की प्रमुख विशेषतायें इस प्रकार हैंः

(1) फर्म को प्रतियोगिता का सामना नहीं करना पड़ता है क्योंकि प्रतियोगी संस्थायें अतिशीघ्र बाजार में प्रवेश नहीं कर पाती हैं। नवाचार करने वाली फर्म की सम्पूर्ण उद्योग मानी जाती है।

(2) ग्राहकों एवं उपभोक्ताओं को उत्पाद की व्यापक जानकारी नहीं होती है तथा जिन ग्राहकों एवं उपभोक्ताओं को उत्पाद की जानकारी होती है वे भी उत्पाद क्रय में संकोच करते हैं।

(3) फर्म सीमित क्षेत्र में वितरण कर पाती है और बिक्री की मात्रा धीरे–धीरे बढ़ती है।

(4) लागतें काफी ऊँची रहती हैं। फर्म को विस्तत विज्ञापन एवं संवर्द्धनात्मक प्रयासों को अपनाने की आवश्यकता पड़ती है। परिणामस्वरूप लागतों में वद्धि होती है और यह अवस्था जोखिमपूर्ण बन जाती है।

(5) सामान्यतया, इस अवस्था में भारी नुकसान होता है क्योंकि बिक्री की मात्रा न्यून होती है और संवर्द्धनात्मक लागतें बढ़ती हैं। इतने पर भी यदि किसी संस्था को कुछ लाभ होता है तो वह काफी कम ही होता है, इसके विपरीत, यदि किसी फर्म के उत्पाद को अत्यधिक ग्राहक स्वीकरण एवं ग्राहक–जानकारी प्राप्त होती है तो इस अवस्था में उत्पाद की माँग पूर्ति से बढ़ सकती है। किन्तु यह स्थिति बहुत कम फर्मो को ही उपलब्ध हो पाती है।

उत्पाद के बाजार प्रस्तुतीकरण की अवस्था में विपणन प्रबन्धकों को महत्त्वपूर्ण भूमिका अभिनीत करनी पड़ती है क्योंकि इस अवस्था में ही उत्पाद को सफलता या विफलता प्राप्त होती है। इस दष्टि से विपणन प्रबन्धकों को चाहिए कि वे विस्तत विज्ञापन तथा संवर्द्धनात्मक प्रयासों को अपनाकर प्रस्तुतीकरण की समयावधि को कम करने का प्रयास करें। इस अवस्था में प्रबन्धकों द्वारा नये उत्पाद का परीक्षण करो–की रीति–नीति को अपनाया

---

[5] "Life Cycle of market offerings – Stages of Market acceptance through which a market offering passes in a market offering's life cycle are market introduction, market growth, market saturation, market decline, and market death,"

– Lipson and Darling, Op. cit., 812

[6] Also See, Arch Paton, op. cit.

जाना चाहिए; जैसे 'टोरीन'—सुन्दर, सस्ते व टिकाऊ वस्त्रों के लिए एक महत्त्वपूर्ण खोज—इस अवस्था में बड़ी जोखिम होती है, इसे ध्यान में रखते हुए भी स्वीकार किया जाना चाहिए।

II. **बाजार विकास अवस्था (Market Grown Stage):** उत्पाद जीवन—चक्र में बाजार विकास को दूसरी अवस्था माना गया है। यह अवस्था ग्राहक—स्वीकरण की स्थिति को बतलाती है। इस अवस्था में ग्राहक उत्पाद को स्वीकार करने लगते हैं और फलस्वरूप, विक्रय—वद्धि होती है। इस अवस्था में सभी को लाभ होते हैं तथा प्रतियोगी बाजार में प्रवेश करते हैं। इस अवस्था की प्रमुख बातें निम्नानुसार हैं—

(1) उत्पाद के क्रय—विक्रय सम्बन्धी बाजार लेन—देन तीव्र गति से बढ़ते हैं चूँकि विज्ञापन एवं विक्रय संवर्द्धन प्रयासों से ग्राहकों को उत्पाद की जानकारी व्यापक पैमाने पर होने लगती है तथा वे उत्पाद स्वीकार करने लगते हैं।

(2) इस अवस्था में न केवल विक्रय परिणाम अपितु लाभ भी बढ़ते हैं। उत्पादकों, वितरकों एवं फुटकर व्यापारियों, सभी के लाभों में तीव्रता से वद्धि होने लगती है। विक्रय रेखायें एवं लाभ रेखायें ऊँची उठने लगती हैं।

(3) अधिक ऊँचे लाभ प्रतियोगियों को बाजार में प्रवेश करने हेतु आकृष्ट करते हैं, प्रेरणा एवं प्रलोभन देते हैं। परिणामस्वरूप वे अपनी ब्रांड प्रस्तुत करते हैं। प्रतियोगिता शनैःशनैः तीव्र होने लगती है। प्रतियोगिता इस स्थिति तक तीव्र हो जाती है कि यदि क्रेताओं को उनकी पसन्द की ब्राण्ड सरलता से न मिले तो वे अन्य ब्राण्ड क्रय करने लगते हैं।

(4) अनेक महत्त्वपूर्ण निर्णय इस अवस्था में लिये जाते हैं। जैसे—विशेष वितरण श्रंखला के चयन, बाजार विस्तार हेतु अनुसंधान, विज्ञापन नीति मार्गदर्शन आदि से सम्बन्धित निर्णय।

(5) इस अवस्था में, उत्पाद की कीमत कुछ कम हो जाती है चूँकि पहले व्यक्तिगत विक्रय द्वारा नये वितरण माध यम खोजे जाते हैं तथा बाद में प्रतिस्पर्धा के विरुद्ध विक्रय किया जाता है।

(6) उत्पाद के जीवन चक्र की इस अवस्था में प्रबन्धकों को चाहिए कि वे निम्नलिखित कार्य करें—

(i) उत्पाद की किस्म एवं उसमें नये गुणों के समावेश तथा आकार व आकृति पर ध्यान दें। यह सही है अधिकतर स्थितियों में ग्राहक उत्पाद की विकासावस्था में विषम (Uneven) किस्म की वस्तु भी स्वीकार कर लेते हैं। परन्तु उत्पाद के अच्छे भविष्य के हेतु उत्पादकों द्वारा किस्म एवं मात्रा दोनों पर ध्यान दिया जाना सर्वोत्तम रहता है।[7]

(ii) 'मेरी वस्तु का परीक्षण करो' के स्थान पर 'मेरी ब्राण्ड खरीदो' (Buy my Brand) की विज्ञापन एवं संवर्द्धनात्मक नीति को अपनाये।

(iii) फर्म की उत्पादन एवं वितरण कार्यकुशलता को बढ़ाये चूंकि इस अवस्था में विपणन सफलता के लिए ऐसी कार्यकुशलता महत्वपूर्ण घटक होती है।[8]

III. **बाजार परिपक्वता अवस्था (Market Grown Stage):** उत्पाद जीवन चक्र की तीसरी अवस्था को 'परिपक्वता अवस्था' कहा जाता है। कुछ विद्वान् इसे 'संतप्ति अवस्था' (Saturation Stage) भी कहते हैं। वस्तुतः इस अवस्था में दो स्थितियां उत्पन्न होती हैं। प्रारम्भिक स्थिति का **'परिपक्वता'** एवं पश्चात्वर्ती स्थिति को **'संतप्ति'** अवस्था कहा जाता है।

परिपक्वता अवस्था में—(1) प्रतियोगिता बढ़ने लगती है और प्रतियोगी शक्तियां लाभों को कम करने लगती हैं। (2) विक्रय घटती हुई दरों से बढ़ता है। विक्रय के बढ़ते रहने पर भी फर्म के लाभ गिरने लगते हैं क्योंकि उत्पादन एवं विक्रय की अधिकता के कारण बाजार संतप्त होने लगता है। (3) पूर्ति मांग की तुलना में पहली बार अधिक होने लगती है और प्रतियोगी फर्मों द्वारा भारी संवर्द्धनात्मक खर्चे किये जाने के कारण मांग—प्रोत्साहन (Demand Stimulation) एवं व्यापारी समर्थन (Dealer Support) आवश्यक हो जाता है। (4) कीमत गिरने लगती है और विपणन व्यय बढ़ने लगते हैं। (5) इस व्यवस्था के सभी उत्पाद पूर्णतः

---

7 Arch Paton has rightly pointed out that the extent to which a product at this stage, provides real consumer satisfaction will largly establish quality climate in which product will remain in later stages of its life cycle–See, Arch Paton, op. cit.

8 Cundiff, Still and Govoni, op. cit., p. 133.

विश्वसनीय होते है और उनमें संशोधन की गुजांइश बहुत कम होती है। यही नहीं, बल्कि उनके बीच चुनाव भी कठिन होता है। (6) उत्पादक को उपभोक्ता के निकट स्वयं पहुंचने का प्रयत्न करना पड़ता है और रचनात्मक विक्रय का विकास होता है। उत्पादक स्वयं की शाखायें अथवा फुटकर भण्डार स्थापित करता है।

संतप्ति अवस्था में –(1) बाजार में प्रतिस्थानापन्न विक्रय बढ़ने लगता है। (2) उद्योग का विक्रय उच्चतम सीमा पर पहुंचकर गिरने लगता है। कड़ी प्रतियोगिता का सामना करना पड़ता है। (3) बढ़ती हुई दर से लाभों में गिरावट आने लगती है। (4) उत्पादन सुविधायें तथा उत्पादन प्रक्रिया पुरानी हो जाती है तथा उनमें सुधार की आवश्यकता महसूस होने लगती है।

यह ध्यान देने योग्य बात है कि विभिन्न प्रकार के उत्पादों की दशा में बाजार परिपक्वता एवं संतप्ति की अवस्था का काल भी अलग–अलग होता है। उदाहरण के लिए कुछ सुविधा–उत्पादों (Convenience goods) की दशा में बाजार परिपक्वता एवं संतप्ति का काल लम्बा हो सकता है। **कंडिफ, स्टिल एवं गोवोनी** ने इसे अनेक महीनों अथवा वर्षों तक विस्तत माना है।[9] इन वस्तुओं की बिक्री संतप्ति बिन्दु तक पहुंचने के बाद भी एकदम नहीं गिरती है अपितु लम्बे समय तक स्थिर बनी रहती है। ऐसी वस्तुओं में नाश्ते एवं खाने–पीने की वस्तुएँ, सिगरेट, साबुन आदि को सम्मिलित किया जा सकता है। इसी प्रकार, जो वस्तुएं लम्बे समय तक उपयोग में आती हैं जैसे फर्नीचर, मशीनें, विद्युत उपकरण, घड़ियां आदि उनके जीवन–चक्र की इस अवस्था की समयावधि भी भिन्न होती है। ऐसी वस्तुओं के बारे में देखा गया है कि उनकी विकासावस्था के तुरन्त बाद ही वे संतप्ति बिन्दु पर पहुंच जाती है। किन्तु, ज्यों–ज्यों उनकी पुनर्स्थापन मांग की अवधि आने लगती है त्यों–त्यों उनकी बिक्री बढ़ने लगती है और कुल बाजार विक्रय पुनः स्थिर हो जाता है।[10]

विपणन प्रबन्धक इस अवस्था में उत्पाद के जीवन काल में बहुत कुछ सीमा तक वद्धि कर सकते हैं। इसके लिए, उन्हें नये पैकिंग, पुनर्मूल्यांकन, उत्पाद संशोधन (शैली सम्बन्धी), नये उपयोगों की खोज एवं रचनात्मक विक्रय के विकास सम्बन्धी कार्य करने होते हैं। इसके अतिरिक्त, विपणन कार्यक्रमों पर पुनर्विचार करना एवं संसाधनों की उचित देखभाल करना भी अत्यावश्यक होता है।

IV. **बाजार पतनावस्था (Market Decline Stage):** उत्पाद जीवनचक्र की अन्तिम अवस्था को बाजार–पतनावस्था अथवा बाजार–मत्यु अवस्था अथवा अप्रचलनावस्था के नाम से जाना जाता है। इस अवस्था में उत्पाद या तो अप्रचलित होता चला जाता है अथवा उसके स्थान पर एक नया उत्पाद प्रस्तुत किया जाता है अथवा उत्पाद को पूर्णतः बाजार परित्याग करना पड़ता है अथवा किसी विशिष्ट बाजार तक ही उत्पाद सीमित रह जाता है। वस्तुतः इस अवस्था में पारस्परिक प्रतिस्पर्धा अनेक उत्पादों को बाजार से बाहर कर देती है। इस अवस्था में, लागत नियन्त्रण की आवश्यकता मांग के कम हो जाने के कारण बढ़ जाती है। यही नहीं, बल्कि सभी प्रकार की उत्पाद–लागतों पर समन्वित नियन्त्रण भी परमावश्यक हो जाता है।[11]

कंडिफ, स्टिल एवं गोवोनी लिखते हैं इस अवस्था में उत्पाद का स्थान कोई नवीन उत्पाद अर्थात् नवाचार ग्रहण कर लेता है अथवा उपभोक्ता के क्रय–व्यवहार में परिवर्तन आने लगता है। प्रतियोगी कम होने लगते हैं। उद्योग का विक्रय बहुत कम होने लगता है। फर्मों की अति–उत्पादन क्षमता की स्थिति में कीमत ही मुख्य प्रतिस्पर्धी अस्त्र बन जाता है और फर्मों को विज्ञापन एवं संवर्द्धनात्मक खर्चों में अत्यधिक कमी करनी पड़ती है। सामान्यतया, अधिकांश प्रबन्धक, इस अवस्था में नये उत्पादों के विकास की ओर ध्यान देना प्रारम्भ करते हैं।[12]

बाजार पतनावस्था में विपणन प्रबन्धकों के लिए यह जरूरी होता है कि वे उत्पाद में नव–रक्त का संचार उतने समय तक के लिए अवश्य करें जितने समय में उनकी फर्म स्वयं ही अपने नये उत्पाद के साथ बाजार में आ जाये और बाजार विकासावस्था तक की स्थिति में पहुंच जाये। यह ध्यान देने योग्य बात है कि नव–रक्त–संचार स्थायी तौर पर नहीं किया जा सकता। अस्थायी

9 Ibid., p. 134.

10 Ibid., p. 135.

11 Arch Paton ने सभी प्रकार की उत्पादन लागतों में: इन्जिनियरिंग, निर्माणी एवं विपणन लागतों को सम्मिलित किया है।

12 Cundiff, Still Govoni, op., cit., p. 135.

तौर पर नव–रक्त–संचार के लिए नये बाजारों की खोज, उत्पाद के नये प्रयोगों की खोज तथा मामूली से स्वीकरणीय किन्तु कम खर्चीले संशोधन कार्य किये जा सकते हैं। कीमत प्रतियोगिता को भी अपनाना उत्तम रहता है।

उत्पाद के जीवन–चक्र की उपर्युक्त वर्णित अवस्थाओं को निम्नलिखित रेखाचित्रों की सहायता से भी भली प्रकार अभिव्यक्त किया जा सकता है और समझा जा सकता है,

चित्र 9.1 बतलाता है कि नवाचार करने वाली फर्म बाजार प्रस्तुतीकरण की अवस्था में एकाधिकारी स्थिति में होती है तथा उसे सम्पूर्ण उद्योग माना जा सकता है।

विक्रय एवं लाभ बढ़ते हैं। बाजार विकासवस्था में प्रतियोगी संस्थायें अपने उत्पादों के साथ प्रवेश करती हैं और बाजार–अंश में हिस्सा बंटाती है। किन्तु विक्रय की मात्रा भी बढ़ती रहती है और लाभ भी बढ़ते रहते हैं। परिपक्वता की अवस्था में विक्रय धीमी गति से बढ़ता है एवं लाभ कम होने लगते हैं। संतप्तावस्था में विक्रय लगभग स्थिर ही रहता है किन्तु लाभ की दर में कमी प्रारम्भ हो जाती है; कारण कि संवर्द्धन सम्बन्धी खर्चा बढ़ता है। पतनावस्था में विक्रय एवं लाभ दोनों ही तीव्रता से गिरते हैं। लाभ–रेखा ऋणात्मक हो जाती है। यद्यपि चित्र में चारों अवस्थाओं का काल बराबर दिखाया गया है किन्तु, व्यवहार में, बाजार विकास तथा पतन की अवस्थाएं भिन्न–भिन्न उत्पादों की दशाओं में भिन्न–भिन्न होती हैं।

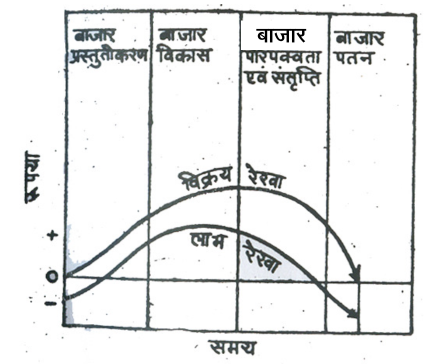

चित्र 9.1
उत्पादन जीवन-चक्र (नवाचार करने वाली फर्म का)

शीघ्र काम में लिये जाने वाले एवं पुनः क्रय किये जाने वाले कुछ सुविधा उत्पादों का जीवन–चक्र। (यह उद्योग की कुल बाजार बिक्री को बतलाता है)

चित्र 9.1 बतलाता है कि जो वस्तुएं शीघ्र उपयोग कर ली जाती हैं और जिन्हें पुनः शीघ्र खरीदना पड़ता है, उनका विक्रय परिपक्वता एवं संतप्ति की अवस्था में भी शीघ्र न गिरकर स्थिर रहता है और सामान्यतः यह काल लम्बा होता है।

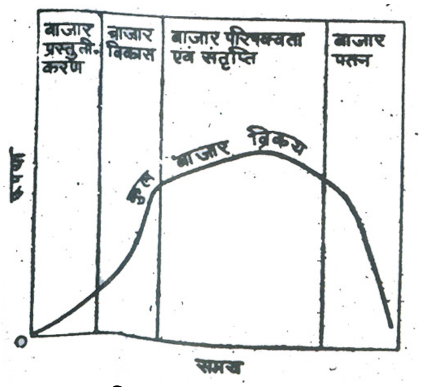

चित्र 9.2
उत्पादन जीवन-चक्र (नवाचार करने वाली फर्म का)

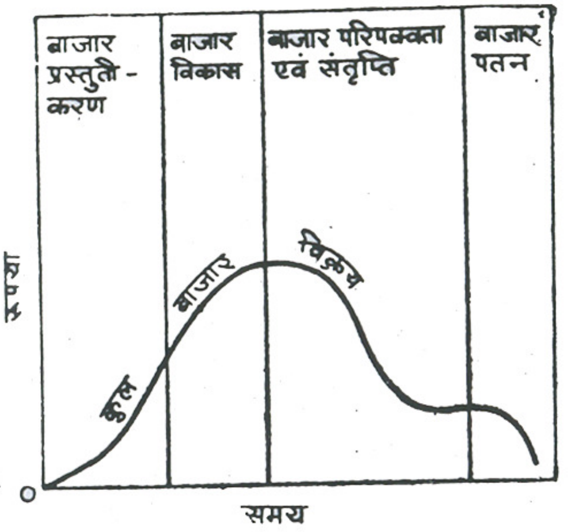

चित्र 9.3

टिकाऊ वस्तुओं के लिये उत्पाद जीवन चक्र

चित्र 9.3 बतलाता है कि टिकाऊ वस्तुओं की कुल बाजार विक्रय की मात्रा विकासावस्था के तुरन्त बाद संतप्ति के बिन्दु तक पहुंच जाती है और उनकी पुनर्स्थापन की मांग के पैदा होने के साथ–साथ बढ़कर स्थिर हो जाती है। पुनर्स्थापन की मांग की गति भी धीमी हो जाती है। इन वस्तुओं की बाजार पतनावस्था उस समय से प्रारम्भ होती है जबकि बाजार बिक्री स्थायी तौर पर गिरने लगती है।

चित्र 9.4 एक उद्योग के उत्पाद जीवन चक्र को प्रकट करता है। चित्र में तीन वक्र हैं। एक वक्र, कुल बाजार विक्रय को बतलाता है। दूसरा वक्र प्रतियोगी फर्मों की सापेक्षिक संख्या को बतलाता है तथा तीसरा वक्र कुल बाजार लाभ की स्थिति को बतलाता है। चित्र में लाभ वक्र से स्पष्ट होता है कि लाभ गिरते रहने पर भी एक समय तक के लिये (बाजार परिपक्वता की स्थिति तक) प्रतिस्पर्धी फर्मों की संख्या बढ़ती रहती है।

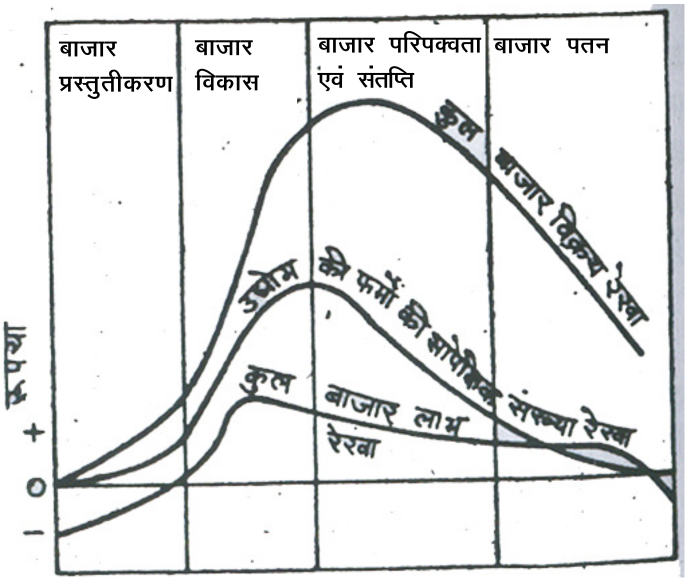

चित्र 9.4

उद्योग उत्पाद जीवन चक्र

उत्पाद जीवन चक्र को प्रभावित करने वाले घटक (Factors Affecting Product Life Cycle)

जायल डीन के मतानुसार तकनीकी परिवर्तनों की गति, बाजार–स्वीकरण की दरें एवं प्रतिस्पर्धी प्रवेश की स्थिति उत्पाद जीवन चक्र की लम्बाई को प्रभावित करती है।[13] प्रत्येक घटक का संक्षिप्त वर्णन निम्नानुसार है–

1. **तकनीकी परिवर्तनों की गतिः** तकनीकी परिवर्तनों की गति जितनी तीव्र होगी उत्पाद जीवन चक्र की लम्बाई उतनी ही कम होती चली जायेगी। इसके विपरीत यदि तकनीकी परिवर्तन धीमी गति से होंगे तो उत्पादों का जीवनकाल बढ़ जायेगा। यही कारण है कि अमेरिका, रूस, जापान, जर्मनी एवं इंग्लैण्ड जैसे राष्ट्रों में तकनीकी परिवर्तनों की गति ज्ञान–विज्ञान की सतत नवीन खोजों के कारण काफी बढ़ गई और परिणामस्वरूप वहाँ उत्पादों का जीवन चक्र छोटा होता जा रहा है। इसके विपरीत भारत, लंका, बर्मा, पाकिस्तान एवं बंगलादेश जैसे देशों में जहाँ तकनीकी परिवर्तनों की गति तीव्र नहीं है, उत्पादों का जीवन चक्र अपेक्षाकृत काफी लम्बा है। अमेरिका में टेलीविजन उत्पाद संतप्ति अवस्था तक पहुंच गये हैं जबकि विकासमान राष्ट्रों में टेलीविजन उत्पाद प्रस्तुतीकरण की अवस्था में है, इसी तरह अमेरिका में बिजली चालित टाइपराइटर बाजार–विकासावस्था को पार कर रहा है, जबकि भारत में अभी इनका निर्माण भी पूर्ण व्यापारिक स्तर पर नहीं हो पाया है।

2. **बाजार स्वीकृति की दरें (Rates of Market Acceptance):** बाजार स्वीकृति की गति अथवा दर के तीव्र होने पर भी उत्पाद जीवन–चक्र छोटा होता चला जाता है और इस दर के धीमे होने पर उत्पाद जीवन चक्र लम्बा होता चला जाता है। बाजार–स्वीकृति की दर ग्राहकों एवं उपभोक्ताओं की आर्थिक स्थिति, जीवन स्तर, शैक्षणिक स्तर, धार्मिक एवं सांस्कृतिक परम्परा, भौगोलिक वातावरण आदि अनेक बातों पर निर्भर करती हैं यह घटक बतलाता है कि समद्धिशाली राष्ट्रों में नवाचार की आवश्यकता क्यों तीव्रता से अनुभव की जाती है और पुराने उत्पादों का स्थान नवीन उत्पाद ग्रहण करते चले जाते हैं।

3. **प्रतिस्पर्धा प्रवेश की स्थिति (Case of Competitive Entry):** यदि प्रतियोगिता तीव्र होती है और उत्पाद का जीवन चक्र अपेक्षित छोटा हो जाता है। इसके विपरीत यदि नवाचार करने वाली फर्म का उत्पाद ऐसा है कि उसके विकास एवं प्रस्तुतीकरण में अधिक समय एवं धन खर्च होने की सम्भावना है तथा उत्पाद तकनीकी जटिलता लिए हुए हैं एवं उसके लिए स्वयं का अनुसंधान–कार्य आवश्यक है तो प्रतियोगिता तीव्र नहीं हो सकती। परिणामस्वरूप वस्तुओं का जीवन चक्र लम्बा होगा।

   उपर्युक्त घटकों के अतिरिक्त निम्नलिखित घटक भी उत्पाद जीवन चक्र को प्रभावित करते हैं–

4. **पेटेन्ट द्वारा संरक्षित उत्पाद (Products Protected by Patents):** एकस्वाधिकारों द्वारा संरिक्षत उत्पादों का जीवन चक्र अन्य उत्पादों की तुलना में अधिक लम्बा होता है। इन उत्पादों की विकासावस्था अपेक्षाकृत लम्बी होती है। ज्यों–ज्यों इन उत्पादों की एकस्व संरक्षण अवधि समाप्त होने को आती है त्यों–त्यों इनका उत्पाद जीवन चक्र परिपक्वता की अवस्था पर पहुंच जाता है। अन्य समान उत्पादों द्वारा कीमत प्रतियोगिता किये जाने पर वे उत्पाद अपनी विकासावस्था से तुरन्त उच्चस्तरीय प्रतिस्पर्धी परिपक्वता अवस्था पर पहुंच जाते हैं।

5. **आर्थिक शक्तियाँ (Economic Forces):** आर्क पेटन का दढ़ मत है कि मूलभूत आर्थिक शक्तियाँ सतत रूप से उत्पादों की जीवन चक्र संरचना को बदल रही हैं। उदाहरण के लिए कृषि बाजार महत्त्वपूर्ण परिवर्तन की प्रक्रिया के दौर से गुजर रहा है। छोटे कृषकों के स्थान पर सहकारी समितियों एवं कृषि निगमों द्वारा कृषि कार्य सम्पन्न करने की प्रवत्ति बढ़ रही है। इस प्रवत्ति के परिणामस्वरूप कृषि उत्पादों के वितरण हेतु न्यूनतम एवं वहत् वितरकों की सहायता लेनी होगी जिससे कृषि–उत्पादों के जीवन चक्र को तीव्र गति प्राप्त होगी और उनका जीवन चक्र छोटा होता चला जायेगा।

---

[13] "The length of the product life cycle is governed by the rates of technical changes, the rates of market acceptance and the case of the competitive entry". **– Joel Dean**

6. **सेविवर्गीय रीति-नीति (Personnel Strategy):** उत्पाद जीवन चक्र की विभिन्न अवस्थाओं में विभिन्न प्रकार की योग्यता एवं क्षमता रखने वाले उच्चाधिकारियों की आवश्यकता होती है। इसलिए पहले से ही इस आवश्यकता का अनुमान लगाकर ऐसे उच्चाधिकारियों की उपलब्धि संस्था को करा दी जाती है, उत्पाद जीवन चक्र को दीर्घायु बनाने हेतु परमावश्यक होती है। उदाहरण के लिए, उत्पाद के प्रस्तुतीकरण की अवस्था में अनुसन्धान एवं इंजीनियरिंग, विकासावस्था में निर्माणी, परिपक्वता अवस्था में विपणन तथा पतनावस्था में वित्तीय व सम्पूर्ण प्रबन्ध निर्णय चातुर्य परमावश्यक होता है। इसलिए यदि कोई संस्था इन सभी उच्चाधिकारियों को मिलाकर क्रियात्मक अधिकारियों का एक सन्तुलित समूह संगठित कर दे तो उत्पाद जीवन चक्र की सभी अवस्थाओं में संस्था भली प्रकार अपने साधनों एवं क्षमताओं का विदोहन कर सकती है। इससे स्पष्ट है कि सेविवर्गीय रीति–नीतियाँ भी उत्पाद जीवन चक्र को प्रभावित करती हैं।

उत्पाद जीवन चक्र की उपयोगिता

1. **लाभ वद्धि के लिए :** उत्पाद की प्रस्तुतीकरण की स्थिति को कम से कम करके शीघ्रातिशीघ्र उसकी तीव्र विकास की अवधि को लम्बा करके अधिक लाभ अर्जित किया जा सकता है।

2. **विपणन रीति-नीति के लिए आधार:** उत्पाद जीवन चक्र की विभिन्न अवस्थाओं को कुशल विपणन प्रबन्धक यथोचित विपणन कार्यक्रमों द्वारा परिवर्तित कर न केवल उत्पाद लागतों को कम कर सकता है बल्कि उत्पाद को पतनावस्था की ओर जाने से रोक सकता हैं अमेरिका के मिनीसोटी राज्य में स्थित एक कम्पनी ने सन् 1973 में किसी एक अन्य कम्पनी के इपना नामक ब्रांड जो किसी समय प्रसिद्ध ब्रांड था, पतनावस्था में पहुंचने पर नयी पैकिंग विधि द्वारा उसे पुनः ख्याति पर पहुँचा दिया।[14]

3. **पूर्वानुमान के लिए:** विपणन प्रबन्धक उत्पाद जीवन चक्र की विभिन्न अवस्थाओं में आने वाली समस्याओं का पूर्वानुमान द्वारा पता लगाकर उनके उचित समाधान के लिए समय पर विपणन रीति–नीतियों का निर्माण कर सकते हैं।

4. **नव-उत्पादों के नियोजन का आधार:** उत्पाद जीवन चक्र का अध्ययन नव–उत्पादों के प्रस्तुतीकरण व विकास सम्बन्धी योजना तैयार करने व उन्हें कार्यान्वित करने में एक महत्त्वपूर्ण आधार हो सकता है।

5. **नियन्त्रण उपकरण के रूप में:** विभिन्न उत्पादों के जीवन चक्रों के अध्ययन से कम्पनी अपने नवीन उत्पाद की जीवन चक्र अवस्था ज्ञात कर सकती है व उत्पाद विक्रय सम्बन्धी नीतियों की समीक्षा कर उत्पाद विकास हेतु समय पर कोई उपयुक्त निर्णय ले सकती है।

6. **नवीन उत्पादों के विकास की ओर ध्यान:** जिस प्रकार मनुष्य अमर नहीं है उसी प्रकार उत्पाद का भी पतन अवश्य है। ये विचार फर्म के वर्तमान उत्पादों के स्थानापन्न की ओर विपणन प्रबन्ध का ध्यान आकर्षित करता है। यथासमय नये उत्पादों के विकास न होने पर फर्म को व्यवसाय में अपना पूर्व स्थान बनाये रखना कठिन होगा।

7. **उत्पाद जीवन चक्र की प्रत्येक अवस्था के लिए भिन्न-भिन्न विपणन कार्यक्रम की आवश्यकता का ज्ञान:** उत्पाद जीवन चक्र की अलग–अलग अवस्थाओं के लिए अलग–अलग विपणन कार्यक्रमों की आवश्यकता होती है। एक ही प्रकार के विपणन कार्य उत्पाद की अलग–अलग अवस्थाओं में एक सा फल नहीं देते। उदाहरणार्थ उत्पाद पतन अवस्था में किया जाने वाला विक्रय संवर्द्धन कार्य विशेष फलदायक नहीं होगा। विक्रय संवर्द्धन कार्य की आवश्यकता उत्पाद प्रस्तुतीकरण व उसकी विकास अवस्था के समय अधिक होती है। इसी अवस्था में न केवल बिक्री अधिक दर से बढ़ती है बल्कि प्रति इकाई लाभ भी अधिक होता है।[15]

8. **विभिन्न उत्पादों की महत्ता समझने के लिए:** एक फर्म के विभिन्न उत्पाद, जीवन चक्र की विभिन्न अवस्थाओं में होते हैं। किस उत्पाद पर अधिक विक्रय संवर्द्धन विज्ञापन खर्च करना अधिक लाभदायक होगा इसका पता उत्पाद जीवन चक्र के आधार पर लगाया जा सकता है।

---

14 How purchasing manager apply the product life cycle theory – *David R. Rink* – Indian Journal of Marketing. October, 1977, pp. 25-30.

15 The product life cycle: A Key to Strategic Marketing Planning by *John Esmallwood,* MSU Business Topic, winter, 1973, pp.29-35.

९. **लाभानुमानों के लिए:** उत्पाद जीवन की विभिन्न अवस्थाओं में लाभों की स्थिति के बारे में पूर्व जानकारी मिल सकती है। वस्तु लाभों पर वस्तु जीवन चक्र का प्रभाव होता है। उत्पाद प्रस्तुतीकरण अवस्था में लाभ न होकर हानि ही होती है। परिपक्वता व संतप्ति अवस्था में लाभ की दरों में गिरावट की प्रवत्ति पाई जाती है, जबकि उत्पाद पतनावस्था में उत्पाद के विक्रय पर न केवल हानि होती है बल्कि हानि की दर में वद्धि होती है।

उत्पाद जीवन चक्र विचारधारा का मूल्यांकन
(Evaluation of the Product Life Cycle Concept)

व्यावहारिक विपणन क्षेत्र में, यह देखने में आता है कि अनेक उत्पादों के सम्बन्ध में उत्पाद जीवन चक्र विचारधारा लागू नहीं हो पाती है। ऐसी अपवादजनक स्थितियाँ इस विचारधारा की उपादेयता को शंका की दष्टि से देखने पर विवश करती है। उदाहरण के लिए, अनेक उपभोक्ता वस्तुयें, विशिष्टता उत्पाद एवं प्रतिष्ठा–योग्य (Venerable) उत्पाद, जीवन चक्र विचारधारा से न तो प्रभावित होते हैं और न ही उसका अनुमान करते हैं। औषधियाँ, एकस्व दवायें, पैकबन्द खाद्य–सामग्री, साइकिलें, ऐसी ही उपभोक्ता वस्तुयें एवं विशिष्टता उत्पाद हैं जिन पर उत्पाद जीवन चक्र के दबाव कोई प्रभाव नहीं डाल पाते हैं। इसी तरह ब्रेड, जूते, कोयला, सीमेन्ट, ईट, ताम्बा, इस्पात आदि वे उत्पाद हैं जो उत्पाद जीवन चक्र की संरचना के अनुरूप विपणन व्यवहार प्रकट नहीं कर पाते हैं।

वस्तुतः उत्पाद जीवन चक्र की विचारधारा की वैधता को चुनौती देने वाले घटकों के मुख्य स्रोत हैं जो इस प्रकार हैं–

(अ) **उत्पादन-वितरण प्रक्रिया का अर्थशास्त्र (Economics of Production Distribution Process):** अनेक उत्पाद जैसे एकस्व द्वारा संरक्षित उत्पाद, जीओ एवं जीने दो की नीति में विश्वास रखने वाले उत्पादकों के उत्पाद, भारी मात्रा में ब्रांड विज्ञापन पर खर्च करने वाले उत्पादकों या वितरकों के उत्पाद, एकाधिकारी स्थिति वाले उत्पाद आदि उत्पादन–वितरण प्रक्रिया के अर्थशास्त्र द्वारा संरक्षित एवं मार्गदर्शित होते हैं और उत्पाद जीवन चक्र के प्रति नकारात्मक प्रवत्ति प्रदर्शित करती हैं।

(ब) **नव-उत्पाद परिभाषा (Definition of New Product):** नव–उत्पाद किसे माना जाये, उसकी क्या परिभाषा हो सकती है? इस स्थिति ने भी उत्पाद जीवन चक्र को शंकित बना दिया है। व्यवहार में, अधिकतर उत्पाद नये न होकर संशोधित उत्पाद होते हैं। इसलिए यह निर्धारित करना काफी कठिन है कि कब एक नया उत्पाद अपनी चक्र की परिधि से गुजर रहा है और कब वह अपने मात–उत्पाद (Mother Product) के जीवन चक्र की परिधि के आसपास घूम रहे हैं? इस स्थिति ने उत्पाद जीवन चक्र की विचारधारा के प्रति शंकायें पैदा की हैं और उसके महत्त्व को कम किया है। उदाहरण के लिए, फिल्टर सिगरेट सादा सिगरेट की तुलना में संशोधित उत्पाद माना जाये या नया उत्पाद, रंगीन टेलीविजन को काले या सफेद टेलीविजन की तुलना में संशोधित उत्पाद मानें या नया उत्पाद आदि स्थितियाँ उत्पाद जीवन चक्र विचारधारा की उपादेयता को सन्देह की दष्टि से देखती है।

(स) **वर्तमान उत्पादों की तुलना में नव-उत्पाद विकास पर अधिक ध्यान (More Emphasis on the Development of New Product):** उत्पाद जीवन चक्रधारा उच्च प्रबन्धकों का ध्यान नव–उत्पाद प्रस्तुतीकरण की ओर अधिक आकर्षित करता है। अनुभव बताता है कि नव–उत्पाद की ग्राहक स्वीकृति प्राप्त करने के लिए अधिक समय लगता है तथा अत्यधिक जोखिम व खर्च का भार सहन करना पड़ता है।[16]

(द) **अनेक उत्पादों के जीवन-चक्र की अवस्थाओं का निर्धारण कठिन होना (Difficult to Determine the Stages of the Life Cycle of Many Products):** उत्पाद जीवन चक्र में वर्णित अवस्थाओं के बारे में निश्चितता से कुछ नहीं कहा जा सकता। यह भविष्योक्ति कि उत्पाद जीवन चक्र अगली अवस्था कब आयेगी व कितनी अवधि की होगी तथा उस अवस्था में उत्पाद विक्रय राशि कितनी होगी, करना एक दुष्कर कार्य है।

---

16 Forget the product life cycle concept – *Nariman M. Dhalla & Yuspeh, Sonia,* Harward Business Review Jan...-Feb., 1976, p.102

(य) **उत्पाद की बिक्री में परिवर्तन होते रहना (Changes in the Product Sale):** कभी–कभी यह देखने में आता है कि उत्पाद की बिक्री कुछ समय के लिए कम होकर पुनः बढ़ने लग जाती है अर्थात् उत्पाद की बिक्री घटती–बढ़ती रहती है। ऐसी परिस्थिति में उत्पाद किस अवस्था में है परिशुद्धता के साथ बताना कठिन कार्य होगा।

(र) **अनेक उत्पादों की परिपक्वता अवस्था का लम्बा होना (Many Product have Long and Prosperious Maturity Stage):** कुछ उत्पादों की परिपक्व स्थिति की अवधि मनुष्य जीवन से भी अधिक रही है तथा उनके द्वारा इन स्थिति को पार करने की सम्भावना दष्टिगत नहीं होती है, उदाहरणार्थ ''स्काच व्हिस्की'', ''फ्रेंच परफ्यूम'' इत्यादि।

इस उपर्युक्त वर्णित आपत्तियों, अनुत्तरित शंकाओं एवं अपवादजनक स्थितियों की विद्यमानता के बावजूद भी उत्पाद जीवन चक्र विचारधारा एक महत्त्वपूर्ण नियोजन उपकरण है जिसको भली प्रकार प्रयुक्त करने पर संस्था अपनी विपणन क्षमताओं एवं साधनों का विदोहन अपेक्षित लाभार्जन दरों के साथ कर सकती है। यही नहीं अपितु अपने उत्पादों के जीवन चक्र को लम्बा करने एवं स्वयं की प्रतिस्पर्धी स्थिति को सुदढ़ बनाये रखने के लिए उत्पाद जीवन चक्र विचारधारा का उपयोग कर सकती है। इसलिए, उत्पादों के जीवन को लम्बा बनाने, विपणन कार्यक्रमों के निर्माण को प्रभावी बनाने, लाभों के पूर्वानुमान लगाने तथा फर्म की विपणन क्षमताओं व साधनों के सदुपयोगी विदोहन को सम्भव बनाने की दष्टि से उत्पाद जीवन चक्र विचारधारा निःसन्देह मूल्यवान है।

आर्क पेटन अपने लेख में लिखते हें कि अनेक कम्पनियों की भावी उत्पाद विदोहन रीति–नीति के नियोजन में उत्पाद जीवन चक्र विचारधारा मूल्यवान साबित हुई है। उदाहरण के लिए जनरल मोटर्स के इस प्रारम्भिक निर्णय ने कि भावी सफलता के लिए एक सुदढ़ व्यापारिक संगठन आवश्यक है, कम्पनी को एक महत्त्वपूर्ण प्रतिस्पर्धी हथियार उपलब्ध किया जबकि आटोमोबाइल्स परिपक्वता की अवस्था पर पहुंच चुकी थी। इसी तरह, स्टैवार्ट–वारनर, रेथिअन एवं स्ट्रोमबर्ग–कार्लसन कम्पनियों ने टेलीविजन उत्पादन के क्षेत्र से टेलीविजन उत्पाद की परिपक्वता अवस्था के प्रारम्भिक चरण में ही हटने के जो निर्णय लिये वे बतलाते हैं कि उत्पाद जीवन चक्र के दबाव उनके विरुद्ध कार्यशील थे।[17] यह कथन स्पष्ट करता है कि जो कम्पनियाँ अपने उत्पादों के जीवन चक्र की अवस्थाओं को भली प्रकार समझ लेती हैं वे सफलता प्राप्त करती हैं तथा जो नहीं समझ पाती हैं उन्हें नुकसान उठाना पड़ता है। उदाहरण के लिए जिन कम्पनियों ने गैस–रेफ्रीजरेटर के परिपक्वता अवस्था में पहुंच जाने के बाद भी उसके उत्पाद का वितरण का निर्णय लिया उन्हें अन्तिमतः हटना पड़ा। अतएव, विपणन प्रबन्धकों को उत्पाद जीवन चक्र का ज्ञान होना आवश्यक है ताकि वे उत्पाद के विपणन का भली प्रकार से प्रबन्ध कर सकें और उसकी पतनावस्था को लम्बे समय तक के लिए स्थगित कर सकें अथवा उपयुक्त समय में एक नये उत्पाद के साथ बाजार में प्रविष्ट हो सकें अथवा समय पर बाजार–क्षेत्र से हट सकें।

डॉ० बी. बी. कन्सल उत्पाद जीवन चक्र विचारधारा के महत्त्व को भारतीय सन्दर्भ में स्वीकारते हुए लिखते हें कि किस प्रकार एक विख्यात भारतीय कम्पनी जो कि साबुन बेचने का कार्य करती थी अपने उत्पाद के जीवन चक्र से अनभिज्ञ होने के फलस्वरूप घटती हुई बिक्री का कारण नहीं जान पायी और बाजार का विदोहन नहीं कर सकी। कन्सल लिखते हैं कि कुछ वर्ष पूर्व कम्पनी का विक्रय–वक्र अनुकूल था जिसे देखकर कम्पनी संचालकों एवं प्रबन्धकों को प्रसन्नता थी कि कीमतों में वद्धि होने के उपरान्त भी विक्रय बढ़ रहा है। किन्तु, यकायक साबुन की बिक्री कम हो गयी और कम्पनी–संचालकों द्वारा इसका कारण पूछे जाने पर विपणन प्रबन्धकों ने स्थिति न समझ पाने की बात बतलाई। वस्तुतः बिक्री कम होने का कारण उनके द्वारा विपणन नीति में किया गया मामूली परिवर्तन थी जिसके द्वारा उसने विक्रय संगठन को साबुन के नये बाजारों में प्रवेश करने पर अतिरिक्त श्रम व धन व्यय न करने का निर्देश दिया था। यदि विपणन प्रबन्धक उत्पाद जीवन चक्र की अवस्थाओं से पूरी तरह भिज्ञ होता तो विक्रय में कमी नहीं आ पाती, क्योंकि उत्पाद जीवन चक्र के आचरण को जानने वाले इस तथ्य से परिचित होते हैं कि बढ़ती हुई कीमतें सन्तोषप्रद विक्रय–प्रवत्ति में बाधा डाल सकती हैं और नये बाजारों की खोज अथवा अन्य उपयुक्त विपणन–रीति–नीति का प्रयोग उत्पाद–जीवन चक्र में नव रक्त संचार के लिए परमावश्यक है।

---

17 Ibid, op, cit.

संक्षेप में, यह कहा जाता है कि अधिकांश उत्पादों का जीवन चक्र होता है तथा ऐसे चक्र की विभिन्न अवस्थाओं का ज्ञान प्रबन्ध समयानुकूल रीति–नीतियों की प्रयुक्ति एवं उनको परिवर्तित करने में सहयोग करता है ताकि अधिकतम लाभ अर्जित किये जा सकें।

उत्पाद जीवन चक्र के दौरान विपणन व्यूहरचनायें
(Marketing Strategies During the Product Life Cycle)

प्रबंधक अपने स्वयं के विपणन कार्यक्रम का नियोजन की प्रत्येक अवस्था में ज्ञान के आदर्शभूत अभ्यास के निर्देशन में उपयोग करता है। यद्यपि यह ज्ञान वास्तव में यह नहीं बताता कि प्रबंधक को क्या करना चाहिए। संक्षेप में वस्तु जीवन चक्र का विचार यह है कि किसी वस्तु की प्रतिस्पर्धा एवं बाजार में जीवन चक्र के समय क्या स्थिति रहेगी। विपणनकर्ता जीवन चक्र को समझते हुए यह प्रयत्न करता है कि किस तरह से इसको अधिक से अधिक बढ़ाया जा सकता है। वस्तु जीवन चक्र की प्रत्येक अवस्था से विपणन की मुख्य विशेषताऐं निम्न हैंः–

प्रारम्भिक अवस्था (Stage of Infancy)

1. उत्पादन क्षमता को बढ़ाने में विलंब **(Delay in increasing productive capacity)**
2. तकनीकी समस्या **(Technical problems)**
3. ग्राहक को वस्तु उपलब्ध कराने में देरी, विशेषकर फुटकर विक्रेता द्वारा उचित वितरण करने में देरी **(Delay in making product available to customers–delay in distribution)**
4. ग्राहक अपनी खरीदने की आदत के स्वरूप में परिवर्तन में अरूचि प्रकट करता है। (Customers hesitant in changing preference)

(अ) इस काल में प्रवर्तन व्यय अकसर विक्रय के अनुपात से अधिक होते हैं यह इसलिए नहीं होता कि विक्रय कम है बल्कि अधिक इसलिए है कि प्रवर्तन प्रयत्न उच्च स्तर के हैं। उच्च स्तर की आवश्यकता निम्न के लिए है।

संभावित ग्राहकों को नई और अनजान वस्तु के बारे में सूचना देना। वस्तु को प्रभावित करने के लिए जांच, फुटकर दुकानों में वितरण करने के लिए।

(ब) प्रारंभिक अवस्था के समय में सामान्यतया मूल्य ऊँचे होते (Cost in high) क्योंकि सापेक्षित उत्पादन दरों के कम होने से लागत अधिक होती है। उत्पादन की तकनीकी समस्या के बारे में पूरा ज्ञान नहीं होता। भारी प्रवर्तन खर्चों को पूरा करने के लिए उच्च मार्जिन चाहिए जो विकास के लिए आवश्यक हैं।

5. प्रतिस्पर्धी कम (Few competitors) होते हैं।
6. ऊंची आय समूह को बिक्री (Sales to higher income groups)
7. प्रारंभिक मांग में वद्धि (Primary demand cultivation)
8. सीमित वितरण (Limited distribution)

कुछ उत्पाद ऐसे भी होते हैं जो प्रारंभिक अवस्था में ही समाप्त हो जाते हैं–उदाहरण के लिए 1. जावा स्कूटर जो प्रारंभिक अवस्था में ही न चल सका। 2. रिन सोना यह साबुन का चूरा था–जो प्रारंभिक अवस्था में ही समाप्त हो गया।

विकास की अवस्था (Stage of Growth)

अगर उत्पाद सफल होता है, तो विक्रय तीव्र गति से बढ़ना प्रारंभ होता है। लोग वस्तु के बारे में जान जाते हैं और उसे पाने के लिए प्रयत्न करते हैं। प्रवर्तन व्यय पूर्णतया ऊंचे रहते हैं, यद्यपि वे विक्रय के साथ अनुपात में कम होते जाते हैं क्योंकि विक्रय तेज गति से बढ़ता है। विक्रय के साथ विपणन व्यय में आनुपातिक कमी होती है जो इस अवस्था में ऊंचा लाभ प्रदान करने के लिए महत्वपूर्ण योगदान है।

कंपनी अधिकतम लाभ प्राप्त करने के लिए मूल्य ऊंचे रखती है तब तक 1. यह विश्वास रखती है कि इस अवस्था में कम से कम मूल्य से बाजार में अत्यंत अधिक मात्रा में प्रवेश कर सकेंगे। 2. उसके पास पर्याप्त उत्पादन की क्षमता है या अधिक क्षमता

है। 3. प्रतिस्पर्धी बाजार में आना प्रारंभ कर देंगे इसलिए वह बाजार में कम मूल्य रखने की इच्छा रखती है। जब तक मूल्य पर्याप्त रूप में विक्रय न बढ़ा दे, तीव्र गति के विकास की अवस्था में यह लाभ के स्तर को कम करता है। हर मामले में इस अवस्था के समय में मूल्य को कम करने की प्रवत्ति होती है।

स्टुआट व टेलर के अनुसार विकास अवस्था की दूसरी विशेषताएं इस प्रकार हैः–

1. कई प्रतिस्पर्धियों में वद्धि, 2. कुछ मुख्य उत्पादों में सुधार, 3. रेखा उत्पादन पद्धति, 4. दूसरे बाजार विभाजनों में प्रवेश, 5. वितरण के निकास में वद्धि होना, 6. व्यवसायी बहुरेखीय नीति को अपनाते हैं, 7. चुनी हुई मांग में वद्धि।

परिपक्वता की अवस्था (Stage of Maturity)

अंत में विक्रय की वद्धि की गति धीरे–धीरे कम हो जाती है और उस बिंदु तक पहुंच जाती है जहां कई संभावित ग्राहक वस्तु का उपयोग कर चुके होते हैं। यह मूल्य में कमी व्यापारिक सीमा और लाभ को घटाने पर जोर देती है। कमजोर प्रतिस्पर्धी उद्योग को छोड़ देते हैं। विक्रय अंत में उन क्रेताओं की पुनः कम दर को निश्चित करता है जो उत्पाद को संतुष्ट पाते हैं। वास्तव में विक्रय जनसंख्या वद्धि और आय में वद्धि से संबंधित होता है।

यह विकास की अवस्था से लम्बी अवस्था होती है, यह विपणन प्रबंध कुछ मुख्य चुनौतियों को रखती है। कई उत्पाद जीवन चक्र में परिपक्वता की अवस्था में होते हैं। इसलिए अधिकांशतः विपणन प्रबंध इस परिपक्व उत्पादों का व्यवहार करता है। इस काल में प्रमुख प्रतिस्पर्धी अच्छा प्रयास करते हैं, उनकी विपणन नीति और ब्रांड धारणा अच्छी तरह से जानी जाती है और ग्राहक की भक्ति और बाजार अंश स्वच्छता से स्थिर होते हैं। लागत के निकट तक मूल्य गिरते हैं। इस प्रकार लाभ सीमा सामान्य स्तर तक कम हो जाती है।

इस काल में प्रवर्तन व्यय विक्रय के सामान्य अनुपात तक पहुंच जाते हैं जो उत्पादन लागत की दष्टि से सहे जा सकें। कई प्रतिस्पर्धी लगभग प्रवर्तन का खर्च विक्रय के समान अनुपात में खर्च करते हैं और कुछ इसमें वद्धि करने का साहस करते हैं। वे अनुभव करते हैं कि संपूर्ण उद्योग में लागत से अधिक प्रवर्तन भार से वे केवल अस्थायी लाभ ही प्राप्त कर सकेंगे। इसके स्थान पर प्रतिस्पर्धी दिए हुए प्रवर्तन बजट का उत्तम उपयोग करने का मार्ग खोज लेते हैं। उत्तम विज्ञापन साधन की खोज के प्रयत्न के लिए व्यय किया जाता है, जो स्मरणीय और आकर्षक हो फर्म के अनुकूल बाजार अंश को आकर्षक बनाते हैं। प्रवर्तन बजट का बड़ा भाग ग्राहक और व्यापार व्यवहार पर खर्च किया जाता है।

विशेष रूप से मूल्य कम (नरम) और उत्पाद विभाजन के लिए प्रतिस्पर्धा से प्रतिस्पर्धी आशा इसमें एक रूपता होती है।

इस काल में कई कंपनियां 1. उत्पाद के नए उपयोग, 2. नई उत्पाद के तत्व और शुद्धता, और 3. बाजार विभाजन में वद्धि के लिए मुख्य रूप से आशा रखती है। नाइलोन की सफल खोज नए उपयोग के लिए विक्रय और लाभ को पूरा करने के लिए परिपक्व अवस्था में हुई थी।

दूसरा परिपक्व उत्पाद जैसे, उपभोक्ता टिकाऊ उत्पाद के नए उपयोग के अधिक सीमित अवसर होते हैं और इस प्रकार निर्माण विपणकर्ता नई उत्पाद के तत्व या बाजार विभाजन के लिए उत्सुक रहते हैं।

गिरावट या कमी की अवस्था (Stage of Decline)

कई उत्पाद के प्रारूप और ब्रांड अंत में विक्रय गिरावट के काल में प्रवेश करते हैं। उत्पाद के जीवन चक्र में गिरावट की अवस्था में पहुंचने पर उसकी जांच की जाती है और विपणन कार्य कर्मियों द्वारा इन मापों को काम में लाना चाहिए (अ) उत्पाद के नए उपयोगों की खोज, (ब) उत्पाद के विक्रय के लिए नए बाजार में प्रवेश, (स) उत्पाद में सुधार या परिवर्तन।

ऊपर बताए गए मुख्य स्वभाव वस्तु की गिरती हुई अवस्था या कमी की अवस्था तक पहुंचने से रोक नहीं सकते इसलिए प्रतिस्पर्धी बाजार में लंबी मोर्चाबंदी नई वस्तु के विकास की होनी चाहिए। जैसे ही उत्पाद गिरावट की अवस्था में पहुंचती है कंपनी को प्रथम नए उपयोग, नए बाजार और परिवर्तन के प्रयास, और द्वितीय फिर से नये उत्पादों के विकास की व्यवस्था करनी चाहिए।

उत्पाद जीवन चक्र की उपर्युक्त व्याख्या से हम निर्णय निकालते हैं कि उत्पाद जीवन चक्र विचारधारा विपणन कार्यकर्ताओं के लिए महत्वपूर्ण साधन हैं जिसे वे बाजार पूर्वानुमान, नियोजन और नियंत्रण के उपयोग में लाते हैं यद्यपि यह अनुमान करना बहुत कठिन है कि कब तक विशेष उत्पाद उस विशेष चरण तक पहुंचेगी, प्रबन्धक को जानना चाहिए कि नये उत्पाद परिपक्वता और गिरावट की अवस्था तथा इन स्तरों से संबंधित समस्याओं तक अवश्य पहुंचेगी। उत्पाद जीवन चक्र प्रत्येक अवस्था की प्रतिस्पर्धा विपणन मोर्चाबन्दी की सूचनाएं प्रदान करता है, इसलिए प्रबंधक नए उत्पादों के उपयोगों, नए विपणीयों तथा उत्पाद परिवर्तन के संबंध में पूर्व योजनाएं बना सकता है।

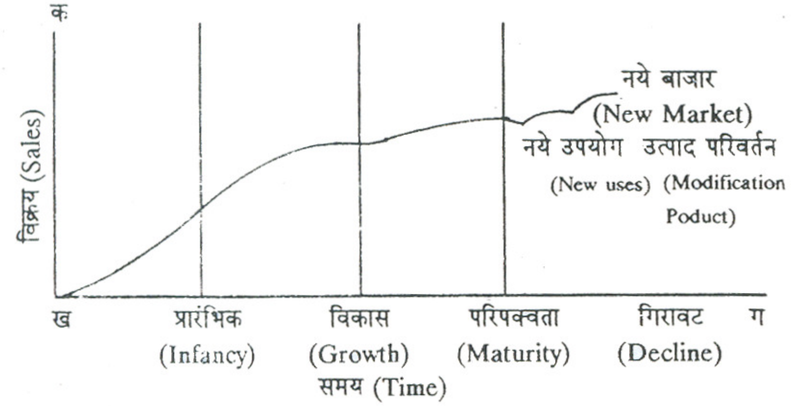

चित्र 9.4: उत्पाद को गिरावट स्थिति पर पहुंचने से रोकने के लिए पैमाने
(Measures to check a Product from reaching the declining stage)

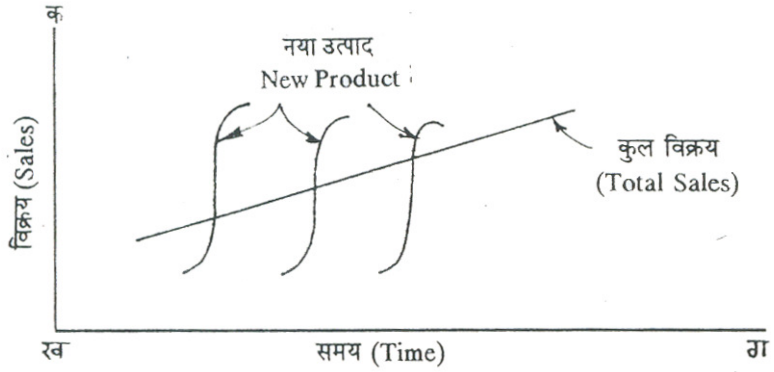

चित्र 9.5: प्रतिस्पर्धा का मुकाबला करने एवं उत्पाद जीवन चक्र को बढ़ाने के लिए नई वस्तु को बाजार में लाना
(Introduction of New Production in the Market to meet Competition and extend Product life cycle)

भारत में उत्पाद विकास का विस्तार
(Extent of Product Development in India)

विकास स्वाभाविक रूप से होने वाली घटना है। प्रत्येक उत्पाद का विकास होता है। समाज का विकास होता है।

उत्पाद विकास विस्तत शब्द है और सामान्यतः इसके तीन रूप हैं 1. नये उत्पाद का विकास (New Product Development) 2. उत्पाद सुधार (Product Improvement), 3. उत्पाद के नये उपयोग (New Uses of Product)। साधारण शब्दों में हम उत्पाद विकास को उन क्रियाओं से परिभाषित करते हैं जिनके द्वारा ग्राहकों की नई विकसित इच्छाओं और आवश्यकताओं को उत्पाद (परिवर्तित) या नये उत्पाद का विकास या चालू उत्पाद में परिवर्तन से संबंधित किया जाता है।

वर्तमान विपणन प्रबंध ग्राहक प्रधान है जो गतिशील ग्राहक के साथ साथ अनिवार्य रूप से चलता है। भारत में वर्तमान में ऐसा कोई ग्राहक, उद्योग या उत्पाद नहीं है जो गत बीस वर्ष पूर्व था। जिन विभिन्न पुराने उत्पादों का आज हम उपयोग करते हैं,

वे पुराने उत्पादों के समान नहीं है बल्कि उनमें सुधार या परिवर्तन हुआ है। और इसी प्रकार का परिवर्तन भारत के प्रत्येक उद्योग में हुआ हे। देश के विभिन्न उद्योगों में उत्पाद विकास व परिवर्तन का विवरण निम्नलिखित हैः–

1. **सूती वस्त्र उद्योग (Cotton Textile Industry):** सबसे पहले सूती वस्त्र उद्योग को लें–स्वतंत्रता और स्वदेशी आंदोलन के पूर्व कॉटन उद्योग की मिलें सूती वस्त्र और खादी दो प्रकार का वस्त्र बनाती थीं। लकिन गत चार पांच दशकों से उद्योग ने कई मनुष्यों द्वारा बनाया कृत्रिम रेशा (Synthetic Fibre) जैसे रेयान, टेरीन, पालिस्टर, रेशे मिश्रित रेशे, वाश एन विचर और ("Easy care cloths") का विकास किया।

   इसके साथ–साथ तैयार किए वस्त्रों (Ready made garments) का भी बड़े विस्तत रूप से विकास हुआ है। अब करीब–करीब सब तरह के और सब प्रकार के ग्राहकों के लिए वस्त्र मिलते हैं, जैसे फुलपेंट, सिल्क, टाई, कमीज, कुर्ता जीन्स, टी शर्ट आदि।

2. **जूट उद्योग (Jute Industry):** भारत के आधारभूत उद्योगों में जूट उद्योग भी एक है। इस उद्योग में भी विस्तत रूप से उत्पाद का विकास किया गया है। जूट वस्तु के पंरपरावादी उपयोगों में जैसे–पैकिंग (Packing), रस्सी बनाना (Rope making) आदि आते हैं। हाल के वर्षों में जूट के नये उत्पाद एवं उपयोग का विकास भारतीय जूट उद्योग अनुसंधान संघ (Indian Jute Industries Research Association) द्वारा किया गया है।

   अब जूट उद्योग, चटाई दीवार ढकने के लिए (Wall Coverings) और पर्दों के लिए जूट रेशों का उत्पादन करता है। इस क्षेत्र के अन्तर्गत वर्तमान में अधिक प्रकाशमय और नरम जूट रेशों का उत्पादन होता है जो पोशाक निर्माण के लिए उपयोगी है। अभी भी जूट के नये उत्पाद के उपयोग के बारे में अनुसंधान क्रिया जारी है।

3. **प्लास्टिक उद्योग (Plastic Industry):** इस उद्योग ने उत्पाद के विस्तत क्षेत्र की व्यवस्था की है जहां विस्तत उत्पादन हुआ है। प्लास्टिक उत्पाद किसी भी प्रकार के उपयोग के लिए उपलब्ध है। इसने प्लास्टिक पेपर, धातु, ग्लास, रबर, चमड़ा, वस्त्र और पेपर आदि उपभोक्ता तथा औद्योगिक उत्पादों को प्रतिस्थापित किया गया है। गत पच्चीस वर्षो से प्लास्टिक उद्योग ने कई घरेलू उपयोगी उत्पादों का विकास किया है जैसे बाल्टी आदि। उसने साज–सजावट के उद्देश्य से भी कई उत्पादों का विकास किया है, जैसे प्लास्टिक के फूल, मूर्तियां, चित्र आदि। पुस्तक बंधन (Binding) के लिए भी प्लास्टिक का उपयोग किया जाता है।

4. **सौंदर्य-प्रसाधन उद्योग (Cosmetics Industry):** सौंदर्य–प्रसाधन उत्पादों का भी दूसरे क्षेत्र में उच्च सीमा तक विकास हुआ है। उदाहरण के लिए ढंडी क्रीम्स, विनेशिंग चेहरा साफ करने की क्रीम्स, शैम्पू, धोने की दवा (Lotions) तरल मैकअप विभिन्न शेविंग क्रीम, शेविंग के बाद लगाने का लोशन, रेजर ब्लेड आदि।

   इस श्रेणी में कई बालों के तेल, बाल को काला करने के रंग और बालों की क्रीम आदि आते हैं। टूथ पेस्ट (दंत मंजन) का विकास गत दस वर्षो में तीव्र गति से हुआ। हम वर्तमान में क्लोरोफिल फ्लूराइड युक्त (Chlorophyl, Fluride युक्त) टूथ पेस्ट काम में लाते हैं जो वर्तमान उद्योग विकास का उदाहरण है। इन्हीं उद्योगों में वाशिंग एजेंट्स आते हैं। उद्योग ने इस क्षेत्र में कई वस्तुओं का विकास किया है। जैसे धोने का पाउडर, धोने की टिकिया, तरल साबुन, विभिन्न स्नान करने के साबुन या ग्लिसरीन या कारबोनिक साबुन आदि।

   फर्श साफ करने वाले पालिश के क्षेत्र में यह उद्योग विकास की प्रारंभिक अवस्था में है। इस क्षेत्र में उद्योग ने कुछ वस्तुओं का विकास किया है, जैसे विम, बीझ और एक्सल इनका उपयोग रसोई के बर्तन, फर्श, कटोरी या तस्तरी धोने, कमोड या ड्रेन पाइप के लिए डीडोरेंट (Deodorant) दुर्गधनाशक के रूप में और दूसरे स्वास्थ्य संबंधी उपकरणों के लिए होता है।

5. **खाद्य उद्योग (Food Industry):** इस उद्योग ने वर्तमान में उत्पाद विकास का अच्छा विस्तार किया है। बच्चों के भोजन, डेरी की वस्तुओं, मुरब्बा, न्यूट्रीन (पोषक आहार) पाउडर, उच्च प्रोटीन युक्त आहार–पदार्थ और मिठाईयों का विकास किया है।

   शराब ने कुछ चमकीले उदाहरण पेश किये हैं। यह जानकर आश्चर्य होगा कि भारत ने व्हिस्की और जिन की विश्व प्रतियोगिता में सिल्वर मेडल का इनाम जीता। किसी को भी स्वर्ण मेडल नहीं दिया गया।

6. **दवाईयां (Medicines):** दवाईयों के क्षेत्र में बहुत अनुसंधान हो रहे हैं। विभिन्न कठोर दवाओं का विकास हुआ है, जैसे पेनसिलिन के इंजैक्शन्स और सेंट्रल नरवस सिस्टम और हृदय रोगों से संबंधित दवाईयां व प्रतिजीव (Antibiotics) आदि का विकास हुआ है।

इन जटिल दवाईयों के साथ विभिन्न घरेलू दवाईयों का भी विकास हुआ है। कई पुरानी दवाईयों में उनके सूत्र और परिणाम में भी सुधार और परिवर्तन हुआ है। ''माइक्रोफाइनएस्प्रो'' इसके लिए उत्तम उदाहरण है। वर्तमान में स्वास्थ्य सुधारक और पुष्टिकर वस्तुएं भी उपलब्ध हैं। जैसे कम्पलान, वीवा, फेरोल, हौरलिक्स, फैरक्स, प्रोटिनैक्स आदि। प्रोटीन बिस्कुट और विटामिन की गोलियों का वर्तमान में विकास हुआ है।

7. **प्रयोजनीय यंत्र उद्योग (Household Equipments):** यह निस्संदेह विकासशील, सुधारा जाने वाला और पविर्तनशील उद्योग है। हम प्रत्येक माह नई डिजाइन, नए मॉडल के रेडियों और ट्रांजिस्टर देखते हैं। ग्रह उपकरण व बर्तन उद्योग के क्षेत्र में स्टेनलेस स्टील, हिन्डेलियम और प्लास्टिक उपकरण का विकास हुआ है। जैसे प्रेशर कुकर, हीटर, मिक्सी टोस्टर, इलेक्ट्रिक केटली, ओवन्स और विभिन्न स्टोव। जलवायु नियंत्रण के उपकरण का विकास वर्तमान में हुआ है। जैसे कुकर, रेफ्रीजरेटर, एयर कंडीशनर्स, रूम हीटर, वाटरकूलर आदि।

रेडियो, ट्रांजिस्टर और रिकार्ड–प्लेयर्स आदि सब वस्तुओं का अधिक विकास हुआ है। वर्तमान विकास की प्रवत्ति रेडियोग्राम टेपरिकार्ड और स्टीरियो सिस्टम की ओर है। टेलीविजन उद्योग उत्पाद विकास के उच्च विस्तार का दूसरा वर्तमान उदाहरण प्रस्तुत करता है। यह उद्योग तीव्र गति से विकास कर रहा है।

8. **औद्योगिक माल (Industrial Products):** औद्योगिक उत्पादों के क्षेत्र में हमारे उद्योग तीव्र गति से विकास कर रहे हैं। मशीन उपकरण एक उदाहरण है। गत दो दशाब्दियों में मशीन और टूल जैसे Grinders, Drills, Lathes और Electric Hammer आदि का विकास हुआ है।

इलेक्ट्रिक मशीन और उपकरणों के क्षेत्र में Generators, Oil Engines, Electric Motors, Transformers, Fuse System उपकरण के साथ ही Thermal Hydraulic Power Plants का भी विकास हुआ है।

लैंप के क्षेत्र में हम करीब प्रत्येक प्रकार के उद्देश्य के लिए लैंप उपलब्ध कर सकते हैं, जैसे रोड लाइटिंग लैंप, जनरल लाइटिंग लैंप, फ्लोरस्केंट बल्ब और ट्यूब्स, मर्करी बल्ब, नीओन बल्ब, ट्रेन लाइटिंग लैंप, गाड़ियों के लैंप, हैड लैंप और खदान के उद्देश्य के लिए लैंप।

संदेशवाहन के यंत्र और कार्यालय उपकरण में विकास, विभिन्न उपलब्ध वस्तुओं के प्रति–प्रभावित होता है। जैसे आटो–एक्सचेंज, टेलीफोन, टेलीप्रिंटर्स और इलेक्ट्रिक टाइपराइटर का विकास हुआ है।

9. **परिवहन एवं संदेशवाहन उद्योग (Transport & Communications Industry):** नए मॉडल की कार, स्कूटर, मोटर साइकल, मोपेड आदि बहुतायत से बन रहे हैं। भारतीय साइकल का काफी विकास हुआ है और इतना विस्तार हुआ है कि हम यू.एस.ए., यूरोप के देशों और कुछ ऐशियन देशों को निर्यात करते हैं। एक या दो प्रकार की छोटी कारों का भी विकास हुआ है।

केवल वस्तु का ही नहीं, गत दो दशाब्दियों में विभिन्न सेवाओं का विकास और सुधार भी हुआ है। विभिन्न वाणिज्यिक और वित्तीय सेवाएं, किस्म और प्रमाप संबंधी नियंत्रण जैसे ISI, Ag. mark, Sanforized आदि, बैंक और बीमा सेवाएं आदि इन सबका विकास और सुधार हुआ है। संदेशवाहन सेवाओं के विकास का विस्तार भी विलक्षण है। हम जानते हैं कि राजधानी और विभिन्न शहरों जैसे बाम्बे, कलकत्ता, मद्रास आदि के बीच सीधी टेलीफोन लाइनें हैं, अब तो देश के लगभग सभी छोटे–बड़े शहरों में सीधी टेलीफोन सेवा (STD) उपलब्ध हो गई है। प्रसारण सेवाओं का गत 25 वर्षों में पर्याप्त विकास हुआ है। आकाशवाणी केंद्र तथा प्रसारण केन्द्र लगभग पूरे देश में स्थापित हो गये हैं। दूरदर्शन सेवायें भी देश की 70% से अधिक जनसंख्या को उपलब्ध हो गई हैं।

समाचार सेवाओं और समाचार पत्रों में भी काफी विस्तार से विकास हुआ है। आजकल हमारे पास स्वयं की समाचार एजेंसियां हैं, जैसे (UNI, PTI) टेलीप्रिंटर्स, टेलेक्स तथा फैक्स सिस्टम के विकास से हमें अधिक जल्दी और ताजा समाचार सेवाओं की सुविधायें मिलती हैं।

गत दो दशाब्दियों में विज्ञापन सेवाओं और विज्ञापन में भी विशाल पैमाने पर विकास हुआ है। इस क्षेत्र में वर्तमान विकास रेडियो एवं टेलीविजन द्वारा विज्ञापन है।

परिवहन उद्योग भी अधिक पीछे नहीं है। इस उद्योग में भी सेवाओं का विकास उच्च शिखर तक हुआ है। भारतीय रेलवे की वर्तमान तेज अनुमति प्राप्त राजधानी एक्सप्रेस, शताब्दी एक्सप्रेस गाड़ियां हैं। बहुत सी गाड़ियां वातानुकूलित हैं। दिल्ली–कलकत्ता के बीच पूर्ण विद्युतीकरण हो चुका है। शीघ्र ही दिल्ली–बम्बई, बम्बई–कलकत्ता के बीच मद्रास के बीच विद्युतीकरण पूरा हो जायेगा। कलकत्ता शहर में मिट्रो–भूमिगत रेल सेवा शुरू हो गई है।

अब रोड परिवहन की सेवाएं अधिक प्रभावशाली और अधिक लाभदायक हैं। ट्रक भारत के प्रत्येक और किसी भी स्थान पर माल ले जाते हैं। बस तो छोटे–छोटे गांवों में भी जाने लगी हैं।

गत दो दशाब्दियों में एक और क्षेत्र जिसमें भारत ने ख्याति पायी है, वह फिल्म उद्योग है भारतीय फिल्म उद्योग किस्म और प्रमाप में सुधार कर रहा है।

भारत का फिल्म उद्योग विश्व में सबसे बड़ा है जहां प्रतिवर्ष बड़ी मात्रा में फिल्मों का निर्माण होता है। हमारी फिल्मों ने विभिन्न फिल्म समारोहों में कई अंतर्राष्ट्रीय इनाम जीते हैं।

संक्षेप में यह गत 25 वर्षों के विभिन्न भारतीय उद्योगों में उत्पाद विकास के विस्तार का ऐतिहासिक विवरण है। यह विवरण यह प्रकट करता है कि 20-25 वर्ष पूर्व भारत में उद्योगों का जो रूप था वैसा अब नहीं है। सभी उद्योगों ने तीव्र गति से विकास किया है और देश की विकास प्रक्रिया में पर्याप्त योगदान किया है। उन्होंने घड़ी की सूइयों की तरह बढ़ते हुए प्रगति कर देश का विकास किया है।

प्रश्न
(Question)

1. 'एक फर्म के सम्पूर्ण विपणन कार्यक्रम के लिए उत्पाद नियोजन आरंभ स्थान है।' विवेचन कीजिए।

   "Product Planning is a starting point for an overall marketing programme', Discuss it.

अध्याय-10
कीमत निर्धारण
(Pricing)

व्यवसाय में मूल्य निर्धारण बहुत ही महत्वपूर्ण है। इसका कारण यह है कि मूल्य मांग एवं पूर्ति दोनों को ही प्रभावित करता है। यदि मूल्य अधिक होता है। तो उसकी मांग कम होती है लेकिन यदि मूल्य कम होता है तो मांग अधिक होती है। इसी प्रकार पूर्ति भी मूल्य से प्रभावित होती है। वस्तु के मौद्रिक मूल्य को दर्शाने के लिए कीमत शब्द का प्रयोग किया जाता है।

कीमत का अर्थ
(Meaning of Price)

एक साधारण व्यक्ति की दष्टि में कीमत का अर्थ उस राशि से है जो कि एक उत्पाद के क्रय करने पर दी जाती है। वास्तव में 'कीमत' का अर्थ समझने के लिए हमें कीमत के साथ–साथ मुल्य और उपयोगिता शब्दों के अर्थ को भी समझना आवश्यक है। उपयोगिता (Utility) वस्तु की विशेषता या गुण को कहते हैं, जो उसे आवश्यक सन्तुष्टि के योग्य बनाती है। दूसरी ओर एक उत्पाद विनियम द्वारा जितने उत्पादों को आकर्षित करने या प्राप्त करने की शक्ति रखता है। उसे परिमाणात्मक रूप में प्रकट करना ही उस उत्पाद का मुल्य कहलाता है।

परिभाषा
(Definition)

वाल्टन हेमिल्टन (Walton Hamilton) के अनुसार, "कीमत उन सभी दशाओं का मौद्रिक सार है जो एक उत्पाद का मूल्य प्रदान करती है।"

मूल्य का अर्थ विभिन्न प्रकार के व्यापारियों के लिए विभिन्न है। जैसे एक निर्माता को जो प्रतिफल थोक व्यापारी देता है वह निर्माता के लिए मूल्य है। थोक व्यापारी जो प्रतिफल फुटकर व्यापारी से वसूल करता है वह थोक व्यापारी का मूल्य है। इसी प्रकार उपभोक्ता जो प्रतिफल फुटकर व्यापारी को देता है वह फुटकर व्यापारी का मूल्य है।

कीमत के अंग
(Components of Price)

लागत व लाभ मिलकर कीमत का निर्माण करते है। किसी उत्पाद या वस्तु के लिए ली जाने वाली कीमत के निम्नलिखित तीन अंग होते है–

1. **मूल लागत (Original Cost):** मूल लागत से आशय कच्चे माल की लागत (Cost of Raw Materials) से है।
2. **तैयारी लागत (Preparation Cost):** एक उत्पाद को विक्रय योग्य बनाने के लिए व्यय की जाने वाली राशि तैयारी लागत कहलाती है।
3. **लाभ सीमा (Profit Margin):** इसमें केवल व्यवसायी के वास्तविक लाभ को ही सम्मिलित नहीं किया जाता, बल्कि निम्नलिखित व्ययों को भी सम्मिलित किया जाता है– अ. सेवा व्यय (Service Expenses), ब. विपणन व्यय (Marketing Expenses) तथा प्रशासनात्मक व्यय (Administration Expenses)।

   अ. **सेवा व्यय**–सेवा व्यय वस्तु के निर्मित हो जाने के पश्चात् लिये जाते हैं। उदाहरण के लिए, जब एक निर्माता ग्राहकों को निःशुल्क सुपुर्दगी की सुविधा देता है तो इस पर किया जाने वाला निःशुल्क प्रशिक्षण, सलाह अथवा अन्य सेवाएं इसमें सम्मिलित की जाती हैं।

ब. **विपणन व्यय**–वस्तु को ग्राहकों की आवश्यकता के अनुरुप बनाकर उससे ग्राहकों की आवश्यकताओं को सन्तुष्ट करने पर आने वाले व्यय विपणन व्यय कहलाते हैं।

स. **प्रशासनात्मक व्यय**–इसमें अनेक व्यय सम्मिलित किये जाते है, जैसे ऋण–पत्र ब्याज (Debentures interest), बन्धक ब्याज (Mortgage interest), संचालक शुल्क (Director's fees), वैधानिक व्यय (Legal expenses), कार्यालय व्यय (Office expenses), डूबत ऋण संचय (Provision for bad debts) आदि।

विपणन प्रक्रिया में कीमत निर्धारण का महत्त्व
(Importance of Pricing in Marketing Process)

प्रत्येक फर्म के लिए उत्पादों और सेवाओं की कीमतों का तय करना आवश्यक होता है। कारण कि इसके बिना उत्पाद व सेवाओं का क्रय विक्रय सम्भव नहीं हो पाता। उत्पाद सम्बन्धी कीमत नितियाँ और मूल्य निर्णयन फर्म के लाभ–हानि को प्रभावित करते हैं। किसी फर्म की सफलता या विफलता उसके प्रबन्धकों द्वारा अपनाई जाने वाली कीमत नीतियों व निर्णयों से प्रभावित होती है। अतः एक फर्म के लिए स्वस्थ कीमत नीतियों के विकास के महत्त्व को इन्कार नहीं किया जा सकता।

विपणन प्रक्रिया में उत्पाद मूल्य सम्बन्धी निर्णयों का विशेष महत्त्व निम्न कारणों से है–

1. कीमत विपणन मिश्रण (Marketing mix) के चार महत्त्वपूर्ण घटकों–उत्पाद, स्थान, संवर्द्धन और मूल्य में से एक घटक है जिसे विपणन लक्ष्य की प्राप्ति के लिए एक प्रभावशाली औजार के रुप में विपणन प्रबन्ध प्रयुक्त कर सकता है। 'कीमत' ग्राहकों में उत्पाद छवि (Product image) का विकास करती है। 'कीमत' उत्पाद के प्रति ग्राहक धारणा को अनुकूल अथवा प्रतिकूल बनाती है।[1] इसके अतिरिक्त अनेक विक्रय संवर्द्धन तकनीकों के लागू करने के पश्चात् भी उत्पाद की बिक्री इस बात पर निर्भर करेगी कि उसका मूल्य अपेक्षित मूल्य सीमा में है या नहीं।[2] उत्पाद–नियोजन भी उत्पाद मूल्य से प्रभावित होता है। उदाहरणार्थ, उत्पाद की किस्म में सुधार जब ही किया जायेगा, जबकि ग्राहक किस्म के सुधार के लिए अतिरिक्त कीमत देने को तैयार हो। यदि किसी उत्पाद का मूल्य उचित नहीं है तो उसके वितरण में कठिनाई आ सकती है। कारण की उसकी बिक्री के लिए मध्यस्थ आसानी से नहीं मिल पाते। उत्पाद के विज्ञापन और वैयक्तिक विक्रयण पर खर्च की जाने वाली राशि भी उत्पाद मूल्य से प्रभावित होती है। अर्थात् यदि वस्तु में इस प्रकार के व्ययों को उठाने की क्षमता है तो ऐसे व्यय किये जा सकते है, अन्यथा नहीं।

2. उत्पाद का मूल्य उसकी माँग का निर्धारक होता है। वह फर्म प्रतिस्पर्धी व बाजार अंश को प्रभावित करता है, परिणामस्वरुप उत्पाद–कीमत, फर्म की आय और लाभों पर गहरा प्रभाव डालती है। फर्म की आय विक्रय की गई इकाइयों और इकाई–कीमत के गुणनफल के बराबर होती है। विक्रय की गई इकाईयों की लागत को उनसे प्राप्त आय में से बाकी निकालने से लाभ राशि ज्ञात हो जाती हैं। इस प्रकार फर्म के लाभ उत्पाद की कीमतों पर निर्भर करते हैं। इसके अतिरिक्त किसी सीमा तक लागतें उत्पाद की मात्रा का परिणाम है और लागतें स्वयं उनकी कीमतों द्वारा मापी जाती हैं। इस प्रकार लागत निर्धारण भी कीमतों पर निर्भर करता है।

3. उत्पाद की बाजार कीमत मजदूरियों, किराया–भाड़ा, ब्याज और लाभों को प्रभावित करती है। इस रुप में कीमत सम्पूर्ण अर्थव्यवस्था की एक बुनियादी विनियन्त्रक (Regulator) है। उत्पादन–मूल्य फर्म के साधनों के वितरण को प्रभावित करते है। ऊँची मजदूरियाँ श्रम को, ऊँची ब्याज दरें पूँजी को, ऊँचा किराया भूमि को और ऊँचा लाभ साहसियों को आकर्षित करता है।

4. पूँजीवादी अर्थव्यवस्था में कीमतों को एक प्रधान क्रिया माना जाता है। यह एक धुरी है। जिसके चारों ओर अर्थव्यवस्था चक्कर लगाती है। अतः कीमत निर्धारण सम्बन्धी निर्णयों में किसी प्रकार की अपूर्णताएँ सम्पूर्ण प्रणाली में अनेक प्रकार की कमियों को जन्म देती है।

---

1. **Kent B. Monroe** : "Buyer's Subjective Perception of Price", Journal of Marketing Research, Feb. 73.
2. For details read **Zarrel V. Lambert's** "Product Perception : An Important Variable in Price Strategy", Journal of Marketing, Oct. 1970.

5. पिछले कुछ दशकों में विश्वव्यापी मुद्रा स्फीति ने उत्पाद–मूल्य निर्धारण की महत्ता को और भी बढ़ा दिया है। मुद्रा–स्फीति को नियन्त्रण में लाने के लिए विभिन्न पक्षों का का ध्यान उत्पाद मूल्यों के नियन्त्रण की ओर आकर्षित हुआ है। अनेक देशों की सरकारों ने आवश्यक वस्तुओं के मूल्यों को नियमित और नियन्त्रित करने के लिए नियम बनाए हैं। इस प्रकार किसी फर्म की मूल्य नितियाँ सरकारी नियमों, नियन्त्रणों तथा हस्तक्षेपों को आकष्ट करती हैं।

   अभावग्रस्त अर्थव्यवस्थाओं और विकासमान राष्ट्रों में उत्पाद–कीमतों पर और भी विशेष ध्यान देने की आवश्यकता होती है। कारण कि ऐसी अर्थव्यवस्थाओं और राष्ट्रों में एक ओर उत्पादन के साधन कम होते हैं तो दूसरी ओर अधिकतर जनसंख्या गरीब होती है।

6. मूल्य नीतियाँ भावी निर्णयों में समन्वय का कार्य इस प्रकार करती हैं कि फर्म के लक्ष्यों की पूर्ति की जा सके। फर्म के उत्पाद मूल्यों में अनेक पक्ष प्रभावित होते हैं जैसे–मध्यस्थ, पूर्तिकर्त्ता, सरकार, कम्पनी के प्रबन्धक, कर्मचारी उपभोक्ता इत्यादि। अतः कीमत निर्णयों को बड़े ध्यान से लेने की आवश्यकता होती है।

7. विपणन मूल्य नीतियों की महत्ता उस बाजार स्थान की विशेषताओं पर निर्भर करती है जहाँ विपणन उत्पाद का विक्रय करना चाहता है। उन बाजारों में जहाँ कड़ी प्रतिस्पर्धा, नये उत्पाद प्रवेश की अधिक आवत्ति, प्रतिस्पर्द्धियों के लागत ढाँचे में अन्तर होता है वहाँ मूल्य निर्धारण का विशेष महत्त्व होता है।

कीमत निर्धारण के उद्देश्य
(Pricing Objectives)

केपलन और डीरलाम द्वारा किये गये अनुसन्धानों से ज्ञात होता है कि एक संस्था निम्न उद्देश्यों में से किसी को आधार मानकर अपने उत्पाद का मूल्य निर्धारण करती है।[3] –

(i) **विनियोग अथवा शुद्ध बिक्री पर लक्षित प्रतिफल की दर (Target Rate of Return on Investments or on Net Sales):** अनेक फर्में विनियोजित पूँजी पर अथवा शुद्ध बिक्री पर एक पूर्व निश्चित दर से लाभ कमाने का उद्देश्य तय कर लेती है। उत्पाद–कीमत निर्धारित करते वक्त यह ध्यान में रखा जाता है कि उत्पाद की कीमत ऐसी अवश्य हो जिसके द्वारा पूर्व–निर्धारित दर से लाभ कमा सके। फर्म इसी लाभ–दर से सन्तुष्ट रहती है, यद्यपि हो सकता है कि अन्य मूल्यों पर फर्म की लाभ दर अधिक आती हो। यह नीति उन संस्थाओं द्वारा अपनाई जाती है जो अपने औद्योगिक क्षेत्रों में नेता है अथवा जिन्हें क्षेत्र–विशेष में उत्पाद बेचने का संरक्षण प्राप्त है।

(ii) **मूल्य स्थिरता (Price Stabilisation):** विभिन्न संस्थाओं का उद्धेश्य मूल्यों मे स्थिरता बनाए रखना होता है ताकि उत्पाद में ग्राहकों का विश्वास सदैव बना रहे। इस प्रकार की नीति अपनाने वाली संस्थाएँ प्रायः अपने–अपने क्षेत्र में नेता होती है और उनके उत्पाद–मूल्य एक निश्चित अवधि के लिए परिवर्तित नहीं किये जाते। ऐसी संस्थाएँ बढ़ते हुए बाजार मूल्य के समय अपने उत्पादों के मूल्य न केवल स्थिर रखती हैं बल्कि उनके बारे में विज्ञापन करवाती हैं ताकि ग्राहक धोखे में आकर अधिक मूल्य न दे पावें। मूल्य–स्थिरता का उद्देश्य प्रायः सामाजिक उत्तरदायित्व की भावना को लेकर अथवा क्रेताओं में फर्म की प्रतिष्ठा वद्धि के लिए किया जाता है।

(iii) **बाजार हिस्सा बनाए रखना अथवा उसमें वद्धि करना (Maintain or Improve Market Share):** चूँकि अनेक फर्में अपने बाजार अंश का निर्धारण कर लेती हैं तथा कुछ परिस्थितियों में विशेषतया उत्पाद की बढ़ती हुई माँग के समय, बाजार अंश किसी फर्म की प्रगति का एक अच्छा द्योतक माना जाता है, इसलिए एक फर्म का उद्देश्य बाजार अंश को बनाये रखना अथवा वद्धि करना भी हो सकता है।

(iv) **प्रतियोगिता का सामना करना अथवा उसे दूर किया जाना (Meet or Prevent Competition):** कई फर्में प्रतिस्पर्द्धी उत्पादों के मूल्यों को ध्यान में रखते हुए स्वयं के उत्पादों की कीमतों को तय करती हैं ताकि वे प्रतियोगी फर्मों के सामने टिक सकें। अनेक बार लागतों से भी मूल्य नीचे रखे जाते हैं। परन्तु यह स्थिति लम्बे समय तक नहीं चल पाती है। अतः उत्पाद लागतों को कम करने की चेष्टा की जाती है।

---

[3] **ADH Kaplan, Joel B Dirlam and Robert F. Lonzilloitt,** "Pricing Objectives in Large Companies', American Economic Review, Dec. 1958 pp. 921-948.

(v) **लाभों को अधिकतम करना (Maximise the Profits):** अधिकतर व्यावसायिक संस्थाएँ अधिकतम लाभार्जन करना चाहती हैं। अतः वे लाभों को अधिकतम करने के उद्देश्यों को ध्यान में रखते हुए उत्पाद मूल्य का निर्धारण करती है।

फर्मों द्वारा लाभों को अधिकतम करने की प्रवत्ति को अक्सर कर अच्छी दष्टि से नहीं देखा जाता है। अनेक व्यक्ति किसी फर्म द्वारा लाभों को अधिकतम करने का अभिप्राय अधिक मूल्यों, लाभखोरी एवं एकाधिकार द्वारा उपभोक्ताओं के शोषण करने से लेते हैं। यद्यपि इस प्रकार की धारणा सदैव सही नहीं होती है। किसी फर्म द्वारा अधिक मूल्य वसूल करने अथवा उत्पादन पर एकाधिकार की स्थिति के कारण वस्तुओं की कमी होने पर स्थानापन्न वस्तुओं का विकास होने लगता है। वस्तु महँगी होने पर ग्राहक क्रय को भी स्थगित कर देते हैं। सार्वजनिक विरोध भी बढ़ता है तथा हस्तक्षेप की सम्भावना होती है। इसलिए अधिक मूल्य लम्बे समय तक टिक नहीं पाते।

दीर्घकाल में लाभ को अधिकतम करने की नीति, निर्माता, उपभोक्ता व समाज के लिए लाभदायक होती है। कुशल फर्में रह पाती हैं और अकुशल फर्मों का कार्य बन्द हो जा सकते है। अधिक लाभ कमाने वाली फर्मों की ओर पूँजी आकर्षित होती है। अधिक लाभ होने पर उत्पाद के मूल्य भी उचित रखे जाते हैं और प्रतियोगी फर्मों के विकास के कारण उत्पाद की पूर्ति बाजार माँग के अनुकूल हो जाती है। इससे उपभोक्ताओं को उचित कीमत पर वस्तुएँ बराबर उपलब्ध होती रहती हैं। समाज के साधनों का उपयोग भी उन क्षेत्र में होता है जो अधिक लाभमयी है।

दीर्घकाल में लाभ को अधिकतम करने के लिए फर्मों द्वारा कई बार प्रारम्भिक वर्षों में नुकसान सहन करना पड़ सकता है। उदाहरणार्थ नये बाजारों में प्रवेश पाने अथवा नव–उत्पाद की माँग उत्पन्न करने हेतु कीमत कम रखी जाती है। माँग उत्पन्न करने के लिए हिन्दुस्तान लीवर लिमिटेड ने RIN साबुन की कीमत प्रारम्भ में इसीलिए कम रखी। बाद में माँग बढ़ जाने पर कम्पनी द्वारा साबुन की कीमत बढ़ा दी गयी।

लाभ को अधिकतम करने का एक तरीका यह भी हो सकता है कि फर्म अपने अनेक उत्पादों में से एक उत्पाद का मूल्य कम रखकर ग्राहकों को अन्य उत्पादों के क्रय के लिए भी आकर्षित कर सकती है। उदाहरणार्थ, एक कपड़े का दुकानदार किसी विशेष प्रकार के कपड़े का मूल्य कम करने का विज्ञापन कर ग्राहकों को आकर्षित कर सकता है और उन्हें अन्य प्रकार के कपड़ों के विक्रय के लिए प्रेरित कर सकता है।

(vi) **बाजार प्रवेशक (Market Penetration):** कुछ फर्में अपने उत्पादों की कीमत कम रखती हैं ताकि बाजार में उनके उत्पादों की माँग हो सके और इस प्रकार उनके बाजार अंश में वद्धि की जा सके। उत्पाद की कीमत का कम रखा जाना निम्न परिस्थितियों में अनुकूल होता है–

(अ) बाजार का बहुत ही मूल्य सचेतक (Price sensitive) होना।

(ब) बढ़ते हुए माँग के लिए अधिक उत्पादन करने से उत्पाद की प्रति इकाई से लागत कम हो जाना।

(स) उत्पाद मूल्यों में कमी किये जाने पर प्रतियोगी फर्मों का निरूत्साहित हो जाना।

(द) नये उत्पाद को जनता द्वारा अपने दैनिक जीवन का एक अंग बना लेने की सम्भावना होना।

(vii) **बाजार मलाई उतारना (Market Skimming):** कभी–कभी फर्मों का यह उद्देश्य रहता है कि वे स्थानापन्न अथवा प्रतियोगी उत्पादों के विकसित होने के पूर्व अपने उत्पादों को अधिक से अधिक मूल्य पर बेचकर अधिकतम लाभार्जन करे। प्रतियोगी उत्पादों के विकसित होने पर ऐसी फर्में अपने उत्पाद का मूल्य कम कर देती हैं। इस प्रकार की नीति का लाभ यह है कि फर्म द्वारा लगाया हुआ धन जल्दी लौट आता है। यह नीति निम्न परिस्थितियों में सफलतापूर्वक अपनायी जा सकती है–

(अ) उत्पाद के क्रेताओं का अधिक मूल्यों से विशेष प्रभावित न होना।

(ब) उत्पाद की उत्पादन मात्रा कम होने पर भी प्रति इकाई उत्पादन व वितरण लागत में अधिक वद्धि न होना।

(स) अधिक मूल्यों से प्रतिस्पर्द्धी फर्मों को विशेष प्रोत्साहन मिलने की सम्भावना न होना।

(द) अधिक मूल्य का अभिप्राय उत्पाद की अच्छी किस्म से लिया जाना।

प्रारम्भ में अधिक मूल्य पर वस्तु बेचने की नीति का एक महत्त्वपूर्ण लाभ यह है कि अगर वस्तु न बिक पावे तो उसके मूल्यों में कमी की जा सकती है ताकि उसके विक्रय में वद्धि हो सके। इसके अतिरिक्त वस्तुओं के मूल्यों में कमी कर बेचना आसान है। परन्तु घटे हुए मूल्यों को बाद में बढ़ाना कठिन होता है।

अधिक मूल्य पर जो वस्तु बेची जाती है उस पर उसके बाजार को विकसित करने के लिए विज्ञापन और संवर्द्धन खर्च भी अधिक किए जा सकते हैं।

(viii) **नकद वसूली (Cash Recovery):** अनेक फर्मों की तरल स्थिति अच्छी नह होती है। कई बार अनेक उत्पादों का भविष्य भी सुरक्षित नह लगता। ऐसी स्थिति में ये फर्में अपने उत्पादों की नकद बिक्री को प्रोत्साहन देती है। इनके द्वारा उत्पाद की नकद बिक्री व उधार बिक्री के लिए अलग–अलग मूल्य इस प्रकार रखे जाते हैं कि ग्राहक नकद क्रय की ओर प्रेरित हो सके।

(ix) **उत्पाद पंक्ति सम्वर्द्धन (Product Line Promotion):** किसी फर्म का उद्देश्य उत्पाद पंक्ति की सभी वस्तुओं की बिक्री बढ़ाने का हो सकता है। इस दष्टि से फर्म किसी महत्त्वपूर्ण, प्रमापित और लोकप्रिय उत्पाद का मूल्य कम कर (Loss leader Pricing) ग्राहकों को इस प्रकार के उत्पाद के प्रति आकर्षित करती है। परन्तु साथ ही साथ ऐसे उत्पाद के साथ ग्राहकों के लिए अन्य ऐसे उत्पादों का क्रय करना भी आवश्यक कर दिया जाता है जो कम लोकप्रिय हैं। इस प्रकार कम लोकप्रिय उत्पादों की बिक्री भी बढ़ जाती है और उत्पाद विशेष में होने वाली अन्य हानि उत्पादों की बिक्री बढ़ाकर पूरी कर ली जाती है।

(x) **अन्य उद्देश्य (Other Objectives):** मूल्य निर्धारित करते वक्त अनेक फर्में अग्र उद्देश्यों से प्रभावित होती हैं–

(अ) समाज कल्याण का उद्देश्य, (ब) विकलांगों की सेवा, (स) बाढ़ पीड़ित क्षेत्रों की सहायता इत्यादि।

एक फर्म उपरोक्त उद्देश्यों की पूर्ति के लिए कुछ विशेष प्रकार के उत्पादों का मूल्य कम रखती है। मूल्य नीतियाँ कभी–कभी ग्राहकों की क्षमता (According to customer's ability to pay) के अनुसार मूल्य वसूल करने के उद्देश्य से भी अपनायी जाती है।

मूल्य नीतियों के प्रकार
(Types of Price Policies)

मूल्य निर्धारण के विभिन्न उद्देश्यों एवं मूल्य प्रशासन की आवश्यकताओं के आधार पर जिन विभिन्न प्रकार की नीतियों को अपनाया जाता है उन्हें अध्ययन की सुविधानुसार निम्न भागों में विभक्त किया जा सकता है–

(i) लचीलेपन के आधार पर
Flexibility Basis

लचीलेपन के आधार पर मूल्य नीतियों को निम्न दो भागों में बांटा जा सकता है–

(क) **एक मूल्य नीति (One Price Policy):** इस मूल्य नीति के अन्तर्गत समस्त क्रेताओं से एक ही मात्रा में क्रय की जाने वाली वस्तु के लिए एक ही मूल्य लिया है। एक बार जो मूल्य निर्धारित कर दिए जाते हैं उनमें सामान्यतया दीर्घकाल तक परिवर्तन नह किए जाते। उत्पाद लागतों के बढ़ जाने पर साधारणतया उत्पाद–मूल्यों में परिवर्तन न किया जाकर, उत्पाद के पैकेट को छोटा कर दिया जाता है। इस प्रकार मूल्य नीति के निम्नलिखित लाभ हैं–

1. क्रेताओं से एक ही मूल्य वसूल करने से विक्रेता लाभ एवं बिक्री का पूर्वानुमान ठीक प्रकार से कर पाते हैं–
2. ग्राहकों को और विक्रेता को मोल–तोल करने की आवश्यकता नह होती और इस प्रकार उनके समय में भी बचत होती है तथा विक्रेता फर्म के विपणन व्यय भी कम होते हैं।
3. फर्म द्वारा ग्राहकों के साथ भेदभाव की सम्भावना नह रहती और इस प्रकार से ग्राहकों में फर्म की अच्छी छवि का विकास होता है।

इस मूल्य नीति का मुख्य दोष यह है कि ग्राहक एक सा मूल्य देते–देते उसका आदी हो जाता है। मूल्यों में थोड़ा परिवर्तन करने पर ग्राहकों पर इस प्रकार के परिवर्तन का अच्छा मनोवैज्ञानिक प्रभाव नह पड़ता।

(ख) **लचीली मूल्य नीति (Flexible Price Policy):** इस प्रकार की मूल्यनीति के अन्तर्गत ग्राहकों के अनुसार उत्पाद के मूल्यों का निर्धारण किया जाता है। दूसरे शब्दों में, एक ही मात्रा में उत्पाद क्रय करने पर ग्राहकों को अलग–अलग मूल्यों पर उत्पाद बेचा जाना, इस नीति की प्रमुख विशेषता है। किसी ग्राहक से लिया जाने वाला मूल्य, उसकी देय क्षमता, मोल–भाव करने की शक्ति, ग्राहक का विक्रेता से सम्बन्ध इत्यादि पर निर्भर करता है। प्रायः यह नीति अप्रमापित वस्तुओं के विक्रेता, वस्त्र विक्रेता, अनाज विक्रेता इत्यादि द्वारा अपनाई जाती है। इस प्रकार की नीति से विक्रेता द्वारा अलग–अलग ग्राहकों को सन्तुष्ट करने में सहायता मिलती है।

इस नीति का प्रमुख दोष यह है कि इसके अन्तर्गत एक विक्रेता ग्राहकों को सदैव के लिए बना नह रख पाता; कारण कि ग्राहक को इस बात का पता लग जाता है कि उसे दूसरे ग्राहक की तुलना में उत्पाद महँगा मिला है। इसके अतिरिक्त इस प्रकार की नीति अपनाने पर एक फर्म की प्रबन्धकीय नियन्त्रण में भी कठिनाई आती है।

(ii) मूल्य स्तर के आधार पर

Price Level Basis

मूल्य स्तर के आधार पर तय की गई मूल्य नीतियाँ निम्न प्रकार की होती हैं–

(क) **प्रतिस्पर्धा व मिलन नीति (Competition & Meeting Policy):** इस प्रकार की मूल्य नीति के अन्तर्गत एक फर्म द्वारा उत्पाद मूल्य प्रतियोगी उत्पादों के मूल्यों व प्रतियोगी फर्मों द्वारा की जाने वाली प्रतिस्पर्धा को ध्यान में रखकर निर्धारित किये जाते हैं। प्रतियोगी फर्म द्वारा मूल्य अधिक अथवा कम किये जाने पर फर्म भी अपने उत्पाद मूल्यों में अनुकूल परिवर्तन करती है। यह नीति अत्यधिक प्रतिस्पर्धा की स्थिति में अपनाई जाती है।

(ख) **बाजार-मूल्यों के अधीन अथवा ऊपर नीति (Under or Above the Market Prices Policy):** 'बाजार मूल्यों के अधीन नीति' से हमारा आशय बाजार में प्रचलित मूल्यों की तुलना में एक फर्म द्वारा उत्पाद का मूल्य कम रखे जाने से है। इस नीति का उद्देश्य बाजार में शीघ्र प्रवेश करना अथवा बाजार का विस्तार करना होता है। 'बाजार–मूल्यों से ऊपर नीति' का अभिप्राय उस मूल्य नीति से है जिसमें एक फर्म अपने उत्पाद का मूल्य प्रचलित बाजार मूल्य से अधिक ऊँचा निर्धारित करती है। इस प्रकार की नीति उन संस्थाओं द्वारा अपनाई जाती है जिन्हें अपने क्षेत्र में ख्याति प्राप्त हो चुकी है और जिनके उत्पादों की छवि अच्छी है। इस नीति को अपनाने वाली संस्था प्रायः उत्पाद की किस्म के बारे में उपभोक्ताओं को गारण्टी देती है और इस सम्बन्ध में विज्ञापन और सम्वर्द्धन पर भी फर्म द्वारा अधिक खर्चा किया जाता है। उदाहरणार्थ, लिबर्टी द्वारा निर्मित कमीजें प्रचलित मूल्य से अधिक पर बेची जाती हैं।

(iii) विशेषता के आधार पर

Speciality Basis

विशेषता के आधार पर मूल्य–नीतियाँ निम्न प्रकार की हो सकती हैं–

(क) **ललचाने वाली मूल्य नीति (Bait Pricing Policy):** यह वह मूल्य नीति है जिसमें दो विभिन्न मूल्यों वाले उत्पादों का निर्माण किया जाता है और एक उत्पाद का कम व दूसरे उत्पाद का अधिक मूल्य रखा जाता है। सर्वप्रथम ग्राहक को कम मूल्य वाला उत्पाद दिखाया जाता है। इसके पश्चात् अधिक मूल्य वाला उत्पाद दिखाकर पहले वाले उत्पाद की कमियों को बतलाया जाता है ताकि ग्राहक अधिक मूल्य वाला उत्पाद क्रय कर ले। इस प्रकार विक्रेता द्वारा पहले तो कम मूल्य वाले उत्पाद को दिखाकर ग्राहक को आकर्षित किया जाता है और फिर उसे अधिक मूल्य वाले उत्पाद को क्रय करने के लिए प्रेरित किया जाता है। अतः इस मूल्य नीति का उद्देश्य ग्राहकों को कम मूल्य वाले उत्पादों की ओर आकर्षित कर अधिक मूल्य वाले उत्पादों का विक्रय करना होता है।

(ख) **मूल्य रेखा नीति (Price Line Policy):** इस मूल्य नीति में एक फर्म अपने उत्पादों के मूल्य इस प्रकार निश्चित करती है कि दो मूल्यों में एक निश्चित अन्तर बना रहे। उदाहरणार्थ एक चप्पल बनाने वाली फर्म चप्पलों के मूल्य Rs. 16, Rs. 18, Rs. 20, Rs. 22, Rs. 24, और Rs. 26 निश्चित करती है तो ऐसी मूल्य नीति को 'मूल्य रेखा नीति' कहा जाता है। इस प्रकार की मूल्य नीति तय करते समय विभिन्न मूल्यों में अन्तर अधिक नह रखा जाना चाहिए ताकि प्रत्येक प्रकार के ग्राहकों की क्रय क्षमता के अनुकूल मूल्य वाले उत्पादों की पूर्ति की जा सके।

यह मूल्य नीति न केवल सरल और समझाने में आसान है बल्कि इसके द्वारा क्रेताओं को उनकी क्रय क्षमता के अनुकूल उत्पाद उपलब्ध होने की सम्भावना बढ़ जाती है, अतः फर्म की बिक्री भी तीव्र गति से होती है।

इस नीति का प्रमुख दोष यह है कि उत्पाद लागतों के घटने अथवा बढ़ने के साथ पूर्वनिर्धारित मूल्यों में परिवर्तन करना एक कठिन कार्य है।

(ग) **पूर्ण उत्पाद रेखा मूल्य नीति (Full Product Line Price Policy):** एक संस्था जब अनेक उत्पादों का निर्माण करती है तो उसके लिये प्रत्येक उत्पाद की स्थायी लागत निकालना कठिन हो जाता है। इस प्रकार की परिस्थिति में पूर्ण उत्पाद रेखा मूल्य नीति अपनाई जाती है। इस नीति के अन्तर्गत उत्पादों की माँग के आधार पर कुछेक उत्पादों की अधिक कीमत, कुछेक की कम तथा शेष की मध्यम कीमत तय कर दी जाती है जिससे कुल स्थायी उत्पाद लागत निकल आती है और संस्था के लाभों में वद्धि होती है।

(घ) **मलाई उतारने वाली मूल्य नीति (Skimming Price Policy):** इस नीति के अन्तर्गत उत्पाद का मूल्य अधिक रखकर अत्यधिक लाभार्जन का प्रयत्न किया जाता है। यह मूल्य नीति उन उत्पादों के लिये ठीक है जिन्हें वर्तमान में किसी प्रकार की प्रतियोगिता का सामना नह करना पड़ता। इस विधि को अपनाने पर एक फर्म को बहुत लाभ होता है। नये प्रतियोगियों के प्रवेश करने पर अथवा स्थानापन्न वस्तुओं का विकास हो जाने पर फर्म द्वारा उत्पादों के मूल्यों में कमी कर दी जाती है। इस नीति को लागू करने में सबसे बड़ा डर यह है कि ग्राहक अधिक मूल्य पर उत्पाद क्रय नह कर पाते हैं तो सारे प्रयत्न व्यर्थ हो जाते हैं। फर्म को दूसरा डर यह भी रहता है कि अगर भविष्य में प्रतियोगी वस्तुओं का विकास हो जाने पर मूल्य में कमी कर दी जाये तो कह ग्राहक इससे फर्म के उत्पाद की किस्म में गिरावट आने का अभिप्राय न लगा लें।

(च) **नेता अनुकरण मूल्य नीति (Follow the Leader Price Policy):** अगर एक फर्म अपने उत्पादों का मूल्य प्रतिस्पर्धी परन्तु ख्याति प्राप्त फर्म के उत्पादों के मूल्यों के समान रखती है तो इसे 'प्रतिस्पर्धी—नीति' अथवा 'नेता अनुकरण मूल्य नीति' कहा जाता है। इस नीति की विशेषता यह है कि मूल्य उत्पाद लागतों पर आधारित न होकर प्रतियोगी उत्पादों के मूल्यों के अनुसार रखे जाते हैं।

इस नीति को उन नई वस्तुओं के मूल्य निर्धारण के लिए अपनाया जाता है जो वर्तमान में उपलब्ध उत्पादों से अधिक भिन्न अथवा विशिष्ट नह होती और जिनमें अत्यधिक प्रतिस्पर्धा बनी रहती है।

(छ) **बाजार-प्रवेशक मूल्य नीति (Market Penetration Price Policy):** यह नीति उस समय अपनाई जाती है जबकि किसी नये उत्पाद को बाजार में लाया जाता है। फर्म द्वारा नव—उत्पाद का मूल्य इतना कम रखा जाता है कि बाजार में उसकी माँग उत्पन्न की जा सके और प्रतियोगी फर्मों के सामने टिका जा सके। बाजार में फर्म के उत्पाद की माँग अच्छी हो जाने पर अन्य लाभकारी नीति अपनाई जा सकती है।

(ज) **हानि नेता मूल्य नीति (Loss Leader Pricing Policy):** इस नीति के अन्तर्गत एक फर्म द्वारा अपने कुछ प्रमुख और ख्यातिपूर्ण उत्पादों के मूल्यों में कटौती कर दी जाती है और इसका अत्यधिक विज्ञापन किया जाता है। इसके पीछे मान्यता यह रहती है कि इन उत्पादों को जब ग्राहक क्रय करने आयेंगे तब उनके द्वारा फर्म के अन्य उत्पादों का भी क्रय किया जायेगा। इस प्रकार फर्म कुछेक उत्पादों में नुकसान उठाकर शेष उत्पादों की बिक्री बढ़ा लेती है और इस प्रकार अधिक लाभार्जन करती है।

(झ) **इकाई मूल्य नीति (Unit Pricing Policy):** इस मूल्य नीति के अन्तर्गत प्रत्येक उत्पाद और उसके पैकेट के आकार के अनुसार उत्पाद के पैकेट पर लिखे हुए मूल्यों के साथ उत्पाद की प्रति इकाई के मूल्य लिखे जाते हैं। इससे उत्पाद की खरीद में सुविधा रहती है।[4]

(त) **मनोवैज्ञानिक मूल्य नीति (Psychological Pricing Policy):** यह वह मूल्य नीति है जिसमें उत्पादों के मूल्य इस प्रकार रखे जाते हैं कि उनका ग्राहकों पर यह मनोवैज्ञानिक प्रभाव पड़े कि उत्पादों के मूल्य कम हैं। उदाहरणार्थ, किसी उत्पाद का मूल्य Rs. 10 के बजाय Rs. 9.95 रखा जाये तो ग्राहक को यह लगता है कि उत्पाद का मूल्य कम है; अतः इस मूल्य पर उत्पाद का क्रय करना लाभदायक है। इस प्रकार की नीति भारतवर्ष में बाटा शू कम्पनी अपनाती रही है।

---

4 **Kent B. Monroe and Peter J. Laplaca,** "What are the Benefits of Unit Pricing" pp. 16-22, Journal of Marketing, July. 1972.

(iv) भौगोलिक स्थिति के आधार पर

(Geographical Basis)

क्रेता दूर–दूर क्षेत्रों तक फैले हुए होते हैं। क्रेता के स्थान तक माल पहुँचाने में यातायात सम्बन्धी अनेक प्रकार के खर्चे करने पड़ते हैं। यह यातायात सम्बन्धी खर्चे साधारणतया क्रेता द्वारा वहन किये जाते हैं। परन्तु क्रेताओं की असुविधाओं को दूर करने के लिए अनेक बार विक्रेता इन व्ययों को किसी सीमा तक स्वयं वहन करता है। वह उत्पाद का मूल्य निर्धारण करते समय उसके द्वारा वहन किये जाने वाले यातायात के खर्चे को ध्यान में रखता है और उसी के अनुसार उत्पाद का मूल्य उद्धत (Quote) करता है। इस सम्बन्ध में निम्न मूल्य नीतियाँ काम में लाई जाती हैं–

(क) **उत्पादन केन्द्र मूल्य-नीति (Production Poit or Poit Pricing Policy):** इस मूल्य नीति को Factory Price अथवा Mill Price अथवा F.O.B. Factory Price Policy भी कहते हैं। इसमें उत्पाद के मूल्य में उत्पाद को क्रेता के स्थान तक पहुँचाने सम्बन्धी यातायात खर्च सम्मिलित नह किया जाता। उत्पाद की सुपुर्दगी क्रेता को फैक्टरी के द्वार पर अथवा गोदाम पर ही की जाती है। अतः फैक्टरी के द्वार से क्रेता के गोदाम तक उत्पाद को ले जाने की जोखिम क्रेता पर रहती है।

(ख) **किराया सोख मूल्य-नीति (Freight absorption Pricing Policy):** इस प्रकार की मूल्य नीति के अन्तर्गत एक उत्पादक द्वारा क्रेता के स्थान तक वस्तु को पहुँचाने पर लगने वाले किराये के कुछ अंश को वहन किया जाता है। यह नीति उन क्रेताओं को लाभ देने के लिए अपनाई जाती है जो प्रतियोगी फर्मों के नजदीक रहते हैं। उदाहरणार्थ, सीमेंट निर्माण करने वाली फर्में माना की जूनागढ़ व चित्तौड़गढ़ में स्थित हैं और सीमेन्ट के ग्राहक नीमच में रहते हैं। ऐसी परिस्थिति में नीमच में रहने वाले सीमेन्ट के क्रेताओं के लिए चित्तौड़गढ़ चूँकि नजदीक है, से सीमेंट क्रय करना यातायात खर्च के दष्टिकोण से सस्ता पड़ेगा। परन्तु जूनागढ़ में स्थित फैक्टरी नीमच वाले ग्राहकों को सीमेंट खरीदने के लिए प्रेरित करने हेतु यह सुविधा देने का प्रस्ताव कर सकती है कि नीमच में रहने वाले ग्राहकों से जूनागढ़ से नीमच तक सीमेंन्ट पहुँचाने का उतना ही किराया लिया जायेगा जितना कि चित्तौड़गढ़ से नीमच तक सीमेंट को लाने में लगता है। अर्थात् किराये का अन्तर जूनागढ़ स्थित फैक्टरी द्वारा वहन किया जायेगा।

एक फर्म द्वारा इस प्रकार की नीति का पालन करने का उद्देश्य अपने उत्पाद के बाजार का विस्तार करना होता है। इस प्रकार की नीति से स्वस्थ प्रतियोगिता को बल मिलता है और एकाधिकार की प्रवत्तियों पर नियन्त्रण रहता है। परन्तु इस प्रकार की नीति का सबसे बड़ा दोष यह है कि इससे फर्मों के विपणन प्रयासों में दोहरापन की सम्भावना बढ़ जाती है और इससे देश के साधनों का अपव्यय होता है।

(ग) **क्षेत्रीय सुपुर्दगी मूल्य नीति (Zonal Delivery Pricing Policy):** इस मूल्य नीति के अन्तर्गत उत्पाद की बिक्री के लिए देश को विभिन्न क्षेत्रों (Zones) में विभक्त कर लिया जाता है और प्रत्येक क्षेत्र के लिए फर्म द्वारा उत्पाद मूल्य तय कर दिये जाते हैं। क्षेत्र विशेष के किसी भी भाग में रहने वाले ग्राहक को एक ही पूर्व निर्धारित मूल्य पर फर्म द्वारा उत्पाद का विक्रय किया जाता है। उदाहरणार्थ, हिन्दुस्तान लीवर्स लिमिटेड द्वारा निर्मित डालडा घी का 4 किलो वाला डिब्बा राजस्थान के सभी भागों में एक ही मूल्य पर खरीदा जा सकता है यद्यपि कम्पनी द्वारा राजस्थान के अलग–अलग स्थानों में डालडा घी भेजने सम्बन्धी यातायात खर्चों में काफी भिन्नता पाई जाती है।

(घ) **एक समान सुपुर्दगी मूल्य-नीति (Uniform Delivery Pricing Policy):** यह वह मूल्य नीति है जिसमें ग्राहकों को चाहे वे देश के किसी भी भाग में रहते हों, एक ही मूल्य पर उत्पाद बेचा जाता है। इस प्रकार की नीति के अन्तर्गत निर्धारित मूल्य को F.O.B. at Buyer's location postage stamp price भी कहते हैं। भारत सरकार के डाकघर (Post office) अपनी सेवाओं के लिए इसी प्रकार की मूल्य–नीति प्रयोग में लेते हैं। उदाहरणार्थ किसी व्यक्ति द्वारा जयपुर से मद्रास अथवा अजमेर भेजे गये पोस्टकार्ड सम्बन्धी सेवा के लिए मूल्य, भारतीय डाकघरों द्वारा एकसा रखा जाता है। इस प्रकार की नीति लागू करने से विक्रेताओं को प्रबन्धकीय नियन्त्रण और विज्ञापन में सुविधा रहती है।

मूल्य-नीति सम्बन्धी विचार या वस्तु की कीमत को प्रभावित करने वाले तत्त्व (Price-Policy Considerations or Factor Affecting Price of a Product)

व्यवसाय की सफलता या विफलता उसके उत्पादों की मूल्य नीति पर निर्भर करती है। अतः मूल्य निर्धारण नीति निर्माण सम्बन्धी कार्य प्रबन्धकों का एक महत्त्वपूर्ण दायित्व है। इस कार्य के विवेकपूर्ण निष्पादन हेतु निम्न घटकों, जिन्हें मूल्य सम्बन्धी निर्णयों को प्रभावित करने वाले घटक भी कहते हैं, पर विचार करने की आवश्यकता होती है–

1. उत्पाद की विशेषताएँ (Product Characteristics)

उत्पाद का मूल्य तय करते समय उसकी विशेषताओं पर विचार कर लेना चाहिए क्योंकि इन विशेषताओं का मूल्य नीति पर गहरा प्रभाव होता है। उत्पाद की निम्न विशेषताएँ एक फर्म द्वारा अपनाई जाने वाली मूल्य नीति को विशेष रूप से प्रभावित करती हैं–

(i) **उत्पाद का जीवन चक्र (Life Cycle of the Product):** किसी उत्पाद का जीवन चक्र उसके मूल्य निर्धारण पर प्रभाव डालता है। एक उत्पाद मोटे तौर पर चार अवस्थाओं से निकलता है–

(क) बाजार परिचय अवस्था (Market introduction stage)

(ख) बाजार वद्धि अवस्था (Market growth stage)

(ग) बाजार परिपक्वता अवस्था (Market maturity stage)

(घ) बाजार अवनति अवस्था (Market decline stage)

बाजार परिचय की अवस्था में उत्पाद की माँग उत्पन्न करने के लिए उत्पाद–मूल्य का कम रखा जाना लाभदायक होता है।

यदि उत्पाद की माँग में वद्धि होने लगती है अर्थात् फर्म का उत्पाद बाजार वद्धि की अवस्था में है तो मूल्य को स्थिर रखते हुए ब्रांड की ओर ग्राहकों को आकर्षित किये जाने के लिए प्रयत्न करने चाहिए।

उत्पाद के बाजार परिपक्वता और बाजार अवनति की अवस्था में उत्पाद के मूल्यों में कमी करना लाभदायक होता है और उत्पाद के अन्य उपयोग खोजना आवश्यक हो जाता है।

(ii) **उत्पाद की नाशवानता (Perishability of the Product):** अगर उत्पाद नाशवान है अथवा कम टिकाऊ है या जल्दी ही अप्रचलित होने वाला है तो उसका मूल्य इतना कम रखना चाहिए कि उसे शीघ्रता से बेचा जा सके।

(iii) **उत्पाद का प्रतिस्थानापन्न (Product Substitution):** अगर उत्पाद के प्रतिस्थानापन्न के लिए अनेक वस्तुएँ उपलब्ध हैं तो ऐसी दशा में उत्पाद का मूल्य कम रखा जाना लाभदायक होता है।

(iv) **उत्पाद माँग का स्थगन (Postponability of the Product Demand):** यदि वस्तु सदैव काम में आने वाली है अर्थात् वस्तु अगर आवश्यकताओं की श्रेणी में आती है तो ऐसी वस्तु का उपयोग स्थगित नह किया जा सकता है और मूल्य अपेक्षाकृत अधिक होने पर भी वस्तु खरीदी जायेगी। अगर उत्पाद आरामदायक व विलासिता की श्रेणी में आता है तो उसके अधिक मूल्य होने पर ग्राहक उसके क्रय को स्थगित कर सकते हैं। अतः उत्पाद की श्रेणी को ध्यान में रख कर उसका मूल्य निर्धारित करना चाहिए।

2. उत्पाद की माँग का स्वभाव (Nature of the Demand of a Product)

उत्पाद की माँग उसके मूल्य निर्धारण के लिए प्रायः आधारशिला का कार्य करती है। किसी उत्पाद की माँग अग्र प्रकार की हो सकती है–

(i) **पूर्णतया लोचदार माँग (Prefectly Elastic Demand):** किसी उत्पाद की माँग पूर्णतया लोचदार मानी जाती है, अगर उत्पाद के मूल्य में सूक्ष्म परिवर्तन आ जाने से उसकी माँग में भारी परिवर्तन आते हैं। व्यावहारिक जीवन में इस प्रकार की माँग का उदाहरण नह मिलता।

(ii) **अत्यधिक लोचदार माँग (Highly Elastic Demand):** यदि किसी वस्तु की माँग में परिवर्तन उसके मूल्य परिवर्तनों के अनुपात से अधिक है तो उसकी माँग अत्यधिक लोचदार समझी जाती है। उदाहरणार्थ, किसी उत्पाद के मूल्य में पाँच प्रतिशत की कमी आने से अगर उसकी माँग में दस प्रतिशत वद्धि हो जाती है तो ऐसी माँग को अत्यधिक लोचदार माँग समझा जाता है। अत्यधिक लोचदार माँग वाली वस्तुओं की बिक्री बढ़ाने के लिए उत्पाद–मूल्य का कम रखा जाना लाभदायक होता है।

(iii) **लोचदार माँग (Elastic Demand):** अगर किसी उत्पाद की माँग में परिवर्तन उसके मूल्य परिवर्तन के अनुपात में आते हैं तो ऐसे उत्पाद की माँग को लोचदार माँग समझा जाता है। उदाहरणार्थ, किसी उत्पाद के मूल्य में दस प्रतिशत कमी करने पर अगर उसकी माँग में दस प्रतिशत वद्धि होती है तो ऐसी माँग को लोचदार माना जाता है।

(iv) **बेलोचदार माँग (Inelastic Demand):** अगर उत्पाद की माँग उसके मूल्य परिवर्तन के अनुपात में कम घटती है अथवा कम बढ़ती है तो ऐसी माँग को बेलोचदार कहते हैं, उदाहरणार्थ, किसी उत्पाद के मूल्य में पच्चीस प्रतिशत कमी करने पर उसकी माँग केवल पन्द्रह प्रतिशत बढ़े तो ऐसी माँग बेलोचदार कही जाती है।

(v) **पूर्णतया बेलोचदार माँग (Perfectly Inelastic Demand):** किसी उत्पाद की माँग पूर्णतः बेलोच मानी जाती है अगर उसके मूल्यों में भारी कमी अथवा वद्धि आने पर भी माँग पूर्ववत् बनी रहती है। व्यावहारिक जीवन में इस प्रकार की माँग देखने में नह आती।

उपरोक्त माँग के प्रकारों के अध्ययन से स्पष्ट है कि माँग सापेक्षिक बेलोचदार होने पर उसका मूल्य ऊँचा रख कर अधिक लाभार्जन किया जा सकता है। उत्पाद की माँग सापेक्षिक लोचदार होने पर उत्पाद का मूल्य निर्धारित करते वक्त प्रबन्धकों को अधिक ध्यान रखने की अधिक आवश्यकता है; कारण कि उत्पाद का ऊँचा मूल्य उसकी माँग में कमी करता है जबकि निम्न मूल्य उत्पाद की माँग में वद्धिकारक होता है।

३. उत्पाद की लागत
(Cost of the Product)

उत्पाद–मूल्य निर्धारित करते वक्त उसकी लागत पर भी विचार करना आवश्यक है। इसका मुख्य कारण यह है कि दीर्घकाल में उत्पादों से प्राप्त होने वाली आय उनके निर्माण व विपणन पर किये जाने वाले खर्चों से अधिक होना चाहिए वरना फर्म का दिवालियापन निश्चित है। एक फर्म द्वारा मूल्य निर्धारित करते वक्त जिन लागतों पर विचार करना चाहिए वे निम्न प्रकार की होती हैं–

(i) **स्थायी लागत (Fixed Cost):** स्थायी लागत से अभिप्राय उन लागतों से लिया जाता है जिनका सम्बन्ध उत्पादन की मात्रा से न हो कर समयावधि से होता है। यह वह लागत है जो उत्पादन के घटने व बढ़ने के साथ परिवर्तित नह होती। उदाहरणार्थ, फैक्ट्री प्रबन्धकों को दिया जाने वाला वेतन, माल गोदाम का किराया, मकान का टैक्स, प्रशासनिक व्यय, चौकीदारी के व्यय इत्यादि का उत्पादन की मात्रा से प्रत्यथ सम्बन्ध नह होता है, अतः इन्हें स्थायी लागत माना जाता है।

(ii) **परिवर्तनशील लागत (Variable Cost):** परिवर्तनशील लागत में वे लागतें सम्मिलित की जाती हैं जो उत्पादन की मात्रा और बिक्री के अनुसार घटती–बढ़ती रहती हैं अर्थात् उनका उत्पादन व बिक्री से प्रत्यक्ष सम्बन्ध रहता है। उदाहरणार्थ, किसी उत्पाद के निर्माण पर उपभोग में लिया जाने वाला कच्चा माल, प्रत्यक्ष श्रम, शक्ति खर्च (Power charges) इत्यादि उसकी उत्पादन मात्रा पर निर्भर करता है। परिवर्तनशील लागत उत्पाद की प्रति इकाई पर स्थिर रहती है।

(iii) **संवद्धि लागत (Incremental Cost):** उत्पादन को एक स्तर से आगे के स्तर पर ले जाने पर जो भी अतिरिक्त लागत लगती है उसे संवद्धि लागत (Incremental cost) कहते हैं। यह लागत चल व स्थायी दोनों ही प्रकार की हो सकती है; परन्तु अधिकतर यह परिवर्तनशील लागत के रूप में होती है। प्रायः अतिरिक्त माल का उत्पादन तभी किया जाता है जबकि उससे प्राप्त होने वाली आय (Revenue) उसकी संवद्धि लागत से अधिक होती है।

दीर्घकाल में एक उत्पाद का मूल्य निर्धारित इस प्रकार से करना चाहिए कि उससे होने वाली आय उसकी लागत, जिसमें चल व स्थायी, दोनों ही शामिल होते हैं, से अधिक हो।

वह स्थिति जहाँ पर उत्पाद की कुल लागत उसके विक्रय मूल्य के बराबर होती है, सम विच्छेद बिन्दु (Break-even Point) कहा जाता है। सम–विच्छेद बिन्दु उत्पादन की उस मात्रा को बताता है जिसके विक्रय पर संस्था को न तो लाभ होता है और न हानि। निम्न चार्ट संख्या 1 में यह दर्शाया गया है कि अगर बिक्री मूल्य 80 रू. प्रति इकाई रखा जाय और स्थायी लागत की राशि 250 रू. हो तथा प्रति इकाई चल लागत 30 रू. हो तो उत्पाद के सम्बन्ध में फर्म का सम–विच्छेद बिन्दु 5 इकाई के विक्रय राशि के बराबर होगा।

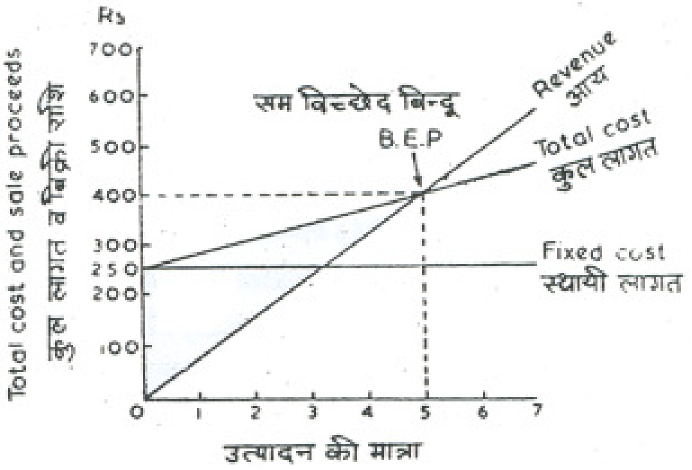

चार्ट संख्या 10.1

उत्पाद वितरण माध्यम
(Channels of Distribution)

उत्पाद का मूल्य निर्धारित करते समय यह ज्ञात कर लेना चाहिए कि उत्पाद को अन्तिम उपभोक्ता तक पहुँचाने के लिए वितरण श्रंखला कितनी लम्बी है। अर्थात् निर्माता और उपभोक्ता के बीच कितने मध्यस्थ हैं और उन्हें उनकी सेवाओं के बदले कितना कमीशन व छूट दी जानी आवश्यक है। यदि निर्माता और उपभोक्ता के बीच में कोई मध्यस्थ हैं तो उत्पाद का मूल्य इस प्रकार निर्धारित करना चाहिए कि मध्यस्थों को उनकी सेवाओं के बदले में उचित प्रतिफल मिल सके और उत्पाद मूल्य भी प्रतियोगी कीमतों से अधिक न हो सके। अनेक फर्मों द्वारा मध्यस्थों को उत्पाद कम मूल्य पर बेचा जाता है और उन्हें निर्देश दे दिया जाता है कि वे अन्तिम उपभोक्ताओं से एक पूर्व–निर्धारित उच्चतम मूल्य से अधिक वसूल न करें।

5. प्रतिस्पर्धा
(Competition)

उत्पाद का मूल्य उसके प्रतियोगी अथवा स्थानापन्न उत्पादों के मूल्यों को ध्यान में रखकर किया जाना चाहिए। उदाहरण के तौर पर जोधपुर डेयरी द्वारा निर्मित घी का मूल्य अमूल घी की कीमतों को ध्यान में रखकर किया जाता है। जूट से निर्मित पैकिंग सामग्री का मूल्य निर्धारित करते वक्त प्लास्टिक एवं मोटे कागज द्वारा निर्मित पैकिंग वस्तुओं की कीमतों को ध्यान में रख कर किया जाता है। उत्पाद की प्रतियोगिता कम होने पर उसके मूल्य कम रखे जा सकते हैं।

6. क्रेताओं की विशेषतायें
(Buyer's Characteristics)

किसी उत्पाद के क्रेता दो प्रकार के हो सकते हैं–औद्योगिक क्रेता और उपभोक्ता क्रेता। औद्योगिक क्रेता उत्पाद को अधिक मात्रा में परन्तु पूरे सोच–विचार व ज्ञान के साथ खरीदता है। अतः उसे उत्पाद को बहुत ही प्रतियोगी मूल्य पर बेचना होगा। इसके विपरीत उपभोक्ता क्रेता न तो अधिक मात्रा में उत्पाद का क्रय करते हैं और न वे प्रतियोगी उत्पादों के बारे में विशेष

जानकारी रखते हैं। उपभोक्ता क्रेता से अधिक मूल्य भी लिया जा सकता है कारण कि फुटकर माल बेचने में विपणन लागत अधिक आती है।

7. उत्पादक के उद्देश्य

(Objectives of Producer)

उत्पाद का मूल्य निर्धारण उसके निर्माता के उद्देश्यों को ध्यान में रखकर किया जाना चाहिए। यदि उत्पादक का उद्देश्य बाजार हथियाना है तो उत्पाद का मूल्य कम रखना होगा। इसके विपरीत अगर उत्पादक का उद्देश्य मलाई उतारना है (Skimming price) तो उत्पाद के मूल्य प्रारम्भ में अधिक रखे जायेंगे।

8. बाह्य वातावरण

(External Environment)

बाह्य वातावरण से आशय देश के आर्थिक, राजनैतिक एवं सामाजिक वातवारण से है। यदि राष्ट्र में आर्थिक मन्दी है तो उत्पाद मूल्य को नीचे स्तर पर रखना व्यावहारिक होगा। यदि देश में राजनैतिक वातावरण आर्थिक क्षेत्र में हस्तक्षेप करने तथा ऊँचे मूल्यों व एकाधिकारी प्रवत्तियों को नियन्त्रित करने वाला है तो कीमतें नीची रखनी होंगी। अगर देशवासी शिक्षित हैं व बेरोजगारी कम है तथा लोगों का जीवन–स्तर ऊँचा है तो कीमतें ऊँची रखी जा सकती हैं।

9. व्यापारिक परम्परायें

(Trade Traditions)

उत्पाद का मूल्य निर्धारित करते वक्त व्यापारिक परम्पराओं का भी ध्यान रखना आवश्यक होता है। उदाहरणार्थ, चॉकलेट, मीठी गोलियाँ, लाली पॉप इत्यादि का मूल्य पाँच या दस पैसा रखने की परम्परा रही है। बिजली के पंखों, सिलाई मशीनों व साइकिलों के लिए निर्माताओं द्वारा गारन्टी देने का एक रिवाज है; अतः मूल्य निर्धारण के समय इस प्रकार की सेवाओं की लागत को ध्यान में रखना चाहिए।

10. विज्ञापन प्रयास

(Advertising Efforts)

निर्माताओं एवं व्यापारियों द्वारा किये जाने वाले विज्ञापन प्रयास भी उत्पाद के मूल्य को प्रभावित करते हैं। वस्तुगत विज्ञापन करने पर वस्तु का मूल्य प्रायः कुछ अधिक रहता है जबकि संस्थागत विज्ञापन नीति अपनाने पर कम रहता है; क्योंकि ऐसे विज्ञापन संस्था की छवि को ऊँचा करने के लिए किये जाते हैं। राष्ट्रीय स्तर पर विज्ञापन करने का प्रभाव वस्तु के मूल्य पर प्रायः वद्धिकारक होता है। किन्तु, स्थानीय विज्ञापन प्रयासों का प्रभाव उतना वद्धिकारक नह होता है। सहकारी विज्ञापन मूल्यों में वद्धि नह करते हैं; जबकि अन्वेषक, स्थिरकर्ता, धक्का एवं खच विज्ञापन उत्पाद मूल्यों में वद्धि करते हैं। इससे पता चलता है कि विज्ञापन प्रयासों के प्रकार का सीधा सम्बन्ध उत्पाद कीमत निर्धारण से होता है।

11. सरकारी नीति

(Government Policy)

उत्पाद मूल्य का निर्धारण करते वक्त सरकारी नियमों का पालन करना आवश्यक होता है। सरकार समय–समय पर उत्पादों के मूल्य नियन्त्रण हेतु तथा उनके उचित वितरण के लिए नियम बनाती है। भारतवर्ष में भी विभिन्न उत्पादों के वितरण व मूल्य को प्रभावित करने वाले अधिनियम बने हुए हैं जैसे आवश्यक वस्तु अधिनियम (Essential Commodities Act), औद्योगिक विकास एवं नियमन अधिनियम (Industries Development Regulation Act), भारत सुरक्षा नियम (Defence of India Rules), एकाधिकार एवं प्रतिबन्धात्मक व्यापारिक पद्धतियाँ अधिनियम (Monopolies and Restrictive Trade Practices Act) इत्यादि। इन अधिनियमों में अन्तर्निहित बातों को ध्यान में रखकर उत्पाद के मूल्य–निर्धारण का कार्य सम्पन्न करना चाहिए।

मूल्य निर्धारण व्यवहार में
(Price Setting in Practice)

व्यवहार में मूल्य निर्धारण हेतु निम्न तरीके काम में लाए जाते हैं–

1. **लागतोन्मुखी मूल्य निर्धारण**

(Cost Oriented Price Determination)

(क) लागत + धन मूल्य निर्धारण विधि (Cost + Pricing Method)

(ख) सीमान्त लागत मूल्य निर्धारण विधि (Marginal Cost Pricing Method)

2. **बाजारोन्मुखी मूल्य निर्धारण**

(Market Oriented Price Determination)

(क) प्रचलित मूल्य पद्धति (Going Rate Prices)

(ख) सीलबन्द बोली मूल्य पद्धति (Sealed Bid Pricing)

1. **लागतोन्मुखी मूल्य निर्धारण**

(Cost Oriented Price Determination)

(क) **लागत + धन मूल्य निर्धारण विधि (Cost + Pricing Method):** इस पद्धति के अन्तर्गत उत्पाद की लागत में इच्छित लाभ को जोड़कर उत्पाद का मूल्य निर्धारित किया जाता है। इस पद्धति के अग्र दो रूप अधिकांशतः प्रयोग में लाये जाते हैं–

(i) मार्क–अप मूल्य (Mark-up Pricing),

(ii) लक्ष्य मूल्य (Target Pricing)।

(i) मार्क–अप मूल्य के अन्तर्गत उत्पाद लागत में इतना मार्जिन जोड़ दिया जाता है कि विक्रय मूल्य पर पूर्व निर्धारित दर से लाभ प्राप्त किया जा सके। निम्नांकित तालिका निर्माता, थोक या फुटकर व्यापारी द्वारा मार्क–अप मूल्य निर्धारण के ढंग को स्पष्ट करती है।

तालिका

	निर्माता	थोक व्यापारी	फुटकर व्यापारी
बिक्री मूल्य	Rs. 24 = 100%	Rs. 30 = 100%	Rs. 50 = 100%
मार्क–अप	= Rs. 2.40 = 10%	= Rs. 6 = 20%	Rs. 20 = 40%
लागत	= Rs. 21.60 = 90%	= Rs. 24 = 80%	= Rs. 30 = 60%

मार्क–अप मूल्य पद्धति के निम्न लाभ हैं–

(क) उत्पाद की माँग के बजाय उत्पाद की लागत को आसानी से ज्ञात किया जा सकता है। अतः मूल्य निर्धारण में कठिनाई नह आती।

(ख) माँग में परिवर्तन होने के बावजूद मूल्यों को इस पद्धति के अन्दर बार–बार परिवर्तित करने की आवश्यकता नह होती।

(ग) मूल्य निर्धारण सफलता से किया जा सकता है व समझा जा सकता है।

(घ) अगर सभी फर्मों की लागतें व मार्क अप की दर एक है तो उनके उत्पादों के विक्रय मूल्य एक से होंगे। इस प्रकार मूल्य प्रतिस्पर्द्धा की सम्भावना कम हो जायेगी।

(ङ) सामाजिक दष्टिकोण से मार्क अप की पद्धति ठीक मानी जाती है कारण कि उत्पाद की कमी होने पर भी उत्पाद के मूल्य मार्क अप मूल्य से अधिक नह लिए जाते।

(ii) **लक्ष्य मूल्य (Target Price):** इस पद्धति के अन्तर्गत उत्पाद मूल्य का निर्धारण इस प्रकार करते हैं कि उन्हें विनियोजित राशि पर पूर्व निर्धारित दर से लाभ प्राप्त हो सके। मूल्य निर्धारण की यह पद्धति लोकोपयोगी संस्थाओं (Public Utilities) में अधिक प्रचलित है। यह संस्थाएँ एकाधिकार की स्थिति में होती हैं। अतः इन संस्थाओं के लिए सरकार द्वारा मुनाफा एक निश्चित सीमा में निर्धारित कर दिया जाता है ताकि वे एकाधिकार की स्थिति का लाभ न उठा सके।

लक्ष्य मूल्य निर्धारण के लिए समविच्छेद बिन्दु चार्ट (Break-even Chart) का प्रयोग किया जा सकता है। उदाहरणार्थ एक कम्पनी 8,00,000 उत्पाद इकाइयाँ Rs. 10,00,000 की लागत पर बना सकती है। इस लागत में कम्पनी की स्थायी लागत Rs. 6,00,000 भी सम्मिलित है। विपणन प्रबन्धक इन इकाइयों का मूल्य निर्धारण इस प्रकार करना चाहता है कि उसे कम से कम Rs. 2,00,000/- लाभ के रूप में प्राप्त हो सके। अर्थात् 8,00,000 इकाइयों की कुल बिक्री राशि Rs. 12,00,000/- होनी चाहिए ताकि उसकी लाभ राशि Rs. 2,00,000/- हो सके। उपरोक्त सम–विच्छेद चार्ट संख्या 10.2 द्वारा उत्पाद बिक्री मूल्य ज्ञात किया जा सकता है।

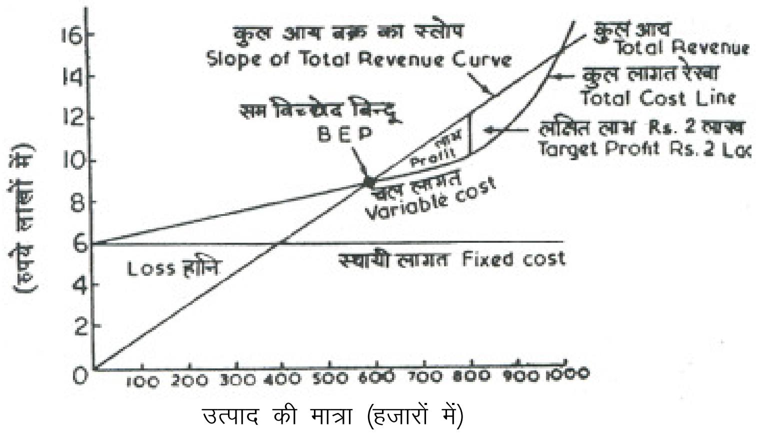

चार्ट संख्या 10.2

उपरोक्त चार्ट में कुल आय वक्र का स्लोप (ढलाव) Rs. 1.50 प्रति इकाई है। कुल आय वक्र का ढलाव (Slope) उत्पाद मूल्य होता है। अतः 8,00,000 इकाइयों की बिक्री प्रति इकाई Rs. 1.50 के आधार पर Rs. 2,00,000/- का लाभार्जन किया जा सकता है।

(ख) **सीमान्त लागत मूल्य निर्धारण विधि (Marginal Cost Pricing Method):** लागत मूल्य पर आधारित उत्पाद मूल्य निर्धारण की यह दूसरी विधि है। इस विधि में उत्पाद की लागत में केवल वे लागतें सम्मिलित की जाती हैं जो इस प्रकार के अतिरिक्त उत्पाद के उत्पादन करने पर खर्च की जाती है। अतिरिक्त उत्पाद का मूल्य अतिरिक्त लागत और पूर्व निर्धारित लाभ की दर को जोड़कर मालूम किया जाता है। इस विधि में स्थायी लागतों को ध्यान में नह रखा जाता। यह विधि उन संस्थाओं के लिये ठीक रहती है जो नई वस्तुओं को बाजार में लाना चाहती हैं अथवा अपनी सुस्त कार्यक्षमता (Idle Capacity) का पूरा–पूरा उपयोग करना चाहती है।

उपरोक्त वर्णित लागत–आधारित मूल्य निर्धारण पद्धतियों की प्रमुख कमियाँ निम्नानुसार हैं–

(अ) मूल्य निर्धारण में उत्पाद की माँग, बाजार दशाएँ और उत्पाद जीवन चक्र सम्बन्धी बातों को ध्यान में नह रखा जाता है।

(ब) इस ढंग से निर्धारित मूल्यों पर वे निर्माता उत्पाद को बेच पाते हैं जिनकी उत्पादन लागतें प्रति इकाई सबसे कम हैं।

२. बाजारोन्मुखी मूल्य निर्धारण (Market Oriented Price Determination)

इस पद्धति के अन्तर्गत बाजार दशाओं को ध्यान में रखकर उत्पाद का मूल्य निर्धारण किया जाता है। इस पद्धति के प्रचलित प्रमुख रूप निम्न हैं–

(क) प्रचलित मूल्य पद्धति (Going Rate Prices): इस पद्धति में फर्म के उत्पाद का मूल्य अन्य प्रतियोगी फर्मों के द्वारा वसूल किये गये मूल्यों के औसत के बराबर रखा जाता है। उत्पाद मूल्य निर्धारण की इस पद्धति के प्रचलित होने के निम्न कारण हैं–

(i) इस पद्धति द्वारा निर्धारित उत्पाद मूल्य समस्त औद्योगिक इकाइयों के द्वारा वसूल किये जाने वाले उत्पाद मूल्यों का प्रतिनिधित्व करते हैं, अतः उनके अव्यावहारिक होने की सम्भावना नह होती है।

(ii) इस पद्धति द्वारा निर्धारित मूल्यों के कारण उत्पाद–मूल्य प्रतियोगिता की सम्भावना कम हो जाती है और इस प्रकार औद्योगिक इकाइयों में सामजस्य बना रहता है।

(iii) क्रेताओं और प्रतिस्पर्द्धियों की उत्पाद मूल्यों के प्रति प्रतिक्रिया जानने की आवश्यकता इस पद्धति में नह होती।

(ख) सील बन्द बोली मूल्य पद्धति (Sealed Bid Pricing): इस पद्धति के अन्तर्गत उत्पाद का मूल्य निर्धारण उसकी लागत व माँग पर आधारित न किया जाकर प्रतियोगी फर्मों द्वारा उद्धत (Quote) किये जाने वाले मूल्यों को ध्यान में रखकर किया जाता है। एक फर्म इस पद्धति के अन्तर्गत प्रतियोगी फर्म द्वारा उद्धत किये गये मूल्यों का अनुमान लगाती है व तदुपरान्त वह अपने मूल्य इस प्रकार उद्धत करती है कि उसे उद्धत मूल्य पर कार्य मिल सके। इस प्रकार की पद्धति ठेके लेने, उत्पादों की पूर्ति करने इत्यादि में काम में लायी जाती है।

मूल्य निर्णय सम्बन्धी सामान्य निर्देश
(General Directions Relating to Price Decisions)

मूल्य निर्धारण सम्बन्धी विभिन्न अध्ययनों से ज्ञात होता है कि ग्राहक उन मूल्यों से सदैव उस प्रकार प्रभावित नह होते हैं जिस प्रकार व्यवसायी अथवा अर्थशास्त्री सोचते हैं। अतः उत्पाद का मूल्य इस प्रकार से रखना चाहिए कि वह न केवल लागत अथवा बाजार दशा पर आधारित हो बल्कि ग्राहकोन्मुखी भी होना चाहिए।

ऑक्शनफेल्ट[5] के अनुसार ग्राहकों की उत्पाद मूल्य के प्रति प्रतिक्रिया जानकर ही मूल्य सम्बन्धी निर्णय लेने चाहिए। उदाहरणार्थ, किसी उत्पाद की बिक्री बढ़ाने के लिए की गई मूल्य कटौती से यह सूचना कि ग्राहकों द्वारा उत्पाद की माँग में वद्धि होगी, सदैव सही नह होगा। कई बार ग्राहक मूल्य कटौती का अर्थ निम्न बातों से लगाते देखे गये हैं। [6]–

(क) उत्पाद की किस्म में गिरावट आ गई है।

(ख) उत्पाद का नया मॉडल आने वाला है।

(ग) उत्पाद की भावी माँग कम होने वाली है।

(घ) फर्म की तरल स्थिति कमजोर है।

---

5 **Alfred R. Oxenfeldt,** "Pricing for Marketing Executives, 1961 edition, p. 28.

6 **Kent B, Monroe,** "Buyer's Subjective Perceptions of Price," Journal of Marketing Research, Feb. 73 pp. 70-80.

(ङ) मूल्य और भी घटेंगे।

मूल्य निर्धारण करते वक्त निम्न निर्देशों का पालन करना लाभदायक होता है।

(अ) ग्राहक सम्बन्धी–

(i) कई बार ग्राहक उत्पाद मूल्यों को उसके गुणों का प्रतीक मानते हैं।

(ii) उत्पाद मूल्य विशेषतः नये उत्पादों के बारे में उनकी छवि का निर्माण करते हैं।

(iii) अनेक ग्राहक मूल्यों के आधार पर उत्पादों का चुनाव करते हैं ताकि उत्पाद–किस्म सम्बन्धी जोखिम कम से कम हो।

(iv) ऊँचे मूल्य वाली वस्तुएँ खरीदकर ग्राहक अपना अहम् (Ego) सन्तुष्ट करते हैं।

(ब) लागत और माँग सम्बन्धी–

(i) उत्पाद की लागत का पता लगा लेना चाहिए। उत्पाद की लागत में प्रत्यक्ष लागत के साथ–साथ आवंटित अप्रत्यक्ष लागत (Allocated Indirect Cost) भी सम्मिलित कर लेना चाहिए।

(ii) उत्पाद लागत में आवश्यक मुनाफा जोड़ने पर जो मूल्य आता हो उसकी प्रतियोगी उत्पाद मूल्य से तुलना करनी चाहिए। अगर प्रतियोगी फर्म के मूल्य कम हैं तो मूल्य में वद्धि करनी चाहिए। इसके विपरीत मूल्य के अधिक होने पर उन्हें कम करने होंगे।

(iii) उत्पाद निर्माण में अलग प्रत्यक्ष लागतें बढ़ती हैं तो उत्पाद का मूल्य बढ़ाया जा सकता है क्योंकि प्रतियोगी फर्मों द्वारा भी मूल्य वद्धि की जायेगी।

(iv) यदि उत्पाद की लागतें अधिक हैं तो कह न कह पर संगठनात्मक त्रुटि है जिसे सुधारने की आवश्यकता है।

(v) अगर फर्म वर्तमान मूल्य पर समस्त उत्पाद न बेच पाती है तो उत्पाद बढ़ाकर बिक्री की मात्रा में वद्धि करने से लाभ अधिकतम होगा।

(vi) कड़ी प्रतिस्पर्द्धा की स्थिति में उत्पाद का मूल्य निर्धारण प्रतिस्पर्द्धा उत्पाद के अनुरूप ही करना चाहिए।

(vii) उत्पाद की लागत बढ़ने के साथ–साथ उत्पाद के आदेश में वद्धि नह करनी चाहिए।

(viii) जहाँ तक हो सके मूल्यों को लागतों से अधिक रखना चाहिए और उत्पाद की माँग बढ़ाने के लिए मूल्य विहीन प्रतियोगिता पर बल देना चाहिए।

(ix) यदि व्यवसाय लोकोपयोगी स्वभाव का है अथवा एकाधिकारी प्रवत्ति का है तो लागत में पूर्व निर्धारित लाभ को जोड़कर मूल्य निर्धारित करना चाहिए वरना सरकार हस्तक्षेप कर सकती है व साथ ही साथ स्थानापन्न वस्तुओं का विकास हो सकता है।

उत्पाद मूल्य निर्धारण प्रक्रिया
(Product-Price Decision Procedure)

सभी उद्योगों के लिए उत्पाद मूल्य निर्धारण प्रक्रिया एक–सी नह होती कारण कि विभिन्न उत्पादों की माँग, लागतें व उनके जीवन–चक्र की स्थिति भिन्न होती है। भिन्न–भिन्न फर्मों द्वारा मूल्य–निर्धारण के लिए अलग–अलग तरीके अपनाये जाते हैं। सामान्य तौर पर उत्पाद मूल्य–निर्धारण प्रक्रिया को निम्न चरणों में पूरा किया जाता है[7]–

1. उत्पाद की माँग का अनुमान लगाना
(Estimating the Demand of the Product)

किसी उत्पाद के मूल्य निर्धारण में सबसे पहले उनकी माँग का अनुमान लगाना आवश्यक हो जाता है। उत्पाद की माँग का अनुमान लगाना, विशेषतया नवीन उत्पाद के सम्बन्ध में, एक कठिन कार्य है। कारण कि नये उत्पाद की माँग

---

7 Based on **'Alfred R. Oxenfeldt's** article—"A decision making structure for price decisions." Journal of Marketing, January, 1973 pp. 45-53.

के बारे में विक्रेता को कोई अनुभव नह होता है। उत्पाद की माँग का अनुमान लगाने के लिए प्रायः निम्न कदम उठाये जाते हैं–

(क) **ग्राहकों द्वारा उत्पाद के सम्भावित मूल्य (Customer's Expected Price of Product):** ग्राहकों द्वारा उत्पाद के सम्भावित मूल्यों से आशय उन मूल्यों से है जिन्हें वे जाने अथवा अनजाने उचित समझते हैं। प्रायः ये मूल्य ग्राहकों द्वारा एक मूल्य सीमा में बताए जाते हैं। उदाहरणतया, किसी विद्यार्थी के सामने M. Com. स्तर की एक हजार पष्ठों की पुस्तक का मूल्य बताने के लिए प्रस्तुत की जाये तो वह उसकी कीमत Rs. 30/- से 35/- के आसपास निर्धारित करेगा। इस प्रकार के मुल्यों को ग्राहकों द्वारा उत्पाद के सम्भावित मूल्य कहा जाता है।

नये उत्पाद के सम्बन्ध में ग्राहकों द्वारा बताई गई मूल्य सीमा के अन्तर्गत किसी भी बिन्दु पर मूल्य तय किया जा सकता है। प्रतिस्पर्द्धा के अभाव में नये उत्पाद का प्रारम्भिक मूल्य अधिकतम बिन्दु पर निश्चित किया जा सकता है। जब ऊँची कीमत वाले उत्पाद की अच्छी छवि बन जाती है तो मूल्य कम किए जा सकते हैं ताकि ग्राहक यह महसूस करने लगे कि कम मूल्यों पर उसे अच्छी वस्तु प्राप्त हो रही है।

उत्पाद का मूल्य निर्धारित करते वक्त मध्यस्थों की मूल्य के प्रति प्रतिक्रिया मालूम कर लेना लाभदायक रहता है; कारण कि मध्यस्थों का ग्राहकों से सीधा सम्बन्ध रहता है और वे जानते हैं कि किस प्रकार के मूल्य पर ग्राहक उत्पाद को क्रय करना चाहेगा। इसके अतिरिक्त मध्यस्थों द्वारा उत्पाद मूल्य की स्वीकृति हो जाने पर उत्पाद बिक्री में उनकी रुचि भी अधिक रहती है।

कई बार ऐसा भी देखने में आता है कि ग्राहक उत्पाद का मूल्य इतना कम आँकते हैं जो उसकी लागत से भी कम होता है। इस प्रकार की परिस्थिति में फर्म के लिए आवश्यक होगा कि वह उत्पाद लागत में कमी करे अथवा उत्पाद सुधार अच्छी वितरण प्रणाली तथा विज्ञापन द्वारा ग्राहकों के मन में उत्पाद के प्रति अच्छी छवि उत्पन्न करे।

उत्पाद का ग्राहक द्वारा अपेक्षित मूल्य से भी कम मूल्य रखना उत्पाद–छवि बिगाड़ सकता है। अतः मूल्य निर्धारित करते वक्त उत्पाद का मूल्य अपेक्षित मूल्य से कम नह रखना चाहिए। उत्पाद के सम्भावित मूल्य का पता लगाने हेतु अग्र स्रोत काम में लाए जा सकते हैं–

(i) अनुभवी फुटकर थोक विक्रेता की मूल्य सम्बन्धी राय।

(ii) प्रतियोगी व तुलनात्मक उत्पादों के मूल्य।

(iii) सम्भावित ग्राहकों से सम्पर्क करके अपेक्षित मूल्यों का पता लगाना।

(iv) विभिन्न बाजार खण्डों में उत्पाद के विभिन्न मूल्यों का परीक्षण करना।

(ख) **विभिन्न मूल्यों पर विक्रयानुमान लगाना (Estimates of Sales at Prices):** उत्पाद के विभिन्न मूल्यों पर उत्पाद बिक्री का पता लगाना मूल्य निर्धारण में अत्यधिक सहायक होता है। उत्पाद–माँग की लोच तीव्रता का अध्ययन, इस सम्बन्ध में एक आवश्यक कदम है। एक उत्पाद की माँग लोचदार होने पर उसकी बिक्री बढ़ाने व लाभों को अधिकतम करने के लिए उसका मूल्य कम रखना लाभदायक होगा। इसके विपरीत उत्पाद–माँग के बेलोच होने पर उत्पाद का मूल्य कम रखने पर भी उसकी बिक्री में वद्धि नह की जा सकती। अतः बेलोच माँग वाले उत्पाद के लिए अधिक मूल्य रखने से लाभों को अधिकतम किया जा सकता है। विभिन्न मूल्यों पर विक्रय अनुमान लगाने से माँग वक्र के निर्माण व समविच्छेद बिन्दु के निर्धारण में सहायता मिलती है।

2. प्रतिस्पर्धी प्रभावों का अनुमान लगाना

(Estimating the Competitive Influences)

मूल्य निर्धारण प्रक्रिया में दूसरा चरण प्रतिस्पर्धी प्रभावों का अध्ययन करने से सम्बन्धित है। इस अध्ययन का उद्देश्य वर्तमान व भावी प्रतिस्पर्धा व उसके प्रभावों का अनुमान लगाना होता है। समय व्यतीत होने के साथ–साथ प्रत्येक उत्पाद के स्थानापन्न और प्रतियोगी उत्पादन के विकास की सम्भावना बढ़ती है। यदि उत्पादन का विक्रय सरल है तो प्रतियोगिता तीव्र होगी। दीर्घकाल में इस प्रकार की प्रतियोगिता के निम्न तीन स्रोत हो सकते हैं–

(क) वर्तमान समान उत्पाद (Present Similar Products)

(ख) उपलब्ध स्थानापन्न वस्तुएँ (Available Substitutes)

(ग) असम्बन्धित वस्तुएँ जो ग्राहक के बजट को प्रभावित करती हैं। (Unrelated Items Influencing Customer's Budget)

3. बाजार भाग का निर्धारण
(Determination of the Market Share)

उत्पाद–मूल्य निर्धारण प्रक्रिया का तीसरा चरण, बाजार भाग के निर्धारण से सम्बन्धित है। बाजार भाग से आशय उत्पाद की कुल माँग के उस भाग से है जिस पर निर्माता अथवा विक्रेता नियन्त्रण करना चाहता है। बाजार अंश वद्धि करने वाले और बाजार अंश बनाए रखने वाले उद्देश्यों से प्रभावित निर्माताओं के उत्पाद–मूल्य एक से नह होते हैं।

बाजार–अंश का निर्धारण करते समय माँग सम्बन्धी अनुमानों, प्रतिस्पर्धी प्रभावों, प्लांट क्षमता व प्लांट विस्तार की लागतें (Cost of plant expansion) को ध्यान में रखना चाहिए। एक फर्म अपनी उत्पादन क्षमता से बाजार अंश अधिक निश्चित करने पर वह प्राप्त आदेशों को पूरा नह कर सकेगी। अगर उत्पाद की माँग अच्छी है परन्तु फर्म भावी प्रतियोगिता के डर से प्लान्ट क्षमता का विस्तार करना उचित नह समझती है तो इस प्रकार की परिस्थिति में उत्पाद के प्रारम्भिक मूल्य ऊँचे स्तर पर रखे जाने चाहिए।

4. मूल्य-निर्धारण के उद्देश्यों का चयन
(Selecting the Pricing Objectives)

मूल्य निर्धारण प्रक्रिया का चौथा चरण–मूल्य निर्धारण के उद्देश्यों का चयन करना है। मूल्य–निर्धारण के उद्देश्य निम्नलिखित में से कोई भी हो सकते हैं–

(क) विनियोग अथवा शुद्ध बिक्री पर प्रतिफल की दर, (ख) मूल्य स्थिरता, (ग) प्रतियोगिता से दूर रहना, (घ) बाजार–अंश बनाये रखना अथवा वद्धि करना, (ङ) अधिकतम लाभ, (च) बाजार मलाई उतारना, (छ) उत्पाद पंक्ति संवर्द्धन, (ज) नगद वसूली, (झ) बाजार प्रवेशक आदि।

इन्ह उद्देश्यों में से एक या अधिक उद्देश्यों की पूर्ति करने वाले उत्पाद–मूल्य का चयन किया जाना चाहिए। उदाहरणार्थ, यदि लाभों को अधिकतम करना है तो ऊँचे मूल्य रखने होंगे, यदि बाजार में प्रवेश करना है तो नीचे मूल्य रखने होंगे।

मूल्य नीति व रीति-नीति का चुनाव
(Selecting Price Policy and Strategy)

मूल्य–निर्धारण प्रक्रिया का पाँचवाँ चरण मूल्य–नीति व रीति–नीति के चुनाव से सम्बन्धित है। उत्पाद मूल्य नीतियाँ व रीति–नीति अनेक प्रकार की हो सकती है। जैसे, प्रतियोगिता मिलन मूल्य नीति, मूल्य रेखा नीति, ललचाने वाली नीति, एक मूल्य नीति, मलाई उतारने वाली मूल्य रीति–नीति, बाजार प्रवेशक मूल्य रीति–नीति, नेता मूल्य नीति, पूर्ण रेखा मूल्य नीति इत्यादि।

एक नये उत्पाद के सम्बन्ध में मूल्य–निर्धारण करते वक्त निम्न मूल्य रीति–नीतियें में से किसी एक का चुनाव किया जाता है:

1. **असामान्य मूल्य-नीति (Skimming the Price Strategy)**– इस रीति–नीति को मलाई उतारने वाली नीति भी कहा जाता है। इसके अन्तर्गत नये उत्पाद की कीमत को ऊँचे मूल्य पर उस समय तक बेचा जाता है जब तक कि उसके अन्य प्रतिस्पर्धी उत्पाद बाजार में न आ जाय। यह रीति–नीति उन नये उत्पादों के लिए लिये उपर्युक्त रहती है जो अपने आप में विशिष्ट है और जिनको बाजार में लाने हेतु विशेष रूप में प्रचारित किया जाता है।

   इस विधि को अपनाने के पक्ष में निम्न तर्क दिये जाते हैं:

   (अ) प्रारम्भ में उत्पाद की माँग कम लोचदार होती है व प्रतिस्पर्द्धा भी कम होती है, अतः ऊँचा मूल्य लाभदायक होता है। अच्छी विक्रय प्रणाली द्वारा उत्पाद के ऊँचे मूल्यों से लाभों को अधिकतम किया जा सकता है।

(ब) उत्पादक फर्म उत्पाद विपणन में विनियोजित पूँजी को कम समय में वापिस प्राप्त कर लेती है।

(स) प्रारम्भ में ऊँचे मूल्य वाले उत्पाद को उन बाजार–खण्डों में बेचा जा सकता है। जो उच्च आय वर्ग से सम्बन्धित हैं और उत्पाद के गुणों से अधिक प्रभावित होते हैं। बाद में कम आय वाले बाजार–खण्डों में उत्पाद का मूल्य घटाकर उत्पाद की बिक्री बढ़ाई जा सकती है और इस प्रकार फर्म की कुल बिक्री व लाभों को बढ़ाया जा सकता है।

(द) एक निर्माता फर्म को वस्तु की माँग की लोच की सही एवं पर्याप्त जानकारी न होने पर उत्पाद का अधिक मूल्य रखना लाभदायक होता है क्योंकि आगे चलकर अगर ऊँचे मूल्यों के कारण माँग कम हो तो उत्पाद मूल्यों को कम करके माँग में वद्धि करने में कठिनाई नहीं आती।

(य) ऊँचे मूल्य रखने पर प्रारम्भ में अधिक आय होने की सम्भावना होती है। परन्तु उत्पाद के नीचे मूल्यों की स्थिति में इस प्रकार की सम्भावना कम होती है।

(र) प्रारम्भ में नयी वस्तु का उत्पादक पूर्ण क्षमता का उपयोग नही करता या नहीं करना चाहता है तो इस नीति को अपनाकर माँग के प्रसार को धीमी गति प्रदान कर सकता है।

(ल) नवीन वस्तु के आविष्कार और संवर्द्धन पर इतना अधिक व्यय कर दिया हो कि आगे उस वस्तु की सफलता में सन्देह लगता हो तो प्रारम्भ में अधिक मूल्य रखना एक उपयुक्त नीति होगी।

2. **बाजार प्रवेशक मूल्य रीति-नीति (Market Penetration Price Strategy)**– इस रीति–नीति के अन्तर्गत एक वस्तु को बाजार में शीघ्र प्रवेश दिलाने के लिए उसके मूल्यों को बहुत कम स्तर पर निर्धारित किया जाता है। यह नीति मलाई उतारने वाली नीति से ठीक विपरीत है और यह दीर्घकालीन दष्टिकोण पर आधारित होती है। इस नीति में जब उत्पाद अच्छी तरह से प्रचलित हो जाता है तो धीरे–धीरे उसकी कीमतें ऊँची कर दी जाती हैं।

'मलाई उतारने वाली नीति' की तुलना में 'बाजार प्रवेशक मूल्य नीति' निम्न परिस्थितियों में अधिक उपयोगी समझी जाती है।

(क) वस्तु की लागत कम हो तथा उसका आविष्कार एवं प्रचलन पर अधिक व्यय न हुआ हो।

(ख) वस्तु की बिक्री मूल्यों से प्रभावित होती हो अर्थात् उसकी माँग अत्यधिक लोचदार हो।

(ग) बाजार में किसी प्रतियोगी को हटाकर फर्म उत्पाद के बाजार को हथियाना चाहती हो।

(घ) उत्पाद के नये प्रतियोगियों को बाजार में प्रवेश करने से रोकना हो।

(ङ) फर्म द्वारा व्यापक पैमाने के उत्पादन से भारी मितव्ययिताएँ प्राप्त की जाना सम्भव हो।

(च) बाजार में ऊँचे मूल्य वाले उत्पादों के खरीददार उपलब्ध न हों।

(छ) उत्पाद के ऊँचे मूल्य रखने पर सरकारी हस्तक्षेप की सम्भावना हो।

उत्पाद के नीचे मूल्य रखने का सबसे बड़ा लाभ यह है कि इससे अन्य फर्मों को उसी प्रकार का उत्पादन बनाकर बेचने के लिए प्रोत्साहन नहीं मिलता है; कारण कि लाभ को देखते हुए उन्हें उत्पादन तथा विपणन सुविधाओं में अधिक धन का विनियोजन करना पड़ेगा। इसके अलावा कम मूल्यों की वजह से एक फर्म के पाँव बाजार में इस प्रकार जम जाते हैं कि दूसरी फर्म बाजार में आने की हिम्मत नहीं करती। परन्तु यहाँ यह अभिप्राय नहीं निकालना चाहिए कि बाजार प्रवेशक नीति एक रामबाण है। उत्पाद के भावी बाजार सीमित होने पर 'मलाई उतारने वाली नीति' अधिक प्रभावशाली होगी कारण कि उत्पाद का बाजार सीमित होने पर कुल लाभ की मात्रा कम होगी और किसी बड़े प्रतिस्पर्धी से भविष्य में बाजार प्रवेश में कोई विशेष लाभ नहीं होगा। अतः विद्यमान फर्म का बाजार पर एक प्रकार से एकाधिकार बना रहेगा।

3. **नेता अनुकरण (Follow the Leader Price)**– जब कोई उत्पादक अपनी उत्पाद पंक्ति में नया उत्पाद सम्मिलित करता है तो ऐसे उत्पाद का मूल्य निर्धारण करते समय प्रतिस्पर्धी मूल्य को ध्यान में रखा जाता है अथवा अन्य बड़े ख्याति प्राप्त उत्पादक की वस्तु के बराबर उसका मूल्य रखा जाता है। इस प्रकार के मूल्य निर्धारण नीति को 'नेता अनुकरण नीति' कहा जाता है। मूल्य निर्धारण की यह नीति काफी प्रचलित एवं लोकप्रिय है।

फर्म की विपणन नीतियों पर विचार किया जाना
(Considering Marketing Policies)

मूल्य निर्धारण प्रक्रिया के इस चरण में फर्म द्वारा अपनाई जाने वाली विपणन नीतियों पर विचार करना होता है। ये विपणन नीतियाँ एक फर्म की वस्तु नीतियों, वितरण नीतियों और संवर्द्धन नीतियों से सम्बन्धित होती हैं–

1. **वस्तु नीतियाँ (Product Policies)**– मूल्य निर्धारण करते समय उत्पाद नीति का अध्ययन कर लेना आवश्यक होता है जैसे क्या फर्म की नीति उत्पाद को मध्यस्थ के द्वारा या फर्म की शाखाओं द्वारा अन्तिम ग्राहकों को बेचने की है? उत्पाद रेखा सम्बन्ध नीति क्या है? उत्पाद का भौतिक वितरण किस प्रकार किया जावेगा? इसके अतिरिक्त यह भी ज्ञात कर लेना चाहिए कि उत्पाद कितना टिकाऊ है और वह किन–किन प्रयोगों के लिये खरीदा व बेचा जाता है। इस प्रकार की जानकारी में मूल्य निर्धारण कार्य न केवल आसान हो जाता है बल्कि विवेकपूर्ण होता है।
2. **वितरण नीतियाँ (Distribution Policies)**– उत्पाद की वितरण वाहिका सम्बन्धी नीति क्या है? मध्यस्थ को दी जाने वाली छूट की दर क्या होगी? इत्यादि के बारे में मिली जानकारी मूल्य निर्धारण में बड़ी सहायक होती है। एक फर्म द्वारा थोक विक्रेताओं, फुटकर विक्रेताओं और सीधे ग्राहकों को बेचे जाने वाले उत्पादों के मूल्य भिन्न–भिन्न होंगे। इस प्रकार वितरण–नीतियों को ध्यान में रखे बिना एक फर्म अपने उत्पादों का सही प्रकार से मूल्य निर्धारण नहीं कर सकती।
3. **संवर्द्धन नीतियाँ (Promotional Policies)**– उत्पाद विक्रय संवर्द्धन पर किया जाने वाला खर्च कितना होगा तथा किनके द्वारा वहन किया जाएगा, सम्बन्धी जानकारी उत्पाद मूल्य निर्धारण के लिए आवश्यक होती है। उदाहरणार्थ अगर संवर्द्धन पर अधिकतर खर्च फुटकर व्यापारी द्वारा किया जाने वाला है तो उनको दिया जाने वाला लाभ का मार्जिन भी अधिक होगा और इसका असर उत्पाद निर्धारण पर अनेक प्रकार से पड़ेगा।

विशिष्ट मूल्य का चुनाव
(Selection of the Specific Price)

ये चरण मूल्य निर्धारण प्रक्रिया का अन्तिम चरण है। मूल्य निर्धारण के इस अन्तिम चरण में उपरोक्त सभी चरणों पर एक साथ तुलनात्मक विचार करते हुए किसी विशिष्ट मूल्य को चुना जाता है। यद्यपि मूल्य–निर्धारण का कोई सर्वमान्य सूत्र नहीं है, फिर भी उत्पाद का मूल्य इस प्रकार से तय किया जाना चाहिए कि उसके द्वारा उत्पादन लागत एवं वितरण लागत को पूरा करने के साथ–साथ फर्म की बिक्री तथा शुद्ध लाभों में वद्धि की जा सके।

कीमत विभेद
(Price Discrimination)

''जब कोई विपणनकर्ता किसी उत्पाद को विभिन्न क्रेताओं को दो या दो से अधिक कीमत पर विक्रय करता है'' इसको कीमत विभेद कहते हैं तथा इस नीति को कीमत भिन्नता नीति कहते हैं।

एक निर्माता जब अपनी एक ही वस्तु को भिन्न–भिन्न क्रेताओं को भिन्न–भिन्न कीमतों पर बेचने का कार्य करता है तो उसका यह कार्य कीमत विभेद कहा जाता है, जैसे बिजली कंपनी अपनी बिजली के विभिन्न प्रकार के उपभोक्ताओं से विभिन्न कीमत लेती है। साधारण उपभोक्ता से अधिक कीमत ली जाती है जबकि औद्योगिक उपभोक्ता से कम। उसमें भी छोटे औद्योगिक उपभोक्ता से अधिक कीमत व बड़े उपभोक्ता से कम।

कीमत विभेद के लिए आवश्यक बातें
(Essentials of Price Discrimination)

विभेदात्मक नीति अपनाने के लिए कुछ बातें आवश्यक हैं। बिना इसके अपनाये हुए यह नीति अपनायी नहीं जा सकती। यह बातें निम्न हैंः–

1. उपभोक्ता को इस बात का पता नहीं होना चाहिए कि सस्ती वस्तु कौन बेच रहा है तथा किस स्थान पर बेची जा रही है। यदि उसको इस बात का पता लग जाएगा तो कीमत विभेद नीति सफल नहीं हो सकती है।
2. कीमत अन्तर इतना कम होना चाहिए कि उपभोक्ता इन अन्तरों की चिन्ता न करे।
3. उपभोक्ताओं में यह भावना होनी चाहिये कि वे ऊँची कीमत इसलिए दे रहे हैं कि वस्तु अच्छी है।

कीमत-विभेद का औचित्य
(Justification of Price discrimination)

कीमत–विभेद सामाजिक न्याय की दष्टि से उचित नहीं है क्योंकि यह उपभोक्ताओं के बीच भेदभाव करता है और विभिन्न प्रकार के उपभोक्ताओं से अलग–अलग कीमत वसूल करता है। इससे समाज को अधिक लाभ न होकर निर्माता को अधिक लाभ होता है जो एकाधिकार जैसी स्थिति पैदा कर उपभोक्ताओं का शोषण करना प्रारम्भ कर देता है। इन्हीं कारणों की वजह से अमरीका में रौबिन्सन पैटमेन अधिनियम (Robinson Patman Act) है जिसके अनुसार कीमत विभेद विभिन्न क्रेताओं के साथ जो एक सी क्वालिटी व ग्रेड की वस्तु खरीद रहे हैं वर्जित है, यदि उसका उद्देश्य प्रतिस्पर्धा को कम करना या दूसरों को हानि पहुंचाना है। इस कानून के कुछ अपवाद भी है। भारत में यह एकाधिकार एवं प्रतिबन्धात्मक व्यापारिक पद्धतियां अधिनियम 1969 के अन्तर्गत आता है।

कीमत भिन्नता विधियां
(Price Differential Methods)

ग्राहकों से भिन्नता उनके क्रय के आकार (size of purchase) ग्राहकों के प्रकार (Types of customers) क्रेता की भौगोलिक स्थिति (Geographical location of the customer) एवं भुगतान विधि (Mode of payment) आदि के आधार पर हो सकती है। इस नीति को सभी ग्राहकों पर लागू किया जाता है, जो भी ग्राहक उन शर्तों को पूरा कर देता है उसको वह लाभ दे दिया जाता है। यह बट्टा नीतियां या कीमत भिन्नता नीतियां निम्नलिखित हैं–

1. नकद बट्टा (Cash Discount)
2. व्यापारिक बट्टा (Trade Discount)
3. परिमाण बट्टा (Quantity Discount)
4. गैर मौसम बट्टा (Cash Discount)

1. **नकद बट्टा (Cash Discount)–** यह वह नीति है जिसमें क्रेता द्वारा एक निश्चित अवधि में विक्रय मूल्य का भुगतान कर देने पर बट्टा काट दिया जाता है। इस बट्टे को नकद बट्टा और इस नीति को नकद बट्टा नीति कहते हैं। उदाहरण के लिए यदि विक्रेता ने यह नीति बनायी है जो भी क्रेता विक्रय मूल्य का भुगतान क्रय की तारीख से 10 दिन के भीतर कर देगा, उसको बीजक मूल्य पर 3 प्रतिशत कटौती दे दी जायेगी। यदि वह इस अवधि में ऐसा नहीं करता है तो उसको क्रय की तारीख से 30 वें दिन पूरे बीजक मूल्य का भुगतान करना होगा। यदि किसी ग्राहक ने 1,000 रु० का माल क्रय किया और वह क्रय के प्रथम 10 दिन में ही भुगतान करना चाहता है तो उसको 970 रु० ही देने होंगे। लेकिन यदि वह इन 10 दिनों में भुगतान नहीं करता है तो 30 वें दिन उसको पूरे 1,000 रु0 का ही भुगतान करना होगा।

   इस प्रकार यह बट्टा नकद भुगतान करने पर किया जाता है। इससे क्रेता एवं विक्रेता दोनों को लाभ मिलता है। क्रेता को वस्तु सस्ती पड़ जाती है। जबकि विक्रेता को भुगतान जल्दी मिल जाता है। अतः वह कम पूंजी से अपना कारोबार चला सकता है। साथ ही उसको उधार रकम की उगाही पर अधिक समय या धन व्यय नहीं करना पड़ता है।

2. **व्यापारिक बट्टा (Trade Discount)–** इसमें मध्यस्थ क्रेता को उसके द्वारा की जाने वाली सेवाओं की क्षतिपूर्ति के लिये सूची मूल्य (List Price) पर बट्टा दिया जाता है। इस बट्टे को व्यापारिक बट्टा (Trade Discount) या क्रियात्मक बट्टा (Functional Discount) कहते हैं। तथा इस प्रकार की नीति को व्यापारिक बट्टा नीति कहते हैं। यह क्षतिपूर्ति

अधिक स्टाक रखने या ग्राहकों को साख सुविधाएं देने या विज्ञापन कराने के लिये हो सकती है। उदाहरण के लिये यदि कोई थोक विक्रेता अपने फुटकर विक्रेताओं को उधार देने की सुविधा देता है तो उसका निर्माता उसको व्यापारिक बट्टा देकर उसकी क्षतिपूर्ति कर सकता है। यदि थोक विक्रेता इस सुविधा को फुटकर विक्रेता को नहीं देता तो निर्माता को यह सुविधा देनी पड़ती है। जिसके लिये उसको व्यय ही नहीं करना पड़ता है बल्कि उधार रकम के मारे जाने का जोखिम भी सहन करना पड़ती हैं इसी प्रकार यदि कोई थोक विक्रेता अन्य थोक विक्रेताओं की तुलना में अपने यहां अधिक स्टाक रखता है तो उसे अधिक स्टाक रखने का बट्टा दिया जा सकता है। इस बट्टे की दर इस प्रकार हो सकती है– थोक विक्रेता से सूची मूल्य का 25 प्रतिशत व फुटकर विक्रेता को 15 प्रतिशत।

3. **परिमाण बट्टा (Quantity Discount)–** जब एक निर्माता अपने ग्राहकों को अधिक क्रय करने के लिए या अपनी खरीद उस विक्रेता पर केन्द्रित करने के लिए सूची–मूल्य पर बट्टा देता है तो इस बट्टे को परिमाण बट्टा कहते हैं।

इस विधि के अपनाने में विक्रेता को लाभ यह है कि–

(i) उसकी बिक्री में वद्धि होती है।

(ii) सौदों की संख्या में कमी होती है जिसके परिणामस्वरूप विक्रय समस्याएं कम होती हैं,

(iii) आदेश बड़ी–बड़ी मात्रा में आने से विक्रय व्ययों जैसे पैकिंग परिवहन आदि में कमी होती है।

(iv) अधिक विक्रय एवं व्ययों में कटौती होने से लाभों की मात्रा में वद्धि होती है ग्राहकों को भी इस नीति से लाभ होता है। उनको वस्तु सस्ती मिलती है तथा वस्तुओं के क्रय करने में व्यय कम होते हैं।

परिमाण बट्टा दो प्रकार का होता है–

1. संचयी परिमाण बट्टा (Cumulative Quantity Discount)
2. असंचयी परिमाण बट्टा (Non-Cumulative Quantity Discount)

1. ***संचयी परिमाण बट्टा (Cumulative Quantity Discount):*** यह बट्टा एक निश्चित अवधि में दिये हुए कुल आदेशों की मात्रा के आधार पर दिया जाता है। इस बट्टे का उद्देश्य ग्राहकों को अन्य विक्रेताओं से माल क्रय करने की प्रवत्ति को हतोत्साहित करना है। इसका अर्थ यह है कि क्रेता एक निश्चित अवधि में ही विक्रेता से माल क्रय करे। इस नीति में थोड़ी मात्रा में क्रय करने पर बट्टे की दरें निम्न प्रकार जैसी होती है।

क्रय की मात्रा	**बट्टे की दर**
15,000 रु० तक	कोई बट्टा नहीं
15,001 रु० से 40,000 रु० तक	3 प्रतिशत
40,001 रु० से 75,000 रु० तक	4 प्रतिशत
75,001 रु० से 1,25,000 रु० तक	5 प्रतिशत
1,25,001 रु० से 250,000 रु० तक	6 प्रतिशत
2,50,001 रु० से ऊपर	7 प्रतिशत

2. ***असंचयी परिमाण बट्टा (Non-Cumulative Quantity Discount):*** इसमें बट्टा प्रत्येक बार के विक्रय पर दिया जाता है। उदाहरण के लिए यदि हम मान लें कि एक विक्रेता ने अपने बट्टे की दर 2,000 रु० पर 2 प्रतिशत निश्चित कर रखी है तो जो भी ग्राहक एक बार में 2,000 रु० या इससे अधिक मात्रा का आदेश देगा उसको 2 प्रतिशत बट्टा दे दिया जायेगा। यदि एक ही ग्राहक इतनी ही मात्रा का आदेश एक वर्ष में कई बार देगा तो उसको उतनी ही बार कटौती दे दी जायेगी। इसके विपरीत यदि एक ग्राहक तीन बार क्रमशः 300 रु०, 1500 रु०, एवं 800 रु० का आदेश देता है तो उसको तीनों ही बार कोई बट्टा नहीं दिया जायेगा क्योंकि प्रत्येक बार उसका आदेश 2,000 रु० से कम है। यह बट्टा इस उद्देश्य से दिया जाता हे कि ग्राहक हर बार बड़ी मात्रा में क्रय करे। बड़ी मात्रा के आदेश प्राप्त होने से विक्रय व्ययों में कमी होती है।

4. **गैर-मौसम बट्टा (Off-Season Discount)–** जब कोई विक्रेता किसी वस्तु का मौसम निकल जाने के बाद इसके घटे हुए मूल्यों पर बेचना प्रारम्भ कर देता है तो इस प्रकार की मूल्य में कटौती गैर मौसमी बट्टा कहलाती है। आमतौर पर पाया जाता है कि बिजली के पंखे, कूलर, एवं रेफ्रीजरेटरों पर जाड़ों में गैर–मौसमी बट्टा (Off-Season discount) दिया जाता है। इसी प्रकार ऊनी माल पर गर्मियों में बट्टा दिया जाता है।

पुनः विक्रय कीमत अनुरक्षण
(Resale Price Maintenance)

कई बार निर्माता उन कीमतों पर नियंत्रण करना चाहता है जिन पर वास्तव में मध्यस्थ थोक विक्रेता या फुटकर विक्रेता उपभोक्ताओं को वस्तु बेचते हैं। निर्माताओं द्वारा किये गए इस प्रकार के नियंत्रण को ''पुनः'' विक्रय कीमत अनुरक्षण कहते हैं। ऐसा कीमत नियंत्रण औपाचारिक या अनौपचारिक हो सकता है। अनौपचारिक पुनः विक्रय नियंत्रण में निर्माता पुनः विक्रय मूल्य को बेचे जाने वाले पैकेजों पर मुद्रित कर देता है। या अपने विक्रय एजेंटों द्वारा उन्हें प्रचारित देता है। औपचारिक पुनः विक्रय अनुरक्षण निर्माता तथा मध्यस्थों के बीच के अनुबंध से प्रभावित होता है। निर्माता के विक्रय मूल्य के अनुबंध में ही मध्यस्थों के द्वारा किए जाने वाले पुनः विक्रय मूल्य के अनुबंध भी होते हैं, अथवा सरकारी आदेशों के अनुसार सरकार द्वारा निश्चित किए गए पुनः विक्रय मूल्यों से मध्यस्थों को अवगत करा दिया जाता है।

पुनः विक्रय कीमत अनुरक्षण की नीतियों को निर्माताओं द्वारा अपनाने के कारण निम्न हैं–

1. उत्पाद को एक समान और एक निश्चित मूल्य पर बेचने के लिए निर्माता जब तक पुनः विक्रय नियंत्रण नहीं लागू करते तब तक विभिन्न मध्यस्थों द्वारा लिए गए मूल्यों में अंतर होता है।
2. उत्पादों को कीमत नेता होने से बचाने के लिए।
3. निर्माता यह विश्वास करते हैं कि उत्पादों के मूल्यों के आधार पर उपभोक्ता अपनी मांग की मात्रा की गणना करते हैं।

कई निर्माता पुनः विक्रय कीमत अनुरक्षण को नहीं अपनाते तथा स्वतंत्र प्रतियोगिता को अवकाश प्रदान करते हैं। फलतः थोक व्यापारी और फुटकर व्यापारियों में प्रतिस्पर्धा होती है। ऐसी प्रतिस्पर्धा में थोक और फुटकर व्यापारियों के लाभ की मात्रा कम हो जाती है, तथा उपभोक्ता सस्ते मूल्यों पर वस्तु पा जाते हैं। पुनः विक्रय कीमत नियंत्रण में प्रशासन संबंधी कठिनाइयां भी हैं। तथा इसे लागू करने की कठिनाइयां भी हैं। विशेषतया वहां जहां मध्यस्थों की श्रंखला अधिक लंबी है या उत्पाद का वितरण बड़ी तादाद में है। भारत में गत कुछ वर्षो से पुनः विक्रय कीमतों में अत्यधिक वद्धि हो जाने के कारण सभी बड़े निर्माताओं द्वारा पुनः विक्रय कीमत नियंत्रण अपनाया जाने लागा है। दवाईयों, स्कुटर्स, कार, रेफ्रीजरेटर्स, सूतीवस्त्र, विद्युत सामान आदि कुछ उदाहरण हैं। भारत सरकार द्वारा पुनः विक्रय कीमत नियंत्रण के लिए निर्मातओं और विक्रेताओं को पूर्ण स्वतंत्रता नहीं दी गई है कंपनी को भारत सरकार से पुनः विक्रय कीमत निश्चित करने के लिए पूर्व अनुमति लेनी पड़ती है। इस संबंध में सरकारी आदेश जारी किया गया है।

एकाधिकार एवं प्रतिबंधात्मक व्यापारिक पद्धतियां अधिनियम (Monopolies & Restrictive Trade Practices Act), 1969 की धारा 40 की टीका के अनुसारः ''किसी वर्णन वाले माल की बिक्री के संबंध में पुनः विक्रय का अर्थ किसी कीमत या न्यूनतम कीमत से है जो कि डीलर को सूचित किया गया है या माल की पूर्ति करने वाले या उसकी ओर से छापा गया है। (कानूनी रूप से या अन्यथा) तथा जिसको उस वर्णन की वस्तु की बिक्री के लिए जाना है या जिसको इसके लिए उचित बताकर सिफारिश की गयी है, या कोई कीमत जो थोक या फुटकर विक्रेता और पूर्तिकर्ता के साथ हुए किसी प्रसंविदे या समझौते के अनुसार इस उद्देश्य के लिए निर्धारित किया गया है या ऐसा निर्धारित किया हुआ बताया गया है।''[8]

---

8 "Resale price, in relation to the sale of goods of any description, means any price notified to the deder or otherwise published by or on behalf of the supplier of goods in question (whether lawful or not) as the price or minimum price which is to be charged on, or is recommended as appropriate for, sale of that description or any price prescribed or purported to be prescribed for that purpose by any contract or agreement between the wholesaler or retailer and any such supplier (Explanation 1 to Section 40 of MRTP Act, 1969).

इस प्रकार पुर्नविक्रय कीमत (Resale Price) का अर्थ उस कीमत से है जिस कीमत पर वस्तु को एक मध्यस्थ द्वारा पुनः बेचा जाता है यह कीमत वस्तु के पूर्तिकर्ता द्वारा मौखिक या लिखित रूप से बता दिया जाता है। यह या तो वह निश्चित कीमत होती है जिस पर बिक्री होनी है या वह न्यूनतम कीमत होती है जिससे कम पर वस्तु की बिक्री नहीं की जा सकती है, यद्यपि इससे अधिक पर बिक्री की जा सकती है। जब एक संस्था इस प्रकार की नीति अपनाती है तो इसे पुनः विक्रय मूल्य अनुरक्षण (Resale Price Maintenance) कहते हैं।

''पुनः बिक्री कीमत अनुरक्षण एक विपणन नीति है जिसमें निर्माता या वस्तु का मौलिक, जिसकी पहचान ब्राण्ड, ट्रेडमार्क, कॉपीराइट या पेटेण्ट से होती है, उस कीमत पर प्रतिबंध लगा देता है जिस पर क्रेताओं या उपक्रेताओं के द्वारा उसको बेचा जायेगा।'' इसका अर्थ यह हुआ कि मध्यस्थों के द्वारा उस वस्तु की बिक्री निर्माता या मालिक द्वारा निर्धारित कीमत पर ही की जा सकती है। यह निर्धारित कीमतें तीन प्रकार की होती हैं–

1. **निर्माता द्वारा निर्धारित कीमत परः** यह मूल्य निर्माता द्वारा निर्धारित होता है और इसमें परिवर्तन नहीं किया जा सकता है। कोई भी मध्यस्थ इस कीमत से कम पर और न अधिक पर वस्तु की बिक्री कर सकता है।
2. **निर्माता द्वारा निर्धारित कीमत से अधिक पर न बेचनाः** इसमें निर्माता द्वारा निर्धारित कीमत से अधिक कीमत मध्यस्थ के द्वारा नहीं लिये जा सकते हैं लेकिन कम कीमत पर बेचना चाहें तो बेच सकते हैं।
3. **निर्माता द्वारा निर्धारित कीमत से कम पर न बेचनाः** इसमें निर्धारित कीमत से कम कीमत पर वस्तुओं की बिक्री मध्यस्थों द्वारा नहीं की जा सकती है इस प्रकार की नीति को पुर्नविक्र कीमत निर्धारण (Resale Price Fixing) भी कहते हैं। कुछ विद्वान इसको उचित व्यापार (Fair Trading) कहते हैं।

   उपर्युक्त तीनों रूपों का मुख्य उद्देश्य पुनः विक्रय कीमतों पर प्रतिबन्ध लगाना है। इस प्रतिबन्ध के लगाने के कारण बहुत से हो सकते हैं।

पुनः विक्रय मूल्य अनुरक्षण नीति का मूल्यांकन
(Evaluation of Resale Price Maintenance Policy)

एक विपणन प्रबन्धक को पुनः विक्रय कीमत अनुरक्षण की नीति अपनाने से पूर्व इस पर पूर्ण विचार कर लेना चाहिए। यह विचार निर्माता मध्यस्थ एवं उपभोक्ताओं के दष्टिकोण से हो सकता है।

1. **निर्माता पक्ष (Manufacturer's View Point)**–निर्माता के दष्टिकोण से पुनः विक्रय कीमत अनुरक्षण नीति अच्छी एवं लाभकारी है

   (i) इस नीति को अपनाने से विज्ञापनों में उत्पाद की विक्रय कीमत दी जा सकती है और कीमत कटौती प्रतियोगिता से बचा जा सकता है साथ ही कटौती से जो वस्तु की छवि को हानी पहुंचती है उससे भी बच सकते हैं। यह कीमत कटौती विज्ञापनों में कीमत दिया रहने के कारण नहीं हो पाती है और मध्यस्थ विक्रेता उसी कीमत पर बेचने का प्रयत्न करते हैं। ग्राहक भी उस कीमत को देने के लिए तत्पर रहते हैं क्योंकि विज्ञापनों में वह कीमत दिया रहता है।

   (ii) इस नीति में उपभोक्ता के साथ कीमत संबंधी धोखा नहीं किया जा सकता है क्योंकि उपभोक्ता को तो कीमत की जानकारी पहले से ही है।

   (iii) यह नीति उपभोक्ता को पास के ही स्टोर या दुकान से वस्तु क्रय करने के लिए प्रेरित करती है जिससे कुल बिक्री की संभावनाएं बनी रहती हैं। इसका कारण यह है कि सभी मध्यस्थ विक्रेता उसी निर्धारित कीमत पर ही वस्तु का विक्रय करते हैं।

   (iv) निर्माता की दष्टि से यह नीति इसलिए अच्छी है कि इसमें मध्यस्थों को कीमत प्रतियोगिता से बचाया जा सकता है।

   लेकिन निर्माता की इस नीति की आलोचना इस आधार पर की जाती है कि इसमें उपभोक्ता, मध्यस्थ विक्रेता दोनों को हानि रहती है। उपभोक्ता का कहना है कि उससे वस्तु के वास्तविक कीमत से अधिक वसूल किया जाता है इस

नीति में पुनः विक्रय कीमत बढ़ते ही रहते हैं साथ ही वस्तु की क्वालिटी में भी गिरावट आ जाती है।

मध्यस्थ विक्रेता का कहना है कि उसको ऐसी वस्तुओं के विक्रय पर लाभ बहुत ही कम मात्रा में मिलता है जबकि ऐसी वस्तुओं को बेचने के लिए वितरणकर्ता या प्रतिनिधि बनने में काफी धन विनियोजित करना पड़ता है।

2. **मध्यस्थ विक्रेताओं का पक्ष (Middlemen's Viewpoint)**—मध्यस्थ विक्रेता इस नीति के पक्ष में रहते हैं, इसके दो कारण हैं:

   (i) ग्राहक को कीमत की जानकारी होने के कारण उससे मोलभाव करने की आवश्यकता नहीं रहती हैं इस प्रकार विक्रय में कम समय लगता है।

   (ii) ऐसी वस्तुओं के बेचने में हानि की जोखिम कम ही रहती है क्योंकि मूल्य प्रतियोगिता नहीं होती है।

   लेकिन मध्यस्थ इस नीति की आलोचना करते हैं कि उनको लाभ कम मिलते हैं, तथा वस्तु को बेचने के लिए निर्माता से एजेन्सी लेने में लागत अधिक आती है। साथ ही समय—समय पर निर्माता के आदेशों का पालन करना पड़ता है।

3. **उपभोक्ता का पक्ष (Consumer's Viewpoint)**—इस नीति के समर्थकों का कहना है कि:

   (i) इसमें कीमत उचित स्तर पर बने रहते हैं।

   (ii) उपभोक्ताओं को वस्तु खरीदने के लिए अधिक दूर तक नहीं जाना पड़ता है और इस प्रकार उनके धन एवं समय की बचत होती है।

   लेकिन इन दलीलों में अधिक सार प्रतीत नहीं होता है। इसका कारण यह है कि पुनः विक्रय कीमत अनुरक्षण में उचित से अधिक कीमत ली जाती है। जिसकी पुष्टि विभिन्न उपभोक्ता समुदायों द्वारा की जा चुकी है। यदि वस्तु का अनुरक्षण कीमत न हो तो वस्तु की कीमत कम ही रहेगी क्योंकि मध्यस्थ विक्रेताओं द्वारा वस्तु को बेचने के लिए प्रतियोगिता की जायेगी।

   इस नीति के अपनाने में कीमतें कम नहीं होतीं बल्कि उत्तरोत्तर बढ़ती ही रहती हैं। इसकी भी पुष्टि विभिन्न अनुसंधानों द्वारा की जा चुकी है। कभी—कभी यह भी पाया जाता है कि वस्तु की अनुरक्षण कीमत तो वर्षों तक एक ही बना रहती है लेकिन इसकी क्वालिटी में गिरावट कर दी जाती है।

निष्कर्ष

उपर्युक्त अध्ययन से हम इस निष्कर्ष पर आते हैं कि पुनः विक्रय कीमत अनुरक्षण से निर्माता एवं मध्यस्थ को कुछ लाभ अवश्य मिलते हैं लेकिन उससे उपभोक्ता के हितों को हानि पहुंचती है। आजकल की समाजवादी अर्थव्यवस्था में तो इस नीति का कोई स्थान नहीं है। भारत में यह नीति अनुसूचित बताई जाती है तथा इसका प्रयोग अवैधानिक है।

भारत में कीमतों पर सरकारी नियंत्रण
(Govt. Regulation on Pricing in India)

भारत में कीमतों पर सरकारी नियंत्रण अन्य देशों की तुलना में अधिक पुरानी नहीं है। सबसे पहले यह नियंत्रण 1939 में भारत में सुरक्षा नियमों (Defence of India rules) के अन्तर्गत लगाये गये थे जो 30 सितम्बर, 1946 तक लागू रहे। इन प्रतिबंधों को लागू रखने की आवश्यकता को मानते हुए सरकार ने एक अध्यादेश से इनको जारी रखा और उस अध्यादेश का स्थान आवश्यक पूर्ति (अस्थायी अधिकार) अधिनियम (Essential Supplies Temporary Powers Act, 1946) ने ले लिया जो 26 जनवरी, 1955 को समाप्त हो गया। बाद में इसका स्थान, अप्रैल, 1955 से आवश्यक वस्तु अधिनियम (Essential Commodities Act 1955) ने ले लिया है।

आजकल सरकार को किसी भी वस्तु की कीमतों में हस्तक्षेप करने का अधिकार निम्न अधिनियमों के अन्तर्गत मिला हुआ है–

1. आवश्यक वस्तुएं अधिनियम (Essential Commodities Act, 1955)
2. औद्योगिक विकास एवं नियमन अधिनियम (Industries Development & Regulation Act, 1951)

3. एकाधिकार एवं प्रतिबन्धात्मक व्यापारिक पद्धतियां अधिनियम (Monopoloies & Restrictive Trade Practices Act, 1969)

4. भारत सुरक्षा अधिनियम (Defence of India Rules)

इनका विस्तत वितरण ''विपणन पर्यावरण'' के अध्याय में दिया गया है।

अध्याय-11
वितरण वाहिकाएँ
(Distribution Channels)

वितरण माध्यम या वाहिकाओं का अर्थ
(Meaning of Channels of Distribution)

प्रत्येक वस्तु का उत्पादन उसके अन्तिम उपभोक्ता तक पहुंचाने के लिए किया जाता है लेकिन उसको अन्तिम उपभोक्ता तक कई माध्यमों में पहुंचाया जा सकता है; जैसे, निर्माता फुटकर विक्रेताओं की सेवाओं का उपभोग कर उपभोक्ताओं को बेच सकता है। प्रतिनिधि नियुक्त करके भी वस्तुओं को बेचा जा सकता है। एक से अधिक मध्यस्थों की सेवाओं का लाभ भी उठाया जा सकता है। यह सभी वितरण माध्यम या वाहिका की परिभाषा के अन्तर्गत आते हैं। **वितरण माध्यम को व्यापारिक माध्यम** (Trade Channel) भी कहते हैं। विभिन्न विद्वानों के अनुसार वितरण माध्यम या वाहिका का अर्थ निम्न प्रकार है–

1. **विलियम जे. स्टाण्टन** के अनुसार, ''वस्तुओं के अधिकार–स्वामित्व को अन्तिम उपभोक्ता या औद्योगिक विक्रेता तक पहुंचाने में जो माध्यम अपनाया जाता है, वह वितरण माध्यम कहलाता है।''[1]
2. **रिचार्ड बसक्रिक** की राय में, ''वितरण माध्यमों का आशय उन आर्थिक संस्थाओं की रीतियों से है जिनके माध्यम से एक उत्पादक अपना माल प्रयोगकर्ताओं के हाथ में सौंपता है।''[2]
3. **मैकार्थी** के मत में, ''उत्पादक से उपभोक्ता तक की संस्थाओं का कोई भी क्रम जिसमें या तो एक मध्यस्थ है या उनकी कोई भी संख्या हो सकती है, वितरण माध्यम कहलाता है।''[3]
4. **फिलिप कोटलर** की राय में, ''प्रत्येक उत्पादक, विभिन्न विपणन मध्यस्थों को, जो फर्म के लक्ष्यों को सर्वोत्तम ढंग से पूरा करते हैं, परस्पर जोड़ने की कोशिश करता है। विपणन मध्यस्थों का यह सेट ही विपणन मार्ग कहलाता है। इसको व्यापारिक मार्ग या वितरण मार्ग भी कहते हैं''[4]
5. **कण्डिफ, स्टिल एवं गोवोनी** के मत में, 'विपणन माध्यम वे वितरण जाल हैं जिनके माध्यम से उत्पादक वस्तुओं को बाजार की ओर प्रवाहित करते हैं''[5]

उपर्युक्त परिभाषाओं से यह निष्कर्ष निकलता है कि (i) वितरण माध्यम में निर्माता व अन्तिम उपभोक्ता दोनों को सम्मिलित किया जाता है। (ii) अतः इन दोनों को मिलाने में जो भी मध्यस्थ अपनी सेवाएं प्रदान करते हैं वे इसके अन्तर्गत आते हैं। (iii) लेकिन वे संस्थाएँ वितरण माध्यम की परिभाषा में शामिल नहीं की जाती है, जो सिर्फ सेवाओं

---

1 "A channel of distribution for a product is the route taken by the title to the goods as they move from the producer to the ultimate consumer or industrial user." *– Stanton: Fundamentals of Marketing, p. 354.*

2 "Distribution channels are systems of economic institutions through which a producer of goods delivers them into the hands of their users." *– Richard Buskrik: Principles of Marketing, p. 295.*

3 "Any sequence of institutions from the producer to the consumer, including one or any number of middlemen, is called a channel of distribution." *–McCarthy: Basic Marketing, p. 324.*

4 "Every producer seeks to link together the set of marketing intermediaries that best fulfil the firm's objectives. This set of marketing intermediaries is called the marketing channel (also trade channel and channel of distribution)"

–Philip Kotler: Marketing Management, P.552

5 "Marketing channels are the distribution networks through which producers' products flow to the market."

–Cundiff, Still & Govoni: Fundamentals of Marketing, p.225.

को ही प्रदान करती हैं और वस्तुओं का स्वामित्व सम्बन्धी अधिकार नहीं बदलतीं; जैसे, बैंके, परिवहन संस्थाएँ, भण्डार, आदि। इसका अर्थ यह है कि वितरण माध्यम में वस्तु का स्वामित्व बदलना आवश्यक है। इसके अतिरिक्त, यह भी आवश्यक है कि किसी मध्यस्थ के द्वारा वस्तु में कोई खास परिवर्तन नहीं किया जाना चाहिए। यदि वस्तु की प्रकृति, डिजाइन, गुण, आदि में परिवर्तन कर दिया जाता है तो जिस मध्यस्थ ने परिवर्तन किया है वहाँ से नया वितरण माध्यम प्रारम्भ हो जाता है।

संक्षेप में, वितरण माध्यम वस्तुओं के स्वामित्व हस्तान्तरण का मार्ग है और इसमें केवल उन्हीं संस्थाओं को शामिल किया जाता है जो वस्तुओं के स्वामित्व हस्तान्तरण में सहयोग करती हैं तथा बिना किसी परिवर्तन किये वस्तुओं को अन्तिम उपभोक्ताओं या औद्योगिक उपयोगकर्ताओं तक पहुंचाती हैं।''

वितरण वाहिका के चयन हेतु प्रक्रिया

वितरण–वाहिका के चयन हेतु बेसियन विधि (Bayesian Methodology) को अपनाया जा सकता है इस प्रकार विपणन अवसरों को परिणात्मक रूप देकर भी वितरण–वाहिका का चयन श्रेयस्कर माना गया है।

विलियम लेजर ने वितरण–वाहिका के अभिकल्पन एवं चयन हेतु अपनाई जाने वाली प्रक्रिया में निम्नलिखित बिन्दुओं पर विचार करना आवश्यक माना है–

1. **संगत घटकों का मूल्यांकन (Evaluating Relevant Factors)–**लेजर के मतानुसार वितरण–वाहिकाओं के अभिकल्पन एवं चयन की प्रक्रिया का प्रथम चरण संगत घटकों का मूल्यांकन करना है। इन घटकों में उत्पाद, बाजार, उपभोक्ता स्वभाव, उपलब्ध वितरण–वाहिकाएं, वितरण साधन, तकनीकी ज्ञान, बाजार–स्थिति, दी जाने वाली सुविधायें आदि को प्रमुखतः सम्मिलित किया जा सकता है।
2. **वाहिका से उत्पन्न होने वाली माँग का निर्धारण (Specifying Demands from Channel)–**दूसरे चरण पर प्रस्तावित वाहिका से उत्पन्न होने वाली माँग का निर्धारण किया जाना चाहिए। इसी चरण पर पारस्परिक सीमाओं (Constraints) एवं सहयोग का भी अध्ययन किया जाना चाहिए। इसके अतिरिक्त उन चलों पर भी विचार किया जाना चाहिए जो वाहिका की माँग को प्रभावित कर सकते हों अथवा पारस्परिक सहयोग को प्रभावित करने की स्थिति में हों)
3. **प्रतिस्पर्धियों की वाहिकाओं का मूल्यांकन करना (Evaluating the Competitor's Channel)–**इस चरण पर प्रबन्धकों को चाहिए कि वे फर्म की प्रतिस्पर्धा संस्थाओं द्वारा प्रयुक्त की जा रही वाहिकाओं का अध्ययन करे और पता लगाये कि उन वाहिकाओं के प्रयुक्त किये जाने के पीछे क्या कारण हैं? यहाँ यह भी मालूम किया जाना चाहिए कि प्रतिस्पर्धी संस्थाओं द्वारा प्रयुक्त वाहिकाओं के अपनाने पर क्या समस्याएँ पैदा हो सकती हैं?
4. **वैकल्पिक वाहिकाओं का मूल्याँकन (Evaluating the Other Alternative Channels)–**इस चरण पर वैकल्पिक वाहिकाओं की प्रयुक्ति की सम्भावनाओं तथा उनसे उत्पन्न होने वाले लाभों, और अवरोधों की जानकारी की जानी चाहिए। ऐसा करते समय लागत–आय विश्लेषण को आधार बनाया जाना श्रेयस्कर रहता है। मूल्यांकन के अन्य आधारों में 'नियंत्रण' एवं 'अनुकूलन' (Adaptive) आधार सम्मिलित किये जा सकते हैं।
5. **सम्भव वाहिकाओं का विश्लेषण (Analysing Feasible Distribution Channels)–**इस चरण पर उन वाहिकाओं का विश्लेषण किया जाना चाहिए जिनकी प्रयुक्ति फर्म के प्रबन्धकों को सम्भव प्रतीत होती है। ऐसा विश्लेषण करते समय प्रत्येक वाहिका को फर्म के सम्मुख प्रस्तुत अथवा सम्भावित समस्याओं एवं सीमाओं के सन्दर्भ में देखना चाहिए।
6. **वाहिका अथवा वाहिकाओं का चयन (Selecting the Channel or Channels)–**यह अन्तिम चरण है जो श्रेष्ठ वाहिकाओं के चयन को बतलाता है। इस चरण पर उन परिणामों का पूर्व–निर्धारण किया जाता है जिन्हें चयनित वाहिका द्वारा प्राप्त करना होता है। इस चरण पर सम्भावित समायोजनों का क्रम भी निर्धारित किया जाता है।

वितरण माध्यम या वाहिका के कार्य
(Functions of Distribution Channel)

वस्तु के वितरण के लिए वितरण माध्यम के द्वारा बहुत–से कार्य किये जाते हैं। इन्हीं कार्यों को वितरण माध्यम या वाहिका के कार्य कहते हें। यह कार्य निम्नलिखित हैं–

1. **मूल्य निर्धारित करना (Fixing price):** वितरण माध्यम मूल्य निर्धारित करता है। साधारणतया यह पाया जाता है कि निर्माता के द्वारा अपने मध्यस्थों से सलाह ली जाती है कि वे बतायें कि एक उपभोक्ता या क्रेता उनकी वस्तु को कितने में स्वीकार कर सकता है? मध्यस्थों को बाजार की अच्छी जानकारी होती है अतः वे अपने अनुभव व ज्ञान के आधार पर वस्तु के मूल्य के सम्बन्ध में सुझाव देते हैं जो बहुत ही उचित एवं समयानुकूल होते हैं।

2. **निर्णयों को नियमबद्ध करना (Routinization of decisions):** वितरण माध्यम का दूसरा कार्य निर्णयों को नियमबद्ध करना है। यदि बाजार में वस्तु बिक रही है और कोई मध्यस्थ उसको बेचने के लिए अपनी दूकान पर रखना चाहता है तो वह अपना आदेश निर्माता को देकर अपने निर्णय को नियमबद्ध करा सकता है। इस प्रकार मध्यस्थों की सहायता से बड़ी मात्रा में बिक्री की जा सकती है। एक बार वितरण माध्यम स्थापित हो जाने से माल को प्रवाहित करने में व्यय भी कम ही होते हैं।

3. **वित्त प्रबन्ध करना (Managing finances):** वितरण माध्यम का तीसरा कार्य वित्त का प्रबन्ध करना है। यदि वस्तु मध्यस्थों के माध्यम से बेची जाती है तो मध्यस्थों के द्वारा अपने आदेश के साथ कुछ धन अग्रिम के रूप में दिया जाता है जिससे निर्माता को अपने वित्त प्रबन्ध में सुविधा रहती है। कभी–कभी मध्यस्थों को माल बैंकों के माध्यम से भी भेजा जाता है। जिससे निर्माता उस माल सम्बन्धी प्रपत्र को बैंक से बट्टे पर भुना लेता है और इस प्रकार अपने वित्त का प्रबन्ध कर लेता है। कभी–कभी वितरक या प्रतिनिधि भी नियुक्ति किये जाते हैं उनसे भी कुछ धन धरोहर (security) के रूप में मिल जाता है। इस प्रकार वितरण माध्यम का कार्य वित्त प्रबन्ध करना भी है।

4. **संवर्द्धन क्रियाएँ करना (Promotional activities):** व्यवसाय में निर्माता एवं मध्यस्थों के द्वारा संवर्द्धन क्रियाएँ की जाती हैं। यह मध्यस्थ दुकान की अलमारियों में वस्तुआं का प्रदर्शन करके विक्रय–संवर्द्धन व विज्ञापन का कार्य करते हैं। कभी–कभी यह मध्यस्थ स्वयं विज्ञापन व विक्रय–संवर्द्धन भी करते हैं। निर्माता भी इन मध्यस्थों को इस कार्य को करने के लिए विभिन्न प्रकार के प्रलोभन देते हैं; दुकान की साज–सज्जा के लिए अलमारी, रैक, इश्तहार, आदि मुफ्त देना; विज्ञापन व विक्रय–संवर्द्धन व्यय का कुछ भाग स्वयं वहन करना व मध्यस्थों के विक्रयकर्ताओं को प्रशिक्षण देना, आदि।

5. **संचार में सहायता करना (Aiding communication):** वितरण माध्यम संचार सुविधा का भी कार्य करते हैं। वे मध्यस्थ जो किसी निर्माता की वस्तुएँ बेचते हैं वे अपने निर्माता को बाजारू सूचनाएँ भी देते रहते हैं जिससे निर्माता क्रेताओं की पसन्द व आवश्यकता के अनुसार उत्पादन में फेर–बदल करता रहता है और समयानुसार उत्पादन कर लाभ कमाता रहता है।

6. **सौदों की संख्या न्यूनतम करना (Minimizing total transactions):** वितरण माध्यम सौदों की संख्या को कम–से–कम करते हैं जिससे वितरण व्ययों में कमी हो जाती है। यदि वितरण माध्यम न हों तो प्रत्येक क्रेता को अपना सीधा सम्पर्क निर्माता से स्थापित करना होगा, लेकिन वितरण माध्यम होने से उन्हें ऐसा नहीं करना पड़ता है और वे मध्यस्थों के माध्यम से अपनी वस्तुएँ क्रय कर लेते हैं।

7. **उपभोक्ताओं की सेवा करना (Serving the consumer):** वितरण माध्यम का सबसे महत्वपूर्ण कार्य उपभोक्ताओं की सेवा करना है। वास्तव में, इन्हीं के माध्यम से उपभोक्ता को वस्तु मिलती है और यदि उसको कोई कठिनाई होती है तो इन्हीं के माध्यम से वह कठिनाई भी दूर की जाती है।

वितरण माध्यम के प्रकार
(Types of Distribution Channels)

वस्तुओं को उपभोक्ताओं तक पहुंचाने के तीन तरीके काम में लाये जाते हैं– (1) प्रत्यक्ष वितरण माध्यम, (2) अप्रत्यक्ष वितरण माध्यम, (3) दोहरा वितरण माध्यम।

प्रत्यक्ष वितरण माध्यम
(Direct Distribution Channel)

वितरण की यह वह प्रणाली है जिसमें निर्माता अपनी वस्तुओं को अपनी ही दुकानों या डिपो या शाखाओं या प्रतिनिधियों, आदि के माध्यम से सीधा ही उपभोक्ता तक पहुंचाता है। इस प्रणाली के माध्यम से वस्तुएँ पहुंचाने के पाँच साधन हैं– (1) स्वयं की दुकानें, (2) स्वयं के विक्रयकर्ता, (3) डाक द्वारा आदेश, (4) टेलीफोन, (5) विक्रय मशीन।

1. **स्वयं की दुकानें (Own sales shops):"** इसमें निर्माता अपनी स्वयं की फुटकर दुकानें भिन्न–भिन्न स्थानों पर खोलता है जहाँ उसकी वस्तुओं की बिक्री की जाती है। भारत में इस प्रकार के अनेक उदाहरण हैं; जैसे, जय इन्जीनियरिंग वर्क्स लिमिटेड, कलकत्ता द्वारा निर्मित ऊषा पंखे व ऊषा सिलाई की मशीनें इसी कम्पनी की फुटकर दुकानों के द्वारा बेचे जाते हैं। बाटा इण्डिया लिमिटेड, कलकत्ता के निर्मित जूते एवं चप्पल उसी की की फुटकर दुकानें बेचती हैं। हाल ही में कुछ कपड़ा बनाने वाली मिलों के द्वारा भी इस पद्धति को अपनाया गया है और उन्होंने अपनी दुकानें बड़े–बड़े शहरों में खोल दी हैं; जैसे, रेमण्ड्स मिल्स की दुकानें, टाटा ग्रुप के मिलों की दुकानें, मफतलाल ग्रुप के मिलों की दुकानें, आदि यद्यपि इस क्षेत्र में D.C.M बहुत पुराना है। इस प्रकार की दुकानें दो प्रकार की होती है–(अ) स्वयं के प्रदर्शन गह या दुकानें (व) श्रंखला भण्डार।

   (अ) ***स्वयं के प्रदर्शन गह या दुकानें (Own sales show rooms or shops):*** इस प्रकार के प्रदर्शन गह या दुकानें निर्माता मुख्य–मुख्य शहरों व स्थानों पर खोल देते हैं। यह गह या दुकानें काफी बड़े एवं आकर्षक रूप से सजी रहती हैं तथा इन दुकानों अथवा गहों के बाहर संस्था का नाम बहुत बड़े अक्षरों में लिखा रहता है। इन दुकानों पर निर्माता का माल ही बिकता है तथा विक्रयकर्ता भी निर्माता के ही वेतनभोगी होते हैं। इन दुकानों व प्रदर्शन गहों पर निर्माता द्वारा निर्धारित मूल्य ही लिया जाता है तथा उसके द्वारा निर्धारित नीतियों का ही अनुसरण किया जाता है। प्रत्येक खरीद के लिए नकद रसीद दी जाती है।

   (ब) ***बहु विक्रयशालाएँ या श्रंखला भण्डार (Multiple shops or Chain stores):*** इसमें एक ही स्वामित्व के अधिकार में और एक ही प्रबन्ध के अन्तर्गत एक ही प्रकार का माल कई भण्डार बेचते हैं। इन भण्डारों का स्वामित्व साधारणतया निर्माता के पास होता है। इन भण्डारों की खरीदारी, विज्ञापन, कार्यविधि, भण्डारों का डिजाइन व कर्मचारियों से सम्बन्धित केन्द्रीय संगठन के हाथों में होती हैं। बिक्री का माल भी केन्द्रीय भण्डारों से ही उप–भण्डारों को पहुंचाया जाता है। भण्डारों के प्रबन्ध के लिए केन्द्रीय दफ्तर होता है। जो भण्डार बड़े होते हैं वे प्रान्तीय स्तरों पर दफ्तर रखते हैं और प्रधान कार्यालय राष्ट्रीय स्तर पर रखते हैं।

   इन भण्डारों के काम करने के तरीके व ढंग प्रमाणित होते हैं तथा इनके यहाँ विशेषज्ञों की सेवाएँ भी प्राप्त कर ली जाती हैं जो कार्य करने के श्रेष्ठ तरीके निश्चित करते हैं। भारत में श्रंखला भण्डारों के कुछ उदाहरण मिलते हैं। बाटा इण्डिया लिमिटेड, कलकत्ता की जूतों की दुकानों से सभी लोग परिचित हैं। यह दुकानें सारे देश में फैली हुई हैं और जिनकी संख्या आज लगभग, 1,000 है। इस सम्बन्ध में एक और उदाहरण देहली क्लाथ एण्ड जनरल मिल्स लिमिटेड, दिल्ली का मिलता है। इसके द्वारा भी अपनी फुटकर दुकानें स्थापित की गयी हैं। हमारे देश में श्रंखलाबद्ध दुकानों की संख्या दिन–प्रतिदिन बढ़ती जा रही है। जय इन्जीनियरिंग वर्क्स लिमिटेड, कलकत्ता नामक संस्था जो उष सिलाई मशीन, पंखे, आदि बना रही है उसने भी अपनी दुकानें खोल रखी है जो श्रंखलाबद्ध भण्डारों का ही एक उदाहरण है। बहुत से कपड़ा मिल भी अब इस ओर आगे आ रहे हैं; जैसे, रेमण्ड्स मिल्स तथा टाटा ग्रुप की दुकानें।

2. **स्वयं के विक्रयकर्ता (Own salesmen):** इस प्रकार की विक्रय पद्धति में वस्तु के निर्माता द्वारा विक्रयकर्ताओं की नियुक्ति की जाती है। ये विक्रयकर्ता समय–समय पर सम्भावित ग्राहकों से सम्पर्क स्थापित करते हैं और उनको ग्राहक बना लेते हैं। यदि वस्तु छोटी है या उपभोग योग्य वस्तु है तो विक्रयकर्ता उसको अपने साथ एक गाड़ी में उचित प्रकार से रखकर सम्भावित ग्राहकों के यहाँ जाकर रुकता है, माल बेचता है और तुरन्त भुगतान ले लेता है। इस प्रणाली को घर–घर में विक्रय भी कहते हैं। इस प्रकार के उदाहरण में चाय कम्पनियाँ आती हैं। भारत के सभी बड़े–बड़े नगरों में ब्रुक बॉण्ड चाय कम्पनी या लिपटन चाय कम्पनी के विक्रयकर्ता अपनी गाड़ी लिये घूमते दिखायी देते हैं।

हिन्दुस्तान लीवर लिमिटेड के भी विक्रयकर्ता साबुन, डालडा घी व पाउडर, आदि बेचते दिखायी देते हैं। यदि माल औद्योगिक है, जैसे, मशीनें, वाटरकूलर, टाइप–राइटर, आदि तो विक्रयकर्ता माल का आदेश लेकर कम्पनी को भेज देता है और कम्पनी माल भेजने की व्यवस्था करती है।

3. **डाक द्वारा आदेश (Mail order):** डाक के द्वारा भी एक निर्माता अपनी वस्तुओं को बेच सकता है। इसमें डाक से ही आदेश आते हैं और उन आदेशों की पूर्ति भी डाक के माध्यम से ही होती है। वस्तु के मूल्य का भूगतान भी डाक द्वारा मिलता है। अतः इस प्रकार की संस्थाओं को डाक आदेश गह कहते हैं।

इस तरीके में विज्ञापन का महत्व काफी है। प्रत्येक विक्रेता सूची–पत्रों, समाचार–पत्रों एवं विज्ञापन, आदि के माध यम से ग्राहक को माल का परिचय कराता है। ग्राहक द्वारा उस माल के लिए डाक द्वारा आदेश दिया जाता है। विक्रेता के पास जब यह आदेश पहुंचता है तो वह माल को ठीक प्रकार से पैक कर डाकखाने के माध्यम से V.P.P भेज देता है। जब वह वस्तु आदेश देने वाले के पास पहुंचती है तो वह उसको ले लेता है और उस पर लिखे मूल्य का भूगतान डाकखाने को कर देता है। बिना मूल्य के भुगतान किये डाकखाना वस्तु की सुपुर्दगी आदेश देने वाले को नहीं करता है। इस मूल्य का भुगतान डाकखाना माल भेजने वाले को कर देता है।

4. **टेलीफोन द्वारा (By telephone):** टेलीफोन से भी बिक्री की जा सकती है। अमरीका जैसे देश में यह पद्धति काम में लायी जाती है। इसमें क्रेता विक्रेता को टेलीफोन पर आदेश देता है। विक्रेता उस माल की पूर्ति उनके घर पर कर देता है। भारत में इस प्रकार की सेवा दिल्ली की एक आटा मिल प्रदान करती है जो टेलीफोन से आदेश प्राप्त कर आटे की पूर्ति दिल्ली नगर में करती है।

5. **विक्रय मशीन द्वारा (By vending machine):** पश्चिमी देशों में स्वचालित मशीनों से भी बिक्री की जाती है। यह मशीनें जगह–जगह पर लगी रहती है जिनमें माल अन्दर भरा रहता है। इन मशीनों में एक छेद होता है जिसमें आवश्यक सिक्के डालकर वस्तु को प्राप्त कर सकते हैं। यह मशीनें उसी प्रकार की होती हैं जिस प्रकार की आजकल वजन लेने वाली मशीनें भारत में रेलवे स्टेशनों पर लगी हैं जिनमें 50 पैसे का सिक्का डालने पर उस मशीन पर खड़े व्यक्ति का वजन एक टिकट पर लिख कर आता है।

भारत में इस प्रकार की मशीन बम्बई वी. टी. स्टेशन पर प्लेटफार्म टिकट बेचने के लिए लगायी गयी है लेकिन अमेरीका में ऐसी 60 लाख मशीनें लगी हुई हैं जो 400 विलियन डॉलर के मूल्य की वस्तुओं का विक्रय प्रतिवर्ष करती हैं। वहाँ जितने सिगरेट के डिब्बे बिकते हैं उनका 16 प्रतिशत विक्रय इन मशीनों के द्वारा किया जाता है।

प्रत्यक्ष विक्रय प्रणाली से लाभ

(Advantages of Direct Selling)

प्रत्यक्ष विक्रय प्रणाली से निम्न लाभ मिलते हैं–

(अ) **उपभोक्ताओं को लाभ**–प्रत्यक्ष विक्रय प्रणाली से उपभोक्ता को यह लाभ मिलते हैं–

(i) ***वस्तु का मूल रूप में मिल जाना***–इस प्रणाली के माध्यम से वस्तु जिस रूप, रंग, आकार, प्रकार की निर्माता द्वारा बनायी जाती है उसी मूल रूप में उपभोक्ताओं को प्राप्त होती हैं। बीच में उसमें मिलावट या बदलने का अवसर नहीं होता।

(ii) ***सेवाओं की उचित व्यवस्था***–इस प्रणाली से विक्रय करने पर उपभोक्ताओं को निर्माता द्वारा दी गयी सभी सेवाएँ उपलब्ध हो जाती हैं; जैसे, विक्रय के बाद सेवा। यही नहीं, उपभोक्ता की शिकायतों पर तुरन्त व क्षमतापूर्वक ध्यान दिया जाता है।

(iii) ***कम लागत पर वस्तु प्राप्त होना***–इस पद्धति से उपभोक्ताओं को वस्तु सस्ती मिलती है। इसका कारण यह है कि मध्यस्थों के लाभ लेने से जो मूल्य बढ़ता है वह मध्यस्थों के न होने के कारण नहीं बढ़ पाता और इस प्रकार उपभोक्ताओं को कम लागत पर वस्तु मिल जाती है।

(iv) ***निर्धारित मूल्य पर वस्तु प्राप्त होना***–निर्माता सीधी बिक्री में वस्तुओं मूल्य निर्धारित कर देता है और उपभोक्ताओं को वही मूल्य वस्तु खरीदते समय चुकाना पड़ता है। इस प्रकार उपभोक्ताओं को निर्धारित मूल्य

पर वस्तु मिल जाती है और मोलभाव नहीं करना पड़ता है। कभी–कभी निर्माता अपनी वस्तुओं पर कुछ समय के भीतर खरीदने पर छूट देता है; जैसे, दीपावली के अवसर पर 20 प्रतिशत की छूट। उपभोक्ताओं को इस छूट से लाभ प्राप्त करने का पूरा अवसर मिलता है।

(ब) **निर्माता को लाभ**–प्रत्यक्ष प्रणाली से निर्माता को लाभ मिलते हैं–

(i) ***बाजार का ज्ञान***–इस प्रणाली में निर्माता और उपभोक्ता का सीधा सम्पर्क होने से निर्माता को बाजार की माँग, उपभोक्ता की रुचि में परिवर्तन, फैशन में परिवर्तन, आदि का पता लगता रहता है जिससे उत्पादन को उसी के अनुरूप बनाकर अधिकतम लाभ कमाया जा सकता है।

(ii) ***प्रतिस्पर्द्धा न होना***–इस पद्धति के अनुसार एक विक्रय स्थान पर केवल एक ही निर्माता का माल बेचा जाता है। इसका परिणाम यह होता है कि अन्य प्रतियोगी वस्तु ग्राहक के समक्ष प्रस्तुत ही नहीं होती है और इस प्रकार उपभोक्ता बिना प्रतियोगी वस्तुओं का मुकाबला किये खरीद लेता है, इस प्रकार निर्माता प्रतिस्पर्द्धा से बच जाता है।

(iii) ***मूल्य नियंत्रण सम्भव***–निर्माता अपनी वस्तुओं के सम्बन्ध में अपनी इच्छानुसार मूल्य निर्धारित कर सकता है और यदि बिक्री बढ़ाने के लिए किसी विक्रय संवर्द्धन नीति को अपनाने की आवश्यकता है तो वह उसको भी अपना सकता है।

प्रत्यक्ष विक्रय प्रणाली के दोष
(Disadvantages of Direct Selling)

प्रत्यक्ष विक्रय प्रणाली के दोषों का अध्ययन उपभोक्ता एवं निर्माता दोनों के दष्टिकोणों से किया जा सकता है–

(अ) **उपभोक्ताओं के दष्टिकोण से दोष** –इस प्रणाली से विक्रय होने पर

(i) उपभोक्ताओं को वस्तुओं में तुलना करने का अवसर नहीं मिलता।

(ii) उसको निर्माता द्वारा निर्धारित मूल्य देना पड़ता है और मोलभाव का अवसर नहीं मिलता।

(iii) उपभोक्ताओं को एक बार क्रय की गयी वस्तु को पसन्द न आने पर बदलने की सुविधा नहीं मिलती है।

(ब) **निर्माता के दष्टिकोण से दोष** –

(i) निर्माता के लिए यह प्रणाली अधिक खर्चीली है तथा इसके अपनाने से अधिक पूँजी व्यय की आवश्यकता होती है।

(ii) बहत् उत्पादन एवं विक्रय संगठन को नियंत्रित करने में कठिनाई रहती है।

(iii) स्थायी खर्चे (जैसे कर्मचारियों का वेतन, दुकानों का किराया, बिजली का व्यय, आदि) काफी बढ़ जाते हैं जिनमें विक्रय कम होने की दशा में कटौती करना साधारणतया सम्भव नहीं होता है।

(iv) इसमें सभी जोखिम व हानि निर्माता को ही सहन करनी पड़ती है।

अप्रत्यक्ष वितरण माध्यम
(Indirect Distribution Channel)

अप्रत्यक्ष वितरण प्रणाली से अर्थ वस्तुओं व सेवाओं को मध्यस्थों के माध्यम से उपभोक्ता तक पहुंचाने से है। जो संस्थाएँ इस अप्रत्यक्ष वितरण प्रणाली में मध्यस्थ के रूप में कार्य करती हैं उन्हें अप्रत्यक्ष विक्रय एजेन्सियाँ कहते हैं। यह एजेन्सियाँ तीन प्रकार की होती हैं– (1) प्रतिनिध, (2) थोक विक्रेता, (3) फुटकर विक्रेता। इन तीनों एजेन्सियों के माध्यम से वस्तु उपभोक्ता तक निम्न प्रकार पहुंचती है–

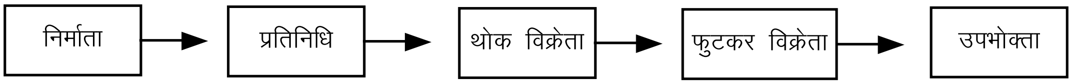

वस्तुओं के अप्रत्यक्ष वितरण में यह अनिवार्य नहीं है कि सभी मध्यस्थों की सेवाओं को काम में लाया जाय। यह सम्भव है कि प्रतिनिधि के द्वारा सीधी ही उपभोक्ता को वस्तुएँ बेच दी जायें। ऐसी स्थिति में बीच के मध्यस्थ–थोक विक्रेता व फुटकर विक्रेता–काम में नहीं आयेंगे। इसी प्रकार फुटकर विक्रेता को सीधे ही निर्माता वस्तुओं को बेच सकता है। ऐसी स्थिति में प्रतिनिधि व थोक विक्रेता की सेवाओं का लाभ उठाया जा सकता है।

अप्रत्यक्ष वितरण प्रणाली के लाभ

(Advantages of Indirect Sale)

अप्रत्यक्ष वितरण प्रणाली से उपभोक्ता एवं निर्माता को लाभ होते हैं जो निम्न प्रकार हैं–

(अ) **उपभोक्ताओं को लाभ-**

(i) *इस प्रणाली से विक्रय करने से उपभोक्ताओं को वस्तु का चयन करने में सुविधा रहती है;* क्योंकि मध्यस्थों के यहाँ कई निर्माताओं की वस्तुएँ होती हैं।

(ii) विभिन्न निर्माताओं की *वस्तुओं की तुलना* भी की जा सकती है।

(iii) विभिन्न वस्तुओं के देखने से उपभोक्ताओं को *वस्तुओं का ज्ञान* होता है कि बाजार में किस प्रकार की वस्तुएँ उपलब्ध हैं और उनमें सबसे आधुनिक कौन सी है।

(ब) **निर्माताओं को लाभ-**

(i) इस प्रणाली में विक्रय करने से निर्माता को *बिक्री–व्यवस्था करने से मुक्ति* मिल जाती है और वह अपना ध्यान अन्य आवश्यक बातों में लगा सकता है।

(ii) इस ढंग के अपनाने से निर्माता को *अधिक पूँजी की आवश्यकता नहीं* रहती है। मध्यस्थों से अग्रिम रकम लेकर पूँजी में वद्धि की जा सकती है।

(iii) इस तरीके से *व्यापार का विस्तार* होता है अर्थात् दूर–दूर तक उपभोक्ताओं को वस्तुएँ मध्यस्थों के माध्यम से पहुंचायी जा सकती हैं।

(iv) इस प्रणाली से संस्था के *स्थायी व्ययों में वद्धि नहीं होती है* और न वहत् विक्रय संगठन बनाने की आवश्यकता रहती है।

अप्रत्यक्ष वितरण प्रणाली के दोष

(Disadvantages of Indirect Selling)

अप्रत्यक्ष वितरण प्रणाली के दोषों का अध्ययन भी उपभोक्ता एवं निर्माता दोनों के दष्टिकोणों से किया जा सकता है–

(अ) **उपभोक्ताओं के दष्टिकोण से दोष-**

(i) उपभोक्ताओं को *वस्तु का अधिक मूल्य देना पड़ता है* क्योंकि बीच में जितने मध्यस्थ आते हैं उन सबके द्वारा अपना–अपना लाभ का हिस्सा जोड़ा जाता है जो अन्त में वस्तु के विक्रय मूल्य को बढ़ा देता है।

(ii) उपभोक्ता को अधिकांश दशाओं में *वस्तु मूल रूप में नहीं मिलती है।* उनमें मिलावट आदि की सम्भावनाएँ अधिक हो जाती हैं।

(iii) मध्यस्थों द्वारा उपभोक्ताओं को घटते हुए *मूल्यों का लाभ नहीं दिया जाता है।* लेकिन यदि कभी मूल्य बढ़ जाते हैं तो वे तुरन्त ही विक्रय मूल्य बढ़ा देते हैं।

(iv) उत्पादक व उपभोक्ताओं में सीधा सम्बन्ध नहीं होता है। इसका परिणाम यह होता है कि यदि उपभोक्ता वस्तु से सन्तुष्ट नहीं है तो उसको सीधे शिकायत करने का मौका नहीं मिलता। मध्यस्थों द्वारा ऐसी शिकायतों पर उचित ध्यान नहीं दिया जाता है।

(ब) **निर्माता के दष्टिकोण से दोष-**

(i) इस प्रणाली के अन्तर्गत *निर्माता को उपभोक्ता की रुचि, फैशन एवं प्रतिक्रियाओं का पता नहीं लग पाता* और उसको इस कार्य के लिए अलग से बाजार अनुसन्धान आदि पर व्यय करना पड़ता है।

(ii) निर्माता *माँग का भी उचित अनुमान नहीं लगा पाता* क्योंकि उसको मध्यस्थों के ऊपर निर्भर रहना पड़ता है। इससे मध्यस्थों द्वारा निर्माता का शोषण किया जाता है।

(iii) मध्यस्थों के लाभ एवं व्यय वस्तु के विक्रय मूल्य में वद्धि करते हैं जिसका परिणाम यह होता है कि वस्तु प्रतियोगिता में पिछड़ जाती है।

दोहरी वितरण माध्यम
(Dual Distribution Channel)

''जब एक निर्माता दोनों प्रत्यक्ष एवं अप्रत्यक्ष वितरण प्रणालियों को अपनाता है तो ऐसी प्रणाली दोहरी वितरण प्रणाली कहलाती है। इस प्रणाली में दोनों के लाभ मिलते हैं। वर्तमान समय में विपणन क्रियाओं के विस्तार के लिए यह प्रणाली बहुत ही उपयोगी है और आजकल प्रत्येक निर्माता के लिए यह प्रणाली एक आवश्यकता बनती जा रही है। इस प्रणाली को अपनाने का मुख्य उद्देश्य वितरण को व्यापक बनाना है।

लेकिन इस प्रणाली को अपनाने में सबसे बड़ी समस्या बाजारों के उचित विभाजन की है। यह तय करना कठिन होता है कि किस स्थान पर प्रत्यक्ष प्रणाली अपनायी जाय व किस पर अप्रत्यक्ष प्रणाली।

वितरण माध्यम के चुनाव को प्रभावित करने वाले घटक
(Factors Affecting Choice of Channels of Distribution)

किसी वस्तु के विपणन में वितरण माध्यम का चुनाव बहुत ही महत्वपूर्ण है। यदि चुनाव उचित रूप में नहीं होता है तो परिणामस्वरूप उपभोक्ता को वस्तु आसानी से उचित मूल्य पर नहीं मिल पाती है जिससे निर्माता अपने कार्यक्रम के अनुसार लाभ प्राप्त नहीं कर सकता है। अतः एक निर्माता द्वारा वितरण माध्यम के चुनाव का निर्णय करते समय घटकों को ध्यान में रखा जाना चाहिए। इसी बात को इस प्रकार कह सकते हैं कि वितरण माध्यम के चुनाव को जो घटक प्रभावित करते हैं। वे घटक मुख्य रूप से 6 हैं–

(i) निर्माता सम्बन्धी बातें, (ii) वस्तु सम्बन्धी बातें,

(iii) बाजार सम्बन्धी बातें, (iv) मध्यस्थ सम्बन्धी बातें,

(v) सरकार सम्बन्धी बातें (vi) अन्य बातें

निर्माता सम्बन्धी बातें
(Manufacturers Considerations)

एक निर्माता का (1) आकार, (2) वितरण माध्यम को नियन्त्रित करने की उसकी इच्छा, (3) उसका अनुभव एवं योग्यता, (4) उसकी ख्याति एवं आर्थिक साधन, आदि बहुत–से घटक हैं जो निर्माता को वितरण–मार्ग सम्बन्धी चुनाव का निर्णय लेने को प्रभावित करते हैं। यह सभी घटक निर्माता से सम्बन्धित होते हैं। अतः इनको निर्माता सम्बन्धी कहते हैं। इन सभी घटकों का विस्तत विवरण इस प्रकार है–

1. **निर्माता का आकार (Size of the manufacturer)**–निर्माता सम्बन्धी बातों में यह सबसे महत्वपूर्ण बात है। जिन निर्माताओं का आकार बहुत बड़ा होता है उनके आर्थिक साधन, ख्याति, प्रबन्धकीय योग्यता, आदि सम्बन्धी साधन भी अच्छे होते हैं। अतः ऐसी संस्थाओं के द्वारा छोटा वितरण माध्यम अपनाया जाता है।

2. **माध्यम को नियंत्रित करने की इच्छा (Desire to control the channel)**–यदि कोई निर्माता वितरण माध्यम को नियंत्रित करने की इच्छा रखता है तो इसका प्रभाव यह होगा कि उसके द्वारा उपभोक्ता से सीधा सम्बन्ध स्थापित

करना होगा इसके लिए स्वयं की दुकानें खोली जायेंगी जिससे कि मूल्य व वितरण पर नियंत्रण किया जा सके। लेकिन ऐसा करने से व्ययों में वद्धि होती है।

3. **प्रबन्धकीय अनुभव एवं योग्यता (Managerial experience and ability)**–एक वस्तु का वितरण माध्यम प्रबन्धकीय अनुभव एवं योग्यता से भी प्रभावित होता है। यदि निर्माता में आवश्यक प्रबन्धकीय अनुभव एवं योग्य की कमी है तो उसको मध्यस्थ–व्यापारियों पर अधिक निर्भर रहना होगा। नये निर्माता साधारणतया प्रारम्भिक अवस्था में मध्यस्थों पर ही निर्भर रहते हैं।

4. **ख्याति एवं आर्थिक स्थिति (Reputation and Financial condition)**–किसी संस्था की ख्याति उसकी अच्छी नीतियों एवं अच्छी आर्थिक स्थिति के कारण बनती है। एक संस्था की यह ख्याति उसके वितरण माध्यम को प्रभावित करती है। जिस निर्माता की ख्याति अच्छी होती है वह स्वयं की दुकानें या शाखाएँ खोल सकता है और मध्यस्थों पर निर्भर नहीं रहता है।

वस्तु सम्बन्धी बातें
(Product Considerations)

वे बातें जोकि वस्तु के गुण एवं प्रकृति से सम्बन्धित हैं भी वितरण माध्यम को प्रभावित करती हैं। इसमें वस्तु की (1) नाशवानता, (2) उसका वजन, (3) उसकी तान्त्रिक प्रकृति, (4) उसकी प्रतियोगिता, आदि शामिल हैं जिनका विवरण निम्नलिखित है–

1. **नाशवानता (Perishability)**–वे वस्तुएँ जो नाशवान प्रकृति की होती है जल्दी नष्ट हो जाती हैं। अतः उनको तुरन्त बेचने की आवश्यकता होने के कारण कम मध्यस्थों की आवश्यकता होती है। यह वस्तुएँ या तो निर्माता द्वारा स्वयं या फुटकर विक्रेताओं द्वारा ही बेची जा सकती है। इसके विपरीत, यदि वस्तु नाशवान प्रकृति की नहीं है तो वितरण मार्ग लम्बा हो सकता है अर्थात् निर्माता और उपभोक्ता के बीच मध्यस्थ व्यापारियों की संख्या अधिक हो सकती है।

2. **वजन (Weight)**–वस्तु का वजन उसके वितरण माध्यम को प्रभावित करता है यदि वस्तु भारी है तो उसको निर्माता के द्वारा सीधा ही औद्योगिक उपभोक्ता या अन्य उपभोक्ता को भेजा जायेगा। यह भी हो सकता है कि इन दोनों को मिलाने वाला मध्यस्थ बीच में हो। ऐसी भारी वस्तुएँ रेल के वैगन या मोटर–ट्रे में भरकर भेजी जाती हैं।

3. **तकनीकी प्रकृति (Technical nature)**–यदि वस्तु बहुत ही तकनीकी प्रकृति की है और जिसमें विक्रय के बाद सेवा की आवश्यकता है तो ऐसी वस्तु को स्वयं निर्माता द्वारा ही बेचा जाना चाहिए जिससे कि क्रेता को आवश्यक तकनीकी जानकारी दी जा सके। मध्यस्थों द्वारा भी इस प्रकार की वस्तु का विक्रय किया जा सकता है लेकिन इसके लिए मध्यस्थों को प्रशिक्षण एवं सुविधा देना अनिवार्य होगा।

4. **प्रतियोगिता (Competition)**–एक विक्रेता को इस बात का पता लगाना चाहिए कि प्रतियोगी वस्तुओं के निर्माताओं द्वारा कौन–कौन सा वितरण माध्यम अपनाया गया है जिससे कि उसकी इच्छाओं को लेकर नया वितरण–मार्ग अपनाया जा सके।

बाजार-सम्बन्धी बातें
(Market Considerations)

वितरण माध्यम के चयन करने में बाजार सम्बन्धी बातें बहुत ही महत्त्वपूर्ण हैं। बाजार सम्बन्धी बातों का अर्थ है कि (1) वस्तु उपभोक्ता बाजार की है या औद्योगिक बाजार की ? (2) क्रेताओं की संख्या कितनी है? (3) उस वस्तु के ग्राहकों की क्रय–आदतें कैसी हैं? (4) उस वस्तु के आदेश की मात्रा का आकार कैसा है। (5) क्षेत्रीय दष्टि के क्रेता किन स्थानों पर केन्द्रित हैं, आदि। इन सभी बातों का विवरण निम्न प्रकार है–

1. **औद्योगिक एवं उपभोक्ता बाजार (Industrial and Consumer market)**–बाजार सम्बन्धी घटकों में पहला घटक उस वस्तु का बाजार है। यहाँ पर बाजार शब्द का अर्थ यह है कि वह वस्तु किस प्रकार की है अर्थात् वह वस्तु सामान्य उपभोक्ताओं के लिए है या औद्योगिक उपभोक्ताओं के लिए? यदि वस्तु सामान्य उपभोक्ताओं के लिए है तो उस वस्तु के अधिक मध्यस्थ हो सकते हैं। लेकिन यदि वस्तु औद्योगिक उपभोक्ताओं के लिए है तो उसके मध्यस्थों की संख्या कम हो सकती है।

2. **ग्राहकों की संख्या (Number of customers)**—ग्राहकों की संख्या भी वितरण माध्यम के निर्णय करने में प्रभाव डालती है। यदि ग्राहकों की संख्या अधिक है तो वितरण में मध्यस्थों की सेवाओं का उपयोग किया जा सकता है लेकिन विपरीत स्थिति होने पर अर्थात् ग्राहकों की संख्या कम होने पर स्वयं निर्माता द्वारा वितरण किया जा सकता है।
3. **ग्राहकों की क्रय आदतें (Customers' buying habits)**—ग्राहकों की क्रय आदतें वितरण माध्यम को प्रभावित करती हैं; जैसे यदि वस्तु के क्रेताओं की आदत उधार लेने की है और निर्माता उधार देने की स्थिति में नहीं है तो इसका अर्थ यह है कि उसको ऐसे मध्यस्थों का सहारा लेना होगा जो उधार देने में समर्थ हैं।
4. **आदेशों का आकार (Size of orders)**—यदि आदेश बड़ी—बड़ी मात्रा में तथा कुछ ही आते हैं तो निर्माता द्वारा पूर्ति का उत्तरदायित्व स्वयं अपने ऊपर लिया जा सकता है। इसी प्रकार यदि आदेश छोटी—छोटी मात्रा में बहुत अधिक आते हैं तो थोक व्यापारियों की सहायता ली जा सकती है। इस प्रकार आदेश का आकार वितरण माध्यम को प्रभावित करता है।
5. **क्षेत्रीय केन्द्रीकरण (Regional concentration)**—यदि वस्तु के क्रेता किसी विशेष क्षेत्र, राज्य या स्थान में बसे हुए हैं तो निर्माता द्वारा स्वयं बिक्री का रास्ता अपनाया जा सकता है, लेकिन यदि क्रेता बिखरे हुए हैं तो मध्यस्थों की सहायता ली जा सकती है।

मध्यस्थ-सम्बन्धी बातें
(Middlemen Considerations)

मध्यस्थ सम्बन्धी बातें भी वितरण माध्यम पर प्रभाव डालती हैं। मध्यस्थ सम्बन्धी बातों में (1) मध्यस्थों की सेवाएँ, (2) उनकी उपलब्धता, (3) बिक्री की सम्भावनाएँ, (4) लागत, एवं (5)नीति—अनुसरण आदि बातें आती हैं। इन सभी का विवरण निम्न है—

1. **सेवाएँ (Services)**—मध्यस्थों का चुनाव उनकी सेवाओं को ध्यान में रखकर किया जाता है। जो मध्यस्थ अधिक सेवाएँ देने को तैयार हों उन्हीं को चुना जाना चाहिए।
2. **उपलब्धता (Availability)**—एक निर्माता को जिस प्रकार के मध्यस्थों की आवश्यकता होती है उसे उसी प्रकार के मध्यस्थ मिलने चाहिए। जैसे, यदि एक निर्माता एकमात्र वितरक चाहता है और उनको ऐसे मध्यस्थ नहीं मिलते हैं तो उसको अपने वितरण माध्यम में आवश्यक परिवर्तन करना होगा। इस प्रकार उपलब्धता भी वितरण माध्यम के चुनाव पर प्रभाव डालती है।
3. **बिक्री की सम्भावनाएँ (Sales possibilities)**—जिस वितरण—साधन द्वारा बिक्री बढ़ने की सम्भावनाएँ सबसे अधिक होती हैं उस साधन को ही चुनना चाहिए। लेकिन इस बात को ध्यान में रखना चाहिए कि वितरण माध्यम महँगा न पड़े तथा साथ—साथ निर्माता का मध्यस्थों पर आवश्यक नियन्त्रण बना रहे।
4. **लागत (Cost)**—जिन साधनों से वितरण लागत कम पड़ती है उनको अपनाया जाना चाहिए। लेकिन साथ ही सेवाओं एवं माल को भी ध्यान में रखा जाना चाहिए।
5. **नीति-अनुसरण (Adoptation of policies)**—नीति—अनुसरण भी वितरण माध्यम को प्रभावित करता है; जैसे, कभी—कभी मध्यस्थ किसी वस्तु को बेचना चाहता है, लेकिन उसकी शर्त होती है कि वस्तु को (निर्माता द्वारा निर्धारित मूल्य) से अधिक मूल्य पर बेचने की अनुमति दे दी जाय। यदि निर्माता निर्धारित मूल्य पर बेचने की अपनी ख्याति बनाना चाहता है तो उसको ऐसे मध्यस्थ मान्य नहीं होंगे। इसका अर्थ यह है कि निर्माता की नीति भी मध्यस्थों के चुनाव पर प्रभाव डालती है।

सरकारी नियम
(Government Regulations)

आज के समाजवादी एवं साम्यवादी युग में सरकारें भी ऐसी शर्तें एवं प्रतिबन्ध लगा देती हैं कि एक निर्माता को मध्यस्थ चुनते समय उनको ध्यान में रखना पड़ता है; जैसे, भारत में दवाइयों को बेचने वाले मध्यस्थों को सरकार से लाइसेंस लेना पड़ता

है। अतः दवाइयों के निर्माता को अपना वितरण माध्यम चुनते समय इस बात को ध्यान में रखना होगा कि वितरण लाइसेंसधारी विक्रेताओं के माध्यम से ही हो, अन्यथा कम्पनी व विक्रेता के विरुद्ध कानूनी कार्यवाही की जा सकती है। इसी प्रकार शराब भी लाइसेंसधारी (ठेकेदार) मध्यस्थों के माध्यम से ही बेची जा सकती है।

अन्य बातें
(Other Factors)

वितरण माध्यम का चुनाव करते समय *कुछ अन्य बातें भी हैं* जो प्रभाव डालती हैं। अतः वितरण माध्यम का चुनाव करते समय इन चार घटकों पर भी विचार कर लिया जाना चाहिए– (i) वितरण माध्यम *ग्राहकों की दष्टि* को ध्यान रखकर ही तय किया जाय जिससे कि उनको वस्तु प्राप्त करने में आसानी रहे; (ii) *माध्यम संस्था के उद्देश्यों के अनुकूल* होना चाहिए; (iii) माध्यम में लोच भी होनी चाहिए जिससे कि उसमें आवश्यकतानुसार परिवर्तन किया जा सके; (iv) माध्यम ऐसा हो कि निर्धारित बाजार तक पहुंच सके।

माध्यम या वाहिका-प्रबन्ध सम्बन्धी निर्णय
(Channel-Management Decisions)

जब निर्माता वितरण माध्यम के स्वरूप का निर्णय कर लेता है तो उसके समक्ष तीन प्रबन्ध सम्बन्धी समस्याएँ आती हैं जिनके सम्बन्ध में उनको क्रमानुसार निर्णय लेने पड़ते हैं– (1) माध्यम–सदस्यों का चुनाव करना, (2) माध्यम–सदस्यों को प्रेरित करना, (3) माध्यम–सदस्यों का मूल्यांकन करना।

1. **माध्यम-सदस्यों का चुनाव करना (Selection of Channel Members)**–एक निर्माता द्वारा अपने वितरण माध्यम के स्वरूप का निर्णय कर लेने के बााद वितरण माध्यम के सदस्यों का चुनाव करना पड़ता है। इसके लिए कुछ निर्माताओं को, जिनकी बाजार में ख्याति अधिक होती है, स्वतः ही मध्यस्थों के द्वारा प्रस्ताव किये जाते हैं कि उनको वे अपने मध्यस्थ बना लें लेकिन कुछ निर्माताओं को इस प्रकार के प्रस्ताव नहीं मिलते हैं और उनको ऐसी संस्थाएँ ढूँढ़नी पड़ती हैं, जो मध्यस्थ बनने के लिए तैयार हों। इस कार्य के लिए निर्माता द्वारा पहले से ही विभिन्न प्रकार से प्रचार एवं विज्ञापन किया जाता है जिससे प्रभावित होकर उनके पास मध्यस्थ बनने के प्रस्ताव आ जाते हैं। इस दूसरी नीति को हम *मध्यस्थों पर वस्तु थोपने की रीति–नीति* कहते हैं। इस प्रकार की नीति में लाभप्रदता पर अधिक जोर दिया जाता है तथा मध्यस्थों के समक्ष शर्तें भी आसान रखी जाती हैं। कभी–कभी उपहार या भेंट या फ्री माल के रूप में भी कुछ सुविधाएँ प्रदान की जाती हैं।

   मध्यस्थ बनने के प्रस्ताव चाहे किसी भी प्रकार आयें लेकिन *निर्माता के समझ तो एक समस्या उत्पन्न हो जाती है कि वह किस–किस को मध्यस्थ चुने तथा चुनने के लिए किन लक्षणों को ध्यान में रखें*। सामान्तया एक निर्माता इन बातों के बारे में पता लगाता है कि (i) उस प्रत्याशी व्यवसायी को व्यवसाय करते समय कितना समय हो चुका है? (ii) इस समय उसकी प्रगति कैसी है ? (iii) क्या वह भुगतान करने में अच्छा भुगतान करने वाला है? (iv) क्या वह बाजार में अच्छी ख्याति रखता है? (v) व्यवसायी किन–किन वस्तुओं में पहले से व्यवसाय कर रहा है? (vi) क्या वह अपनी वस्तु में व्यवहार करने के लिए आवश्यक साज–सज्जा व तकनीकी ज्ञान रखता है? (vii) यदि वह व्यवसायी किसी अन्य प्रकार का व्यवसाय कर रहा है तो क्या वह इस नयी वस्तु–पंक्ति को सँभालने के लिए पर्याप्त धन व अन्य बातें रखता है? (viii) क्या उसका व्यवसाय ऐसे स्थान पर है जहाँ पर विक्रेता आसानी से पहुंच सकता है?

   जिन संस्थाओं के सम्बन्ध में उपर्युक्त लक्षणों के उत्तर अधिकांश मामलों में 'हाँ' में मिलते हैं उनको मध्यस्थ–सदस्य के रूप में चुना जा सकता है। एक निर्माता–संस्था के सम्बन्ध को ऐसी स्थिति में निर्णय लेते समय सदा ही कुछ कसौटियाँ स्थापित करनी पड़ती है जिनको ध्यान में रखकर ही निर्णय लिये जाते हैं।

2. **माध्यम-सदस्यों को प्रेरित करना (Motivation of Channel Members)**–जब माध्यम–सदस्यों का चुनाव कर लिया जाता है तो फिर उनके साथ एक लिखित समझौते पर दोनों के हस्ताक्षर हो जाते हैं। अब प्रबन्ध के समक्ष एक

समस्या आती है कि मध्यस्थों को अधिक विक्रय के लिए प्रेरित किया जाय। एक निर्माता को न तो अत्यधिक प्रेरणा करनी चाहिए और न न्यून प्रेरणा। अत्यधिक प्रेरणा देने से यद्यपि बिक्री बढ़ जाती है लेकिन लाभों की मात्रा कम हो जाती है। इसी प्रकार न्यून प्रेरणा से उचित प्रोत्साहन नहीं मिलता है। इससे न तो बिक्री में ही वद्धि होती है और न लाभों में। अतः यह कहा जाता है कि एक निर्माता को बीच का रास्ता अपनाना चाहिए जिससे कि बिक्री में वद्धि हो सके, लाभ भी उचित मात्रा में बने रहें तथा मध्यस्थ को भी अधिक विक्रय के लिए प्रेरणा मिलती रहे।

यदि एक बार प्रेरणा सम्बन्धी निर्णय लेने के बाद भी निर्माता व मध्यस्थ यह समझते हैं कि अभी भी न्यून प्रेरणा है तो निर्माता को और प्रेरणा के लिए सोचना चाहिए। यह दो प्रकार से दी जा सकती है। **प्रथम,** मध्यस्थों को उचित साख शर्तें प्रदान करके या उनका मार्जिन बढ़ाकर, या उनको अन्य प्रकार से मूल्यों में सुविधा देकर। **दूसरे,** उनके कार्य–कलापों की समय–समय पर समीक्षा करते रहने के साथ–साथ उनको सुधार के लिए सुझाव देते रहना।

किसी भी प्रेरणा सम्बन्धी निर्णय को लेते समय मध्यस्थों के दष्टिकोण को भी ध्यान में रखना चाहिए और निर्णय ऐसा लिया जाना चाहिए कि मध्यस्थ नाराज न हों, बल्कि अधिक विक्रय के लिए प्रेरित हों। प्रेरणा की समस्या बहुत ही जटिल है। इसका कारण यह है कि इससे निर्माता एवं मध्यस्थ के बीच सहयोग बढ़ता है या इसके विपरीत असहयोग प्रारम्भ हो जाता है।

3. **माध्यम-सदस्यों का मूल्यांकन करना (Evaluation of Channel Members)**–निर्माता ने जिन मध्यस्थों को नियुक्त किया है उनके कार्यों का मूल्यांकन समय–समय पर उसके द्वारा किया जाता रहना चाहिए, जिससे कि जिन मध्यस्थों की बिक्री उचित नहीं है उनको विक्रय बढ़ाने के लिए कहा जा सके और उसके बाद भी वे क्रियाशील न हों तो उनको हटाया जा सके।

इस मूल्यांकन के लिए कोई प्रमाप या आदर्श स्थापित किया जाना चाहिए। यदि किसी मध्यस्थ की बिक्री उस आदर्श या प्रमाप से कम है तो उसको विक्रय–वद्धि के लिए कहा जाना चाहिए। इस कार्य के दो रूप हैं–(अ) मध्यस्थ की पिछली बिक्री से तुलना करना व (ब) मध्यस्थ की बिक्री का उसके लिए निर्धारित कोटे से तुलना करना।

(अ) ***प्रत्येक मध्यस्थ की पिछली बिक्री से तुलना करना (Comparison of each middleman's sales performance with his own past performance)***– इसमें प्रत्येक मध्यस्थ की बिक्री की तुलना उसकी पिछले वर्षों की बिक्री से की जाती है। साधारणतया पिछले कई वर्षों की बिक्री से की जाती है। साधारणतया पिछले कई वर्षों की बिक्री का औसत निकाल लेते हैं जिसको एक आदर्श या प्रमाप मानते हैं। यदि किसी विक्रेता की बिक्री का औसत निकाल लेते हैं जिसको एक आदर्श या प्रमाप मानते हैं। यदि किसी विक्रेता की बिक्री किसी वर्ष इस प्रकार निकालते हुए औसत से गिर जाती है तो निर्माता द्वारा इसके कारणों की जाँच की जाती है और आगे आने वाली अवधि में उनका निराकरण करके बिक्री को बढ़ाने का प्रयत्न किया जाता है। यदि ये कारण मध्यस्थ द्वारा ही मिर्मित हैं जैसे, ग्राहकों के साथ उचित व्यवहार न करना, प्रशिक्षण कार्यक्रम में सहयोग न करना, सवर्द्धन के कार्यों में असहयोग, निर्माता की वस्तु की उपेक्षा करना, आदि तो इनका निराकरण मध्यस्थ के साथ बातचीत कर भविष्य में सहयोग का आश्वासन प्राप्त कर किया जा सकता है। लेकिन यदि कारण देश की आर्थिक व राजनीतिक स्थिति से सम्बन्धित है तो मध्यस्थ के विरुद्ध कोई कार्यवाही करने की आवश्यकता नहीं है यद्यपि उसके प्रेरित करने की आवश्यकता है।

(ब) ***प्रत्येक मध्यस्थ की बिक्री की उसके लिए निर्धारित कोटे से तुलना करना (Comparison of each middleman's performance with the quota established for him)***– इस तरीके में मध्यस्थ की बिक्री का कोटा उस क्षेत्र की विक्रय सम्भाव्यता के आधार पर निर्धारित किया जाता है और फिर अवधि की वास्तविक बिक्री की तुलना इस कोटे से की जाती है। यदि उनकी बिक्री इस कोटे से कम होती है तो इसके कारणों की जाँच की जाती है व मध्यस्थ से विचार–विमर्श कर भावी उपायों की रूपरेखा बनायी जाती है।

यदि किसी मध्यस्थ की बिक्री निर्धारित स्तर से कम है तो ऐसे मध्यस्थ से एक निश्चित अवधि में बिक्री बढ़ाने के लिए कहा जा सकता है। यदि उसके द्वारा इस बढ़ायी हुई अवधि में भी बिक्री न बढ़ायी जा सके तो उसको

हटाया जा सकता है। लेकिन कभी–कभी कुछ मध्यस्थ ऐसे होते हैं कि यदि उनको हटाने की बात की जाती है तो उनके सम्बन्ध बिगड़ सकते हैं जो व्यवसाय के लिए उचित दिखायी नहीं देता ऐसी स्थिति में उनको बनाये रखना ही उचित होगा। ऐसी स्थिति को न आने देने के लिए यह आवश्यक है कि प्रारम्भ में मध्यस्थ के साथ समझौता किया जाय, वह इस प्रकार किया जाना चाहिए कि उसमें मध्यस्थ के कर्तव्य एवं दायित्व स्पष्ट हों, विशेष रूप से (i) ग्राहक सेवाएँ; (ii) ग्राहक का सुपुर्दगी का समय; (iii) खराब व खोये हुए माल के सम्बन्ध में नियम; (iv) प्रशिक्षण एवं प्रवर्तन प्रोग्रामों में सहयोग; (v) विक्रय सघनता (intensity); आदि। भारत में स्कूटर बनाने वाली कम्पनियाँ अपने वितरकों का पहले से ही कोटा निर्धारित कर देती हैं जिसका विक्रय करना उन वितरकों के लिए आवश्यक है। यह कोटा उत्पादन को देखते हुए घटता–बढ़ता रहता है। यह कोटे एक विक्रेता या वितरक निष्पादन के लिए मार्ग–दर्शक के रूप में कार्य करते हैं।

माध्यम या वाहिका संशोधन सम्बन्धी निर्णय (Channel Modification Decisions)

एक निर्माता के वितरण माध्यम के रूप में समय–समय पर परिवर्तन आवश्यक हो सकता है। इसका कारण यह है कि व्यापारिक परिस्थितियाँ समय–समय पर बदलती रहती हैं। अतः उन बदलती हुई परिस्थितियों के कारण वितरण माध्यम में संशोधन करना आवश्यक हो जाता है। इसलिए एक निर्माता को समय–समय पर वितरण माध्यम में संशोधन या परिवर्तन हेतू अवलोकन करते रहना चाहिए। इस माध्यम–संशोधन सम्बन्धी अवलोकन में निम्न तीन बातों के संदर्भ में निर्णय लेने पड़ते हैं।

1. **व्यक्तिगत मध्यस्थों को रखने या हटाने का निर्णय (Adding or Dropping Individual Middlemen)**–वे मध्यस्थ जो किसी निर्माता के माल को बेच रहे हैं ओर उनकी कुल बिक्री निर्माता की दष्टि से सन्तोषजनक नहीं है तो उनके सम्बन्ध में निर्माता को यह सोचना पड़ता है कि वह उनको अपना मध्यस्थ बनाये रखे अथवा नहीं। साधारणतया ऐसा करने से पूर्व मध्यस्थ को एक निश्चित अवधि में एक निश्चित स्तर तक बिक्री को बढ़ाने में असफल रहता है तो उसको हटाने का निर्णय लेने के लिए बाध्य होना पड़ता है। वे मध्यस्थ जिनकी बिक्री कम रहती है उन पर निर्माता द्वारा उनकी बिक्री को देखते हुए अधिक व्यय करना पड़ता है जो अन्त में वस्तु की लागत को बढ़ाता है। लेकिन इसके विपरीत, मध्यस्थ को हटाने का निर्णय भी व्यवसाय के लाभों को प्रभावित कर सकता है। यदि मध्यस्थ को हटाने का निर्णय ले लिया जाय और कोई अन्य मध्यस्थ नियुक्त न किया जाय तो निर्माता की कुल बिक्री कम हो जायेगी और इस प्रकार प्रति वस्तु लागत बढ़ जायेगी क्योंकि उपरिव्यय बढ़ जायेंगे। इस प्रकार हम यह पाते हैं कि मध्यस्थ को हटाना या बनाये रखना भी व्यवसाय के लाभों व लागतों को प्रभावित करता है। अतः आवश्यकता इस बात की है कि हटाने व रखने सम्बन्धी बातों का भी व्यवसाय पर क्या प्रभाव पड़ेगा इसको जानने के लिए निर्माता को विस्तत विश्लेषण करना चाहिए।

2. **विपणन-माध्यम को घटाना या बढ़ाना (Dropping or Adding a marketing channel)**–क्रेता का क्रय व्यवहार समय के अनुसार बदलता रहता है। अतः आवश्यकता इस बात की है कि बदलते हुए क्रय व्यवहार में विपणन माध्यम भी स्थायी न रहकर बदलते रहना चाहिए। इसलिए एक निर्माता समय–समय पर इस बात का पता लगाता रहता है कि वह बाजार में सर्वोत्तम ढंग से पहुंच रहा है? यदि इसके उत्तर में वह पाता है कि वह ठीक प्रकार से बाजार में नहीं पहुंच रहा है तो वह विपणन माध्यम में परिवर्तन करने का निर्णय ले सकता है। इस परिवर्तन में वितरण के नये माध्यम चुने जा सकते हैं व पुराने माध्यम से छुटकारा पाया जा सकता है।

3. **वितरण की सम्पूर्ण प्रणाली में संशोधन करना (Revising the overall system of distribution)**–जब कभी वितरण की सम्पूर्ण प्रणाली में संशोधन करने की आवश्यकता प्रतीत होती है तो निर्माता के सर्वोच्च प्रबन्ध के द्वारा इस सम्बन्ध में निर्णय लिया जा सकता है। ऐसा करने से संस्था का विपणन–मिश्रण एवं उनकी नीतियाँ बदल जाती हैं।

सम्पूर्ण प्रणाली में संशोधन करना एक महत्वपूर्ण मामला है जिसका निर्णय खूब सोच–विचार कर लिया जाना चाहिए। आजकल भारत में यह देखते हैं कि कपड़ा बनाने वाले निर्माता अब अपनी वितरण प्रणाली में आधारभूत परिवर्तन ला रहे हैं। अब तक वे अपना कपड़ा आढ़तिया व एजेण्ट के माध्यम से ही बेचते थे लेकिन अब वे या तो अपनी स्वयं की दुकानें स्थापित कर रहे हैं या स्थान–स्थान पर एकमात्र वितरक या एजेण्ट नियुक्त कर रहे हैं।

माध्यम या वाहिका-निर्णय का विपणन नीति पर प्रभाव (Effect of Channel Decisions on Marketing Policy)

वितरण माध्यम सम्बन्धी निर्णय विपणन के बहुत–से क्षेत्रों पर प्रभाव डालता है। इसी को इस प्रकार कह सकते हैं कि एक विपणन प्रबन्धक के विपणन सम्बन्धी निर्णय वितरण–मार्ग निर्णय से प्रभावित होते हैं। साधारण भाषा में इस प्रकार भी कह सकते हैं कि वितरण–मार्ग का विपणन पर क्या प्रभाव है? इन प्रभावों का अध्ययन निम्न आधारों पर किया जा सकता है–

1. **मूल्य नीतियाँ (Pricing policies)**–एक उपभोक्ता को जो मूल्य देना पड़ता है उसमें वितरण लागत भी शामिल है। इसका अर्थ यह है कि वितरण माध्यम मूल्य को प्रभावित करता है। प्रत्येक निर्माता को अपने मध्यस्थों को इतना अवश्य ही देना चाहिए कि मध्यस्थों को वस्तु को प्राप्त करने की लागत के साथ–साथ उचित लाभ भी मिल जायें। यदि उनके लाभ में कमी रही तो उनको कार्य करने का उत्साह नहीं रहेगा और वे न तो उचित रूप से निर्माता की ही सेवा कर सकेंगे और न उपभोक्ता की। इस प्रकार वितरण माध्यम एक निर्माता की मूल्य नीतियों को प्रभावित करते हैं।

2. **स्टॉक नीतियाँ (Inventory policies)**–वितरण माध्यम स्टॉक नीतियों को भी प्रभावित करते हैं। वितरण माध्यम इस प्रकार का है कि उचित सेवा को देने के लिए आवश्यक पुर्जों का स्टॉक रखने की आवश्यकता है तो जहाँ–जहाँ सेवा सुविधा प्रदान की जायेगी वहाँ सभी स्थानों पर पुर्जों का भण्डार रखना आवश्यक होगा।

3. **विज्ञापन नीतियाँ (Advertising policies)**–वितरण माध्यम विज्ञान नीतियों को भी प्रभावित करता है। एक निर्माता का वितरण माध्यम जिस प्रकार का होगा वैसी ही उसको विज्ञापन नीतियाँ अपनानी होंगी। यदि वितरण माध्यम छोटा है और मध्यस्थ विक्रेताओं के लाभ का प्रतिशत कम है तो फुटकर विक्रेताओं की ख्याति पर अधिक निर्भर रहना होगा और विज्ञापन पर अधिक व्यय करना होगा जिससे कि उपभोक्ता उस वस्तु को माँगता हुआ दुकान पर आये और विक्रेता उस वस्तु का अपने पास रखने के लए बाध्य हो जाये।

4. **परिवहन नीतियाँ (Transportation policies)**–परिवहन नीतियाँ भी वितरण माध्यम से प्रभावित होती हैं। यदि वितरण सारे देश में फैला हुआ है तो रेल व मोटर–ट्रकों का सहारा लेना होगा। इसके विपरीत, यदि उस वस्तु का वितरण सीमित है; तो वहाँ अन्य साधनों का सहारा लिया जा सकता है।

5. **विक्रय नीतियाँ (Selling policies)**–वितरण माध्यम विक्रय नीतियों को भी प्रभावित करता है। जैसा, वितरण माध्यम होगा उसी के अनुरूप विक्रय शक्ति नियुक्ति करनी होगी। उदाहरण के लिए, यदि वितरण माध्यम थोक विक्रेता से फुटकर विक्रेता व उपभोक्ता जैसा है तो विक्रयकर्ता रखने होंगे जो थोक विक्रेताओं से सम्पर्क स्थापित कर सकें। इसके विपरीत, यदि वितरण फुटकर विक्रेताओं के माध्यम से होता है तो अधिक विक्रयकर्ता रखने होंगे। साथ ही दोनों प्रकार के विक्रयकताओं के गुणों, पारिश्रमिक व योग्यताओं में भी अन्तर होगा।

माध्यम या वाहिका निर्णय का विपणन कार्यक्रम पर प्रभाव (Influence of Channel Decision on Marketing Programme)

एक व्यवसायी का वितरण माध्यम से सम्बन्धित निर्णय उसके विपणन कार्यक्रम को प्रभावित करता है। इसका अर्थ यह है कि जैसा वितरण माध्यम होगा विपणन कार्यक्रम भी उसी अनुरूप बनाया जायेगा। माध्यम सम्बन्धी निर्णय निम्न बातों को प्रभावित करता है जो विपणन कार्यक्रम से सम्बन्धित हैं–

1. **वस्तु नियोजन (Product planning)**–वितरण माध्यम का निर्णय एक निर्माता के वस्तु नियोजन को प्रभावित करता है और उसके लिए यह अनिवार्य कर देता है कि वह अपनी वस्तु पंक्ति का विस्तार करे। साधारणतया मध्यस्थ एक मद को अपनी दुकान पर रखना पसन्द नहीं करते हैं बल्कि वे उस वस्तु की पूरी पंक्ति रखना पसंद करते हैं। इसका परिणाम यह होता है कि निर्माता को अपने वस्तु नियोजन में परिवर्तन करके पूरी पंक्ति का विकास करना पड़ता हे। उदाहरण के लिए, यदि कोई निर्माता सिर्फ पैन का ही निर्माण करता है तो विक्रेता ऐसे पैन को बेचना पसन्द नहीं करते हैं वनस्पति उस पैन निर्माता की तुलना में जो पैन, स्याही, बालपैन, आदि कई वस्तुओं का निर्माण करता है।
2. **मूल्य (Pricing)**–वितरण माध्यम सम्बन्धी निर्णय भी विपणन प्रोग्राम को प्रभावित करता है। यदि किसी वस्तु को उपभोक्ता तक पहुंचाने में कई मध्यस्थों की सेवाएँ ली जाती हैं तो इसका प्रभाव यह पड़ता है कि मूल्य नीति इस प्रकार बनायी जाती है कि प्रत्येक मध्यस्थ को उचित पारितोषण मिल सकें।
3. **संवर्द्धन (Promotion)**–यदि किसी संस्था का वितरण माध्यम इस प्रकार का है कि उसकी स्वयं की दुकानें हैं तो इसका प्रभाव यह होगा कि संस्था को संवर्द्धन पर काफी व्यय करना होगा। इसी प्रकार यदि मध्यस्थों की सेवाओं को लेना है तो भी संवर्द्धन पर काफी व्यय करना पड़ेगा क्योंकि बिना अधिक संवर्द्धन व्यय के उसके खरीदने वाले तैयार नहीं होंगे।
4. **भौतिक वितरण (Physical distribution)**–वितरण–माध्यम–निर्णय वस्तुओं के भौतिक वितरण को प्रभावित करते हैं। यदि संस्था–स्थान पर अपने डिपो रखती है तो माल फैक्टरी से उस डिपो तक पहुंचाना होगा तथा वहाँ पर उनके सुरक्षित रखने के लिए गोदामों की व्यवस्था करनी होगी। यदि माध्यम इस प्रकार का है कि थोक विक्रेता सीधे निर्माता से खरीदते हैं तो निर्माण स्थान पर ही गोदाम रखने होंगे और परिवहन के साधनों की व्यवस्था भी करनी होगी। यदि थोक विक्रेता के साथ निर्माता की नीति 'नकद दो और ले जाओ' की है तो परिवहन साधनों की व्यवस्था थोक विक्रेता द्वारा स्वयं की जायेगी।
5. **बाजार विस्तार (Market Expansion)**–यदि किसी वस्तु के बाजार का विस्तार होना है तो उसके लिए मध्यस्थों की सहायता लेनी होगी क्योंकि बिना मध्यस्थों की सहायता के बाजार के विस्तार में बहुत अधिक धन, नियंत्रण एवं कार्यकुशलता की आवश्यकता होगी। इस प्रकार माध्यम सम्बन्धी निर्णय बाजार के विस्तार को प्रभावित करता है।
6. **वित्त प्रबंध (Financial management)**–यदि वितरण माध्यम का चुनाव उचित प्रकार से होता है तो निर्माता बहुत–सी वित्तीय समस्याओं से बच जाता है और उसको अधिक वित्त की आवश्यकता नहीं होती है। जैसे, यदि प्रतिनिधि नियुक्त किया जाता है तो निर्माता को अधिक वित्तीय साधन जुटाने होंगे। इसके विपरीत, यदि थोक या फुटकर विक्रेताओं को सीधा माल बेचा जाता है तो अधिक वित्त की आवश्यकता नहीं होगी।
7. **जोखिम प्रबन्ध (Risk Management)**–वितरण माध्यम सम्बन्धी निर्णय जोखिम प्रबन्ध पर भी प्रभाव डालता है। यदि एजेण्ट नियुक्त किये गये हैं और उनका विक्रय कोटा निर्धारित है तो उनको अपने कोटे को समय–समय पर अवश्य क्रय करना होगा। इससे निर्माता की जोखिम कम रहेगी। लेकिन उसके विपरीत स्थिति में जहाँ कोई कोटा निर्धारित नहीं है वहाँ एजेण्ट अपनी आवश्यकतानुसार खरीदेगा और इस प्रकार निर्माता की जोखिम अधिक रहेगी।

वितरण-वाहिका नीति एवं प्रमुख निर्णय क्षेत्र
(Policy of Distribution Channel and Major Decision Areas)

वितरण–वाहिकाओं की प्रयुक्ति का अन्तिम उद्देश्य उपभोक्ताओं तथा औद्योगिक प्रयोक्ताओं तक वस्तुएँ उचित समय एवं कीमत पर पहुंचाना होता है। इस उद्देश्य की पूर्ति एक प्रभावशील वितरण–वाहिका नीति की आवश्यकता को प्रकट करती है। ऐसी नीति उपभोक्ता–प्रधान, लचीली, उच्चस्तरीय, पारस्परिक अन्तर्निभरता उत्पन्न करने वाली तथा संस्था सर्वांगीण उद्देश्यों की प्राप्ति को सम्भव बनाने वाली होनी चाहिए।[6] ऐसी नीति का निर्माण सहभागी आधार पर सभी सम्बद्ध भीतरी एवं बाह्य व्यक्तियों द्वारा मिलकर किया जाना चाहिए क्योंकि ऐसी नीति संस्था तथा बाहरी संस्थाओं की विपणन नीतियों, कार्यक्रमों, निर्णयों और योजनाओं को प्रभावित करती हैं। वितरण–वाहिका नीति का क्षेत्र भी विस्तत होना चाहिए ताकि विभिन्न परिस्थितियों में संस्था के अधिकारियों एवं कर्मचारियों के साथ–साथ वितरण–शृंखला में मध्यस्थों को भी मार्गदर्शन मिल सके।

प्रत्येक संस्था की वितरण–वाहिका नीति में प्रमुखतः निम्नलिखित क्षेत्रों से सम्बद्ध निर्णय लिये जाने हेतु निर्देशन उल्लेखित होना चाहिएः (1) बुनियादी वैकल्पिक वितरण प्रणालियाँ; (2) वाहिका उद्देश्यों की प्राप्ति हेतु नीतियाँ; (3) वितरण–वाहिका सीमा–क्षेत्र; (4) मध्यस्थों के साथ सहयोग का निर्माण एवं अनुरक्षण; (5) वितरण–प्रणाली का मूल्यांकन।

प्रत्येक क्षेत्र का विशद् विवेचन इस प्रकार हैः

1. **बुनियादी वैकल्पिक वितरण प्रणालियाँ (Basic alternative distribution systems)**–प्रत्येक संस्था अपने साधनों एवं विपणन अवसरों के अत्युत्तम विदोहन के लिए निम्नलिखित बुनियादी वैकल्पिक वितरण प्रणालियों को उनके गुण–दोषों के तुलनात्मक अध्ययन के आधार पर अपना सकती हैः

   (अ) ***प्रत्यक्ष वितरण प्रणाली (Direct Distribution System)***–उत्पाद अथवा निर्माता जब अपने उत्पादों को स्वयं के संगठन द्वारा अन्तिम उपभोक्ताओं अथवा औद्योगिक उपयोगकर्ताओं तक पहुंचाने का निर्णय लेते हैं और पहुंचाते हैं तो यह प्रत्यक्ष–वितरण कहा जाता है। ऐसी वितरण व्यवस्था को व्यवहार में अधिकतर औद्योगिक वस्तुओं के निर्माता अपनाते हैं। घरेलू उपभोग की वस्तुएँ प्रत्यक्ष वितरण प्रणाली द्वारा यद्यपि वितरित की जाने लगी है; किन्तु इनका सीमा–क्षेत्र (Coverage) काफी सीमित है।

   अन्तिम उपभोक्ता अथवा औद्योगिक प्रयोक्ताओं को सीधे माल बेचने की विभिन्न रीतियाँ हैं जिनमें प्रमुखतः निम्नलिखित को सम्मिलित किया जा सकता हैः

   (i) *निर्माता की फुटकर बिक्री शाखाएँ*–वर्तमान में, अनेक उत्पादकों ने स्वयं सीधे ही उपभोक्ता तक पहुंचने के लिए स्थान–स्थान पर अपनी फुटकर दुकानें तथा भण्डार स्थापित करना शुरू किया है और अपने द्वारा निर्मित वस्तुओं को बेचना प्रारम्भ किया है। उदाहरण के लिए 'बाटा' के जूते, 'ऊषा' सिलाई मशीन एवं अन्य ऐसी ही अनेक वस्तुएँ निर्माताओं की फुटकर बिक्री शाखाओं द्वारा बेची जाने लगी है। कपड़ा मिलें, विद्युत–उपकरण निर्माता, ड्राईक्लीनर्स, फर्नीचर निर्माता, टाइपराइटर निर्माता, मिष्ठान्न भण्डार आदि अपनी वस्तुओं को स्वयं ही अन्तिम उपभोक्ता तक पहुंचाने के लिए अपनी फुटकर भण्डार दुकानें स्थापित करने लगे हैं।

   (ii) *डाक द्वारा व्यापार*–अनेक उत्पादक डाक द्वारा अपनी वस्तुओं को अन्तिम ग्राहकों तक पहुंचाने में लगे हैं। डाक द्वारा ही वस्तुओं की जानकारी निर्माताओं द्वारा ग्राहक तक पहुंचाई जाने लगी है और डाक द्वारा ही आदेश प्राप्त और पूरे किये जाने लगे हैं। अनेक प्रकार की वस्तुयें जैसे–अनूठी वस्तुएँ, पुस्तकें, पत्र–पत्रिकायें, दवाइयाँ, दवाइयाँ, ग्रामोफोन, ट्रांजिस्टर, घड़ियाँ, पैन आदि डाक द्वारा बेची जाने लगी हैं। पत्र–पत्रिकाओं तथा पुस्तकों के प्रकाशक डाक द्वारा व्यापार करते हैं। वे विज्ञापनों के माध्यम से ग्राहक बनाते हैं और डाक द्वारा प्राप्त आदेशों को पूरा करते हैं।

---

6 See the characteristics of channel policy elaborated by W.J. Stanton, op.cit., pp.

(iii) *टेलीफोन विक्रय*—अन्तिम उपभोक्ता तक सीधे माल पहुंचाने की यह नवीन विधि है जिसे बड़े—बड़े शहरों में उत्पादकों ने अपनाना प्रारम्भ कर दिया है। टेलीफोन पर आदेश प्राप्त कर लिये जाते हैं और वाँछित पते पर माल पहुंचा दिया जाता है। सामान्यतया यह विधि वहाँ सफल रहती है जहाँ निर्माता का उत्पादन कार्य होता हो।

(iv) *वैयक्तिक विक्रय अथवा घर—घर विक्रय विधि*—अन्तिम उपभोक्ता तक सीधे माल बेचने के लिए अब कुछ उत्पादकों ने अपने विक्रेताओं को घर—घर तक अर्थात् द्वार—द्वार तक भेजना प्रारम्भ किया है। सौन्दर्य—प्रसाधन की सामग्री के उत्पादक, पुस्तक एवं पत्र—पत्रिकाओं के प्रकाशक, उपकरणों के निर्माता, हस्तकला वस्तुओं के बनाने वाले, कालीनों—दरियों आदि के कारीगर, क्राकरी सामानों के निर्माता आदि वैयक्तिक विक्रय की विधि को अपनाकर अन्तिम उपभोक्ता तक पहुंचाने का प्रयास करने लगे हैं।

(v) *विशेष विक्रय अधिकार*—आधुनिक समय में, अनेक निर्माता अन्य उत्पादकों अथवा वितरकों को अनुमति—पत्र निर्गमित करने लगे हैं ओर उन्हें विशेष विक्रय का अधिकार फुटकर व्यापार हेतु देने लगे हैं। इस विशेष विक्रयाधिकार को प्राप्त करने वाली संस्था को यह अधिकार होता है कि वह अधिकार प्रदान करने वाली संस्था के नाम से निर्धारित विशिष्ट शर्तों के अधीन अपना माल अन्तिम उपभोक्ताओं को बेच सके। उदाहरण के लिए, कोका—कोला एक विश्वव्यापी संस्था है। यह संस्था विभिन्न राष्ट्रों एवं प्रदेशों में चुने हुए व्यापारियों को कोका—कोला द्रव को बोतलों में भरने तथा उन्हें बेचने का अधिकार देती है और बदले में स्वत्व—शुल्क प्राप्त करती रहती है। इस विधि में अन्तिम उपभोक्ता यह नहीं जान पाता कि कोई अन्य उत्पादक प्रसिद्ध उत्पादक के नाम से अपनी वस्तुओं को बेच रहा है। वह तो यही समझाता है कि ''वह प्रसिद्ध उत्पादक की ही वस्तुओं को खरीद रहा है।''

प्रत्यक्ष वितरण के लाभ—सम्भावित क्रेताओं की संख्या के सीमित होने पर, उनके उच्चस्तरीय भोगोलिक केन्द्रीयकरण होने पर, उत्पाद के अत्यधिक तकनीकी एवं नवाचारिता से प्रभावित होने पर माँग में स्थायित्व होने पर तथा मध्यस्थों के सक्रिय सहयोग एवं रुचि के अभाव में प्रत्यक्ष वितरण करना लाभोपयोगी माना गया है क्योंकि इसके वितरण—वाहिका पर विपणन संस्था का पूर्ण नियंत्रण रहता है, उपभोक्ताओं से प्रत्यक्ष सम्पर्क स्थापित होता है, वस्तुओं की किस्म में हेर—फेर नहीं हो पाता है और माँग—पूर्ति में समन्वय स्थापित करने में सहयोग मिलता है।

प्रत्यक्ष वितरण से उत्पन्न कठिनाइयाँ—प्रत्यक्ष वितरण की नीति को अपनाने वाले निर्माताओं के लिए उत्पादन एवं विक्रय कार्यों को एक साथ कुशलता पूर्वक सम्पन्न करना कठिन होता है। विपणन प्रबन्धकों के दायित्वों में भारी वद्धि हो जाती है। संस्था के आर्थिक साधन भी अपर्याप्त रह सकते हैं। यदि उपभोक्ताओं का भौगोलिक विकेन्द्रीकरण व्यापक स्तरीय हो तो वितरण प्रबन्ध शिथिल और निष्प्रभावी रह सकता है। वितरण खर्चे बढ़ जाते हैं। इन कठिनाइयों को ध्यान में रखते हुए बहुत कम निर्माता ही प्रत्यक्ष वितरण प्रणाली को व्यापक पैमाने पर अपनाते हैं। सामान्यतः निर्माताओं को अप्रत्यक्ष वितरण व्यवस्था अधिक प्रभावशाली और मितव्ययी लगती है, भले ही उन्हें मध्यस्थों पर निर्भर रहना पड़े।

(ब) ***अप्रत्यक्ष वितरण प्रणाली (Indirect Distribution System)***—निर्माता अथवा उत्पादक जब उनके उत्पादों का विक्रय स्वयं के संगठनों के जरिये न करके मध्यस्थों की सहायता से करते हैं तो इसे अप्रत्यक्ष वितरण कहा जाता है। अन्य शब्दों में, अप्रत्यक्ष वितरण व्यवस्था के अन्तर्गत उत्पादक और उपभोक्ताओं के बीच मध्यस्थों के जरिये सम्पर्क स्थापित होता है। मध्यस्थ ही सम्पर्क सूत्र स्थापित करने एवं बनाये रखने का कार्य करते हैं।

ये मध्यस्थ दो प्रकार के होते हैं— (i) व्यापारिक एजेन्ट (ii) व्यापारिक मध्यस्थ।

(i) *व्यापारिक एजेन्ट (Mercantile Agent)*— वे प्रतिनिधि होते हैं जो स्वयं अपने लिए वस्तुओं का क्रय—विक्रय नहीं करते हैं अपितु अन्य लोगों को उनके क्रय—विक्रय के सौदों में सहायता करते हैं और बदले में अपना कमीशन प्राप्त करते हैं। इनमें दलालों, कमीशन एजेन्टों, आढ़तियों, संग्रहकर्ताओं,

नीलामकर्ताओं, अभिगोपकों, निकासी एवं प्रेक्षक प्रतिनिधियों, परिशोध अभिकर्ताओं आदि को सम्मिलित किया जा सकता है।

(ii) *व्यापारिक मध्यस्थों* में प्रमुखतः थोक व्यापारियों और फुटकर व्यापारियों को सम्मिलित किया जाता है। वर्तमान में विक्रय संघ भी व्यापारिक मध्यस्थों के रूप में अपना स्थान बनाने लगे हैं। फुटकर व्यापारियों को भी अनेक भागों में विभक्त किया जा सकता है। किन्तु सभी फुटकर व्यापारी मध्यस्थों की श्रेणी में सम्मिलित नहीं किये जा सकते। उदाहरण के लिए बहुसंख्यक दुकानों एवं उपभोक्ता सहकारी भण्डारों

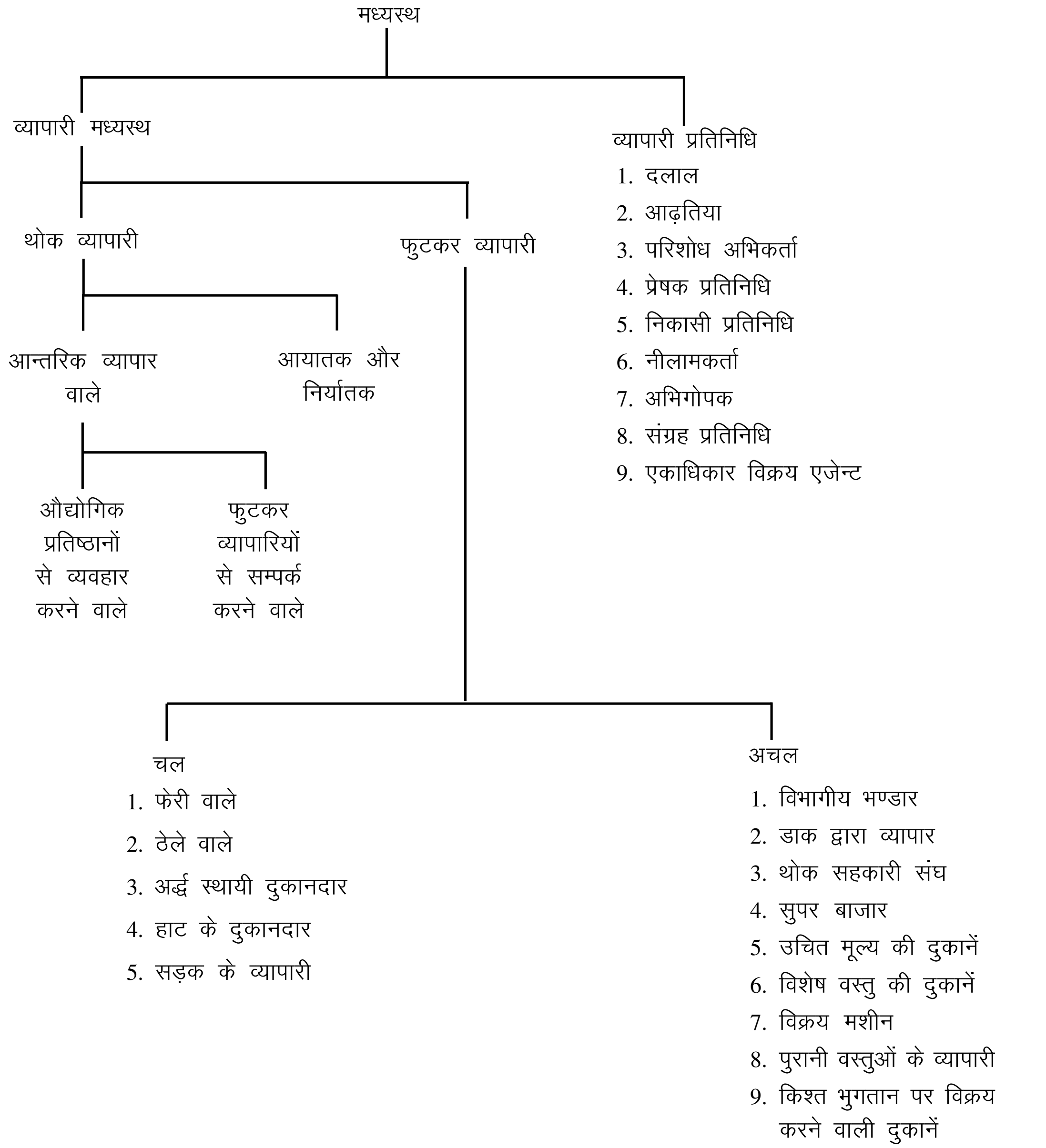

चित्र 11.2

को व्यापारी मध्यस्थ नहीं माना जा सकता। चित्र 11.2 से मध्यस्थों की सम्पूर्ण शृंखला को समझा जाता है।

अप्रत्यक्ष वितरण से लाभ

(i) उत्पादन की वितरण लागतों में भारी कमी आ सकती है क्योंकि क्षेत्रीय विक्रय संगठन, माल गोदाम,

साख नियंत्रण, विक्रय लेखे–जोखे एवं सुपुर्दगी सम्बन्धित लागतों तथा व्ययों में भारी कमी हो जाती है।

(ii) मध्यस्थ निर्माताओं एंव उत्पादकों की तुलना में ग्राहकों की अधिक सेवा कर सकते हैं और अनेकानेक सुविधाएँ दे सकते हैं।

(iii) दूर–दूर तक के उपभोक्ताओं को माल आसानी से पहुंचाया जा सकता है।

अप्रत्यक्ष वितरण की कठिनाइयाँ

इस वितरण प्रणाली को अपनाने पर निर्माता एवं उत्पादक मध्यस्थ शंखलाओं के विक्रय प्रयासों, वस्तुओं की कीमतों, किस्म सुपुर्दगी एवं सेवाओं के स्तरों व उनकी उपलब्धि पर नियंत्रण स्थापित करने में असमर्थ रहते हैं ग्राहक–माँग, रुचियों एवं फैशन तथा बाजार प्रतिस्पर्धा के बारे में पर्याप्त सही तथा समयानुकूल जानकारी भी अप्रत्यक्ष वितरण में निर्माताओं को प्राप्त नहीं हो पाती है।

(स) ***दोहरी वितरण प्रणाली (Dual Distribution System)***–जब उत्पादक अथवा निर्माता प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष वितरण व्यवस्थाओं को अपना कर उनके उत्पादों का वितरण करते हैं, तब इसे दोहरा वितरण कहा जाता है। इस वितरण प्रणाली के अपनाने का मुख्य उद्देश्य वितरण पर नियंत्रण करना और व्यापक बनाना होता है। यह प्रणाली प्रत्यक्ष एवं अप्रत्यक्ष प्रणालियों के लाभों को प्रस्तुत करती है। इस प्रणाली की सबसे बड़ी कठिनाई उत्पाद के बाजारों के उचित विभाजन की है। कौन–से बाजारों में अप्रत्यक्ष वितरण का निर्णय लिया जाय, यह काफी पेचीदा प्रश्न होता है। इतने पर भी दोहरी वितरण प्रणाली व्यापक एवं कुशल विपणन के लिए एक अपरिहार्य आवश्यकता बनती जा रही है क्योंकि बढ़ती हुयी तीव्र प्रतिस्पर्धा के युग में किसी एकांगी वितरण प्रणाली पर निर्भर रहना विवेकपूर्ण नहीं कहा जा सकता।

दोहरी वितरण व्यवस्था को चित्र 11.3 द्वारा प्रदर्शित किया जा सकता है:

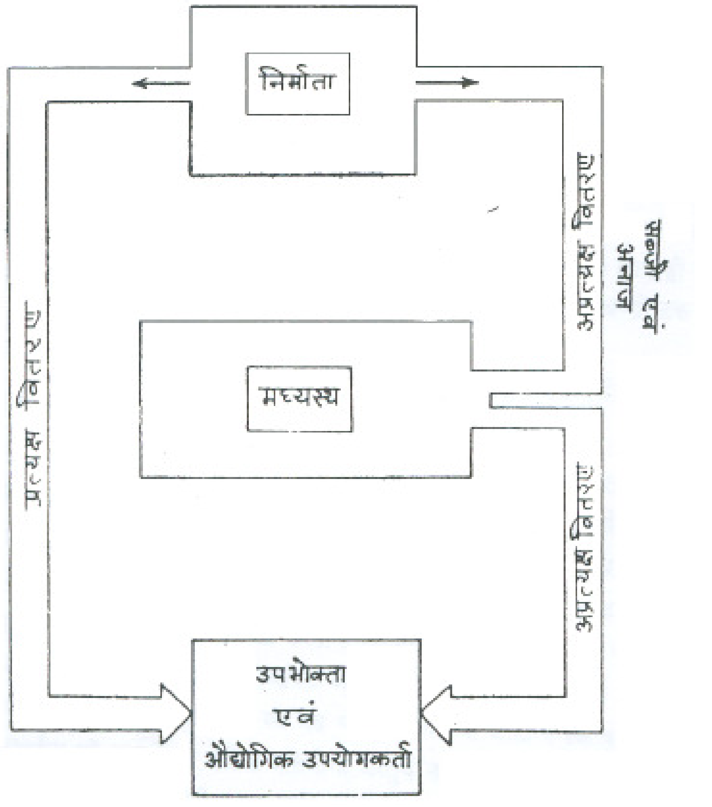

चित्र 11.3

2. **वाहिका उद्देश्यों की प्राप्ति हेतु नीतियाँ (Policies for Attaining Channel Objectives)**–वितरण वाहिकाओं का प्रमुख उद्देश्य ग्राहकों की आवश्यकताओं को अधिक प्रभावशाली ढंग से पूरा करना होता है। इसके अतिरिक्त भौगोलिक आधारों पर वितरण को विशाल बनाना, उत्पादन को उपभोग प्रवत्तियों के अनुकूल बनाना, ग्राहकों की क्रय–शक्ति के सदुपयोग को सम्भव बनाते हुए उनका जीवन स्तर ऊँचा उठाना आदि अन्य सहायक उद्देश्य हैं। इन उद्देश्यों की पूर्ति के लिए तीन प्रकार की नीतियों को अपनाया जाता रहा हैः आकर्षण (Graving), खेच (Suction or Pull) एवं दबाव या धक्का (Pressure or Push) नीतियाँ।

आकर्षण नीतियाँ पर विश्वास करने वाले निर्माताओं अथवा उत्पादकों की मान्यता है कि वस्तुओं में आकर्षण होता है और वे स्वयं ही वाहिकाओं तथा ग्राहकों को अपनी ओर आकृष्ट करती हैं। इसलिए वस्तुओं को प्रवाहित करने वाली शक्तियों को अन्य बाह्य साधनों से प्रेरित अथवा गतिमान करने की जरूरत नहीं होती है। वस्तुतः यह नीति अभावग्रस्त अर्थव्यवस्थाओं एवं विक्रेता–बाजारों के लिए उपयुक्त मानी गयी है। आज भी अनेक अर्थव्यवस्थाओं में जहाँ माँग–पूर्ति की तुलना में अधिक है, मध्यस्थ शृंखलाएँ स्वयं पूर्ति स्रोतों की ओर आकृष्ट होती हैं। कच्चे माल, कृषि उत्पादों एवं प्रतिविधियत (Processed) माल के उत्पादक इस नीति पर आज भी आश्रित हैं। फिर भी इनके विपणन प्रबन्धकों को चाहिए कि वे इस नीति को अपनाते हुए कुछ नीतियाँ वाहिका की प्राकृतिक शक्तियों को प्रेरित करने के लिए अपनायें। उदाहरण के लिए निर्माताओं एवं उत्पादकों को चाहिए कि वे वाहिका को खुला रखें तथा मध्यस्थों के साथ सहयोग करें ताकि उनकी विक्रय और भण्डारण समस्याऐं समाप्त हो जाएँ। इसी प्रकार उपभोक्ता–प्राथमिकताओं को ध्यान में रखकर माल की डिजायन एवं किस्म तैयार करें। इसके अतिरिक्त निर्माताओं एवं उत्पादकों की कीमत नीति ऐसी होनी चाहिए कि उसके अनुसरण से मध्यस्थों को कोई नुकसान न हो और वे अपनी लागतों को भी पूरी कर सकें।

खेंच नीति पर विश्वास रखने वाले निर्माताओं अथवा उत्पादकों की मान्यता है कि विपणन साधनों एवं विपणन अवसरों का पूरा–पूरा विदोहन करने के लिए वितरण–क्षेत्र का प्रसार करना जरूरी होता है। इस उद्देश्य की पूर्ति हेतु खेंच नीति को अपनाया जा सकता है। यह नीति मध्यस्थों को पूर्ति स्रोतों की ओर आकृष्ट करती है। इस नीति को अपनाने वाली निर्माता या उत्पादक फर्में उत्पाद विभेदीकरण, ब्राण्ड, विज्ञापन एवं संवर्द्धनात्मक युक्तियों के प्रयोग पर बल देती हैं। पैकिंग भी धीरे–धीरे इस नीति की महत्वपूर्ण युक्ति बनती जा रही है। इस नीति को अपनाने पर विपणन क्रियाओं पर नियंत्रण रखना सम्भव हो जाता है।

दबाव या धक्का नीति पर विश्वास रखने वाले निर्माता एवं उत्पादक यह मानकर चलते हैं कि वितरण कार्य तब तक पूरा नहीं होता जब तक कि उपभोक्ताओं के हाथों में वस्तुएँ पहुंच न जायें और उनको उनसे वांछित सन्तुष्टि न मिल जाये। इस नीति का अनुसरण करने वाली फर्में सम्पूर्ण वितरण कार्य को दलीय कार्य (Team work) मानकर चलती हैं और ऐसे दल में वे स्वयं तथा उनकी मध्यस्थ शृंखलायें सम्मिलित होती हैं जो अन्य फर्मों तथा उनकी मध्यस्थ शृंखलाओं से प्रतिस्पर्धा करती हैं। इस नीति की युक्तियों में उत्पाद–विभेदीकरण सामूहिक विज्ञापन, व्यापक संवर्द्धन कार्यक्रम आदि को सम्मिलित किया जा सकता है। इस नीति के समर्थकों की यह धारणा है कि सम्पूर्ण वितरण वाहिका में उत्पादों को उत्पादन–केन्द्र की ओर सामूहिक तौर पर निर्माताओं तथा मध्यस्थों को धकेलना चाहिए।

3. **वितरण वाहिका-सीमा-क्षेत्र (Coverage of Distribution Channel)**–वितरण–वाहिका सीमा–क्षेत्र इस बात के निर्धारण से सम्बन्ध रखता है कि उत्पादकों एवं निर्माताओं की कितनी तथा कैसी मध्यस्थ शृंखलाओं की सहायता उत्पादों के वितरण हेतु लेनी चाहिए। वितरण–वाहिका का सीमा–क्षेत्र निश्चित करना काफी कठिन कार्य है। क्योंकि कुछ मामलों में सीमित संख्या भी पर्याप्त मालूम होती है और अन्य मामलों में हर सम्भव मध्यस्थ शृंखला की प्राप्ति

भी आवश्यक जान पड़ती है। उदाहरण के लिए कारों या ऑटो रिक्शा के वितरण वाहिका का सीमा–क्षेत्र निश्चित किया जा सकता है। किन्तु साबुन, सिगरेट, माचिस जैसी वस्तुओं के वितरण के लिए कोई भी निर्धारित सीमा अर्थात् मध्यस्थ व्यापारियों की संख्या अपर्याप्त अनुभव प्रतीत हो सकती है। इतने पर भी अधिकतम तथा न्यूनतम संख्या के बीच सन्तुलन का होना जरूरी है। **रॉबर्ट ई. सेसन** ने लिखा है कि, "व्यापारियों की संख्या पर्याप्ततः इतनी कम होनी चाहिए कि सक्रिय समर्थन एवं विक्रय प्रयत्न उत्पन्न हो सके और कम्पनियों को आकर्षक अवसर उपलब्ध कर सके। साथ ही व्यापारियों की संख्या इतनी अधिक अवश्य होनी चाहिए कि पर्याप्त रूप से बाजार–खण्डों तक पहुंचा जा सके।"[7]

वितरण–वाहिका सीमा–क्षेत्र के निर्धारण के लिए विपणन प्रबन्धकों को निम्नलिखित विवरण नीतियों पर विचार करना चाहिए।

(i) ***एकान्तिक वितरण नीति (Exclusive Distribution Policy)***– जब एक निर्माता अथवा वितरक अपनी वस्तुओं का वितरण किसी एक क्षेत्र में, चाहे वह स्थानीय हो, प्रादेशिक हो अथवा राष्ट्रीय हो, केवल एक ही मध्यस्थ–विक्रेता के जरिये करवाने की नीति को अपनाता है तो ऐसी नीति एकान्तिक वितरण नीति तथा ऐसा वितरण एकान्तिक वितरण कहलाता है। एकान्तिक वितरण नीति यह स्पष्ट करती है कि निर्माता उस विशिष्ट क्षेत्र में उसकी वस्तुओं के विक्रय का अधिकार केवल एक व्यक्ति अथवा संस्था को देता है, किसी अन्य को नहीं। कभी–कभी एकान्तिक वितरण नीति का यह भी अर्थ लगाया जाता है कि चुना गया वितरक केवल निर्माता की वस्तुयें ही बेचेगा प्रतियोगी वस्तुयें नहीं। इसके साथ ही ऐसे एकान्तिम वितरक को एक अनुबन्धित सीमा तक वस्तु का विक्रय करना पड़ता है, अन्यथा उसके एकाकी वितरणाधिकार को समाप्त करने का अधिकार निर्माता अपने पास सुरक्षित कर सकता है। एकान्तिक वितरण नीति द्वारा कभी–कभी यह भी अनुबन्धात्मक व्यवस्था की जा सकती है कि विशिष्ट क्षेत्र में होने वाली सारी बिक्री पर एकान्तिक वितरक को निश्चित दर से कमीशन मिलेगा। इसी प्रकार, विज्ञापन एवं विक्रय संवर्द्धन सम्बन्धी नीतियाँ, तरीके आदि भी पारस्परिक अनुबन्ध द्वारा तय किये जा सकते हैं। वस्तुतः इस एकान्तिक वितरण नीति के अपनाने का उद्देश्य किसी विशिष्ट क्षेत्र में वस्तुओं के विक्रय सम्बन्धी दायित्व से मुक्त होना है।

उदाहरण के लिए अमेरिका में 'केडिलेक' कार का एकान्तिक विक्रय होता है। ब्रिटेन की प्रसिद्ध कार रोब्स राबल का एकान्तिक वितरण होता है। 'रोलेक्स' तथा 'ओमेगा' घड़ियाँ बड़े–बड़े शहरों में एकान्तिक वितरण द्वारा बेची जाती हैं। जय इन्जीनिरिंग वर्क्स लि. कलकत्ता, अपने ऊषा पंखे, सिलाई मशीनें आदि तथा डी.सी.एम. द्वारा वस्त्र विक्रेताओं की नियुक्ति में एकान्तिक वितरण नीति को अपनाया जाता है।

लिपसन एवं डालिंग ने अपने अमेरिकन व्यवसाय का उदाहरण देते हुए लिखा है कि "यह नीति सदैव ही उन निर्माताओं के पक्ष में नहीं रहती है जो इसे अपनाते हैं। उनका लिखना है कि मेगनाबोक्स कॉरपोरेशन ने इस नीति को वर्षो तक अपनाते हुए केवल 3,000 व्यापारियों के जरिये अपने उत्पादों को बेचा है किन्तु ऐसा करने से अनेक उपभोक्ताओं तक उत्पाद नहीं पहुंच पाये जिससे उन्हें काफी हानि हुई है। सन् 1963 में उन्हें अपनी इस नीति को शिथिल करना पड़ा है।"[8] इस नीति का अनुसरण सरकारी हस्तक्षेप को भी नियन्त्रित कर सकता है क्योंकि इससे स्वस्थ प्रतिस्पर्धा समाप्त होती है और एकाधिकार को जन्म मिलता है। सन् 1967 में अमेरिका की सुप्रीम कोर्ट ने सियली मेट्रेस कं. की इस नीति को गैर–कानूनी घोषित किया था क्योंकि इससे प्रतिस्पर्धा सीमित होने लगी थी। सन् 1966 में ऑटोमोबाइल्स के निर्माताओं तथा व्यापारियों के समझौते भी गैर–कानूनी करार दिये गये थे।[9]

(ii) ***प्रवर वितरण नीति (Selective Distribution Policy)***– जब एक निर्माता अपनी वस्तुओं को कुछ चुने हुए माध्यमों से वितरित करने की नीति को अपनाता है तो इसे प्रवर वितरण नीति कहते हैं और इस नीति के अनुसार

---

7 See Robert E. Sessions, "Effective use of Marketing Channels" quoted in Lazer, op. cit., p.311.

8 Lipson and Darling, op. cit., p. 693

9 Ibid, p. 693

होने वाला वितरण प्रवर वितरण कहलाता है। अन्य शब्दों में ''जब एक बाजार क्षेत्र में किसी विशेष वस्तु अथवा वस्तुओं के बेचने का अधिकार कुछ चुने हुए थोक एवं फुटकर मध्यस्थों को दे दिया जाता है, तो यह वितरण प्रवर या चुनिन्दा वितरण कहलाता है।'' यह प्रवर वितरण नीति उन निर्माताओं के लिए ठीक रहती है जो कि अनेक प्रकार की विविध वस्तुयें बनाते हैं। उदाहरण के लिए, वनस्पति घी, कागज, पुस्तकें, समाचार–पत्र, सिगरेट आदि थोक स्तरीय प्रवर वितरण नीति द्वारा बेची जाती हैं। विद्युत उपकरणों, रेडियों, ट्रांजिस्टर्स, घड़ियाँ एवं तैयार वस्त्रों का वितरण फुटकर स्तरीय प्रवर वितरण माध्यमों तक किया जाता है। लाल इमली, धारीवाल, बिन्नी, मफतलाल आदि के वस्त्रों का विक्रय भी इस नीति के आधार पर किया जाता है।

प्रवर वितरण नीति एकान्तिक एवं गहन वितरण नीतियों के माध्य का मार्ग है। इस नीति द्वारा दिये जाने वाले वितरण में एक से अधिक किन्तु उन मध्यस्थों से कम मध्यस्थ वस्तु का विक्रय करते हैं जो वस्तु वितरण की इच्छा रखते हैं। इस नीति का अनुसरण करने वाले निर्माता या उत्पादक कई प्रकार से मध्यस्थ श्रंखलाओं का चुनाव कर सकते हैं। व्यवहार में, देखा गया है कि प्रतिनिधि आधार पर मध्यस्थ श्रंखलायें चुनी जाती हैं और कभी–कभी एक विशिष्ट श्रंखला का चुनाव भी किया जाता है।

इस नीति से वस्तु अथवा ब्रांड की ख्याति बढ़ती है, उधार की सुविधायें नहीं देनी पड़ती है, निर्माता के वितरण व्यय कम हो जाते हैं। प्रतियोगिता सीमित हो जाती है, विक्रय स्तर एक सा हो जाता है बाजर सूचनायें भी प्राप्त हो जाती हैं। वस्तुतः यह नीति मध्यस्थों एवं उत्पादकों के मध्य एक एकान्तिक वितरण नीति की भाँति सहयोग एवं सहकारिता की वद्धि करती हैं इससे बाजार व्यवहार भी दैनन्दिन प्रवत्ति ग्रहण कर लेते हैं।

(iii) ***गहन वितरण नीति (Intensive Distribution Policy)***– जब एक निर्माता अपनी वस्तुओं को हर सम्भव वितरण माध्यम से बेचने की नीति को अपनाता है तो इसे गहन वितरण नीति कहते हैं और ऐसा वितरण गहन वितरण कहलाता है। इस नीति को 'विस्तत वितरण नीति' (Extensive distribution policy) भी कहते हैं। सुविधाजनक वस्तुओं के निर्माता, उनके वितरण के लिए इस नीति का अनुसरण करते हैं। उदाहरण के लिए सिगरेट, दन्त मन्जन, साबुन, प्रसाधन सामग्री, सस्ती दवाइयाँ, खाद्य सामग्री, बेकरी का सामान आदि के वितरण के लिए इस नीति को अपनाया जा रहा है। ब्रांडेड वस्तुओं का वितरण भी इस नीति द्वारा बड़ी आसानी से किया जा सकता है। व्यवहार में, औद्योगिक वस्तुओं तथा उपभोक्ता–वस्तुओं के निर्माता इस नीति का व्यापक अनुसरण कर रहे हैं। इस नीति के अनुसरण से विशाल वितरण सम्भव होता है, किन्तु विक्रेता उत्पादों के विक्रय हेतु विशेष प्रयास नहीं करते हैं। निर्माताओं को ही विज्ञापन तथा संवर्द्धनात्मक कार्यक्रमों को सम्पन्न करना पड़ता है।

4. **मध्यस्थों के साथ सहयोग का निर्माण एवं अनुरक्षण (Building and Maintaining Cooperation with Middlemen)**–मध्यस्थ वितरण प्रणाली में धुरीय भूमिका निभाते हैं। ये दोहरी स्थिति में होते हैं। एक स्थिति में क्रेता तथा दूसरी स्थिति में विक्रेता होते हैं। इस दोहरी स्थिति के कारण उन प्रतिस्पर्धी मध्यस्थों के साथ जो कि एक–सी वस्तुओं को एक बाजार खंड तक पहुंचा रहे हों, संघर्षो का जन्म लेना स्वाभाविक है। इसके अतिरिक्त मध्यस्थों तथा उनके निर्माताओं के बीच संघर्ष की सम्भावनाएँ भी बनी रहती हैं। **फिलिप कोटलर** ने लिखा है कि वाहिका–संघर्षो का उत्पन्न होने के कारण वाहिका–सदस्यों के लक्ष्यों, भूमिकाओं, धारणाओं एवं शक्तियों में भिन्नता का होना है।... .... ऐसे संघर्षो को दूर करने के लिए सम्पूर्ण प्रणाली के वास्ते उच्चतम कोटि (Superordinate) के लक्ष्य निश्चित किए जाने चाहिए ताकि सभी को उनसे लाभ हो सके। इसके अतिरिक्त प्रशासनिक यंत्र का विकास किया जाना चाहिए जो वाहिकाओं के मध्य सह–भागिता एवं विश्वास उत्पन्न कर सके। इस कार्य के लिए 'व्यापारी तथा वितरक परिषदें' निर्मित की जा सकती है।[10]

---

10 Kotler (op. cit., p.186) सुपर कोटि के लक्ष्यों में वस्तु प्रवाह की लागतों में कमी करने, संचार प्रवाहों को समुन्नत बनाने तथा वस्तु के ग्राहकस्वीकरण को बढ़ाने के लिए हर सम्भव सहयोग देने को सम्मिलित किया है।

अतएव, वितरण–वाहिकाओं के संघर्षों को न्यूनतम करने, उत्तम सहकारिक सम्बन्ध बनाने तथा उनका अनुरक्षण करने के लिए निम्नलिखित कदम उठाये जाने चाहिए–

(i) निर्माताओं एवं उत्पादकों को यह मान कर वितरण–वाहिका नीति का विकास तथा प्रबन्ध करना चाहिए कि मध्यस्थ उनके शिकंजे में नहीं हैं और वे स्वयंमेव ही समर्पित प्रस्तावों तथा योजनाओं को स्वीकार करते हैं। वे स्वतंत्र व्यवसायी हैं, इसलिए, उन्हें प्रस्तावों एवं योजनाओं का विक्रय किया जाना चाहिए। अन्य शब्दों में, निर्माताओं को चाहिए कि वे मध्यस्थों को उनके उत्पादों का ग्राहक माने भले ही वे अन्तिम क्रेता क्यों न हो।[11] उनके साथ वैसे ही मधुर सम्बन्ध स्थापित किये जाने चाहिए जैसे कि अन्तिम क्रेताओं के मध्य श्रेष्ठ ख्याति उत्पन्न की जाती है।

(ii) निर्माताओं एवं उत्पादकों को अपनी वितरण और विपणन नीतियों का मूल्याँकन करना चाहिए तथा उनमें आवश्यक संशोधन करने चाहिए। ऐसा करते समय उन्हें अपने उत्पादों, उनके सम्बन्ध में दी जाने वाली सेवाओं तथा अन्य सम्बद्ध विपणन नीतियों की समीक्षा करनी चाहिए। उन्हें देखना चाहिए कि उनके उत्पाद कहाँ तक मध्यस्थों की जरूरतों को पूरा कर पाते हैं ताकि आगे चलकर उनमें आवश्यक संशोधन किये जा सकें। इसी प्रकार, उपलब्ध की जा रही सेवाओं, उत्पाद कीमतों, वितरण तथा संवर्द्धन व्यवहारों आदि का भी मूल्याँकन किया जाना चाहिए। उन्हें देखना चाहिए कि उनकी नीतियाँ एवं व्यवहार किस सीमा तक निष्पक्ष और एकरूपता लाने में सफल रहे? अविवेकपूर्ण कीमत नीति का अनुसरण भी अतिशीघ्र त्यागा जाना चाहिए ताकि मध्यस्थों के खर्चे पूरे हो सकें, वहत आदेशों एवं लघु आदेशों के मध्य की अत्यधिक छूटें समाप्त हो सकें और उत्पाद रेखायें प्रतिस्पर्धी बनी रह सकें। अन्य शब्दों में, समन्वित एवं सुग्रंथित विपणन नीतियाँ और कार्यक्रम तैयार किये जाने चाहिए जो उत्पाद–प्रवाह को स्वतः प्रेरित कर सकें।

(iii) निर्माताओं एवं उत्पादकों को सम्पूर्ण वितरण–वाहिका में प्रभावी संचार व्यवस्था स्थापित करना चाहिए। सतत् वाहिका–सम्पर्क एवं औपचारिक समझौते बाजारों में स्थिरता लाते हैं, उत्पाद–प्रवाह को स्वचालित बनाते हैं और वितरण लागतों में कमी लाते हैं। सतत् सम्पर्कों के अभाव में पूर्ण हार्दिक सहयोग की कल्पना नहीं की जा सकती। प्रभावी एवं सतत् संचार उस समय और भी महत्वपूर्ण तथा अनिवार्य हो जाता है जबकि वाहिका में मध्यस्थों की संख्या अत्यधिक हो और संवर्द्धन कार्यक्रमों में वैयक्तिक विक्रय को कोई स्थान अथवा नगण्य स्थान दिया गया हो।

अतएव, निरन्तर सम्पर्क एवं संचार बनाये रखने के लिए निम्न कार्य किये जा सकते हैं–

(क) वितरण नीति में परिवर्तन करके सीधे फुटकर व्यापारियों को वितरण किया जा सकता है अथवा थोक व्यापारियों को रखते हुए स्वयं को मशीनरी विक्रेताओं की नियुक्ति करके संचार व्यवस्था को प्रभावी बनाया जा सकता है।

(ख) व्यक्तिगत रूप से वर्ष में एक या दो बार अपने मध्यस्थों से भेंट करना भी काफी प्रभावी तथा लाभकारी माना गया है। इसलिए संस्था के अधिकारियों अथवा विक्रयकर्ता को ऐसी व्यक्तिगत भेंट के कार्यक्रम बनाने चाहिए।

(ग) समय–समय पर पत्र–व्यवहार में, मेंगजीन प्रेरणा, विक्रय साहित्य का भेजा जाना, व्यापारिक विज्ञापन आदि भी सम्पर्कों को प्रगाढ़ बनाते हैं।

(घ) विक्रेताओं की गोष्ठियाँ आयोजित करना, व्यापारियों के विक्रेताओं को प्रशिक्षण हेतु बुलाना, व्यापारी–उत्पादक परिषदों का निर्माण करना आदि भी पारस्परिक सहयोग के संवर्द्धन हेतु उपयोगी माना गया है।

5. **वितरण प्रणाली का मूल्यांकन (Evaluation of Distribution System)**–वितरण–वाहिका नीति का यह सर्वाधिक महत्वपूर्ण निर्णय क्षेत्र है। इस क्षेत्र से सम्बद्ध निर्णय लेने का उत्तरदायित्व सर्वोच्च विपणन अधिशासी का होना चाहिए।

---

11 Phillip Mcevey "Are Channels of Distribution What the Textbooks say?" Journal of Marketing, January, 1960, pp. 60-62, quoted in W. Lazer. op. cit., p.304.

ऐसे मूल्यांकन का प्रमुख आधार विपणन उद्देश्य होने चाहिए। इस कार्य को करते समय यह देखना जरूरी होता है कि विपणन उद्देश्यों की पूर्ति विद्यमान वितरण प्रणाली द्वारा कहाँ तक, किस प्रकार हो रही है? यदि उद्देश्यों की पूर्ति हेतु परिवर्तित परिस्थितियों में वितरण–वाहिका नीति का संशोधित करना जरूरी हो तो, वह भी किया जाना चाहिए। यदि मध्यस्थ–पतों में कमी या बढ़ोत्तरी करना जरूरी हो अथवा उनको प्रेरित करना जरूरी हो तो इस सम्बन्ध में भी आवश्यक निर्णय शीघ्र लिये जाने चाहिए। विपणन अधिशासी द्वारा वितरण–प्रणाली के मूल्यांकन का कार्य मध्यस्थों की दष्टि से करना चाहिए ताकि सम्पूर्ण वितरण–वाहिका उत्पादक, सहकारी एवं रचनात्मक भूमिका निभा सके।

वितरण माध्यम या वाहिकाएँ
(Channels of Distribution)

विपणन के दष्टिकोण से वस्तुएँ साधारणतया दो रूपों में बाँटी जाती हैं जिनमें एक को उपभोक्ता वस्तुएँ व दूसरी को निर्मित वस्तुएँ कहते हैं। दोनों प्रकार की वस्तुओं को उपभोक्ता तक पहुंचाने के साधनों में अन्तर है। जहाँ तक **उपभोक्ता वस्तुओं का सम्बन्ध है उनका वितरण माध्यम साधारणतया निम्न प्रकार का होता है–**

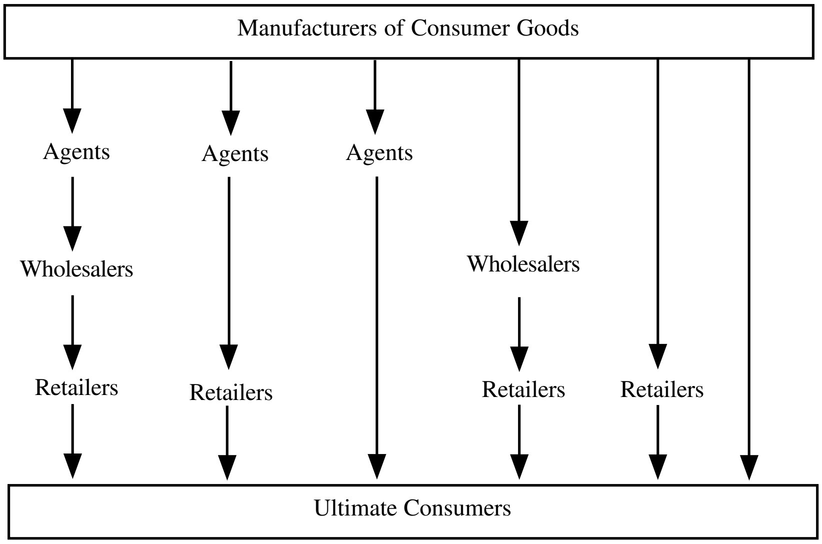

उपर्युक्त चार्ट से यह अर्थ कदापि नहीं लगाना चाहिए कि वितरण माध्यम के उपर्युक्त 6 ही तरीके हैं बल्कि इन तरीकों की संख्या बढ़ सकती है, जैसे प्रतिनिधि दो हो सकते हैं–एकमात्र विक्रय प्रतिनिधि व दूसरा उप–एकमात्र विक्रय प्रतिनिधि। इसी प्रकार थोक विक्रेता भी बीच में कई हो सकते हैं; जैसे, बड़े थोक विक्रेता व छोटे थोक विक्रेता। इस प्रकार उपर्युक्त चार्ट को हमने अपनी सुविधा के लिए अपनाया है।

1. **निर्माता ⟶ प्रतिनिधि ⟶ थोक विक्रेता ⟶ फुटकर विक्रेता ⟶ उपभोक्ता**– इस तरीके को अपनाने में वस्तु निर्माता से प्रतिनिधि और प्रतिनिधि से थोक विक्रेता तक पहुंचती है जहाँ से फुटकर विक्रेता खरीद कर उपभोक्ता को बेचते हैं। भारत में अधिकांश कपड़े की बिक्री इसी प्रकार से होती है।

2. **निर्माता ⟶ प्रतिनिधि ⟶ फुटकर विक्रेता ⟶ उपभोक्ता**– इस तरीके व ऊपर लिखे तरीके में सिर्फ इतना ही अन्तर है कि इसमें मध्यस्थों की कड़ी में एक की कमी हो जाती है क्योंकि इसमें थोक विक्रेता बीच में नहीं आते हैं। माल प्रतिनिधि से सीधा फुटकर विक्रेता द्वारा किया जाता है जो उपभोक्ता को बेचते हैं। वे निर्माता जो अपनी वितरण लागत कम करना चाहते हैं इस तरीके को अपनाते हैं।

3. **निर्माता ⟶ प्रतिनिधि ⟶ उपभोक्ता**– इस प्रणाली में उपभोक्ता व निर्माता के बीच सिर्फ एक ही कड़ी रहती है और वह है प्रतिनिधि। भारत में अधिकांश दवाई निर्माता व Cosmetic वस्तुओं के निर्माता इसी प्रणाली को अपना रहे हैं और वे इसके लिए अपनी एजेन्सियाँ विभिन्न स्थान पर रखते हैं। यह एजेन्सियाँ ही फुटकर विक्रेता का काम करती है।

4. **निर्माता ⟶ थोक विक्रेता ⟶ फुटकर विक्रेता ⟶ उपभोक्ता**– इस विधि में वस्तु थोक विक्रेता व फुटकर विक्रेता के माध्यम से उपभोक्ता तक पहुंचती है। वास्तव में, यह उपभोक्ता वस्तुओं को बेचने का बहुत ही पुराना ढंग है और छोटे निर्माताओं के लिए बहुत ही अच्छा है। भारत में कृषि पदार्थों के सम्बन्ध में यह तरीका पाया जाता है।

5. **निर्माता ⟶ फुटकर विक्रेता ⟶ उपभोक्ता**– इस विधि में निर्माता अपनी बिक्री फुटकर विक्रेताओं को करता है और फिर फुटकर विक्रेता द्वारा उपभोक्ता की सेवा की जाती है। भारत में रेमण्ड्स व ओ. सी. एम. आदि के द्वारा यह तरीका अपनाया जाता है।

6. **निर्माता ⟶ उपभोक्ता**– इस पद्धति में निर्माता द्वारा सीधी बिक्री उपभोक्ताओं को की जाती है और यह बिक्री (i) अपनी दुकानों से; (ii) स्वयं के विक्रयकर्ताओं से; (iii) डाक के माध्यम से; (iv) विक्रय मशीनों से; व (v) टेलीफोन से की जाती है इस प्रकार की पद्धति को प्रत्यक्ष बिक्री का तरीका भी कहते हैं।

औद्योगिक वस्तुओं का वितरण माध्यम
(Channels of Distribution of Industrial Products)

निम्नांकित चार्ट का यह अर्थ कदापि नहीं है कि निर्मित औद्योगिक माल का वितरण माध्यम निम्न 4 तरीके का ही होता है बल्कि इसमें और भी वद्धि हो सकती है। निर्माता द्वारा अपने बाजार के नियंत्रण के दष्टिकोण से क्षेत्रीय कार्यालय भी खोले जा सकते हैं जो इस कड़ी को और लम्बा कर देते हैं।

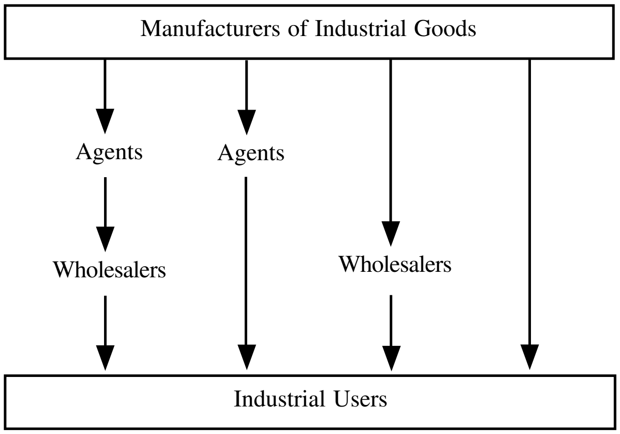

1. **निर्माता ⟶ प्रतिनिधि ⟶ थोक विक्रेता ⟶औद्योगिक विक्रेता**– इस विधि में वस्तु निर्माता से प्रतिनिधि व प्रतिनिधि से थोक विक्रेता और उससे औद्योगिक क्रेता के पास पहुंचती है।

2. **निर्माता ⟶ थोक विक्रेता ⟶ औद्योगिक क्रेता**– यह प्रणाली पहली प्रणाली से छोटी है और इसमें वस्तु प्रतिनिधि के माध्यम से औद्योगिक क्रेता के पास पहुंचती है। वे संस्थाएँ जो कम–से–कम मध्यस्थों को चाहती है इस पद्धति को अपनाती हैं।

3. **निर्माता ⟶ थोक विक्रेता ⟶ औद्योगिक क्रेता**– यह पद्धति ऊपर जैसी ही है अन्तर केवल इतना है कि वहाँ निर्माता व औद्योगिक व औद्योगिक क्रेता के बीच प्रतिनिधि है जबकि यहाँ थोक विक्रेता है।

4. **निर्माता ⟶ औद्योगिक क्रेता**– इसको सीधी पद्धति या सीधा मार्ग कहते हैं। इसमें निर्माता व औद्योगिक क्रेता के बीच कोई मध्यस्थ नहीं होता है। रेलवे इंजन व बिजली बनाने वाली मशीनें, इसी माध्यम से बेची जाती हैं।

वितरण–मार्ग की व्याख्या करते समय हमने कुछ शब्दों का प्रयोग किया हैद्ध जैसे, निर्माता, प्रतिनिधि, थोक विक्रेता, फुटकर विक्रेता, आदि। अब हम इन शब्दों की व्याख्या करेंगे–

1. **निर्माता (Manufacturer)**– निर्माता का अर्थ वस्तुओं का निर्माण करने वाले से है। यह निर्माण संस्थाएँ व्यक्तिगत, कम्पनी, सहकारी व साझेदारी के रूप में हो सकती हैं। निर्माता की परिभाषा में वे उत्पादक भी शामिल हैं जो वस्तुओं को खेती–बाड़ी करके उत्पादित करते हैं।

2. **प्रतिनिधि (Agent)**– मध्यस्थों की शृंखला में प्रतिनिधि सबसे पहले आता है। यह प्रतिनिधि भी कई प्रकार के होते हैं लेकिन साधारणतया यह दो प्रकार के होते हैं– (i) एक तो वे जो आढ़त या दलाली पर कार्य करते हैं और वस्तुओं के हस्तान्तरण में वास्तविक रूप से स्वामित्व को अपने ऊपर नहीं लेते हैं। ये निर्माता और क्रेता को मिलाकर सौदों को पूरा करा देते हैं। (ii) दूसरे वे जो निर्माता के माल को स्वयं क्रय करते हैं और फिर बाद में अन्य मध्यस्थों या क्रेताओं को बेच देते हैं।

3. **थोक विक्रेता (Wholesaler)**– वे विक्रेता जो निर्माता से वस्तुओं को बड़ी मात्रा में खरीदते हैं और उनका विक्रय छोटी–मोटी मात्रा में फुटकर व्यापारियों को करते हैं थोक विक्रेता कहलाते हैं।

4. **फुटकर व्यापारी (Retailer)**– वे विक्रेता जो वस्तुओं को फुटकर मात्रा में उपभोक्ताओं को बेचते हैं फुटकर विक्रेता कहलाते हैं। यह फुटकर विक्रेता कई प्रकार के होते हैं जिनका विस्तत विवरण फुटकर वितरण वाले अध्याय में दिया गया है।

अध्याय-12
थोक वितरण
(Wholesale Distribution)

थोक व्यापारी
(Meaning of the Wholesaler)

सामान्यतया थोक व्यापारी को वितरण श्रंखला की उ स कड़ी से परिभाषित किया जाता है जो कि उत्पादकों एवं फुटकर व्यापारियों के मध्य सम्पर्क स्थापित करती है। यद्यपि यह अर्थ गलत नह है, किन्तु थोक व्यापारी केवल फुटकर व्यापारियों को ही माल का विक्रय नहीं करते हैं, बल्कि वे औद्योगिक उपभोक्ताओं, संस्थाओं तथा उन व्यक्तियों को भी माल बेचते हैं जिनका उद्देश्य खरीदे जाने वाले माल का उपयोग अन्य वस्तुएँ बनाने में करना होता है अथवा जिनका वाणिज्यिक उपभोग करना होता है। जब कोई वस्तु कम अथवा अधिक परिमाण में पुनर्विक्रय एवं लाभ कमाने हेतु अथवा नवीन वस्तुओं के उत्पादन हेतु खरीदी जाती है, जो ऐसी वस्तु का विक्रेता थोक व्यापारी तथा ऐसा वितरण 'थोक वितरण' कहलाता है। इस दष्टिकोण से यदि उत्पादक भी फुटकर व्यापारियों या औद्योगिक निर्माताओं को वस्तुएँ बेचता है तो वह भी थोक व्यापारी है। किन्तु एक फुटकर व्यापारी यदि अन्य फुटकर व्यापारियों को माल का विक्रय करता है अथवा कभी–कभी औद्योगिक प्रयोक्ताओं को माल का विक्रय करता है तो भी फुटकर व्यापारी थोक व्यापारी नह कहलाता है क्योंकि उस व्यापारी की दैनिक प्रकृति तो उपभोक्ताओं को ही माल बेचने की होती है।

थोक व्यापारी की प्रमुख परिभाषाएँ
(Important Definitions of a Wholesaler)

1. लार्सन के अनुसार, "थोक व्यापार में वे सब एजेन्सियाँ सम्मिलित होती हैं जो स्थानीय बाजार तथा फुटकर व्यापारी के बीच होने वाली खरीद–बेच में सहयोग करती हैं।[1]
2. लिपसन एवं डार्लिंग के अनुसार, "थोक व्यापारी वह मध्यस्थ है जिसके ग्राहक व्यावसायिक उद्देश्य से अथवा लाभार्जन से प्रेरित होकर माल खरीदते हैं।"[2]
3. बेकमेन एवं डेविडसन के अनुसार, "थोक विक्रय में ऐसे समस्त सौदे सम्मिलित होते हैं, जिनके अन्तर्गत ग्राहक का उद्देश्य पुनर्विक्रय द्वारा लाभ कमाना है अथवा व्यापारिक उपयोग करना है। किन्तु ऐसे सौदे सम्मिलित नही होते हैं जिनमें वस्तु का विक्रय बहुत थोड़ी मात्रा में हो और सामान्यतया किसी फुटकर संस्था से खरीदी जावें।"[3]
4. सेन्सस ब्यूरो ऑफ अमेरिका के अनुसार, "समस्त व्यापारी प्रतिनिधि एवं संग्रहकर्ता जो एक ओर उत्पादकों तथा दूसरी ओर फुटकर व्यापारियों एव उपयोगर्ताओं के बीच मध्यस्थता करते है, थोक व्यापारी कहलाते हैं।"[4]
5. अमेरिकन मार्केटिंग एसोसियेशन के अनुसार, "थोक व्यापारी, फुटकर व्यापारियों अथवा अन्य व्यापारियों और /अथवा

---

[1] "Wholesaler includes those agencies taking part in buying and selling activities that operate between the local market and the retailer."
— A. L. Larson

[2] "A wholesaler is a middleman whose customers are actuated by a profit or business motive in making their purchases."
— Lipson and Daring, op. cit., p. 101.

[3] Backman and Davidson, "Marketing", VII edition, New York, 1962.

[4] "All merchants, agents and assemblers who intervene between producers on the one hand and retailers on the other are wholesale establishments."
— The Census Bureau of U.S.A.

औद्योगिक, संस्थागत एवं वाणिज्यिक प्रयोक्ताओं को माल बेचते हैं, किन्तु वे उपभोक्ताओं को विशेष मात्रा में माल नहीं बेचते हैं।"[5]

उपर्युक्त परिभाषाओं से स्पष्ट है कि "थोक व्यापारी वह व्यापारी है जिसके ग्राहक पुनर्विक्रय द्वारा लाभ कमाने के लिए अथवा व्यावसायिक उपयोग के लिए अथवा औद्योगिक उपभोग के लिए माल खरीदते हैं। ऐसा व्यापारी अन्तिम उपभोक्ताओं को माल का विक्रय नहीं करता है।"

विशेषताएँ
(Characteristics)

थोक वितरण की प्रमुख विशेषताएँ निम्नलिखित हैं:

1. थोक वितरकों के ग्राहक अन्तिम ग्राहकों को माल का विक्रय करते हैं। अन्य शब्दों में थोक वितरक अन्तिम ग्राहकों को महत्वपूर्ण मात्रा में माल नहीं बेचते हैं।
2. थोक वितरक निर्माताओं एवं फुटकर व्यापारियों के बीच की श्रृंखला होते हैं।
3. थोक वितरक सीमित वस्तुओं में व्यापार करते है।
4. थोक वितरक स्थानीय बाजार के क्रय–विक्रय में सहायता देते हैं। तथा फुटकर व्यापारियों को गैर–विक्रयण सेवाएँ प्रदान करते हैं।
5. थोक वितरक दुकान की सजावट की तुलना में गोदाम–व्यवस्था पर अधिक ध्यान देते हैं क्योंकि ये माल के बड़े संग्रहकर्ता होते हैं।
6. थोक वितरकों की आर्थिक स्थिति काफी सुदढ़ होती है।
7. वर्तमान में, थोक वितरक निजी ब्राण्ड के आधीन भी विपणन करने लगे हैं तथा निर्माताओं को नाना प्रकार की विपणन सेवाएँ उपलब्ध करने लगे हैं।

थोक व्यापार संरचना
(Wholesale Structure)

थोक व्यापार संरचना का निर्माण जिन थोक व्यापार मध्यस्थों से होता है, उन्हें मौटे तौर पर दो भागों में बाँटा जा सकता हैं– 1. एजेन्ट मध्यस्थ, एवं 2. मर्चेन्ट थोक व्यापारी।

इनका विशद् विवचेन इस प्रकार है।

एजेन्ट मध्यस्थ
(Agents Middlemen)

एजेन्ट मध्यस्थ, "वे थोक वितरक है जो अपने माल का क्रय–विक्रय न करके अन्य लोगों के लिए करते हैं।" अन्य शब्दों में, "ये ऐसे थोक वितरक हैं जिनके द्वारा खरीदे एवं बेचे गये माल का स्वामित्व कानूनी तौर पर अन्य व्यक्तियों के पास होता है इन्हें अपनी सेवाओं के बदले में कमीशन दिया जाता है।"

एजेन्ट मध्यस्थों को पुनः निम्न श्रेणियों में विभक्त किया जा सकता है:

1. **ब्रोकर्स (Brokers):** ब्रोकर स्वत्व–हस्तान्तरण का सौदा करता है। यह क्रेता या विक्रेता का प्रतिनिधित्व करता है और एक पक्षकार को दूसरे पक्षकार से मिलाता है। यह भौतिक रूप से उन वस्तुओं का हेन्डलिंग नहीं करता है, जिनकी खरीद–बेच में सहयोग करता है यह न्यूनतम सेवाएँ प्रदान करता है ब्रोकर्स वितरण की निम्न लागत विधि प्रदान करते

---

[5] "Wholesalers sell to retailers or other merchants and/or industrial, institutional and commercial users, they do not sell in significant amounts to ultimate consumers."

— AMA

हैं और परिणामों की उपलब्धि पर ही परिपूर्ति रखने का हक रखते हैं। ब्रोकर्स का उत्पाद उसकी सूचनाएँ हुआ करती है कि कौन क्या बेचना चाहता है और क्या खरीदना चाहता है।

2. **कमीशन मर्चेन्टस् (Commission Merchants):** कमीशन मर्चेन्ट्स यद्यपि ब्रोकर्स के समान होते हैं, फिर भी दो बातों में विभिन्नता रखते हैं। प्रथम, कमीशन मर्चेन्ट्स अपने नियोक्ताओ को बद्ध (Bind) करते हैं, जबकि ब्रोकर्स नहीं करते हैं। ब्रोकर्स को हर बार सौदे का अन्तिम रूप देने से पहले नियोक्ता का अनुमोदन प्राप्त करना होता है, किन्तु कमीशन मर्चेन्ट्स को ऐसा अनुमोदन प्रापत करने की जरूरत नहीं होती हैं। द्वीतीय, कमीशन मर्चेन्ट्स के जरिये की जाने वाली बिक्री कम समय लेती है। कमीशन मर्चेन्ट्स अपने नियोक्ताओं को माल की बिक्री से प्राप्त विक्रय धन में से कमीशन काटकर शेष धनराशि उन्हें लौटा देते हैं। कमीशन मर्चेन्ट्स कृषि बाजारों में काफी प्रचलित है।

3. **निर्माताओं का एजेन्ट (manufacturers' Agents):** निर्माताओं का एजेन्ट वह थोक वितरक है जो अनेक निर्माताओं की विक्रय कमीशन पर करता है। ऐसी बेची जाने वाली वस्तुएँ परस्पर पूरक अथवा प्रतिस्पर्धी होती हैं। यह वस्तुओं का विक्रय उसी प्रकार करता है, जैसे कि किसी निर्माता का विक्रयकर्ता करता है अथवा निर्माता का बिक्री कार्यालय करता है अथवा निर्माता की शाखा करती है। ऐसा एजेन्ट अनेक निर्माताओं की वस्तुओ की किसी निश्चित प्रतिबन्धित क्षेत्र (Restricted area) में बेचता है। इसलिए कोई भी निर्माता जिसकी वस्तुओं का बाजार राष्ट्रीय है अनेक एजेन्ट नियुक्त कर सकता है। ऐसे एजेन्ट स्वतन्त्र होते हैं और किसी निर्माता के कर्मचारी नहीं होते हैं। ऐसे एजेन्टों द्वारा बेची जाने वाली वस्तुओं की कीमत एवं बिक्री शर्तों पर उनके निर्माताओ का पूरा नियन्त्रण रहता हैं इन थोक वितरकों का प्रयोग प्रायः उन छोटे निर्माताओं द्वारा किया जाता है, जिनको व्यापक प्रतिनिधित्व की आवश्यकता है क्योंकि उनकी बिक्री अपर्याप्त है। ये थोक वितरक अपने यहाँ भारी स्टॉक भी रखते पाये जाते हैं। किन्तु अधिकतर एजेन्ट आदेश प्राप्त करके उनकी पूर्ति करते हैं। मशीनरी, विद्युत उत्पाद, वस्त्र, खाद्य, फर्नीचर, खेलकूद आदि के वितरण में प्रायः निर्माता–एजेन्टों की सेवाएँ प्राप्त की जाती है। जब उत्पादन नया हो अथवा किसी नये बाजार में प्रवेश करता हो, तब निर्माता एजेन्टों का प्रयोग किया जाना श्रेयस्कर रहता है।

4. **विक्रय एजेन्ट (Selling Agents):** विक्रयण एजेन्ट वस्तुतः निर्माताओं के विपणन प्रबन्ध का प्रतिस्थानापन्न होता है। वह प्रायः राष्ट्रीय स्तर पर एक या अनेक निर्माताओं की सम्पूर्ण उत्पाद पंक्तियों का विपणन करता है और उत्पादों की कीमतों, उनकी बिक्री एवं उनके विज्ञापन पर पूर्ण नियन्त्रण रखता है ऐसे एजेन्ट निर्माताओं के एजेन्टों की तुलना में अधिक विपणन सेवायें प्रदान करते हैं। इनके द्वारा दी जाने वाली सेवाओं में डिजाईन, विपणन अनुसन्धान, विज्ञापन संवर्द्धन, क्षेत्रीय प्रतिनिधित्व आदि से सम्बद्ध सेवाओं को सम्मिलित किया जा सकता हैं।

   ऐसे एजेन्ट अनेक निर्माताओं का प्रतिनिधित्व करते हैं, इसलिए निर्माताओं के विक्रयकर्ताओं की तुलना में अधिक सस्ती विपणन सेवायें उपलब्ध कर सकते हैं। इन एजेन्टों का उपयोग प्रायः उन निर्माताओं द्वारा भी किया जाता है जो आर्थिक संकट में है ओर कार्यशील पूँजी जुटाने में असमर्थ हैं। ये एजेन्ट नियोक्ता के सम्पूर्ण व्यवसाय पर नियन्त्रण कर लेते हैं जिसे अनेक कारणों से ठीक नहीं माना जाता है। इतने पर भी इन एजेन्टों द्वारा उपलब्ध की जाने वाली वित्तीय सहायता एवं विपणन हेतु उन्हें प्रयुक्त किया जाता है।

   विलियम जे. स्टेन्टन के अनुसार निर्माताओं के एजेन्टों एवं विक्रयण एजेन्टों में जो विचारणीय भेद हैं, निम्नलिखित हैं:[6]

   1. निर्माताओं के एजेन्टों का बिक्री प्रदेश प्रतिबन्धित होता है जबकि विक्रय एजेन्ट का नहीं।
   2. निर्माताओं के एजेन्टों की प्रयुक्ति की दशाओं में प्रायः निर्माता स्वयं की विक्रय–शक्ति भी विपणन हेतु नियोजन करते हैं, किन्तु विक्रयण एजेन्टों की प्रयुक्ति की दशाओ में विक्रय–शक्ति को नियोजित नहीं किया जाता है।
   3. निर्माताओं के एजेन्टो की तुलना में विक्रयण एजेन्ट उत्पाद कीमतों एवं विक्रय शर्तों पर अधिक नियन्त्रण रखते हैं।

---

[6] W. J. Stanton, op. cit., pp. 320-21.

4. निर्माताओं के एजेन्ट निर्माताओं की सम्पूर्ण उत्पाद पंक्ति को किसी एक बाजार में या उत्पाद पंक्ति के कुछ उत्पादों को सभी बाजारों में बेचते हैं, जबकि विक्रयण एजेन्ट एक या अधिक निर्माताओं की सम्पूर्ण उत्पाद पंक्तियों को राष्ट्रीय बाजारों में बेचते हैं।

5. **अन्य प्रकार के एजेन्ट (Other Types of Agents):** अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार में भी अनेक प्रकार के एजेन्ट कार्य करते हैं। इनमें निर्यात एजेन्टों, आयात एजेन्टों, विक्रय एजेन्टों, इन्डेन्ट एजेन्टों, रेजीडेन्ट एजेन्टों आदि को प्रमुखता से सम्मिलित किया जा सकता है। निर्यात कमीशन गहों, आयात आढ़तियों एवं दलालों को ब्रोकर्स कहा गया हैं आयात निर्यात गहों को कमीशन मर्चेन्ट्स माना गया है इन्डेन्ट गह रेजीडेन्ट क्रेताओं की भाँति कार्य करते हैं।

मर्चेन्ट थोक व्यापारी

(Merchant Wholesaler)

मर्चेन्ट थोक व्यापारी, "ऐसे थोक वितरक हैं जो उन वस्तुओं का स्वत्व ग्रहण करते हैं जिन्हें वे बेचते हैं और उत्पादन–स्वामित्व के साथ जुड़ी हुई जोखिम को वहन करते हैं।" मर्चेन्ट थोक वितरकों को 'पूर्ण सेवा थोक व्यापारियों एवं सीमित कार्य थोक व्यापारियों' की श्रेणियों में वर्गीकृत किया जा सकता है।

प्रत्येक श्रेणी में सम्मिलित होने वाले थोक वितरकों का संक्षिप्त उल्लेख निम्नानुसार हैः

(क) **पूर्ण सेवा थोक व्यापारी (Full Service wholesalers):** पूर्ण सेवा थोक व्यापारी को पूर्ण कार्य थोक विक्रेता (Full Function wholesaler) 'सेवा थोक विक्रेता' (Service wholesaler) और कभी–कभी केवल 'थोक विक्रेता' (wholesaler) के नाम से भी पुकारा जाता है। यह वह 'मर्चेन्ट थोक व्यापारी हैं जो थोक विक्रेता के समस्त कार्यो को सम्पन्न करता है।' ऐसे कार्यो में प्रमुखतः स्टॉक रखना, सुपुर्दगी देना, साख उपलब्ध करना, विक्रय–शक्ति का अनुरक्षण करना, जोखिम वहन करना, गमनागमन में सहायता आदि को सम्मिलित किया जा सकता है।

पूर्ण सेवा थोक विक्रेताओं को उनके द्वारा बेची जाने वाली वस्तुओं के आधार पर वर्गीकृत करने का प्रयास यदि किया जाये तो उन्हें निम्न वर्गो में सामूहिक किया जा सकता है।

1. **सामान्य वस्तु थोक विक्रेता (General merchandise Wholesaler):** ये थोक विक्रेता अनेक प्रकार की उत्पाद रेखाओं में व्यवहार करते हैं और प्रायः सुविधा उत्पादों एवं शॉपिंग उत्पादों का विपणन करते हैं। इन विक्रेताओं द्वारा बेची जाने वाली वस्तुयें अनाशवान (Non-perishable) होती हैं। उदाहरण के लिए हार्डवेयर, विद्युत पूर्तियाँ, फर्नीचर, ऑटोमोबाइल उपकरण, सौंदर्य प्रसाधन, दवाइयाँ आदि का विपणन ये सामान्य वस्तु थोक विक्रेता करते हैं। विलियम जे. स्टेन्टन का कहना है कि सामान्य वस्तु थोक विक्रेता अन्य सेवा थोक विक्रेताओं की तुलना में प्रतिष्ठानों की संख्या एवं बिक्री की दष्टि से कम महत्वपूर्ण है।

2. **एक-पंक्ति थोक विक्रेता (Single-line Wholesalers):** इन्हें सामान्य पंक्ति थोक विक्रेता भी कहा जाता है। ये वे मर्चेन्ट थोक विक्रेता हैं जो एक उत्पादन–पंक्ति में व्यवहार करते हैं, और उपभोक्ता वस्तुओं में मुख्यतः सीमित–पंक्ति फुटकर स्टोर्स को विक्रय करते हैं, औद्योगिक वस्तुओं में ये विक्रेता व्यापक भौगोलिक क्षेत्र को कवर करते हैं और अत्यधिक विशिष्ट सेवायें प्रदान करते हैं। ये थोक विक्रेता किसी एक उत्पाद–पंक्ति की लगभग सभी वस्तुओं का विपणन करते हैं। उदाहरण के लिए पेन्ट विक्रेता, हार्डवेयर विक्रेता, ग्रोसरीज स्टोर्स, वस्त्र विक्रेता, औद्योगिक उपकरण या पूर्ति विक्रेता, ड्राई गुड्स विक्रेता ऐसे एक पंक्ति थोक विक्रेताओं में सम्मिलित किये जाते हैं। इन थोक विक्रेताओं की बिक्री अन्य की तुलना में सर्वाधिक होती है तथा लघु फुटकर भण्डारों को किये जाने वाले विपणन में महत्वपूर्ण स्थान रखते हैं।

3. **विशिष्ट वस्तु थोक विक्रेता (Speciality Wholesalers):** ये थोक विक्रेता किसी व्यापक सामान्य पंक्ति की केवल कुछ विशिष्ट वस्तुओं का ही विपणन करते हैं। उदाहरण के लिए हैंडलूम वस्त्र विक्रेता, ऊनी वस्त्र विक्रेता खादी वस्त्र विक्रेता, डी. सी. एम. के वस्त्र विक्रेता या मफतलाल के वस्त्र विक्रेता आदि विशिष्ट वस्तु थोक विक्रेताओं में सम्मिलित किये जाते हैं। मशीनरी उत्पाद में एयर कण्डीशनिंग, कृषि या उद्यान उपकरण विक्रेताओं को विशिष्ट वस्तु थोक विक्रेताओं में सम्मिलित किया जा सकता है।

भौगोलिक बाजारों के आधार पर यदि थोक विक्रेताओं का वर्गीकरण किया जाये तो मुख्यतः राष्ट्रीय प्रादेशिक एवं स्थानीय थोक विक्रेताओं में वर्गीकृत किया जा सकता है। राष्ट्रीय थोक विक्रेता राष्ट्रीय स्तर पर थोक विक्रय करते हैं, सर्वत्र अपने गोदाम रखते हैं और राष्ट्र भर में फैले फुटकर व्यापारियों को माल बेचते हैं। प्रादेशिक थोक विक्रेता राज्य स्तरीय अर्थात् प्रदेश स्तरीय थोक व्यापार करते हैं। स्थानीय थोक विक्रेता किसी शहर या स्थान की स्थानीय सीमाओं में थोक व्यापार करते हैं। इन थोक विक्रेताओं की संख्या सर्वाधिक होती है। ये थोक विक्रेता स्थानीय फुटकर व्यापारियों की माँग को पूरा करते हैं।

(ख) **सीमित कार्य थोक व्यापारी (Limited Function Wholesalers):** ये ऐसे मर्चेन्ट थोक विक्रेता हैं जो थोक व्यापार के केवल कुछ कार्यो को ही सम्पन्न करते हैं। इनकी वितरण लागत 'सेवा थोक विक्रेताओं' की वितरण लागत की तुलना में कम होती है, क्योंकि ये बहुत कम सेवायें उपलब्ध करते हैं। व्यवहार में पाये जाने वाले विभिन्न प्रकार के सीमित कार्य थोक विक्रेता निम्नलिखित हैः

1. **पैसा दो माल लो थोक विक्रेता (Pay Cash and Carry Wholesalers):** ये थोक विक्रेता अपने फुटकर व्यापारियों को न तो साख प्रदान करते हैं और न ही माल सुपुर्दगी उनके काउन्टर पर करते हैं। इसके विपरीत ये फुटकर व्यापारियों को अपने ही काउन्टर पर नकद माल बेचते हैं। सामान्यतः घरेलू उपभोग की वस्तुएँ, तम्बाकू आदि इन थोक विक्रेताओं की उत्पाद पंक्तियों का निर्माण करने वाली चीजें हैं।

2. **'ड्राप शिपर' थोक विक्रेता (Drop-shipper Wholesalers):** ये डेस्क जॉबर थोक विक्रेता भी कहलाते है। ये थोक विक्रेता अन्य थोक विक्रेताओं, फुटकर व्यापारियों, एवं औद्योगिक प्रयोक्ताओं से आदेश प्राप्त करके सम्बन्धित निर्माता को भेज देते हैं और उसे माल क्रेता तक प्रेषित करने का निर्देश दे देते हैं। अन्य शब्दों में ये थोक विक्रेता बेचे जाने वाले माल का क्रय निर्माता से स्वयं करते हैं किन्तु खरीदे गये माल का बीजक अपने ग्राहकों के नाम से बनवाते है और माल को अपने यहाँ न मंगवाकर सीधा अपने ग्राहकों तक भिजवाने की व्यवस्था करते हैं। इनकी संचालनात्मक लागत काफी कम होती है।

3. **ट्रक या वेगन थोक विक्रेता (Truck or Wagon Wholesalers):** ये वे थोक विक्रेता हैं जो माल को ट्रक या वेगन में ही रखते हैं। और घूम–घूम कर फुटकर संस्थाओं को हाथों–हाथ बेच देते है। सब्जियों, दूध, फलों एवं अन्य ऐसे नाशवान उत्पादों के थोक विक्रेता वितरण के इस ढंग को अपनाते हैं।

4. **डाक द्वारा व्यापार करने वाले थोक विक्रेता (Mail order Wholesalers):** ये थोक विक्रेता डाक द्वारा फुटकर व्यापारियों और बहुत ही कम मात्रा में अन्तिम उपभोक्ताओं को प्रामापित वस्तुओं का विक्रय करते हैं। ये वस्तुएँ नाशवान नहीं होती है। हार्डवेयर, ज्वैलरी, खेल–कूद का सामान आदि वस्तुओं का थोक विक्रय इन विक्रेताओं द्वारा किया जाता है। बड़ी मात्रा में आदेशों पर ये आकर्षक छूटें भी देते हैं।

5. **रेक-जॉबर्स (Rack Jobers):** रेक जॉबर्स अपेक्षाकृत एक नये प्रकार के थोक विक्रेता हैं जो अखाद्य पदार्थो को खाद्य भण्डारों के जरिये बेचने का प्रयास करते हैं। ये सामान्यतया अपने माल को बेचने के लिए विभागीय भण्डारों या सुपर बाजारों में स्थान किराये पर लेकर अपने उत्पादों को आलमारियों में भर कर रख देते है। इन वस्तुओं का विक्रय विभागीय भण्डारों या सुपर बाजारों के कर्मचारी करते हैं। और बदले में कमीशन प्राप्त करते हैं।

उपर्युक्त वर्णित मर्चेन्ट थोक विक्रेताओं के अलावा 'संकलनकर्ता थोक विक्रेता' (Assembling wholesaler) निर्माता बिक्री शाखायें आदि को भी प्रमुख मर्चेन्ट थोक विक्रेताओं में सम्मिलित किया जा सकता है।

थोक व्यापार के कार्य
(Wholeselling Functions)

निर्माताओं एवं फुटकर व्यापारियों अथवा औद्योगिक प्रयोक्ताओं के प्रति थोक वितरकों द्वारा सम्पन्न किये जाने वाले कार्य निम्नानुसार हैं।

निर्माताओं पूर्तिकर्त्ताओं के लिए किये जाने वाले कार्य

(Functions to be Performed for Producers/Suppliers)

निर्माताओं अथवा पूर्तिकर्त्ताओं के लिए थोक वितरण निम्नलिखित कार्य करते हैं।

1. **विक्रयण (Selling):** थोक विक्रेता पूर्ति स्रोतों की खोज करते हैं और निर्माताओं को बिक्री के कार्य से मुक्त करते हैं। थोक विक्रेताओं के द्वारा दी जाने वाली बिक्री सेवाओं के कारण निर्माताओं को अपने यहाँ कम विक्रयकर्त्ता ही रखने पड़ते हैं। थोक विक्रेता निर्माताओं के लिए सम्बर्द्धन कार्य भी करते हैं। और उनकी विज्ञापन तथा अन्य सवंवर्द्धन योजनाओं की क्रियान्विति में हिस्सा लेते हैं।
2. **वित्त प्रबन्ध (Financing):** व्यावसायिक क्षेत्र में पूँजी की जरूरत हर छोटे–बड़े निर्माता को रहती ही है। किन्तु, अपेक्षाकृत छोटे निर्माताओं को पूँजी की जरूरत अधिक रहती है। थोक विक्रेता ऐसे निर्माताओं की वित्तीय जरूरतों को पूरा करने का कार्य करते हैं। थोक विक्रेता काफी बड़ी मात्रा में माल का स्टॉक करके निर्माताओं को पूँजी की व्यवस्था के झंझटों से मुक्त करते हैं।
3. **इन्वेण्टरी संग्रहण (Storing Inventory):** थोक विक्रेता काफी बड़ी मात्रा में माल खरीदते हैं और गोदामों में रखते हैं, जिससे निर्माताओं को अपने यहाँ भारी स्टॉक रखने की आवश्यकता नहीं पड़ती और उनके गोदाम व्ययों में कमी हो जाती है।
4. **साख जोखिमों में कमी (Reducing Credit Risk):** निर्माताओं के लिए यह कठिन होता है कि वे असंख्य फुटकर व्यापारियों की आर्थिक स्थिति का मूल्यांकन कर सकें ओर साख पर उन्हें माल दे सकें। थोक विक्रेता निर्माताओं को इन सैंकड़ों फुटकर व्यापारियों से सम्पर्क स्थापित करने के कठिन कार्य से बचाते हैं और उनकी साख जोखिम मे कमी लाते हैं। प्रायः थोक विक्रेता अग्रिम धन देकर माल खरीदते हैं। इससे भी निर्माताओं की साख–जोखिम में कमी हो जाती है। थोक विक्रेता अनेक फुटकर व्यापारियों के सम्पर्क में आते रहते हैं और उनकी आर्थिक स्थिति से परिचित होते हैं। इसलिए थोक विक्रेता साख जोखिम में कमी लाने वाले वितरक माने गये हैं।
5. **बाजार सूचना (Marketing Infromation):** निर्माताओं की तुलना में थोक विक्रेता उपभोक्ताओं एवं ग्राहकों के अधिक नजदीक होते हैं। परिणामस्वरूप, वे बाजार की प्रतिक्रियाओं से पूरी तरह परिचित होते हैं। और उपभोक्ताओं की माँग, रूचि, फैशन आदि के बारे में उत्पादकों को मूल्यवान सूचनाएँ उपलब्ध करने का कार्य करते हैं। थोक विक्रेताओं का यह कार्य विपणन अनुसन्धान जरूरतों में कमी लाता है।

ग्राहकों के लिए किये जाने वाले कार्य

(Functions to be Performed for Customers)

थोक विक्रेता अपने ग्राहकों अर्थात फुटकर व्यापारियों एवं औद्योगिक व वाणिज्यिक प्रयोक्ताओं के निम्नलिखित कार्य सम्पन्न करते हैं:–

1. **आवश्यकताओं की जानकारी करना (Anticipating Needs):** वस्तुतः थोक विक्रेता अपने ग्राहकों के क्रय एजेन्ट होते हैं और उनकी माँग पूर्वानुमान लगाकर आवश्यक वस्तुएँ विभिन्न निर्माताओं से क्रय करते हैं।
2. **वस्तुओं का पुनर्समूहीकरण (Regrouping of Goods):** थोक विक्रेता पहले तो भारी मात्रा में विविध माल खरीद लेते हैं। तत्पश्चात् ग्राहकों की जरूरत के अनुसार वांछित समूहों में समूहित करते हैं, ताकि न्यूनतम सम्भव लागत पर वितरण किया जा सके।
3. **स्टॉक रखना (Carrying Stocks):** थोक वितरक अपने यहाँ भारी स्टॉक रखते हैं और ग्राहकों को उनकी आवश्यकता के अनुसार माल उपलब्ध कराते हैं जिससे ग्राहकों को अनावश्यक स्टॉक नहीं रखने पड़ते।
4. **साख प्रदान करना (Providing Credit):** व्यवहार में यह पाया गया है कि फुटकर व्यापारियों की निर्बल आर्थिक स्थिति ने थोक विक्रेताओं के विस्तार में सहयोग किया है। छोटे फुटकर व्यापारी एवं आर्थिक दष्टि से कमजोर फुटकर व्यापारी अथवा वाणिज्यिक संस्थायें थोक व्यापारियों से ही माल खरीदना पसन्द करती हैं, क्योंकि वे उन्हें साख पर माल उपलब्ध कर देते हैं। इसके अतिरिक्त ग्राहकों के लिए निर्माताओं से सम्पर्क स्थापित करना भी काफी खर्चीला और असुविधाप्रद होता है।

5. **माल की सुपुर्दगी करना (Delivering Goods):** थोक विक्रेताओं की आर्थिक स्थिति सुदढ़ होती है और वे यातायात के साधन, जैसे ट्रकें, लारियाँ आदि भी अपने यहाँ रखते हैं ताकि माल की सुपुर्दगी कम लागत पर अतिशीघ्र की जा सके।

6. **क्रयण (Buying):** अनेक थोक विक्रेता फुटकर व्यापारियों, औद्योगिक प्रयोक्ताओं, तथा वाणिज्यिक संस्थाओं से आदेश प्राप्त करने के लिए अनेक विक्रयकर्ता नियुक्त करते हैं। इन विक्रयकर्ताओं की सेवाओं को वर्तमान में थोक विक्रेताओं के ग्राहकों ने काफी पसन्द किया है, क्योंकि ग्राहकों को क्रय नहीं करना पड़ता। उनके काउन्टर पर ही थोक व्यापारियों के विक्रेता पहुँच जाते हैं। और माल पसन्द करवाकर आदेश प्राप्त कर लेते हैं। थोक विक्रेताओं का यह कार्य ग्राहकों के क्रयण कार्य को सुविधाजनक बना देता है और उन्हें पूर्ति–स्रोतों की खोज नहीं करनी पड़ती।

7. **सूचनाएँ एवं परामर्श सेवायें देना (Providing Information and Advisory Services):** थोक विक्रेता एवं उनके विक्रयकर्ता जिन वस्तुओं को बेचते हैं, उनके बारे में नाना प्रकार की सूचनाएँ तथा परामर्श देने में समर्थ होते हैं क्योंकि उनका अनुभव एवं विशिष्ट ज्ञान शनैः शनैः काफी बढ़ जाता हैं यही कारण है कि वस्तुओं की कीमत, किस्म, निर्माण डिजायन, पैकेजिंग, संस्थापन, बिक्री आदि के बारे में अपने ग्राहकों को वांछित सूचनाएँ, परामर्श तथा सेवाएँ उपलब्ध करते हैं और संरक्षण प्राप्त करते हैं।

थोक व्यापारियों के उन्मूलन का प्रश्न
(Question of Wholesalers Elimination)

पिछले कुछ वर्षों में यह बराबर कहा जाता रहा है कि "मध्यस्थ पराश्रयी हैं, समाज का शोषण करते हैं इसलिए उन्हें यथाशीघ्र समाप्त करना समाज के लिए हितकारी है।"[7] रॉयल कमीशन ने भी भारतीय कृषि की सोचनीय दशा को देखकर यह निष्कर्ष निकाला था कि "मध्यस्थ एक प्रकार की जोंक है जो उत्पादक एवं उपभोक्ता का खून चूस–चूस कर दिन–व–दिन मोटी होती जा रही है।"[8] हाल ही में भारत सरकार के कम्पनी कानून विभाग द्वारा किये गये अध्ययन ने भी इस बात को पुष्ट किया है कि 'एकाधिकार बिक्री एजेन्सी' (Sole selling agency) के अधीन मध्यस्थों ने सूती वस्त्र, सीमेन्ट, साबुन, शक्कर, वनस्पति आदि महत्त्वपूर्ण उद्योगों में अपनी सेवाओं की तुलना में कमीशन अधिक लेकर मूल्य वद्धि को बढ़ावा दिया है। इसलिए इनकी सामाजिक उपयोगिता नहीं के बराबर है। मद्रास बैंकिंग जाँच कमेटी ने भी मध्यस्थों के स्थान के सम्बन्ध में लिखा है कि मध्यस्थ अधिक हैं और उनका कुछ भी महत्त्व नहीं है। यद्यपि मध्यस्थों द्वारा लिया जाने वाला कमीशन अनुचित नहीं, पर उनका कार्य सन्तोषप्रद है। इनकी संख्या कम की जा सकती है ओर इनकी कार्य–प्रणाली को अधिक लाभप्रद बनाया जा सकता है।

उन्मूलन क्यों
(Elimination, Why?)

थोक मध्यस्थों के उन्मूलन के पक्ष में निम्नलिखित तर्क दिये जाते हैंः–

1. **कीमत वद्धिः** थोक मध्यस्थों के कारण वस्तुओं की कीमतें बढ़ जाती है। थोक विक्रेताओं के लाभ का मार्जिन यद्यपि कम होता है, फिर भी वस्तुओं की कीमतों में वद्धि तो करता ही है। इसके अतिरिक्त थोक मध्यस्थ अपने द्वारा दी जाने वाली विभिन्न विपणन सेवाएँ भी मूल्य–वद्धि का कारण बनती है। अनुमान लगाया जाता है कि थोक मध्यस्थों की विद्यमानता वस्तुओ की कीमतों में 25% से 40% तक की वद्धि करती है। कीमतों में हुई यह वद्धि सामाजिक जीवन–स्तर में गिरावट लाती है।

2. **सुपुर्दगी में विलम्बः** मध्यस्थों की श्रृंखला अनावश्यक रूप से काफी लम्बी हैं। परिणामस्वरूप, वस्तुओं को उपभोक्ताओं के हाथों तक पहुँचने में काफी समय लगता है।

---

7 "Middlemen and agents are nothing but social parasites and the sooner they are eliminated the better for society."

8 "Middlemen are parasites growing at the cost of producers and consumers.

— The Royal Commission on Agriculture.

3. **अनुचित व्यवहारः** थोक मध्यस्थों की आर्थिक स्थिति काफी सुदढ़ होती है। ये वस्तुओं के काफी बड़े स्टॉक रखते हैं और माल की कृत्रिम कमी पैदा करके कीमतों में वद्धि लाने का प्रयास करते हैं। मुनाफाखोरी, कालाबाजारी, मिलावट आदि दूषित व्यवहारों को जन्म देने वाले व्यवसायियों में थोक विक्रेताओं को प्रमुख माना गया है।

4. **प्रचार-प्रसार का गलत प्रयोगः** थोक विक्रेता उन वस्तुओं के प्रचार–प्रसार पर काफी बड़ी धनराशि व्यय करते हैं जिन पर उन्हें अत्यधिक लाभ मिलने की सम्भावना होती हैं। प्रचार–प्रसार करते समय वे यह नहीं देखते कि समाज के चरित्र पर क्या असर होगा? क्या वे वस्तुएं समाज का अहित तो नहीं करेंगी।

   परिणामस्वरूप, फैशन एवं शैली के सतत् परिवर्तन ने राष्ट्रीय संसाधनों के दुरूपयोग को बढ़ावा दिया है। इसके अतिरिक्त शराब, सिगरेट जैसी वस्तुओं का प्रचलन बढ़ा है।

5. **लोकप्रिय वस्तुओं के प्रचलन को बढ़ावाः** थोक मध्यस्थ प्रायः उन वस्तुओं की बिक्री को बढ़ाने में लगे हुए हैं जिनके प्रति ब्रांड निष्ठा बाजार में पहले से ही विद्यमान हैं उन्होंने नवीन उत्पादों के प्रचलन मे अधिक सहयोग नहीं दिया हैं परिणामतः केवल कुछ उत्पादों की वस्तुओं को एकाधिकार स्थापित करने में सफलता मिलती है। स्थानीय उत्पादकों के उत्पादों के प्रति इनकी उदासीनता ने राष्ट्रीय अर्थव्यवस्था में असन्तुलन पैदा किया है।

6. **नवीन संस्थाओं का विकासः** वितरण के क्षेत्र में अनेक नवीन संस्थायें विकसित हो गयी हैं और थोक मध्यस्थों की आवश्यकता को नगण्य–सा प्रमाणित करने लगी हैं। आज उत्पादक उपभोक्ताओं के नजदीक पहुँचने के लिए स्वयं की दुकानें स्थापित करने लगे हैं। उपभोक्ता स्वयं संगठित होकर उपभोक्ता सहकारी भण्डार स्थापित करने लगे हैं। डाक द्वारा व्यापार की सुविधायें बढ़ गयी हैं। सुपर बाजारों की स्थापना की ओर सरकारें ध्यान देने लगी हैं। मध्यस्थ के विरूद्ध उत्पन्न किये गये वातावरण ने इन संस्थाओं के विकास–विस्तार को काफी सुगम बना दिया है। उत्पादक एवं उपभोक्ताओं के बीच की दूरी काफी कम हो गयी है। इसलिए, थोक मध्यस्थों को समाप्त कर दिया जाये तो जन–जीवन की उपभोग–स्थिति पर विपरीत असर नहीं पड़ेगा।

7. **विपणन कार्यो का छिन जानाः** थोक विक्रेता बीस वर्ष पूर्व तक अधिक उपयोगी थे क्योंकि विपणन कार्यो का अधिकांश भाग ये सम्पन्न किया करते थे। किन्तु बदलती हुई परिस्थितियों एवं कानूनों ने थोक विक्रेताओं से विपणन कार्यो के बहुत बड़े भाग को ले लिया है। उदाहरण के लिए, पैकेजिंग का कार्य निर्माता स्वयं करने लगे हैं और स्वतः ही श्रेणीयन कार्य समाप्त हो गया है। बैंकों एवं अन्य वित्तीय संस्थानों ने वित्त प्रबन्धन के क्षेत्र में जो सुविधायें दी हैं, उनसे थोक विक्रेताओं के वित्त प्रबन्धन का कार्य अपर्याप्त एवं अमहत्वपूर्ण सिद्ध होने लगा है। थोक विक्रेताओं द्वारा दी जाने वाली यातायात सुविधाएँ भी अब महत्त्वपूर्ण नहीं रही हैं क्योंकि जन–यातायात साधन काफी बढ़ गये हैं। राष्ट्रीय विज्ञापनों ने इनके विज्ञापन कार्यो को कम उपयोगी बना दिया है।

उन्मूलन क्यों नहीं

(Elimination, Why not?)

यह सही है कि मध्यस्थों के कारण वस्तुओं की कीमतों में कुछ वद्धि हो जाती है जिसका भार उपभोक्ताओं पर पड़ता है। किन्तु उनकी अनुपस्थिति के कारण बढ़ने वाली असुविधाओं का यदि हम अनुमान करें तो शायद कीमतों मे होने वाली किंचित वद्धि हमें नहीं अखरेगी। थोक मध्यस्थों की उपयोगिता का अनुमान एंव अहसास हमें कुछ वर्षों पूर्व भली प्रकार हो चुका है जबकि सरकार ने अनाज के थोक व्यवसाय को अपने हाथ में लिया था। परिणामस्वरूप, कीमतें कितनी बढ़ी थीं यह सर्वविदित है। थोक मध्यस्थों के उन्मूलन से निर्माताओं, फुटकर व्यापारियों तथा उपभोक्ताओं को जो कठिनाईयाँ उठानी पड़ेगी उनका सहज ही में अनुमान नह लगाया जा सकता।

रोवेलड्ट स्कॉट, एवं वारसा ने अपनी पुस्तक में मध्यस्थों के अभाव में किये जाने वाले विनिमयों का एक नक्शा खींचा है, जो यह बतलाने में समर्थ हैं कि मध्यस्थों के न होने पर हमें कितनी असुविधा होगी और विपणन लागत बढ़ जायेगी।[9] उन्होने निम्न तीन उदारहरण दिये हैंः–

1. **बिना मध्यस्थों से विनिमय की स्थितिः** मान लीजिए पाँच व्यक्ति हैं जो भिन्न–भिन्न वस्तुएँ बनाते हैं और अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति हेतु परस्पर विनिमय करते है। ऐसी स्थिति में पाँचों व्यक्तियों को अपनी आवश्यकताओं की

---

9 Rewoldt, Scott and Warshaw "Introduction to Marketing Management, Text and Cases", 1977. pp. 348-351.

पूर्ति हेतु 10 बार सर्म्पक करना पड़ेगा। इन सम्पर्कों में कितना समय, धन तथा शक्ति व्यय हागी और असुविधा होगी, उसकी कल्पना करें तो मध्यस्थों की उपयोगिता स्पष्ट हो जायेगी। बिना मध्यस्थों के विनिमय की स्थिति को चित्र 12.1 में से प्रदर्शित किया जा सकता है।

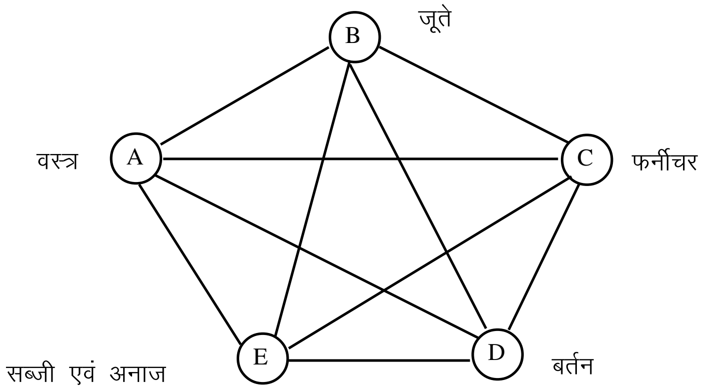

चित्र 12.1

2. **मध्यस्थों की सहायता से विनिमयः** उपर्युक्त उदाहरण में यदि एक व्यापारिक मध्यस्थ हो तो सम्पर्कों की संख्या घट कर 5 रह जाती है और असुविधा एवं लागत भी आनुपातिक रूप से कम हो जाती है। इस स्थिति को चित्र 12.2 से समझा जा सकता है।

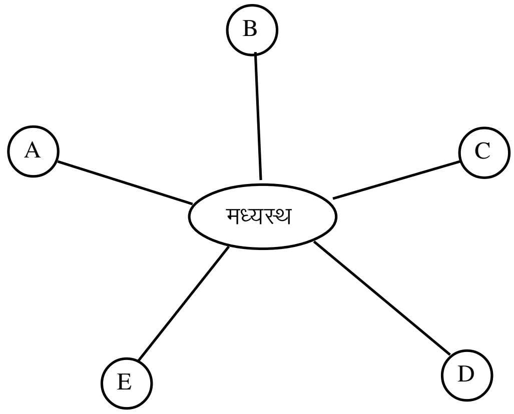

चित्र 12.2

3. **थोक मध्यस्थ की भूमिकाः** यदि हम यह मान लें कि पाँच उत्पादक हैं ओर एक थोक विक्रेता है तथा पाँच फुटकर विक्रेता है तो वितरण हेतु केवल 10 सम्पर्क स्थापित करने होंगे। इसके विपरीत यदि थोक विक्रेता न हो तो फुटकर व्यापारियों को पाँचों निर्माताओं से सम्पर्क करने हेतु 25 बार असुविधा होगी इस स्थिति को चित्र 12.3 से समझाया जा सकता है।

उपर्युक्त उदाहरण काफी सरल है। इसके विपरीत विश्व व्यवसाय की वितरण व्यवस्था अत्यधिक जटिल है। लाखों उत्पादक हैं और अरबों उपभोक्ता। उनके बीच की दूरी को समाप्त करने में मध्यस्थों ने जो भूमिका निभाई है तथा निभा रहे हैं, उसको देखते हुए उनका उन्मूलन न तो सम्भव है और न वांछित ही। केवल कुछ नवीन संस्थाओं के जन्म ले लेने से ही थोक वितरक अनुपयोगी नहीं हो जाते। यदि निष्पक्षता के साथ विचार किया जाये तो पता चलता है कि डाक द्वारा व्यापार अभी व्यापक रूप ग्रहण नहीं कर सका है और केवल प्रमापित वस्तुओं के लिए ही उपयुक्त हैं यह साख सुविधा भी नहीं देता हैं। इसी प्रकार, कितने उत्पादक श्रृंखलाबद्ध दुकानों के जरिये उपभोक्ताओं तक पहुँचे हैं। गाँवों तक तो एक भी नहीं पहुँचा। कितने सुपर बाजार देश में स्थापित हुए हैं और कितने उपभोक्ता भण्डार कार्य कर रहे हैं? इनकों ध्यान में रखकर विचार करें तो थोक विक्रेताओं का कोई विकल्प दिखाई नहीं देता।

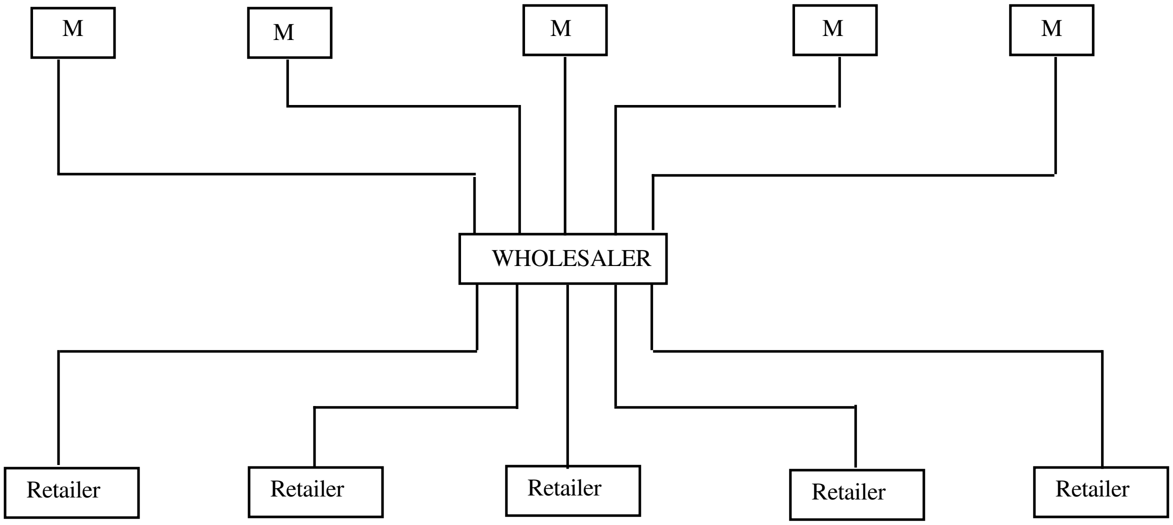

चित्र 12.3

यदि थोक विक्रेता भारी स्टॉक रखते हैं और कृत्रिम कमी पैदा करते हैं तो इससे राजकीय नियन्त्रण की शिथिलता एवं राष्ट्रीय चरित्र की गिरावट का बोध होता है न कि मध्यस्थों की अनुपयोगिता का। राजनीतिज्ञों को चाहिए कि वे अपनी प्रशासनिक कमजोरियों को छिपाने के लिए मध्यस्थ के उन्मूलन की आड़ न लें। वर्तमान सरकार ने जिन नीतियों को अपनाया है तथा जो स्टॉक सीमायें निश्चित की हैं उनसे थोक व फुटकर कीमतों में कमी हुई है। वस्तुतः आवश्यकता श्रेष्ठ नीतियों एवं कार्यक्रमों की है न कि मध्यस्थों के उन्मूलन की। यदि कोई राष्ट्रीय सरकार थोक मध्यस्थों का उन्मूलन करना भी चाहे तो किसी अन्य वैकल्पिक मध्यस्थ संस्था को जन्म देकर ही ऐसा कर सकेगी।

निष्कर्ष रूप में, हम कृषि कमीशन की रिपोर्ट का उल्लेख करना चाहेंगे जो एक विवेकपूर्ण कदम की ओर संकेत करती है। रिपोर्ट मध्यस्थों की आवश्यकता एवं उपादेयता दोनों को स्वीकारती है। रिपोर्ट के अनुसार "वर्तमान क्रय–विक्रय व्यवस्था की उन्नति को देखते हुए किसी भी इकाई को नष्ट करने की जरूरत नहीं हैं। अपितु हमें समस्त इकाइयों को सर्वाधिक लाभप्रद कार्यो में लगाना है। अतएव, हमारी राय में मध्यस्थों को समाप्त नहीं किया जाना चाहिए। आधुनिक व्यवसाय में, मध्यस्थ विविध सेवायें देते हैं और भारत अथवा किसी अन्य देश में भी इन्हें जड़ से निर्मूल करना सम्भव नहीं हैं। मध्यस्थों के सहयोगाभाव में उत्पादों का एकत्रीकरण, श्रेणीयन, माँग–पूर्ति में सम्बन्ध स्थापना आदि कार्यों को करना कठिन और असम्भव है। भारत जैसे राष्ट्र में जहाँ व्यवसायियों के आर्थिक स्रोत सीमित हैं, उत्पादक लघु स्तरीय उत्पादन करते हैं और यातायात के साधन अधिक बढ़े–चढ़े नहीं है, वहाँ कठिनाइयाँ अत्यधिक हैं।" इसलिए थोक मध्यस्थों की समाप्ति के स्थान पर इसकी संरचना को बदला जाना चाहिए। इनकी नीतियों एवं कार्यक्रमों के निर्माण व क्रियान्वयन को नियन्त्रित किया जाना चाहिए ताकि वितरण व्यवस्था में वे एक महत्त्वपूर्ण लाभोपयोगी कड़ी प्रमाणित हो सकें।

थोक वितरण में प्रवत्तियाँ
(Trends in Wholeselling)

एडविन एच. लिविस ने अपने निबन्ध[1] में थोक व्यापारी की प्रवत्तियों का उल्लेख करते हुए बतलाया है कि थोक व्यापारी दुनियायी परिवर्तनों के साथ अपने को बदलता जा रहा है और लम्बवत् एकीकरण के जरिये निर्माण एवं फुटकर संस्थाओं की आवश्यकताओं को पूरा करने का प्रयास कर रहा है। वस्तुओं और विशिष्ट बाजारों के सन्दर्भ में थोक व्यापार विशिष्टीकरण हासिल करता जा रहा है। जो परिवर्तन थोक वितरण में आये हैं और आ रहे हैं वे उसकी कार्यकुशलता को बढ़ा रहे हैं तथा उसके द्वारा दी जाने वाली सेवाओं को समुन्नत बना रहे हैं।

जिन प्रवत्तियों का उल्लेख लिविस ने किया है वे यद्यपि अमेरिकन बाजारों से सम्बन्ध रखती हैं फिर भी अन्य राष्ट्रों में विकसित हो रही प्रवत्तियों का प्रतिनिधित्व करती हैं। थोक व्यापार की प्रवत्तियों के बारे में लिविस के विचार निष्कर्ष रूप में इस प्रकार हैंः–

1. द्वितीय विश्व–युद्ध के बाद की अवधि ने इस बात को प्रदर्शित किया है कि थोक व्यापार अभी तक एक महत्त्वपूर्ण विपणन क्रिया है और स्वतन्त्र थोक व्यापारी वितरण श्रंखलाओं का एक अनिवार्य हिस्सा है।
2. थोक व्यापारियों की बिक्री काफी बढ़ी है और उन्होंने निर्माताओं की बिक्री शाखाओं की भाँति अपनी भी बिक्री शाखाएँ व्यापक पैमाने पर खोली हैं। किन्तु, अनेक क्षेत्रों में निर्माताओं ने थोक विक्रेताओं को पीछे रख दिया है।
3. उपभोक्ताओं वस्तुओं के वितरण में विशेषकर थोक व्यापार ने अपनी स्थिति को काफी सुदढ़ किया है। स्वैच्छिक समूह सहकारियाँ (Voluntary group Cooperative) एंव फुटकर सहकारियाँ (Retailer Cooperative) घरेलू उपभोग्य वस्तुओं के थोक वितरण में महत्वपूर्ण हिस्सा ले रही हैं।
4. द्वितीय विश्वयुद्ध के बाद की अवधि में अत्यधिक मर्चेन्ट थोक विक्रेताओं की संख्या बढ़ी है। कुछ थोक विक्रेता तो बिल्कुल नवीन प्रकार के हैं। इनकी संख्या उपभोक्ता वस्तुओं (केवल दवाइयाँ, फर्नीचर आदि) की अपेक्षा औद्योगिक वस्तुओं में बढ़ी है। इलैक्ट्रोनिक पुर्जे एवं उपकरण के थोक विक्रेता ऐसे थोक वितरकों का एक उदाहरण हैं।
5. स्पेशियल्टी थोक विक्रेता उच्चस्तरीय क्षमता रखते हैं। और सीमित बाजारों में निर्माताओं द्वारा वांछित हर सेवा देते हैं।
6. थोक व्यापार अभी तक भी बड़े शहरों में ही केन्द्रित हैं।
7. एजेन्ट मध्यस्थों का विकास भी तेजी से हुआ है। किन्तु 'निर्माताओं के एजेन्टों' की संख्या सर्वाधिक हुई है।
8. कृषि वस्तुओं के एकत्रकीकरण का कार्य करने वाले थोक वितरकों की संख्या में द्वितीय विश्वयुद्ध के बाद काफी कमी हुई है।
9. थोक व्यापारी लागत एवं नियन्त्रण के प्रति अत्यधिक जागरूक हो गये हैं। कुछ बड़े व्यापारी कम्प्यूटर सेवाएँ भी संस्थापित कर चुके हैं। कम्प्यूटर के कारण निर्माताओं से थोक व्यापारियों तथा थोक व्यापारियों से फुटकर व्यापारियों तक ऑटोमेटिक शिपमेन्ट सम्भव हो गया है। नव उत्पादों तथा पुर्नआदेश (Re-order) के सम्बन्ध में ये सेवायें बड़ी लाभप्रद प्रमाणित हो रही हैं।
10. थोक व्यापारियों ने प्रशिक्षित विक्रयकर्ताओं की नियुक्ति के जरिये अपनी विक्रयण सेवाओं को काफी कार्यकुशल एवं समुन्नत बनाया है। उदाहरण के लिए दवाओं के कुछ थोक विक्रेताओं ने तो टेलीफोन बिक्री क्रियाएँ भी प्रारम्भ की हैं।
11. कुछ अग्रणी थोक विक्रेताओं ने 'विपणन विचार' को हृदय से स्वीकार कर लिया है।
12. निर्माताओं ने चयनात्मक वितरण नीतियों को अत्यधिक रूप से अपनाया है।
13. कुछ बड़े थोक वितरक स्वयं निर्माण कार्य करने लगे हैं और कुछ वितरक स्वयं की ब्रांड के प्रयोग पर अधिक बल देने लगे हैं।

[10] E. H. Lewis "Trends in Wholeselling", in "Managerial Marketing: Perspectives and Viewpoints" edited by Kelley and Lazer, 1972, pp., 516-521.

अध्याय-13
फुटकर वितरण
(Retail Distribution)

फुटकर व्यापारी से आशय
(Meaning of Retailer)

फुटकर व्यापारी के अर्थ के सम्बन्ध में अनेक भ्रान्तियाँ प्रचलित हैं। प्रायः फुटकर व्यापारी से आशय उसके वितरणकर्ता से लेते है जो अल्प मात्रा में वस्तुओं की खरीद–बेच का कार्य करता है यह अर्थ भ्रामक है क्योंकि विभागीय भण्डार जैसी फुटकर वितरण संस्थायें बहुत बड़ी मात्रा में माल खरीदती हैं और ग्राहकों को विविध प्रकार का माल उपलब्ध कराती हैं। इसी प्रकार, कुछ लोग फुटकर व्यापारी से आशय ऐसी संस्था से लेते हैं जो थोक व्यापारी से माल खरीद कर उपभोक्ताओं को बेचती है। यह अर्थ भी भ्रामक है क्योंकि विभागीय भण्डार एवं सुपर बाजार जैसी फुटकर वितरण संस्थायें सीधे निर्माताओं से माल का क्रय करती हैं। कुछ लोगों का मानना है कि फुटकर व्यापारी वे व्यापारी है जो परम्परागत तरीकों से व्यापार करते हैं और उपभोक्ताओ को माल बेचते हैं। इस भ्राति के सम्बन्ध में यह जानना जरूरी है कि अधिकांश फुटकर संस्थाओं ने अपने विपणन के तौर–तरीकों में आधुनिकता पैदा की है। भारतीय ग्रामीण क्षेत्रों के व्यापारी अवश्य ही अपवाद माने जा सकते है। कुछ लोग फुटकर व्यापारी से आशय ऐसे अन्तिम मध्यस्थ से लेते हैं जो अन्तिम उपभोक्ताओं को माल का विक्रय करता हैं। यह अर्थ भी भ्रामक है क्योंकि आज निर्माता, श्रंखलाबद्ध दुकानों एवं अपनी शाखाओं के जरिये अन्तिम उपभोक्ता तक पहुँचने लगे हैं। वितरण का यह प्रारूप कुछ फुटकर व्यापारियों को अन्तिम मध्यस्थों के दायरे से बाहर कर देता है। अतएव, इन भ्रान्तियों से दूर रहते हुए फुटकर व्यापारी के अर्थ को समझना अत्यावश्यक है।

"फुटकर व्यापारी" से आशय उस वितरणकर्ता से लिया जा सकता है जो कि प्रमुखतः अन्तिम उपभाक्ताओ को उनके निजी उपभोग के लिए वस्तुएँ तथा सेवायें बेचता है। स्टीफेन्सन लिखते हैं कि "फुटकर व्यापारी अथवा व्यापार वह व्यावसायिक कार्य है जो मुख्यतः अन्तिम उपभोक्तओं को अव्यावसायिक उपयोग हेतु माल के विक्रय करने से सम्बन्ध रखता है।" क्लार्क एवं क्लार्क ने भी फुटकर व्यापार को परिभाषित करते हुए लिखा है कि "फुटकर व्यापार में अन्तिम उपभोक्ताओं को किये जाने वाले सभी प्रकार के विक्रय सम्मिलित होते हैं। यह उपभोक्ताओं को माल का विक्रय करता है। स्टेन्टन भी लिखते हैं कि "फुटकर व्यापार उन समस्त क्रियाओं को सम्मिलित करता है जो कि वैयक्तिक व गैर–व्यावसायिक प्रयोग के लिए वस्तुएँ तथा सेवायें अन्तिम उपभोक्ता को बेचने से प्रत्यक्षतः सम्बन्धित है।" स्टेन्टन की परिभाषा के अनुसार "फुटकर व्यापारी वह फुटकर व्यापारी है जो कि अन्तिम उपभोक्ताओं को वैयक्तिक एवं अव्यावसायिक प्रयोग हेतु माल का विक्रय करता है।"

उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट है कि फुटकर व्यापार से आशय उन समस्त क्रियाओं से है जो कि अन्तिम उपभोक्ताओं को प्रत्यक्षतः बेचने से सम्बन्ध रखती है और "वह व्यापारी फुटकर व्यापारी कहलाता है जो कि अन्तिम उपभोक्ताओं को माल का विक्रय उनके निजी एवं गैर व्यावसायिक उपभोग के लिए करता है।"

विशेषताएँ
(Characteristics)

फुटकर वितरण व्यवस्था की प्रमुख विशेषताएँ निम्नलिखित हैः

1. फुटकर व्यापार के प्राथमिक ग्राहक अन्तिम–उपभोक्ता होते हैं। मेकार्थी तो स्पष्टतः लिखते हैं कि फुटकर व्यापार न तो औद्योगिक वस्तुओं के विक्रय से सम्बन्ध रखता है और न ही फुटकर या थोक विक्रेताओं को उपभोक्ता माल के

बेचने से सम्बन्ध रखता है। इसका सम्बन्ध अन्तिम ग्राहकों को उपभोक्ता माल बेचने से है।[1]

2. फुटकर व्यापार के ग्राहक निजी एवं अव्यावसायिक उपभोग हेतु माल क्रय करते है।
3. फुटकर व्यापारी अन्तिम ग्राहकों के क्रय एजेन्ट के रूप में कार्य करते हैं न कि निर्माता के विक्रय एजेन्ट के रूप में।
4. फुटकर व्यापारिक संस्थायें विभिन्न प्रकार की वस्तुओं में व्यापार करती हैं।
5. फुटकर व्यापारिक संस्थायें गोदामों के स्थान पर स्टोर्स की सजावट पर अधिक ध्यान देती हैं।
6. फुटकर व्यापारिक संस्थानों के बीच विनाशिता (Moratality) दर व्यवसाय एवं उद्योग की अन्य श्रेणियों की तुलतना में सर्वाधिक ऊँची रहती है।
7. फुटकर व्यापारिक संस्थाओ की लोकेशन आबादी के नजदीक होती है।

फुटकर व्यापारी की सेवायें
(Services of a Retailser)

फुटकर व्यापारी द्वारा दी जाने वाली सेवाओं को निम्न दो भागों में विभक्त किया जा सकता हैः–

निर्माताओं एवं थोक व्यापारियों के प्रति सेवायें
(Services to Producers and Wholesalers)

1. फुटकर व्यापारी निर्माताओं एवं थोक व्यापारियों के लिए विक्रयण में विशेषज्ञ की भाँति कार्य करता है और उनको अल्प मात्रा में बार–बार बिक्री करने की परेशानी से मुक्त करता है।
2. फुटकर व्यापारी उपभोक्ता की रूचि, फैशन, स्वभाव आदि का अध्ययन करके निर्माताओं तक उपभोक्ता माँग के सम्बन्ध में सूचनाएँ पहुँचताा है। उपभोक्ता की आवश्यकताओं एवं इच्छाओं के निर्धारण में फुटकर व्यापारी उपभोक्ता माँग विश्लेषक के रूप में कार्य करता है और वांछित जानकारी एवं माल के दोषों से निर्माताओं को अवगत करता है।
3. फुटकर व्यापारी स्थानीय विज्ञापनों, प्रदर्शनों (Displays) एवं वैयक्तिक विक्रय के जरिये निर्माताओं के माल की बिक्री को बढ़ाने एवं ब्रांड निष्ठा पैदा करने में सहयोग करता है। नव–निर्मित माल के विक्रय में भी फुटकर व्यापारी अनुपम सहयोग देते हैं।
4. फुटकर व्यापारी बड़ी मात्रा में खरीदे गये माल को उन छोटी इकाइयों में विभक्त करता है ताकि उपभोक्ता आवश्यकता के अनुसार क्रय कर सके। इस दष्टि से फुटकर व्यापारी निर्माताओं के पैकेजिंग एवं श्रेणीयन दायित्वों को पूरा करता है।
5. फुटकर व्यापारी अग्रिम माल की सुपुर्दगी लेकर अथवा आदेश देकर निर्माताओं एवं थोक व्यापारियों की जोखिम में कमी करता है।

उपभोक्ताओं के प्रति सेवायें
(Services to Consumers)

1. फुटकर व्यापारी का प्रमुख कार्य उपभोक्ताओं के क्रयण को यथासम्भव सुविधाप्रद एवं सरल बनाना हैं इस कार्य को सम्पन्न करने हेतु फुटकर व्यापारी नाना प्रकार की वस्तुएँ एक ही स्थान पर उपलब्ध करता है और उनके क्रय एजेन्ट के रूप में कार्य करता है।
2. फुटकर व्यापारी अपने यहाँ अनेक प्रतिस्पर्धी निर्माताओं का माल रखता है और विभिन्न रंगों, डिजायनों, किस्मों, एवं मूल्यों की वस्तुएँ उपभोक्ताओं के सम्मुख प्रस्तुत करता है। परिणामस्वरूप, उपभोक्ताओं को चयन सुविधा प्राप्त होती है।

---

[1] McCarthy, op. cit., p. 340

3. फुटकर व्यापारी उपभोक्ताओं को हर समय वस्तुओं की उपलब्धि की सेवा प्रदान करके संग्रहण की कठिनाइयों से बचाता है।
4. फुटकर व्यापारी उपभोक्ताओं को साख पर माल प्राप्त करने की सुविधा देकर वित्तीय प्रबन्धन में मदद करता है।
5. फुटकर व्यापारी गह सुपुर्दगी, मरम्मत, निःशुल्क परामर्श, वस्तु वापसी, गारन्टी आदि सेवाएँ–सुविधाएँ भी प्रदान करता है।
6. फुटकर व्यापारी ग्राहकों की माँग सम्बन्धी सूचनाएँ उपलब्ध कराता है, जिससे क्रय–निर्णयों से उनको सहायता मिलती है।
7. फुटकर व्यापारी गाड़ियाँ खड़ी करने, वस्त्र बदलने, टेलीफोन करने आदि की सुविधायें भी प्रदान करता है।

वहत् स्तरीय फुटकर व्यापार की प्रवत्तियाँ (Large Scale Retail Trends)

भारतीय फुटकर व्यापार भी दीर्घस्तरीय प्रवत्ति का अपनाने लगा है। अनेक शहरों में विभागीय भण्डार तथा श्रंखलाबद्ध दुकानें स्थापित हो चुकी हैं। डाक द्वारा व्यापार, उपभोक्ता सहकारी भण्डार, किराया–क्रय प्रणालियाँ तथा किस्त भुगतान पद्धतियाँ भी तेजी से प्रचलित हुई हैं। बड़े–बड़े शहरों में सुपर बाजार भी स्थापित किये जाने लगे हैं। किन्तु देश के विशाल क्षेत्रफल तथा जन–समूह को देखते हुए दीर्घ–स्तरीय फुटकर व्यापार का विकास वाँछित स्तरों तक नहीं पहुँच सका है। उदाहरण के लिए बम्बई, कलकत्ता कानपुर एवं मद्रास जैसे शहरों को छोड़कर अन्य शहरों में विभागीय भण्डार स्थापित नहीं हो सके हैं। श्रंखलाबद्ध दुकानें तथा निर्माताओं की शाखायें भी व्यापक स्तरों पर नहीं खुल सकी हैं। बाटा शू कम्पनी, ऊषा सिलाई मशीन, मफतलाल, डी. सी. एम, बाम्बे डाइंग आदि संस्थाओं ने इस क्षेत्र में अग्रणी कार्य किया है। सुपर बाजार तथा उपभोक्ता सहकारी भण्डार उल्लेखनीय प्रगति नहीं कर सके हैं।

वस्तुतः भारत में विक्रेता बाजारों की प्रमुखता बनी हुई है। योग्य प्रबन्धकों, पूँजी की कमी, निम्न शिक्षा स्तरों, निम्न आय, साख आवश्यकता, कीमत चेतना आदि घटकों ने दीर्घस्तरीय फुटकर विपणन के विकास की राह को रोका है। इतने पर भी समाज, सरकार एवं उत्पादकों का ध्यान ओर रूझान दीर्घ–स्तरीय फुटकर व्यापार की ओर बढ़ा है। दुनियाँ के सभी राष्ट्रों में दीर्घ–स्तरीय फुटकर व्यापार के विकास की प्रवत्ति परलिक्षित होती है। प्रत्येक देश में होने वाले फुटकर व्यापार का औसतन 60% व्यापार इन दीर्घ–स्तरीय फुटकर संस्थाओ द्वारा किया जाने लगा है। इंग्लैण्ड तथा अमेरिका में यह प्रतिशत 90 के आसपास है। दीर्घ–स्तरीय फुटकर व्यापार के विकास के रूप में निम्न कारणों को प्रमुख माना जा सकता हैः

1. **वहत्-स्तरीय उत्पादन :** प्रत्येक राष्ट्र में उत्पादन का पैमाना दिनोंदिन व्यापक होता जा रहा है और निर्माताओं तथा उपभोक्ताओं के बीच की दूरी बढ़ती जा रही है। इस दूरी को कम करने की आवश्यकता एवं चाह ने उत्पादकों एवं व्यावसायियों को दीर्घ–स्तरीय फुटकर व्यापार की ओर प्रोत्साहित किया है। यही कारण है कि अनेक निर्माताओं ने स्वयं की श्रंखलाबद्ध दुकानें, कारखानों के बाहर फुटकर दुकानें तथा अपनी फुटकर वितरण शाखाएँ स्थान–स्थान पर स्थापित करना शुरू कर दिया है।
2. **उत्पाद विविधीकरणः** वर्तमान में, प्रौद्योगिकी प्रगति ने न केवल उत्पादन के पैमाने को ही विशाल बनाया है, अपितु विद्यमान संस्थाओं की उत्पाद–पंक्तियों को भी काफी व्यापक तथा गहन बना दिया है। आज नाना प्रकार की उपभोग्य वस्तुएँ उपलब्ध होने लगी हैं। ग्राहक भी नवीन वस्तुओं की माँग करने लगे हैं। फलस्वरूप, फुटकर व्यापारियों के स्टॉक की मात्रा बढ़ने लगी है और वहत् पैमाने के फुटकर वितरण की प्रवत्ति का विकास होने लगा है।
3. **यातायात एवं संचार-सुविधाओं में अभिवद्धिः** यातायात एवं संचार–सेवाओं के द्रुतगामी होने एवं पर्याप्त रूप में उपलब्ध होने के कारण फुटकर व्यापारियों के लिए माल मंगाने का कार्य काफी सरल हो गया है। वर्तमान में, प्रतिस्पर्धा का सामना करने हेतु उत्पादक स्वयं फुटकर संस्थाओं तक माल पहुँचाने लगे हैं और उनके माल को स्टोर्स में स्थान देने का अनुरोध करने लगे हैं। इन सुविधाओं के कारण भी दीर्घ–स्तरीय फुटकर विपणन का विकास करने का अवसर मिला है। डाक द्वारा व्यापार के बढ़ने का कारण भी डाक सेवाओं में काफी वद्धि होना है।

4. **आबादी में वद्धि त था केन्द्रीयकरण की प्रवत्तिः** शहरों की जनसंख्या के बढ़ने के साथ–साथ बड़े पैमाने की फुटकर संस्थाओं का विकास भी होने लगा है। शहरों में जनसंख्या के केन्द्रीयकरण की प्रवत्ति ने आवागमन एवं व्यस्त जीवन की समस्याओं को जन्म देना शुरू किया है। परिणामस्वरूप, सुपर बाजार, विभागीय भण्डार जैसी दीर्घ–स्तरीय फुटकर संस्थाओं की आवश्यकता बढ़ने लगी है।

5. **वित्तीय सुविधाओं की उपलब्धि :** आधुनिक समय में पूँजी बहुत बड़ी एवं जटिल समस्या नहीं रही है। वित्तीय आवश्यकताओं की पूर्ति हेतु विशिष्ट संस्थाएँ एवं बैंक सहयोगार्थ आगे आ खड़े हुए हैं। सहकारी समितियों एवं उपभोक्ता सहकारी भण्डारों को सहकारी बैंक पर्याप्त ऋण उपलब्ध करने लगे है। सुपर बाजारों की स्थापना का दायित्व स्वयं सरकारें ग्रहण करने लगी हैं। इस प्रकार वित्तीय सुवधिाओं की अभिवद्धि ने फुटकर व्यापार को दीर्घ स्वरूप धारण करने को प्रोत्साहित किया है।

6. **बढ़ते हुए जीवन-स्तर एवं शिक्षण सुविधाएँः** वर्तमान में, अधिकांश सरकारें कल्याणकारी भूमिका का निर्वाह जोरों–शोरों से करने लगी है। परिणामस्वरूप, अशिक्षा, बेरोजगारी, असन्तुलित विकास जैसी समस्याओं को दूर करने के कार्यक्रम चलाये जाने लगे है। इन कार्यक्रमों से वर्तमान उपभोग स्तरों तथा प्रति व्यक्ति आय में बढ़ोत्तरी करना प्रारम्भ हो गया है जिससे एक ही स्थान पर नाना प्रकार की वस्तुओं की खरीद की प्रवत्ति को बढ़ावा मिला है और दीर्घस्तरीय फुटकर विपणन तेजी से बढ़ा है। शिक्षित–प्रशिक्षित व्यक्तियों के व्यवसाय में प्रवेश ने दीर्घ–स्तरीय फुटकर विपणन को बढ़ावा देना शुरू किया है ताकि वे ग्राहक सन्तुष्टि के साथ–साथ स्वंय की महत्वकांक्षाओं को आसानी से पूरा कर सकें।

7. **थोक मध्यस्थों की समाप्ति की नीतिः** थोक मध्यस्थों के प्रति वर्तमान में राष्ट्रीय सरकारों, निर्माताओं एवं समाज की बढ़ती घणा ने दीर्घस्तरीय फुटकर विपणन को बढ़ावा दिया है। सुपर बाजार, उपभोक्ता सहकारी भण्डार, श्रंखलाबद्ध दुकानें तथा निर्माता शाखाएँ थोक मध्यस्थों को प्रतिस्थापित करने का भरसक प्रयास कर रही है।

फुटकर व्यापार संरचना को प्रभावित करने वाले घटक
(Factors Influencing the Retail Structure)

फुटकर व्यापार संरचना सर्वाधिक गतिशील है और सतत् बदलती जा रही है। विपणन प्रबन्धक के लिए इन परिवर्तनों के कारणों की जानकारी करना आवश्यक है ताकि वह विपणन रीति–नीति को आवश्यकता के अनुसार बदल सके, भावी परिवर्तनों का पूर्वानुमान कर सके और उनका समना करने हेतु स्वयं को तैयार कर सके। फुटकर व्यापार संरचना, वस्तुतः उस कुल पर्यावरण का प्रतिबिम्ब होती है जिसमें हम रहते हैं। यही कारण है कि फुटकर व्यापार संरचना को प्रभावित करने वाले घटकों को हम निम्नलिखित दो भागों में विभक्त कर सकते हैंः

सामाजिक एवं वातावरणात्मक घटक
(Social and Environmental Factors)

जनसंख्या घनत्व, उसकी गतिशीलता, जीवन स्तर एंव सामाजिक प्रथाएँ मुख्यतः वे सामाजिक तथा वातावरणात्मक घटक है जो एक लम्बे समय से फुटकर व्यापार संरचना को प्रभावित करते आ रहे हैं। इन घटकों का संक्षिप्त विवेचन इस प्रकार हैः

(अ) **जनसंख्या घनत्व (Population Density):** प्रायः देखा गया है कि जहाँ जनसंख्या का घनत्व कम होता है, वहाँ विभिन्न वस्तुएँ बेचने वाले फुटकर भण्डार पाये जाते हैं। इसके विपरीत जनसंख्या के घनत्व के बढ़ने के साथ–साथ फुटकर भण्डार विशिष्टिकरण से अप्रभावित रही हैं और पिछले कुछ वर्षो से 'सिंगल लाइन स्टोर्स' की संख्या काफी बढ़ी है। किन्तु वर्तमान में पुनः 'मल्टीपल लाइन स्टोर्स' प्रचलित हो रहे हैं और इस प्रवत्ति के लिए यातायात की भीड़–भाड़, वाहन पार्किंग सुविधाओं का अभाव, वन स्टॉक शॉपिंग में वद्धि आदि को उत्तरदायी माना जा सकता है।

(ब) **जनसंख्या की गतिशीलता (Population Mobility):** फुटकर व्यापार संरचना के परिवर्तन का इतिहास बतलाता है कि गतिशीलता कम होने पर फुटकर संस्थाएँ केन्द्रीय व्यावसायिक जिलों में पनपी हैं तथा बढ़ी हैं। स्वयं के वाहनों बढ़ने पर शहर के बाहर फुटकर स्टोर्स स्थापित होने लगे हैं जबकि पहले ये स्टोर्स आबादी के बीच अथवा डाउन टाउन स्थिति में स्थापित होते थे। इसी प्रकार, यातायात की सुविधायें अधिक न होने की स्थिति में डाक द्वारा व्यापार गह गाँवों पर निर्भर थे, जबकि अब शहरों पर निर्भर होने लगे हैं।

(स) **जीवन स्तर (Standard of Living):** जीवन स्तर फुटकर व्यापार संरचना को विभिन्न प्रकार से प्रभावित करता है जिस समाज के सदस्यों का स्तर निम्न होता है उस समाज के सदस्यों की गतिशीलता में कमी हो जाती है क्योंकि वे सदस्य स्वयं की वाहन सुविधाओं का उपयोग करने की स्थिति में नहीं होते हैं। निम्न जीवन स्तर वाले समाज में गह उपकरणों का उपयोग भी कम होता है। खरीद थोड़ी मात्रा में बारम्बार करनी पड़ती है। इसलिए वहाँ के तथा फुटकर भण्डार आबादी के बीच तथा शीघ्र पहुँच योग्य स्थिति में स्थापित होते हैं। उच्च जीवन स्तर के कारण अमेरिका में रेफ्रिजरेटर्स में फ्रीजर कम्पार्टमेंट्स अधिक प्रचलित हैं। इस स्थिति में वहाँ की फुटकर व्यापार संरचना से द्वार–द्वार घूम कर बेचने वाले विक्रेता ज्यादा हैं।

(स) **सामाजिक प्रथायें (Social Customs):** सामाजिक प्रथायें भी फुटकर व्यापार संरचना को प्रभावित करती हैं। उदाहरण के लिए गहणियों द्वारा की जाने वाली खरीद की अभिवद्धित प्रवत्ति ने फ्रांस में विभागीय भण्डारों को जन्म दिया है।

प्रतिस्पर्धा
(Competition)

प्रतिस्पर्धा यद्यपि वातावरणात्मक घटकों में सम्मिलित होने वाला घटक है, किन्तु फुटकर व्यापार संरचना पर इसका विशिष्ट प्रभाव पड़ता है जिसे प्रायः नहीं पहचाना गया है। व्यवहार में, दो प्रकार की प्रतिस्पर्धायें परिवर्तन एजेन्टों का कार्य करती हैं। (i) एक सी फुटकर संस्थाओं के बीच की प्रतिस्पर्घा तथा (ii) विभिन्न फुटकर संस्थाओं के बीच की प्रतिस्पर्धा। सुपर बाजारों तथा सिंगल लाइन इन्डिपेण्डेण्ट ग्रोसरी स्टोर्स के बीच की प्रतिस्पर्धा दूसरे प्रकार की प्रतिस्पर्धा है और सुपर बाजारों के बीच की पारस्परिक प्रतिस्पर्धा पहले प्रकार की प्रतिस्पर्धा है। वस्तुतः प्रतिस्पर्धा ने फुटकर व्यापार संस्थानों को विभिन्न किस्म का माल रखने, ग्राहकों को अतिरिक्त सुविधायें देने, लाभ–मार्जिनों को कम करने तथा विभिन्न संवर्द्धन तरीकों को अपनाने पर बाध्य किया है। फलस्वरूप, फुटकर व्यापार संरचना का स्वरूप आकार नीतियाँ आदि में मूलभूत परिवर्तन हो गये हैं।

फुटकर व्यापार संरचना
(Retail Trade Structure)

विभिन्न राष्ट्रों में पायी जाने वाली फुटकर व्यापार संरचना का अध्ययन करने पर पता चलता है कि फुटकर व्यापार दीर्घ एवं लघु दोनों स्तरों पर किया जाता है और फुटकर व्यापार करने वाली प्रमुख संस्थायें निम्नलिखित हैं:–

1. **दीर्घ स्तरीय फुटकर विपणन संस्थायें (Large Scale Retail Marketing Institution):** इनमें विभागीय भण्डारों, श्रंखलाबद्ध दुकानों, सुपर बाजारों, डाक–व्यापार गहों आदि को सम्मिलित किया जा सकता है।
2. **लघुस्तरीय फुटकर विपणन संस्थायें (Small Scale Retail Marketing Institutions):** इनमें एक मूल्य वाली दुकानों, उचित मूल्य की दुकानों, उपभोक्ता भण्डारों आदि को सम्मिलित किया जा सकता हैं।

प्रमुख संस्थाओ का संक्षिप्त विवरण इस प्रकार हैः

(अ) विभागीय भण्डार
(Departmental Stores)

विभागीय भण्डारों को फैशन प्रेमी फ्रांस की देन माना गया है। सर्वप्रथम सन् 1850–52 के बीच पेरिस में सबसे पहला विभागीय भण्डार स्थापित हुआ था। तदुपरान्त योरोप के अन्य देशों एवं अमेरिका में इन भण्डारों की स्थापना तेजी से की जाने लगी। फ्रांस के बोन मार्क एवं लूअर तथा भारत के वाइट वे एण्ड लेडला स्टोर्स बम्बई, एम्पायर स्टोर्स, नई दिल्ली; आर्मी एण्ड नेवी स्टोर्स, मद्रास एवं कमाललया स्टोर्स, कलकत्ता विश्व प्रसिद्ध विभागीय भण्डार है। दीघस्तरीय फुटकर व्यापार संरचना में इनका विशेष महत्व है, किन्तु संख्या धीरे–धीरे कम होती जा रही है।

विभागीय भण्डार एक ही छत के नीचे विभिन्न प्रकार की वस्तुओं को फुटकर क्रय–विक्रय करने वाली संस्थायें हैं। एस. ई. थामस के शब्दों में, विभागीय भण्डार एक ऐसा बड़ा फुटकर संस्थान होता है जिसमें एक ही भवन में अनेक विभाग होते है।

तथा प्रत्येक विभाग एक विशेष प्रकार की वस्तु तक ही अपनी क्रियाओ कों सीमित रखता है तथा स्वयं में एक पूर्ण इकाई होता है। कंडिफ एवं स्टिल लिखते हैं कि "एक विभागीय भण्डार बड़ा फुटकर व्यापार करने वाली संस्था है जो विविध प्रकार की विशिष्ट एवं विक्रय–योग्य वस्तुओं को रखती है तथा संवर्द्धन, सेवा एवं नियन्त्रण के उद्देश्य से विभिन्न विभागों में संगठित की जाती है।"

प्रायः विभागीय भण्डारों की स्थापना कम्पनियों के रूप में की जाती है और संचालक मण्डल विभागीय प्रबन्धकों की सहायता से व्यवसाय का संचालन करता है। विभागीय भण्डारों में अनेक केन्द्रीय प्रबन्धक विभाग होते हैं जिनमें क्रय विभाग, विक्रय विभाग, कर्मचारी विभाग, लेखा विभाग, तकनीकी विभाग, सचिवालय तथा भवन निर्माण विभाग प्रमुख स्थान रखते हैं। विभागीय भण्डार की प्रबन्ध संरचना को निम्न चार्ट 13.1 से समझा जा सकता हैः

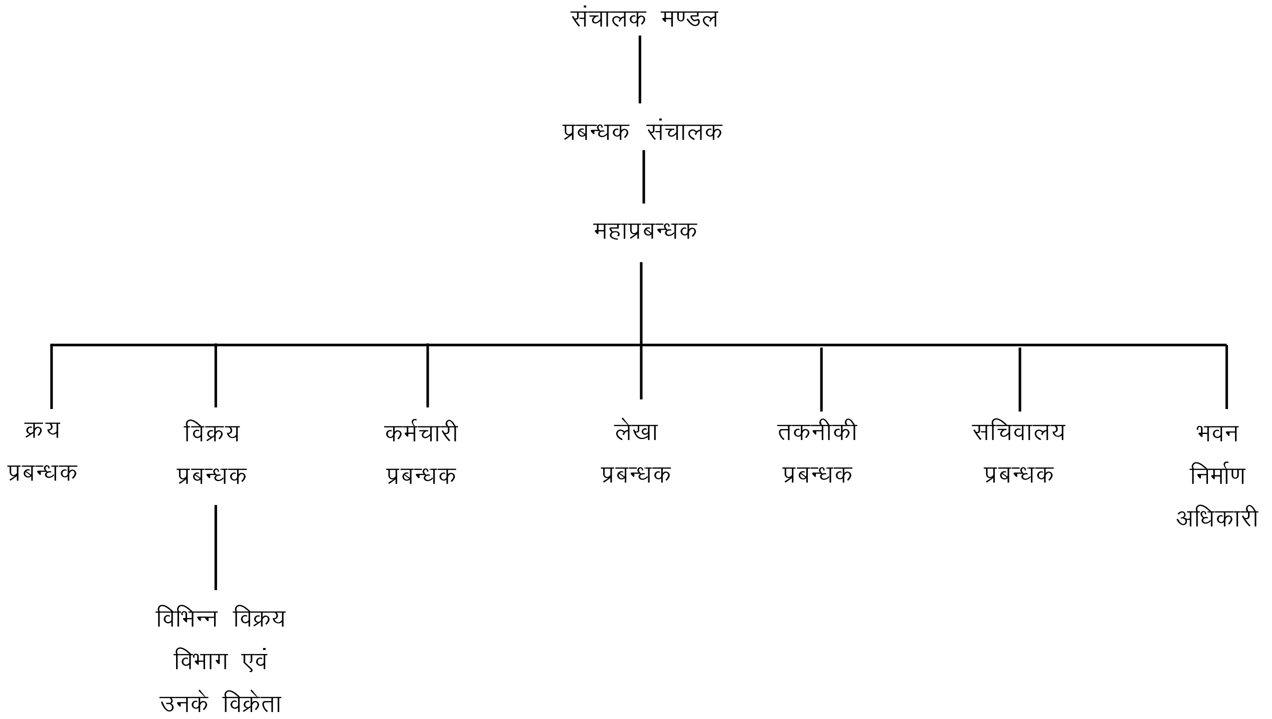

चित्र 13.1

विभागीय भण्डार वन–स्टॉप क्रय की सुविधा देने वाली संस्थायें होती हैं जहाँ सुई से लेकर हवाई जहाज तक खरीदा जा सकता है। इन भण्डारों द्वारा बेची जाने वाली वस्तुओं का क्रय बड़े पैमाने पर क्रय विभाग द्वारा किया जाता है। ये भण्डार विज्ञापन की सामूहिक विधि को अपनाते हैं और इनके विभिन्न विभागों द्वारा बेची जाने वाली वस्तुओं का सामूहिक विज्ञापन करते हैं। ये भण्डार काफी लम्बी–चौड़ी जगह को घेरते हैं और अपने ग्राहकों को कार पार्किंग, उद्यान भ्रमण, डाक–तार, सिनेमा, टेलीफोन, गह सुपुर्दगी आदि से सम्बद्ध सेवायें–सुविधायें उपलब्ध करते हैं। इन भण्डारों के काफी बड़े होने के कारण ग्राहकों के साथ वैयक्तिक सम्पर्क स्थापित नहीं हो पाते हैं। इसलिए साख–सुविधायें बहुत कम ग्राहकों को ही मिल पाती हैं। संचालनात्मक व्यय अधिक होने से इनकी वस्तुओं के विक्रय मूल्य प्रायः कुछ अधिक होते हैं। भारत में इन भण्डारों का भविष्य अधिक उज्जवल प्रतीत नहीं होता है, चूँकि अधिकांश भारतीय जनसंख्या गाँवों में रहती है ओर देशवासियों का जीवन–स्तर कम आय एवं बेरोजगारी के कारण ऊँचा नहीं हो पाया है।

(ब) श्रंखलाबद्ध दुकानें
(Chain Shops)

बहु विक्रय शालायें अथवा श्रंखलाबद्ध दुकानें "वहत् फुटकर व्यापार की एक ऐसी प्रणाली है जिसके अन्तर्गत एक ही स्वामित्वाधीन अनेक फुटकर दुकानें एक ही नगर अथवा देश के विभिन्न भागों में फैली होती है और एक–सी वस्तुओं का

क्रय–विक्रय समान मूल्यों पर करती है। पी. डी. कनवर्स के शब्दों में, "एक ही स्वामित्व तथा प्रबन्ध के अन्तर्गत चलने वाली अनेक फुटकर दुकानें, श्रंखलाबद्ध दुकानें कहलाती हैं।" इन दुकानों की मुख्य विशेषताओं में निम्न बातों को सम्मिलित किया जा सकता है:–

1. ये दुकानें सीधे ही अन्तिम उपभोक्ताओं को सामान्य उपभोग से सम्बद्ध माल का विक्रय करती हैं।
2. इन दुकानों द्वारा बेची जाने वाली वस्तुयें प्रमापित व एकरूपता होती हैं तथा जिनका मूल्य राष्ट्रीय सीमाओं में एक–सा होता है।
3. ये दुकानें ले–आउट, वस्तु सजावट, विक्रय नीति तथा बाह्य रूप में एक समान होती हैं।
4. इन दुकानों का प्रबन्ध एंव स्वामित्व केन्द्रित होता है।
5. इन दुकानों पर नकद विक्रय होता है।

विभागीय भण्डारों की भांति इन दुकानों की स्वामित्व संरचना संयुक्त पूँजी वाली कम्पनियों की होती है। विभिन्न स्थानों पर चलने वाली दुकानें केन्द्रीय नीति निर्देशन के अनुसार अपने कार्यों को सम्पन्न करती है। विभिन्न दुकानों पर बिकने वाले माल, हुए व्ययों तथा माल के स्टॉक का विवरण उनके व्यवस्थापकों द्वारा केन्द्रीय कार्यालय पर भेजा जाता है तथा हुयी बिक्री से प्राप्त धन बैंक में जमा कराना पड़ता है। इन दुकानों के निरीक्षण के लिए क्षेत्रिय व्यवस्थापक एवं उनके अधीन अनेक निरीक्षक होते हैं। श्रंखलाबद्ध दुकानों की संगठन व्यवस्था को चित्र 13.2 से प्रदर्शित किया जा सकता है।

यद्यपि श्रंखलाबद्ध दुकानों की व्यवस्था विभागीय भण्डारों के समान होती है, फिर भी उनकी विपणन नीतियों, उत्पाद रेखाओं, विज्ञापन कार्यक्रमों, उनके द्वारा उपलब्ध की जाने वाली सेवाओं व सुविधाओं में काफी अन्तर होता है। इनके बीच के प्रमुख अन्तर निम्नलिखित हैं।

1. विभागीय भण्डार काफी बड़े शहरों में स्थापित होते हैं और प्रायः एक नगर में एक ही भण्डार स्थापित किया जाता है, जबकि श्रंखलाबद्ध दुकानें हर छोटे–बड़े नगर में स्थापित की जाती है और प्रायः एक नगर में एक से अधिक दुकानें देखने को मिलती हैं।

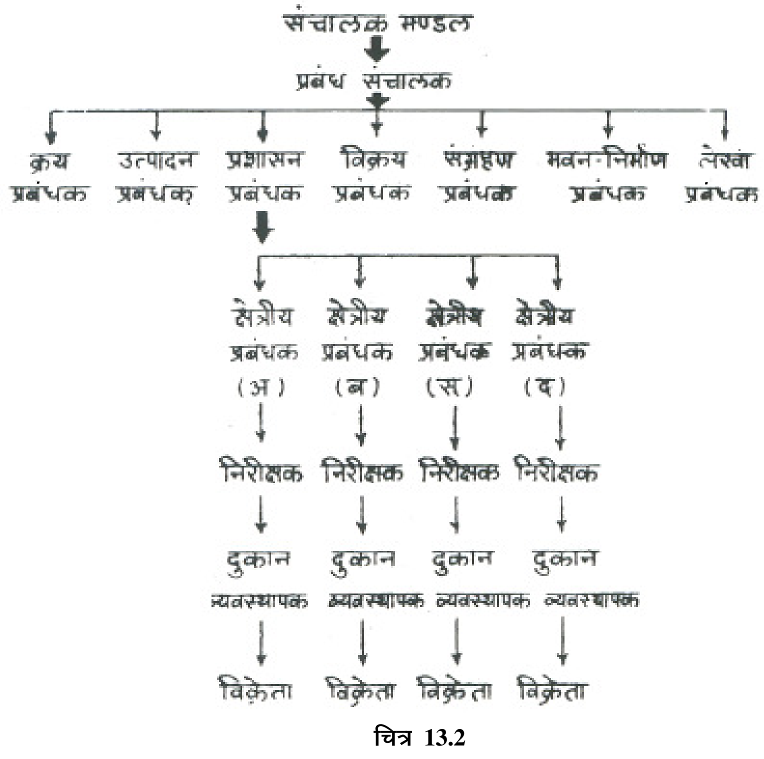

चित्र 13.2

2. विभागीय भण्डार नाना प्रकार की प्रमापित एवं अप्रमापित वस्तुओं का क्रय–विक्रय करते हैं जबकि शृंखलाबद्ध दुकानें केवल कुछेक वस्तुओं का ही विक्रय करती हैं।
3. विभागीय भण्डार ग्राहकों को अपने नजदीक बुलाते हैं जबकि शृंखलाबद्ध दुकानें ग्राहकों तक पहुंचती हैं।
4. विभागीय भण्डार बहुत कम पैमाने पर साख–सुविधायें देते हैं जबकि शृंखलाबद्ध दुकानें बिल्कुल नहीं देती हैं।
5. विभागीय भण्डारों में प्रत्येक विभाग स्वयं का लाभ–हानि खाता तैयार करता है। जबकि शृंखलाबद्ध दुकानों के लाभ–हानि खाते उनके केन्द्रीय कार्यालयों में तैयार होते हैं।
6. विभागीय भण्डारों के विज्ञापन स्थानीय होते हैं जबकि शृंखलाबद्ध दुकानों के विज्ञापन राष्ट्रीय स्तर के होते हैं।
7. शृंखलाबद्ध दुकानों की अपेक्षा विभागीय भण्डार ग्राहकों को नाना प्रकार की सुविधायें पर्याप्त मात्रा में उपलब्ध करते हैं। उदाहरण के लिए कार पार्किंग, गह सुपुदर्गी, डाक–तार, चलचित्र, पुस्तकालय, उद्यान आदि की सुविधायें शृंखलाबद्ध दुकानें उपलब्ध नहीं कर पाती हैं।
8. विभागीय भण्डारों के द्वारा बेची जाने वाली वस्तुओं की कीमतें शृंखलाबद्ध दुकानों पर बेचे जाने वाले माल की कीमतों की अपेक्षा अधिक होती हैं।

भारत में श्रृंखलाबद्ध दुकानों का प्रचलन काफी बढ़ा है। किन्तु देश की विशालता, पूँजी एवं प्रबन्ध योग्यताओं की कमी, विश्वसनीय विक्रेताओं का अभाव, अशिक्षा आदि घटक इनके विस्तार के मार्ग में बाधा बन रहे हैं। फिर भी ऊषा कम्पनी, बाटा, शू कम्पनी, एल्गिन मिल्स, डी.सी.एम. आदि ने अपनी सैंकड़ों श्रृंखलाबद्ध दुकानें देश के विभिन्न स्थानों पर स्थापित की हैं और ग्राहकों का विश्वास अर्जित किया है।

(स) सुपर बाजार
(Super Bazars)

भारत में प्रचलित सुपर बाजारों का स्वरूप पाश्चात्य देशों के विभागीय भण्डारों से मिलता–जुलता है। किन्तु 'स्वयं सेवा' तथा मूल्यों में अन्तर को देखकर ग्राहकों का पता चलता है कि वे सुपर बाजार में 'चिन्तामणी', 'सहकारी मण्डली', 'सस्ता बाजार', 'जनता बाजार', 'अपना बाजार', 'मिला–जुला भण्डार' एवं 'सहकारी बाजार' भी कहा जाता है। ये बाजार जनता एवं राज्य दोनों के सहयोग के आधार पर चलाये जाते हैं। ये बाजार भी एक ही छत के नीचे अनेक दुकानों के रूप में होते हैं तथा डाक–तार, होटल, घूमने–बैठने आदि की सुविधाओं से युक्त होते हैं। ग्राहक इन बाजारों में प्रवेश करते हैं, अपनी पसन्द की वस्तु स्वयं उस पर लगी अथवा पास में रखी कीमत स्लिप को देखकर चुन लेते हैं और हैंडकार्ट पर रखकर काउन्टर कलर्क के पास ले आते हैं। काउन्टर क्लर्क बिल बना देता है, भुगतान ले लेता है, और सामान पैक करवा देता है। इस प्रकार, सुपर बाजार 'स्वयं सेवा' पर संचालित होने वाली संस्थाएँ हैं जो खाद्य पदार्थ, किराने का सामान, सूखे मेवे, मांस–फल, तरकारियाँ, बेकरी, डेरी उत्पाद, सौन्दर्य प्रसाधन आदि सामानों का विक्रय करती है। इन बाजारों का विकास अमेरिका में विश्वव्यापी मन्दी के काल में हुआ था। भारत में इस समय 100 से ऊपर, इंग्लैण्ड में 1,700 से ऊपर, जापान में 2,500 से ऊपर सुपर बाजार स्थापित हो चुके हैं। हमारे यहाँ पिछले 18 वर्षों में ही इनका प्रचलन प्रारम्भ हुआ है।

सुपर बाजार की प्रमुख परिभाषाएँ निम्नानुसार हैं–

1. **कंडिफ एवं स्टिल** के अनुसार, ''सुपर बाजार बड़े पैमाने पर फुटकर व्यापार करने वाली व्यापारिक इकाई है जो मुख्यतः खाद्य तथा किराणा वस्तुओं का कम लाभ पर व्यापार करती है, स्वयं–सेवा के आधार पर वस्तुओं का विक्रय करती है, और वस्तुओं पर विशेष ध्यान देती है।''
2. **स्टेन्टन** के अनुसार, ''सुपर बाजार बड़े पैमाने की विभागीय फुटकर व्यापारिक संस्था है जो विभिन्न प्रकार की वस्तुओं में व्यापार करती है और जो मुख्यतः स्वयं सेवा के सिद्धान्त के आधार पर न्यूनतम ग्राहक–सेवाओं के साथ चलायी जाती है। ये संस्थाएँ समान मूल्य नीति अपनाती हैं और प्रायः गाड़ी खड़ी करने हेतु पर्याप्त साधन उपलब्ध करती हैं।''

'स्वयं सेवा', 'मिश्रित स्वामित्व', राजकीय सहायता, खाद्य एवं किराणा वस्तुओं की बिक्री, न्यूनतम ग्राहक सेवाएँ, क्रय पर बोनस आदि सुपर बाजारों की वे प्रमुख विशेषताएँ हैं जो विभागीय भण्डारों में नहीं हैं। ये बाजार तभी सफलतापूर्वक फुटकर वितरण कर सकते हैं जबकि बेची जाने वाली वस्तुओं का चयन सावधानी से किया जाये, स्थान आसानी से पहुंच–योग्य हो, और ये बाजार अध्ययन वत्त विचार–विमर्श कार्यक्रम, सांस्कृतिक कार्यक्रम, गह विज्ञान प्रशिक्षण आदि की सेवाएँ उपलब्ध करें। भारत में इन बाजारों का भविष्य काफी उज्जवल है।

(द) डाक द्वारा व्यापार
(Mail Order Business)

केनन एवं विचर्ट के अनुसार, ''डाक द्वारा व्यापार वह व्यवसाय है जिसमें डाक द्वारा आदेश प्राप्त किये जाते हैं, तथा माल की सुपुर्दगी डाक या पार्सल से की जाती है। ''नाईस्ट्रोम लिखते हैं कि ''डाक के माध्यम द्वारा व्यवसाय वह व्यवसाय है जिसमें सूची पत्र से माल बेचा जाता है।'' एस. ई. थॉमस का विचार है कि ''क्रेता के दष्टिकोण से डाक द्वारा खरीद को डाक द्वारा व्यापार कहा जाता है।''

डाक द्वारा व्यापार करने के लिए न तो अत्यधिक माल का स्टॉक रखने की जरूरत होती है और न दुकान ही खोलने की जरूरत होती है। इस व्यापार को करने के लिए ग्राहकों की सूची तैयार करनी पड़ती है और विक्रय साहित्य एवं अन्य सम्बर्द्धन विधि यों के जरिये उन्हें खरीद हेतु प्रोत्साहित करना पड़ता है। यह ज्ञातव्य है कि डाक द्वारा व्यापार सामान्यतः प्रमापित, टिकाऊ हल्की, वर्णन योग्य, अधिक कीमत वाली (वजन की तुलना में) वस्तुओं का ही किया जा सकता है। डाक द्वारा व्यापार की सफलता ईमानदारी, यथाशीघ्र सही सुपुर्दगी तथा ग्राहकों की नवीनतम व व्यापक सूची पर निर्भर करती है। अनेक निर्मातागण अपने यहाँ डाक विभाग के जरिये भी सीधे ही उपभोक्ताओं की जरूरतों को पूरा करने लगे हैं। भारत में यह व्यवसाय अभी व्यापक स्तर पर प्रारम्भ नहीं हो सका है। कारण कि डाक सेवाएँ पूरे देश में न्यूनतम लागतों पर उपलब्ध नहीं हैं, अशिक्षितों की संख्या अधिक है तथा धोखाधड़ी ज्यादा है।

(य) उपभोक्ता सहकारी भण्डार
(Consumer Cooperative Stores)

मध्यस्थ वितरण श्रंखला के शोषण से बचने के लिए सहकारी–व्यवस्था का उदय एवं विस्तार समूचे विश्व में व्यापक पैमाने पर हो चुका है होता जा रहा है। उपभोक्ता सहकारी सिद्धान्तों के आधार पर स्थापित किये जाते हैं जो कि 'स्वयं क्रेता तथा स्वयं विक्रेता' की शक्ल में होते हैं। प्रो. राव लिखते हैं कि, ''सहकारी उपभोक्ता भण्डार उपभोक्ताओं का एक स्वैच्छिक आर्थिक संघ है जिसका प्रबन्ध उपभोक्ताओं द्वारा जनतांत्रिक ढंग से उनकी घरेलू उपयोग सम्बन्धी वस्तुओं एवं सेवाओं को प्रदान करने के लिए किया जाता है।''

इन भण्डारों की स्थापना के प्रमुख उद्देश्य निम्नलिखित माने गये हैं–

1. सदस्यों तथा अन्य उपभोक्ताओं को सस्ता किन्तु, उत्तम किस्म का माल उपलब्ध करना।
2. मध्यस्थों के शोषण से उपभोक्ताओं को बचाना तथा उनकी क्रय–शक्ति में वद्धि करना।
3. बढ़ती हुई कीमतों की रोकथाम में तथा नियन्त्रित व दुलर्भ वस्तुओं के वितरण में सहयोग करना।
4. पूँजीवादी अर्थव्यवस्थाओं के दूषित वितरण तन्त्र को समाप्त करना।

इन भण्डारों की मुख्य विशेषताओं में निम्न को सम्मिलित किया जा सकता है–

1. एक सदस्य का एक वोट होता है, उसने भले ही कितने अंश लिये हों।
2. सदस्यता सबके लिए खुली होती है।
3. लाभ को वितरण सदस्यों के बीच उनकी खरीद के अनुपात में बाँट दिया जाता है। भारत में लाभ का वितरण सदस्यों के द्वारा खरीदे गये अंशों के अनुपात में किया जाता है।

4. सदस्य अंश हस्तान्तरण अन्य शक्तियों को नहीं कर सकते। अंशों को पुनः भण्डार को ही लौटाना पड़ता है।
5. उपभोक्ता स्वयं इन भण्डारों का संचालन प्रतिनिधि व्यवस्था के आधार पर करते हैं।

भारत में उपभोक्ता सहकारी भण्डारों की प्रगति सरकारों व गैर–सरकारी प्रयासों के बावजूद भी काफी धीमी रही है। पूँजी की कमी, आस्था व सद्भाव का अभाव, प्रबन्ध कुशलता की कमी, समन्वय की अनुपस्थिति, सीमित व्यापार क्षेत्र, निरीक्षण व अंकेक्षण की शिथिल नीति, स्वार्थपूर्ण संचालन, ऊपरी व्ययों का भार, शक्तिशाली थोक व केन्द्रीय भण्डारों की कमी आदि घटक इन भण्डारों की प्रगति के अवरोधक समझे गये हैं। ये भण्डार तभी सफलतापूर्वक कार्य कर सकते हैं और अपनी पग्रति को सन्तोषजनक बना सकते हैं, जबकि निम्नलिखित सुझावों के क्रियान्वयन पर ध्यान दें–

1. उपभोक्ता सहकारी भण्डारों को निर्माताओं से माल क्रय करना चाहिए।
2. इन भण्डारों पर बेची जाने वाली वस्तुएँ सदस्यों की आवश्यकताओं के अनुरूप होनी चाहिए तथा किस्म श्रेष्ठ होनी चाहिए।
3. इन भण्डारों द्वारा अपने सदस्यों को उधार विक्रय, नकद खरीद पर छूट तथा अन्य सुविधाएँ दी जानी चाहिए ताकि वे अधिकाधिक क्रय हेतु प्रोत्साहित हो सकें।
4. इन भण्डारों को सरकारी संरक्षण, वित्तीय अंकेक्षण एवं प्रशिक्षण सम्बन्धी कठिनाइयों को दूर करने हेतु उपलब्ध किया जाना चाहिए।
5. इन भण्डारों के हिसाब–किताब की जाँच नियमित एवं सही तरीके से की जाती रहनी चाहिए, ताकि होने वाले घोटोलों आदि की रोकथाम की जा सके।
6. इन भण्डारों के सुसंचालन हेतु जाँच, निरीक्षण एवं पर्यवेक्षण की उचित पद्धति कायम की जानी चाहिए, ताकि साधनों का दुरुपयोग न हो सके, बेईमानी व मिलावट आदि को रोका जा सके। ऐसा करने पर जनता का विश्वास ये भण्डार प्राप्त कर सकेंगे।
7. इन भण्डारों की प्रबन्ध व्यवस्था किसी एक व्यक्ति को नहीं सौंपी जानी चाहिए, बल्कि एक प्रबन्ध समिति बनाकर भण्डारों का कार्य चलाया जाना चाहिए। इन भण्डारों के प्रबन्धकों को पर्याप्त स्वायत्ता भी दी जानी चाहिए।

भावी फुटकर व्यापार की तस्वीर
(Future Retail Trade Patterns)

यह बात निश्चितता के साथ कही जा सकती है कि भावी फुटकर व्यापार संरचना वर्तमान फुटकर व्यापार संरचना की तुलना में बिल्कुल भिन्न होगी। परिवर्तन का चक्र जिस तेज गति से चल रहा है, उसको देखते हुए तो यह प्रतीत होता है कि वर्तमान फुटकर व्यापार संरचना अगली एक शताब्दी में ही समाप्त हो जायेगी। उदाहरण के लिए विभागीय भण्डार 75 वर्ष की अवधि में ही परिपक्वता की स्थिति पर पहुंच गये हैं। पाश्चात्य देशों में सुपर मार्केट्स भी परिपक्वता की अवस्था पर पहुंच गये हैं। इसी प्रकार, वेरायटी स्टोर्स जो कि विभागीय भण्डारों के बाद आये हैं 50 वर्षों की अवधि में ही परिपक्वता की स्थति में पहुँच चुके हैं।

ई. बी. वीस (E.B.Weiss) जो कि फुटकर व्यापार क्षेत्र के एक अधिकारी विद्वान हैं, का कहना है कि निकट भविष्य में निम्न फुटकर संस्थायें प्रचलित होंगी, जिनमें से कुछ तो विकास पर हैं–

1. जमीन्दोज पाइप लाइन्स घरों तक भोजन पहुंचाने के लिए बिठायी जायेंगी। यह वैसे ही सम्भव होगा कि अभी गैस तथा ऑयल (विदेशों में तथा हमारे यहाँ बम्बई में सीमित क्षेत्र में) पाइप लाइन्स पहुँचाती हैं।
2. पूर्णतः स्वचालित, व्यक्ति रहित स्टोर्स स्थापित होंगे।
3. क्लोज्ड सर्किट टेलिविजन के जरिये खरीद प्रारम्भ होगी।
4. गोदामों से Touch-tone Telephone के जरिये सीधी खरीद प्रोत्साहित होगी।
5. स्टोर्स तक कारों या वाहनों में बैठे–बैठे खरीद शुरू होगी।

6. इलेक्ट्रॉनिक शॉपिंग (जिसमें ग्राहक टेलीविजन पर वस्तुएँ देख सकेगा और Touch-tone Telephone के जरिये जो कि कम्प्यूटर से बंधा होगा, वस्तुएँ क्रय करने हेतु आदेश दे सकेगा) प्रारम्भ होगी।

इन उपर्युक्त वर्णित प्रवत्तियों की दिशा में अनेक प्रयोग चल रहे हैं और निकट भविष्य में इनकी सफलता एवं विस्तार हमारी फुटकर व्यापार संरचना को आमूल–चूल रूप से परिवर्तित करेगा, इसमें सन्देह नहीं है। विपणन प्रबन्धकों को चाहिए कि वे इन भावी परिवर्तनों के प्रति स्वयं को तैयार करें।

अध्याय-14
भौतिक वितरण
(Physical Distribution)

भौतिक वितरण का अर्थ
(Meaning of Physical Distribution)

जब एक निर्माता वितरण माध्यम चुन लेता है और विक्रेताओं की नियुक्ति कर लेता है तो उसके समक्ष एक समस्या यह आती है कि वस्तुओं को एक स्थान से दूसरे स्थान पर किन साधनों से भेजा जाय? कहाँ–कहाँ पर भण्डार गह बनाये जायें। आदेशों की पूर्ति शीघ्रता से किस प्रकार की जाय जिससे कि वस्तु को (१) कम–से–कम लागत पर, व (२) कम–से–कम समय में भेजा जा सके। यह सभी वस्तुओं के भौतिक वितरण से सम्बन्धित हैं। भौतिक वितरण के सम्बन्ध में प्रमुख विद्वानों की परिभाषाएँ निम्नलिखित हैं–

१. **प्रो० स्टाण्टन** के अनुसार, "वस्तुओं के भौतिक बहाव का प्रबन्ध और बहाव प्रणाली की स्थापना एवं उसका संचालन भौतिक वितरण में शामिल है।"[1]

२. **प्रो० कण्डिफ व स्टिल** के मत में, "वस्तुओं की उत्पत्ति के बाद लेकिन उपभोग से पहले उसका वास्तविक रूप में एक स्थान से दूसरे स्थान पर जाना व संग्रह करना भौतिक वितरण में आता है।"[2]

३. **मैकार्थी** के शब्दों में, "वैयक्तिक फर्मों के भीतर एवं वितरण प्रणालियों के साथ–साथ माल का वास्तविक उठाना–धरना एवं संचालन भौतिक वितरण है।"[3]

वास्तव में, तीनों विद्वानों का मत एक जैसा है। वस्तुएँ एक स्थान से दूसरे स्थान पर जाती हैं इसको वे भौतिक बहाव या वितरण कहते हैं। लेकिन इस वितरण की शुरूआत कब होती है? इसका उत्तर है उसके उत्पादन के बाद। लेकिन अब दूसरा प्रश्न उठता है कि यह भौतिक वितरण कब तक चलेगा? इसका उत्तर है कि जब तक उसका उपभोग नह हो जाता। जिन प्रणालियों से वस्तु का वितरण होता है वे सभी भौतिक वितरण के अर्थ में शामिल हैं।

संक्षेप में, "भौतिक वितरण व्यावसायिक सम्भरण का विज्ञान है, जिसके द्वारा सही प्रकार की वस्तु सही मात्रा में उस स्थान पर उपलब्ध की जाती है जहाँ उसके लिए माँग उस समय पर विद्यमान हो। इस दष्टि से विचार करते हुए भौतिक वितरण निर्माण और माँग सजन के बीच की महत्वपूर्ण कड़ी है।" [4]

---

[1] "Physical distribution involves the management of the physical flow of products and the establishment and operation of flow system."

—Stanton : *Fundamentals of Marketing,* p. 392.

[2] "Physical distribution involves the actual movement and storage of goods after they are produced and before they are consumed."

—Cundiff & Still : *Basic Marketing,* p. 344.

[3] "Physical distribution is the actual handling and moving of goods within individual firms and along channel systems."

—McCarthy : *Basic Marketing,* p. 391.

[4] "In essence, physical distribution is the science of business logistics whereby the proper amount of the right kind of product is made available at the place where demand for it exists. Viewed in this light, physical distribution is the keylink between manufacturing and demand creation."

—Wendell M. Stewart : quoted from *Principles of Marketing,* Richard Buskrik, p. 403.

भौतिक वितरण के उद्देश्य या उपयोगिता (Objectives or Utility of Physical Distribution)

आज के व्यापारिक जगत में वस्तुओं के भौतिक वितरण की उपयोगिता बहुत अधिक है। एक क्रेता जब कभी भी वस्तु चाहता है तो उसे वस्तु तुरन्त ही मिलनी चाहिए। यदि इस प्रकार की सेवाओं का उपयोग वितरण के लिए किया गया तो एक निर्माता की ख्याति में वद्धि होगी और उसके ग्राहकों को सन्तुष्टि होगी। लेकिन इसमें वितरण–व्यय कम–से–कम होने चाहिए जिससे कि क्रेता को वस्तु कम लागत पर मिल सके।

एक वस्तु की वितरण लागत उस वस्तु बाजार को सीमित कर देती है। अतः आवश्यकता इस बात की है कि परिवहन प्रबन्ध किया जाय, उपलब्ध सेवाओं का अधिकतम उपयोग किया जाय और वितरण–लागत को घटाया जाय। व्यवसाय में भौतिक वितरण का उपयोग विभिन्न प्रकार से किया जा सकता है–

१. **उत्पादन एवं उपभोग के सामंजस्य में (Adjustment of Production and Consumption):** भौतिक–वितरण उत्पादन एवं उपभोग में सामंजस्य स्थापित करके माँग व पूर्ति में सन्तुलन स्थापित करता है। भण्डार सुविधाएँ मौसमी उपभोग को सहायता प्रदान करती हैं और वर्ष भर उत्पादन बनाये रखने में सहयोग देती हैं, जैसे ऊनी माल का उत्पादन वर्ष भर होता रहता है लेकिन उसका उपभोग सर्दियों में ही होता है। इसी प्रकार मौसमी उत्पादन को भण्डारों की सहायता से रोक कर वर्ष भर के उपभोग के लिए काम में लाया जा सकता है। उदाहरण के लिए, गेहूँ का उत्पादन रबी की फसल पर ही होता है लेकिन उसका उपभोग भण्डार सुविधाओं की सहायता से वर्ष भर किया जाता है।

   इसी प्रकार भौतिक वितरण माँग व पूर्ति के स्थानों को मिलाता है अर्थात् जिस स्थान पर वस्तुओं का निर्माण होता है उस स्थान से उपभोग वाले स्थान पर वस्तुओं को भौतिक वितरण के माध्यम से ही पहुँचाया जाता है। नाशवान वस्तुओं को भी वातानुकूलित भण्डारों में रखकर माँग वाले स्थानों तक पहुँचाया जा सकता है। अधिकांश वस्तुओं का उत्पादन माँग से पूर्व ही किया जाता है; जैसे, दीपावली पर खील, खिलौने, बर्तन, आदि की बिक्री खूब होती है लेकिन उनका उत्पादन तो बहुत पहले किया जाता है।

२. **मूल्यों के स्थिरीकरण में (Stabilization of Prices):** भौतिक वितरण की सुविधाएँ मूल्य स्थिरीकरण में सहायता प्रदान करती हैं। एक निर्माता अपने माल को उस समय तक अपने गोदाम में रखकर प्रतीक्षा कर सकता है जब तक मूल्य उसके हित में नह आ जाते और एक बार मूल्य आ जाने पर वह मूल्य स्थिरीकरण भी कर सकता है।

३. **स्टॉक का आकार (Size of Inventory):** भौतिक वितरण सुविधाएँ स्टॉक के आकार को प्रभावित करती हैं। यदि सुविधाएँ उपलब्ध हैं तो स्टॉक एक बड़ी मात्रा में रखा जा सकता है। निर्माता के पास बड़ी मात्रा का स्टॉक विक्रेता को यह सुविधा प्रदान करता है कि वे अपनी सुविधानुसार क्रय कर सकते हैं।

४. **क्रय पर प्रभाव (Influence on Buying):** भण्डार सुविधाओं का प्रभाव क्रय पर पड़ता है। यदि प्रबन्ध के पास भण्डार सुविधाएँ पर्याप्त मात्रा में हैं तो उनके द्वारा बड़ी मात्रा में क्रय करके लाभों को प्राप्त किया जा सकता है।

५. **मध्यस्थों को निश्चित करना (Determination of Channels):** प्रबन्धकीय निर्णय वितरण माध्यम को निश्चित करते हैं। उदाहरण के लिए, यदि कोई निर्माता यह निर्णय लेता है कि स्टॉक को रखने के लिए भिन्न–भिन्न स्थानों पर सार्वजनिक गोदामों की सेवाओं की सहायता ली जायेगी तो इसका अर्थ यह होता है कि अब निर्माता को अपने स्वयं के गोदामों की स्थापना नह करनी होगी। इसी प्रकार, यदि प्रबन्धकीय निर्णय यह है कि शाखाएँ खोली जायें, तो इसका अर्थ यह है कि वितरण माध्यम सीधा होगा और उपभोक्ता तक प्रत्यक्ष में ही पहुँच जायेगा जिसके लिए गोदामों की व्यवस्था करनी होगी।

६. **वस्तु नियोजन पर प्रभाव (Effect on Product Planning):** किसी भी वस्तु के नियोजन पर उसके भौतिक वितरण का प्रभाव पड़ता है। माल जिस परिवहन साधन से भेजा जाता है उसका पैकिंग भी उसी अनुरूप करना पड़ता है। उदाहरण के लिए, यदि माल हवाई जहाज से जायेगा तो इस बात को ध्यान में रखकर पैकिंग किया जायेगा कि वह अधिक भारी न हो तथा उसका आकार भी अधिक बड़ा न हो क्योंकि जहाज का किराया, वजन व आकार दोनों पर आधारित होता है।

भौतिक वितरण का उत्तरदायित्व
(Responsibility of Physical Distribution)

वस्तुओं का भौतिक वितरण करने का उत्तरदायित्व संस्था के मालिक का होता है लेकिन जिन संस्थाओं का आकार बड़ा होता है वहाँ यह कार्य निम्न तीन में से किसी एक के उत्तरदायित्व में दिया जाता है–

१. **समिति (Committee):** अमेरिका में अधिकांश कम्पनियाँ एक समिति बनाती हैं और इसके सदस्य उन सभी विभागों के प्रमुख अधिकारी होते हैं जो वस्तु के भौतिक वितरण में सहायक होते हैं; जैसे, विक्रय–प्रबन्धक, परिवहन प्रबन्ध, स्टॉक–नियन्त्रण प्रबन्धक। इस समिति का उत्तरदायित्व होता है कि कार्यकुशलता बढ़ाने, वितरण लागत कम करने व उन सभी अधिकारियों के कार्यों में तालमेल बिठाने के लिए समय–समय पर मिलती रहें, वर्तमान नीतियों का मूल्यांकन करती रहें, और आवश्यक हो तो उन नीतियों में परिवर्तन करती रहें, जिससे उपभोक्ता सेवा को अच्छा बनाया जा सके व प्रतियोगिता का सामना किया जा सके।

२. **विभाग (Department):** उत्तरदायित्व को निभाने का दूसरा रास्ता एक विभाग की स्थापना है जो वस्तुओं को उपभोक्ता तक पहुँचाने का उत्तरदायित्व अपने ऊपर लेता है। यह विभाग अन्य विभागों से स्वतन्त्र होता है।

३. **विपणन संचालक (Marketing Director):** कुछ संस्थाएँ भौतिक वितरण के उत्तरदायित्व के लिए न तो कोई समिति बनाती हैं और न कोई विभाग बल्कि विपणन विभाग के मुख्य अधिकारी को ही यह कार्य सौंप देते हैं। यह अधिकारी विभिन्न संस्थाओं में विभिन्न नामों से पुकारे जाते हैं; जैसे, कह इनको विपणन संचालक कहते हैं तो कह विपणन प्रबन्धक।

भारत में भौतिक वितरण में उत्तरदायित्व को निभाने के लिए अलग से न तो समिति ही पायी जाती है और न विभाग। यहाँ विक्रय–विभाग जो कि विपणन–विभाग का एक अंग है, इन उत्तरदायित्वों को भी पूरा करता है।

भौतिक वितरण का विपणन माध्यम से सम्बन्ध
(Relationship of Physical Distribution to Marketing Channels)

भौतिक वितरण की नीतियों का सम्बन्ध वितरण माध्यम से है। कोई भी वस्तु उत्पादन के स्थान से उपभोग के स्थान तक विपणन माध्यमों से होती हुई पहुँचती है। इसके लिए निर्माता एवं मध्यस्थ दोनों के द्वारा ही स्टॉक रखा जाता है। उपभोक्ता अपनी आवश्यकता की वस्तुएँ फुटकर विक्रेता से क्रय करता है और फुटकर विक्रेता थोक विक्रेता से; थोक विक्रेता निर्माता से। जब उपभोक्ता वस्तुओं को क्रय करता है तो फुटकर विक्रेता का स्टॉक घटने लगता है जिससे वह थोक विक्रेता को आदेश देता है। थोक विक्रेता भी अपने स्टॉक को बनाये रखने के लिए निर्माता को आदेश देता है। इस प्रकार यह क्रम चलता रहता है। जब कभी भी किसी भी स्तर पर आदेश की पूर्ति की जाती है तो इसके लिए परिवहन व भण्डार सुविधाओं का सहारा लिया जाता है। यह दोनों ही कार्य भौतिक वितरण के हैं। अतः कहा जा सकता है कि भौतिक वितरण का विपणन माध्यम से घनिष्ठ सम्बन्ध है।

बहुत–से निर्माता बहुत–सी वस्तुओं के लिए निर्माण–स्थान पर या किसी एक केन्द्रीय स्थान पर वस्तुओं को स्टॉक में रखने के लिए भण्डार–गह रखते हैं। लेकिन जब व्यापार बढ़ जाता है तो माल को जल्दी पहुँचाने के लिए कुछ भण्डार–गह विभिन्न महत्वपूर्ण स्थानों पर स्थापित कर दिये जाते हैं, जहाँ से माल परिवहन साधनों की सहायता से विक्रेता की दुकान तक पहुँचा दिया जाता है। यह सभी बातें विपणन माध्यम से सम्बन्धित हैं जो वस्तुओं के भौतिक वितरण में सहयोग करती हैं।

भौतिक वितरण सम्बन्धी लागत वस्तु की लागत को बढ़ाती है। अतः प्रत्येक मध्यस्थ इस बात का प्रयत्न करता है कि यह भौतिक वितरण सम्बन्धी लागत कम से कम रहे। इसके लिए बहुत–से महत्वपूर्ण निर्णय लेने पड़ते हैं जैसे कितना स्टॉक रखा जाय? किस स्थान पर रखा जाय? किस समय रखा जाय? यह सभी बातें विपणन से सम्बन्धित हैं अतः यह कहा जाता है कि भौतिक वितरण व विपणन माध्यम का एक–दूसरे से घनिष्ठ रूप से सम्बन्ध है।

बिना भौतिक वितरण के विपणन माध्यम तक वस्तुएँ नह पहुँच सकती हैं। इसी कारण इन दोनों का एक–दूसरे से काफी सम्बन्ध है।

भौतिक वितरण एवं लाभ
(Physical Distribution and Profit)

वस्तुओं को उपभोक्ता व मध्यस्थों तक पहुँचाने में प्रत्येक विक्रेता को परिवहन व भण्डार, आदि पर व्यय करना पड़ता है चाहे यह विक्रेता निर्माता हो या थोक विक्रेता या फुटकर विक्रेता। **वे व्यय जो परिवहन व भण्डार आदि पर होते हैं भौतिक वितरण सम्बन्धी व्यय कहलाते हैं।** प्रत्येक प्रकार का विक्रेता जब अपना विक्रय–मूल्य निर्धारित करता है तो भौतिक वितरण–व्ययों को भी उसमें जोड़ लेता है। जिस विक्रेता का भौतिक वितरण–व्यय जितना कम होगा उतना ही उसका विक्रय–मूल्य कम होगा। भारत में भौतिक वितरण व्यय निर्माता के मूल्य के एक–तिहाई व उपभोक्ता मूल्य के 1/3 से लेकर 1/4 तक होते हैं।

अतः आवश्यकता इस बात की है कि भौतिक–वितरण सम्बन्धी व्ययों को कम–से–कम किया जाय जिससे विक्रय–मूल्य में कटौती कर प्रतिस्पर्द्धा का और अच्छी प्रकार से मुकाबला किया जा सके व लाभ की मात्रा को बढ़ाया जा सके। इस कार्य के लिए प्रत्येक प्रकार के विक्रेता को समय–समय पर अपनी भौतिक वितरण प्रणाली का मूल्यांकन करते रहना चाहिए। इसके लिए Three-stages Linear Programming Model अपनाया जाना चाहिए। प्रथम चरण में भण्डार से उपभोक्ता तक वितरण व द्वितीय चरण में निर्माण–स्थान से भण्डार तक व ततीय चरण में मासिक उत्पादन व स्टॉक का मूल्यांकन करना चाहिए जिससे कि प्रत्येक स्तर पर इन व्ययों में कटौती की जा सके व लाभों में वद्धि हो सके।

भौतिक वितरण का लक्ष्य
(Physical Distribution Objective)

प्रत्येक निर्माता को अपने भौतिक वितरण का लक्ष्य निश्चित करना पड़ता है। बहुत–से निर्माता अपने भौतिक वितरण का लक्ष्य सही माल, सही समय पर व उचित स्थानों पर न्यूनतम लागत पर भेजना बना लेते हैं। यह सही नह है। भौतिक वितरण प्रणाली का लक्ष्य न्यूनतम लागत पर अधिकतम ग्राहक सेवा देना होना चाहिए। लेकिन यह एक–दूसरे के विपरीत हैं। यदि सेवा अधि ाकतम दी जाती है तो लागत बढ़ना स्वाभाविक है और यदि लागत न्यूनतम की जाती है तो अधिकतम सेवा नह दी जा सकती है। अतः यह कहा जाता है कि भौतिक–वितरण का लक्ष्य एक कुशल प्रणाली होना चाहिए। इसमें दो बातें आती हैं–1. सेवा का स्तर, व 2. सेवा की लागत।

1. **सेवा का स्तर (Level of service):** एक निर्माता सेवा का स्तर स्वयं निर्धारित करता है, जैसे 'एक हफ्ते में ग्राहकों को माल मिल जाना चाहिए।' कुछ निर्माता यह भी निर्धारित कर लेते हैं कि बड़े ग्राहकों को 5 दिन में ही माल मिल जाना चाहिए। एक निर्माता का सेवा–स्तर प्रतिस्पर्द्धा करने वालों को प्रभावित करता है और वे भी वैसी ही सेवा देने लगते हैं। यदि एक निर्माता अपनी सेवाओं को घटा देता है तो ग्राहक उस निर्माता को समर्थन देना बन्द कर सकते हैं अर्थात् उनसे वस्तुएँ क्रय करना बन्द कर सकते हैं। अतः एक निर्माता का सेवा–स्तर सम्बन्धी निर्णय सेवा के वैकल्पिक–स्तरों के प्रति ग्राहकों और प्रतिस्पर्द्धा करने वाले की 'सम्भावित संवेदनशीलताओं' के विश्लेषण पर निर्भर होगा। कभी–कभी ऐसा देखा जाता है कि ग्राहक के सेवा–स्तर में थोड़ी–सी वद्धि ग्राहकों के संरक्षण में काफी वद्धि कर देती है। अर्थात् अधिक ग्राहकों द्वारा वस्तुएँ क्रय की जाने लगती हैं, जबकि कीमती सेवाएँ मूल्य में थोड़ी–सी ही वद्धि कर पाती है।
2. **सेवा की लागत (Cost of service):** एक निर्माता को वस्तुओं के स्टॉक आदि पर व्यय करना पड़ता है जिससे कि ग्राहकों को सामान्य–सेवा का स्तर प्रदान किया जा सके। साधारणतया इन व्ययों का पता कोई भी निर्माता नह लगाता। एक अच्छे निर्माता को इनका पता लगाकर मापना चाहिए और देखना चाहिए कि बिना सामान्य सेवा–स्तर को कम किये इनमें कहाँ कटौती की जा सकती है।

   भौतिक–वितरण का लक्ष्य कम–से–कम व्यय पर अच्छी सेवा–स्तर प्रदान करना है। इसके लिए विभिन्न विकल्पों पर निम्न सूत्र लगाकर देखना चाहिए[5]–

---

5 Philip Kotler : *Marketing Management,* p. 596.

प्रस्तावित वितरण–प्रणाली की कुल लागत

(D)= T+FW+VW+S

D= प्रस्तावित प्रणाली की कुल वितरण लागत (Total Distribution Cost of Proposed System)

T= प्रस्तावित प्रणाली की कुल परिवहन लागत (Total Freight Cost of Proposed System)

FW=प्रस्तावित प्रणाली की कुल स्थायी भण्डार लागत (Total Fixed Warehouse Cost of Proposed System)

VW=प्रस्तावित प्रणाली की कुल परिवर्तनीय भण्डार लागत (Total Variable Warehouse Cost of Proposed System)

S= प्रस्तावित प्रणाली के अन्तर्गत सुपुर्दगी–विलम्ब के फलस्वरूप खोई बिक्री की कुल लागत (Total Cost of Lost Sales due to Average Deliver Delay under Proposed System)

उपर्युक्त सूत्र के अन्तर्गत जिस विकल्प में कुल वितरण लागत कम आती है उसको ही एक निर्माता को चुन लेना चाहिए। लेकिन इस बात का सदैव ही ध्यान रखना चाहिए कि ग्राहक सेवा का स्तर अनुकूलतम रहे।

1. भौतिक वितरण समिति

(Physical Distribution Committee)

भौतिक वितरण क्रियाओं के संगठन हेतु एक समिति की स्थापना करना अमेरिकन व्यवसाय प्रबन्ध में अत्यधिक प्रचलित व्यवहार है। इस समिति में विक्रय प्रबन्धक, इन्वेन्ट्री नियन्त्रण प्रबन्धक, यातायात प्रबन्धक आदि को सदस्य के रूप में सम्मिलित किया जाता है और विपणन अधिशासी को अथवा किसी उच्चाधिकारी को इस समिति का चेयरमैन बनाया जाता है। यह समिति कार्यकुशलता को बढ़ाने, वितरण लागतों को कम करने तथा अन्तर्विभागीय क्रियाओं में समन्वय रखने के उत्तरदायित्वों का निर्वाह करती है।

2. भौतिक वितरण विभाग

(Physical Distribution Department)

भौतिक वितरण क्रियाओं में प्रभावपूर्ण समन्वय के लिए कई कम्पनियाँ एक पथक विभाग भी स्थापित करने लगी हैं। इस व्यवस्था के अन्तर्गत समस्त भौतिक वितरण क्रियाएँ एक विभागाधिकारी के पास केन्द्रित हो जाती हैं। इस संरचना को अपनाने वाली संस्थाओं के सामने अक्सर यह समस्या उत्पन्न होती है कि भौतिक वितरण विभाग के अधिकारी का किसके प्रति उत्तरदायी बनाया जाये? व्यवहार में, संस्था के चेयरमैन अथवा विपणन प्रबन्धक के प्रति भौतिक वितरण विभागाधिकारी को उत्तरदायी बनाये जाने की प्रवत्ति विकसित हो रही है जिसे ठीक माना जा सकता है।

भारत में भौतिक वितरण की क्रियाओं के सम्पादन हेतु विकेन्द्रित व्यवस्था को अपनाया जाता है। परिवहन विभाग, इन्वेन्ट्री नियन्त्रण विभाग, विक्रय विभाग, क्रय विभाग आदि भौतिक वितरण क्रियाओं को केवल अन्तर्विभागीय सामान्य निर्देशों के अधीन करते हैं। इस प्रवत्ति को बदलने की परमावश्यकता है।

भौतिक वितरण सम्बन्धी निर्णय
(Physical Distribution Decisions)

समस्त भौतिक वितरण क्रियाओं का एक मात्र उद्देश्य अधिकतम ग्राहक सेवा न्यूनतम लागतों पर सम्भव करना होता है। इस दष्टि से भौतिक वितरण क्षेत्र में अनेक प्रकार के निर्णय लेने होते हैं। उदाहरण के लिए इन्वेन्ट्रीज कितनी रखी जाये, भण्डारण व्यवस्था किस प्रकार की जाये, सामग्री हस्थन हेतु किन उपकरणों का प्रयोग किया जाये, आदेश प्रविधिनय कैसे किया जाये, आदेशों की पूर्ति हेतु कौन सी विधि अपनायी जाये, आदि वे कुछ प्रमुख निर्णय हैं, जिन पर भौतिक वितरण क्रियाओं की प्रभावशीलता और कार्यकुशलता निर्भर करती है। ये निर्णय जितने सही, समयानुकूल, शीघ्र एवं मितव्ययी होते हैं, संस्था को ग्राहकों का संरक्षण उतना ही अधिक प्राप्त होता है।

उपर्युक्त वर्णित निर्णयों का संक्षिप्त विवेचन इस प्रकार है–

१. इन्वेन्ट्री निर्णय
(Inventory Decisions)

इन्वेन्ट्री नीतियाँ एवं निर्णय माँग सजन प्रक्रिया के महत्त्वपूर्ण उपकरण होते हैं। ग्राहकों के आदेशों की पूर्ति जितनी शीघ्र एवं सही रूप में होती है, ग्राहकों का संरक्षण संस्था के उत्पादों को उतना ही अधिक मिलता है। इसलिए इन्वेन्ट्री स्टॉक पर्याप्त मात्रा में रखा जाना चाहिए ताकि ग्राहक–आदेशों की पूर्ति शत–प्रतिशत की जा सके। यह बात ध्यान देने योग्य है कि प्राप्त शत–प्रतिशत ग्राहक–आदेशों की पूर्ति संस्था की इन्वेन्ट्रीज को काफी बढ़ा देती है और अतिरिक्त विक्रय से प्राप्त होने वाले लाभ इन्वेन्ट्री की वहन लागतों की तुलना में काफी कम पड़ जाते हैं। प्रबन्धकों को चाहिए कि ग्राहक सेवा स्तरों को यथासम्भव न्यूनतम वितरण लागत पर बनाये रखने के लिए दो प्रकार के इन्वेन्ट्री निर्णय सोच–समझ कर लें–(i) आदेश कब दिया जाये, तथा (ii) आदेश मात्रा कितनी हो?

आदेश कब दिया जाये, यह निर्णय लेते समय भौतिक वितरण अधिकारी को 'आदेश अन्तर काल' (order lead time), 'उपयोग दर' (usage rate), तथा 'सेवा प्रमाप' (Service Standard) घटकों को ध्यान में रखना चाहिए। 'आदेश अन्तर काल' वह समय होता है जो वस्तु के लिए आदेश देने एवं वस्तु के प्राप्त करने में सामान्यतः लगता है। उदाहरण के लिए, यदि आदेश की पूर्ति में 15 दिन का समय लगता है तो **आदेश अन्तर काल** 15 दिन का माना जायेगा। आदेश अन्तर काल जितना अधिक होता है, उतना ही अधिक स्टॉक रखना लाभप्रद रहता है। **'उपयोग दर',** वह दर है जिस पर ग्राहक वस्तुएँ खरीदते हैं। यदि ग्राहक जल्दी–जल्दी क्रय करते हैं तो उपयोग दर ऊँची होती है और अधिक स्टॉक रखना जरूरी होता है। **'सेवा प्रमाप'** वह मापदण्ड है जो बतलाता है कि ग्राहकों से प्राप्त आदेशों का कितना प्रतिशत वर्तमान स्टॉक से पूरा कर दिया जाना चाहिए। यदि कोई संस्था शत–प्रतिशत आदेशों की पूर्ति को 'सेवा प्रमाप' मानती है तो उसे अधिक स्टॉक रखने होंगे और शीघ्र आदेश देने होंगे। उदाहरण के लिए यदि एक संस्था के आदेशों का अन्तर काल १० दिन है, और उपयोग दर भी १० इकाइयों की है तथा वह शत–प्रतिशत ग्राहक आदेशों की पूर्ति करना चाहती है तो उसे उस समय आदेश दे देना चाहिए जबकि उसके विद्यमान स्टॉक में केवल 100 इकाइयाँ रह जाएँ।

आदेश की मात्रा कितनी हो, यह निर्णय लेते समय आदेश देने की लागतों, स्टॉक की वहन लागतों, पूँजी लागतों, भण्डारण लागतों, बीमा प्रीमियम, ह्रास, तथा अप्रचलन सम्भावनाओं को ध्यान में रखना चाहिए।

2. निर्णय स्थिति
(Location-decisions)

स्थिति निर्णय प्रमुखतः गोदाम व्यवस्था एवं बिक्री केन्द्रों की स्थापना से सम्बन्ध रखते हैं। इन निर्णयों के मूल में भी यही बात होती है कि ग्राहकों को माल की सुपुर्दगी शीघ्रातिशीघ्र न्यूनतम व्ययों एवं सुविधाओं के साथ की जा सके। ग्राहक स्वयं भी गोदामों अथवा बिक्री केन्द्रों पर आसानी से पहुँच सके। **गोदाम सम्बन्धी निर्णय** लेते समय यह विचार करना जरूरी होता है कि संस्था कितने गोदाम, कहाँ और किसके स्वामित्वाधीन रखना चाहती है। गोदामों की संख्या संस्था के बाजारों की भौगोलिक सीमा के विस्तार पर निर्भर करती है। जहाँ अधिक ग्राहक हों, गोदाम उनके पास होने चाहिए। यदि दो शहरों–जयपुर एवं दिल्ली में कोई वस्तुएँ सर्वाधिक बिकती है तो गोदाम दोनों शहरों के बीच रखे जाने चाहिए। गोदामों की स्थिति पर विचार करते समय तीन विकल्पों पर सोच–विचार करना श्रेयस्कर होता है–(i) गोदाम (warehouse) फैक्ट्री के भीतर हो या पास के किसी केन्द्रीय स्थान पर, (ii) कई वितरण स्थानों पर हो या (iii) कुछेक प्रमुख वितरण स्थानों पर। गोदामों के बारे में निर्णय लेते समय यह निर्णय भी लिया जाना चाहिए कि संस्था निजी भण्डारों का प्रयोग करेगी, या सार्वजनिक भण्डारों का, या सरकारी भण्डारों का, बन्धक भण्डारों का, या शीत भण्डारों का।

बिक्री केन्द्रों सम्बन्धी निर्णय लेते समय यह तय करना होता है कि फुटकर एवं थोक बिक्री केन्द्र प्रमुख बाजारों में होंगे या उनके आसपास स्थापित किये जायेंगे? फुटकर बिक्री केन्द्रों की स्थापना करते समय सामान्य एवं विशिष्ट स्थानों का चयन सावधानी के साथ किया जाना चाहिए। सामान्य स्थान का चयन करते समय सम्भावित लाभार्जन को ध्यान में रखना चाहिए तथा उस सामान्य स्थान, जो कि एक नगर, महानगर, या कोई शहर या गाँव हो सकता है, पर विशिष्ट बिक्री केन्द्रों की स्थापना कहाँ हो, यह निर्णय लेते समय ग्राहक–सुविधाओं, यातायात साधनों–सुविधाओं, अथवा वस्तु विशेष के लिए प्रसिद्ध बाजारों आदि बातों को ध्यान में रखना चाहिए।

3. परिवहन निर्णय
(Transportation Decisions)

परिवहन स्थान उपयोगिता का सजन करता है और उपभोग के समय को प्रभावित करता है। परिवहन सम्बन्धी निर्णय लेते समय स्टॉक एवं भण्डार या गोदाम स्थितियों को ध्यान में रखना जरूरी होता है। इसके अतिरिक्त माल की सुपुर्दगी सही समय पर सही समय में, सही हालत में, न्यूनतम लागतों पर करने के लिए परिवहन सम्बन्धी सुविधाओं एवं साधनों पर स्वामित्व किसका हो, इस पर भी विचार किया जाना जरूरी होता है। इस दष्टि से क्या स्वयं के परिवहन साधन होने चाहिए या पब्लिक साधनों का प्रयोग किया जाना चाहिए, यह निर्णय अक्सर बड़ी–बड़ी संस्थाओं को लेना पड़ता है। परिवहन निर्णय लेते समय यह तय करना पड़ता है कि रेल, सड़क, वायु, अथवा जल मार्ग से माल पहुँचाया जाये। परिवहन साधन का चयन ग्राहक–आदेश–पूर्ति में लगने वाले समय तथा भाड़े की राशि को ध्यान में रख कर किया जाना चाहिए।

4. सामग्री हस्थन निर्णय
(Materials Handling Decisions)

सामग्री हस्थन सम्बन्धी निर्णय लेते समय प्रबन्धकों को सामग्री सुरक्षा, हस्थन व्ययों, हस्थन में लगने वाले समय, पेकेज डिजायन, उठाने या रखने में सुविधा आदि अनेक बातों को ध्यान में रखना चाहिए। आधुनिक तकनीकों एवं उपकरणों के प्रयोग के जरिये हस्थन आवश्यकता एवं लागत को कम से कम किया जाना चाहिए।

5. आदेश सम्बन्धी निर्णय
(Decisions Relating to Orders)

इन निर्णयों में मुख्यतः आदेश आकार तथा आदेश पूर्ति विधि सम्बन्धी निर्णयों को सम्मिलित किया जाता है। आदेश आकार सम्बन्धी निर्णय परिवहन साधन, परिवहन लागत, विक्रय छूटों आदि को प्रभावित करते हैं। आदेश पूर्ति सम्बन्धी निर्णय इस बात से सम्बन्ध रखते हैं कि आदेशित माल उचित समय में ग्राहकों तक पहुँच जाये ताकि संस्था की ख्याति में वद्धि हो सके और प्रतिस्पर्धी संस्थाएँ हमारी ओर सुपुर्दगी में होने वाले विलम्ब का लाभ न उठा सकें।

अध्याय-15
विपणन संचार संमिश्र या संवर्धन संमिश्र (Marketing Communication Mix Or Promotion Mix)

'विपणन संचार' से आशय उन संचारों से है जो कि उत्पादकों, निर्माताओं, थोक व्यापारियों, फुटकर व्यापारियों, ऐजेन्सियों एवं उपभोक्ताओं के मध्य वस्तुओं और सेवाओं के विपणन हेतु सम्पन्न किये जाते हैं। विपणन संचारों का प्रमुख कार्य व्यक्तियों अथवा लक्ष्य बाजारों को समस्त आवश्यक जानकारी उपलब्ध कराना होता है, जिससे वस्तुओं एवं सेवाओं के विपणार्थ अनुकूल वातावरण उत्पन्न हो सके। **विलियम लेजर** लिखते हैं कि विपणन संचार चार प्रबन्धकीय उद्देश्यों की पूर्ति करते हैं–(i) निर्माताओं प्रमुखतः वितरकों एवं उपभोक्ताओं के बीच की दूरी को पाटना; (ii) संस्था की संवर्द्धनात्मक क्रियाओं को समन्वित करना; (iii) विपणन प्रणाली को ग्राहकों एवं उपभोक्ताओं की आवश्यकताओं के अनुकूल समायोजित करना; तथा (iv) उत्पादों को ग्राहक–जरूरतों के अनुकूल बनाना।[1] वर्तमान में, इन उद्देश्यों की पूर्ति सन्तुलित, समन्वित एवं सुग्रंथित रूप से करने हेतु 'विपणन–संचार संमिश्र' विचारधारा के अनुसरण पर बल दिया जाने लगा है। **अनेक विद्वानों में 'विपणन संचार संमिश्र' के स्थान पर संवर्धन संमिश्र' पद का भी उपयोग किया है। वस्तुतः 'संचार संमिश्र' 'संवर्धन संमिश्र' का अत्याधुनिक नाम है[2], जो काफी व्यापक है।**

'विपणन संचार संमिश्र' संस्था की सर्वांगीण विपणन रीति–नीति को प्रभावी ढंग से लागू करने में प्रबन्धकों की सहायता करता है। **ब्रिन्क एवं केली** के अनुसार, 'संवर्धन संमिश्र' व्यक्तियों और प्रणालियों को इस प्रकार बनाने एवं प्रभावित करने का कार्य करता है, ताकि उनके आदान (Inputs), क्रय–प्रक्रियायें, उपभोग–स्तर एवं प्रदान (Outputs) परिवर्तित हो सके।[3] **विलियम लेजर** भी लिखते हैं कि सम्वर्द्धन के जरिये एक कम्पनी बाजार अथवा विपणन–अन्तर्जाल के संघटकों को उद्दीपन प्रदान करती है और सूचनात्मक तथा अनुनयी (Persuasive) सन्देश उपलब्ध करती है ताकि उनके व्यवहार को संशोधित किया जा सके।[4] इस प्रकार, संवर्द्धन संमिश्र अथवा संचार संमिश्र लक्ष्य–बाजारों तक सन्देश भेजने और मध्यस्थों तथा ग्राहकों के क्रय–व्यवहारों को संस्था द्वारा विपणित किये जाने वाले उत्पादों के अनुकूल बनाने की विचारधारा है। **विलियम जे. स्टेन्टन** के अनुसार "संवर्धन संमिश्र वैयक्तिक विक्रय, विज्ञापन, विक्रय सम्वर्द्धन एवं अन्य सम्वर्द्धन उपकरणों की वह दाव–पेच पूर्ण संयोजन है जो विक्रय कार्यक्रम के लक्ष्यों तक पहुँचने में मदद करता है।"

'विपणन संचार संमिश्र' के संघटक तत्त्वों में प्रमुखतः विज्ञापन, वैयक्तिक विक्रय, विक्रय सम्वर्द्धन तथा जन–सम्बन्धों को सम्मिलित किया जाता है।[5] 'विपणन संचार संमिश्र' एवं विपणन संचारों की प्रक्रिया को निम्न चित्र 30.1 द्वारा समझा जा सकता है:

---

1 **William Lazer,** op. cit., 348.

2 **Lipson and Darling,** op. cit., p. 725.

3 **Edward L. Brink and William T. Kelley,** "The Management of Promotion." 1963, pp. 15-48.

4 **William Lazer,** p. 344.

5 ये संघटक तत्त्व विपणन संचारों की प्रक्रिया में सन्देश–प्रवाहिकाओं का कार्य करते हैं। इन्हें संचार साधन भी कहा गया है।

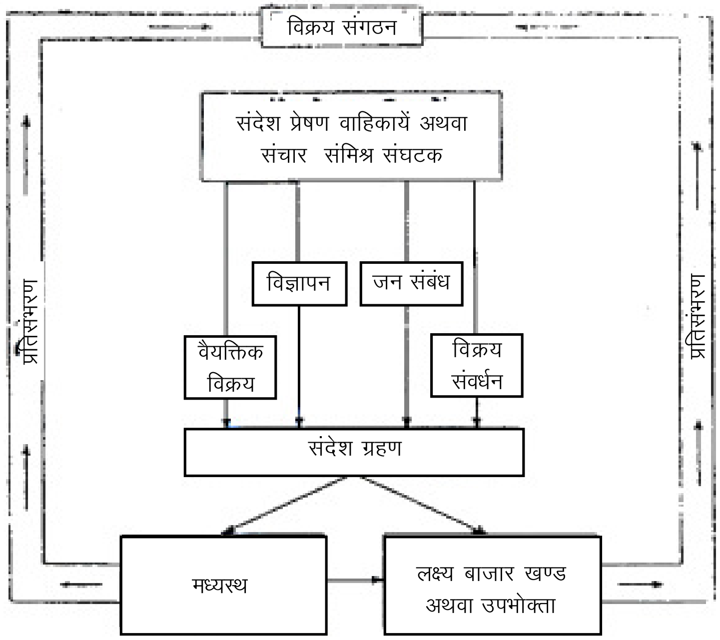

चित्र 15.1: विपणन संचार संमिश्र एवं संचार प्रक्रिया

विपणन संचार संमिश्र के प्रमुख संघटकों का विवेचन निम्नानुसार है[6]–

1. **वैयक्तिक विक्रय (Personal Selling):** 'वैयक्तिक विक्रय' विपणन संचार संमिश्र का एक प्रभावी, किन्तु अत्यधिक खर्चीला संघटक है। **लिपसन एवम् डार्लिंग** ने लिखा है कि वैयक्तिक विक्रय के व्ययों के अनुमान बतलाते हैं कि व्यक्तिगत विक्रय प्रस्तुतीकरणों पर समस्त संवर्द्धन व्ययों का लगभग 55% भाग व्यय होता है।[6] इतने पर भी यह अन्य संघटकों की तुलना में प्रत्यक्ष एवं अनुनयी संचारों के लिए सर्वाधिक उपयुक्त माना गया है। सामान्यतया, वैयक्तिक विक्रय के अन्तर्गत क्रेता–विक्रेता आमने–सामने रह कर वार्ता करते हैं, जिससे परस्परिक प्रतिक्रियाओं को भली प्रकार जाना जा सकता है और संदेशों को समायोजित किया जा सकता है। **विलियम लेजर** भी इस संघटक के महत्व को स्वीकारते हुए लिखते हैं कि वैयक्तिक विक्रय सौदा करने अर्थात् विक्रय करने के चरण पर सर्वाधिक प्रभावी रहता है। यह लोचपूर्ण संघटक है, जो द्विमार्गीय संचार की व्यवस्था उपलब्ध करता है ताकि विशिष्ट विक्रय–आवश्यकताओं के अनुकूल संचार किया जा सके।[7] वैयक्तिक विक्रय को यद्यपि तुलनात्मक दष्टि से औद्योगिक वस्तुओं के विपणन में अधिक उपयोगी माना गया है, फिर भी व्यापक पैमाने पर अत्यधिक रूप से विज्ञापित एवं संवर्द्धित उपभोक्ता–वस्तुओं के विपणन में यह एक विशिष्ट भूमिका निभाता है।[8] इस संघटक की सबसे प्रमुख सीमा यह है कि अनेक बार यह लागत अथवा समय के कारण अव्यावहारिक बन जाता है।[9]

2. **विज्ञापन (Advertising):** 'विज्ञापन' विपणन संचार संमिश्र का प्रमापित, अल्प समायोज्य एवं अवैयक्तिक संचार संघटक है[9], जो व्यापक पैमाने पर दूर–दूर बिखरे हुए विशाल ग्राहक–समूह तक विपणन संदेश पहुँचाता है। यह संघटक एकल–मार्गीय संचार की व्यवस्था करता है। उपभोक्ता–वस्तुओं के विपणन में यह संघटक महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाता है। वैयक्तिक विक्रय पर होने वाले व्ययों की अपेक्षा इस संघटक पर कम व्यय होते हैं। **लिपसन एवम् डार्लिंग**

---

5 वैयक्तिक विक्रय, विक्रय सम्वर्द्धन तथा विज्ञापन संघटकों का विशद विवेचन इसी खण्ड के अगले अध्यायों में किया गया है।

6 **Lipson and Darling,** op. cit., p. 734.

7 **W. Lazer.** op. cit., p. 377.

8 **Cundiff, Still and Govoni,** op. cit., p. 265.

9 **W. Lazer,** above cited. p. 377.

10 **Ibid.,** p. 352.

ने लिखा है कि संचार संमिश्र पर होने वाले कुल व्ययों का 40% भाग विज्ञापन पर व्यय होता है।[11] यह संचार संघटक वैयक्तिक विक्रय का पूरक है और उसके मार्ग को प्रशस्त करता है। **विलियम लेजर** ने लिखा है कि "विज्ञापन एवं वैयक्तिक विक्रय पूरक अथवा सहायक रूप से प्रयुक्त की जाने वाली बाजार–संचार क्रियाएँ हैं, जिनकी सापेक्षिक भूमिका कम्पनी–उत्पादों, ग्राहकों एवं बाजारों पर निर्भर करती है।"[12] **एलडरसन** ने विज्ञापन के महत्त्व की समीक्षा करते हुए यह मत व्यक्त किया है कि "विपणन समकालीन संस्कृति की संरचनाओं को बदलने का प्रयास करता है और इस उद्देश्य की पूर्ति में विज्ञापन एक प्राथमिक उपकरण है।....यह स्वयं में एक जन–कला है.....यह कला ही नह, अपितु भविष्य–दर्शन भी है।" यह कथन स्पष्ट करता है कि विज्ञापन विपणन संचार संमिश्र का एक शक्तिशाली संघटक है जो लोक–अभिरुचियों के स्तरों को प्रभावित करता है, श्रेष्ठ जीवन के विचारों को संशोधित करता है और सामाजिक नियन्त्रण की संस्था के रूप में हमारी जीवन शैलियों को प्रभावित, परिवर्तित एवं नियन्त्रित करता है।[13] यही कारण है कि विज्ञापन विपणन क्षेत्र में ही नह, अपितु मानव–जीवन के समस्त क्षेत्रों में संचार का प्रमुख साधन बनता जा रहा है।

3. **विक्रय संवर्द्धन (Sales Promotion):** 'विक्रय संवर्द्धन' 'विपणन संचार संमिश्र' का एक अन्य तीसरा प्रमुख संघटक है। इसे कुछ विद्वानों ने 'विशिष्ट संवर्द्धनों' (Special Promotions) का नाम भी दिया है ताकि विज्ञापन, वैयक्तिक विक्रय एवं पब्लिसिटी से इसे पथक् किया जा सके।[14] विक्रय संवर्द्धन संघटक विज्ञापनों तथा वैयक्तिक विक्रय क्रियाओं को समन्वित तथा एकीकृत करता है और उन्हें प्रभावी बनाने हेतु समर्थन प्रदान करता है। इस संघटक पर सामान्यतः संचार संमिश्र पर होने वाले कुछ व्ययों का 4% भाग व्यय होता है।

   विशिष्ट संवर्द्धनों को प्रायः दो श्रेणियों में विभक्त किया जाता है–उपभोक्ता संवर्द्धन एवं व्यापार संवर्द्धन।[15] **उपभोक्ता संवर्द्धनों** में नमूनों, कूपनों, मुद्रा–वापसी प्रस्तावों, कीमत कटौतियों, प्रीमियमों, प्रतियोगिताओं, ट्रेडिंग, स्टेम्पों, प्रदर्शनी, मेल ऑर्डर संवर्द्धनों, आदि को सम्मिलित किया जाता है। **व्यापार संवर्द्धनों** में क्रय भत्तों, मुफ्त नमूनों, वाणिज्य–भत्तों, सहयोगी विज्ञापनों, व्यापारी विक्रय प्रतियोगिताओं आदि को सम्मिलित किया जाता है। अनेक संस्थाएँ विक्रय–शक्ति को अधिकाधिक विक्रय की प्रेरणा देने हेतु बोनस, प्रतियोगिताएँ, रेलीज, सभाएँ आदि संवर्द्धन उपकरणों का प्रयोग करने लगी हैं। संवर्द्धन–उपकरणों के प्रभाव तत्काल दिखाई देते हैं उन्हें मापा भी जा सकता है। इतने पर भी इस सम्बन्ध में पर्याप्त शोध–कार्य नह हो पाया है और न ही निर्णयन–मॉडल तैयार किये जा सके हैं।

4. **जन सम्बन्ध (Public Relations):** 'जन सम्बन्ध' विपणन संचार संमिश्र का चतुर्थ संघटक है। इस संघटक को 'पब्लिसिटी' के नाम से भी जाना जाता है। किन्तु, अनेक निगमों के विपणन अधिकारियों ने इस संघटक को 'फ्री पब्लिसिटी' मानने की भयंकर भूल की है और वर्तमान में भी अनेक विपणन अधिकारी यह भूल कर रहे हैं। **आर्थर आर. रोलामन** ने स्पष्टतः यह मत व्यक्त किया है कि 'जन सम्बन्ध' संघटक को 'फ्री पब्लिसिटी' के रूप में स्वीकारना अथवा अपनाना एक खतरनाक प्रवंचना है।[17] वस्तुतः 'जन सम्बन्ध' संघटक की उपादेयता को हासिल करने के लिए निगमों एवं व्यावसायिक संस्थाओं द्वारा जन सम्बन्ध विभागों की स्थापना की जानी चाहिए और धनात्मक रूप से ग्राहकों, समाज, सरकार, पूर्तिकर्ताओं, प्रतियोगिताओं, कर्मचारी संघों, जैसे महत्त्वपूर्ण वर्गों के दष्टिकोणों को प्रभावित एवं परिवर्तित किया जाना चाहिए। जन–दष्टिकोणों को प्रभावित करने एवं बदलने के लिए व्यावसायिक संस्थाओं के विपणन अधिकारियों द्वारा पत्र–पत्रिका निबन्धों, समाचार–कथाओं तथा वैयक्तिक सम्पर्कों का सहारा लिया जाना चाहिए। ऐसा करने पर न केवल नये उत्पादों, नवाचारों आदि के बारे में ही जनता को सूचित किया जा सकेगा, बल्कि 'विश्वसनीयता–दूरी' (Credibility gap) को भी समाप्त किया जा सकेगा।[7] इस दष्टि से जन–सम्बन्ध विभागों के संचालन का भार पेशेवर व्यक्तियों के कन्धों पर डाला जाना चाहिए जो कि जन–सम्पर्क की कला में निपुण हैं।

---

[11] **Lipson and Darling,** op. cit., p. 728.

[12] **W. Lazer.** op. cit., p. 378.

[13] **Otis Pease,** "The Responsibilities of American Advertising," 1958, p. 3.

[14] **Lipson and Darling,** above cit., p. 739; & **Philip Kotler,** op. cit., p. 339.

[15] **John F. Luick** and **William Lee liegler,** "Sales Promotion and Modern Mercehandising." 1968.

[16] **Arthur R. Rolaman,** "Profitable Public Relations", 1968. p. 2.

विपणन में संचार संमिश्र का महत्व
(Importance of Communication Mix in Marketing)

आज के युग में जहाँ अपूर्ण प्रतियोगिता है या वस्तु विभिन्नीकरण के कारण एकाधिकार है; क्रेता के पास सूचना का अभाव है; तथा उसका स्वयं का व्यवहार अविवेकपूर्ण है, तो ऐसी स्थिति में क्रेता को सूचना देने का काफी महत्व है। इस महत्व को निम्न घटकों ने और अधिक बढ़ा दिया है और यह आवश्यक कर दिया है कि प्रवर्तन संमिश्र या संचार प्रक्रिया अवश्य ही अपनायी जाये। यह घटक निम्नलिखित हैं–

1. **प्रतियोगिता (Competition):** आजकल के युग को प्रतियोगिता का युग कहा जाता है क्योंकि प्रत्येक क्षेत्र में प्रतियोगिता पायी जाती है। एक उद्योग दूसरे उद्योग से प्रतियोगिता करता है। एक ही उद्योग में बहुत–सी संस्थाएँ होने के कारण भी उनमें आपस में प्रतियोगिता होती है। इस प्रतियोगिता का प्रवर्तन पर काफी प्रभाव पड़ता है।

   आजकल निर्माता आवश्यकता की पूर्ति ही नह करता बल्कि ग्राहक के मनोविज्ञान की पूर्ति करता है। इस प्रकार प्रतियोगिता से प्रभावकारी ढंग से निपटने के लिए प्रवर्तन की सहायता ही नह लेनी पड़ती है बल्कि एक उपयुक्त प्रवर्तन प्रोग्राम बनाना पड़ता है। ग्राहकों की माँग तो सदा ही सुस्त रहती है। प्रतियोगी निर्माता का काम उस माँग को उभारना व जगाना है। इस प्रकार प्रतियोगिता ने प्रवर्तन कार्यक्रम या संचार सम्मिश्रण को अपनाने के लिए बाध्य कर दिया है जो वस्तुओं के विपणन में काफी सहयोग प्रदान करता है।

2. **उत्पादकों और उपभोक्ताओं के बीच अधिक दूरी (Long distance between Producers and Consumers):** उपभोक्ता और उत्पादकों के बीच दूरी दिन–प्रतिदिन बढ़ती जा रही है। प्रवर्तन या संचार क्रियाएँ इन दोनों को मिलाने में सहायक होती हैं।

3. **वितरण माध्यमों का विकास (Development of distribution channels):** वितरण माध्यमों का विकास भी बहुत अधिक हुआ है और निर्माता तथा उपभोक्ता के बीच कई कड़ियाँ आ गयी हैं। अतः निर्माता के लिए यह आवश्यक है कि वह ऐसी नीति अपनाये जिससे कि उसकी सूचनाएँ समय–समय पर उपभोक्ता को ही नह मिलती रहें बल्कि मध्यस्थों को भी मिलती रहें। एक निर्माता थोक विक्रेता को सूचित करता है, थोक विक्रेता फुटकर विक्रेता को और फुटकर विक्रेता उपभोक्ता को। इस प्रकार वितरण माध्यमों के विकास ने प्रवर्तन व संचार क्रियाओं का महत्व बढ़ा दिया है।

4. **आर्थिक मन्दी (Economic recession):** आर्थिक जगत में कुछ समय के बाद जब मन्दी आती है तो वस्तु की बिक्री बहुत कम हो जाती है। ऐसी हालत में प्रवर्तन व संचार सुविधाएँ ही विक्रय को बनाये रखने में सहायक होती हैं जिससे विपणन क्रियाएँ चलती रहती हैं।

5. **उच्च जीवन-स्तर (High standard of living):** अधिक वस्तुओं को काम में लाना ही उच्च रहन–सहन के स्तर का प्रतीक है। प्रवर्तन उन वस्तुओं के बारे में सूचना देता है जिनकी जानकारी उपभोक्ताओं को नह है। जब उपभोक्ताओं को जानकारी हो जाती है तो वे उन वस्तुओं को क्रय कर लेते हैं जो उनके जीवन–स्तर को उच्च बनाने में योगदान देता है।

6. **रोजगार (Employment):** यदि वस्तुओं की माँग कम होती है तो व्यवसाय की प्रगति रूक जाती है और निर्माता कर्मचारियों की छँटनी करने के लिए बाध्य हो जाता है। प्रवर्तन या संचार सम्मिश्रण विक्रय को बनाये रखने में सहायक होता है जिससे रोजगार सुविधाएँ ज्यों–की–त्यों बनी रहती हैं और छँटनी करने की आवश्यकता नह होती है।

7. **प्रवर्तन व्यय (Promotional expenses):** एक वस्तु के विपणन व्यय उस वस्तु के उत्पादक व्यय से कह अधिक होते हैं। इन विपणन व्ययों में प्रवर्तन व्यय भी शामिल हैं।

प्रवर्तन-मिश्रण या संचार सम्मिश्रण को प्रभावित करने वाले घटक
(Factors Influencing Promotional Or Communication Mix)

एक निर्माता का विक्रय प्रवर्तन या संचार मिश्रण निर्णय बहुत–से घटकों से प्रभावित होता है। इसी प्रकार कहा जा सकता

है कि एक निर्माता के प्रवर्तन ढंग किन बातों से प्रभावित होते हैं? यह बातें निम्नलिखित हैं–

1. **वस्तु का स्वभाव (Nature of the product):** वस्तु का स्वभाव जिस प्रकार का होगा उसी अनुरूप विक्रय प्रवर्तन व संचार मिश्रण होगा। इसी बात को इस प्रकार भी कह सकते हैं कि उस वस्तु का स्वभाव प्रवर्तन–मिश्रण को प्रभावित करता है। उपभोक्ता वस्तु व औद्योगिक वस्तु दोनों की नीतियाँ अलग–अलग होती हैं। यदि उपभोक्ता वस्तु भी सुविधानुसार या सौदे की वस्तु या विशिष्ट वस्तु है तो भी इनके प्रवर्तन–मिश्रण पर प्रभाव पड़ता है और वे प्रभाव अलग–अलग होते हैं। उदाहरण के लिए, यदि वस्तु सुविधानुसार वस्तु है तो ऐसी वस्तुओं के विक्रेताओं को निर्माता के विज्ञापन व अपने डीलर–प्रदर्शन पर निर्भर रहना पड़ता है। ऐसी वस्तुओं में वैयक्तिक विक्रय का महत्व बहुत कम है। इसका कारण यह है कि ऐसी वस्तुएँ बहुत बड़ी मात्रा में बेची जाती हैं और उनमें ब्राण्ड के प्रति वफादारी अधिक होती है। इसमें विशेष प्रदर्शन की आवश्यकता नह होती है। ब्राण्ड–वफादारी निर्माता विज्ञापन से ही बनायी जा सकती है और उसमें कुछ योग डीलर–प्रदर्शन द्वारा भी दिया जा सकता है।

   दूसरी ओर औद्योगिक वस्तुओं में वैयक्तिक विक्रय व प्रदर्शन का काफी महत्व है। इसमें तो प्रदर्शन विक्रय से पूर्व व विक्रय के बाद भी करना पड़ता है और साथ ही विक्रय–के–बाद–सेवा भी देनी होती है। अतः वैयक्तिक विक्रय व प्रदर्शन दोनों का काफी महत्व है।

   तीसरी ओर यदि वस्तु कच्चे माल जैसी है तो इसमें वैयक्तिक विक्रय का योग सर्वाधिक है और विज्ञापन व प्रदर्शन की सहायता नाममात्र की है। इस प्रकार वस्तु का स्वभाव उसके प्रवर्तन–मिश्रण को प्रभावित करता है।

2. **वस्तु का जीवन-चक्र (Life-cycle of the product):** एक वस्तु का जीवन–चक्र भी उसके प्रवर्तन–मिश्रण के सम्बन्ध में निर्णय लेने को प्रभावित करता है। एक वस्तु जीवन–चक्र जिस अवस्था में है उससे यदि वह दूसरी अवस्था में जाता है तो उसका प्रवर्तन–मिश्रण ही बदल जाता है। उदाहरण के लिए, यदि वस्तु परिचय की स्थिति में है तो उसके संवर्द्धन पर काफी व्यय करना होगा, मध्यस्थों को वस्तु रखने व बेचने के लिए प्रलोभन देना होगा, व वैयक्तिक विक्रय पर भी अधिक ध्यान देना होगा। इसके लिए भारी विज्ञापन करना होगा। मेले, प्रदर्शनियाँ, नुमाइश, आदि में प्रदर्शन भी अधिक उपयोगी रहेंगे। विज्ञापनों में वस्तु के बारे में सूचना देनी होगी कि इस प्रकार की वस्तु बनकर तैयार हो गयी है।

   यदि वस्तु का बाजार वद्धि की अवस्था में है तो इसमें प्रतियोगी वस्तुओं की शुरूआत हो जायेगी और नये–नये ब्राण्ड सामने आने लगेंगे। ऐसी स्थिति में विक्रय संवर्द्धन मिश्रण इस प्रकार का होगा कि उपभोक्ता में बाण्ड के प्रति वफादारी बनायी जा सके। अतः वस्तु के गुणों को प्रकाश में लाने की आवश्यकता होगी। इसके लिए विज्ञापन पर अधिक निर्भर रहना होगा और उसका उपयोग अनुनय–उपकरण के रूप में करना होगा। इस प्रकार लाभों के गिरने की सम्भावना में विज्ञापन पर काफी व्यय करना होगा।

   इस प्रकार यदि वस्तु बाजार अवनति की स्थिति में है तो निर्माता को अपना प्रवर्तन–मिश्रण बदलना पड़ता है। क्योंकि अवनति की स्थिति में लाभ के स्थान पर हानि होती है व वस्तु की माँग बहुत अधिक गिर जाती है। अतः निर्माता वस्तु की समाप्ति का निर्णय लेना पड़ता है और विक्रय संवर्द्धन बन्द कर देना पड़ता है।

3. **बाजार का स्वरूप (Nature of the market):** किसी वस्तु के बाजार का स्वभाव उसके संवर्द्धन के ढंग व उसकी सीमा को भी प्रभावित करता है। यह प्रभाव तीन प्रकार से पड़ता है–(i) **ग्राहकों के प्रकार**–किसी वस्तु के ग्राहक कई प्रकार के होते हैं लेकिन उनको मुख्यतः तीन श्रेणियों में रखते हैं–गह–उपभोक्ता, औद्योगिक ग्राहक व मध्यस्थ ग्राहक। जिस प्रकार का ग्राहक होगा उसी प्रकार का प्रवर्तन–मिश्रण अपनाया जायेगा। उदाहरण के लिए, यदि किसी वस्तु के ग्राहक गह–उपभोक्ता हैं तो प्रवर्तन प्रोग्राम इस प्रकार का होगा कि उनको आकर्षित किया जा सके। इसके लिए विज्ञापन का भरपूर सहारा लेना होगा। लेकिन यदि वस्तु औद्योगिक है तो विज्ञापन अधिक कारगार नह होगा बल्कि व्यक्तिगत सम्पर्क व प्रदर्शन लाभकारी होगा। इसी प्रकार यदि मध्यस्थों को आकर्षित करना है तो व्यक्तिगत सम्पर्क ही कम उपयोगी होगा। (ii) **भौगोलिक क्षेत्र**–यदि किसी वस्तु का बाजार राष्ट्रीय या अन्तर्राष्ट्रीय है तो उसका प्रवर्तन–मिश्रण इस प्रकार का नह होगा जो एक स्थानीय बाजार के लिए होता है। स्थानीय बाजार में व्यक्तिगत सम्पर्क होता है लेकिन राष्ट्रीय या अन्तर्राष्ट्रीय बाजार के लिए तो विज्ञापन व अन्य साधनों का सहारा लेना पड़ता है। (iii) **बाजार का केन्द्रीकरण**–किसी वस्तु के बाजार का केन्द्रीकरण उसकी प्रवर्तन नीति को प्रभावित करता है।

उदाहरण के लिए, यदि किसी वस्तु के क्रेता एक स्थान पर केन्द्रित हैं तो व्यक्तिगत सम्पर्क किया जा सकता है लेकिन यदि वे बिखरे हुए हैं तो यह तरीका कारगर सिद्ध नह होगा अतः इसके लिए अन्य तरीका अपनाना होगा।

4. **धन की उपलब्धता (Availability of funds):** किसी भी व्यापार की वद्धि में धन की उपलब्धता एक महत्वपूर्ण घटक है। धन की पर्याप्तता या सीमितता उसके विकास पर काफी प्रभाव डालती है। यदि किसी निर्माता के वित्तीय साधन पर्याप्त हैं तो प्रवर्तन के विभिन्न साधनों का सदुपयोग किया जा सकता है। इसके विपरीत, यदि वित्तीय साधन सीमित हैं तो प्रवर्तन एक सीमा में ही किया जा सकता है।

संवर्द्धन या संचार संमिश्र निर्धारण प्रक्रिया
(Promotion or Communication Mix Determination Process)

संवर्द्धन या संचार संमिश्र के निर्धारण से आशय यह निश्चित करने से है कि संवर्द्धन के संघटकों (Components) के बीच कैसा आनुपातिक संयोजन हो कि विपणन कार्यक्रम वांछित परिणाम उपलब्ध कर सके। संवर्द्धन संमिश्र का निर्धारण एक कठिन कार्य है क्योंकि संयोजन से पूर्व संवर्द्धन संघटकों के संयोजनों के प्रभावों को नह मापा जा सकता। इस कार्य को सम्पन्न करने हेतु निम्न प्रक्रिया को अपनाया जाना चाहिए–

I. संवर्द्धन की उपलब्ध वैकल्पिक विधियों पर विचार करना
(Considering the Available Alternative Promotional Methods)

संवर्द्धन संमिश्र निर्धारण प्रक्रिया का यह प्रथम चरण है। इस चरण पर उन समस्त उपलब्ध वैकल्पिक संवर्द्धन विधियों पर विचार किया जाता है जिनको संयोजित करके संवर्द्धन संमिश्र का निर्धारण करना है। व्यावसायिक अनुभव बतलाता है कि विपणन प्रबन्धक जिन वैकल्पिक संवर्द्धन विधियों का प्रयोग कर सकते हैं उनमें वैयक्तिक विक्रय, विज्ञापन, विक्रय संवर्द्धन, आश्वासन एवं सेवा, प्रतिस्पर्द्धी बोली लगाना, पारस्परिकता (Reciprocity), जन सम्पर्क आदि को प्रमुखतः सम्मिलित किया जा सकता है।

II. संवर्द्धन विधियों को संयोजित करना
(Combining the Promotional Methods)

संवर्द्धन संमिश्र निर्धारण प्रक्रिया का यह द्वितीय चरण है। इस चरण पर विपणन प्रबन्धक संवर्द्धन संमिश्र का स्वरूप निश्चित करते हैं। इस कार्य को करने हेतु वे वैकल्पिक संवर्द्धन विधियों को आनुपातिक महत्व के अनुसार संयोजित करते हैं। ऐसा संयोजन तभी किया जा सकता है जबकि प्रत्येक संवर्द्धन संघटक अर्थात् विधि की उपयुक्तता पर विचार किया जाये और अनुकूल निर्णय लिये जायें। संवर्द्धन संमिश्र के विभिन्न घटकों में आनुपातिक संयोजन करते समय अर्थात् संवर्द्धन रीति–नीति निश्चित करते समय प्रमुखतः निम्नलिखित प्रश्नों पर विचार किया जाना चाहिए–

1. **वैयक्तिक विक्रय कब प्रमुख संघटक होना चाहिए?–विलियम जे. स्टेन्टन के अनुसार निम्न अवस्थाओं में वैयक्तिक विक्रय को प्रमुखता दी जाती चाहिए–**
   - (i) जब कम्पनी छोटी हो अथवा विज्ञापन कार्यक्रम को चलाने हेतु पर्याप्त धनराशि न हो।
   - (ii) जब बाजार संकेन्द्रित हो।
   - (iii) जब विश्वासोत्पत्ति अथवा घनिष्ट सम्पर्क स्थापना हेतु विक्रेता के व्यक्तित्व की जरूरत हो।
   - (iv) जब उत्पाद का इकाई मूल्य अधिक हो, उत्पाद प्रदर्शन की अपेक्षा रखता हो, वैयक्तिक जरूरतों के अनुसार उत्पाद को बनाना हो (जैसे प्रतिभूतियाँ, बीमा आदि) अथवा कभी–कभी खरीदा जाता हो।
2. **विज्ञापन कब प्रमुख संघटक होना चाहिए?–स्टेन्टन** लिखते हैं कि निम्न अवस्थाओं में विज्ञापन को संवर्द्धन संमिश्र में प्रमुखता दी जानी चाहिए–
   - (i) जब उत्पाद का बाजार व्यापक हो।
   - (ii) जब अनेक व्यक्तियों को अतिशीघ्र सूचित करना हो।

(iii) जब विज्ञापन अवसर विद्यमान हो।

नेइल एच. बोरडन ने विज्ञापन अवसरों की विद्यमानता की जाँच हेतु जो पाँच आधार दिये हैं, वे इस प्रकार हैं–

(i) उत्पाद के लिए प्राथमिक माँग प्रवत्ति समर्थनकारी होनी चाहिए। अर्थात् उत्पाद की माँग वद्धि पर होनी चाहिए।

(ii) उत्पाद में विभेदीकरण योग्यता होनी चाहिए तथा विभेदीकरण हेतु समुचित अवसर होने चाहिए।

(iii) उत्पाद में छिपी हुई विशेषतायें होनी चाहिए ताकि विज्ञापन के जरिये बाजार को सूचित एवं प्रशिक्षित किया जा सके।

(iv) शक्तिशाली भावनात्मक क्रयण–प्रेरणाएँ उत्पाद के लिए विद्यमान होनी चाहिए।

(v) कम्पनी के पास पर्याप्त धनराशि विज्ञापन हेतु होनी चाहिए।

3. **फुटकर व्यापारी द्वारा संवर्द्धन प्रयत्नों को कब प्रमुखता दी जानी चाहिए?**–निम्न दशाओं में फुटकर व्यापारी के संवर्द्धन प्रयत्नों को प्रमुखता दी जानी चाहिए–

(i) जबकि उत्पाद उन गुणों से युक्त हो जिनकी पहचान क्रय के समय ही की जा सकती हो।

(ii) जबकि उत्पाद अत्यधिक प्रमापित हो।

(iii) जबकि उत्पाद का क्रय भावनावश किया जाता हो।

(iv) जबकि बाजार इतना सीमित हो कि विज्ञापन तर्क निरर्थक लगता हो।

(v) जबकि निर्माता की तुलना में व्यापारी की ख्याति एवं प्रसिद्धि अधिक हो।

4. **निर्माता फुटकर व्यापारी सहकारी विज्ञापन को कब प्रमुखता दी जानी चाहिए?**–इस सम्बन्ध में **स्टेन्टन** का विचार है कि निम्न तीन प्रश्न महत्त्वपूर्ण हैं जिन पर चिन्तन किया जाना चाहिए ताकि यह मालूम हो सके कि निर्माता फुटकर व्यापारी सहकारी विज्ञापन को कब प्रमुखता दी जाये–

(i) एक निर्माता को अपने विज्ञापनों में फुटकर व्यापारियों के नाम पते कब जोड़ने चाहिए?

(ii) एक निर्माता को फुटकर व्यापारियों द्वारा किये जाने वाले विज्ञापनों में अपने उत्पादों के नाम जोड़ने पर कौन–सी दशाओं में भुगतान करना चाहिए?

(iii) एक फुटकर व्यापारी को कब निर्माता के उत्पादों को स्टोर–विज्ञापनों या सजावट में स्थान देना चाहिए?

प्रथम प्रश्न के उत्तर में यह कहा जा सकता है कि यदि निर्माता चयनात्मक अथवा एकान्तिक (Exclusive) वितरण नीतियों को अपनाता हो तो निर्माता को चाहिए कि अपने विज्ञापनों में फुटकर व्यापारियों के नाम–पते जोड़ना चाहिए ताकि ग्राहकों को उत्पाद की उपलब्धि का स्थान मालूम हो सके।

दूसरे प्रश्न के उत्तर में यह कहा जा सकता है कि यदि फुटकर व्यापारी की उत्पाद–पंक्ति से निर्माता अपने उत्पाद को जुड़वाना चाहता हो या फुटकर व्यापारी की विक्रयण शक्ति निर्माता से अधिक हो तब निर्माता को फुटकर व्यापारी द्वारा किये गये विज्ञापनों के व्ययों का भुगतान करना चाहिए।

ततीय प्रश्न के उत्तर में यह कहा जा सकता है कि यदि निर्माता का नाम अधिक हो या उत्पाद निर्माता के नाम से बिकता हो तो स्टोर विज्ञापनों या सजावटों में निर्माता के नाम को स्थान दिया जाना चाहिए।

5. **क्या फुटकर व्यापार संवर्द्धन आवश्यक है जबकि निर्माता विज्ञापन अथवा वैयक्तिक विक्रय पर बल दे रहा हो?–स्टेन्टन** लिखते हैं कि निर्माता द्वारा विज्ञापन अथवा वैयक्तिक विक्रय पर बल देने के बावजूद भी फुटकर व्यापारी संवर्द्धन (Retailer Promotion) आवश्यक है। वस्तुतः यह निर्माता के विज्ञापन एवं वैयक्तिक विक्रय प्रयासों को प्रभावी बनाता है। उदाहरण के लिए व्यापारी–विज्ञापन (Dealer Advertising) निर्माता के राष्ट्रीय विज्ञापन का पूरक बन जाता है। फुटकर व्यापारी संवर्द्धन स्थानीय बाजार में निर्माता के प्रवेश को सुगम बना देते हैं। फुटकर व्यापारी संवर्द्धन रिमाइन्डर का कार्य करते हैं और उपभोक्ताओं की क्रयण–भावना को प्रोत्साहित करते हैं। स्व–सेवा के आधार पर चलने वाले फुटकर भन्डारों में उत्पाद को बेचने के लिए व्यापारी प्रदर्शन (Dealer Displays) महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। अतएव फुटकर व्यापारी संवर्द्धन को संवर्द्धन संमिश्र में उपयुक्त स्थान उस अवस्था में भी दिया जाना चाहिए जबकि

निर्माता राष्ट्रीय विज्ञापनों का सहारा ले रहा हो अथवा वैयक्तिक विक्रय पर बल दे रहा हो।

6. **क्या फुटकर विक्रेता के लिए विज्ञापन करना जरूरी है जबकि वह वैयक्तिक विक्रय पर बल देता हो?**—इस प्रश्न के उत्तर के सम्बन्ध में **स्टेन्टन** लिखते हैं कि कुछ दशाओं में उस फुटकर विक्रेता के लिए विज्ञापन को संवर्द्धन संमिश्र में स्थान देना जरूरी है जो कि वैयक्तिक विक्रय विधि को अपनाता है। विज्ञापन वैयक्तिक विक्रय को प्रभावी तथा सुगम बनायेगा और ग्राहकों को स्टोर तक आकृष्ट करेगा। इसके अतिरिक्त जो उत्पाद ऊँची कीमत वाले हों अथवा कभी–कभी खरीदे जाते हों उनके विक्रय के लिए किसी न किसी संवर्द्धन प्रयत्न का सम्पन्न होना जरूरी है। इस दष्टि से विज्ञापन अधिक सहयोगी हो सकता है।

7. **क्या माँग के अधिक होने अथवा क्षमता से परे होने पर भी संवर्द्धन क्रियाएँ चालू रखी जानी चाहिए?**—उस अवस्था में भी जबकि माँग पूर्ति से अधिक हो, संवर्द्धन क्रियाओं को चालू रखा जाना चाहिए। कारण कि क्रेताओं की ब्रांडनिष्ठा बदलती रहती है और नये क्रेता तभी प्राप्त हो सकते हैं जबकि उनको उत्पाद की जानकारी हो। इसके अतिरिक्त माँग के भारी होने पर नये प्रतिस्पर्धी भी बाजार में प्रवेश करते हैं और प्रतिस्पर्धा का सामना करने के लिए भी संवर्द्धन क्रियाओं की जरूरत होती है। विपणन प्रबन्ध चाहे तो विज्ञापन संदेश को परिवर्तित कर सकते हैं और संस्थागत या अप्रत्यक्ष कार्यवाही विज्ञापन विधि को अपना सकते हैं। किन्तु किसी न किसी रूप में माँग के अधिक होने पर भी विज्ञापन अथवा अन्य संवर्द्धन क्रियाओं का सहयोग लिया जाना श्रेयष्कर रहता है।

III. संवर्द्धन संमिश्र हेतु विनियोजन करना
(Making Appropriations for Promotion Mix)

संवर्द्धन संमिश्र निर्धारण प्रक्रिया का यह ततीय चरण है। इस चरण पर संवर्द्धन संमिश्र पर कितना धन व्यय किया जायेगा, इसका निर्धारण किया जाता है। ऐसा विनियोजन संवर्द्धन संमिश्र के स्वरूप पर भी निर्भर करता है और संवर्द्धन संमिश्र का स्वरूप भी उपलब्ध कोषों की मात्रा से प्रभावित होता है। किन्तु विद्वानों एवं अनुभवी व्यक्तियों का विचार है कि संवर्द्धन संमिश्र के लिए विनियोजन करते समय प्रबन्धक को चाहिए कि वह उत्पाद लागतों पर संवर्द्धन कार्यक्रम के पड़ने वाले प्रभावों को ध्यान में रखे।

वर्तमान में, अनेक कम्पनियाँ अभिवद्धित स्तरों पर संवर्द्धन विनियोजन हेतु विद्युत कम्प्यूटर्स, गणितीय मॉडल्स, संक्रिया अनुसंधान विधियाँ, दीर्घकालीन बजट आदि तरीकों का प्रयोग करने लगी हैं। इतने पर भी विपणन प्रबन्धकों को यह तथ्य ध्यान में रखना चाहिए कि संवर्द्धन बजट के बारे में लिए जाने वाले निर्णयों में 'भूल तथा सुधार' (Trial and Error) का तत्व अधिक रहता है। इसलिए प्रबन्धकों को चाहिए कि वे विनियोजन करते समय निम्न सामान्य निष्कर्षों को अवश्य ही ध्यान में रखें—

(i) छोटी कम्पनी सामान्यतः बड़ी कम्पनी की तुलना में संवर्द्धन पर अपनी बिक्री का अधिक भाग व्यय करती है।

(ii) बड़ी कम्पनी छोटी कम्पनी की तुलना में अधिक रूपया व्यय करती है और श्रेष्ठ परिणाम प्राप्त करती है।

(iii) नये उत्पाद स्थापित उत्पादों की तुलना में अधिक संवर्द्धन व्ययों की अपेक्षा रखते हैं।

(iv) एक नयी कम्पनी पुरानी कम्पनी की तुलना में अधिक व्यय करती है।

व्यवहार में, संवर्द्धन विनियोजन हेतु प्रमुखतः निम्न विधियाँ काम में ली जाती हैं—

1. **आय विधि (Income Method):** इस विधि की मान्यता यह है कि संस्था की आय का एक निश्चित प्रतिशत भाग संवर्द्धन कार्यक्रमों पर व्यय किया जाना चाहिए। इस विधि में बिक्री के बढ़ने के साथ–साथ संवर्द्धन व्यय भी बढ़ते हैं और बिक्री के कम होने पर संवर्द्धन व्यय भी कम होते चले जाते हैं। कभी–कभी इस विधि के अन्तर्गत विगत या भावी बिक्री की प्रति इकाई के लिए निश्चित संवर्द्धन धनराशि भी तय की जाती है। कुछ संस्थाएँ विगत की बिक्री अथवा अनुमानित भावी बिक्री को ध्यान में रखकर उनका एक निश्चित प्रतिशत भाग भी संवर्द्धन व्ययों के लिए तय करती हैं। यह विधि काफी सरल है और प्रचलित है। किन्तु, इस विधि का सबसे बड़ा दोष यही है कि यह सम्वर्द्धन व्ययों को बिक्री का परिणाम मानती है जबकि बिक्री सम्वर्द्धन व्ययों का परिणाम होती है। इस विधि का अन्य दोष यह है कि गिरती हुई बिक्री की अवस्था में जब अधिक सम्वर्द्धन प्रयत्नों की जरूरत होती है तब उन्हें कम करना पड़ता है क्योंकि सम्वर्द्धन बजट आय या बिक्री में कमी होने के साथ कम होता चला जाता है।

(ii) **समस्त कोषों के प्रयोग की विधि (Use All Funds Method):** इस विधि को सामान्यतया नयी कम्पनियाँ अपनाती हैं और जितनी भी धनराशि उपलब्ध होती है उसे सम्वर्द्धन प्रयत्नों पर खर्च करने की कोशिश की जाती है। इस विधि को अधिक श्रेष्ठ नह माना गया है क्योंकि एक बार में ही इतनी धनराशि खर्च करनी होती है कि अगले पाँच वर्षों या इससे भी अधिक की अवधि के लिए सम्वर्द्धन बजट बनाना सम्भव नह हो पाता है।

(iii) **प्रतिस्पर्धा अनुगमन विधि (Follow Competition Method):** इस विधि के अन्तर्गत सम्वर्द्धन विनियोजन हेतु उतनी धनराशि व्यय की जाती है जितनी कि प्रतिस्पर्धी कर रहे हैं। इस विधि को अच्छा नह माना गया है क्योंकि यह विधि संस्था की विशिष्ट जरूरतों एवं वातावरणात्मक भिन्नताओं की उपेक्षा करती है।

(iv) **कार्य या उद्देश्य विधि (Task or Objective Method):** इस विधि को सर्वश्रेष्ठ माना गया है। इसमें सम्वर्द्धन व्ययों का निर्धारण सम्वर्द्धन कार्यक्रमों के उद्देश्यों को ध्यान में रखकर किया जाता है। इस विधि को 'Build up' विधि माना यगा है। वर्तमान में इस विधि को कम्पनियाँ अनेक रूपों में अपना रही हैं। इस विधि को अपनाने वाली कम्पनियाँ सबसे पहले सम्वर्द्धन उद्देश्य निश्चित करती है। तदुपरान्त कार्यक्रम का नियोजन करती है और अन्तिमतः उस कार्यक्रम की लागत की गणना करती है। यह लागत ही सम्वर्द्धन विनियोजित माना जाता है।

संवर्द्धन संमिश्र का प्रयोग एवं उसकी प्रभावशीलता का मूल्यांकन

(Use of Promotion Mix and Evaluation of its Effectiveness)

सम्वर्द्धन संमिश्र निर्धारण प्रक्रिया का यह अन्तिम चरण है। इस चरण पर विपणन प्रबन्ध निर्धारित सम्वर्द्धन संमिश्र को क्रियान्वित करके उसकी उसकी प्रभावशीलता का मूल्यांकन करते हैं ताकि वांछित संशोधन किये जा सकें। किसी प्रदत्त सम्वर्द्धन संश्रि की प्रभावशीलता का मूल्यांकन करना काफी कठिन कार्य होता है। उदाहरण के लिए यदि कोई उत्पाद ऐसा हो जिसकी यूनिट कीमत ज्यादा हो और कभी–कभी ही उसे खरीदा जाता हो तो ऐसे उत्पाद के सम्वर्द्धन हेतु अपनायी गयी संमिश्र की प्रभावशीलता के मूल्यांकन में काफी समय लगता है और यह तय करना कठिन हो जाता है कि वैयक्तिक विक्रय ने बिक्री में कितना योगदान दिया है और विज्ञापन अथवा अन्य सम्वर्द्धन उपकरणों ने कितना प्रभावशीलता का मूल्यांकन करने के लिए सम्भवतः अनुसंधान विधियों का प्रयोग किया जाना चाहिए।

पुनर्विलोकन प्रश्न

1. What do you mean by the "Marketing Communication Communications Mix" Concept? Describe the main Components of Marketing Communications Mix.

   'विक्रय संचार संमिश्र' विचारधारा से आप क्या समझते हैं? विपणन संचार संमिश्र के प्रमुख संघटकों का उल्लेख कीजिए।

2. Explain the 'Promotion Mix Determination Process' and discuss those factors which effect the Promotion Mix.

   'संवर्द्धन संमिश्र निर्धारण प्रक्रिया' को समझाइये और बताइये कि संवर्द्धन संमिश्र को कौन–कौन से घटक प्रभावित करते हैं।

अध्याय-16
विज्ञापन
(Advertising)

विज्ञापन का अर्थ एवं उसकी परिभाषाएँ
(Meaning and Definitions of Advertising)

अंग्रेजी भाषा का Advertising शब्द लेटिन के Advertere शब्द से उत्पन्न हुआ है, जिसका अर्थ 'मोड़ने' (to turn to) से होता है। व्यावसायिक लागत में Advertising शब्द का अर्थ ग्राहकों को विशिष्ट वस्तुओं एवं सेवाओं की ओर उनके बारे में जानकारी देकर मोड़ने से लिया जाता है। वस्तुतः विज्ञापन एक ऐसी व्यापक संचार क्रिया है, जिसके द्वारा नये ग्राहकों का निर्माण एवं विद्यमान ग्राहकों को स्थायी बनाया जाता है।

अनेक विद्वानों ने विज्ञापन के अर्थ को स्पष्ट करने के लिए अनेक परिभाषाएँ दी हैं। कुछेक परिभाषाएँ इस प्रकार हैं:

1. **लस्कर (Laskar) के अनुसार,** "विज्ञापन मुद्रणात्मक विक्रय कला है।"
2. **हाल (S.R. Hall) के अनुसार,** "विज्ञापन लिखित, मुद्रित या चित्रित विक्रय–कला है अथवा लिखित एवं मुद्रित शब्दों या चित्रों के माध्यम से सूचना प्रसारण है।"
3. **सी. एल. बॉलिंग (C.L. Bolling) के अनुसार,** "विज्ञापनों को वस्तु या सेवा की माँग उत्पन्न करने की कला कहा जा सकता है।"[1]
4. **फ्रेंक प्रेसब्री (Frank Presbery) के अनुसार,** "मुद्रित, लिखित, मौखिक अथवा रेखा–चित्रित विक्रयकला विज्ञापन है।"[2]
5. **जी. बी. गाइल्स (G.B. Giles) के अनुसार,** "विज्ञापन संचार का वह अव्यक्तिगत स्वरूप है, जिसका लक्ष्य आवश्यकीय रूप से ग्राहकों एवं सम्भावित ग्राहकों (जिनमें मध्यस्थ तथा वितरण की विभिन्न श्रृंखलायें भी सम्मिलित होती हैं) को पहचानी हुई संस्था, वस्तु या सेवा के प्रति समर्थ प्रवत्ति को अपनाने के लिए प्रोत्साहित करना है।"[3]
6. **अमेरिकन मार्केटिंग एसोसियेशन के अनुसार,** "विज्ञापन एक अभिज्ञात विज्ञापनकर्ता द्वारा अव्यक्तिगत रूप से विचारों, वस्तुओं या सेवाओं को प्रस्तुत करने एवं सम्वर्द्धन करने का ऐसा प्रारूप है, जिसके लिए विज्ञापनकर्ता द्वारा भुगतान किया जाता है।"[4]

   इस परिभाषा को उत्तम एवं पूर्ण माना गया है। इसके अनुसार (क) विज्ञापन एक अवैयक्तिक संचार है। (ख) विज्ञापन के लिए विज्ञापनकर्ता को व्यय करना होता है। (ग) विज्ञापन में विज्ञापनकर्ता जनता के सम्मुख होता है।
7. **स्टेन्टन (W.J. Stanton) के अनुसार,** "वे समस्त क्रियायें विज्ञापन कहलाती हैं जो कि समूह के सम्मुख किसी उत्पाद, सेवा या विचार के बारे में खुले रूप से अवैयक्तिक तौर पर मौखिक या दश्यात्मक सन्देश (जिसे विज्ञापित सन्देश

---

1 "Advertising can be described as the art of creating a demand for an article or a service."
—**C.L. Bolling**

2 "Printed, written, spoken or a graphic salesmanship..........advertising."
—**Frank Presbery**

3 **G.R. Giles,** op. cit., p. 72.

4 "Advertising is and paid form of non-personal presentation and promotion of ideas, goods or services by an identified sponsor."
—**AMA**

Advertisement कहा जाता है) एक या अनेक साधनों द्वारा प्रस्तुत करती है और जिसके लिए अभिज्ञात विज्ञापनकर्ता द्वारा भुगतान किया जाता है।[5]

वस्तुतः यह परिभाषा अमेरिकन मार्केटिंग एसोसिएशन द्वारा दी गई परिभाषा पर एक सुधार है। यह परिभाषा 'विज्ञापन' तथा 'विज्ञापन सन्देश' में भी अन्तर स्पष्ट करती है जो कि अन्य परिभाषायें नह करती हैं। इस परिभाषा के अनुसार 'Advertisement' विज्ञापन सन्देश मात्र होता है और 'Advertising' सन्देश को तैयार करने एवं वांछित बाजार तक पहुँचाने की प्रक्रिया होती है।

सरल शब्दों में 'विज्ञापन मूलतः संचार प्रक्रिया है, जिसमें एक निश्चित विज्ञापनकर्ता अवैयक्तिक साधनों एवं सम्पर्कों द्वारा जनता को वस्तुओं एवं सेवाओं के बारे में जानकारी देता है तथा उन्हें क्रय करने हेतु प्रोत्साहित करता है। इस प्रक्रिया का व्यय भार विज्ञापनकर्ता वहन करता है।'

विज्ञापन की विशेषताएँ
(Characteristics of Advertising)

विज्ञापन की उपर्युक्त परिभाषाओं के विवेचन से स्पष्ट होता है कि विज्ञापन में निम्नलिखित विशेषताएँ होती हैंः

1. **व्यापक संचार का प्रारूप**– विज्ञापन न केवल संचार का अपितु व्यापार संचार का प्रमुख प्रारूप है। पत्र, तार, टेलीफोन, वैयक्तिक विक्रय आदि निजी एवं सीमित संचार के प्रारूप हैं किन्तु पत्र–पत्रिकाओं में प्रकाशित कहानियाँ, टेलीविजन पर खेला गया नाटक, आकाशवाणी पर प्रसारित गीत एवं भाषण आदि व्यापक संचार के प्रारूप हैं।
2. **अवैयक्तिक संचार**–विज्ञापन अवैयक्तिक संचार हैं, क्योंकि दिये जाने वाले सन्देश प्रत्यक्ष रूप से किसी व्यक्ति विशेष को नह जाते हैं, अपितु जनता के एक बड़े वर्ग या समूह को दिये जाते हैं।
3. **प्रदत्त प्रारूप**–विज्ञापन को व्यापक अवैयक्तिक संचार का प्रदत्त प्रारूप माना गया है क्योंकि विज्ञापन कार्यों के लिए विज्ञापनकर्ता को भुगतान करना होता है। इस विशेषता के कारण विज्ञापन एवं प्रकाशन में अन्तर उत्पन्न हो जाता है।
4. **निश्चित विज्ञापनकर्ता**–प्रत्येक विज्ञापन का एक निश्चित विज्ञापनकर्ता होता है। विज्ञापनों को देखकर, पढ़कर या सुनकर उसके विज्ञापनकर्ता का पता लगाया जा सकता है क्योंकि विज्ञापन खुले रूप से किये जाते हैं। यह विशेषता विज्ञापन को प्रकाशन से अलग करती है।
5. **विस्तत एवं स्पष्ट अभिव्यक्ति** –विज्ञापनों द्वारा जनता तक पहुँचाये जाने वाले सन्देश विविध रंगों, शब्दों, चित्रों आदि से सुसज्जित होते हैं जिससे वे ग्राहकों को एक स्पष्ट एवं विस्तत जानकारी प्रदान करते हैं। इसलिए विज्ञापन को विस्तत एवं स्पष्ट अभिव्यक्ति का माध्यम माना गया है।
6. **ग्राहक निर्माण**–विज्ञापन का उद्देश्य नये ग्राहकों का निर्माण करना एवं विद्यमान ग्राहकों को स्थायी बनाये रखना होता है।
7. **दैनिक व्यावसायिक क्रिया**–विज्ञापन एक व्यावसायिक क्रिया है जिसे प्रत्येक व्यवसाय को किसी न किसी रूप में नित्यप्रति करना पड़ता है ताकि व्यवसाय बढ़ाया जा सके।

क्या विज्ञापन वस्तुओं की लागत बढ़ाता है?
(Does Advertising Increase Cost of Products?)

सर्वसाधारण में यह धारणा घर कर गयी है कि विज्ञापन वस्तुओं की लागत बढ़ाता है। जिस प्रकार गोदाम व्यय, मजदूरी व्यय, बिक्री व्यय वस्तु की लागत बढ़ाते हैं उसी प्रकार **विज्ञापन व्यय भी वस्तु की लागत बढ़ाते हैं जिसका प्रभाव अन्त में उपभोक्ता पर पड़ता है। यह धारणा उचित प्रतीत नह होती है।** व्यवहार में तो विज्ञापन व्ययों से वस्तु की लागत में निम्न प्रकार कमी आ जाती है–

5. **W.J. Stanton,** p. 377.

1. विज्ञापन के कारण माँग बढ़ती है जिसको पूरा करने के लिए फैक्टरी को पूरी क्षमता पर कार्य करना पड़ता है। इससे प्रति इकाई लागत कम हो जाती है।
2. विज्ञापन करने से कुल बिक्री बढ़ती है जिससे प्रति इकाई बिक्री व्ययों में कमी आती है।
3. माँग बढ़ने के कारण उत्पादन वहत् पैमाने पर किया जाता है जिससे विशिष्टीकरण को बढ़ावा मिलता है। इससे वस्तु की क्वालिटी में सुधार होता है तथा लागत कम होती है।
4. विज्ञापन माँग में मौसमी कमी के प्रभाव को कम करने में सहायक होता है। इससे उत्पादन बनाये रखने में आसानी रहती है जिससे प्रति इकाई लागत कम ही बनी रहती है।
5. विज्ञापन के कारण कच्चे एवं पक्के माल में गतिशीलता बनी रहती है जिससे पूँजी का सदुपयोग होता है और प्रति इकाई लागत कम ही बनी रहती है।
6. विज्ञापन करने से वस्तु के सम्बन्ध में बिक्री व्ययों में कमी आती है। ग्राहक को अधिक देर तक समझाने की आवश्यकता नह रहती है।

इस प्रकार इन आधारों पर कहा जा सकता है कि विज्ञापन वस्तुओं की लागत में कमी करता है।

विज्ञापन के उद्देश्य
(Objectives of Advertising)

वर्तमान युग "विज्ञापन का युग है।" विज्ञापन आधुनिक व्यवसाय तथा वाणिज्य की धुरी है। वर्तमान व्यापार की जीवन संजीवनी भी विज्ञापन ही है।

1. **कन्वर्स, ह्यू जी एवं मिचल** की राय में, "विज्ञापन का उद्देश्य माल, सेवाओं या विचारों को सम्भावित क्रेताओं के बड़े समूहों को बेचना है।"[6]
2. **इ. एफ. एल. ब्रीच** के अनुसार, "विज्ञापन का उद्देश्य उत्पादन एवं वितरण की प्रतिशत लागत में कमी करना है।"[7]

एक विपणन प्रबन्धक द्वारा विज्ञापन कार्यक्रम बनाते समय पहले उद्देश्य निर्धारित किये जाते हैं। यह उद्देश्य अल्पकालिक व दीर्घकालिक दोनों प्रकार के हो सकते हैं। साधारणतया विज्ञापन का दीर्घकालिक उद्देश्य वस्तु को बेचना व अधिक लाभ कमाना है। लेकिन यह उद्देश्य बहुत व्यापक है। अतः विपणन कार्यक्रम में विशिष्ट उद्देश्यों की स्थापना की जाती है। यह उद्देश्य विपणन स्थिति पर आधारित होते हैं लेकिन मुख्यतया विज्ञापन निम्न उद्देश्यों की पूर्ति हेतु किये जाते हैं। इन्हे को विपणन उद्देश्य कहते हैं।"

1. **सभी विक्रय कार्य करना (To do entire selling job):** विज्ञापन का उद्देश्य विक्रय कार्य करना होता है। जैसा कि हम देखते हैं डाक द्वारा व्यापार में सभी कार्य विज्ञापन के द्वारा ही किया जाता है।
2. **नयी वस्तु का आरम्भ करना (To introduce new product):** विज्ञापन का दूसरा उद्देश्य नयी वस्तु की सूचना देना है जिससे कि सम्भावित ग्राहकों में चेतना आ जाय और वे उस वस्तु की ब्राण्ड से परिचित हो जायें जिससे कि वे उसको क्रय कर सकें।
3. **मध्यस्थों को वस्तु बेचने के लिए विवश करना (To force middlemen to handle the product):** विज्ञापन का तीसरा उद्देश्य मध्यस्थ विक्रेताओं को इस बात के लिए विवश कर देना है कि वे उस निर्माता की वस्तुओं को अपने यहाँ विक्रय हेतु रखें जिनका विज्ञापन किया जा रहा है। यह तभी सम्भव है जबकि ग्राहक विज्ञापनों से प्रभावित होकर उस वस्तु को क्रय करने के लिए उन मध्यस्थ विक्रेताओं से पूछताछ करें।

---

6. "The purpose of advertising is to sell goods, services of ideas to a large group of prospective purchasers."
—Converse, Huegy & Mitchell : *Elements of Marketing,* p. 639.
7. "The purpose of advertising is to reduce percentage cost of production and distribution."
—*E.F.L. Breach*

4. **ब्राण्ड वरीयता बनाना (To build brand preference):** विज्ञापन इस उद्देश्य से भी कराया जा सकता है कि ब्राण्ड के प्रति वरीयता बन जाय जिससे कि उपभोक्ता उसी ब्राण्ड को खरीदे और प्रतियोगियों के लिए कठिन कर दे कि वे अपनी वस्तुओं को बेच सकें।

5. **उपभोक्ताओं को याद दिलाना (To remind the consumers):** विज्ञापन के द्वारा उपभोक्ताओं को क्रय करने के लिए याद दिलाया जा सकता है। यह याद बार–बार विज्ञापन कराकर दिलाया जा सकता है।

6. **परिवर्तनों के बारे में सूचित करना (To inform about changes):** विज्ञापन का उद्देश्य संस्था की नीतियों व वस्तुओं में परिवर्तन की सूचना देने का भी होता है। यह उद्देश्य नये मॉडल की सूचना देना, मूल्यों में परिवर्तनों को बताना, आदि से सम्बन्धित हो सकते है।

7. **प्रतियोगी विज्ञापनों को प्रभावहीन करना (To neutralize competitors' advertising):** विज्ञापनों का उद्देश्य प्रतियोगी संस्था द्वारा किये जा रहे विज्ञापनों के प्रभावों को शून्य करना भी हो सकता है।

8. **विचारयुक्त क्रय करना (To provide rationalization for buying):** कुछ विद्वान कहते हैं कि क्रेता विवेकहीन होता है। अतः विज्ञापन का उद्देश्य क्रेता को विवेकशील या विचारयुक्त बनाना है जिससे कि वह विज्ञापनकर्ता व प्रतियोगी संस्थाओं की वस्तुओं में अन्तर कर सके और सबसे अच्छी वस्तु का चुनाव कर सके।

9. **क्रेताओं को नये प्रयोगों की जानकारी देना (To acquaint buyers with new uses):** विज्ञापन का उद्देश्य वस्तुओं के नये–नये प्रयोगों की सूचना देना है जिससे कि क्रेता उनसे लाभ उठा सके।

10. **मध्यस्थों व विक्रयकर्ताओं के नैतिक स्तर को उठाना (To improve the morale of dealers and salesmen):** विज्ञापन का उद्देश्य मध्यस्थों व विक्रयकर्ताओं के नैतिक स्तर को ऊँचा उठाना है जिससे कि वे अधिक विक्रय कर सकें।

    विज्ञापन के उपर्युक्त उद्देश्य अपूर्ण हैं। इसको इस प्रकार कह सकते हैं कि **विज्ञापन के उद्देश्य उपर्युक्त लिखित से कह अधिक होते हैं** जो विपणन कार्यक्रम पर आधारित होते हैं। **प्रो. विलियम जे. स्टाण्टन ने विज्ञापन उद्देश्यों को दो भागों में बाँटा है**–एक तो वे जो सामान्य हैं और दूसरे वह जो विशिष्ट हैं। सामान्य में तो वे विक्रय को रखते हैं लेकिन विशिष्ट में (1) वैयक्तिक विक्रय कार्यक्रम में सहायता करना; (2) डीलर सम्बन्ध सुधारना; (3) नयी वस्तु या मूल्य सूची प्रस्तुत करना; (4) असभ्य व्यक्तियों तक पहुँचना; (5) नये भौगोलिक बाजार में प्रवेश करना; (6) उद्योग की बिक्री बढ़ाना; (7) वस्तु के प्रयोगों में वद्धि करना; (8) संस्था की साख बढ़ाना; (9) स्थानापन्न वस्तुओं का मुकाबला करना रखते हैं।

    इस प्रकार हम इस निर्णय पर आते हैं कि विज्ञापन के उद्देश्य बहुत से हैं लेकिन मुख्य रूप से विक्रय वद्धि करना, सूचना देना व लाभ बढ़ाना ही हैं।

विज्ञापन के प्रकार
(Types of Advertising)

सामान्यता विज्ञापन को अग्रलिखित वर्गों में विभक्त किया जा सकता है।

I. वस्तुगत एवं संस्थागत विज्ञापन
(Product and Institutional Advertising)

(अ) **वस्तुगत विज्ञापन** एक ऐसा विज्ञापन होता है जिसमें विज्ञापनकर्ता बाजार को उसकी वस्तुओं या सेवाओं के बारे में सूचना देता है जिससे कि उस वस्तु विशेष या सेवा की बिक्री बढ़ सके अथवा ब्रान्ड की ख्याति बढ़ सके। उदाहरणार्थ 'प्रेस्टिज कुकर' का विज्ञापन वस्तुगत विज्ञापन है क्योंकि यह 'प्रेस्टिज कुकर' की बिक्री को बढ़ाने के लिए किया गया है। वस्तुगत **विज्ञापन** निम्न भागों में विभक्त किये जा सकते हैं:

1. ***प्रत्यक्षकार्य एवं अप्रत्यक्षकार्य विज्ञापन (Direct Action and Indirect Action Advertising):*** प्रत्यक्ष कार्य विज्ञापन वह विज्ञापन है जिसमें विज्ञापनकर्ता विज्ञापन पाठकों में शीघ्र प्रत्युत्तर प्राप्त करने की इच्छा रखता

है। इस उद्देश्य की पूर्ति के लिए विज्ञापनों में कूपन आदि दे दिये जाते हैं जिन्हें विज्ञापन पाठकों से भरवाकर मँगवाया जाता है। अप्रत्यक्ष कार्य विज्ञापन वह विज्ञापन है जिसमें विज्ञापनकर्ता विज्ञापन–पाठकों को उसकी वस्तुओं का स्थाई ग्राहक बनाने एवं वस्तुओं की माँग बढ़ाने की इच्छा रखता है। उदाहरणार्थ 'आपके बाल रेशम जैसे मुलायम हो जायेंगे, बालों के संरक्षण का आधुनिक साधन, विश्वभर में सौन्दर्य का प्रतीक नया 'हेलो कास्मेटिक शैम्पू' अप्रत्यक्ष कार्य विज्ञापन है जो वस्तुओं के गुणों के बारे से सूचना देते हैं और दीर्घकाल में जाकर क्रय हेतु ग्राहकों को प्रोत्सहित करते हैं।

2. ***प्राथमिक एवं चयनात्मक विज्ञापन (Primary and Selective Advertising):*** प्राथमिक विज्ञापन वह विज्ञापन होता है जो सामान्य तौर पर वस्तु की माँग में वद्धि करता है जैसेः 'टैरीन मिश्रित कपड़े व्यक्तित्व को आकर्षक बनाते हैं।' यह विज्ञापन किसी विशिष्ट मिल के बने सूती कपड़ों का विज्ञापन न करके सामान्यतया सूती कपड़ों की माँग को बढ़ाता है। चयनात्मक विज्ञापन वह विज्ञापन है जो कि विशिष्ट वस्तु की माँग में वद्धि करता है, जैसे 'आप कैसे दिखना चाहते हैं यह बिन्नी समझती है। बिन्नी आपके लिए पेश करती है नाना प्रकार के मोहक टेरीन मिश्रित कपड़े जिससे आप अवसर के अनुकूल परिधान पहन सकें, खासतौर से अविस्मरणीय अवसरों पर।' यह चयनात्मक विज्ञापन है जो बिन्नी के टेरीन मिश्रित कपड़ों की माँग में वद्धि करता है।

(ब) **संस्थागत विज्ञापन** एक ऐसा विज्ञापन होता है जो विक्रेता–संस्था की ख्याति को बढ़ाने के लिए किया जाता है। ऐसे विज्ञापन का उद्देश्य किसी विशिष्ट वस्तु या सेवा को बेचना नह होता है, बल्कि संस्था की जन–ख्याति को ऊँचा करना होता है। उदाहरणार्थ, 'भारत हेवी इलेट्रिकल्स गर्व के साथ अपनी 22 करोड़ रुपये की भूल घोषित कर रहे हैं। ऐसे विज्ञापन के साथ जब भारत हैवी इलेक्ट्रिकल्स लिमिटेड अपनी प्रगति का वर्णन (वर्ष 1973–74 की प्रगति) करता है तो इसे संस्थागत विज्ञापन कहा जाता है। ऐसे विज्ञापन एक संस्था द्वारा बनाए जाने वाले उत्पादों की बिक्री में अप्रत्यक्ष रूप से वद्धि करते हैं। ये विज्ञापन संस्था की नीतियों के बारे में व्यापारियों तथा ग्राहकों को सूचनाएँ देते हैं।

II. राष्ट्रीय एवं स्थानीय विज्ञापन

(National and Local Advertising)

(अ) **राष्ट्रीय विज्ञापन** वे विज्ञापन हैं जो कि उत्पादकों, थोक व्यापारियों एवं अन्य निर्माणकर्ताओं द्वारा राष्ट्रीय स्तर पर किये जाते हैं। ऐसे विज्ञापन वस्तु विशेष की माँग को उत्पन्न करने एवं मध्यस्थों की सेवायें प्राप्त करने के किये जाते हैं। ये स्थान विशेष पर ध्यान नह देते हैं बल्कि वस्तु पर ध्यान देते हैं। इनका कार्य यह देखना नह होता है कि वस्तुयें कौन से स्थान पर बेची जा रही हैं, अपितु इनका कार्य तो वस्तु के विक्रय को बढ़ाना होता है। यदि उत्पादक आदि किसी एक शहर में भी विज्ञापन करता है तो यह राष्ट्रीय विज्ञापन कहलाता है।

(ब) इसके विपरीत **स्थानीय विज्ञापन** वे विज्ञापन हैं जो कि स्थानीय विक्रेताओं द्वारा सामान्यतया फुटकर व्यापारियों द्वारा स्थानीय समाचार पत्रों या अन्य माध्यमों से किए जाते हैं। इनका उद्देश्य वस्तुओं की उपलब्धि के स्थान विशेष के बारे में सूचना देना होता है। ये विज्ञापन किसी विशेष ब्रान्ड आदि पर जोर नह देते हैं।

III. उपभोक्ता एवं औद्योगिक विज्ञापन

(Consumer and Industrial Advertising)

(अ) उपभोक्ता विज्ञापन वे विज्ञापन हैं जो उपभोक्ता वस्तुओं के बारे में उपभोक्ताओं के हितों के लिए किए जाते हैं। विज्ञापनों का एक बड़ा भाग इन्ह विज्ञापनों का होता है।

(ब) औद्योगिक विज्ञापन वे विज्ञापन होते हैं जो औद्योगिक वस्तुओं के बारे में औद्योगिक प्रयोक्ताओं (Industrial users) के हितों के लिए किये जाते हैं। कुछ विद्वान इन्हें व्यापारिक विज्ञापन भी कहते हैं जो व्यापार करने वाली संस्थाओं को माल खरीदने के लिए प्रेरित करते हैं। ऐसे विज्ञापनों में कृषि विज्ञापनों, व्यापार विज्ञापनों आदि को सम्मिलित किया जा सकता है।

IV. निर्माता, उत्पादक, मध्यस्थ एवं फुटकर व्यापारी विज्ञापन
(Manufacturers, Producers, Middlemen and Retailers Advertising)

जो विज्ञापन निर्माताओं द्वारा किया जाता है उसे निर्माता विज्ञापन या राष्ट्रीय विज्ञापन कहा जाता है। जो विज्ञापन उत्पादकों द्वारा किया जाता है उसे उत्पादकों द्वारा किया गया विज्ञापन कहा जाता है। यह विज्ञापन भी राष्ट्रीय विज्ञापन कहलाता है। मध्यस्थों द्वारा किया गया विज्ञापन मध्यस्थ विज्ञापन कहलाता है। ऐसा विज्ञापन राष्ट्रीय एवं स्थानीय हो सकता है। फुटकर व्यापारियों द्वारा किया गया विज्ञापन फुटकर व्यापारिक विज्ञापन कहलाता है। यह स्थानीय विज्ञापन कहलाता है।

V. सहकारी विज्ञापन
(Cooperative Advertising)

सहकारी विज्ञापन वह विज्ञापन है जो कि स्थानीय स्तर पर फुटकर व्यापारियों द्वारा राष्ट्रीय स्तर पर विज्ञापित वस्तु के प्रचार–प्रसार के लिए किया जाता है और जिसका व्यय राष्ट्रीय स्तर के विज्ञापन एवं स्थानीय विज्ञापन द्वारा वहन किया जाता है। वस्तुतः सहयोगी आधार पर किये गये विज्ञापन सहकारी विज्ञापन कहलाते हैं। ये दो तरह के हो सकते हैं। प्रथम क्षैतिज सहकारी विज्ञापन एवं द्वितीय लम्बवत् सहकारी विज्ञापन। क्षैतिज सहकारी विज्ञापन (Horizontal Cooperative Advertising) ऐसा विज्ञापन है जिसमें एक समान वस्तु के निर्माता एवं उत्पादक मिलकर विज्ञापन करते हैं। Indian Tea Board एवं Associates Cement Company द्वारा दिये गये विज्ञापन क्षैतिज विज्ञापन के उदाहरण हैं। लम्बवत् सहकारी विज्ञापन (Vertical Co-operative Advertising) वे विज्ञापन हैं जो कि वस्तुओं के निर्माताओं एवं फुटकर व्यापारियों के द्वारा सहयोगी आधार पर किये जाते हैं। लम्बवत सहकारी विज्ञापनों को ही पाश्चात्य विद्वान सहकारी विज्ञापन मानते हैं जो कि ठीक नह क्योंकि इससे सहकारिता का क्षेत्र सीमित हो जाता है।

VI. अन्वेषक तथा स्थिरकर्ता विज्ञापन
(Pioneering and Sustaining Advertising)

जो विज्ञापन किसी वस्तु के लिए नये बाजार का निर्माण करते हैं उन्हें अन्वेषक विज्ञापन कहा जाता है जैसे भारत में टेलीविजन की माँग उत्पन्न करने वाले विज्ञापन। जो विज्ञापन पहले से ही प्रचलित वस्तु की माँग को स्थिर बनाये रखने के लिए किये जाते हैं वे स्थिरकर्ता विज्ञापन कहलाते हैं।

VII. धक्का एवं खच विज्ञापन
(Push and Pull Advertising)

जो विज्ञापन मध्यस्थों को माल क्रय करने के लिए किये जाते हैं, उन्हें 'धक्का' विज्ञापन कहा जाता है और जो विज्ञापन ग्राहकों को माल क्रय करने के लिए किये जाते हैं, उन्हें 'खच' विज्ञापन कहा जाता है।

विज्ञापन के लाभ एवं महत्व
(Advantages and Importance of Advertising)

आज के समय में विज्ञापन से समाज के भिन्न वर्गों को अनेकों लाभ प्राप्त होते हैं। इसीलिए आधुनिक युग विज्ञापन युग कहलाता है। वाटसन ने ठीक ही कहा है कि हम जहाँ कह हैं, विज्ञापन हमारे साथ हैं। (Wherever we are, Advertising is with us) इंग्लैंड के भूतपूर्व प्रधानमंत्री विलियम ग्लैडस्टोन ने कहा था कि "व्यवसाय के लिए विज्ञापन का वही महत्व है जो उद्योग में भाप शक्ति या चालनशक्ति का है।" (Advertising is to business what steam is to industry propelling power) विज्ञापन एवं प्रकाशन का दावा है कि "मैं वर्तमान की आवाज हूं। भविष्य का बना हूं तथा भूतकाल के आवरण का तना हूं। मैं शांति एवं युद्ध दोनों की कठिनाइयां समान रूप से बताता हूं। मैं प्रकाश, ज्ञान तथा शक्ति हूं।"

विज्ञापन के लाभों को हम निम्न चार भागों में बांटकर अध्ययन कर सकते हैं–

विज्ञापन के लाभ (Advantages of Advertising)

उत्पादकों को लाभ
(Advantages to Producers
or Manufacturers)

1. प्रतिस्पर्धा में सफलता
2. मध्यस्थों की सुविधा
3. बड़े पैमाने की मितव्ययता
4. ख्याति में वद्धि
5. विक्रयकर्ताओं के कार्य में सरलता
6. मांग में वद्धि
7. उत्पाद में परिवर्तन की सूचना

उपभोक्ताओं को लाभ
(Advantages to Consumers)

1. ज्ञानवर्द्धन
2. उत्पाद के चुनाव में सुविधा
3. रहन–सहन के स्तर में वद्धि
4. कीमतों की जानकारी
5. तुलनात्मक अध्ययन
6. आवश्यक बातों का स्मरण करना

मध्यस्थों को लाभ
(Advantages to Middlemen)

1. विक्रय में सुविधा
2. जीविका का स्थायी साधन
3. विक्रेताओं को समर्थन एवं प्रोत्साहन
4. बिक्री में वद्धि
5. ग्राहकों की सूचनाएं

समाज को लाभ
(Advantages to Society)

1. अनेक व्यक्तियों की जीविका
2. समाज के रहन–सहन के स्तर में वद्धि
3. समाचार पत्रों की आय में वद्धि
4. सभ्यता का विकास
5. देश का आर्थिक विकास

I. उत्पादकों को लाभ
(Advantages to Producers)

1. **प्रतिस्पर्धा में सफलता (Success in Competition):** विज्ञापन के कारण ही निर्माता या उत्पाद प्रतिस्पर्धा में सफलता प्राप्त कर सकता है। सामूहिक विज्ञापन अस्वस्थ प्रतिस्पर्धा का विनाश करता है और विज्ञापन व्ययों में बचत करता है।
2. **मध्यस्थों की सुविधा (Convenience of Middlemen):** विज्ञापन से निर्माता या उत्पादक को मध्यस्थ मिल जाते हैं जो वस्तु को अपनी दुकान पर बेचने हेतु रखने को तैयार हो जाते हैं।
3. **बड़े पैमाने की मितव्ययता (Large Scale Economies):** विज्ञापन के द्वारा वस्तु की माँग बढ़ जाती है। जिससे उत्पादक को उसकी पूर्ति हेतु अपने निर्माण कार्य को बड़े पैमाने पर करना पड़ता है। फलतः बड़े पैमाने के निर्माण के सभी लाभ उत्पादक को मिल जाते हैं जैसे उत्पादन लागत में कमी, आधुनिक मशीनों का प्रयोग आदि।
4. **ख्याति में वद्धि (Increase in Goodwill):** विज्ञापन उत्पादक की ख्याति में वद्धि करता है। इसके कई ज्वलन्त उदाहरण हैं जैसे हिन्दुस्तान लीवर कंपनी की ख्याति उसके साबुन एवं डालडा घी ने बनायी है। फिलिप्स कंपनी की ख्याति उसके रेडियो व बल्बों ने बनायी है।
5. **विक्रयकर्ताओं के कार्य में मदद (Help in Salesmen's Work):** जिन वस्तुओं का विज्ञापन होता है उन वस्तुओं के विक्रेताओं को वस्तु के संबंध में ग्राहकों को जानकारी देने का कार्य आसान हो जाता है और साथ ही अधिक बिक्री कर निर्माता को लाभ पहुंचाते हैं।

6. **माँग में वद्धि (Increase in Demand):** विज्ञापन से निर्माताओं को एक लाभ यह है कि इससे वस्तु की माँग में वद्धि हो जाती है। इसलिए बर्टन ने लिखा है कि "विज्ञापन लगातार माँग का सजन करने में सहायता करता है।"

7. **उत्पादों के परिवर्तनों की सूचना (Information about Changes in Product):** विज्ञापन माध्यम से निर्माता द्वारा उत्पादों में किये गये परिवर्तनों की सूचना बहुत कम व्यय में तथा शीघ्रतापूर्वक दी जा सकती है।

II. उपभोक्ताओं को लाभ

(Advantages to Consumers)

1. **ज्ञानवर्द्धक (Increase in Knowledge):** विज्ञापन उपभोक्ताओं के ज्ञान में वद्धि कर उपभोक्ता को लाभ पहुंचाता है। विज्ञापन वस्तुओं के विभिन्न प्रयोगों की जानकारी देता है जिससे उपभोक्ता के ज्ञान में वद्धि होती है।

2. **उत्पाद के चुनाव में सुविधा (Convenience in Choosing a Product):** विज्ञापन उपभोक्ता को वस्तु का चुनाव करने में सुविधा प्रदान करता है और समय की बचत करता है।

3. **रहन-सहन के स्तर में वद्धि (Increase in Standard of Living):** विज्ञापन उपभोक्ता के रहन–सहन के स्तर में वद्धि करता है। विज्ञापन उपभोक्ता को अधिक वस्तुओं के प्रयोग को प्रेरित करता है। एक व्यक्ति जितनी अधिक वस्तुओं का उपयोग करता है उसका स्तर उतना ही ऊंचा माना जाता है।

4. **कीमतों की जानकारी (Information about Prices):** साधारणतया विज्ञापन में उत्पादों की कीमतें दी रहती हैं जिससे उपभोक्ता को उनके मूल्यों की जानकारी हो जाती है उन्हें धोखा नह दिया जा सकता है।

5. **तुलनात्मक अध्ययन (Comparative Study):** उपभोक्ता घर पर बैठे ही विज्ञापनों के आधार पर उत्पादों का तुलनात्मक अध्ययन कर सकता है और उत्तम उत्पाद को क्रय करने का निर्णय ले सकता है।

6. **आवश्यक बातों का स्मरण करना (Reminds about Essential Things):** विज्ञापन बार–बार किया जाता है अतः वह उपभोक्ता को आवश्यक बातों का बार–बार स्मरण कराता रहता है जैसे टूथ पेस्ट का विज्ञापन दांतों की सफाई के लिए याद दिलाता है।

III. मध्यस्थों को लाभ

(Advantages to Middlemen)

1. **विक्रय में सुविधा (Convenience in Selling):** जिन उत्पादों का विज्ञापन निर्माता द्वारा किया जाता है उनका पुनः विज्ञापन मध्यस्थों के लिए करना आवश्यक नह है। उन वस्तुओं के लिए तो क्रेता स्वतः ही आते हैं और ऐसे क्रेताओं को अधिक समझाने की भी आवश्यकता नह होती है। अतः उनके लिए विक्रय सुविधाजनक हो जाता है।

2. **जीविका का स्थायी साधन (Stable Means of Livelihood):** विज्ञापन की मांग में स्थायित्व आ जाता है और उत्पाद के क्रेता पूरे वर्ष भर मिलते रहते हैं जिसका परिणाम यह होता है कि मध्यस्थों की जीविका का स्थायी साधन हो जाता है।

3. **विक्रेताओं को समर्थन एवं प्रोत्साहन (Help and Encouragement to Sellers):** विज्ञापन मध्यस्थ विक्रेताओं को एक प्रकार से समर्थन एवं प्रोत्साहन देता है तथा उनका कार्य आसान बनाता है।

4. **बिक्री में वद्धि (Increase in Sales):** जिन वस्तुओं का विज्ञापन होता है उनकी बिक्री अधिक होती है जिससे मध्यस्थों के लाभ में वद्धि होती है।

5. **ग्राहकों को सूचनाएं (Information to Customers):** विज्ञापन ग्राहकों को वस्तु संबंधी अनेक सूचनाएं देते हैं।

IV. समाज को लाभ

(Advantages to Society)

1. **अनेक व्यक्तियों को जीविका (Employment to Many Persons):** विज्ञापन में अनेक लेखकों, कलाकारों, एवं विशेषज्ञों की आवश्यकता पड़ती है। इन लोगों का पेट भरने का सिर्फ यही एक साधन है। इससे अतिरिक्त बहुत सी एडवरटाइजिंग फर्म भी स्थापित हो जाती है जिनमें बहुत से कर्मचारी कार्य करते है। ये संस्थाएं भी विज्ञापन से जीविका अर्जित करती हैं।

2. **समाज के रहन-सहन के स्तर में वद्धि (Increase in Standard of Living):** विज्ञापन उत्पादों का उपयोग बढ़ाता है जिससे समाज के रहन–सहन के स्तर में वद्धि होती है।

3. **समाचार पत्रों की आय में वद्धि (Increase in Income of Newspapers):** समाचार पत्रों को विज्ञापन से अपनी कुल आय का 75 प्रतिशत मिलता है तथा शेष 25 प्रतिशत समाचार पढ़ने वालों से मिलता है। इस प्रकार विज्ञापन समाचार पत्रों की आय का एक मुख्य साधन है। विज्ञापनों के कारण ही समाचार पत्र पढ़ने वालों को समाचार पत्र भी कम मूल्य पर मिल जाते हैं।

4. **सभ्यता का विकास (Growth of Civilization):** विज्ञापन एक देश की सभ्यता का विकास करता है इसलिए किसी विद्वान ने कहा है कि विज्ञापन को सभ्यता का विकास तत्व कहा जा सकता है।

5. **देश का आर्थिक विकास (Economic Development of the Country):** विज्ञापन एक देश के आर्थिक विकास में भारी योगदान देता है। विज्ञापन के कारण ही उद्योगों का विकास होता है तथा नये–नये उद्योग स्थापित होते हैं।

विज्ञापन की आलोचना
(Criticism of Advertising)

सभी विज्ञापनकर्ता ईमानदार नह होते और न हो सकते हैं। एक जाने–माने अमेरिकन विज्ञापनकर्ता ने कुछ समय पहले यह कहा था कि भारत में अच्छा विज्ञापन विश्व के विज्ञापनों में सबसे उत्तम है, किंतु बुरा विज्ञापन विश्व के बुरे से बुरे विज्ञापन से भी बुरा है। विज्ञापन का नियंत्रण करना बहुत कठिन है। यह असंभव है क्योंकि उसमें बुराई क्या है, यह साबित करना आसान नह है। क्योंकि जो कुछ भी बुरा दिखाई देता है वह विज्ञापन का केंद्रीय सार (Theme) प्रमाणित हो जाता है। विज्ञापन से होने वाले नुकसान या हानि को प्रमाणित करना असंभव है। विज्ञापन की आलोचना निम्न आधारों पर की जाती है–

1. **खराब एवं हानिकारक उत्पादों का भी प्रचार किया जाता है (Bad & Harmful Products are also Publicised):** बहुधा ग्राहक विज्ञापनकर्ता द्वारा दी गई दलीलों के आधार पर ही वस्तुएं खरीदते हैं। ग्राहक पहले ऐसी वस्तु की खामियां या विज्ञापनकर्ताओं की ईमानदारी का पता नह लगा पाते। वे वस्तु के उपयोग के बाद ही उसकी खामियों को जान सकते हैं। विज्ञापन की तीव्र आलोचना इसलिए की जाती है, क्योंकि घटिया या दोषपूर्ण वस्तुओं के उत्पादक भी उनका विज्ञापन अच्छी और श्रेष्ठ वस्तुओं की भांति करते हैं।

2. **विज्ञापनकर्ता केवल विक्रय में ही रूचि लेते हैं (Advertisers are Interested only on Sales):** उत्पादन के बाद उत्पादक को कम से कम उत्पादन लागत तो वसूल करनी ही पड़ती है। उपभोक्ताओं को होने वाली हानि या पीड़ा से उसका कोई संबंध नह होता। इसके लिए वह विज्ञापन का सहारा लेता है। ऐसे विज्ञापनों से उपभोक्ताओं को हानि होती है।

3. **अनावश्यक चीजें लाई व विक्रय की जाती हैं (Unnecessary Products are Sold in the Market):** कई चीजें जैसे शराब, सिगरेट आदि का विक्रय अतिशीघ्र हो जाता है, क्योंकि उनके लिए विभिन्न प्रकार के विज्ञापन किए जाते हैं। कई लोग विज्ञापन में बताए गए गुणों और उपयोगों से आकर्षित होते हैं तथा उन वस्तुओं को खरीद लेते हैं।

4. **अच्छी वस्तुएं बाजार से बाहर निकाल दी जाती हैं (Good Products are taken out of the Market):** ग्रेशम का नियम (Greysham's Law) विपणन में लागू होता है। बैंकिंग का जाना–माना ग्रेशम का नियम है कि "अच्छी मुद्रा बुरी मुद्रा को चलन से बाहर करती है।" वैसा कि नियम विपणि में भी लागू होता है (यद्यपि वह अल्पावधि के लिए ही लागू होता है) घटिया किस्म की वस्तु के लिए विज्ञापन पर अधिक व्यय करने से इसके विक्रय में वद्धि होती है तथा उससे अच्छी किस्म की वस्तुओं की मांग में कमी हो जाती है।

5. **विज्ञापन के कारण ग्राहकों को अधिक कीमत चुकानी पड़ती है (Customers have to Pay High Prices because of Advertisement):** विज्ञापन पर किया गया व्यय वस्तु या सेवा की लागत का एक भाग बन गया है। इसलिए विज्ञापन पर व्यय करने के लिए प्रेरणा प्राप्त होने लगी है। इससे उत्पाद या सेवा की लागत में प्रत्यक्ष वद्धि होने लगी है जिससे विक्रय मूल्य में वद्धि हो जाती है। यह निरूपित तथ्य है कि प्रति इकाई विक्रय मूल्य जितना कम

होता है। विज्ञापन व्यय प्रति इकाई उतने ही अधिक हो सकते हैं। दवाइयां विशेषतः गोलियां तथा मिष्ठान व खाद्य पदार्थ इसके अच्छे उदाहरण हैं।

6. **चिन्ह साधन बन चुके हैं (Symbols have become a Media):** प्रत्येक उत्पाद के उत्पादक का अपना चिन्ह होता है। उत्पादकों के ब्रांडस के अतिरिक्त थोक विक्रेताओं और दूसरे मध्यस्थों के भी अपने–अपने चिन्ह होते हैं जो सामान्यतया निजी चिन्ह कहलाते है। इस स्थिति में उपभोक्ता उत्पादकों के नाम नह जान पाते। एक बार यदि किसी ब्रांड को सफलता प्राप्त हो जाती है तथा वह बाजार में ग्राहकों के बीच लोकप्रिय हो जाता है, तो उसके गुणों में कमी होनी प्रारंभ हो जाती है। फलस्वरूप उपभोक्ताओं को या प्रयोग करने वालों को हानि होती है।

7. **विज्ञापन अश्लील हो गया है (Advertising has become Obscene):** कई विज्ञापन कर्ता लोगों का ध्यान आकर्षित करने के लिए स्त्री आकृतियों को बनाने लगे हैं। फलतः दिन–प्रतिदिन विज्ञापनों में अश्लीलता बढ़ती जा रही है। इन विज्ञापनों में हम पाश्चात्य देशों की नकल कर रहे हैं, जहां के सामाजिक रीति–रिवाज हमारे यहां से बिल्कुल भिन्न हैं। हम सभी विज्ञापनकर्ताओं पर यह दोष नह लगा सकते किंतु कुछ हैं जो स्त्री–सौंदर्य का गलत प्रयोग (शोषण) कर रहे हैं तथा भारतीय आदर्श के प्रतिकूल काम कर रहे हैं। इनका प्रयास कुछ विशेष विज्ञापन विशेषज्ञों से प्रतियोगिता का होता है।

8. **विज्ञापन में सत्यता? (Truth in Advertisement?):** इस बात पर विज्ञापन की तीव्र आलोचना की जाती है कि विज्ञापनों में कितनी सत्यता होती है, कितनी असत्यता होती है। इसका निश्चय करना अत्यंत कठिन है। कई विज्ञापनों में मिथ्या वर्णन, अधूरा वर्णन, गलत नाम तथा चिन्ह तथा विचित्र व गलत दलीलें (दावे) आदि होती हैं। उदाहरण के लिए दवाईयों, पौष्टिक मिश्रणों, शरीर बनाने के उपकरणों आदि के विज्ञापनों में यह कथन दिया होता है कि **"पंद्रह दिनों पहले वह शारीरिक रूप से इतना कमजोर था"** कई प्रकार के कंबलों, जड़ी–बूटियों, दवाइयों, तथा बालों को गिरने से रोकने की दवाओं आदि का विज्ञापन इसी प्रकार की दलीलों के साथ किया जाता है। ऐसे विज्ञापन में विज्ञापित वस्तुओं को गलत साबित करने पर इनाम देने का वादा भी रहता है।

कब और कहां विज्ञापन किया जाये?
(When & Where to Advertise?)

कब (When): एक प्रश्न, जोकि हमारे मस्तिष्क में उठता है, यह है कि विज्ञापन हमें कब करना चाहिए तथा किस स्थान पर? विज्ञापन का अंशदान अधिकतम तब हो सकता है, जब (1) क्रेताओं का उत्पाद परिचय (ज्ञान) कम हो, (2) उद्योग के विक्रय का स्थिर या कम न होते हुए बढ़ना, (3) उत्पाद के तत्व ऐसे हों जिनका क्रेता द्वारा सामान्य तौर से अवलोकन न किया जा सके, (4) उत्पाद विभिन्नता के अवसर शक्तिशाली हो, (5) प्राथमिक ध्येय द्वितीयक ध्येय द्वारा दबा दिए जाते हों।

कहां (Where): विज्ञापन उचित स्थानों पर होता है जहां कि आवश्यक है– (1) जहां विक्रय दिन प्रतिदिन बढ़ रहे हों, (2) वहां, जहां विक्रय के बढ़ने के अधिक अवसर हों।

विज्ञापन कार्य कैसे किया जाये?
(How to Advertise?)

विक्रेताओं द्वारा अच्छे शांतिपूर्ण विक्रय में सफलता प्राप्त करने के लिए विज्ञापन एक शस्त्र है। प्रबंध द्वारा विज्ञापन की सही विधि को जानना चाहिए। सफल विज्ञापन के लिए कुछ सिद्धान्तों की मुख्य बातों पर विचार करना चाहिए। जैसे (1) विज्ञापन प्रभावशाली हो। 2. वास्तविक उत्पाद तथा उस उत्पाद में जिसका विज्ञापन किया गया है, समानता होनी चाहिए।

रीवर रोसर (Reever Roser) के अनुसार विज्ञापन प्रत्येक पाठक से यह आवश्य कहे कि "इस उत्पाद को खरीदिए जिससे आपको विशिष्ट लाभ प्राप्त होगा"।[8]

प्रभावशाली विज्ञापन के लिए हमें एक उचित प्रक्रिया का अनुसरण करना पड़ेगा। प्रक्रिया के चरण निम्न प्रकार हो सकते हैं–

1. विज्ञापन के उद्देश्यों को निश्चित करना।

8. Reever Roser, “Reality in Advertisement”.

2. विज्ञापन के संदेश को तैयार करना।
3. विक्रय प्रवर्तन के दूसरे उपकरणों से विज्ञापन की समन्वयता
4. विज्ञापन बजट का नियंत्रण

उद्देश्यों के निर्धारण का, जो कि विज्ञापन का प्रथम चरण है, वर्णन पिछले पेराग्राफों में किया जा चुका है। उद्देश्य इस प्रकार के बनाए जाएं ताकि उन्हें सफलतापूर्वक प्राप्त किया जा सके। अब हम दूसरे चरण पर आते हैं। विज्ञापन के संदेश का चुनाव भी प्रमुख है।

विज्ञापन संदेश
(Advertising Message)

विज्ञापन कार्यक्रम में सबसे पहले संदेश चुना जाता है। संदेश मस्तिष्क में इतनी गहराई से पहुंचे कि वह अपना प्रभाव व्यक्ति पर डाल सकें। यह छोटा और सरल तथा उचित शब्दों में बना हो। यह कला तथा शब्दों के साथ बनाया गया हो। शब्द तथा कला व्यक्तियों को आकर्षित करने वाले होने चाहिए।

विज्ञापन संदेश के आवश्यक तत्व
(Essential Elements of Advertising Message)

विज्ञापन संदेश में निम्न तत्व होने चाहियें–

1. शीर्षक या शीर्षक पंक्ति (Heading or Headline)
2. उदाहरण (Illustration)
3. विषय वस्तु (Body Copy)
4. चिन्ह नाम तथा उत्पाद का उदाहरण (Brand Name and Illustration of the Product)
5. कंपनी का नाम तथा व्यापारी चिन्ह (Company Name & Trade Mark)

1. **शीर्षक या शीर्षक पंक्ति (Heading):** यह विज्ञापन का सबसे कठिन तत्व है। क्रेता सबसे पहले किसी विज्ञापन के शीर्षक को पढ़ता है उसके बाद ही निर्णय करता है कि पूरे विज्ञापन को पढ़ा जाए या नह। उत्पाद तथा विज्ञापन के प्रकार के अनुसार शीर्षक भिन्न–भिन्न हो सकते हैं। ये भावात्मक, उत्सुकत्तावर्धक या प्रत्यक्ष हो सकते हैं। कुछ विज्ञापनकर्ता शीर्षक के लिए समाधोषों (Slogans) का प्रयोग करते हैं।

   उदाहरण– यह भी शीर्षक के समान ही प्रमुख है शीर्षक की अपेक्षा उदाहरण ही कई बार पढ़ने को आकर्षित करता है। उदाहरण व्यक्ति को शीर्षक की ओर ले जाता है तत्पश्चात, विषय की ओर/कुछ विज्ञापनकर्ता अपने स्वयं के उत्पादों का उदाहरण देते है, जबकि कुछ मॉडल्स का प्रयोग करते हैं। उदाहरण विज्ञापन के प्रकार, उसके उत्तरदायी उत्पाद का विज्ञापन करने वाले पर निर्भर करता है। उदाहरण के लिए चेहरे की क्रीम के विक्रय के लिए दिया गया विज्ञापन स्वाभाविक तौर से उस विज्ञापन से भिन्न होगा जो संस्थागत या औद्योगिक उत्पाद के संबंध में है।

2. **विषय वस्तु (Body Copy):** यह वास्तविक संदेश है कि जिसे विज्ञापनकर्ता बताना चाहता है। शीर्षक और उदाहरण पढ़ने वाले को विषयवस्तु की ओर ले जाते हैं। विषय वस्तु विशेष रीति से उत्पाद सेवा या संख्या का विक्रय करती है। सामान्यतया अच्छे तगड़े विक्रय की बातों को इसमें शामिल किया जाता है। विषय वस्तु विज्ञापन का एक प्रमुख तत्व हैं, क्योंकि यह ऐसा तत्व है जो विज्ञापनकर्ता को उद्देश्यों के पाने में सहायता करता है। विज्ञापन के दूसरे तत्वों में यह अधिक रोचक तत्व है। उत्पाद के चिन्ह, नाम तथा उदाहरण का उद्देश्य संभावी ग्राहक का उत्पाद को देखकर पहचाने जाने में सहायता करना है तथा चिन्ह के प्रति विश्वास दिलाना है। कंपनी का नाम तथा व्यापार चिन्ह का उद्देश्य चिन्ह की पहचान करना तथा कंपनी का विश्वास जमाना है।

   ये सभी पांच आवश्यक तत्व अच्छे संतुलित अनुपात में एक अच्छे विज्ञापन को बनाते हैं। विज्ञापन तथा विज्ञापन के प्रकार के अनुसार विज्ञापनकर्ता जितने अच्छे उत्पाद बना सके उतने ही अच्छे विज्ञापन परिणाम हो सकते हैं। निश्चितता ही एक चीज है जोकि अच्छे विज्ञापन बना सकती है।

इन तत्वों के अतिरिक्त शब्दों का ठीक प्रयोग, बढ़िया प्रदर्शन तथा रंगों का चुनाव तथा प्रयोग में लाया जाने वाला उदाहरण भी अच्छे विज्ञापन के लिए आवश्यक है।

समाधोष, नारे, विचार तथा हंसी का महत्व—विचार विज्ञापन प्रति का महत्वपूर्ण तत्व है।

विचार के विज्ञापन प्रति पर अच्छे मनोवैज्ञानिक प्रभाव पड़ते हैं। विचारतत्व कुछ चीजों के लिए मांग कर सकता है। कुछ करने के लिए कम से कम उसके संबंध में सोचने के लिए विवश कर सकता है। करीब होने का वैयक्तिक विक्रय में जितना महत्व है उतना ही इसका भी है।

नारे (Slogan): अच्छे, छोटे सरल तथा लाभदायक शीर्षक वाले होने चाहिए। जैसे **"ब्रूकी ही रूचि नई रूचि** (Bru taste new taste)" शीर्षक नारे उपयोगी में लाए गए थे, अब उनमें से यह एक नारा या अन्य नारे समाप्त हो गए हैं। नारे कई प्रकार के हो सकते हैं। जैसे एक वह है जो खरीदने या एक बार कोशिश करने के लिए सुझाव देता है, और एक वह है जो उपभोक्ताओं पर सेवाओं या उत्पाद गुणों के दावे करता है या उन्हें विश्वास दिलाता है। कुछ अच्छे नारों के उदाहरण है– "Tinopal that whiter best of all", "Light up right with Red & White", "Service is our moto", "Airline that love you", "Neighbours envy owners pride".

यदि हंसी (Humour) का भी प्रयोग विज्ञापन में किया जाए तो वह लोगों को प्रभावित कर सकता है। इस प्रकार के विज्ञापनों में से एक अच्छा विज्ञापन कुछ वर्षों पूर्व उस समय दिखाई दिया था जब नील आर्मस्ट्रांग चंद्रमा पर उतरा था। विज्ञापन में यह दिखाया गया था कि एयर इंडिया का महाराजा वहां है और अचंभित आर्म स्ट्रांग से कह रहा है कि **"जहां तक मेरा विचार है, आप आर्मस्ट्रांग हैं न?"** इस प्रकार के विज्ञापनों में याद रखने तथा धारणा के मूल्यवान गुण रहते हैं तथा दूसरे विज्ञापनों की अपेक्षा उन्हें अच्छी तरह याद रखा जा सकता है।

विज्ञापन के माध्यम
(Media of Advertising)

विज्ञापन में दूसरा चरण माध्यम का है। इसमें कौन से माध्यम का प्रयोग किया जाए कि अधिक से अधिक लोगों तक सूचना पहुंच सके। यदि संदेश उन व्यक्तियों तक नह पहुंचा पाता है जिन तक कि इसे पहुंचाना था, तो माध्यम को बदलना पड़ता है।

विज्ञापन के माध्यम (Media of Advertising)

A. प्रेस द्वारा विज्ञापन (Press Advertising)	B. घर द्वार से बाहर विज्ञापन (Outdoor Advertising)	C. विज्ञापन साहित्य (Advertising Literature or Mail Adv.)	D. अन्य प्रकार से विज्ञापन (Other forms of Adv.)
1. अखबार Newspapers)	1. प्रचार पट्ट (Publicity Boards)	1. पर्चे, इश्तहार (Handbills, Posters)	1. फिल्म (Films)
2. पत्रिकायें (Magazines)	2. गाड़ियों पर विज्ञापन (Adv. on Vehicles)	2. गश्ती–पत्र (Circular letters)	2. स्क्रीन स्लाइडस (Cinema Slides)
3. व्यापारिक जर्नल एवं वर्ग प्रकाशन (Journals)	3. क्षेत्र चिन्ह (Area Mark)	3. विवरणिकायें (Checklists)	3. रेडियो (Radio)
4. विविध वार्षिक आदि (Other Directory year book, etc.)	4. विद्युत प्रकाश चिन्ह (Electric Signs)	4. अन्य प्रत्यक्ष डाक (Other Direct Mail)	4. टेलीविजन Television

5. आकाश विज्ञापन (Adv. in Sky)
6. विज्ञापन व्यक्ति (Advertising Person)

5. खिड़की एवं भण्डार प्रदर्शन (Window Display)
6. प्रदर्शनी (Exhibition)

प्रेस द्वारा विज्ञापन
(Press Advertising)

इस श्रेणी में अखबार, पत्रिकायें, व्यापारिक जर्नल व विशेषांकों के रूप में निकलने वाले अन्य माध्यम भी शामिल हैं।

1. **समाचार-पत्र (Newspapers):** ये राष्ट्र में सबसे बड़ा अकेला विज्ञापन संबंधी साधन है। इनका प्रसार क्षेत्र बहुत विस्तत होता है। शायद ही देश में कोई ऐसा नगर या कस्बा हो जहां कोई भी अखबार न पहुंचता हो। यही कारण है कि बाजारों के बारे में, जहां वह विज्ञापन करना चाहता है, विज्ञापन बहुत चुनिन्दा हो सकता है यदि वह एक सीमित स्थानीय क्षेत्र में विज्ञापन करना चाहे, तो वह उपयुक्त अखबारों की सहायता से केवल उसी क्षेत्र को प्रभावित कर सकता है और इस प्रकार उसे व्यर्थ प्रसार के लिये भुगतान नह करना पड़ेगा, जैसा कि उसे किसी पत्रिका के प्रयोग की दशा में करना पड़ता है। चूंकि अखबार प्रतिदिन या प्रति सप्ताह छपते है, इसलिये विज्ञापन स्थायी अवसरों का लाभ अपेक्षाकृत शीघ्र ही उठा सकता है। कुछ घन्टे पूर्व सूचना देकर ही वह अखबार में अपना विज्ञापन निकलवा सकता है। प्रति आवर्ति लागतें भी अपेक्षाकृत नीची होती हैं।

   किन्तु समाचार पत्रों के अनेक दोष भी हैं जैसे, 1. उसके प्रचार क्षेत्र के भीतर चुनने की सुविधा नगण्य होती है। अखबार धनी व गरीब सभी के पास जाते हैं। अतः जब तक उत्पाद आबादी के एक बड़े भाग द्वारा क्रय न किया जाता है, अखबारी विज्ञापन संभावित ग्राहक के साथ प्रति सम्पर्क लागत व्यय की दष्टि से अत्यधिक मंहगा बैठ सकता है। 2. एक अखबार में पाठकों के ध्यानाकर्षण के लिए प्रतियोगिता अत्यन्त विषम होती है, एक विज्ञापन अनेक विज्ञापनों के बीच सहज ही खो या छिप सकता है। यदि पर्याप्त बड़ा विज्ञापन न दिया जाये तो, इस बात का डर कि जब पाठक अखबार के पन्ने पलटेंगे तो विज्ञापन पर उसका ध्यान नह जायेगा। 3. अखबारों के मुद्रण की तकनीक चित्रों व रंगों के प्रयोग को बहुत सीमित कर देती है। 4. अखबार का उपयोगी जीवन बहुत ही छोटा है, बहुधा कुछ ही घंटे। पाठक उसे एक बार उठाता है और एक अल्प समय में ही सरसरी दष्टि से पढ़ डालता है। इस बीच यदि विज्ञापन उसकी दष्टि में न आये, तो वह फिर सदा के लिए खो जाता है।

2. **पत्रिकायें (Magazines):** पत्रिकायें दो प्रकार की होती हैं– उपभोक्ता संबंधी एवं व्यापारियों संबंधी। राष्ट्र में विशेष हितों के लिए विशेष पत्रिकायें भी होती हैं, जैसे रेडियो, खेल, बागवानी, चित्रकारी, संगीत आदि में रुचि रखने वालों के लिए पत्रिकायें। इसी प्रकार विभिन्न प्रकार के व्यवसायों के लिए भी पथक–पथक पत्रिकायें होती हैं। ऐसी पत्रिकायें संबंधित व्यापारों या धंधों अथवा विशेष हित समूहों को विक्रय करने में बहुत प्रभावी हो सकती है। जबकि अखबार भौगोलिक आधार पर चुने जाते हैं। तब पत्रिकायें बाजार भेदन आधार पर अखबारों की अपेक्षा पत्रिकाओं में प्रति सम्पर्क लागतें अधिक होती हैं। किन्तु प्रति संभावित ग्राहक लागत कम बैठती है।

   पत्रिकाओं के कई तकनीकी लाभ हैं, जैसे, छपाई के उत्तम ढंग का प्रयोग किया जा सकता है। इसमें चार रंगों का इस्तेमाल संभव है। प्रायः एक अखबारी विज्ञापन की अपेक्षा एक पत्रिका के द्वारा मांग का सजन करने की दिशा में अधिक प्रयास किया जा सकता है। अखबारों की तुलना में पत्रिकाओं को एक बड़ा लाभ यह प्राप्त है कि इनका उपयोगी जीवन काफी लंबा होता है और प्रकाशन की बारम्बारता पर निर्भर है। यथार्थ में, पत्रिकाओं के विज्ञापन अनेक बार एक वर्ष से भी अधिक की आयु रखते हैं। उदाहरणार्थ, कामर्स वार्षिकी में प्रकाशित हुए एक पुस्तक संबंधी विज्ञापन की एक रिसर्च स्कालर ने उसे 2 वर्ष के बाद देखा और पुस्तक प्रकाशक को आर्डर दिया। इसके अतिरिक्त पत्रिकाओं को पाठक बार–बार पलटा करते हैं। अध्ययनों से पता चला है कि रीडर्स डाइजेस्ट को एक ही व्यक्ति द्वारा 13 बार उठाया और पढ़ा जाता है। इस प्रकार, किसी पत्रिका में विज्ञापन देने से संदेश को यथेष्ट उद्भासन (Exposure) मिलता है, जिससे प्रति संपर्क लागतें घट जाती है। अनेक पत्रिकायें उपभोक्ताओं द्वारा कैटेलाग के रूप में प्रयोग की जाती हैं।

कुछ पत्रिकाओं ने अपने लिए पाठकों के बीच ऐसी ख्याति बना ली है कि इनमें विज्ञापन उत्पाद खुद ब खुद संभावित ग्राहकों द्वारा "श्रेष्ठ" स्वीकार कर लिये जाते हैं। उदाहरणार्थ, "कल्याण" पत्रिका में विज्ञापित टीका ग्रंथों को धार्मिक जनता से एक सीमा तक स्वतः मान्यता मिल जाती है और इस प्रकार उनका बिकना निश्चित हो जाता है।

पत्रिकाओं का एक प्रमुख दोष इस तथ्य में निहित है कि जब तक उत्पाद का भौगोलिक वितरण विस्तत न हो, विज्ञापन को काफी व्यर्थ प्रसार के लिए भुगतान करना पड़ जायेगा। यद्यपि कुछ क्षेत्रीय पत्रिकायें भी चलती हैं तथापि उनमें बड़े राष्ट्रीय सावधिक पत्रों जैसा प्रभाव नह होता। उत्पाद के लिए जो कार्य सजनात्मक रूप से पत्रिकायें कर सकती हैं वह भी सीमित ही हैं। चूंकि ये प्रायः आय वर्ग के व्यक्तियों द्वारा पढ़ी जाती हैं, इसलिए निम्न आय बाजार इनसे बिल्कुल ही छूट जाते हैं।

घर-द्वार के बाहर विज्ञापन

(Outdoor Advertising)

प्रेस विज्ञापन सामान्यतः तब पढ़े जाते हैं जबकि पाठक घर के अन्दर होता है। इनके असमान कुछ ऐसे भी माध्यम हैं जिन्हें व्यक्ति जब देखता है जबकि वह घर से बाहर हो, जैसे विज्ञापन पटट, गाड़ियों पर विज्ञापन, क्षेत्र चिन्ह, विद्युत प्रकाश चिन्ह आकाश विज्ञापन एवं विज्ञापनक व्यक्ति, जो कि दोनों पाश्वों में विज्ञापन के तख्ते लटका कर सड़क पर चलता है।

इस प्रकार के विज्ञापनों के प्रमुख लाभ निम्न हैंः 1. आकर्षण को स्थायी बनाना सुगम होता है। 2. चूंकि कुछ प्रकार (जैसे कि विज्ञापन पटट) काफी बड़े होते हैं, इसलिए रास्ता चलने वालों का ध्यान आकर्षित करने हेतु रंगों और आकर्षक चित्रों का प्रयोग सुगमता से किया जा सकता है। 3. इनका प्रायः एक दीर्घ जीवन होता है और इसलिए इनका एक दोहराने वाला प्रभाव होता है। 4. ये स्मरण कराने वाले विज्ञापनों का एक उत्तम रूप है, एवं 5. इनका क्रय बिन्दु मूल्य भी अधिक होता है।

किन्तु कुछ दुर्बलतायें भी हैं, जैसे 1. संदेशों को बार–बार बदलना महंगा पड़ता है, 2. अधिक विवरण देना संभव नह है, क्योंकि सामान्यतः इन्हें रास्ता चलते हुए देखा पढ़ा जाता है, 3. राष्ट्रीय विस्तति प्राप्त करने हेतु यह माध्यम अपेक्षाकृत महंगा बैठता है एवं, 4. इन विज्ञापनों के प्रभाव को मापना भी कठिन होता है।

विज्ञापन साहित्य या प्रत्यक्ष डाक विज्ञापन

(Advertising Literature or Direct Mail Advertising)

प्रत्यक्ष डाक विज्ञापन अथवा डाक द्वारा साहित्य भेजकर विज्ञापन करने के कई स्पष्ट लाभ हैं 1. अन्य माध्यमों के समान एक प्रत्यक्ष डाक माध्यम को पाठक का ध्यान आकर्षित करने में कम प्रतियोगिता का सामना होता है, पत्रिका या अखबारी विज्ञापन को पाठक के ध्यानाकर्षण के लिए बीसियों अन्य विज्ञापनों से मुठभेड़ करनी होती है, दूसरी ओर एक व्यक्ति को एक समय पर डाक द्वारा संदेश के द्वारा कह अधिक लंबी और पूर्ण विक्रय कहानी कही जा सकती है। 3. यदि संदेश पाने वालों की सूची विवेकपूर्ण ढंग से बना ली जाय तो फिर संदेश केवल संभावित ग्राहकों को ही भेजे जाते हैं, जिस कारण व्यर्थ प्रसार नगण्य होता है। यही कारण है कि इसकी "प्रति संपर्क" ऊंची लागत इसकी संभावित प्रयोक्ताओं से प्रति संपर्क नीची लागत में बदल जाती है।

प्रत्यक्ष डाक विज्ञापनों में पाठक की सुस्ती के कारण एक बड़ी दुर्बलता पाई जाती है, जो यह है कि यदि डाक संदेश सुसम्पादित नह है तो बहुत संभव है कि पाठक उसे खोले बिना ही रद्दी की टोकरी में फेंक दें।

प्रत्यक्ष डाक को विज्ञापन उद्योग में एक "सौतेला पुत्र" समझा जाता है, क्योंकि कुछ ही एजेंसियां अपने मुवक्किलों को इसके प्रयोग का सुझाव देती हैं। इस माध्यम में ऊंचा कमीशन नह होता परिणामतः प्रत्यक्ष डाक के अधिकांश बड़े प्रयोक्ता खुद ही सारा काम करते हैं। अनेक प्रयोक्ताओं के अपने मुद्रण विभाग होते हैं। दीर्घकालीन अनुभव से यह जान गये हैं कि एक डाक संदेश की सप्रभाविकता कैसे बढ़ाई जाए।

प्रत्यक्ष डाक संदेशों के अन्तर्गत वह समस्त विज्ञापन साहित्य आता है जोकि डाक द्वारा भेजा जाए, जैसे पर्चे, इश्तहार, सचित्र सूची, गश्तीपत्र, विवरणिकायें आदि। प्रत्यक्ष डाक कार्यकलापों का प्रबंध करना स्वयं में एक भारी काम है। इसके लिए इसकी फलोत्पादकता पर प्रभाव डालने वाले विभिन्न चलों की निरन्तर जांच करते रहना आवश्यक होता है, जैसे कि डाक का प्रकार,

पत्र या पोस्टकार्ड, कागज की किस्म, ब्राण्ड लिफाफे का मुद्रण, संलग्न पत्रकों की संख्या, अनुनय या आकर्षण का प्रकार, डाक से भेजने का दिन, व डाक सूत्री पत्र (Mailing List) की लंबाई इत्यादि।

अन्य प्रकार के विज्ञापन

(Other Forms of Advertising)

इनमें लघु फिल्मों, स्क्रीन स्लाइड्स रेडियो और टेलीविजन पर संदेशों का प्रयोग सम्मिलित है–

1. **टेलीविजन (Television):** विगत वर्षों में टेलीविजन एक नगण्य स्थान से बढ़कर ऐसे स्थान पर पहुंच गया है जहां कि वह अखबारों को राष्ट्र के प्रमुख विज्ञापन माध्यम के रूप में चुनौती देने लगा है। इस प्रगति के कारणों को जानने के लिए हमें इसकी विशेषताओं पर ध्यान देने की आवश्यकता है। सर्वप्रथम, टेलीविजन उत्पादों का विक्रय सजनात्मकता के साथ कर सकता है। इस माध्यम से ऐसे काम किये जा सकते हैं जो कि अन्य किसी माध्यम से संभव नह हैं। टेलीविजन पर ग्राहक को वैयक्तिक विक्रय का यथोचित घनिष्ठ अनुचित्र (Facsimile) पस्तुत किया जा सकता है। उत्पाद के प्रयोग का प्रदर्शन किया जा सकता है। टेलीविजन में रेडियो के सभी लाभ हैं, जैसे आवाज और स्पष्टीकरण। साथ ही दष्टि गोचरता, का अतिरिक्त लाभ भी है। विक्रय उपकरण के रूप में टेलीविजन का कोई प्रबल प्रतिद्वंदी नह है।

   टेलीविजन द्वारा इतने व्यापक जन समूह तक पहुंचा जा सकता है कि जितना मानव के इतिहास में कभी संभव न हुआ था। कोई अन्य अकेला विज्ञापन माध्यम इतने अधिक लोगों तक निरन्तरता के आधार पर पहुंच नह रखता जितना कि टेलीविजन अमेरिका में तो एक औसत व्यक्ति प्रतिदिन 4–5 घंटे टेलीविजन देखता है और लगभग 90% जनता के पास एक टेलीविजन रिसीवर है। भारत में भी टेलीविजन का उपयोग काफी बढ़ गया है और करोड़ों लोग प्रतिदिन टेलीविजन के कार्यक्रम देखते हैं। अतः जनपणन (Mass Merchandising) के वर्तमान युग में टेलीविजन विस्तत बाजार तक पहुंचने का एक महती माध्यम है या वहत माध्यम (Mass Media) है।

   टेलीविजन में भी वही वरण क्षमता होती है जैसी कि अखबारों में, क्योंकि उपयुक्त भौगोलिक क्षेत्र चुने जा सकते हैं अर्थात विज्ञापक उस क्षेत्र को क्रमबद्ध कर सकता है जिसमें कि वह पहुंच पाना चाहता है और ऐसा करते हुए अपने बाजार में भौगोलिक भाजन से मामूली हानि उठानी पड़ती है। दुर्भाग्यवश टेलीविजन में भी वही दोष है जो कि अखबारों में पाये जाते हैं। जैसे बाजार में अन्य भाजनों को स्पष्ट करना कठिन होता है। कुछ नियंत्रण समय समंजन के द्वारा पाया जा सकता है, जैसे महिलाओं को बेचे जाने वाले उत्पादों का विज्ञापन ऐसे समय किया जा सकता है जबकि वे टेलीविजन देखती हों। यद्यपि एक माध्यम के नाते टेलीविजन में कोई प्राकृतिक वरण क्षमता नह है तथापि विज्ञापक एक विशेष प्रकार का कार्यक्रम चुन कर अपनी खुद की वरण क्षमता का निर्माण कर सकता है। उदाहरणार्थ, यदि वह प्रबुद्ध व्यक्तियों के बाजार में पहुंचना चाहे, तो उसे ऐसा प्रोग्राम चुनना चाहिए जिसे मुख्यतः प्रबुद्ध वर्ग के व्यक्ति देखा करते हैं।

   यद्यपि टेलीविजन विज्ञापन की प्रति संपर्क लागत अपेक्षाकृत नीची होती है तथापित कुल राशि जो व्यय करनी होती है बहुत बैठती है। बाजार पर एक मामूली से मामूली छाप डालने के लिए भी लाखों रुपये खर्च करने पड़ जाते हैं। इसके अतिरिक्त रेडियो की भांति टेलीविजन संदेश भी तात्कालिक होते हैं। छपे हुए माध्यमों की भांति इनकी कोई जीवन विस्तति नह होती है और यदि टेलीविजन विज्ञापन का दर्शक यह चाहे कि संदेश को पुनः देख ले तो वह ऐसा नह कर सकता।

2. **रेडियो (Radio):** नवम्बर, 1967 से रेडियो द्वारा विज्ञापन की सुविधा आकाशवाणी के बम्बई केन्द्र पर प्रारंभ की गई। यह पायलट प्रोजेक्ट बम्बई, पूना और नागपुर में विविध भारती ट्रान्समीटरों पर व्यापारिक विज्ञापन देने के साथ–साथ शुरू किया गया था और व्यापार एवं उद्योग के लिए बहुत ही लोकप्रिय प्रमाणित हुआ है तथा इसकी उपलब्धता की अपेक्षा मांग कह अधिक है। कह व्यापारिक कार्यक्रम सामान्यतः तीनों स्टेशनों से प्रसारित होता है। सितम्बर, 1968 में कलकत्ता और अप्रैल 1969 में दिल्ली और मद्रास से भी रेडियो विज्ञापन का प्रचलन हो गया है। विज्ञापक अंग्रेजी में अथवा किसी भी भारतीय भाषा में विज्ञापन दे सकता है। रविवारीय प्रसारणों एवं विशेष स्थितियों वाले प्रसारणों के लिए ऊंचा चार्ज लगाया जाता है।

टेलीविजन और अखबारों के समान रेडियो में भी बहुत भौगोलिक लचक होती है, किन्तु इसमें दश्यगत आकर्षण, (Visual Appeal) का अभाव है, जोकि टेलीविजन और मुद्रित माध्यमों में नह होता। मनोवैज्ञानिकों ने यह भली–भांति सिद्ध कर दिया है कि मस्तिष्क तक पहुचने के लिए कानों की अपेक्षा आंखें अधिक अच्छा रास्ता है। लोग जो सुनते हैं उसकी अपेक्षा जो देखते हैं उसे कह अधिक याद रख सकते हैं। समय समंजन (Timing) की दष्टि से भी रेडियो में अमित लोच होती है। मौसम व चालू घटनाओं जैसी बातों का लाभ उठाने हेतु लगभग तुरन्त ही रेडियो घोषणा की जा सकती है।

दोनों ही रेडियो और टेलीविजन का एक मुख्य दोष यह है कि एक बार प्रसारित हो जाने पर संदेश सदा के लिए लोप हो जाता है जब तक कि वह दुबारा न दिया जाए। इस प्रकार माध्यम की उपयोगी आयु क्षणिक व तात्कालिक होती है। यही कारण है कि इन माध्यमी के प्रयोग में दोहराव और ऊंची बारम्बारता दर स्थान माध्यमों के प्रयोग की अपेक्षा कहीं अधिक महत्वपूर्ण है।

3. **फिल्मी विज्ञापन (Film Advertising):** टेलीविजन व रेडियो विज्ञापनों की तुलना में फिल्मों द्वारा विज्ञापन भारत में अधिक पुराना और लोकप्रिय साधन है। अनेक विज्ञापक अपने उत्पादों से संबंधित लघु फिल्में बनवा कर प्रस्तुत करने लगे हैं, जैसे कि एस्प्रो, सर्फ, लक्स, नैनोल, आदि विज्ञापन के लिए फिल्में तैयार कराते समय यह नहीं भूलना चाहिए कि जो लोग फिल्में देखने जाते हैं उनका उद्देश्य मनोरंजन प्राप्त करना है।

   दुकान के बाहर खिड़की प्रदर्श (Window Display) और दुकान के अन्दर काउंटर प्रदर्शन भी विज्ञापन के माध्यम का कार्य करते हैं। इनका सबसे बड़ा लाभ इनकी क्रय बिन्दु पर उपस्थिति है। खिडकी प्रदर्शन यथार्थ में एक कला है। और यदि खिड़कियों की व्यवस्था ठीक से की जाए, तो रास्ते पर चलने वालों का ध्यान आकर्षित हो सकता है और वे दुकान में वस्तु खरीदने के उद्देश्य से प्रवेश के लिए प्रलोभित हो सकते हैं। ऐसी प्रदर्शनियां भी बंबई जैसे शहरों में विशेष रूप से लोकप्रिय हैं। ये स्थानीय स्तर से लगाकर राष्ट्रीय एवं अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर भी आयोजित की जा सकती है। ऐसी प्रदर्शनियां या तो सामान्य जनता या विशेष व्यवसायों के लिए खुली होती हैं। इनके द्वारा उत्पाद का नाम जनता के सामने बनाये रखने में सहायता मिलती है तथा उत्पाद के प्रदर्शन का भी अवसर मिलता है। इनसे जनता का मनोरंजन होता है और इसीलिए शायद ऐसे लोग भी उत्पाद को किसी प्रदर्शनी में देख लेते हैं, अन्यथा वे न देख पाते।

माध्यम का चुनाव
(Media Selection)

ऐसे माध्यम का चुनाव होना चाहिए कि इसमें इसके द्वारा अधिक से अधिक (इच्छुक) व्यक्तियों को उत्पादित उत्पाद या सेवा का परिचय कराया जा सके। विज्ञापन माध्यम के चयन के समय निम्न बातें ध्यान में रखनी चाहिए।

1. लक्ष्य (ग्राहकों) की संख्या तथा उनका निवास स्थान (Number and Location of Target Customers)
2. माध्यम का प्रभाव (Media Effect)
3. माध्यम की लागत (Media Cost)

माध्यम के चयन में प्रथम तत्व लक्ष्य है। कुछ बातें जिन पर विचार करना है, वे हैं भौगोलिक क्षेत्र–शहरी, ग्रामीण। ग्राहक कौन–बच्चे, जवान, बूढ़े, पुरुष, स्त्री। इसे एक उदाहरण द्वारा समझाया जा सकता है। मान लिया कि उदयपुर की कंपनी कषि के लिए कीटनाशक दवाइयां बनाती है दूसरे लोगों की अपेक्षा किसानों तक इस समाचार को पहुंचाना चाहती है। इस कंपनी को समाचार पत्र तथा पत्रिकाओं को विज्ञापन के माध्यम के लिए प्रयोग नहीं करना चाहिए। क्योंकि एक ही माध्यम जो कि कृषकों तक पहुंच सकता है, वह है रेडियो। इसके अतिरिक्त कंपनी द्वारा स्थानीय समाचार पत्रों का, स्थानीय भाषा का तथा निर्माण क्षेत्रों में पोस्टर्स आदि का प्रयोग किया जा सकता है।

भौगोलिक क्षेत्र को भी ध्यान में रखना चाहिए। यदि क्षेत्र शहरी है या शहर के पास है तो स्थानीय समाचार पत्रों या पत्रिकाओं द्वारा समाचार पहुंचाया जा सकता है। किन्तु ग्रामीण क्षेत्रों के लिए दूसरे प्रकार का माध्यम होना चाहिए। जैसे रेडियो विज्ञापन, पोस्टर्स, हस्तपत्र आदि। दूसरा तत्व जिस पर विचार किया जाता है, वह है माध्यम का प्रभाव। सभी विज्ञापनों में प्रमुख तत्व

है। ऐसे माध्यम का चयन होना चाहिए जो अधिकतम सूचना उस व्यक्ति तक पहुंचा सके जिस तक कि हम पहुंचाना चाहते हैं। विज्ञापन की पुनरावत्ति होनी चाहिए। क्योंकि पुनरावत्ति अच्छी तरह जमाने के लिए आवश्यक है और जमा के रखना प्रभाव के लिए आवश्यक है।

अंतिम तत्व माध्यम की लागत है जिस पर कि माध्यम के चयन के समय विचार करना पड़ता है। विज्ञापन पर किया जाने वाला व्यय उसके प्रभाव के अनुसार होना चाहिए जैसे विक्रय वद्धि विज्ञापन लागत के जुड़ने पर यदि विक्रय बढ़ता है तो फर्म को लागत में वद्धि करनी चाहिए। यदि विक्रय घटता है तो विज्ञापन पर किया जाने वाला व्यय भी कम किया जाना चाहिए। और यदि विक्रय उसी स्तर पर बनी रहे तो विज्ञापन व्यय भी स्थिर होने चाहिए।

विक्रय का विज्ञापन व्ययों पर प्रभाव

विक्रय	विज्ञापन व्यय
वद्धि	वद्धि
स्थिर	स्थिर
कमी	कमी

माध्यम के चयन की कोई सीमाएं नहीं हैं। हम एक या अधिक या सभी माध्यमों का प्रयोग विज्ञापन के लिए कर सकते हैं। वह फाउंटेनपेन पर हो, कार पर हो, या बस पर इसका कोई फर्क नहीं पड़ता। विमको (माचिस कंपनी) ने सफलतापूर्वक अपना विचार अपने माचिस के डिब्बों द्वारा विस्तत रूप से लोगों के बीच प्रकाशित किया है। जिसका विपणन अनुसंधान आंकड़ों द्वारा पर्याप्त प्रमाण मिलता है। विज्ञापनकर्ता को विज्ञापन माध्यम का चयन करने के लिए, जिनके लिए विज्ञापन किया जाता है उनका परिचय होना आवश्यक है। विज्ञापनकर्ता को विज्ञापन उपभोक्ताओं के लायक बनाना चाहिए जिससे विज्ञापन सही रीति से उन तक पहुंचे।

माध्यम परिचलन
(Media Circulation)

माध्यम परिचलन शब्द कुल पाठकों की संख्या, जिन तक माध्यम पहुंचता है, से संबंधित है। उदाहरण के लिए यदि समाचारपत्र 2 मिलियन (बीस लाख) लोगों द्वारा पढ़ा गया है तो उसका परिचलन 2 मिलियन होगा। कुल चंदादारों की संख्या या देश भर में कुल बिक्री प्रतियों की संख्या से परिचलन ज्ञान किया जा सकता है। (ABC Audit Bureau of Circulation) ऐसी अंतर्राष्ट्रीय संस्था है जो विश्व स्तर के माध्यम के परिचलन के अधिकतम आंकड़े दे सकती है। विश्व के लगभग सभी बड़े माध यम एबीसी के सदस्य हैं तथा प्रत्येक माध्यम अपने परिचलन के आंकड़े प्रकाशित करता है। भारत में पत्रिकाओं तथा समाचार पत्रों के परिचलन संबंधी सूचनाएं प्रेस इन्फोरमेशन ब्यूरो "Press Information Bureau" के द्वारा रखी जाती है।

माध्यम मिश्रण
(Media Mix)

विज्ञापन में माध्यम मिश्रण अत्यंत महत्वपूर्ण तथा कठिन कार्य है। माध्यम मिश्रण का अर्थ संभावित ग्राहकों के निर्धारित लक्ष्य तक पहुंचने के लिए विभिन्न उपलब्ध माध्यमों का अनुकूलतम प्रयोग है। उदाहरण के लिए मान लिया कि उत्पाद का प्रयोग सभी श्रेणी के लोगों के द्वारा किया जाता है, तो हम एक या दो माध्यमों पर आधारित नहीं हो सकते। प्रत्येक माध्यम उपभोक्ताओं के एक वर्ग को ही आच्छेदित कर सकता है। इसलिए हमें विभिन्न माध्यमों का चयन करना पड़ता है। जिससे उपभोक्ता वर्ग, जिसमें हमें विज्ञापन करना है, में उस माध्यम का विस्तत परिचलन हो। आगे हमें इस बात पर भी विचार करना पड़ता है कि प्रत्येक माध्यम का विस्तत परिचलन हो। आगे हमें इस बात पर भी विचार करना पड़ता है कि प्रत्येक माध्यम द्वारा कितना विज्ञापन कराया जाएगा। ऐसे निर्णयों के लिए कुछ सूचनाएं चाहिए जैसे–माध्यमों का परिचलन, प्रकाशन का समय तथा आवत्ति पाठकों के प्रकार, पाठकों के गुण, वे पाठक जिन तक हम पहुंचना चाहते हैं, विज्ञापन का समय आदि। इस प्रकार के समाचार दूसरी सूचनाओं के साथ सामान्यतः माध्यम अनुसंधान के द्वारा संग्रह किए जाते हैं, जो कि विज्ञापन अनुसंधान का एक भाग

है। इस अनुसंधान का उद्देश्य माध्यम द्वारा पहुंचे हुए लोगों की कुल संख्या ज्ञात करना है। समाचारपत्रों और पत्रिकाओं की स्थिति में उनका दैनिक प्रकाशन होता है कि साप्ताहिक या अर्धमासिक आदि, पाठकों का लिंग, आयुवर्ग, पाठकों की आय तथा सामाजिक इतिहास, संपादकीय बोर्ड की नीति, माध्यम प्रबंध ही समग्र नीति, आदि।

विज्ञापन कार्यक्रम
(Advertising Programme)

एक कदम आगे देखकर फिर आगे बढ़ना किसी भी कार्य के लिए अच्छा सिद्धान्त है। उद्देश्यों के निर्धारण के बाद विज्ञापन करने वाले को श्रेष्ठ विज्ञापन के लिए कार्यक्रम बनाना पड़ता है। श्रेष्ठ विज्ञापन कार्यक्रम क्या है। श्रेष्ठ कार्यक्रम वह है जो वैज्ञानिक हो। वैज्ञानिक से हमारा तात्पर्य क्रमबद्धता तथा प्रभावपूर्णता से है।

विज्ञापन बजट
(Advertising Budget)

प्रत्येक फर्म विज्ञापन कार्यक्रम प्रारंभ करते समय योजना बनाती है। पूरी कंपनी के लिए कितना व्यय किया जाना चाहिए बाजार का आकार कंपनी के उद्देश्यों के अनुसार होना चाहिए।

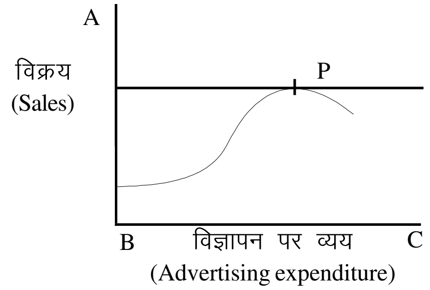

चित्र 16.1 विज्ञापन पर व्यय (Advertising Expenditure)

जैसा कि ऊपर चित्र में दिखाया गया है। विज्ञापन व्यय बढ़ने पर विक्रय भी बढ़ता है किन्तु पी (P) बिंदु के ग्राफ रेखा में कोई वद्धि नहीं दिखाई देती है। विज्ञापन व्यय बढ़ाने पर भी विक्रय नहीं बढ़ता है। इसलिए हमारे बजट का आकार पी. बिंदु पर होना चाहिए। विज्ञापन बजट बनाने की कई विधियां हैं, जैसे–

1. **क्षमता विधि (Affordable Method):** अधिकांश कंपनियां पहले से ही बजट की गणना कर लेती हैं कि विज्ञापन पर कितना बजट व्यय करने की क्षमता है। यदि कंपनी कम व्यय करने की क्षमता रखती है तो विज्ञापन बजट को छोटा बनाया जाता है। यह कंपनी की वित्तीय स्थिति पर निर्भर करता है किन्तु यह पूर्वानुमान करना कठिन है कि कंपनी कितना व्यय कर सकती है। इसलिए दूसरी विधियों का भी प्रयोग किया जाता है।
2. **विक्रय प्रतिशत विधि (Percentage of Sales Method):** कई कंपनियां अपना विज्ञापन बजट विक्रय के अनुसार बनाती है, विक्रय बढ़ने के अनुसार ही विज्ञापन बजट बनाया जाता है। यह विधि कंपनी की सूत्रधारी स्थिति दर्शाती है। यदि विज्ञापन पर अधिक व्यय करने से विक्रय बढ़ता हो तो विज्ञापन बजट में अधिक विधियों का प्रयोग लाभप्रद होगा।
3. **प्रतिस्पर्धा के अनुसार बजट (Budget According to Competition):** यदि कई मामलों में कंपनी नए बाजारों में प्रवेश करना चाहती है या पहली ही बार उत्पाद का उत्पादन प्रारंभ करती है, तो विज्ञापन बजट की योजना कैसे बनाई जाए ऐसी स्थिति में कंपनी का बजट प्रतिस्पर्धा की स्थिति के अनुसार बनाया जाता है। यदि प्रतिस्पर्धा अधिक (तीव्र) हो तो कंपनी को अधिक व्यय करना पड़ता है ताकि प्रतिस्पर्धात्मक समानता बनाई रखी जा सके।
4. **उद्देश्य और कार्यभार विधि (Objective & Task Method):** इस विधि में कंपनी सबसे पहले उद्देश्यों को स्थिर कर लेती है फिर अपनाई जाने वाली विधियों के बारे में निर्णय लेती है। इस कार्य के बाद कंपनी बजट बनाती है।

इस विधि में अनुमान क्षेत्र सीमा या उत्पाद के अनुसार लगाए जाते हैं। इससे व्यय के स्तर को बनाए रखा जा सकता है।

ऊपर बताई गई विधियां प्रायः विज्ञापन बजट बनाने के उपयोग में लाई जाती है। प्रत्येक कंपनी अपने विज्ञापन बजट कुल बजट के संदर्भ में बनाती है।

विज्ञापन कार्य समंजन
(Advertisement Scheduling)

विज्ञापन कार्य अथवा व्यय को एक सम्पूर्ण वर्ष पर कैसे फैलाया गया है, इससे भी विज्ञापन के कुल प्रभाव में बहुत फर्क पड़ जाता है। विज्ञापन व्यय के काल समंजन (Timing of Advertising Expenditure) के निम्न दो पहलू हैं– (1) दीर्घकाल समंजन (Macro Scheduling), (2) लधुकाल समंजन (Micro Scheduling)।

1. **दीर्घकाल समंजन समस्या (Macro-Scheduling Problem):** इसमें यह निर्णय करना पड़ता है कि कुल विज्ञापन राशि को वर्ष पर्यन्त कैसे समंजित किया जाए। यदि विज्ञापन के लिए आवंटित कुल राशि 12,00,000 रुपये है, तो मौसम पर विक्रय की निर्भरता का विचार न करते हुए प्रतिमाह 1,00,000 रुपये व्यय करना सामान्यतः ठीक न होगा और न ही यह वांछनीय होगा कि व्यय को ठीक मौसमी बिक्री के साथ परिवर्तन किया जाता रहे। फिर क्या किया जाए?

   जहां विज्ञापन के विलंबित एवं तात्कालिक दोनों तरह के प्रभाव होते हैं, वहां विज्ञापन व्ययों का मौसमी काल समंजन विशेष जटिल होता है। इसके समाधान के लिए दो दष्टिकोण प्रस्तुत किये गये हैं: (1) औद्योगिक गतिशास्त्र की कार्य रीति (Industrial Dynamics Methodology) इस नीति का विकास जे फोरेस्टर (Jay Forrester) ने किया है। उनकी धारणा के अनुसार, विज्ञापन का उपभोक्ता की चेतना पर, चेतना का कारखाने की बिक्री पर, और कारखाने की बिक्री का विज्ञापन व्ययों पर पश्चगामी प्रभाव (Lagged Impact) पड़ता है। उन्होंने सुझाव दिया है कि कंपनी विशेष के लिए अध्ययन करते हुए इन समय संबंधों को गणित विधि से एक आंकिक कम्प्यूटर अनुरूपता मॉडल में परिणत करना चाहिए। बिक्री, लागतों और लाभों पर वैकल्पिक समय समंजन नीतियों के जो विभिन्न प्रभाव पड़ा करते हैं उनको इस कम्प्यूटर पर देखा जा सकता है और इस तरह यह मालूम किया जा सकता है कि विज्ञापन व्ययों को वर्ष पर्यन्त फैलाने की कौन सी नीति उत्पादन और वितरण के महंगे परिवर्तनों को कम करती है। (2) अल्फ्रेड कुयेन की रीति (Alfred A Kuchin's Technique) कुयेन दिखाया है कि उपर्युक्त समय समंजन स्वरूप (Appropriate Timing Patterns) दो बातों पर निर्भर करता है (क) विज्ञापन प्रभाव के पूर्वावशिष्ट की मात्रा, और (ख) ब्रांड के चुनाव में ग्राहक के आदतजन्य व्यवहार की मात्रा।

   पूर्वावशिष्ट (Carry-Over): आशय उस दर से है जिस पर एक विज्ञापन संवेग समय के साथ घटता है। यदि पूर्वावशिष्ट .75 प्रतिमाह है तो इसका अर्थ यह हुआ कि एक विगत विज्ञापन संवेग का पूर्वावशिष्ट पिछले महीने के स्तर पर 75% है। इसी प्रकार, .10 प्रति माह पूर्वावशिष्ट का मतलब है कि पिछले महीने के प्रभाव का केवल 10% ही आगे आया है।

   आदतजन्य व्यवहार (Habitual Behaviour): यह सूचित करता है कि ब्रांड धारणा आदत, पूर्ववेग या ब्रांड निष्ठा से प्रभावित होता है, किन्तु विज्ञापन के स्तर से स्वतंत्र है। ऊंचे अभ्यासी क्रय (जैसे–90) का मतलब है कि 90% क्रेता ब्रांड को दोहराते हैं। चाहे विपणन प्रेरणा कुछ भी रहा हो।

   कुयेन की खोज के अनुसार, एक ऐसी विशेष दशा में जिसमें विज्ञापन प्रभाव का पूर्वावशिष्ट और अभ्यासी क्रय दोनों ही शून्य हो, प्रबंधकों के लिए विज्ञापन बजट बनाने में प्रतिशत विक्रय नियम अपनाना उचित होगा। अनुकूलतम समय समंजन का स्वरूप उद्योग की बिक्री के प्रत्याशित मौसमी स्वरूप से अनुरूपता रखता है किन्तु जब उक्त दोनों चल शून्य न हों, तो बजट बनाने की उपर्युक्त विधि अनुकूलतम न होगी। ऐसी दशा में तो विज्ञापन का समय इस तरह से समंजित करना चाहिए कि वह विक्रय वक्र की अग्रता करे। उदाहरणार्थ, विज्ञापन व्यय का शिखर विक्रय के प्रत्याशित शिखर से पूर्व ही आना चाहिए। इस प्रकार विज्ञापन व्यय का उतार विक्रय के प्रत्याशित उतार से पूर्व आना

चाहिए। पूर्वावशिष्ट जितना ऊंचा हो, अग्रता समय उतना ही अधिक होना चाहिए। यही नहीं अभ्यासी क्रय का विस्तार जितना अधिक हो, विज्ञापन व्यय उतना ही अविचलित होना चाहिए।

कुयेन और फोरेस्टर के मॉडल यह दिखलाते हैं कि विज्ञापन व्ययों का सर्वोत्तम मौसमी आवंटन स्पष्ट नहीं होता है। साधारण नियम (जैसे व्यय को वर्ष पर्यन्त एक समान फैलाना या प्रत्याशित बिक्री से एक स्थिर प्रतिशत के अनुसार घटाना–बढ़ाना अनेक परिस्थितियों के अकुशल और अपव्ययपूर्ण प्रमाणित होते हैं।

2. **अल्पकाल समंजन समस्या (Micro-Scheduling Problem):** मान लीजिए कि फर्म ने सितम्बर माह में तीस रेडियो तत्काल घोषणायें खरीदने का निर्णय किया है। प्रश्न यह है कि कौन सी खरीदें। इस सम्बन्ध में लगभग अनगिनती समय तालिकायें (Schedulings) संभव हो सकती है। जैसे–प्रतिदिन उसी समय एक; प्रतिदिन एक किन्तु विभिन्न समयों पर; प्रति दूसरे दिन को; 5 प्रति छठे दिन; पहली सितम्बर को 10; दूसरी सितम्बर को 5; उन्तीस सितम्बर को 10 और तीस सितम्बर को 5; पन्द्रह सितम्बर को सभी 30 आदि।

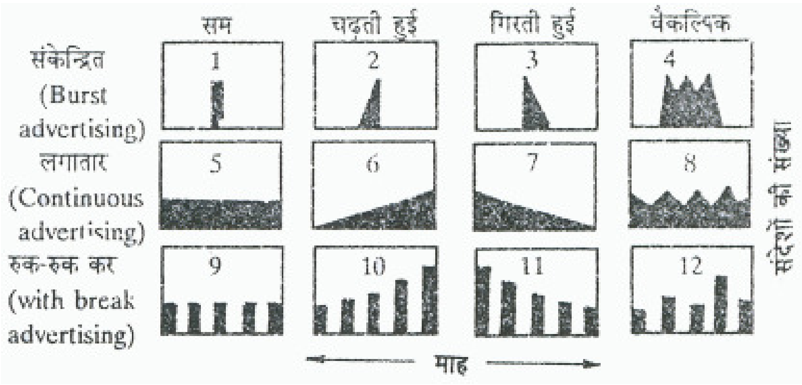

चित्र 10.2 विज्ञापन समय तालिका के विभिन्न स्वरूपों का वर्गीकरण

(Description of different forms of Advertising time schedule)

उक्त समय तालिका विकल्पों को वर्गित करने का एक तरीका चित्र में दिखाया गया है। बायां पक्ष यह दिखाता है कि विज्ञापन संदेशों की संख्या को माह के एक छोटे भाग में संकेन्द्रित किया जा सकता है। (Burst Advertising) माह पर्यन्त लगातार विकेन्द्रित किया जा सकता है अथवा माह पर्यन्त रुक–रुक कर विकेन्द्रित किया जा सकता है। दायां पक्ष यह दिखाताा है कि विज्ञापन संदेशों का कम स्तर की बारम्बारता या बढ़ती हुई बारम्बारता या गिरती हुई बारम्बारता या वैकल्पिक बारम्बारता के साथ विकरण किया जा सकता है।

विज्ञापक की समस्या यह निर्णय करने की है इन 12 सामान्य स्वरूपों में से कौन सा स्वरूप उसके लिए अनुकूलतम होगा। सबसे प्रभावी स्वरूप उत्पाद के स्वभाव, अभिष्ट, ग्राहकों, वितरण वाहिकाओं एवं अन्य विपणन घटकों के संदर्भ में विज्ञापन उद्देश्यों पर निर्भर करता है।

प्रायः प्रश्न यह होता है कि एक विशेष क्रेता समूह के लिए संदेश कितनी बार दोहराया जाए कि प्रभावी हो सके। एक अल्प दोहराव संख्या व्यर्थ हो सकती है। क्योंकि उससे स्मरण योग्य ब्रांड पहचान स्थापित नहीं हो सकेगी। इसी प्रकार, यदि चेतना, संदेश आतमीयता या धनात्मक ब्रांड भावना में कोई अधिक वद्धि नहीं, हो सके तो एक ऊंची दोहराव संख्या भी व्यर्थ जा सकती है, यदि उकताहट है तो ऊंची संख्या निश्चित रूप से हानिप्रद होगी।

विज्ञापन की प्रभावशीलता

(Advertising Effectiveness)

क्या विज्ञापन की प्रभावशीलता नापी जा सकती है? यदि हां, तो किस हद तक? प्रति रुपया किसी प्रकार के विज्ञापन पर व्यय से क्या विक्रय मात्रा में वद्धि हो सकती है? विज्ञापन प्रभावशीलता को मापने के लिए प्रायः कोई अच्छी विधि नहीं है। आज के विज्ञापन चल इतने अधिक हैं तथा उनका सम्मिलित प्रभाव किसी भी प्रयोग में इतना है कि स्वीकृति की ओर प्रगति के उपकरण विज्ञापन के प्रभाव को नापने का अस्तित्व प्रायः नहीं ही रहा है।

जब हम कंपनी के विज्ञापन तथा कंपनी पर उसके प्रभावों पर विचार करते हैं, उस समय हम एक चल प्रतिस्पर्धा के विषय में चर्चा कर सकते हैं। प्रतिस्पर्धी भी चुप नहीं रहते हैं। वे भी हमारे विज्ञापनों को देखते हुए अपने विज्ञापन के कार्य करते हैं जिसे हमारे विज्ञापन का प्रभाव नहीं भी दिखाई दे सकता। विभिन्न चलों के होने पर भी हम विज्ञापन के प्रभाव भी नहीं दिखाई दे सकता। विभिन्न चलों के होने पर भी हम विज्ञापन के प्रभावों को नाप सकते हैं। दो विधियां हैं जिनके द्वारा हम इसे नाप सकते हैं। 1. संचार प्रभाव (Communications Effect) 2. विक्रय प्रभाव (Sales Effect)।

कोई भी व्यक्ति विज्ञापन द्वारा संचार समाचार प्राप्त करता है। यदि विज्ञापन के बाद विक्रय में वद्धि होती है, तो यह विज्ञापन के कारण माना जाएगा। कोई भी ग्राहक बनता है तो क्यों? इसलिए कि उसकी कुछ आवश्यकता है। किन्तु विज्ञापन ही उसे बताता है कि किस आवश्यकता की पूर्ति उत्पाद के द्वारा की जा सकती है। लैविज व स्टीनर (Lavidge & Steiner) के द्वारा किया गया मॉडल यह दर्शाता है कि विज्ञापन निश्चित रूप से प्रभावपूर्ण है तथा इसके नापा जा सकता है।

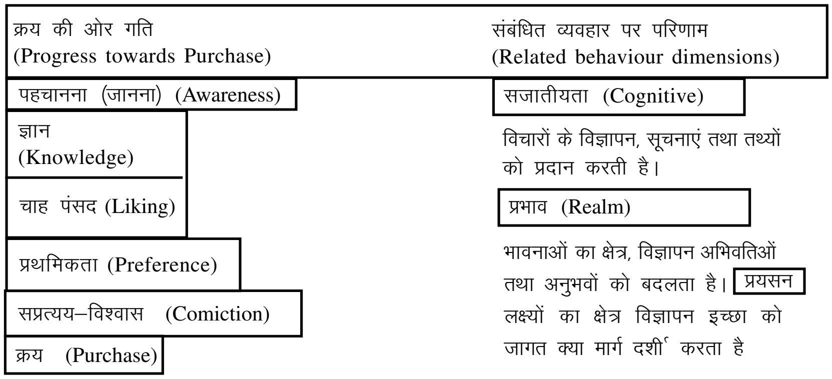

चित्र 16.3 विज्ञापन की प्रभावशीलता (Advertising Effectiveness)

उक्त मॉडल दर्शाता है कि विज्ञापन किसी व्यक्ति को किस प्रकार से प्रभावित करता है। उसके आचरण, विचारों से भावनाओं की और तथा फिर लक्ष्यों की ओर परिवर्तन। यही आचरण उस व्यक्ति को अपरिचित स्थिति से उसे उत्पाद के ज्ञान, ज्ञान से चाह, चाह से प्राथमिकता और संप्रत्यय (Comiction तथा अंतिम रूप से संप्रत्यय से क्रय की ओर ले जाता है। यह आचरण विधि विज्ञापन के कारण है। इसमें यह सिद्ध होता है कि किसी उत्पाद के क्रय के लिए व्यक्ति को प्रभावित करने में विज्ञापन का बड़ा हाथ होता है। विज्ञापन केवल उत्पाद का ज्ञान ही नहीं देता वरन् किसी भी व्यक्ति में उसकी चाह उत्पन्न करता है। पसंद में प्राथमिकता दिलाता है तथा उसको खरीदने के लिए प्रेरित करता है जिससे कि क्रय के निर्णय निकालते हैं।

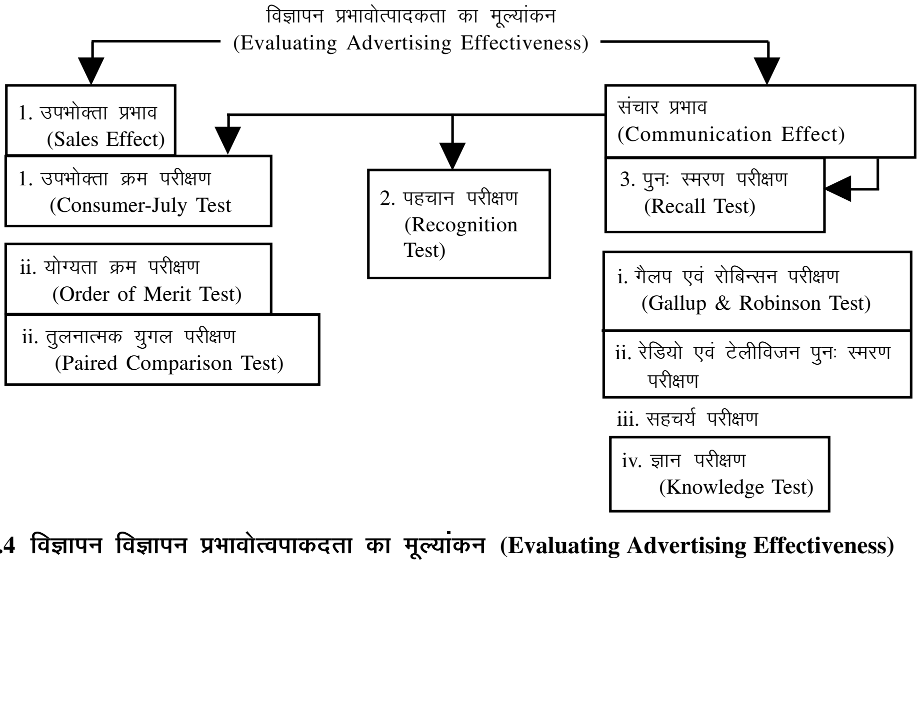

चित्र 16.4 विज्ञापन विज्ञापन प्रभावोत्वपाकदता का मूल्यांकन (Evaluating Advertising Effectiveness)

1. **विक्रय प्रभाव (Sales Effect):** विज्ञापन के प्रभाव का मूल्यांकन विक्रय वद्धि से मापा जा सकता है। यदि किसी उत्पाद की बिक्री बढ़ती है तो यह कहा जा सकता है कि यह विज्ञापन के प्रभाव के ही कारण है। लेकिन ऐसा उसी समय संभव हैं जबकि विज्ञापन के अतिरिक्त अन्य चल स्थिर हों और विज्ञापन के तुरन्त बाद तेजी से विक्रय में वद्धि हो।

   विज्ञापन के प्रभाव को मापने के लिए दो विक्रय शहर या क्षेत्र चुने जाते हैं जिनको (1) परीक्षण शहर (Test Market), (2) नियंत्रण शहर (Controlled Market) कहते हैं। परीक्षण शहर का अर्थ उस शहर या क्षेत्र से है जिसमें विज्ञापन किया जाता है। यदि इन दोनों शहरों या क्षेत्रों में पहले विक्रय की मात्रा बराबर थी लेकिन एक शहर में विज्ञापन हो जोन से उस शहर में विक्रय की मात्रा पहले विक्रय की तुलना में बढ़ जाती है तो यह कहा जाता है कि विज्ञापन प्रभावकारी रहा है। परीक्षण में विज्ञापन से पूर्व न विज्ञापन के बाद की विक्रय तुलपना की जाती है।

   विज्ञापन व विक्रय में संबंध तो होता है लेकिन इतना अधिक नहीं। यह धारणा कि चालू विक्रय चालू विज्ञापन का ही प्रभाव है, गलत है। चालू विक्रय पिछले विज्ञापनों का संचयी प्रभाव हो सकता है। विज्ञापन का विक्रय पर क्या प्रभाव पड़ता है यह मापना कठिन है। लेकिन डाक विज्ञापन का प्रभाव मापा जा सकता है। इसका कारण यह है कि डाक विज्ञापन के प्राप्त हो जाने पर ही उसका आदेश ग्राहक द्वारा दिया जाता है। अन्य उपभोक्ता वस्तुओं में विज्ञापन प्रभाव नहीं मापा जा सकता है।

2. **संचार प्रभाव (Communication Effect):** किसी विज्ञापन कार्यक्रम की प्रभावोत्पादकता (Effectiveness) दो प्रकार से मापी जा सकती है एक तो विज्ञापन प्रति (Advertising Copy) को विज्ञापन माध्यम (Advertising Media) को भेजने से पूर्व मापना कि क्या वह विज्ञापन प्रभावकारी होगा? इसको पूर्व परीक्षण (Pre-Testing) कहते हैं। दूसरे में जब विज्ञापन जनता तक पहुंच जाता है तब उसकी प्रभावोत्पादकता आंकी जाती है। इसको विज्ञापन के बाद परीक्षण (Post-Testing) कहते हैं। निम्न तरीके इसकी प्रभावोत्पादकता को आंकने के लिए काम में लाये जाते हैं।

   (1) उपभोक्ता पंच परीक्षण (Consumer Jury Test), (2). पहचान परीक्षण (Recognition Test), तथा (3) पुनः स्मरण परीक्षण (Recall Test)।

   (i) ***उपभोक्ता पंच परीक्षण (Consumer Jury Test):*** प्रभावोत्पादकता को आंकने का यह पूर्व परीक्षण वाला तरीका है। इसको सम्मति परीक्षण भी कहते हैं। इस तरीके में उपभोक्ताओं को विज्ञापन प्रति दिखायी जाती है और उनसे उस विज्ञापन के प्रति अपनी प्रतिक्रिया व्यक्त करने को कहा जाता है। साथ ही उनसे यह पूछा जाता है कि क्या विज्ञापन से ग्राहक में वस्तु क्रय करने के लिए भावना जाग्रत होगी। इस तरीके में या तो ग्राहकों के पास विज्ञापन प्रति की एक नकल व प्रश्न भेज दिए जाते हैं। और उनसे आग्रह किया जाता है कि वे उसका उत्तर भेज दें। इस परीक्षण के ढंग के निष्कर्षों को रिकार्ड करने के दो तरीके हैंः (क) योग्यता क्रम परीक्षण (Order of Merit Test) तथा (ख) तुलनात्मक युगल परीक्षण (Paired Comparison Test) ।

   (क) *योग्यता क्रम परीक्षण (Order of Merit Test):* इसमें उपभोक्ताओं पंचों को कई प्रस्तावित विज्ञापन प्रतियां दी जाती हैं और उनमें से क्रम के अनुसार पंचों को कई चुनने को कहा जाता है जो विज्ञापन प्रति उनको सबसे अच्छी लगती है उसको पहले क्रम पर रखा जाता है तथा जो दूसरे स्थान पर अच्छी लगती है उसको उसके बाद रखा जाता है। बाद में इन सभी प्राप्त क्रमों का संग्रह करके निष्कर्ष निकाल लेते हैं।

   (ख) *योग्यता युगल परीक्षण (Paired Comparison Test):* इसमें उपभोक्ता पंचों को प्रस्तावित विज्ञापन प्रतियां जोड़े में दी जाती हैं और उनसे उन दोनों में से एक को जा सबसे अच्छी है चुनने को कहा जाता है। इसके बाद फिर उन दोनों में से एक तथा नयी प्रति की तुलना करके उनमें से सबसे अच्छी प्रति को चुनने को कहा जाता है। यह क्रम बराबर चलता रहता है जब तक कि सभी विज्ञापन प्रतियों की तुलना अन्य दूसरी प्रतियों से न हो जाए जो विज्ञापन सबसे अधिक बार पसंद आये वही सबसे अच्छी समझी जाती है।

(ii) ***पहचान परीक्षण (Recognition Test):*** विज्ञापन की प्रभावोत्पादकता का परीक्षण के आधार पर भी किया जा सकता है। यह तरीका विज्ञापन के बाद के परीक्षण का तरीका है। इसमें याददाश्त को अधिक महत्व दिया गया है। इसमें विज्ञापन को उपभोक्ताओं को दिखाया जाता है और उनसे पूछा जाता है कि क्या उन्होंने ऐसा विज्ञापन कभी देखा है यदि इसका उत्तर ''हां'' में आता है तो इससे निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि विज्ञापन प्रभावकारी रहा है।

(iii) ***पुनः स्मरण परीक्षण (Recall Test):*** यह भी विज्ञापन के बाद के परीक्षण का तरीका है। इसमें ग्राहकों से यह पूछा जाता है कि क्या उन्होंने ऐसा विज्ञापन, जिसमें इस प्रकार की बातें हैं, देखा है? इसमें विज्ञापन ग्राहकों को दिखाया नहीं जाता है। यदि ग्राहकों द्वारा इस प्रकार के प्रश्नों के उत्तर हां में दिये जाते हैं तो इससे यह निष्कर्ष निकलता है कि विज्ञापन प्रभावकारी रहा है। इस पुनः स्मरण परीक्षण के निम्न तरीके हैं–

(क) गैलप एवं रोबिन्स परीक्षण, (ख) रेडियो एवं टेलीविजन पुनःस्मरण परीक्षण, (ग) सहचर्य परीक्षण, तथा (घ) ज्ञान परीक्षण।

(क) *गैलप एवं रोबिन्स परीक्षण (Gallup & Robinson Test):* इसमें उत्तर देने वालों को पहले वह पत्रिका दिखायी जाती है जिसमें विज्ञापन छपा था। फिर उनसे पूछा जाता है कि क्या उन्होंने उस पत्रिका का अवलोकन किया है यदि उत्तर हां में आता है तो फिर उनके समझ कई ब्रांडों के कार्ड रख दिये जाते हैं और उनसे पूछा जाताहै कि उन्होंने इसमें से किस ब्रांड के विज्ञापन को देखा है फिर उनसे उस ब्रांड के विज्ञापन के बारे में याद करके उसकी विशेषताओं को बताने को कहा जाता है और कुछ प्रश्न इस प्रकार के किये जाते हैं कि ''विज्ञापन में क्या कहा गया है। क्या इससे उत्पाद को क्रय करने के लिए चित्त आकर्षित हुआ है?'' इन सभी उत्तरों को लिख दिया जाता है। अब पत्रिका को खोलकर उत्तर देने वाले को वह विज्ञापन दिखाया जाता है और पूछा जाता है कि ''क्या यह वही विज्ञापन है''? यदि उत्तर देने वालों में से अधिकतर व्यक्ति विज्ञापनकर्ता के हित कि दष्टि से उत्तर देते हैं तो यह कहा जाता है कि वह विज्ञापन प्रभावकारी रहा है। यह तरीका पुनः स्मरण पर आधारित है तथा विज्ञापन के बाद परीक्षण का तरीका है।

(ख) *रेडियो एवं टेलीविजन पुनःस्मरण परीक्षण (Radio and Television Recall Test):* वे विज्ञापन जो रेडियो एवं टेलीविजन से किये जाते हैं उन विज्ञापनों के परीक्षण के लिए यह तरीका अपनाया जाता है। इसमें रेडियो प्रसारण व टेलीविजन के द्वारा विज्ञापन के दूसरे दिन टलीफोन से या घर–घर जाकर पूछताछ की जाती है कि क्या उन्होंने अमुक ब्रांड का विज्ञापन रेडियो से सुना या टेलीविजन से देखा? यदि उस ब्रांड के लिए अधिकांश उत्तर हां में आते हैं तो यह समझा जाता है कि विज्ञापन प्रभावशाली रहा है। यह तरीका पुनःस्मरण पर आधारित है तथा विज्ञापन के बाद के परीक्षण का तरीका है।

(ग) *साहचर्य परीक्षण (Association Test):* यह विज्ञापन के बाद परीक्षण का एक तरीका है। उदाहरण के लिए उत्तर देने वालों से यह पूछा जाता है कि ऐसा कौन सी क्रीम का विज्ञापन है जिसमें यह लिखा है **''त्वचा के लिए मुलायम एवं रंग साफ करने में सहायक।''** ऐसे प्रश्न सहचर्य के प्रतीक हैं। एक ओर तो उत्पाद है, दूसरी ओर उस उत्पाद का नारा व तीसरी ओर उस उत्पाद के ब्रांड का नाम। जितने अधिक उत्तर देने वाले इस बात का सही उत्तर देते हैं। उतना ही वह विज्ञापन प्रभावकारी माना जाता है। यह तरीका भी पुनःस्मरण पर आधारित है।

(घ) *ज्ञान परीक्षण (Knowledge Test):* इस तरीके में उत्तर देने वाले से भिन्न प्रकार के प्रश्न के किये जाते हैं जिनसे यह पता चले कि क्या उसको उस वस्तु की जानकारी है? जैसे, **''क्या आपने कभी आयुर्वेद सेवा आश्रम का नाम सुना है?''** क्या आपने ''ओनीडा'' का नाम सुना है?'' इससे विज्ञापन के प्रभावकारी होने का अंदाजा लग जाता है। कुछ व्यक्ति इसको ज्ञान परीक्षण का नाम देते हैं। यह तरीका भी पुनःस्मरण पर ही आधारित है।

अभी हमने विज्ञापन के प्रभाव को मापने के कई तरीकों का अध्ययन किया है लेकिन अब प्रश्न यह उठता है कि इन तरीकों में कौन सा तरीका सबसे अच्छा है। वास्तव में विश्वास के साथ यह नहीं कहा जा सकता कि कोई तरीका सबसे अधिक अच्छा है इसका कारण यह है कि प्रत्येक विधि में कोई कमी अवश्य है। लेकिन यह आवश्यक है कि प्रभाव को किसी उद्देश्य को रखकर ही मापना चाहिए।

श्रेष्ठ विज्ञापन के आवश्यक तत्व
(Essentials of a Good Advertisement)

कौन से विज्ञापन अधिक महत्वपूर्ण होते हैं? दूसरे शब्दों में कौन से तत्व विज्ञापन को प्रभावपूर्ण बनाने के लिए आवश्यक हैं? यहां हम अच्छे विज्ञापनों तथा बुरे विज्ञापनों के अंतरों को दिखाने में रुचि लेते हैं। विश्लेषण के आधार पर हम देखेंगे कि अच्छे विज्ञापन के कौन से तत्व हैं जो विज्ञापन को बुरे विज्ञापन की तुलना में अच्छा बनाते हैं। अच्छा विज्ञापन वह है जो देखा गया हो पढ़ा गया हो, समझा गया हो, विश्वास किया गया हो और याद रखा गया हो। यह सरल परिभाषा अच्छे विज्ञापन के सारे तत्वों को प्रदर्शित करती है। उन्हें इस प्रकार बताया जा सकता है, जैसे आकर्षकता, रुचि उत्पन्न करना, सरलता, विश्वास योग्यता तथा याददाश्त।

1. **आकर्षण (Attraction):** विज्ञापन का प्रमुख गुण आकर्षण है जो पाठकों को आकर्षित कर सकें। जब तक विज्ञापन आकर्षित न करें, उसका कोई लाभ नहीं है। यही पाठक का विज्ञापन प्रति की ओर तथा फिर उत्पाद और उत्पादकता की ओर ले जाता है। आकर्षक शीर्षक, विचित्र घोषणा, सांख्यिकीय प्रमापों सहित दावे, अच्छे से अच्छे उदाहरण अच्छे रंग से सब विज्ञापन के आकर्षण, को बढ़ाने के लिए आवश्यक तत्व हैं। इसमें कोई शंका नहीं है कि पुरुष के सूट के कपड़े के लिए स्त्री साड़ी पहनी हुई दिखाई जाए जो उस शूटिंग को बता रही हो, तो ज्यादा आकर्षित होगा। कुछ परिस्थितियों में ऐसे उदाहरण दिए जाते हैं जिनका बेचे जाने वाले वस्त्रों से कोई संबंध या संपर्क नहीं होता। इसका उद्देश्य सिर्फ पाठकों को आकर्षित करने के लिए ही होता है। ऐसा ही एक विज्ञापन "Siemens India Ltd." ने अपने स्विच बोर्डस के लिए किया था, इस विज्ञापन की विषयवस्तु में एक सुंदर बच्चे का उदाहरण दिया गया था। लोगों में इसकी सबसे पहली प्रतिक्रिया यह होती है कि इस छोटे बच्चे का इस स्विच बोर्ड से क्या संबंध है। बच्चा एक आकर्षण का केन्द्र बन जाता है जो कि विज्ञापन के समाचार से अलग नहीं है। ग्राहक उस विज्ञापन को देखने के बाद उससे आकर्षित होता है। किन्तु इसके संबंध में कोई निर्णय इसलिए नहीं ले पाता है क्योंकि उसके मूल्य के समाचार की कमी है। इसलिए कुछ समय उपरांत वह उस विज्ञापन को भूल जाता है, तथा इस प्रकार कंपनी अपने संभावित ग्राहक को खो बैठती है। अतः इसके अतिरिक्त अनन्यता (Uniqueness) मूल्य सूचना दावों की प्रमुखता आदि भी प्रमुख तत्व है जो कि विज्ञापन के आकर्षण को बढ़ाते हैं। कंपनी द्वारा किए गए दावे भी अत्यंत प्रमुख हैं, इससे ग्राहकों में छुपी हुई आवश्यकता को जगाया जाना चाहिए। यदि ग्राहक उत्पाद की आवश्यकता से परिचित नहीं है और विज्ञापन उन आवश्यकताओं को उन्हें बतलाने में असमर्थ है, तो विज्ञापन अप्रभावशाली कहलाएगा। यदि विज्ञापन ग्राहकों की आवश्यकताओं संबंधी दावे नहीं करता है, तो भी वह बेकार है। जहां संभावित ग्राहक मूल्यों से संबंधित सूचनाएं चाहते हों वहां यदि विज्ञापन वस्तुओं के गुणों के संबंध में वर्णन देता हो, तो यह विज्ञापन भी बेकार है, क्योंकि उसमें आकर्षण नहीं रह पाता है। प्रत्येक विज्ञापन में एक विचित्रता होनी चाहिए जिससे ग्राहकों को खींचा जा सके, उनको आकर्षित किया जा सके। अधिकांश भारतीय कंपनियों के विज्ञापन असफल इसलिए होते हैं कि वे वस्तुओं के गुणों से संबंधित जानकरी ही दे देते हैं। मूल्यों का कोई विवरण नहीं होता। ग्राहक विज्ञापन को देखने के बाद उस उत्पाद में रुचि ले सकता है किन्तु कोई निर्णय नहीं ले सकता, क्योंकि उसमें मूल्य से संबंधित कोई विवरण नहीं होता है, अतः कुछ समय उपरांत वह उस वस्तु तथा उस विज्ञापन के संबंध में भूल जाता है। इस प्रकार कंपनी अपने संभावित ग्राहक को खो बैठती है।

2. **रुचि का सजन (Creation of Interest):** आकर्षण के साथ–साथ विज्ञापन में रुचि भी होनी चाहिए, उसमें पाठक में क्रय करने की रुचि जगाने की क्षमता होनी चाहिए। इस तत्व के लिए विज्ञापन के (पिछले पैराग्राफों में बताए गए)

तत्व एक दूसरे से श्रंखलित होने चाहिए– उस समय से जब से विज्ञापन का पहला तत्व शीर्षक देखा गया हो। शीर्षक विज्ञापन का पहला तत्व माना जाता है। यदि विज्ञापन को प्रभावपूर्ण बनाना है तो उसमें रुचि उत्पन्न करने का गुण होना चाहिए। केवल तथ्य आंकड़े और सांख्यिकीय विवरण पाठक को बोर कर देते हैं। उन्हें कुछ रुचिकर विधियों द्वारा, अच्छे उदाहरणों द्वारा, ग्राफों (चित्रों) द्वारा तथा रुचिपूर्ण भाषा द्वारा दिखाया जाना चाहिए।

3. **सरलता (Simplicity):** सरलता प्रभावपूर्ण विज्ञापन के लिए आवश्यकता है संयोगांग है। यह प्रमाणित तथ्य है कि पूरे पन्ने के अच्छे रंगीन विज्ञापन से एक चौथाई पन्ने का बिना रंग का विज्ञापन (जो केवल सफेद व काले में हो) अधिक प्रभावपूर्ण हो सकता है। जब तक पाठक विज्ञापन को सरलता से जल्दी से न समझ ले तब तक विज्ञापन का कोई फायदा नहीं है। शीर्षक का उदाहरण तथा विषयवस्तु सरल होनी चाहिए। विज्ञापन सरल भाषा में प्रस्तुत किया जाना चाहिए तथा उसका अर्थ स्पष्ट होना चाहिए। विज्ञापन की सरलता या जटिलता पाठकों पर भी निर्भर करती है। हमें किसानों के लिए सरल और प्रत्यक्ष अपीलों का प्रयोग करना चाहिए। जबकि पढ़े–लिखे लोगों के लिए हम जटिल और अप्रत्यक्ष अपीलों का प्रयोग कर सकते हैं।

4. **विश्वास योग्यता (Believability):** विज्ञापन विश्वास योग्य होना चाहिए। दावों तथा अपीलों का प्रभाव तब खत्म हो जाता है जबकि पाठकों में विश्वास न हो। ग्राफों, उदाहरणों, सर्वेक्षणों, नेताओं, अनुसंधानों की उपलब्धियों, प्रयोगशालाओं के परीक्षणों, पत्रों की फोटो कापियों प्रमाण–पत्रों आदि के द्वारा विज्ञापनों के विश्वास को बढ़ाया जा सकता है। कोई टूथपेस्ट विज्ञापनकर्ता जैस कोलगेट, फोरहेन्स इनका प्रयोग अपने उत्पादन के प्रवर्तन के लिए करते हैं। औद्योगिक वस्तुओं के विज्ञापनों के लिए सफल प्रयोगकर्ताओं के उदाहरण चित्रों आदि के द्वारा दिए जा सकते हैं अधिकांश बैंक, बीमा कंपनियां और दूसरी सेवायें प्रदान करने वाले अपनी सेवाओं के लिए इसी तकनीक को अपनाते हैं। माध्यम, जिनके द्वारा विज्ञापन प्रस्तुत किए जाते हैं, विश्वास को बढ़ा सकते हैं। इलस्ट्रेटड वीकली, रीडर्स डाइजेस्ट, धर्मयुग के विज्ञापनों को पढ़ने वाले दूसरी पत्रिकाओं के, जो ज्यादा मान्य नहीं हैं, पाठकों की तुलना में विज्ञापनों पर अधिक विश्वास करते हैं।

5. **याददाश्त (Rememberance):** अच्छे विज्ञापन के लिए याददाश्तता एक प्रमुख आवश्यक तत्व है। लोगों की याददाश्तता कमजोर होती है इसलिए जब तक विज्ञापन बार–बार न किया जाए तब तक लोग उसे याद नहीं रख सकते हैं। स्थिरता के लिए पुनरावत्ति आवश्यक है विज्ञापन को प्र भाव बनाने के लिए उसे पांच से दस बार निश्चित समयांतरों से उसी या दूसरे माध्यमों से दोहराया जाना आवश्यक है। सबसे प्रथम अवसर पर जब विज्ञापन को लोगों के सामने पेश किया जाता है तो हो सकता है कि कई लोग उसे देखें या कई लोग प्रथम दष्टि में उसे पहचान न पाएं। इन सबके लिए विज्ञापन का दुहराया जाना आवश्यक है जिससे कि पाठकों की याददाश्त भी बनी रहे। क्रय की पुनरावत्ति को प्रभावित करने के लिए भी विज्ञापन का दुहराया जाना आवश्यक है। ग्राहकों द्वारा क्रय की बारंबारता कंपनी की सफलता के लिए आवश्यक है। प्राथमिक क्रय के बाद क्रय की पुनरावत्ति आत्मविश्वास को बढ़ाती है तथा उत्पाद और फर्म की ख्याति को बढ़ाती है।

6. **सूचनाप्रदा (Informative):** एक अच्छा विज्ञापन होने के लिए यह आवश्यक है कि वह उत्पाद की विशेषताओं, कीमत, गारंटी, उपलब्धता आदि के बारे में समस्त सूचना प्रदान करे।

7. **कानूनी व नैतिक दष्टि से सही (Legally and Ethically Sound):** अंततः हम यह कह सकते हैं कि श्रेष्ठ विज्ञापन के लिए आवश्यक तत्व यह है कि उसमें कोई भी गलत विवरण (कथन) नहीं होना चाहिए। केवल सत्य तथा सही सूचनाएं ही दी जानी चाहिए, जिससे संभावित ग्राहक विज्ञापित उत्पाद का प्रयोग करने के बाद तप्त हो सके (उन्हें धोखा न दिया जाए)। सच्चे विज्ञापनों के स्थाई प्रभाव होते हैं जिससे की सफल विक्रय तथा लाभ होता है। यह अति आवश्यक है कि विज्ञापन कानून एवं नैतिक दष्टिकोण से सही होना चाहिए।

विज्ञापन माध्यम के चुनाव का निर्णय
(Media Selection Decision)
या
विज्ञापन माध्यम का चुनाव करते समय ध्यान देने योग्य बातें
(Factors to be Considered while Selecting Advertising Media)

विज्ञापन माध्यम (Advertising media) विज्ञापन सन्देश पहुंचाने का एक साधन है। एक उचित साधन को चुनना ही एक समस्या है। एक विक्रेता जो एक छोटे स्थान पर है उसके लिए यह समस्या इतनी अधिक बड़ी नहीं है लेकिन उन विक्रेताओं की समस्या निश्चित रूप से बड़ी है जिनका क्षेत्र राष्ट्रीय या अन्तर्राष्ट्रीय है। स्थानीय विक्रेता के समक्ष तो विज्ञापन माध्यम के स्थानीय साधन जैसे, अखबार, लाउडस्पीकर, सिनेमा स्लाइड व साइन बोर्ड, आदि होते हैं लेकिन एक राष्ट्रीय या अन्तर्राष्ट्रीय विक्रेता के समक्ष तो रेडियो, टेलीविजन, पत्र–पित्रकाएँ, नुमाइशें व भिन्न–भिन्न परिस्थितियों में भिन्न–भिन्न बातों पर निर्भर करता है। एक बात तो सदा ही ध्यान में रखने योग्य है और वह है संस्था का विज्ञापन बजट। एक संस्था के विज्ञापन के माध्यम के चुनाव का निर्णय लेने में बजट ही महत्वपूर्ण भूमिका अदा करता है। संस्था के पास कभी–कभी पर्याप्त धन नहीं होता है जिससे सभी विज्ञापन साधनों का उपयोग किया जा सके। विज्ञापन माध्यम के चुनाव का निर्णय लेते समय निम्नलिखित बातों को अवश्य ही दष्टिगत कर लेना चाहिए–

1. **वस्तुओं एवं सेवाओं की प्रकृति**– विज्ञापन के माध्यम का चुनाव करते समय विज्ञापित की जाने वाली वस्तुओं एवं सेवाओं की प्रकृति को ध्यान में रखा जाना चाहिए। वस्तुएँ एवं सेवाएँ कई प्रकार की हो सकती हैं, उदाहरणार्थ, वस्तुएँ दैनिक उपभोग सम्बन्धी हो सकती हैं, औद्योगिक कच्चा माल हो सकता है या विलासिता तथा आरामदायक आवश्यकताओं की पूर्ति करने वाली हो सकती हैं। इसी तरह सेवाएँ भी अनेक तरह की हो सकती हैं जैसे, बैंकों की सेवाएँ, मरम्मत की सेवाएँ, सलाहकारी सेवाएँ आदि।

2. **व्यवसाय का क्षेत्र**– विज्ञापन के माध्यम का चयन करते समय बाजार की विशालता को भी ध्यान में रखा जाना चाहिए। यदि वस्तुओं एवं सेवाओं का व्यावसायिक क्षेत्र राष्ट्रीय है तो राष्ट्रीय स्तर पर पत्र–पत्रिकाओं, रेडियो, टेलीविजन आदि को विज्ञापन के माध्यमों के रूप में चुना जाना चाहिए। इसके विपरीत यदि बाजार स्थानीय है तो पत्र–पत्रिकाओं के जरिये, पोस्टर्स के जरिये या माइक आदि के द्वारा सेण्डविच आदि विज्ञापन माध्यमों का चुनाव किया जा सकता है।

3. **ग्राहक वर्ग का स्वभाव**– विज्ञापन के माध्यम का चुनाव करते समय यह भी देखना चाहिए कि ग्राहकों का वर्ग किस प्रकृति का है। क्या ग्राहक उपभोक्ता श्रेणी में आते हैं या औद्योगिक ग्राहकों की श्रेणी में आते हैं? यदि विज्ञापन के पाठक, श्रेता या दर्शक उपभोक्ता–ग्राहक हैं तो उनके लिए समाचार–पत्रीय विज्ञापन, व्यापारिक पत्र–पत्रिकाओं में विज्ञापन आदि उपर्युक्त रहते हैं।

4. **ग्राहकों की सामाजिक एवं आर्थिक स्थिति**– विज्ञापन के माध्यम का चुनाव करते समय ग्राहकों की सामाजिक एवं आर्थिक स्थिति को भी ध्यान में रखना चाहिए। ग्राहक धनवान है या गरीब, ग्राहक शिक्षित है या अशिक्षित, ग्राहक पुरुष है या स्त्रियाँ आदि बातों को भी ध्यान में रखा जाना चाहिए। यदि ग्राहक गरीब हैं या मध्यवर्ग के हैं तो सामान्य पत्र–पत्रिकाएँ, अखबार, पोस्टर्स एवं आकाशवाणी द्वारा विज्ञापन करना ठीक रहता है। यदि ग्राहक धनवान हैं तो टेलिविजन, प्रत्यक्ष डाक विज्ञापन, रेडियो एवं उच्चस्तरीय पत्र–पत्रिकाएँ विज्ञापन के माध्यमों के रूप में चुनी जा सकती हैं। यदि ग्राहक अशिक्षित है तो रेडियो एवं फिल्म का विज्ञापन करना ठीक रहता है। यदि ग्राहक शिक्षित हैं तो पत्र–पत्रिकाएँ, डाक द्वारा प्रत्यक्ष विज्ञापन, समाचार–पत्र आदि के माध्यमों के रूप में चुना जा सकता है। यदि स्त्री ग्राहक हैं तो रेडियो, फिल्मों, सामाजिक पत्र–पत्रिकाएँ आदि माध्यम अधिक उपर्युक्त रहते हैं। इसी प्रकार पुरुषों के ग्राहक–वर्ग के लिए अखबार, सेण्डविच विज्ञापन, डाक द्वारा विज्ञापन, रेडियो, फिल्मों आदि माध्यम उपर्युक्त रहते हैं।

5. **सन्देश का स्वभाव**– सन्देश अनेक प्रकार के हो सकते हैं जैसे लघु सन्देश एवं लम्बे सन्देश, गीतात्मक या वर्णानात्मक सन्देश, शब्दात्मक या चित्रात्मक सन्देश आदि। इसलिए विज्ञापन के माध्यम का चुनाव करते समय दिये जाने वाले सन्देश की प्रकृति को भी ध्यान में रखा जाना चाहिए। यदि सन्देश छोटे हों तो रेडियो द्वारा, लम्बे हों तो पत्र–पत्रिकाओं, पोस्टर्स द्वारा, गीतात्मक हों तो रेडियो द्वारा, चित्रात्मक हों तो पत्र–पत्रिकाओं, पोस्टर्स एवं फिल्मों द्वारा ग्राहकों तक पहुंचाये जा सकते हैं।

6. **उपलब्ध माध्यमों का तुलनात्मक अध्ययन**– विज्ञापन के माध्यम का चुनाव करते समय व्यावसायिक जगत में जितने भी माध्यम उपलब्ध हैं उनका तुलनात्मक अध्ययन करना चाहिए। प्रत्येक विज्ञापन–माध्यम से प्राप्त होने वाले लाभों एवं हानियों का विवेचन करना चाहिए। उपलब्ध माध्यमों का तुलनात्मक अध्ययन करते समय निम्न तथ्यों पर विचार किया जाना चाहिएः

    (i) ***माध्यम का प्रचलनः*** प्रत्येक व्यापारिक संस्था को यह पता रहता है कि प्रतियोगी संस्थायें किन माध्यमों को प्रयुक्त कर रही है और उनको कैसी सफलता प्राप्त हो रही है। इसलिए व्यावसायिक जगत में जिस वस्तु के लिए जो साधन अधिक प्रयुक्त किया जा रहा हो, विज्ञापनकर्ता को चाहिए कि वह उसे ही काम में ले। उदाहरणार्थ, यदि विज्ञापन, अखबार, पोस्टर्स एवं रेडियो व फिल्मों द्वारा किया जा रहा है तो विज्ञापनकर्ता को भी इन्हीं माध्यमों को अपनाना चाहिए।

    (ii) ***माध्यम की लोकप्रियता एवं प्रतिष्ठाः*** विज्ञापनकर्ता को माध्यमों का चुनाव करते समय उनकी लोकप्रियता एवं प्रतिष्ठा पर विचार करना चाहिए। माध्यमों की लोकप्रियता एवं प्रतिष्ठा का अनुमान उसके क्षेत्र एवं प्रभावों द्वारा लगाया जा सकता है, जैसे अखबार एवं पत्र–पत्रिकाओं की लोकप्रियता एवं प्रतिष्ठा का अनुमान इस बात से लगाया जा सकता है कि वह राष्ट्रीय स्तर का है या स्थानीय स्तर का, उसे कितने एवं किस वर्ग के व्यक्ति पढ़ते हैं तथा उसकी आवत्ति कैसी है।

    (iii) ***माध्यम की लागतः*** विज्ञापनकर्ता को माध्यमों का चुनाव करते समय उनकी लागत पर भी विचार करना चाहिए, क्योंकि प्रत्येक संस्था सीमित साधनों का अधिकतम तथा सर्वोत्तम उपयोग करना चाहती है। माध्यमों की लागत का अनुमान समय, व्यय, उनके क्षेत्र (Coverage) प्रभाव, स्थायित्व आदि को ध्यान में रखकर लगाया जाना चाहिए।

7. **विज्ञापन की प्रतिलिपि**– विज्ञापन के माध्यमों के चुनाव को बहुत बार विज्ञापन की प्रतिलिपियाँ भी प्रभावित करती हैं। इसलिए विज्ञापनकर्ता को चाहिए कि वह माध्यमों का चुनाव करते समय विज्ञापन की प्रतिलिपियों के आकार एवं अन्य विशेषताओं और उनके शीघ्र प्रकाशन की आवश्यकता की तीव्रता को ध्यान में रखें। उदाहरण के लिए यदि फुटकर व्यापारियों को अपने ग्राहकों को यह सूचना देनी है कि माल का नया स्टॉक आ गया है और शीघ्र ही समाप्त होने वाला हे तो वह स्थानीय पत्र–पत्रिकाओं, पोस्टर्स आदि के द्वारा ऐसी सूचना दे सकता है और यदि माल के स्टॉक की समाप्ति की सूचना देनी है तो वह अपनी दुकान के आगे इस आशय की एक तखती लगाकर भी दे सकता है।

8. **क्रय-निर्णयों का समय एवं स्थान**– विज्ञापन के माध्यमों का चुनाव करते समय यह ध्यान में रखना चाहिए कि कौनसा ऐसा माध्यम है जो ग्राहकों तक उनके द्वारा माल खरीदने के निर्णय लेते समय तक पहुंच सके। उदाहरणार्थ, पुस्तक विक्रेताओं के लए स्कूल एवं कॉलेजों के खुलने के साथ ही पुस्तकें एवं शिक्षा सामग्री बिकना शुरू हो जाती हैं। इसलिए स्कूलों एवं कॉलेजों के खुलने के कुछ समय पूर्व ही वाँछित सन्देश पुस्तक–विक्रेताओं तक पहुँच जाने चाहिए।

9. **विक्रय नीति**– विक्रय नीति भी विज्ञापन के माध्यम के चुनाव को प्रभावित कती है। उदाहरणार्थ, यदि ग्राहक थोक या फुटकर व्यापारी हैं तो डाक द्वारा विज्ञापन के माध्यम को अपनाया जा सकता है।

10. **बाजार (Market)**– विज्ञापन सन्देश पहुंचाने का एक साधन है। इसलिए सबसे पहले इस बात पर विचार कर लिया जाना चाहिए कि सन्देश किन व्यक्तियों तक पहुंचाना है? इसी बात को इस प्रकार कह सकते हैं कि उस वस्तु का बाजार किस प्रकार का है? क्या विज्ञापन सन्देश सभी प्रकार के व्यक्तियों तक पहुंचाना है या स्त्री, बच्चे, व्यापारी, किसान, आदि तक? यह सूचना तो उपभोक्ता अनुसन्धान से प्राप्त की जा सकती है।

विज्ञापन साधन के कुछ तरीके ऐसे हैं जो देखने में तो एक से लगते हैं लेकिन उनके अनुकरण करने वाले अलग–अलग हैं; जैसे, पत्रिकाओं के पढ़ने वाले अलग–अलग होते हैं। कुछ पत्रिकाएँ बच्चों की होती हैं तो कुछ व्यापारियों की। इसी प्रकार कुछ स्त्रियों की तो कुछ सिनेमा प्रेमियों की। अखबार भी अलग–अलग प्रकार के होते हैं। कुछ तो मजदूरों के लिए होते हैं, तो कुछ साधारण जनता के लिए, तो कुछ व्यापारियों के लिए।

अतः विज्ञापन माध्यम निर्णय करते समय उपभोक्ता के प्रकार व माध्यम की प्रकृति को ध्यान में रखकर निर्णय लेना चाहिए।

11. **वितरण प्रणाली (Distribution policy)**– विज्ञापन माध्यम का चुनाव करते समय विज्ञापनकर्ता द्वारा अपनी विवरण प्रणाली को भी ध्यान में रखना चाहिए। इसमें कोई लाभ नहीं है कि विज्ञापन ऐसे साधनों से कराया जाय जिनका प्रसारण सम्पूर्ण भारत में होता हो लेकिन उस वस्तु के विक्रेता सम्पूर्ण भारत में न पाये जायें। अतः विज्ञापन ऐसे साधनों से कराया जाना चाहिए कि यदि कोई व्यक्ति विज्ञापन से प्रभावित होकर वस्तु क्रय करने की इच्छा रखता है तो उसे वह वस्तु अपने नगर, शहर या स्थान पर मिल सके।

12. **माध्यम का चलन (Circulation of the media)**– चलन का अर्थ है कि यदि अखबार है तो उसकी कितनी प्रतियाँ बिकती हैं? इसी प्रकार यदि वह पत्रिका है तो उसके कितने ग्राहक हैं? यदि वह टेलीविजन या रेडियो है तो कितने व्यक्ति टेलीविजन देखते हैं या रेडियो सुनते हैं? विज्ञापन माध्यम का चुनाव करते समय माध्यम के चलने का भी ध्यान रखना चाहिए और उसी माध्यम को चुनना चाहिए जिसका चलन सबसे अधिक है।

13. **माध्यम की लागत (Media cost)**– विज्ञापन के विभिन्न माध्यमों द्वारा विभिन्न विज्ञापन दरें ली जाती हैं, जैसे, दैनिक अखबारों द्वारा प्रति लाइन की दर से विज्ञापन व्यय लिया जाता है लेकिन पत्रिकाएँ पूरे पेज या आधे पेज व चौथाई पेज की दर से व्यय लेती हैं। एक विज्ञापनकर्ता को यह देखना है कि कम–से–कम व्यय में कितने अधिक ग्राहकों तक पहुंच सकता है। इसको हम एक उदाहरण द्वारा स्पष्ट कर सकते हैं। मान लीजिए दो अखबार हिन्दुस्तान टाइम्स व टाइम्स ऑफ इण्डिया हैं। दोनों का प्रचलन क्रमशः 3 लाख अखबार व 5 लाख अखबार है। लेकिन विज्ञापन दरें 3 रुपये पंक्ति व 4 रुपये पंक्ति है तो एक अखबार का प्रति लाख व्यय निम्न प्रकार निकलेगा–

अखबार	चलन	प्रति पंक्ति विज्ञापन दर	प्रति एक लाख पर दर
हिन्दुस्तान टाइम्स	3,00,000	3 रुपये	1 रुपया
टाइम्स ऑफ इण्डिया	5,00,000	4 रुपये	80 पैसा

प्रति लाख पर व्यय निकालने का नियम है–

$$\frac{\text{पंक्ति की दर} \times 1,00,000}{\text{प्रचलन}}$$

इस प्रकार एक विज्ञापन कराने वाले को टाइम्स ऑफ इण्डिया अच्छा रहेगा क्योंकि इसमें एक पंक्ति की दर 80 पैसे पड़ती है जबकि हिन्दुस्तान टाइम्स की दर एक रुपये। वैसे यह साधारण नियम है कि जिस अखबार का चलन (circulation) जितना अधिक होगा उसकी प्रति लाख दर भी कम होगी। इसके विपरीत, जिस अखबार का चलन जितना कम होगा उतनी ही उसकी प्रति लाख पर दर अधिक होगी।

पत्रिकाओं के लिए भी इसी प्रकार की दरें प्रति हजार पर निकाली जाती हैं और इसका नियम भी इस प्रकार है–

$$\frac{\text{प्रति पेज दर} \times 1,000}{\text{प्रचलन}}$$

टेलीविजन व रेडियो की दरें प्रति मिनट, घण्टे, आधा घण्टे व चौथाई घण्टे की होती हैं। इसमें यह निकालना पड़ता है कि प्रति मिनट में कितने व्यक्ति टेलीविजन देखते हैं या रेडियो सुनते हैं–

14. **विज्ञापनकर्ताओं की रीति (Advertisers' usage)**– एक विज्ञापनकर्ता जिस विज्ञापन माध्यम को अपनाता है उसका प्रतियोगी भी उसको इस आशय से अपना लेता है कि वह प्रभावोत्पादक अवश्य होगा। अतः एक विज्ञापनकर्ता

को विज्ञापन माध्यम सम्बन्धी निर्णय लेते समय प्रतियोगी संस्था की विज्ञापन रीति को भी समझ लेना चाहिए। लेकिन उसकी नकल न करके यह समझने की कोशिश करनी चाहिए कि उसका विज्ञापन कहाँ और कैसे होता है?

15. **विज्ञापन का उद्देश्य (Objective of the advertising)**– किसी विज्ञापन माध्यम के चुनाव पर विज्ञापन उद्देश्य का प्रभाव पड़ता है। जैसे, यदि विज्ञापन तुरन्त कराना है तो इसके लिए समाचार–पत्र व लाइडस्पीकर ठीक हैं। इसी प्रकार यदि विज्ञापन का उद्देश्य दीर्घकालीन प्रभाव डालना है तो पत्रिकाएँ ठीक हैं।

अध्याय-17
विज्ञापन प्रति
(Advertisement Copy)

विज्ञापन कराने से पूर्व विज्ञापन प्रति का निर्माण कराया जाना आवश्यक है। निर्माण की दष्टि से यह विज्ञापन की प्रतियाँ निम्न प्रकार की हो सकती हैं–

(I) छपी विज्ञापन प्रति का निर्माण, (II) बाह्य विज्ञापन प्रति का निर्माण, (III) रेडियो एवं टेलीविजन विज्ञापन प्रति का निर्माण, (IV) सिनेमा विज्ञापन प्रति का निर्माण।

अब हम एक–एक करके इनकी विस्तार से व्याख्या करेंगे।

छपी विज्ञापन प्रति का निर्माण
(Preparation of Press Advertisement Copy)

जो विज्ञापन समाचार–पत्र, पत्रिका, जवाबी पोस्टकार्ड या लिफाफे, पुस्तिकाएँ, आदि पर छपने हैं उनके लिए पहले एक विज्ञापन प्रति तैयार की जाती है।

अब प्रश्न उठता है कि विज्ञापन प्रति किसे कहते हैं? **श्री ओटो क्जेपर** ने अपनी पुस्तक *'Advertising Producer'* में इस सम्बन्ध में लिखा है कि "विज्ञापन प्रति से अर्थ विज्ञापन की उस विषय–सामग्री से है जिसे पढ़ा जा सके। यह विषय–सामग्री सिर्फ एक शब्द में हो सकती है या हजारों शब्दों में भी।" लेकिन *Advertising* नामक पुस्तक के अनुसार, "विज्ञापन प्रति में वे सभी तत्त्व सम्मिलित किये जाते हैं जो विज्ञापन में दिये जाते हैं, चाहे वे मौखिक हों या दश्यमान हों या दोनों प्रकार के हों।"

इस प्रकार विज्ञापन प्रति के लेखन का अर्थ है कि विज्ञापन में क्या-क्या लिखा होना चाहिए। साधारणतया एक विज्ञापन प्रति में वस्तु का नाम, उसका ट्रेडमार्क, उसका मूल्य, प्रेरणादायक वाक्य, शीर्षक, विज्ञापन कराने वाले का नाम, आदि होता है। यह सभी बातें एक विज्ञापन प्रति का अंग मानी जाती हैं। विद्वानों का मत है कि विज्ञापन प्रति में निम्न बातें होती हैं–

1. **शीर्षक**–शीर्षक का उद्देश्य जनता के ध्यान को आकर्षित कर कौतूहल उत्पन्न करना है, जिससे वह उसको पढ़े, जैसे, "आज ही कीजिए", "मूर्ख मत बनिये", "बुद्धिमान बनिये"। ध्यानाकर्षण के साथ–साथ शीर्षक में कौतूहल उत्पन्न करने की क्षमता भी होनी चाहिए; 'यह सिर्फ पुरूषों के लिए है'। विज्ञापन में शीर्षक सबसे ऊपर लिखा जाता है तथा वह सामान्यतया बड़े–बड़े अक्षरों में होता है जिससे कि पाठकों का ध्यान आकर्षित हो जाय। यह शीर्षक कम–से–कम शब्दों में होना चाहिए जिससे कि पाठक शीर्षक को पढ़कर आगे की विषय–वस्तु को पढ़ने के लिए इच्छुक हों।
2. **उपशीर्षक**–यह छोटे शब्दों में लिखा जाता है और शीर्षक में लिखी हुई बातों को पूर्णता प्रदान करता है। इसके लिए प्रत्येक महत्त्वपूर्ण बात को उपशीर्षक देकर स्पष्ट किया जाता है।
3. **वस्तु**–विज्ञापन प्रति में वस्तु का नाम भी होता है जो शीर्ष पंक्तियों में दिया होता है। इस कार्य के लिए नारों का प्रयोग किया जाता है, जैसे "बोर्नविटा यानि शक्ति और उत्साह", "बाटा के बूट, न झूठ न लूट।"
4. **वस्तु के गुण**–वस्तु के गुण भी विज्ञापन प्रति में दिये होते हैं, जिससे पढ़ने वाला आसानी से वस्तु के बारे में समझ सके; "रिन साबुन में 50 प्रतिशत अधिक धुलाई की शक्ति है", "लाइफबॉय कीटाणुओं का नाश करता है।"

5. **मूल्य**–मूल्य सभी विज्ञापनों में नह होता है, लेकिन जहाँ निर्माता मूल्य निर्धारित कर मूल्यों के उतार–चढ़ाव को रोकने का प्रयत्न करता है, वहाँ मूल्य भी दिये होते हैं। छपे हुए मूल्य एक ग्राहक को अन्धकार से बचाते हैं तथा उस वस्तु का चुनाव करने में सहायता पहुँचाते हैं।

6. **विज्ञापनकर्ता का नाम एवं पता**–विज्ञापन प्रति में विज्ञापन कराने वाले का नाम भी दिया रहता है, जिससे ग्राहक वहाँ से सम्पर्क स्थापित कर माल मँगा सकता है। लेकिन ऐसा थोक एवं फुटकर व्यापारियों के विज्ञापनों में होना अनिवार्य है। वे संस्थाएँ जो बड़ी होती हैं तथा जिनका वितरण निश्चित व्यापारियों व एजेण्टों के माध्यम से होता है उनके लिए विज्ञापनकर्ता का नाम देना ही उचित होता है, जैसे जय इंजीनियरिंग वर्क्स लिमिटेड या हिन्दुस्तान लीवर लिमिटेड।

7. **ट्रेडमार्क या ब्राण्ड चिह**–यदि निर्माता का कोई ट्रेडमार्क या ब्राण्ड चिह है तो उसको भी विज्ञापनों में दिया जाना चाहिए; जैसे, खजूर छाप डालडा वनस्पति, गाय छाप आँवले का तेल, बन्दर छाप दन्त मंजन, आदि।

विज्ञापन प्रतियाँ विभिन्न उद्देश्यों को ध्यान में रखकर तैयार की जाती हैं अतः विज्ञापन प्रतियाँ कई प्रकार की होती हैं जिनमें से प्रमुख निम्नलिखित हैं–

1. **सूचनात्मक प्रति (Descriptive copy):** जब विज्ञापन प्रति इस उद्देश्य से बनायी जाती है कि ग्राहकों को वस्तु के बारे में विस्तत जानकारी दी जा सके तो ऐसी प्रति में वस्तु के गुणों का विस्तत विवरण दिया जाता है।

2. **सुझावात्मक प्रति (Suggestion copy):** जब किसी वस्तु के गुणों का प्रचार हो चुकता है तो जनसाधारण को वस्तु क्रय करने के लिए सुझाव दिया जाता है, जिससे जनता उस विज्ञापन को पढ़ या देखकर वस्तु की आवश्यकता अनुभव करने लगे।

3. **शिक्षात्मक प्रति (Educative copy):** इसमें वस्तु के गुणों का वर्णन इस प्रकार किया जाता है कि पाठक उस प्रति को पढ़ या देखकर प्रभावित हो सकें। इसके लिए वस्तु के गुणों का वर्णन वैज्ञानिक ढंग से किया जाता है।

4. **कारण प्रति (Reason why copy):** इस प्रकार की प्रति में वह लिखा रहता है कि जनता को उस वस्तु को क्यों क्रय करना चाहिए? इसके लिए उसकी क्वालिटी, गुण, मूल्य आदि की अच्छाई बताई जाती है, जैसे, "सेन्फोराइज्ड' की मुहर लगे कपड़े खरीदिए क्योंकि वे सिकुड़ते नह हैं।"

5. **मानवीय कल्याण प्रति (Human interest copy):** इस प्रति में भावनाओं को जाग्रत किया जाता है अतः इसके लिए कभी तो कहानी बतायी जाती है तो कभी डर दिखाया जाता है।

6. **युक्तिकरण प्रति (Rationalization copy):** जब दोनों प्रतियाँ (कारण व मानवीय) को मिलाकर काम में लाते हैं तो इसे युक्तिकरण–प्रति कहते हैं। साधारणतया ऐसी प्रति में औचित्य या खरीदने के लिए भावनाएँ जाग्रत की जाती हैं।

7. **प्रश्नवाचक प्रति (Questioning copy):** इस प्रति मे पाठकों से प्रश्न किये जाते हैं। जब कोई पाठक इन प्रश्नों को पढ़ लेता है तो उनके उत्तर पाने के लिए उसमें उत्सुकता पैदा हो जाती है जिससे वह उस विज्ञापन को पूरा पढ़ने का प्रयास करता है और समाधान प्राप्त कर लेता है।

8. **तुलनात्मक प्रति (Comparative copy):** इस प्रकार की प्रति में उपलब्ध वस्तुओं से तर्कपूर्ण ढंग में तुलना कर अपनी वस्तु को अधिक अच्छा बताने का प्रयास किया जाता है। इस प्रति को तार्किक प्रति भी कहते हैं।

9. **ख्याति प्रति (Goodwill copy):** जब कोई संस्था पुरानी है और उसने ख्याति अर्जित कर रखी है तो उस संस्था की विज्ञापन प्रति में इस बात का विवरण देकर जनता को प्रभावित करने का प्रयास किया जाता है, जैसे "यह संस्था 100 वर्ष से भी अधिक पुरानी है।"

10. **प्रमाणपत्रीय प्रति (Testimonial copy):** इस प्रकार की प्रति में उन व्यक्तियों के प्रमाण–पत्र दिये जाते हैं जिन्होंने उस वस्तु को प्रयोग कर देखा है और वे उससे पूर्णरूप से सन्तुष्ट हैं, जैसे "फोरहन्स टूथपेस्ट से नियमित रूप से ब्रुश करने पर मेरे दाँत ७६ वर्ष की उम्र में भी मोतियों की तरह सफेद व चमकदार हैं और स्वस्थ मसूड़ों में उनकी जड़ें गहरी व मजबूत है" विभूति भूषण बोस, कलकत्ता।

11. **कथानक प्रतिलिपि (Colloquial copy):** इस प्रकार की प्रति में वस्तु के गुणों का उल्लेख वार्तालाप या कथानकों के आधार पर किया जाता है जिसमें विभिन्न रेखाचित्र व कार्टून आदि का भी उपयोग होता है। इस प्रकार की विज्ञापन प्रतियाँ पढ़ने में रोचक एवं मनोरंजक होती हैं। कभी–कभी कथानक कविता में भी दे दिया जाता है तब इसको कविता प्रति कहते हैं।
12. **प्रशंसात्मक प्रति (Appreciation copy):** इन प्रतियों में पाठकों के विभिन्न कार्यों की सफलता की प्रशंसा की जाती है और साथ ही उनको यह विश्वास दिलाया जाता है कि हमारी वस्तु आपके लिए उपयोगी है, जैसे "कड़ी मेहनत ने कमाल कर दिया। अब आपको एक प्याले चाय की आवश्यकता है।"
13. **विशेष अवसर प्रति (Special occasion copy):** इस प्रकार की प्रति की आवश्यकता विशेष कारणों से हो जाती है, जैसे "फ्लू दुबारा आ गया है।" अतः ऐण्टिफ्लू गोलियाँ लीजिए।
14. **मिश्रित प्रति (Compound copy):** जब एक प्रति में उपर्युक्त वर्णित बातों में से कई बातें दे दी जाती हैं तो उस प्रति को मिश्रित प्रति कहते हैं।

एक अच्छी विज्ञापन प्रति के आवश्यक गुण
(Essentials of a Good Advertising Copy)

एक अच्छी विज्ञापन प्रति के लिए आवश्यक है कि उसमें पाँच बातें अवश्य हों। इन बातों को एक वाक्य से समझाया जा सकता है–"A good advertising copy must make people see it, read it, understand it, believe it and act upon it."

1. **देखना चाहिए**–विज्ञापन प्रति इस प्रकार बनी होनी चाहिए कि जनता उसको देखे। इसके लिए शीर्षक, उपशीर्षक, चित्र, रंग, आदि का प्रयोग किया जा सकता है। **कुछ विद्वान इसको ध्यान आकर्षित करना भी कहते हैं।** चाहे देखने के लिए विवश करने की बात कहें या ध्यान आकर्षित करने की। दोनों का उद्देश्य यह है कि सम्भावित ग्राहक उसको देखने के लिए विवश हो जाय और उसकी निगाह ऐसे विज्ञापन पर अवश्य ही पड़ जाय।
2. **पढ़ना चाहिए**–ऐसा कोई नियम नह है जिसके अनुसार विज्ञापन प्रति को पढ़ना अनिवार्य है। अतः इसके लिए यह आवश्यक है कि उसको इस प्रकार मनोरंजक बनाया जाय कि जनता उसको पढ़े। जनता के पढ़ने के लिए उसमें स्वास्थ्य, आराम, सफलता, सामाजिक प्रतिष्ठा, आदि की बात कही जा सकती है तथा चित्र, कहानी, वार्तालाप, आदि का उपयोग किया जा सकता है। **कुछ विद्वान इसको रुचि उत्पन्न करने की बात कहते हैं।** विज्ञापन प्रति में रुचि उत्पन्न करने का यह गुण भी होना चाहिए।
3. **समझना चाहिए**–एक विज्ञापन प्रति ऐसी होनी चाहिए कि जनता की समझ में आ जाय। उसमें सफाई होनी चाहिए। उसमें साधारण भाषा का प्रयोग किया जाना चाहिए। ऐसा न हो कि उसको पढ़ने व समझने के लिए एक व्यक्ति को शब्दकोष की सहायता लेनी पड़ें।
4. **विश्वास करना चाहिए**–एक अच्छी विज्ञापन प्रति में यह गुण भी होना चाहिए कि पढ़ने वाले उस विज्ञापन पर विश्वास करें। इसके लिए प्रमाण–पत्र व प्रामाणिक आँकड़े प्रस्तुत किये जा सकते हैं। कुछ विद्वान इसको इच्छा तीव्र करना भी कहते हैं। इसके लिए गुणों को बहुत अधिक बढ़ा–चढ़ाकर नह लिखना चाहिए।
5. **वस्तु चाहिए**–एक अच्छी विज्ञापन प्रति का यह अन्तिम एवं महत्वपूर्ण गुण है। प्रत्येक विज्ञापन प्रति का उद्देश्य वस्तु को बेचना है। यदि विज्ञापन प्रति ऐसा न कर पायी तो वह अपने उद्देश्य की पूर्ति नह कर पायेगी और विज्ञापनदाता का सारा परिश्रम व व्यय व्यर्थ ही चला जायेगा। कुछ विद्वान इसको "इच्छित उद्देश्य को पूर्ण करना" भी कहते हैं।

   विज्ञापन प्रतियों में कुछ भावनाओं या विचारों का होना अनिवार्य है। बिना विचारों व भावनाओं के व्यक्ति पर विज्ञापन का कोई प्रभाव नह पड़ता है। यह विचार या भावनाएँ इस प्रकार हैं– 1. स्वास्थ्य भावना, 2. सौन्दर्य भावना, 3. गर्व भावना, 4. आराम भावना, 5. सफलता भावना, 6. पैतक भावना, 7. अनुकरण भावना, 8. देश–भक्ति भावना।

विज्ञापन प्रति के आवश्यक तत्व
(Main Elements of Advertising Copy)

प्रभावपूर्ण विज्ञापन के लिए एक विज्ञापन प्रति में निम्न सात तत्त्व अवश्य ही होने चाहिए–

1. **ध्यानाकर्षण तत्त्व (Attention value):** आज का मानव अपने कार्य में काफी व्यस्त रहता है। उसके पास इतना समय नह है कि वह विज्ञापन को ढूँढ़े। बहुत से व्यक्ति तो विज्ञापन को पूरा पढ़ना तो दूर रहा, वे उसकी ओर देखते भी नह। अतः आवश्यकता इस बात की है कि विज्ञापन इतना आकर्षक बनाया जाय कि पाठक का ध्यान स्वयं ही खिंचकर विज्ञापन तक पहुँच जाय। इसके लिए आवश्यक चित्र विज्ञापन में लगाये जा सकते हैं। आकर्षक एवं बड़े–बड़े शीर्षक दिये जा सकते हैं। मन को बहलाने वाले उपयुक्त रंगों का प्रयोग किया जा सकता है। यही नह सुन्दर धारियाँ, उत्तर के लिए कूपन, मार्मिक नारे व विशिष्ट स्थानों को भी काम में लाया जा सकता है। जैसे "परिवार के लिए माँ की पसन्द डालडा", "उत्तम स्वास्थ्य लाइफबॉय के ही कारण है।"

2. **सूचक तत्त्व (Suggestive value):** जब विज्ञापन की ओर किसी का ध्यान आकर्षित हो चुका है तो अब आवश्यकता इस बात की है कि विज्ञापन प्रति वस्तु के बारे में भी पाठक को सुझाव दे। इस कार्य के लिए वस्तु के गुणों, उसके प्रयोग एवं उपयोग आदि का विवरण भी विज्ञापन प्रति में दिया जाना चाहिए।

3. **स्मरण तत्त्व (Memorising value):** एक विज्ञापन प्रति में इस बात की भी आवश्यकता है कि उसमें स्मरण तत्त्व भी हो। एक व्यक्ति दिन भर में सैकड़ों विज्ञापन देखता है अतः इस बात की आवश्यकता है कि वह विज्ञापनकर्ता का विज्ञापन याद रखें और भविष्य में उस पर चलकर वस्तु को क्रय करें। याद रखने के लिए सन्देश छोटा एवं मनोरंजक होना चाहिए, जैसे "इंक नह, क्विंक कहिए" "चाय पियो, बहुत दिन जिओ", "लाल इमली", "धारीवाल", "जे. के. प्रोडक्ट", "टाटा टैक्सटाइल ग्रुप" आदि।

4. **विश्वास तत्त्व (Conviction value):** एक विज्ञापन प्रति में विश्वास तत्व का होना आवश्यक है। आज का उपभोक्ता किसी भी वस्तु को तब तक नह खरीदता जब तक कि उसको वस्तु की शुद्धता व गुणों के बारे में विश्वास न हो जाय। इसलिए विज्ञापन प्रति में ऐसी भाषा का प्रयोग किया जाता है कि विज्ञापन पढ़ने वाले को वस्तु के बारे में पूर्ण विश्वास हो जाय, जैसे लाल इमली के विज्ञापनों में भेड़ का चित्र दिया जाता है। डेरी विज्ञापन में गाय या भैंस का चित्र दर्शाया जाता है। यही नह, विश्वास दिलाने के लिए ऐसे शब्दों का प्रयोग किया जाता है–"नीम टूथ–पेस्ट मुँह की दुर्गन्ध निकाल फेंकता है", "ऐस्प्रो जल्द की दर्द में आराम करती है क्योंकि वह माइक्रोफाइण्ड है।" कई बार विक्रय के बाद सेवा की गारण्टी दी जाती है, जैसे "ऊषा पंखों की दो साल की गारण्टी है।"

5. **भावात्मक तत्त्व (Sentimental value):** विज्ञापन में कोई ऐसी बात नह होनी चाहिए जिससे व्यक्ति की भावनाओं को चोट पहुँचे। इसमें भावुकता को आधारशिला मानकर लाभ उठाना चाहिए, जैसे राष्ट्रीय भावनाओं का लाभ उठाने के लिए कहा जा सकता है, "भारत में बनी हिन्द साइकिल खरीदिए", "एच. एम. टी. घड़ियाँ स्वदेशी हैं।"

6. **शिक्षण तत्व (Educative value):** विज्ञापन प्रति में शिक्षा तत्व का होना भी आवश्यक है। एक ग्राहक वस्तु के प्रयोग की विधि जाने बिना उस वस्तु को नह खरीदता है। उसको ऐसी वस्तु के खरीदने में हिचकिचाहट होती है इसीलिए इस बात की आवश्यकता है कि प्रयोग विधि भी विज्ञापन प्रति में दी जानी चाहिए जिससे कि ग्राहक यदि उसका प्रयोग नह जानता है तो भी विज्ञापन को पढ़कर वस्तु का प्रयोग कर सके। 'डालडा' के विज्ञापनों में पकवान बनाने की विधि का पूरा विवरण दिया जाता है। 'हिमा गुलाब जामुन' के विज्ञापन में गुलाब जामुन बनाने की विधि दी रहती है।

7. **प्रवत्ति तत्त्व (Instinctive value):** प्रत्येक व्यक्ति अलग–अलग प्रवत्ति का होता है। एक कुशल विज्ञापनकर्ता इन प्रवत्तियों का गहरा अध्ययन कर उनका सहारा लेकर विज्ञापन करता है, जिससे उपभोक्ता प्रभावित हों और वस्तु को क्रय करें। इन तत्त्वों के अतिरिक्त कुछ विद्वान निम्न दो तत्त्व और बताते हैं–

8. **हृदय लालायित कर देना (Evoking the response):** विज्ञापन प्रति इस प्रकार की होनी चाहिए कि ग्राहक के वस्तु न चाहने पर भी वह वस्तु को खरीदने को लालायित हो जाय। विज्ञापन उसके मन में हलचल मचा देने वाला होना चाहिए और जब तक वह उसका क्रय न कर ले तब तक उसको मानसिक शान्ति नह मिलनी चाहिए।

9. **विज्ञापन सम्बन्धी बुराइयों से दूर (Away from Advertising demerits):** विज्ञापन प्रति में विज्ञापन की बुराइयाँ नह आनी चाहिए, जैसे, मिथ्या कथन, लम्बे–लम्बे वाक्य, अतिशयोक्ति, असत्य बातें, व्यर्थ के प्रश्न एवं वाक्यों का प्रयोग।

विज्ञापन प्रति निर्माण में सावधानियाँ
(Precautions for Preparing an Advertising Copy)

एक विज्ञापन प्रति बनाने वाले को विज्ञापन प्रति बनाते समय निम्न बातों को ध्यान में रखना चाहिए या निम्न सावधानी बरतनी चाहिए–

1. **संक्षिप्तता**–विज्ञापन प्रति संक्षिप्त होनी चाहिए। संक्षिप्तता का अर्थ यह नह है कि आवश्यक सन्देश को छोड़ दिया जाय या सन्देश अधूरा ही छापा जाय। सन्देश पूर्ण होना चाहिए लेकिन संक्षेप में।
2. **सरल भाषा**–दूसरी सावधानी यह है कि विज्ञापन की भाषा सरल होनी चाहिए जिससे साधारण व्यक्ति भी समझ सके। ऐसा न हो कि विज्ञापन समझने के लिए शब्दकोष की सहायता लेनी पड़े। साथ ही वाक्य भी छोटे–छोटे होने चाहिए।
3. **मौसम के अनुकूल**–विज्ञापन मौसम के अनुकूल ही किया जाना चाहिए। जैसे यदि सद का मौसम है तो ऊनी कपड़ों का और यदि गर्मी का मौसम है तो सूती कपड़ों का विज्ञापन होना चाहिए।
4. **ग्राहकों को विश्वास**–विज्ञापन प्रतिलिपि में ग्राहकों को विश्वास दिलाया जाना चाहिए कि वस्तु अच्छी है व विज्ञापित बातें सही हैं अर्थात् वस्तु में वे सभी गुण हैं जो विज्ञापन में लिखे हैं।
5. **गुणों का वर्णन**–विज्ञापन प्रतिलिपि में वास्तविक गुणों का ही वर्णन किया जाना चाहिए। ऐसे गुणों का वर्णन नह करना चाहिए जो वस्तु में नह हैं।
6. **सुरुचिपूर्ण भाषा**–विज्ञापन में रुचिपूर्ण भाषा का प्रयोग किया जाना चाहिए। अरुचिपूर्ण या अश्लील भाषा का प्रयोग नह किया जाना चाहिए।
7. **उत्तेजनापूर्ण न होना**–विज्ञापन प्रति उत्तेजनापूर्ण नह होनी चाहिए। इसी प्रकार वह किसी की भावनाओं को भी चोट पहुँचाने वाली नह होनी चाहिए।
8. **मिथ्या एवं छलपूर्ण न होना**–विज्ञापन प्रति में मिथ्या वर्णन या छलपूर्ण वर्णन नह करना चाहिए बल्कि उससे बचना चाहिए। इसका अर्थ यह है कि विज्ञापन में सत्यता का ही उल्लेख किया जाना चाहिए।
9. **सहानुभूति-पूर्ण**–विज्ञापन में सहानुभूति दिखायी जानी चाहिए। वार्तालाप मैत्रीपूर्ण होने चाहिए।
10. **नवीनता**–विज्ञापन में नवीनता का होना अनिवार्य है अतः विज्ञापन प्रति बनाते समय नवीनता पर ध्यान देना चाहिए।
11. **जनभावना के अनुरूप**–विज्ञापन प्रति जनभावनाओं के विपरीत न होकर अनुकूल होनी चाहिए। अर्थात् विज्ञापन प्रति बनाते समय इस बात का ध्यान रखा जाना चाहिए कि उसमें कोई भी ऐसी बात नह होनी चाहिए जो जनता की रुचि एवं रीति–रिवाज के प्रतिकूल हो।
12. **प्रतिस्पर्द्धा की निन्दा से बचाव**–विज्ञापन प्रति में प्रतिस्पर्द्धा की निन्दा करना उचित नह है अतः उससे बचना चाहिए ।

विज्ञापन प्रति का निर्माण
(Preparation of Advertising Copy)

विज्ञापन प्रति का निर्माण करने में चार बातें आती हैं, जिन्हें विज्ञापन के निर्माण का कार्य भी कहते हैं– (I) विज्ञापन प्रति का लेखन, (II) चित्रों का चुनाव, (III) खाका निर्माण, (IV) मुद्रण।

विज्ञापन प्रति का लेखन

विज्ञापन प्रति में क्या लिखा होना चाहिए तथा विज्ञापन प्रति लिखते समय किन बातों का ध्यान रखना चाहिए आदि बातों का उल्लेख हमने इसी अध्याय में पिछले पन्नों में कर दिया है अतः उनका विवरण पुनः प्रस्तुत नह किया जा रहा है।

चित्रों का चुनाव
(Selection of the Pictures)

विज्ञापन प्रति का लेख निश्चित करने के बाद इस बात का निर्णय लेना होता है कि चित्रों एवं उदाहरणों का प्रयोग किया जाय अथवा नह। यह तो साधारण सत्य है कि यदि किसी व्यक्ति को कोई बात समझानी है तो बार–बार कहने से

वह नह समझता लेकिन उसको एक बार उदाहरण या चित्र से समझा दिया जाय तो उसकी समझ में आसानी से आ जाती है।

ऐसा कहा जाता है कि चीनियों की एक कहावत है कि "एक चित्र एक हजार शब्दों के बराबर है।" विज्ञापन में चित्र या चित्रों का प्रयोग करते समय निम्न प्रकार के चित्र काम में लाये जा सकते हैं–

1. **वस्तु का प्रदर्शन**–विज्ञापन में वस्तु को प्रत्यक्ष रूप से चित्रित किया जा सकता है जिससे ग्राहक उसकी क्वालिटी, रंग, आकार–प्रकार, आदि को समझ सके।
2. **वस्तु की निर्माण विधि**–विज्ञापनों में वस्तु को निर्मित करते हुए भी दर्शाया जा सकता है, जैसे कपड़े की कई बार जाँच करने पर ही 'सेन्फराइज्ड' की छाप लगायी जाती है, विज्ञापन में जाँच होते हुए दिखाया जा सकता है।
3. **वस्तु का प्रयोग**–वस्तु को प्रयोग करते हुए विज्ञापन में चित्र दिया जा सकता है। जैसे मोच आने पर दवाई को मलते हुए दिखाया जा सकता है या साबुन के विज्ञापन में एक महिला को बाथरूम में नहाते हुए दर्शाया जा सकता है।
4. **पैकिंग का प्रदर्शन**–वस्तु को अच्छी प्रकार से कागज के थैलों में या पट्ठे के डिब्बों में या टिन के डिब्बों में पैक किया जाता है। विज्ञापन में उस पैकिंग का बाहरी रूप प्रदर्शित किया जा सकता है।
5. **पष्ठभूमि** –वस्तु की पष्ठभूमि को भी चित्र के रूप में दिया जा सकता है। उदाहरणार्थ, पम्प से पानी निकालते समय हरे–भरे खेत या कूलर के विज्ञापन में पहाड़ों पर जमी बर्फ दिखायी जा सकती है।
6. **दुष्परिणाम**–यदि वस्तु का प्रयोग न किया जाय तो उसके बुरे परिणामों को चित्र के रूप में विज्ञापन में दिया जा सकता है, जैसे, यदि आपकी गाड़ी में अच्छे ब्रेक नह हैं तो सड़क दुर्घटना होते हुए दिखाया जा सकता है।
7. **वस्तु के गुण**–वस्तु के गुणों को भी चित्र के रूप में दर्शाया जा सकता है।
8. **संस्था का ट्रेडमार्क या ब्राण्ड चिह**–चित्रों के रूप में संस्था का ट्रेडमार्क या ब्राण्ड चिह भी दिया जा सकता है। इससे संस्था की ख्याति में वद्धि होती है।
9. **चौखट या किनारे**–विज्ञापन के चारों ओर फूलपत्रों की बेलें या डिजाइनदार किनारे बनाये जा सकते हैं।

विज्ञापन में चित्रों का चुनाव करते समय ध्यान देने योग्य बातें

विज्ञापन प्रति में चित्रों को प्रदर्शित करने के लिए चित्रों का चुनाव करते समय निम्न बातों पर ध्यान देना चाहिए–

1. **आकर्षक**–चित्र आकर्षक हों जिससे उनको देखने वाला उसको पढ़ने व देखने का समय देने के लिए विवश हो जाय।
2. **रंगों का प्रयोग**–चित्र सादा व रंगीन दोनों प्रकार के होते हैं। रंगीन चित्रों का प्रयोग अच्छा रहता है।
3. **अवसर के अनुकूल**–चित्र अवसर के अनुकूल होने चाहिए। यदि त्यौहार का विज्ञापन किया जा रहा है तो चित्र भी त्यौहार के अनुसार ही होना चाहिए।
4. **कार्टून**–चित्रों के अतिरिक्त कार्टून का भी प्रयोग किया जा सकता है। कभी–कभी कार्टून के साथ कथाओं का भी वर्णन दे दिया जाता है।
5. **वस्तु के गुणों की झलक**–चित्रों का चुनाव करते समय इस बात का भी ध्यान रखना चाहिए कि ऐसे चित्र चुने जायें जो वस्तु के गुणों को झलकाते हों।
6. **सरल एवं स्पष्ट**–ऐसे चित्र चुनने चाहिए जो सरल तथा स्पष्ट हों।
7. **सुरुचिपूर्ण**–चित्र इस प्रकार चुने जायें जो सभी को अच्छे लगें। उत्तेजनात्मक चित्र नह चुनने चाहिए। इसी प्रकार किसी भावना को ठेस पहुँचाने वाले चित्र भी नह चुनने चाहिए।
8. **सीधा सम्बन्ध**–जो चित्र चुना जाय वह ऐसा हो कि उसका सम्बन्ध उत्पादित वस्तु से हो जिससे ग्राहक को समझने में देर न लगे। यदि ऐसा नह हुआ तो ग्राहक उससे प्रभावित नह होगा।
9. **पूर्ण**–चित्र अपने में पूर्ण होने चाहिए अर्थात् चित्र को देखकर पाठक के द्वारा पूर्णता का अनुभव होना चाहिए।

10. **छपाई**–चित्रों की छपाई अत्यन्त ही महत्वपूर्ण है। यदि चित्र साफ नह छपा है तो उसका बुरा प्रभाव पाठक पर पड़ता है। अतः चित्रों की छपाई पर विशेष ध्यान देना चाहिए।

विज्ञापन प्रति में चित्रों के प्रयोग से लाभ मिलता है। यह लाभ निम्नलिखित हैं–

1. **ध्यानाकर्षण (Attraction):** चित्र पाठकों के ध्यान को आकर्षित करते हैं और पाठक को उस विज्ञापन को पढ़ने के लिए विवश करते हैं।
2. **अनुकूल वातावरण (Favourable atmosphere):** चित्र विज्ञापित वस्तु के पक्ष में वातावरण बनाने में सहायक होते हैं तथा जनता को वस्तु याद रखने में सहायता करते हैं।
3. **स्थायी प्रभाव (Permanent effect):** चित्र पाठकों के मस्तिष्क पर स्थायी प्रभाव डालते हैं। शब्दों को तो भूला जा सकता है लेकिन चित्र का ढाँचा सदा ही मस्तिष्क में बना रहता है।
4. **वस्तु प्रदर्शन (Display of articles):** चित्र वस्तु को प्रदर्शित कर देते हैं जिससे जनता को वस्तु के बारे में अच्छी प्रकार से समझ में आ जाती है।
5. **प्रयोग विधि (Use):** चित्रों के माध्यम से वस्तु के प्रयोग की विधि अच्छी प्रकार समझायी जा सकती है।

खाका निर्माण
(Layout)

विज्ञापन समिति (Committee on Advertising) के अनुसार, "खाका निर्माण या अभिन्यास एक ढाँचा है जो विक्रय सन्देश को एक प्रभावी एवं बलपूर्वक डिजाइन में परिवर्तित करता है।"[1]

इस ढाँचे की तुलना एक मकान के नक्शे से की जा सकती है। जिस प्रकार मकान का नक्शा पहले बनकर तैयार हो जाता है और फिर मकान। उसी प्रकार विज्ञापन प्रति में ढाँचा पहले तैयार किया जाता है और फिर विज्ञापन की प्रति बनायी जाती है।

जब विज्ञापन प्रति का सामान तैयार हो जाता है और चित्र का चुनाव हो चुकता है तब छापने के लिए एक खाका तैयार किया जाता है जिसको खाका विशेषज्ञ तैयार करते हैं तथा वे ही यह तय करते हैं कि विज्ञापन किस आकार में छपेगा? चित्र कहाँ लगेगा? कैसे अक्षरों का कहाँ–कहाँ प्रयोग होगा? कितने रंगों का उपयोग होगा? आदि। जब यह सभी बातें तय हो जाती हैं तब कह उस विज्ञापन प्रति को प्रेस को छापने के लिए दिया जाता है।

खाका निर्माण या अभिन्यास के दो कार्य हैं–

1. चित्र या उदाहरण देने से पूर्व और अक्षरों को चुनने से पहले विज्ञापन के बारे में कल्पना करना अर्थात् यह तय करना कि विज्ञापन की शक्ल किस प्रकार की होगी।
2. छापने वाली संस्था को कार्यशील योजना (Working plan) बनाकर देना जिससे कि विज्ञापन प्रति छप सके।

खाका निर्माण के सिद्धान्त
(Principles of Layout Construction)

खाका निर्माण या अभिन्यास के निम्न 5 सिद्धान्त हैं–

1. **संगठन का सिद्धान्त (Principle of unity):** जिस प्रकार एक व्यक्ति अपने कमरे के लिए आवश्यक सामान (जैसे, फर्नीचर, रेडियो, पायदान, पंखा, आदि) इस प्रकार का खरीदता है कि वह कमरे के अनुरूप हो उसी प्रकार खाका निर्माण या अभिन्यास में भी चित्र, उदाहरण, अक्षर, चौड़ाई, आदि का चुनाव भी इसी प्रकार किया जाता है कि सब मिलकर अच्छे एवं उचित लगें। यदि इसमें कोई कमी रह जाती है तो विज्ञापन प्रति का उद्देश्य ही समाप्त हो जाता है या वह उतनी प्रभावकारी नह हो पाती है।

---

1. "It is a sketch which translates a sales message into an effective compelling design."

—Committee on Advertising

2. **संयोग का सिद्धान्त (Principle of coherence):** खाका निर्माण में जितना समय लगाया जायेगा, उसमें जितना परिवर्तन किया जायेगा, उतना ही खाका अच्छा बनेगा। एक बार यदि खाका अच्छा बन जाता है तो उसमें बार–बार परिवर्तन करने की आवश्यकता नह होती है। संयोग का अर्थ है कि विज्ञापन के पुर्जे इस प्रकार क्रम में रखे जायें कि वे सब मिलकर एक स्पष्ट झलक दे सकें।

3. **समता का सिद्धान्त (Principle of balance):** खाका निर्माण का तीसरा सिद्धान्त समता का सिद्धान्त है। समता का अर्थ है कि खाका समान हो। ऐसा न हो कि आधा हिस्सा तो बहुत भरा हो व आधा बहुत खाली। पूरा समान होना चाहिए।

4. **चाल सिद्धान्त (Principle of movement):** यदि विज्ञापन पढ़ने वाले को पूरा विज्ञापन पढ़वाना है तो चाल के सिद्धान्त का पालन करना पड़ेगा। इसके लिए पंक्तियाँ, तीर के निशान, पद्यांशों पर नम्बर, आदि भी एक कलाकार द्वारा डाले जाने चाहिए।

5. **प्रदर्शन का सिद्धान्त (Principle of display):** यह खाका या अभिन्यास निर्माण सिद्धान्त का अन्तिम सिद्धान्त है। इसके अनुसार एक समय में एक ही वस्तु का प्रदर्शन किया जाय तो अच्छा है। बहुत–सी वस्तुओं का एक साथ प्रदर्शन नह किया जाना चाहिए।

अभिन्यास या खाका निर्माण में सावधानियाँ
(Precautions in Preparing Layout)

विज्ञापन का खाका बनाते समय निम्न बातों को ध्यान में रखना चाहिए–

1. विज्ञापन बड़े–बड़े अक्षरों का छापा जाय जिससे पाठक उसको आसानी से पढ़ सकें।
2. विज्ञापन में दिये गये चित्र एवं उदाहरण विषय के अनुकूल एवं अर्थपूर्ण होने चाहिए।
3. प्रत्येक विज्ञापन नवीनता एवं मौलिकता लिए होना चाहिए।
4. एक विज्ञापन खाका केवल एक वस्तु का ही बनाया जाना चाहिए तथा उसमें सम्बन्धित सभी बातें आ जानी चाहिए।
5. विषय को विभिन्न अनुच्छेदों (Paragraph) में विभाजित किया जाना चाहिए।
6. विज्ञापन सारांश में होना चाहिए।
7. दो पंक्तियों के बीच पर्याप्त स्थान छोड़ा जाना चाहिए।
8. पंक्तियों की लम्बाई अधिक नह होनी चाहिए।
9. खाका इस प्रकार का होना चाहिए जिससे कि मुद्रण कार्य में किसी प्रकार की कठिनाई उत्पन्न न हो।
10. समता सिद्धान्त के अनुसार विज्ञापन पूरा भरा हुआ होना चाहिए। ऐसा नह होना चाहिए कि कुछ भाग तो अधिक भरा है व कुछ खाली।

मुद्रण
(Printing)

जब अभिन्यास तैयार हो जाता है तो फिर उसको मुद्रण हेतु भेजा जाता है। अभिन्यास में सामग्री दो प्रकार की होती है– एक तो लिखित अक्षर व दूसरे ऐसी सामग्री जिसे देखा जा सकता है अर्थात् चित्र। मुद्रण–शाला अर्थात् प्रेस में छापने के अक्षर कई प्रकार के होते हैं जिनका विवरण निम्न प्रकार है–

1. **स्क्रिप्ट (Script):** ये अक्षर हाथ से लिखे जैसे होते हैं। इसका उदाहरण निम्न है–

Script

2. **गोथिक (Gothic):** ये अक्षर समान मोटाई के होते हैं। इसका उदाहरण निम्न है–

GOTHIC

3. **शेडेड इंगलिश (Shaded English):** यह अक्षर सज्जापूर्ण होते हैं अतः कलात्मक से लगते हैं। इसका उदाहरण निम्न है–

ENGLISH

4. **रोमन (Roman):** आजकल प्रेस इन्ह अक्षरों को सामान्यतया काम में लाती है। इसका उदाहरण है–

ROMAN

5. **इटेलिक (Italics):** यह अक्षर कुछ तिरछे होते हैं। इसका उदाहरण निम्न है–

Italics

अक्षरों का आकार (Size of type): मुद्रण के लिए अक्षर छोटे व बड़े कई आकारों में होते हैं जिन्हें पाइण्ट (Point) के आधार पर निश्चित किया जाता है। एक इंच को ७२ हिस्सों में बाँटते हैं। इस प्रकार एक इंच में ७२ पाइण्ट होते हैं। 4 पाइण्ट का अक्षर सबसे छोटा होता है अतः उसका प्रयोग नह होता है। आकार के कुछ उदाहरण निम्न हैं–

यह 12 पाइण्ट है।

यह 14 पाइण्ट है।

यह 18 पाइण्ट है।

यह 24 पाइण्ट है।

यह 36 पाइण्ट है।

मुद्रण में सुन्दरता लाने की दष्टि से अक्षरों का आकार चौड़ा, संकरा, गोल भी हो सकता है। यदि स्थान कम है तो अक्षर पास–पास सटाकर रखे जा सकते हैं। इसके विपरीत, यदि स्थान अधिक है तो चौड़े अक्षरों का प्रयोग हो सकता है।

चित्रों का मुद्रण कुछ कठिन है अतः इसके लिए ब्लाक बनवा लिये जाते हैं जिन्हें अन्य मुद्रण सामग्री के साथ छापा जाता है। यदि चित्र कई रंगों में होते हैं तो कागज को कई बार मशीन में लगाना पड़ता है।

बाह्य विज्ञापन प्रति का निर्माण
(Outdoor Advertising Copy)

सामान्यतः बाह्य विज्ञापन से अर्थ उस विज्ञापन से है जो दीवारों पर किया जाता है। वैसे इसमें अन्य विज्ञापन भी आते हैं; जैसे, वायुयान के धुएँ से आकाश में अक्षर लिखना; होल्डर, डायरी, पेन, दियासलाई, आदि पर छपवा देना; मोटरों, ट्रामों व बसों में अन्दर या बाहरी दीवार पर लिखवा देना, आदि।

इन सभी विज्ञापनों के लिए पहले विज्ञापन प्रति तैयार करते हैं। यह प्रति उसी प्रकार तैयार की जाती है जिस प्रकार छपे विज्ञापन के लिए तैयार की जाती है। अर्थात् दीवार पर क्या लिखना है तथा कौन–सा चित्र लगाना है यह पहले तय कर लेते हैं।

इसके बाद पेण्टर से दीवार पर लिखवा देते हैं या फिर बड़े–बड़े पोस्टर प्रेस में छपवाकर दीवार पर चिपकवा देते हैं। कभी–कभी टिन की प्लेटों पर लिखवाकर जगह–जगह बसों, ट्रामों, रेलों, आदि में लगवा देते हैं।

सीमाएँ (Limitations): इस विज्ञापन की सीमाएँ हैं। यह केवल उन्ह व्यक्तियों तक पहुँचता है जो इन तक स्वयं पहुँचते हैं। साथ ही इन विज्ञापनों का व्यय भारी होता है। अतः इनका प्रयोग सीमित व्यापारिक वर्ग ही करता है।

रेडियो एवं टेलीविजन विज्ञापन प्रति का निर्माण
(Preparation of Radio & Television Advertising Copy)

रेडियो में विज्ञापन देने के लिए पहले विज्ञापन प्रति तैयार की जाती है अर्थात् रेडियो में क्या सुनाना चाहते हैं यह पहले तय किया जाता है फिर इसमें आवाज (sound) भरने के लिए उसका एक रिकार्ड या टेप बनवाते हैं। इसके बाद उसे रेडियो वालों को सुनाने के लिए दे दिया जाता है। इसके लिए कम्पनी समय के आधार पर उसके प्रसारण की फीस लेती है।

इस विज्ञापन की सीमा यह है कि इसमें व्यय अधिक पड़ता है अतः छोटे व्यापारियों के लिए यह उपयुक्त नह है।

टेलीविजन विज्ञापन के लिए पहले एक फिल्म बनवानी पड़ती है जिसे विज्ञापन प्रति कहते हैं। यह फिल्म स्टूडियो में सिनेमा कलाकारों द्वारा बनायी जाती है या फिर विज्ञापन कराने वाला स्वयं तैयार कराता है। इसके बनाने में काफी व्यय होता है। साथ ही यह विज्ञापन उन वस्तुओं के लिए उचित है जिनका व्यापार सारे देश में होता है।

सीमाएँ (Limitations): छोटे व कम पूँजी वाले व्यवसायियों के लिए यह विज्ञापन उपयुक्त नह है; क्योंकि इसके बनाने व प्रसारित कराने में लाखों व करोड़ों रुपयों का व्यय होता है।

सिनेमा विज्ञापन प्रति का निर्माण
(Preparation of Cinema Advertising Copy)

विज्ञापन सिनेमाहालों में भी कराया जा सकता है जिसके लिए सिनेमा रील बनवानी पड़ती है या फिर काँच के टुकड़ों पर लिखवाकर स्लाइड के रूप में सिनेमाघर में दिखवा सकते हैं। स्लाइड का बनवाना आसान है जो कुछ रुपयों में ही बन जाती है लेकिन सिनेमा रील बनवाना भारी व्यय का काम है। छोटे व्यापारी जो स्थानीय व्यापार करते हैं, वे स्लाइड ही बनवाते हैं। लेकिन बड़े व्यापारी रील बनवाते हैं। एक बार बनी सिनेमा रील या स्लाइड कई वर्ष तक चलती है।

सीमाएँ (Limitations): इस विज्ञापन के लिए बनी स्लाइड व रील केवल सिनेमा विज्ञापन के ही काम आ सकती है अन्य किसी विज्ञापन में नह। छोटे व्यापारी सिनेमा रील नह बनवा सकते हैं क्योंकि उसके बनवाने में व्यय काफी आता है।

अध्याय-18
वैयक्तिक विक्रय
(Personal Selling)

वैयक्तिक विक्रय से आशय
(Meaning of Personal Selling)

वैयक्तिक विक्रय वस्तुओं एवं सेवाओं के विक्रय में अपना महत्त्वपूर्ण स्थान रखता है यह विक्रय की वह विधि है जिसे 'प्रत्यक्ष विक्रय' कहा गया हैं। इसमें क्रेता–विक्रेता आमने–सामने होते हैं और उनके मध्य किसी प्रकार की भौगोलिक दूरी नहीं होती है। विक्रेता वस्तुएँ ग्राहकों के समक्ष प्रस्तुत करता है और उनको भली प्रकार सन्तुष्ट करते हुए बेचने का प्रयास करता हैं। इसे विक्रय कला की भी संज्ञा दी गई है। किन्तु यह ध्यान देने योग्य बात है कि वैयक्तिक विक्रय, 'विक्रय कला' से काफी अधिक व्यापक है।

अनेक विद्वानों एवं प्रमुख संस्थाओं द्वारा वैयक्तिक विक्रय को परिभाषित किया गया है। कुछेक परिभाषाएँ निम्नानुसार हैं–

1. विलियम जे. स्टेन्टन के अनुसार, "वैयक्तिक विक्रय वह विक्रय है जिसमें एकमात्र ऐसा व्यक्तिगत विक्रय सन्देश सम्मिलित होता है जो कि विज्ञापन, विक्रय सम्वर्द्धन एवं अन्य सम्वर्द्धनात्मक उपकरणों का विपरीत होता है।"[1]
2. रिचर्ड बसकिर्क के अनुसार, "वैयक्तिक विक्रय वह विक्रय है जिसमें वस्तु के सम्भावित क्रेताओ से व्यक्तिगत सम्पर्क स्थापित किया जाता है।[2]
3. कंडिफ एवं स्टिल के अनुसार, "वैयक्तिक विक्रय मूलतः संचार की एक विधि है। इसमें न केवल व्यक्तिगत, किन्तु सामाजिक व्यापार भी सम्मिलित होता है। प्रत्येक व्यक्ति आमने–सामने (विक्रेता एवं सम्भावित क्रेता) एक दूसरे को प्रभावित करता है।"[3]
4. अमेरिकन मार्केटिंग एसोसिएशन के अनुसार, "यह एक अथवा अधिक सम्भावित क्रेताओं के साथ बातचीत में विक्रय करने के उद्देश्य से की गई मौखिक प्रस्तुति है।"4

उपर्युक्त परिभाषाओ से स्पष्ट है कि वैयक्तिक विक्रय प्रत्यक्ष का वह तरीका है जिसमें कुछ ऐसी विशिष्ट बातें होती हैं जो अन्य विक्रय–तरीकों में नहीं होती हैं। ये विशेषताएँ निम्नलिखित हैं:

1. वैयक्तिक विक्रय प्रत्यक्ष विक्रय का तरीका है।
2. वैयक्तिक विक्रय मौखिक प्रस्तुतीकरण है।
3. वैयक्तिक विक्रय में व्यावसायिक और सामाजिक व्यवहार शामिल हैं।
4. 'वैयक्तिक विक्रय' विज्ञापन, विक्रय सम्वर्द्धन तथा अन्य ऐसी ही संवर्द्धनात्मक विधियों से विपरीत है।

---

1. "Personal selling consists in indivisual personal communication in contrast to mass, relatively impersonal communication of advertising, sales promotion, and the other promotional tools." — W. J. Stanton: "Fundamentals of Marketing", p. 559.
2. "Personal selling consists of contracting prospective buyers of product personally."
   — Richard Buskirk. "Principles of Marketing," p. 496
3. "Personal selling is basically a method of communication. It involve not only individual, but social behaviour each of the person in face to face contrast-Salesman and Prospect-influences the others."
   — Cundiff and Still, "Basic Marketing", pp. 381-82.
4. A.M.A., op. cit., p. 18.

5. वैयक्तिक विक्रय ग्राहकों को वस्तुओं के बारे में जानकारी देने, बेचने, सन्तुष्टि एवं सेवा उपलब्ध करने ओर उनकी सम्भावित शिकायतों को दूर करने की विधि हैं।

6. विक्रय कला इसका अधिकांश है। वैसे गैर–विक्रयण कार्य भी इसमें शामिल होते हैं।

व्यैक्तिक विक्रय का महत्त्व (Importance of Personal Selling)

प्रत्येक संस्था अपनी वस्तुओं की अधिकाधिक बिक्री करना चाहती है ताकि उसके लाभ, उसकी ख्याति एवं उसका क्षेत्र बढ़ सके । इस दष्टि से संस्थाएँ हर सम्भव प्रयास बिक्री बढ़ाने हेतु करती है। प्रायः बिक्री प्रयास दो रूपों में किये जाते हैं– वैयक्तिक एवं अवैयक्तिक रूप में। अवैयक्तिक रूप से किये जाने वाले समस्त बिक्री प्रयत्नों में विज्ञापन, विक्रय सम्बर्द्धन आदि को सम्मिलित किया जाता है। वैयक्तिक रूप से किये जाने वाले बिक्री प्रयत्न वैयक्तिक–विक्रय कहलाते हैं।

यदि तुलनात्मक रूप से प्रत्येक विधि का मूल्यांकन करें तो हम इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि दोनों प्रकार की विधियों के लाभ ऐसे हैं जिन्हें किसी अन्य से प्राप्त नहीं किया जा सकता है। वैयक्तिक विक्रय के जो प्रमुख विशिष्ट लाभ हैं, वे निम्नलिखित हैं, जिनके परिणामस्वरूप उसे काफी महत्त्वपूर्ण माना गया है।

1. **वस्तु प्रदर्शनः** वैयक्तिक विक्रय का प्रमुख लाभ यह है कि इसमें वस्तु का प्रदर्शन ग्राहकों के सम्मुख विक्रेता द्वारा किया जाता है ताकि वस्तु की लाभप्रदता एवं उसकी वाँछनीयता के प्रति ग्राहक को विश्वास हो सके। वस्तु प्रदर्शन का लाभ विज्ञापन जेसे अवैयक्तिक विक्रय विधि से प्राप्त होता है।

2. **ग्राहकों की जानकारीः** विक्रेता अपनी दुकान पर आये हुये अथवा सड़क पर चल रहे सभवित क्रेताओं में से अपनी विक्रय कला, सूझबूझ तथा अनुभव से अपने ग्राहकों को ढूँढ सकता है और अपना ध्यान तथा शक्ति केन्द्रित कर सकता है। किन्तु विज्ञापन एवं विक्रय संवर्द्धन से संभाव्य ग्राहकों तथा असंभाव्य ग्राहकों का पता करना सम्भव नहीं होता है।

3. **शंकाओं एवे आपत्तियों का समाधानः** वैयक्तिक विक्रय में विक्रेता तथा ग्राहक आमने–सामने होते हैं और वस्तु भी सामने पड़ी रहती है। इसलिये वे परस्पर बातचीत द्वारा वस्तु के सम्बन्ध में उत्पन्न शंकाओं और आपत्तियों का समाधान कर सकते है। ग्राहकों की शंकाओं तथा आपत्तियों के समाधान से उनका विश्वास वस्तु की किस्म, मूल्य उपयोगिता आदि के सम्बन्ध में बढ़ता है। इससे अधिक बिक्री की सम्भावनायें बनती हैं।

4. **विक्रय में सहायताः** वैयक्तिक विक्रय वस्तुतः बेचने की कला होती है। इस विधि में विक्रेता ग्राहकों के सम्मुख वस्तु के प्रदर्शन द्वारा, अन्य वस्तुओं के तुलनात्मक अध्ययन तथा वर्णन द्वारा और उनकी शंकाओं के निवारण द्वारा वस्तु की बिक्री के लिए पष्ठिभूमि तैयार करता है अन्तोगत्वा वह वस्तु बेचने में सफल रहता हैं। विज्ञापन एवं विक्रय संवर्द्धन सम्भावित क्रेताओं को वस्तु–क्रय के लिए प्रेरणा देते हैं, किनतु वैयक्तिक विक्रय में प्रेरणा को बिक्री में बदला जाता है।

5. **संचार-सेवाः** वैयक्तिक विक्रय विक्रेता अपनी वस्तु के ग्राहकों तथा सम्भावित ग्राहको को संस्था की नीतियों, उत्पादकों से प्राप्त समाचारों तथा वस्तु सम्बन्धित अनेक प्रकार की जानकारी सूचित करता रहता है। इसी प्रकार, ग्राहकों की रूचियों, माँग, फैशन आदि की जानकारी को निर्माताओं तक पहुँचाता रहता है। इस प्रकार, निर्माता, संस्था एवं ग्राहकों के लिए वैयक्तिक विक्रय संचार सेवायें उपलब्ध करता है।

6. **समय समन्वयः** वैयक्तिक विक्रय में ग्राहकों की वस्तु की आवश्यकता के समय वस्तु उपलब्ध करके ग्राहकों तथा संस्था की सेवा की जा सकती है। विक्रेता एवं ग्राहकों के मध्य घनिष्ठ सम्पर्क स्थापित हो जाते हैं और वस्तु के आगमन की सूचना ग्राहकों तक पहुँच जाती है अथवा ग्राहकों तक वस्तु पहुँचा दी जाती है।

7. **गैर-विक्रय सेवायेंः** वैयक्तिक विक्रय में विक्रेता न केवल विक्रय का ही कार्य करता है, बल्कि गैर–विक्रय कर्य जेसे–बाजार अनुसन्धान, मरम्मत सेवाएँ, ग्राहकों की शिकायतों का निवारण, साख सूचनाएँ एकत्रित करना आदि भी करता है।

8. **लचीली विक्रय व्यवस्थाः** वैयक्तिक विक्रय को विक्रय की लचीली व्यवस्था कहा गया है क्योंकि विक्रयकर्ता परिस्थितियों, ग्राहक–जरूरतों, ग्राहक–प्रेरक हेतुओं, एवं उनके व्यवहारों को ध्यान में रखते हुए अपने विक्रय प्रस्तुतीकरण को अनुरूप बना सकते हैं। इसके अतिरिक्त वे ग्राहक प्रतिक्रियाओ को समझ कर विक्रय प्रविधि में भी परिवर्तन कर सकते है।

9. **प्रभावशीलताः** वैयक्तिक विक्रय विज्ञापन आदि संवर्द्धनात्मक उपायों की तुलना में अधिक प्रभावी माना गया है, क्योंकि यह प्रयासों की बरबादी को रोकता है। विज्ञापन में प्रायः सन्देश उन लोगो तक पहुँचते हैं जो कि वास्तविक भावी ग्राहक नहीं होते हैं जबकि वैयक्तिक विक्रय में समस्त प्रयत्न वास्तविक भावी ग्राहक पर ही केन्द्रित हो जाते हैं।

वैयक्तिक विक्रय का स्वभाव अथवा कार्य
(Nature or Functions of Personal Selling)

एक वैयक्तिक विक्रय कार्य करने वाले को विक्रय कार्य के अतिरिक्त बहुत–से कार्य करने पड़ते हैं। जैसे, बिक्री का रिकार्ड रखना पड़ता है, नये विक्रयकर्ताओं को प्रशिक्षण देना पड़ता है, प्रबन्धक को सुझाव देने पड़ते हैं तथा संस्था की ख्याति को बनाना व बढ़ाना भी पड़ता है। एक फुटकर विक्रेता को साधारणतया निम्न कार्य करने पड़ते हैंः–

1. **बिक्री करना (Making Sales):** वैयक्तिक विक्रय का यह मुख्य कार्य है जिसकों एक विक्रयकर्ता को करना पड़ता है। विक्रय नये व पुराने दोनों प्रकार के ग्राहकों को किया जाता हैं। नये ग्राहकों के आदेश नये आदेश व पुराने ग्राहको के आदेश पुनः आदेश कहलाते हैं।

2. **ग्राहकों की सेवा करना (Service to Customers):** वैयक्तिक विक्रय का दूसरा कार्य ग्राहकों की सेवा करना है इसक लिए वह वस्तु का प्रदर्शन करता है व ग्राहकों को उचित सलाह देता है तथा इस बात को बताता है कि वस्तुओं में सर्वाधिक सन्तुष्टि किस प्रकार प्राप्त की जा सकती है। साथ ही वस्तु को खराब होने से बचाने के लिए उचित कदम भी बताता है।

3. **बिक्री का रिकार्ड रखना (Keeping records of the sales):** यह बिक्री का रिकार्ड रखता है आर्थात् बिक्री किसको व किस मात्रा में व कब की गयी है इसका लेखा रखता है। विक्रयकर्ता द्वारा कितनी मुलाकातें की गयीं और क्या परिणाम रहा? इसका भी लेखा–जोखा इसी के द्वारा रखा जाता है। यदि वह विक्रयकर्ता यात्री विक्रयकर्ता हो तो इसकी अपनी रिपोर्ट भी विक्रय कार्यालय को भेजनी पड़ती है। इस रिपोर्ट में बहुत सी बातें होती है।

4. **प्रशासनिक कार्य (Executive Function):** इसको अपने अल्पकालिक व दीर्घकालिक प्रोग्राम बनाने पड़ते हैं। यह अपने नये साथी विक्रयकर्ताओं को अपने साथ रखकर प्रशिक्षण देता हैं। यह बाजार परिस्थिति का अध्ययन कर प्रबन्ध को अपने सुझाव देता है व अपने साथियों व निरीक्षकों से मिलकर विपणन सम्बन्धी कठिनाइयों को सुलझाता है।

5. **अपनी एवं संस्था की ख्याति में वद्धि करना (Developing Goodwill for himself and the company):** विक्रयकर्ता अन्य बहुत–से कार्य करता है जिनसे उसकी व संस्था की ख्याति बढ़ती है; जैसे, फुटकर विक्रेताओं की माल को प्रदर्शित करने में सहायता करना, उनकी लगातार सेवा करते रहना, आदि।

वैयक्तिक विक्रयकर्ताओं के प्रकार
(Kinds of Personal Salesman)

विक्रयकर्ता कितने प्रकार के होते हैं? यह एक ऐसा प्रश्न है जिसका कोई सर्वमान्य उत्तर मिलना कठिन है। इसका कारण यह है कि विक्रयकर्ताओं के कार्य भिन्न–भिन्न प्रकार के होने के कारण विक्रयकर्ता भिन्न–भिन्न प्रकार के होते है। इसे साथ–साथ एक कारण यह भी है कि विक्रयकर्ताओं के कार्य व्यावसायिक उन्नति के कारण बदलते रहते हैं। इन्हीं सब बातों को ध्यान में रखते हुए विक्रयकर्ताओं को उनके कार्य के अनुसार निम्न तीन प्रकार का मानते हैंः–[5]

---

5. E. Jerome McCarthy: Basic Marketing - A managerial Approach, p. 507.

1. **आदेश प्राप्त करने वाले विक्रयकर्ता (Order-getting Salesmen):** यह वे विक्रयकर्ता है जो सम्भावित ग्राहको को नयी वस्तु, नयी सेवा या नये विचार के लिए ढूँढते हैं, उनको प्रभावित करते हैं और वस्तु के आदेश प्राप्त करते हैं। इन्हीं विक्रयकर्ताओं को सजनशील विक्रयकर्ता भी कहते हैं। इसका कारण यह है कि यह माँग का सजन करते हैं।

   एक अच्छा आदेश प्राप्त करने वाला विक्रयकर्ता चातुर्यपूर्ण, स्वामिभक्त, परिश्रमी, ईमानदार, प्रभावशील व्यक्तित्व वाला, साहसी, सहकारी, नम्र, हष्टपुष्ट व अपने क्षेत्र को पूर्ण रूप से समझने वाला होना चाहिए। जहाँ जक सम्भव हो वह एक ही निर्माता को माल बेचने वाला होना चाहिए। उसको अपने आप में पूर्ण विश्वास होना चाहिए तथा आशावादी दष्टिकोण अपनाना चाहिए। यह आदेश प्राप्त करने वाले विक्रयकर्ता भी तीन प्रकार के होते हैंः–

   1. **निर्माता के लिए आदेश प्राप्त करने वाले विक्रयकर्ताः** यह औद्योगिक वस्तुओं व औद्योगिक कच्चे माल के सम्बन्ध में पाये जाते हैं। इनका काम औद्योगिक क्रेता के माल की पूर्ति करने वाली फर्मो की लिस्ट में अपनी संस्था का नाम जुड़वाना है। ऐसे क्रेता बचत या अधिक लाभों में अपनी रूचि रखते हैं। अतः इनके लिए विक्रयकर्ता प्रखर बुद्धि का होना चाहिए और एक बार सम्पर्क करने के बाद लगातार सम्पर्क करने वाला होना चाहिए। ऐसे विक्रयकर्ता में तकनीकी ज्ञान होना भी अनिवार्य है।

   2. **थोक विक्रेताओं के लिए आदेश प्राप्त करने वाले विक्रयकर्ताः** कुछ थोक विक्रेता अपने फुटकर विक्रेताओं की सुविधा के लिए ऐसे विक्रयकर्ताओं की नियुक्ति करते हैं। इन विक्रयकर्ताओं का काम थोक विक्रेता के लिए फुटकर विक्रेताओं से आदेश प्राप्त करना होता है।

   3. **फुटकर विक्रेता के लिए आदेश प्राप्त करने वाले विक्रयकर्ताः** यह विक्रयकर्ता फुटकर विक्रेताओ के लिए आदेश प्राप्त करता हैं। जब वस्तु नयी होती है तो उपभोक्ताओं को समझााकर आदेश प्राप्त किया जा सकता है। इसी प्रकार यदि वस्तु स्टॉक में बहुत इकट्ठी हो गयी है तो इसके लिए भी आदेश ग्राहकों को उसकी उपयोगिता समझााकर यही विक्रयकर्ता लाते हैं।

2. **आदेश लेने वाले विक्रयकर्ता (Order-taking salesmen):** जब किसी वस्तु की माँग विज्ञापन, विक्रय–प्रवर्तन या अन्य किसी प्रकार से बन गयी है तो उस वस्तु के आदेश लेने वाले यही विक्रयकर्ता होते हैं। वैयक्तिक विक्रय का अधिकांश विक्रय यही लोग करते हैं। ये विक्रय पूर्ण करते हैं। कभी–कभी यही लोग माल की तुरन्त सुपुर्दगी करके उसका भुगतान भी ले लेते हैं। यह भी तीन प्रकार के होते हैं (i) निर्माता के (ii) थोक व्यापारी के व (iii) फुटकर विक्रेता के।

3. **सहारा देने वाले विक्रयकर्ता (Supporting Salesmen):** यह विक्रयकर्ता आमतौर पर निर्माता के लिए कार्य करते हैं और इनका काय्र वस्तु की बिक्री के लिए सहारा देना हैं। इसके लिए वे वस्तु की तान्त्रिक व अन्य अच्छी बातों को सम्भावित क्रेताओं को बताते हैं और संस्था की ख्याति बनाने का प्रयत्न करते हैं लेकिन स्वयं न आदेश लेते हैं और न बिक्री करते हैं। आदेश लेने का कार्य आदेश लेने वाला विक्रयकर्ता बाद में करता है।

   यह सहारा देने वाले विक्रयकर्ता भी दो प्रकार के होते हैं। (i) एक तो वे जो संस्था की ख्याति की वद्धि करते है और माँग उत्पन्न करते हैं तथा थोक विक्रेता के विक्रयकर्ता को प्रशिक्षण भी देते हैं। ऐसे विक्रयकर्ताओं को मिशनरी विक्रयकर्ता कहते हैं। इनका मुख्य कार्य निर्माता एवं थोक व फुटकर विक्रेताओं के बीच संचार–माध्यकम के रूप में कार्य करना है। (ii) दूसरे प्रकार के विक्रयकर्ता तकनीकी विशेषज्ञ होते हैं। यह वैज्ञानिक इन्जीनियर होते हैं। इनमें वस्तु की तकनीकी बातों व उसके लाभों को बताने की क्षमता होती हैं। साधारणतया आदेश प्राप्त करने वाला विक्रयकर्ता अपनी संस्था को क्रेताओं की कठिनाइयाँ बताता है तब इस प्रकार का तकनीकि विशेषज्ञ वहाँ भेजा जाता है जो उनकी कठिनाइयों व सन्देहों को दूर करता है। कभी–कभी इस प्रकार के विक्रयकर्ता स्वयं भी आदेश लेने वाले की तरह कार्य करते हैं।

तीनों प्रकार के विक्रयकर्ता – आदेश प्राप्त करने वाले, आदेश लेने वाले व सहारा देने वाले– वास्तव में तीन अलग–अलग कार्य करते हैं लेकिन यह सम्भव है कि यह तीनों या उनमें कोई दो कार्य एक ही विक्रयकर्ता को दे दिये जाये।

वैयक्तिक विक्रय रीति-नीति निश्चित करना
(Determining Personal Selling Strategy)

वैयक्तिक विक्रय का प्रबन्ध कार्य विक्रय–प्रबन्धक के द्वारा किया जाता है और वही विक्रय शक्ति के नियोजन, प्रशिक्षण व उनके उपयोग के लिए उत्तरदायी होता है। इन उत्तरदायित्वों को पूरा करने क लिए उसको निम्न चार कार्य करने पड़ते है जो वैयक्तिक विक्रय रीति–नीति के निर्धारण सम्बन्धी घटक कहलाते हैं:–

1. **वैयकितक विक्रय व्यय (Personal Selling appropriation):** वैयक्तिक विक्रय रीति–नीति मे सबसे पहले वैयकितक विक्रय व्ययों को निर्घारित किया जाता है। इन व्ययों को निर्घारित करने का आधार विपणन उद्देश्य लक्षित बिक्री हाते हैं जिसका निर्धारण आने वाले समय के लिए प्रबन्ध द्वारा पहले से ही कर लिया जाता है। यदि प्रबन्ध का लक्षित बिक्री–उद्देश्य पिछली बिक्री से अधिक है तो इसका अर्थ यह हो सकता है कि अधिक विक्रयकर्ताओं को भी नियुक्त करने की आवश्यकता प्रतीत हो और उनके निरीक्षण के लिए निरीक्षकों को भी नियुकत करना पड़े। इन निरीक्षकों व विक्रयकर्ताओं को उनक पारिश्रमिक के अतिरिक्त कुछ अन्य व्यय भी देने पड़ते हैं, जैसे, मार्ग व्यय। अतः वैयक्तिक विक्रय–व्यय को निर्धारित करते समय प्रबन्ध को दो कार्य करने पड़ते हैं (i) एक तो प्रतयेक क्रिया द्वारा सम्पादित किये जाने वाले कार्यो का अनुमान, व (ii) दूसरे उन अनुमानों को रूपयों के अनुमानों में बदलना।

   वैयक्तिक विक्रयन्व्ययों निर्धारण से पूर्व सबसे पहले कुछ लक्षित बिक्री का अनुामन लगाकर उस पर होने वाले कुल संवर्द्धन व्ययों को निर्धारित किया जाता है। इसके बाद वैयक्तिक विक्रय व्ययों का निर्धारण किया जाता है।

   वैयक्तिक विक्रय–व्ययों में विक्रयकर्ताओं की भर्ती व चुनाव के व्यय, उनको प्रशिक्षित करने के व्यय, उनको प्रेरणा देने व निरीक्षण के व्यय व उनके प्रबन्ध के व्यय आते हैं। अतः वैयक्तिक विक्रय–व्ययों का निर्धारण करते समय इस बात का ध्यान अवश्य ही रखा जाना चाहिए कि वे इतने अवश्य हों कि उपर्युक्त वर्णित व्ययों को पूरा किया जा सके।

2. **कार्य-विवरणः (Job Description):** "कार्य विवरण एक विशिष्ट कार्य के उद्देश्य कर्तव्यों एवं उत्तरदायित्वों का व्यापक कथन है।"[6] इसमें मुख्य रूप से (i) कार्य सारांश कर्तव्यों और दायित्वों का विवरण, (ii) प्रशिक्षण (iii) कार्य की दशाएँ (vi) कार्य के लिए वांछित उपकरणों, मशीनों एवं सामग्रियों का विवरण, (v) शारीरिक एवं मानसिक गुण (vi) वेतन एवं भत्ते आदि बातें लिखित रूप से आती है।

   विक्रय प्रबन्ध का प्रथम व सबसे महत्वपूर्ण कार्य कार्य–विवरण तैयार करना है। यह कार्य विवरण बिल्कुल स्पष्ट पूर्ण एवं उचित होना चाहिए। वैयक्तिक विक्रय रीति–नीति का यह बहुत ही महत्वपूर्ण अंग है। इसी के आधार पर प्रबन्ध के द्वारा उन गुणों एवं योग्यताओं का निर्धारण किया जाता है जिनका एक विक्रयकर्ता में होना अनिवार्य है। इसी के आधार पर पारिश्रमिक एवं निरीक्षण योजनाएँ बनायी जाती हैं और यही कार्य विवरण प्रबन्ध के लिए मार्ग प्रदर्शन का कार्य करता है।

   कुछ अच्छी कम्पनियां कार्यविवनण के साथ साथ एक प्रमाप कार्य का विवरण भी तैयार करती है। जिससे कि आगे चलकर एक विक्रयकर्ता के कार्य की तुलना उस प्रमाप कार्य के विवरण से करके उसके कार्य का मूल्यांकन किया जा सके।

   साधारणतया प्रत्येक प्रकार की वस्तुओं के विक्रयकर्ताओं के लिए एक से ही कर्तव्य एवं दायित्व होते हैं लेकिन विक्रय पदों का स्वभाव एक कम्पनी से दूसरी कम्पनी में भिन्न होता है; साथ ही प्रत्येक कम्पनी के लक्ष्य भी भिन्न होते हैं। इसका कारण यह है कि कम्पनी अपनी अपनी विपणन रीति नीति अपनाती है।

3. **विक्रय शक्ति क बदलने की दर (Rate of Sales force turnover):** साधारणतया प्रत्येक संस्था में प्रति वर्ष कुछ विक्रयकर्ता इस्तीफा दे जाते हैं या रिटायर हो जाते हैं या कुछ को किन्हीं कारणों से अलग कर दिया जाता हैं वैयक्तिक विक्रय के नियोजन में इस बात का भी ध्यान रखना पड़ता है कि प्रतिवर्ष इन उपर्युक्त वर्णित कार्यो से कितने प्रतिशत विक्रयकर्ता संस्था से निवत्त होंगे जिससे कि उनके स्थान पर नये विक्रयकर्ता नियुक्त करने के लिए पहले से उचित

---

6. "A job description is a broad statement of te purpose, scope, duties and responsibilities of a particular job."
— Maurice B. Coming

प्रबन्ध कर लिया जाय। जिस दर से विक्रयकर्ता निवत्त होते हैं उसी दर को विक्रय शक्ति के बदलने की दर कहते हैं। इस दर को प्रतिशमें में निकालने के लिए निम्नलिखित सूत्र काम में लाया जाता है:–

$$\text{विक्रय शक्ति के बदलने की प्रतिशत दर} = \frac{\text{अलग होने वाले विक्रय कर्ताओं की संख्या}}{\text{विक्रय शक्ति का औसत आकार}} \times १००$$

यदि किसी संस्था में औसतन तीन सौ विक्रयकर्ता हैं और प्रतिवर्ष औसतन 15 विक्रयकर्ता निवत्त हो जाते हैं तो प्रतिशत दर अग्र प्रकार निकाली जायेगी:–

$$\text{प्रतिशत दर} = \frac{१५}{३००} \times १०० = \frac{१,५००}{३००} = ५$$

विपणन से सम्बन्धित सभी व्यक्ति जानते हैं कि नये–नये विक्रयकर्ताओं को प्रशिक्षित करने में व्यय होता है। अतः विपणन प्रबन्धक को इस विक्रय शक्ति के बदलने की दर कम–से–कम रखनी चाहिए। यदि दर बढ़ती है तो विक्रय शक्ति के प्रबन्ध व्यय भी बढ़ते हैं इसके साथ–साथ जितना व्यवसाय पुराने विक्रयकर्ता दे पाते हैं उतना नये विक्रयकर्ता नही दे पाते हैं।

विक्रय कार्य में जितनी विक्रय शक्ति लगी हुई हई है उसको निर्धारित बिक्री अवश्य ही करनी चाहिए। यदि बिक्री उसे कम होती है तो ऐसे विक्रयकर्ता को हटाने की व्यवस्था अवश्य ही करनी चाहिए। साथ ही जो विक्रयकर्ता निर्धातिरत बिक्री से अधिक बिक्री करते हैं उन्हें उन्नति के अवसर भी दिये जाने चाहिए। इसका अर्थ यह है कि कुशल विक्रयकर्ताओं को हटाया जाना चाहिए तथा कुशल को उन्नति का अवसर दिया जाना चाहिए। प्रबन्ध का यह कर्तव्य है कि वह समय–समय पर विक्रयकर्ताओं की बिक्री का मूल्यांकन करता रहे जिससे कि इस बात का पता लगता रहे कि कुशल विक्रयकर्ता तो संस्था को छोड़ कर नहीं जा रहे हैं? प्रबन्ध को विक्रय शक्ति पर हर समय निगाह रखनी चाहिए और इस बात का पता अवश्य ही लगाते रहना चाहिए कि विक्रयकर्ता दूसरी संस्थाओ में क्यों जाते है अथवा जाना चाहते हैं जिससे कि उस ओर उचित कदम उठाये जा सकें और कार्य–विवरण में भी आवश्यकतानुसार परिवर्तन किया जा सके।

4. **विक्रय शक्ति का आकार (Size of Sales force):** विक्रय शक्ति का आकार कितना बड़ा हो यह संस्था की अनुमानित बिक्री व उसके लाभ सम्बन्धी उद्देश्यों पर निर्भर है। इसके साथ–साथ एक विक्रयकर्ता का कार्य विवरण भी आवश्यक है जिससे कि यह तय किया जा सके कि एक विक्रयकर्ता कितने रूपये की बिक्री कर सकता हैं यदि हम कुल अनुमानित बिक्री में एक विक्रयकर्ता की बिक्री का भाग दे दें तो यह निकाला जा सकता है कि कितने विक्रयकर्ताओं की आवश्यकता है। लेकिन ऐसा करते समय विक्रय शक्ति के बदलने की दर का भी ध्यान रखा जाना चाहिए। इस प्रकार विक्रय शक्ति को निकालने के लिए निम्न सूत्र काम में लाया जा सकता है:–

$$N = \frac{S}{P}(1+T)$$

N= विक्रयकर्ताओं की संख्या (Number of Salesman)

S= बिक्री का पूर्वानुमान (Forecasted Sales)

P= एक विक्रयकर्ता की विक्रय क्षमता (Productivity of a Salesman)

T= विक्रय शक्ति के बदलने की दर (Rate of Sales Force Turnover)

यदि किसी संस्था की पूर्वानुमानित बिक्री 50,00,000 रूपये की है और एक विक्रयकर्ता की विक्रय क्षमता 1,00,000 रूपये तथा विक्रय शकित के बदलने की दर 10% है तथा वर्तमान में विक्रयकर्ताओं की संख्या 40 है तो निम्नांकित सूत्र को लगाकर कुल विक्रयकर्ताओं की आवश्कयता का अनुमान लगा सकते हैं:–

$$\text{विक्रयकर्ताओं की संख्या } (N) = \frac{S}{P}(1+T)$$

$$= \frac{50,00,000}{1,00,000}\left(1+\frac{10}{100}\right)$$

$$= \frac{50}{1}\times\frac{110}{100}=55$$

इस प्रकार 50,00,000 रूपये की बिक्री के लिए (55-40)=15 अतिरिक्त विक्रयकर्ताओं की आवश्यकता होगी। इस संख्या में उन विक्रयकर्ताओ की संख्या भी शामिल है जो संस्था से अलग हो जायेंगे और उनके स्थान नये विक्रयकर्ताओं की आवश्यकता होगी। विक्रय शक्ति को नियोजित करते समय इस बात का ध्यान अवश्य ही रखा जाना चाहिए कि विक्रयकर्ता की भर्ती आवश्यकता के समय से पूर्व ही कर ली जानी चाहिए और उनको उचित प्रशिक्षण दे दिया जाना चाहिए। इसका कारण यह है कि विक्रयकर्ता के भर्ती करने व उनको अपने अनुरूप प्रशिक्षित करने में समय लगता है।

वैयक्तिक विक्रय की सीमाएँ
(Limitations of Personal Selling)

यह सही है कि समस्त विपणन प्रयासों का एकमात्र लक्ष्य दीर्घकाल में संस्था के लाभप्रद विक्रय में अभिवद्धि करते हुए ग्राहकों की आवश्यकताओं को सन्तुष्ट करना होता है और इस लक्ष्या की पूर्ति में वैयक्तिक विक्रय अन्य संवर्द्धनात्मक विधियों की तुलना में सर्वाधिक प्रमुख और उपयोगी है। इनमें पर भी निम्न सीमायें इसकी उपयोगिता को सीमित करती हैं।

1. **उच्च लागत :** वैयक्तिक विक्रय व्यवस्था काफी खर्चीली होती है। प्रायः विज्ञापन का औसतन व्यय शुद्ध विक्रय का 1% से 3% तक होता है, जबकि वैयक्तिक विक्रय पर हुआ औसतन व्यय 8% से 15% तक होता है।
2. **कुशल विक्रयकर्ताओं का अभावः** वैयक्तिक विक्रय व्यवस्था कुशल, अनुभवी एवं योग्य विक्रयकर्ताओं की आवश्यकता अनुभव करती है। प्रायः प्रशिक्षित एवं कुशल विक्रयकर्ताओं का अभाव रहता है। यदि संस्था उपयुक्त विक्रयकर्ताओं का चयन करने में असफल रहती है तो समस्त व्यय निष्फल हो जाते हैं।
3. **सदैव उपयुक्त न किया जा सकनाः** वैयक्तिक विक्रय अन्य संर्व्द्धनात्मक उपायों की पूरक व्यवस्था है जिसे सभी जगह सभी परिस्थितियों में समान रूप से प्रयुक्त नही किया जा सकता है। अनेक प्रकार के गैर – विक्रय कार्य जेसे विज्ञापन संवर्द्धन, प्रशिक्षण आदि वैयक्तिक विक्रय के द्वारा भली प्रकार सम्पन्न नहीं किये जा सकते। अनेक प्रकार के विक्रयकर्ताओं के लिए यह सम्भव नहीं हो पाता है कि वे प्रत्येक ग्राहक के सम्मुख उसके क्रय–निर्णय के समय उपस्थ्ति हो सकें।

विक्रय प्रविधि
(Selling Process)

विक्रय प्रविधि विक्रय कार्य सम्न्न करने की वह वैज्ञानिक विधि है जिसमें ग्राहक को अधिकतम सन्तुष्टि प्रदान करते हुए, न्यूनतम समय एंव लागत पर अधिकतम विक्रय करने का प्रयास किया जाता है।

विभिन्न विद्वानों ने विक्रय प्रविधि के विभिन्न चरण बतलाये हैं। हरबर्ट एन. केसन ने विक्रय प्रतिधि के छः चरण बतलाये हैं। इन चरणों को बतलाने वाला सूत्र "RIDSAC" के नाम से जाना जाता है।[1]

R का अर्थ Reception (स्वागत करने) से है।

I का अर्थ Inquiry (पूछताछ करने) से है।

D का अर्थ Demonstration (प्रदर्शन करने) से है।

S का अर्थ Selection (चयन करने) से है।

A का अर्थ Additon (संवर्द्धन करने) से है।

C का अर्थ Commendation (प्रशंसा एवं विदाई) में है।

प्रो. ग्रीफ ने विक्रय प्रविधि के निम्न पाँच चरण बतलाये हैं।[7]

1. ध्यानाकर्षण (Attention)।
2. रूचि उत्पन्न करना (Creating interest)।
3. इच्छा पैदा करना (Creating desire)।
4. विश्वास (Conviction)।
5. समापन (Close)।

स्टिल, कंडिफ एवं गोवोनी ने विक्रय प्रविधि को दो भागों में विभक्त किया है[8] (1) सम्भावनाओं का निर्धारण अथवा सम्भावी ग्राहकों की खोज, और सम्भावनाओ अथवा सम्भावी–ग्राहकों में बदलना। सम्भावनाओं के निर्धरण को उन्होंने पुनः निम्न चार चरणों में विभक्त किया है।

1. सम्भावी ग्राहकों को परिभाषित करना।
2. सम्भावी ग्राहकों की खोज करना।
3. सम्भावी ग्राहकों की आवश्यकता का निर्धारण करना।
4. संस्था के उत्पादों के साथ प्रत्येक सम्भावी ग्राहक की आवश्यकताओं को सम्बद्ध करना।

सम्भावी ग्राहकों को क्रेताओं में बदलेन के लिए पुनः निम्नाँकित दो चरणों की व्यवस्था विक्रय प्रविधि में की गई है।

1. विक्रय प्रतिरोध दूर करना।
2. विक्रय का समापन करना।

किर्कपेट्रिक ने विक्रय प्रतिधि को निम्नलिखित छः चरणों में विभक्त किया हैः–[9]

1. विक्रय कहानी का नियोजन
2. साक्षात्कार
3. विक्रय कहानी कहना
4. प्रदर्शन
5. आपत्तियों का निवारण एवं
6. विक्रय का समापन।

वर्तमान में, 'विक्रयोपरान्त अनुगमन' को भी विक्रय प्रविधि का चरण माना गया है। प्रत्येक चरण विशद् विवेचन इस प्रकार है।

विक्रय कहानी का नियोजन
(Planning the Sales Story)

विक्रय कहानी का नियोजन 'विक्रय प्रविधि' का प्रथम चरण है। 'विक्रय कहानी' से आश्य 'विक्रय प्रस्तुतीकरण' से है। इसलिए सबसे पहले विक्रयकर्ता को अपने विक्रय प्रस्तुतीकरणों का नियोजन करना चाहिए। इसी चरण को 'पूर्व–सम्पर्क' (Pre-

---

7. Edwin Charles Grief : "Modern Salesmanship, Principles and Problems," pp.144-50.
8. Still, Cundiff and Govoni : "Sales Management, Decisions, Polices and Cases", 1976, pp. 298 to 330.
9. Kirk Patrick, op. cit., pp. 207 to 390.

approach) चरण भी कहा गया है।[10] इस चरण पर विक्रयकर्ता अपने को सम्भावित ग्राहकों के साथ होने वाले साक्षात्कार के लिए तैयार करता है।

पूर्व–सम्पर्क चरण पर मुख्यतः निम्न तीन कार्य किये जाते हैं (i) क्रेताओं को पहचानना, (ii) क्रेताओं के बारे में जानकारी एकत्रित करना, और (iii) विक्रय कहानी अथवा प्रस्तुतीकरण का नियोजन करना।

1. **क्रेताओं को पहचानना (Identifying Buyers):** प्रभावपूर्ण विक्रयण आवश्यकताओं के अनुसार नियोजित विक्रयण होता है। जब तक विक्रयकर्ता अपने सम्भावित क्रेताओं को न पहचान ले तब तक वह भली प्रकार विक्रय नहीं कर सकता । सम्भाविक क्रेताओं की पहचान का अर्थ यह मालूम करने से होता है कि कोन सा क्रेता वस्तु खरीदेगा और कौन–सा नहीं? किस क्रेता पर विक्रयकर्ता को समय व्यय करना चाहिए और किस क्रेता पर नहीं? किर्कपेट्रिक लिखते हैं कि "असाधारण विक्रयकर्ता उन्हीं सम्भावी ग्राहकों को बेचते हैं जो खरीदने वाले होते हैं, जबकि सामान्य अथवा कमजारे विक्रयकर्ता प्रत्येक को बचेन का प्रयास करते हैं।"[11] स्टिल, कंडिफ एवं गोवोनी लिखते हैं कि सम्भावित ग्राहको की पहचान यह है कि वे खरीदने की इच्छा रखते हैं वित्तीय क्षमता रखते हैं, अधिकारी सत्ता रखते हैं और विक्रयकर्ता को उपलब्ध होते हैं।[12] यह कथन स्पष्ट करता है कि प्रत्येक व्यक्ति को सम्भावित क्रेता नहीं माना जा सकता। जिन व्यावसायिक संस्थानों में 'श्रेष्ठ विक्रय–विश्लेषण प्रणालियाँ' स्थापित होती हैं, उनमें सम्भावित क्रेताओ की पहचान में आसानी रहती हैं क्योंकि वे क्रेता सूचनाओं का प्रमुख और विश्वसनीय स्रोत बन जाती हैं।[13]

2. **क्रेताओं के बारे में जानकारी एकत्रित एवं अध्ययन करना (Collecting and Studing Information About Bubers):** प्रभावपूर्ण प्रस्तुतीकरण एवं विक्रय–वार्ता के दौरान प्रत्येक ग्राहक को वैयक्तिक स्पर्श का अनुभव कराने के लिए क्रेताओं की समस्याओं, आवश्यकताओं, रूचियों, हितों, सन्तुष्टियों, क्रय–प्रेरणाओं और क्रय लक्ष्यों की जानकारी एकत्रित करना एवं उनका अध्ययन करना परमावश्यक समझा गया है। यदि विक्रयकर्ता अग्रिम तौर पर ही यह जान सके कि क्रेता कौन–कौन सी आपत्तियाँ कर सकते हैं तो प्रस्तुतीकरण के नियोजन में सुविधा रहती है।

3. **प्रस्तुतीकरण का नियोजन करना (Planning the Presentation):** पूर्व–सम्पर्क चरण का यह अन्तिम कार्य होता है। इस कार्य को करने के लिए एक रूपरेखा तैयार की जाती है जिसको ध्यान में रखकर विक्रयकर्ता अपनी वार्ता प्रारम्भ करता है। इस कार्य को करने के लिए विक्रयकर्ता को निम्नलिखित चार क्षेत्रों में जानना और स्मरण रखना होता है:–

   (अ) क्रय–प्रेरणाओं को जानना और स्मरण रखना ताकि विक्रय–वार्ता के दौरान ग्राहकों का ध्यान उनकी ओर आकृष्ट कर सके।

   (ब) प्रत्येक क्रय प्रेरणा के उन तरीकों को जानना और स्मरण रखना जिनकी सहायता से सम्भावित ग्राहक विशिष्ट लाभ का उपभोग कर सके।

   (स) क्रय प्रेरणाओं की प्राथमिकता के आधार पर क्रमबद्ध करना एवं रखना ताकि उनके उद्दीपन द्वारा क्रेताओं को प्रभावित किया जा सके।

   (द) प्रयोग एवं परीक्षण करना ताकि उत्पाद क्या कर सकते हैं और आपत्तियाँ कौन–कौन सी की जा सकती हैं, को जाना जा सके और स्मरण रखा जा सके।

प्रस्तुतीकरण के नियोजन का यह अन्तिम कार्य ग्राहक के मिलते ही कुछ क्षणों में विक्रयकर्ता द्वारा कर लिया जाना चाहिए, ताकि वह स्वयं का मानसिक, शारीरिक एवं भावनात्मक रूप से विक्रय वार्ता के लिए तैयार कर सके।

---

10. Still, Cundiff and Govoni नें इसे "Prospecting" की संज्ञा दी है।
11. Kirk Patrick, op. cit., p. 149.
12. Still, Cundiff and Govoni, op. cit., p. 299.
13. Ibid, p. 299.

उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट है कि विक्रय प्रविधि के इस प्रथम चरण पर विक्रयकर्ता उन समस्याओं ओर असन्तुष्टियों की जानकारी करता है, जिन्हें ग्राहक दूर करने की इच्छा रखते हैं और जिन्हें उसके उत्पाद दूर करने की क्षमता रखते हैं। किर्कपेट्रिक ने लिखा है कि "नियोजित प्रस्तुतीकरण तीर या तुक्का तथा अविचारित प्रस्तुतीकरणों को समाप्त करता है। नियोजन करने से विक्रयकर्ता को ग्राहकों के व्यक्तित्व, अनुभव, अभिप्रेरणा, वातावरण, उत्पाद झुकाव, प्राथमिकताएँ, समस्याएँ और आशाएँ मालूम हो जाती है.....।"[1] इस प्रकार विक्रयकर्ताओं के लिए यह सम्भव हो जाता है कि वे ऐसा प्रस्तुतीकरण तैयार कर सकें जो विश्वसनीय भी हो और विक्रय समापन को शीघ्र सम्भव बनाने वाली भी।

साक्षात्कार करना
(Getting and Opening the Interview)

साक्षात्कार करना विक्रय प्रविधि का द्वितीय चरण है। साक्षात्कार होने पर ही नियोजित विक्रय कहानी सम्भावित क्रेताओं को सुनायी जा सकती है। इसलिए इस चरण पर विक्रयकर्ता और सम्भावित क्रेता आमने–सामने होते हैं और विक्रयकर्ता उनकी अनुमति से अपना प्रस्तुतीकरण प्रारम्भ करने की इच्छा को प्रकट करता है इस चरण को सम्पर्क (Approach) चरण भी कहा गया है।

सम्पर्क चरण को अत्यन्त महत्वपूर्ण समझा गया है क्योंकि इस चरण पर ही क्रेताओं और विक्रयकर्ताओं का प्रथम साक्षात्कार होता है। यह प्रथम साक्षात्कार जो प्रभाव क्रेताओं पर छोड़ता है वह क्रेताओं की ग्रहणशीलता को प्रभावित करता है, विक्रय सामान को कठिन या सरल बनाता है ओर भावी सम्बन्धों का आधार बनता हैं। इसलिए विक्रयकर्ता को चाहिए श्रेष्ठ प्रभाव ग्राहकों पर छोडें। यह तभी सम्भव है कि जबकि आप उपयुक्त पोशाक में हों, गर्मजोशी किन्तु गम्भीरता और सौजन्यता के साथ ग्राहकों से मिलें और यदि आप यात्री विक्रयकर्ता हैं तो तत्काल विजिटिंग कार्ड उनके सामने रखें, ताकि वे आप तथा आपकी फर्म को पहचान सकें। सम्पर्क का मुख्य उद्देश्य यह मालमू करना होना चाहिए कि किस ग्राहक को हमारी सेवाओं की जरूरत है और कौन विक्रय कहानी को सुनने को तत्पर है या रूचि ले सकता है।

इस चरण पर विक्रयकर्ताओं द्वारा तीन कार्य किये जाने चाहिए:–

1. क्रेताओं के मस्तिष्क में विद्यमान विचारों को निष्प्रभावी बनाया जाना चाहिए।
2. उस विचार की स्थापना की जानी चाहिए जिस विक्रयकर्ता देना चाहते हैं; तथा
3. क्रेताओं की रूचि विक्रयकर्ताओं के प्रस्ताव (Propositions) से पैदा की जानी चाहिए।

सम्पर्क चरण को प्रायः निम्न दो भागों में विभक्त किया जाता है:–

1. **साक्षात्कार का अवसर हासिल करना (Securing Interview):** दुकानों पर विक्रय कार्य करने वाले विक्रयकर्ताओं को साक्षात्कार के अवसर स्वतः ही उपलब्ध हो जाते हैं, क्योंकि ग्राहक स्वयं दुकानों पर पहुँचते हैं। किन्तु प्रवासी अथवा भ्रमणशील विक्रयकर्ताओं को साक्षात्कार के अवसर हासिल करने होते हैं। साक्षात्कार किससे ओर कब किया जाये, यह भी विक्रयकर्ताओं को निश्चित करना पड़ता है। उपभोक्ता वस्तुओं के विक्रय में अन्तिम उपभोक्ताओं से साक्षात्मकार करना होता है। किन्तु औद्योगिक, संस्थागत ओर व्यावसायिक वस्तुओं के विक्रय की अवस्था में सही व्यक्ति से साक्षात्मकार निरर्थक हो जाता है। उदाहरण के लिए, किसी बड़े कारखाने को माल का विक्रय करने हेतु यह आवश्यक होगा कि उसके क्रय प्रबन्धक से मिला जाये न कि साख या विज्ञापन प्रबन्धक से। इसी प्रकार कब मिलना चाहिए इस प्रश्न का उत्तर नहीं दिया जा सकता। परिस्थितियों के अनुसार ही साक्षात्कार का समय निश्चित किया जाता है। इतने पर भी ग्राहकों की सुविधा का ध्यान विक्रयकर्ताओं द्वारा राखा जाना चाहिए।

   व्यवहार में विक्रयकर्ताओं के सामने सम्भावित ग्राहक से मिलने की अनुमति प्राप्त करने में प्रायः अनेक कठिनाईयाँ आती है। प्रबन्धकों अथवा उच्चाधिकारियों या ग्राहकों के सचिव, स्वागत क्लर्क, अधीनस्थ मातहत, स्विच बोर्ड ऑपरेटर्स या नौकर आदि विक्रयकर्ताओं को यह कहकर टालने का प्रयास करते हैं कि 'ग्राहक बाहर गये हैं' या 'वे कुछ नहीं खरीदना चाहते हैं' या 'खरीद बन्द है' या 'वे व्यस्त हैं' या 'सभा में बैठे हैं'। साक्षात्कार के अवसरों को टालने वाले

व्यक्ति बाधक' (Barriers) कहलाते हैं।[14] ऐसे बाधकों को यह निर्देशित किया जाना चाहिए कि वे उन विक्रयकर्ताओं से होने वाली मुलाकातों का यथाशीघ्र प्रबन्ध करें, जिनसे उनके (ग्राहकों को) को लाभ होने वाला हो। बाधक व्यक्तियों से व्यवहार करते समय विक्रेताओं को अपनी कल्पना–शक्ति, सूझबूझ एवं योग्यताओं का सहारा लेना चाहिए। किन्तु गलत युक्तियों का सहारा नहीं लिया जाना चाहिए।[1]

2. **साक्षात्कार प्रारम्भ करना या बातचीत करना (Opening the Interview or the Conversation):** साक्षात्कार का अवसर हासिल करने के दौरान अथवा उसके प्राप्त होने पर विक्रयकर्ता द्वारा किया गया औपचारिक परिचय वार्तालाप की शुरूआत कर भी सकता है ओर नहीं भी। साक्षात्कार प्रारम्भ करने के बारे में निम्नलिखित सिद्धान्तों का ध्यान रखा जाना चाहिएः–[15]

(अ) प्रारम्भिक बातें उपुयक्त होनी चाहिए।

(आ) यदि ग्राहक का पूरा ध्यान आकृष्ट न हो सका हो तो जरा ठहरना चाहिए और ध्यान आकृष्ट होने के बाद ही प्रारम्भिक बात करनी चाहिए।

(इ) सम्पर्ण विक्रय कहानी सुनाने के लिए विशेष अनुमति नहीं लेनी चाहिए।

(ई) काम की बात ही करनी चाहिए भले ही ग्राहक इधर–उधर की बातों पर एतराज न करता हो।

(उ) आवाज स्पष्ट, सजीव एवं सुखद हो और नीरसता उत्पन्न करने वाली होनी चाहिए।

(ऊ) सबसे पहले यह कहा जाना चाहिए कि विक्रयकर्ता ग्राहक से क्यों मिलना चाहता है? अन्य शब्दों में साक्षात्कार निश्चित, विशिष्ट सही एवं वैयक्तिक कारण बताया जाना चाहिए।

(ए) बोलते समय यदि सम्भव हो और आवश्यक हो तो भौतिक प्रस्तुतीकरण तीव्रता से करना चाहिए, ताकि 80% असर आँखों के जरिये मस्तिष्क में प्रवेश कर सके।

(ऐ) विक्रयकर्ताओं को चाहिए कि वे स्वयं ग्राहकों की स्थिति में प्रस्तुत करके आवश्यक प्रश्न करें और उनकें समुचित उत्तरों से ग्राहकों को लाभान्वित करें।

(ओ) अतिशीघ्र ही उन बातों अथवा विषयों पर अपने को ले आना चाहिए जिन्हे ग्राहक जाने–अनजाने में चाहता है, जिसमें विश्वास करता है, जिनको जानने की उत्सुकता रखता है या जिन पर शंका करता है।

(औ) ग्राहकों के स्वयं के बारे में वार्ता करनी चाहिए क्योंकि प्रायः व्यक्ति स्वयं के बारें में बात करना अधिक पसन्द करता है।

(क) ग्राहकों को कठिन स्थिति में नहीं डालना चाहिए। अन्य शब्दों में, "ग्राहकों को अपना बचाव करने की जरूरत न पड़े।" इस प्रकार वार्ता की जानी चाहिए।

(ख) वार्ता प्रारम्भ करने के लिए एक–दो क्षण के लिए ग्राहक को अकेला छोड़ देना चाहिए ताकि वह अपनी रूचि की ओर संकेत कर सके अथवा उसे समझा सके।

(ग) सामान्यतः व्यक्तिगत रूचियों, अरूचियों, आशाओं आदि विषयों पर अप्रत्यक्ष रूप में बात करनी चाहिए।

(घ) एक–दो प्रारम्भिक वाक्यों के कहने के बाद ग्राहकों की प्रतिक्रिया को जानना चाहिए और यह देखना चाहिए कि उनकी रूचि जाग्रत हुई अथवा नहीं।

किर्कपेट्रिक ने सम्पर्क चरण के सम्बन्ध में निम्नलिखित सिद्धान्त बतलाये हैं जिनका उपयोग विक्रयकर्ता की सफलता के लिए परमावश्यक माना गया हैः–

---

14. प्रमुख तकनीकें जिन्हें विक्रयकर्ता अपना सकते हैं वे निम्नलिखित हैं– (i) बाधक को कहा जा सकता है कि ग्राहक ने विक्रयकर्ताओं की कम्पनी से कुछ सूचना चाही है या साहित्य सामग्री माँगी है और उस हेतु मिलना चाहता है यदि वस्तुतः ग्राहक ने ऐसा चाहा हो। (ii) आगे का उद्देश्य बतलाया जा सकता है। (iii) 'कल फिर आने की बात' की जा सकती है। (iv) अनेक कम्पनियाँ विक्रयकर्ताओं को उनके नाम का सहारा लेने की बात कहती हैं। (v) कुछ कम्पनियाँ आदेशात्मक स्वर में विक्रयकर्ताओं को उनकी उपस्थिति बतलाने की अनुमति देती हैं ताकि बाधक न रोकें। (vi) मदुल, हँसमुख एवं प्रभावशाली व्यक्ति द्वारा भी साक्षात्कार की अनुमति प्राप्त की जा सकती है। (vii) प्रतीक्षा समय भी सीमित किया जाना चाहिए।

15. Based on Kirk Patrick's discussion, op. cit., pp. 265-69.

(i) ग्राहकों के बारे में उपलब्ध सूचनाओं का अधिकतम उपयोग किया जाना चाहिए।

(ii) ग्राहकों से भेंट केवल भेंट के खातिर नहीं करनी चाहिए।

(iii) प्रश्न आवश्यकता की दशा में ही पूछे जाने चाहिए।

(iv) प्रसन्नता, आशा एवं पुनर्विश्वास प्रकट किया जाना चाहिए।

(v) प्रारम्भ में नियन्त्रण रखना चाहिए, यद्यपि नियन्त्रण सभी स्थितियों में जरूरी होता है।

(vi) सम्भावित ग्राहकों के चिन्तन के साथ–साथ विक्रयकर्ताओं का चिन्तन भी गतिमान रहना चाहिए।

(vii) स्व–हित के नियम का पालन करना चाहिए।

(viii) क्रेता को प्राप्त हाने वाले हितों का वचन प्रारम्भ में ही दे दिया जाना चाहिए।

(ix) सम्भावित क्रेता को महसूस होने देना चाहिए कि वह महत्त्वूपर्ण है।

(x) सम्भावित क्रेता के कल्याण के प्रति गम्भीर रूचि प्रदर्शित करना चाहिए।

(xi) पसन्द करना एंव पसन्द किया जाना व्यवहार का आधार होना चाहिए।

विक्रय कहानी कहना
(Telling the Sales Story)

'विक्रय कहानी कहना' विक्रय प्रविधि का तीसरा चरण है जब विक्रयकर्ता ग्राहकों से सम्पर्क कर लेते हैं और साक्षात्मकार प्रारम्भ कर देते हैं तब वे उन्हें कहानी कहना प्रारम्भ करते हैं। अन्य शब्दों में, विक्रयकर्ता ग्राहकों को इस चरण पर वे सब बातें बतलाते हैं जो उन्हें खरीद हेतु प्रोत्साहित करती हैं, वस्तु की उपयोगिता का विश्वास दिलाती हैं और शीघ्र क्रय निर्णय लेने में सहयोग करती हैं।

इस चरण पर विक्रयकर्ताओं द्वारा "Advantage-proof-action technique" का प्रयोग किया जाना परमावश्यक है। इस तकनीक की सहायता से विक्रय कहानी की जानी चाहिए। यह तकनीक अग्र मान्यताओं पर आधारित हैः–

(i) क्रेता वस्तुएँ न खरीद कर सन्तुष्टि खरीदते हैं।

(ii) क्रेता स्वयं के वातावरण से प्रभावित होते हैं।

(iii) क्रेता स्वयं रूचि रखते हैं।

(iv) क्रेता अपनी धनराशि से अधिकाधिक सन्तुष्टि प्राप्त करना चाहते हैं।

(v) क्रेताओं की सन्तुष्टियाँ क्रय–प्रेरणाओं से जुड़ी होती है।

इन मान्यताओं पर आधारित यह तकनीक विक्रय कहानी प्रस्तुत करते समय निम्नलिखित कार्यो को सम्पन्न करने पर बल देती हैः–

(i) **वस्तु की खरीद से प्राप्त होने वाले लाभो अथवा सम्बद्ध हितों को बतलाया जाना चहिएः**– यह लाभ अथवा हित क्रय–प्रेरणाओं और वस्तुओं से उत्पन्न होते हैं। लाभ अथवा हितों का उल्लेख करते समय निम्नलिखित बातों का ध्यान रखा जाना श्रेयस्कर माना गया हैः–

(अ) वस्तु की खरीद से प्राप्त होने वाले लाभों को क्रय–प्रेरणाओं से सम्बद्ध किया जाना चाहिए। ऐसा करने हेतु उत्पादक विशेषताओं और प्रबलतम क्रय प्रेरणाओं की तुलना की जानी चहिए।

(आ) प्राप्त होने वाले लाभों को वैयक्तिकता प्रदान की जानी चहिए।

(इ) सम्भावित क्रेताओं को बतलाया जाना चाहिए कि कैसे वे प्रस्तावित लाभ प्राप्त कर सकते हैं?

(ई) उन लाभों को नहीं बतलाया जाना चाहिए जो प्राप्त नहीं किये जा सकते अथवा प्रमाणित नहीं किया जा सकते ।

(उ) प्राप्त होने वाले लाभ विशिष्ट और निश्चित होने चाहिए, सामान्य नहीं।

(ऊ) नाटकीय शब्द, चित्र, अदश्य वस्तुओ और सेवाओं के विक्रय में अपूर्व सहयोग करते हैं।

(ए) एक क्रय–प्रेरणा से सम्बद्ध लाभ एक समय में एक साथ बताये जाने चाहिए।

(ऐ) प्रतिस्पर्द्धियों के प्रति भी नम्र होना चाहिए और सम्मान प्रकट किया जाना चाहिए।

(ओ) जितने भी सम्भावित लाभ हों, वे सब बतलाये जाने चाहिए क्योंकि लाभो की लम्बी सूची विक्रय समापन की अवस्था को निकट लाती है।

(ii) **ग्राहकों की उत्सुकताओं और शंकाओ के निवारण के लिए प्रमाण दिये जाने चाहिएः**– इन प्रमाणों में विवेकपूर्ण तर्क, कम्पनी द्वारा उपलब्ध किये गये प्रमाण जैसे शोध एवं प्रयोग प्रमाण अथवा गारन्टी आदि, स्वतन्त्र शोध निष्कर्ष, केश हिस्ट्रीज, प्रदर्शन एवं टेस्टीमोनियल्स सम्मिलित किये जा सकते हैं।

(iii) **ग्राहकों से वस्तु प्रयोग का वचन लेना आथवा खरीद का ठहराव सम्भवत किया जाना चाहिएः**–इसे कार्यवाही (Action) कहा गया है। कार्यवाही वस्तु के प्रति ग्राहकों के समर्थन को बतलाती है। समर्थन को जानने क लिए सम्भावित क्रेताओं से प्रश्न पूछे जाने चाहिए।

प्रदर्शन करना
(Demonstrating)

प्रदर्शन करना विक्रय–प्रविधि का चतुर्थ चरण है जो वार्ता को कार्यवाही में बदलता है, मानसिक विचारों को भौतिक क्रिया में बदलता है। और सम्भावित क्रेता की रूचि की इच्छा, विश्वास एवं अन्ततः कार्यवाही अर्थात् खरीद मे परिवर्तित करता है। प्रदर्शन से ग्राहकों को विक्रयकर्ताओं की कहानी पर विश्वास होने लगता है, उसकी सच्चाई पुष्ट होने लगती है, और उसमें वस्तुओं का स्वामित्व ग्रहण करने की बलवती इच्छा पैदा होने लगती है। प्रदर्शनो से क्रेताओं को स्वयं ही देखने, स्पर्श करने, सूंघने, सुनने आदि के अवसर प्राप्त होते हैं और व शीघ्र ही विक्रयकर्ताओं की कहानी को समझने लगते हैं। इससे विक्रयकर्ताओं के समय में भी काफी बचत होती है। और उनकी विक्रय कहानी अत्यधिक प्रभावी बनती है। प्रदर्शनी से आपत्तियाँ भी कम होने लगती हैं। विक्रयकर्ताओं का कार्य भी काफी सरल हो जाता है और उसमें आत्मविश्वास जागता है।

प्रदर्शनों का प्रयोग किसी भी समय किया जा सकता है। उदाहरण के लिए साक्षात्कार के प्रारम्भ करने हेतु, अथवा ग्राहकों का पूर्ण ध्यान आकृष्ट करने हेतु प्रदर्शन किये जा सकते हैं। सामान्यतः परिचयात्क वर्ता की शुरूआत के साथ ही प्रदर्शन करना प्रारम्भ कर दिया जाता है। प्रदर्शनों को अत्यधिक प्रभावी बनाने के लिए उनकी अग्रिम तैयारी भी अभ्यास हेतु की जानी ठीक रहती है। इसके अतिरिक्त प्रदर्शन करते समय उत्पाद की प्रत्येक विशेषता को प्रकट किया जाना परमावश्यक होता है।

प्रदर्शन करते समय निम्नलिखित सिद्धान्तों का पालन किया जाना चाहिएः–[16]

(i) जिस वस्तु अथवा उसकी विशेषता को दिखाया जा सकता हो उसके बारे मे कभी नहीं कहा जाना चाहिए।

(ii) उत्पाद की प्रत्येक विशेष्ता का प्रदर्शन करते रहना चाहिए।

(iii) विक्रय वार्ता के दौरान प्रदर्शन करते रहना चाहिए जिससे वार्ता की व्याख्या प्रदर्शन कर सकें।

(iv) प्रदर्शन स्पष्ट, वास्तकवक एवं आवश्कता के अनुरूप (Tailored) होना चाहिए।

(v) प्रदर्शनों से वस्तु आकर्षक एवं अच्छी दिखाई देनी चाहिए।

(vi) क्रेताओं को सहभागी बनाया जाना चाहिए और उनसे प्रदर्शन के बाद पूछा जाना चाहिए कि क्या वे सन्तुष्ट हैं?

(vii) प्रदर्शन पर नियन्त्रण विक्रयकर्ताओं का रहना चाहिए।

(viii) प्रदर्शन के समय प्रदर्शन के उद्देश्यों से परे नहीं रहना चाहिए।

---

16. Based on Kirk Patrick, op. cit., pp. 308-315.

(ix) प्रदर्शन के बाद ग्राहकों के सहयोग की प्रशंसा की जानी चाहिए।

(x) प्रदर्शन के तत्काल बाद विक्रय को पूरा करने का प्रयास करना चाहिए।

आपत्तियों का निवारण
(Handling Objective)

'आपत्तियों का निवारण' विक्रय प्रविधि का पाँचवां चरण है। इसे 'विक्रय प्रतिरोध की समाप्ति' का चरण भी कहा गया है। 'प्रतिरोध (Resistance) आपत्तियों की तुलना में अधिक व्यापक शब्द है। विक्रय प्रतिरोध (Sales resistance) से आशय उन वास्तविक अथवा काल्पनिक बाधाओं और निश्छल अथवा सद्भावपूर्ण आपत्तियों से है जो वस्तु के विक्रय को कठिन बनाती हैं।[17] किर्कपेट्रिक लिखते हैं कि व्यक्तियों की आवश्यकतायें असीमित हैं और उनकी क्रय शक्ति सीमित हैं इसलिए विक्रयकर्ताओं को विक्रय करते समय सम्भावित क्रेताओं द्वारा प्रस्तुत प्रतिरोध का सामना करना पड़ता है। ऐसा प्रतिरोध सक्रिय या निष्क्रिय अथवा व्यक्त बौर गर्भित हो सकता है।[18] विक्रय प्रतिरोध दूर करने के लिए प्रभावी एवं कुशल विक्रय कला की आवश्यकता होती है। इसके साथ ही व्यक्तियों और उनकी क्रय–प्रेरणाओं का शीघ्र व सही मूल्यांकन भी करना जरूरी होता है।

विक्रय प्रतिरोधों को निम्न चार भागों में विभक्त किया जा सकता है:–

(i) **विक्रय के प्रति कठिनाइयाँ या बाधायें:** बाधाओं को उन कारणों की संज्ञा दी गई है जो क्रय न करने का आधार बनती हैं। बाधायें वास्तविक हैं तो विक्रय नहीं किया जा सकेगा। किन्तु बाधाओं के काल्पनिक होने पर उनके निवारण के उपाय किये जा सकते हैं। उदाहरण के लिए यदि क्रेता वित्त की कमी को क्रय न करने का कारण बतलाता है तो इस बाधा का विक्रयकर्ता उधार देने की बात कह कर दूर कर सकता है अथवा खरीद के वित्त प्रबन्धन का तरीका बतला सकता है तो बाधा अनुमोदन पर माल के विक्रय की सुविधा देकर अथवा पसन्द न आने पर वस्तु के बदलाव की सुविधा देकर की जा सकती है।

(ii) **विक्रय आपत्तियाँ (Sales Objections):** विक्रय आपत्तियों को खरीद न करने का अच्छा कारण नहीं समझा गया है। अनेक आपत्तियाँ विक्रयकर्ताओं के अधूरे, अस्पष्ट एवं अशुद्ध प्रस्तुतीकरणों से उत्पन्न हो सकती हैं। इन आपत्तियों का निश्छल माना जाता है। इन्हें धैर्य और स्पष्टीकरणों द्वारा दूर करना काफी कठिन होता है क्योंकि उनके प्रस्तुतीकरण के पीछे विक्रयकर्ताओं को हतोत्साहित करने या उनका परीक्षण करने का उद्देश्य रहता है। विक्रय न करना अथवा छुटकारा पाना भी असद्भावपूर्ण आपत्तियों के प्रस्तुतीकरण के कारण हो सकते हैं। ऐसी आपत्तियों को भी सौजन्यता, धैर्य एवं शान्ति के साथ दूर किया जाना चाहिए। निवारण न होने की दशा में अनावश्यक तर्क नहीं करना चाहिए।

(iii) **उत्पाद सम्बन्धी प्रतिरोध (Product Type Resistance):** जो आपत्तियाँ अथवा विरोध उत्पाद सम्बन्धी विशेषताओं को लेकर किया जाता है, उसे 'उत्पाद सम्बन्धी प्रतिरोध' कहा गया है। उत्पाद विशेषतायें जैसे रंग, आकार, डिजायन, कीमत, तकनीकी जटिलतायें आदि उत्पाद प्रतिरोध का स्रोत मानी गयी हैं।

(iv) **ग्राहक सम्बन्धी प्रतिरोध (Prospect Type Resistance):** यह वह प्रतिरोध है जो सम्भावित ग्राहकों की आवश्यकताओं से सम्बन्ध रखता है। यदि सम्भावित क्रेता को अपनी आवश्यकता का ज्ञान नहीं है तो ग्राहक वस्तु को तत्काल खरीदने से मना कर देता है। इस प्रतिरोध को दूर करने कि लिए ग्राहकों को उनकी आवश्कताओं का ज्ञान कराया जाना चाहिए और यह विश्वास दिलाया जाना चाहिए कि वस्तु उनकी आवश्यकताओं की पूर्ति में सक्षम है।

विक्रय प्रतिरोधों अथवा आपत्तियों एवं बाधाओं के निवारण का कार्य बुद्धिमत्ता तथा चातुर्य के साथ किया जाना चाहिए। प्रतिरोधों की समाप्ति को समय में दो भागों में विभक्त किया जा सकता है:–

(अ) **भावी निवारण (Future Handling) :** यदि विक्रयकर्ता प्रतिरोधों की समाप्ति अथवा बाधाओं का निवारण तत्काल न करके किसी भावी तिथि पर करना चाहता है तो उसे ध्यान न देने (Ignoring) स्थगित करने (Postponing) अथवा अज्ञानता स्वीकारने (Admitting ignorance) की तकनीकों को अपनाना चाहिए।

---

17. Still, Cundiff and Govoni, op. cit., pp. 300-301.
18. Kirk Patrick, op. cit., p. 323.

(आ) **तत्काल निवारण (Immediate Handling):** अनेक बार तत्काल ही विक्रय बाधाओं का निवारण करना जरूरी होता है। ऐसी दशा में 'प्रत्यक्ष उत्तर एवं 'अप्रत्यक्ष उत्तर' देने की तकनीकों को अपनाया जाना चाहिए।

व्यवहार में विक्रय प्रतिरोधों की समाप्ति हेतु जिन तकनीकों, रोकथाम, उपायों एवं सिद्धान्तों को काम में लिया जा रहा है, वे इस प्रकार हैः–

(क) **प्रतिरोध समाप्ति की तकनीकें (Techniques for Handling Resistance):** प्रमुख तकनीकों में– (i) प्रतिरोध के वास्तविक न होने पर अनसुनी (fail to hear) करने, (ii) उत्पाद तुलना करने, (iii) केश हिस्ट्री देने, (iv) प्रदर्शन करने, (v) गारन्टी देने (vi) प्रश्न पूछने, (vii) विलम्ब लागत बताने, (viii) आपत्तियों के सौ फीसदी सही होने पर स्वीकार करने, (ix) अज्ञानता स्वीकार करने, (x) ग्राहक को सुनने (xi) हाँ अथवा किन्तु दष्टिकोण अपनाने आदि को सम्मिलित किया जा सकता है।

(ख) **प्रतिरोध की रोकथाम के उपाय (Measures to Prevent Objections):** प्रतिरोध की समाप्ति के स्थान, पर उनकी रोकथाम अधिक महत्वपूर्ण मानी गयी है। रोकथाम हेतु विक्रय कहानी का प्रस्तुतीकरण पूर्ण, स्पष्ट एवं प्रभावी होना चाहिए। हर चरण पर विक्रयकर्ता को यह देखना चाहिए कि ग्राहक उसे समझ रहे हैं या नहीं। इसी प्रकार साक्षात्कार के दौरान की गई आपत्तियों के लिखित अभिलेखों का अध्ययन भी उनकी रोकथाम में सहयोग करता है।

(ग) **प्रतिरोध की रोकथाम के उपाय (Principles to be Observed for Handling Resistance):** प्रतिरोध समाप्ति के लिए निम्नलिखित सिद्धान्तों का पालन किया जाना चाहिएः–

1. सम्भावित क्रेताओं की आपत्तियों को बिना समझे विक्रयकर्ता को उत्तर नहीं देना चाहिए।
2. आपत्तियों को वर्गीकृत करके देखना चाहिए कि आपत्तियाँ, उत्पाद, कीमत आवश्यकता, स्रोत अथवा समय से सम्बन्ध रखती हैं।
3. यदि सम्भावित क्रेता वास्तविक आपत्तियों को प्रकट नही करते हैं तो विक्रयकर्ताओं को चाहिए कि वे उनकें साथ अपनत्व का व्यवहार करें, उन्हीं की दिशा से सोचें और उन पर पूर्ण नियन्त्रण रखते हुए उनकी कठिनाईयों को मालमू करने का प्रयत्न करें।
4. विक्रयकर्ता को तर्क नहीं करना चाहिए क्योंकि प्रायः तर्क में जीतने वाले विक्रयकर्ता ग्राहक को खो देते हैं और हारने वाले विक्रय। तर्क के स्थान पर प्रश्नों द्वारा आपत्तियों को जानना चाहिए।
5. कूटनीति से काम लेना चाहिए किन्तु अनैतिकता से नहीं।
6. आपत्तियों से लाभ उठाया जाना चाहिए।
7. आपत्तियों को कम से कम तथा लघु से लघुतर करना चाहिए, अधिक से अधिक तथा वहत् से वहतर नहीं।
8. आपत्तियों की सूची बना कर भी उन्हें पूरा किया जा सकता है।

विक्रय का समापन
(Closing the Sale)

विक्रय का समापन विक्रय प्रविधि का छठा चरण है। इस चरण पर क्रेता क्रय करने या न करने का निर्णय लेता है। विक्रयकर्ताओं की सारी मेहनत और योग्यताओं के प्रदर्शन की सफलता इस चरण पर निर्भर करती है। व्यवहार में, अधिक छूटें देकर या कीमत में कमी करके विक्रय करना उत्तम विक्रय कला नहीं है। लाभकारी रूप में बेचना ही विक्रयकर्ताओं की योग्यताओं और निपुणताओं की कसौटी है।

सामान्यतः निम्न दबाव (Low-pressure-sales) का समापन 'उच्च दबाव विक्रय (High pressure sales) की तुलना में आसान होता है। निम्न दबाव विक्रय में सम्भावित क्रेता को जितना अधिक यह अनुभव होने दिया जाता है कि वह स्वंय ही विवेकपूर्ण चिन्तन के जरिये क्रय निर्णयों तक पहुँच रहा है, उतना ही विक्रय का समापन शीघ्र करना सम्भव होता है। उच्च दबाव विक्रय में विक्रयकर्ता ग्राहकों की भावनाओं को प्रभावित करने और उन्हें क्रय के निर्णयों की ओर धकेलने का प्रयास करता है। यदि

विक्रय के समापन की स्थिति पर पहुँचते–पहुँचते कोई ग्राहक सामान्य अवस्था में लौट आता है तब विक्रय का समापन दुष्कर हो जाता है।

व्यवहार में देखा गया है कि विक्रय के समापन में विक्रय कहानी के पर्याप्त सूचनाओं पर आधारित न होने, पूर्व–सम्पर्क चरण के कार्य को भली प्रकार न करने, साक्षात्कार का प्रारम्भ गलत तरीके से होने, गलत माल प्रस्तावित किये जाने, प्रदर्शन के दोषपूर्ण होने, आपत्तियों को भली प्रकार दूर करने, विक्रयकर्ता के बातूनी होने, समापन के स्वयं ही कमजारे होने, विक्रयकर्ता का स्वभाव चिड़चिड़ा होने, समापन का समय एवं भाषा ठीक न होने आदि के कारण काफी कठिनाइयाँ आती हैं। विद्वानों का कहना है कि अत्यधिक आक्रामक अथवा अत्यधिक उदासीन विक्रय का समापन भी कठिन होता है।

विक्रयकला की समुन्नति ने विक्रय के समापन की अनेक तकनीकें विक्रयकर्ता के सम्मुख प्रस्तुत की हैं। प्रमुख निम्नलिखित हैं:–

1. **ग्राहक की पसंदगी पर समापन करने की विधि (Closing on a Choice-method):** यह विक्रय समापन की वह तकनीक है जिसमें विक्रयकर्ता पसंदगी का खाका तैयार करता है और क्रेता वस्तु का चयन करता है। इस तकनीक में प्रायः दो या तीन वैकल्पिक वस्तुएँ बिक्री के समापन के समय ग्राहक के सामने रख दी जाती हैं और उसे किसी एक मन–पसन्द वस्तु की खरीद हेतु निवेदन किया जाता है। यह तकनीक विखण्डन निर्णय (Split decision) दोहरी प्रश्न विधि (Double question method) अप्रमुख बिन्दु पर समापन विधि (Closing on minor point method) चयन समापन विधि (Selection close method) के नाम से भी जानी जाती है।

2. **समापन मान कर चलने की विधि (Assuming the close Method):** यह विधि काफी प्रचलित और प्रभावी विधि है। इसमें विक्रयकर्ता और ग्राहक दोनों किसी एक वस्तु को पहले से ही तय करके चलते हैं। खरीदी जाने वाली वस्तु का ऐसा पूर्व–निर्धारण विक्रयकर्ता के प्रस्तुतीकरणों का परिणाम होता है। इस विधि में विक्रयकर्ता का समापन प्रश्न यह मान कर चलता है कि ग्राहक ने विक्रयकर्ता की सिफारिश को स्वीकार कर लिया है और केवल छोटी–छोटी बातें मानने के लिए ही प्रश्न किया है। उदाहरण के लिए ऊषा पंखा 48″ ही आपके लिए ठीक रहेगा, आपके कमरे मैं इसकी फिटिंग के लिए मेकेनिक कब भेजा जाये? यह प्रश्न मानकर चलता है कि समापन हो चुका है।

3. **अकेली विशेषता विधि (Single Feature Method):** यह विक्रय के समापन की वह विधि है जिसमें विक्रयकर्ता ग्राहक को यह बतला कर क्रय निर्णय करने हेतु प्रेरित करता है कि प्रस्तावित उत्पाद पहली बार बाजार में आया है या अतुलनीय उत्पाद है, किस्म अथवा डिजाइन अथवा निर्माण विधि अथवा संचालन की दष्टि से अनूठा है। यदि ग्राहक वस्तु की विशेषता की प्रशंसा करता है तो विक्रयकर्ता को चाहिए कि वह ग्राहक के सही चयन की प्रशंसा करे। ऐसा करने पर विक्रय समापन शीघ्र किया जा सकता है।

4. **एक मात्र बाधा निवारण विधि (Disposing of the Single Obstacle Method):** यह वह विधि है जिसका प्रयोग उस समय किया जाता है जबकि ग्राहक विक्रयकर्ता की हर बात से सहमत है, किन्तु किसी एक बिन्दु पर असहमत है। उदाहरण के लिए कीमत के अलावा सभी बातें ग्राहक मानता है अथवा वह अपने को वस्तु प्रयोग में असमर्थ समझता है। इनमें से यदि किसी भी एक बात को ग्राहक बाधा के रूप में प्रस्तुत करके खरीद के प्रति असहमति व्यक्त करता है तब विक्रयकर्ता को चाहिए कि शान्ति, धीरज, आत्मविश्वास एवं प्रमाणों की सहायता से ग्राहक की बाधा को काल्पनिक ठहराते हुए दूर कर दे।

5. **लाभों के संक्षेपण की विधि (Summarizing the Benefits Method):** यह वह विधि है जिसमें विक्रय के समापन के लिए एक बार पुनः उन समस्त लाभों को विक्रयकर्ता द्वारा गिनाया जाता है जिनकी प्राप्ति वस्तु की खरीद से जुड़ी हुई है।

6. **भावनात्मक समापन विधि (Emotional Close Method):** यह वह विधि है जिसका प्रयोग करने हेतु भावनात्मक क्रय–प्रेरणाओं को वस्तु के साथ जोड़ा जाता है ताकि यदि मस्तिष्क वस्तु न खरीदने पर बल दे तो हृदय वस्तु की खरीद पर बल दे सके। यौन, मत्यु–भय, स्व–प्रतिष्ठा, स्नेह, अभिमान, प्रतिस्पर्धा आदि वे भावनात्मक क्रय–प्रेरणाएँ हैं जिनकी सहायता से विक्रय समापन किया जा सकता है।

7. **स्टैंडिंग रूम ओनली विधि (Standing Room Only Method):** यह वह विधि है जिसे प्रायः अनैतिक माना गया है। इसलिए इसका प्रयोग सोच–समझकर किया जाना चाहिए। इस विधि में विक्रयकर्ता पूर्ति की कमी तथा माँग की बढ़ोतरी को बतलाते हुए वस्तु की खरीद की बात कहता है ताकि उपभोग से ग्राहक को वंचित न रहना पड़े। इस विधि में विक्रयकर्ता ग्राहकों को यह भी कहते हैं कि कीमतें बढ़ने वाली हैं या बोनस एवं प्रीमियम योजनाएँ समाप्त होने वाली हैं, इसलिए वे लाभ उठा लें।

8. **विशिष्ट छूट विधि (Special Concession Method):** यद्यपि इस विधि को भी पेशेवर विक्रयकला की दष्टि से उत्तम नहीं समझा गया है। इस विधि में विक्रयकर्ता ग्राहकों को वैयक्तिक स्तर पर सम्मान देने के लिए उन्हें विशिष्ट छूटें देकर क्रय करने हेतु प्रोत्साहित करते हैं। ऐसी विधि शीघ्र विक्रय समापन के लिए ठीक समझी गयी है।

9. **प्रत्यक्ष अपील विधि (The Direct Appeal Method):** यह विधि विक्रय समापन के लिए ग्राहकों से प्रत्यक्ष अपील करने की बात कहती है। इस विधि को अपनाने वाले विक्रयकर्ता ग्राहकों से सीधे ही पूछ लेते हैं कि वस्तु उन्हें पसंद आयी अथवा नहीं, वे एक खरीदेंगे या दो, क्या आपके लिए वस्तुएँ पैक करवा दी जायें आदि। इस विधि को अन्तिम विधि के रूप में प्रयुक्त करना चाहिए क्योंकि इसके अपनाने पर यदि ग्राहक वस्तु क्रय करने से मना कर दे तो पुनः प्रस्तुतीकरण के चरण पर जाना विक्रयकर्ताओं के लिए कठिन होता है।

विक्रयोपरान्त अनुगमन
(Follow up Aftersales)

विक्रय के समापन के बाद विक्रयकर्ताओं को देखना चाहिए कि ग्राहकों को वही वस्तु पैक की जा रही है या नहीं जिसे बेचा गया है चूँकि ग्राहक यह न समझ ले कि विक्रयकर्ता माल बेचने के बाद उनकी कठिनाइयों के प्रति सजग नहीं है। इस चरण पर किया गया व्यवहार ग्राहकों को पुनर्क्रय के लिए प्रोत्साहित करता है।

विक्रय वार्ता
(Sales Talk)

'विक्रयकर्ता' विक्रयकला की आधारशिला है। जो विक्रयकर्ता 'विक्रय–वार्ता' की कला में निपुण और पारंगत नहीं है, वे अपने सम्भावित ग्राहकों को शीघ्र, सन्तोषप्रद और लाभकारी विक्रय करने में असफल रहते हैं। इसलिए, विक्रयवार्ता का ज्ञान प्रत्येक विक्रयकर्ता को होना परमावश्यक है। 'विक्रयवार्ता' एक तकनीकी शब्द है जिसका विपणन साहित्य में विशिष्ट अर्थ है। 'विक्रयवार्ता' से आशय ''विक्रयकर्ता द्वारा सम्भावित ग्राहक के सम्मुख प्रस्तुत की जाने वाली विक्रय कहानी से होता है।'' विक्रय–वार्ता को विक्रय प्रस्तुतीकरण भी कहा जाता है। ग्राहक से प्रथम साक्षात्कार अथवा सम्पर्क के साथ ही विक्रयकवार्ता प्रारम्भ होती है और विक्रय के समापन तक चलती रहती है। स्पष्ट है कि ''विक्रय प्रविधि के सम्पर्क चरण से विक्रय समापन चरण तक की समस्त वार्ता विक्रय वार्ता कही जाती है।''

विक्रय वार्ता का मुख्य उद्देश्य ग्राहकों को यह बताना होता है कि उन्हें प्रस्तावित वस्तुओं की तीव्र आवश्यकता है और उनकी आवश्यकता की पूर्ति प्रस्तावित वस्तुओं से ही सम्भव है। विक्रय वार्ता को प्रमुखतः दो शीर्षकों में विभक्त किया जाता है: (1) विक्रयवार्ता, एवं (2) आपत्तियों का निवारण। विक्रय–वार्ता सभी प्रकार नियोजित की जानी चाहिए और पूर्ण होनी चाहिए। यह न तो आवश्यकता से अधिक लम्बी और न ही संक्षिप्त होनी चाहिए। साक्षात्कार हेतु दिये गये समय के अनुसार विक्रयवार्ता होनी चाहिए और विक्रय समापन से पूर्व पूर्ण हो जानी चाहिए। विक्रयवार्ता नीरस नहीं होनी चाहिए और ग्राहकों को कठिन स्थिति में ला खड़ा करने वाली नहीं होनी चाहिए। विक्रय–वार्ता सजीव और प्राणवान होनी चाहिए। प्राणवान बनाने के लिए अभिनय, चार्ट, रेखाचित्र, मॉडल्स आदि का सहारा लिया जाना चाहिए। विक्रयवार्ता ऐसी होनी चाहिए कि वह ग्राहकों का मन और विश्वास जीत ले। जहाँ तक सम्भव हो तर्कों का सहारा विक्रयवार्ता में नहीं लिया जाना चाहिए। विक्रयवार्ता स्पष्ट, प्रभावी और पूर्ण होनी चाहिए ताकि प्रस्तावित वस्तुओं से सम्बन्धित प्रत्येक बिन्दु को ग्राहक भली प्रकार समझ सके। इसका कारण यह है कि ''विक्रयवार्ता केवल मात्र उत्पाद का वर्णन ही नहीं है, अपितु ऐसा वर्णन है जो ग्राहकों में रुचि और विश्वास पैदा करता है। यही नहीं, बल्कि रुचि और विश्वास पैदा करने से पूर्व ग्राहकों का ध्यान भी आकृष्ट करता है और आपत्तियों के निवारण के बाद विक्रय का समापन भी करता है।''

संक्षेप में विक्रयवार्ता करते समय निम्नलिखित तकनीकों अथवा सिद्धान्तों का ध्यान रखा जाना चाहिए।

1. **ध्यानाकर्षण एवं विक्रयवार्ता (Gaining Attention and Sales Talk)**: साक्षात्कार के समय ग्राहकों का ध्यान आकृष्ट करने एवं बनाये रखने के लिए विक्रयकर्ताओं को चाहिए कि वे उन्हीं विषयों पर जिनमें ग्राहक रुचि रखते हों। विक्रयकर्ताओं को चाहिए कि वे ऐसे प्रश्न भी ग्राहकों से करते रहें जिनसे उनका ध्यान विक्रयकर्ता की ओर बना रहे। किन्तु, प्रश्न ग्राहकों को चिड़ाने वाले या उनकी मजाक उड़ाने वाले या अत्यधिक वैयक्तिक नहीं होना चाहिए। प्रश्न मैत्रीमूर्ण और सद्‌भावयुक्त होने चाहिए। प्रश्न ऐसे होने चाहिए जो ग्राहकों में उत्सुकता पैदा कर सकें। प्रश्नों को बड़ी चतुराई से रखा जाना चाहिए।

   ध्यानाकर्षण हेतु चित्रों, अथवा नमूनों का प्रदर्शन भी किया जाना चाहिए। विक्रय–साहित्य भी प्रस्तुत किया जा सकता है। आँखों अन्य इन्द्रियों की तुलना में किसी वस्तु को पकड़ने में अधिक सक्षम होती है। स्पष्टता के साथ प्रदर्शित किया गया कोई चित्र या नमूना ग्राहकों को न केवल अपील ही करता है, अपितु अति शीघ्र विश्वास भी दिलाता है। चीनी कहावत बतलाती है कि ''एक चित्र दस हजार शब्दों के बराबर होता है।''

   ध्यानाकर्षण के लिए विक्रयकर्ताओं को प्रदर्शन कला और अभिनय का भी सहारा लेना चाहिए। इससे विक्रयवार्ता अधिक प्रभावी बनती है। विक्रयवार्ता के दौरान यह ध्यान रखा जाना चाहिए कि ध्यानाकर्षण काफी लम्बे समय तक बना रहने वाला नहीं होना चाहिए। यह अस्थायी होना चाहिए जिससे कि विक्रयकर्ता अपनी वार्ता आगे बढ़ा सके।

2. **रुचि उत्पन्न करना एवं विक्रय-वार्ता (Arousing Interest and Sales Talk)**: विक्रयकर्ताओं को चाहिए कि वे ग्राहकों का ध्यान आकृष्ट करने के बाद तत्काल उनमें वस्तु के प्रति रुचि उत्पन्न करना शुरू कर दें। रुचि उत्पन्न करने के लिए विक्रयकर्ताओं को चाहिए कि वे निम्न तकनीकें अपनायें–

   (i) क्रेताओं को वस्तुओं से प्राप्त होने वाले समस्त लाभों को समझायें। लाभ बतलाते समय क्रेताओं का दष्टिकोण भी भली प्रकार समझ लेना चाहिए और समस्त विक्रयवार्ता क्रेताओं को केन्द्र बना कर ही की जानी चाहिए। ग्राहक सदैव स्वयं के बारे में उनके हितों के बारे में बातें करना अधिक पसंद करते हैं। इसलिए ग्राहकों का व्यक्तित्व ही वार्ता का प्रमुख विषय होना चाहिए।

   (ii) रुचि उत्पन्न करने के लिए उन व्यक्तियों के नाम भी ग्राहकों के सम्मुख लिए जा सकते हैं जिन्होंने वस्तु को उपयोगी पाया है। यदि आवश्यकता हो तो प्रशंसा पत्र (testimonials) और सिफारिशें भी ग्राहकों के सम्मुख प्रस्तुत की जानी चाहिए।

   (iii) रुचि पैदा करने के लिए वस्तुओं का प्रदर्शन भी किया जा सकता है।

   पॉल इवी लिखते हैं कि ''ग्राहकों में रुचि उत्पन्न करने के लिए सबसे पहले यह मालूम करना चाहिए कि ग्राहकों की रुचि कैसी है और फिर उसमें रुचि लेते हुए बात कीजिए। इससे ग्राहक भी आपकी बातों में रुचि लेना प्रारम्भ करेंगे।''[19] निष्कर्ष के तौर पर यह कहा जा सकता है कि विक्रयवार्ता के दौरान रुचि उत्पन्न करने के लिए ग्राहकों को वैयक्तिक स्पर्श का अनुभव कराया जाना चाहिए।

3. **इच्छा उत्पन्न करना एवं विक्रयकर्ता (Arousing Desire and Sales Talk)**: विक्रयवार्ता के द्वारा साक्षात्कार अर्थात् विक्रय प्रस्तुतीकरण के समय रुचि उत्पन्न करने के बाद ग्राहकों की इच्छा को जगाया जाना चाहिए ताकि वे वस्तुओं का अभाव महसूस करें और उनकी पूर्ति हेतु वस्तुओं के क्रय की इच्छा उनमें उत्पन्न करें। अल्फ्रेड ग्रॉस (**Alfred Gross**) ने बताया है कि इच्छा उत्पन्न करने के लिए निम्न कार्य किये जाने चाहिए:

   (i) ग्राहकों की आवश्यकताओं का पता लगाना एवं उनके असन्तोष के कारणों को स्पष्ट करना।

   (ii) यह बतलाना कि प्रस्तावित वस्तु किस प्रकार ग्राहकों की आवश्यकताओं की पूर्ति करने में सक्षम है आवश्यकता हो तो वस्तु का प्रदर्शन करना।

---

19. **Paul Ivey,** "Successful Salesmanship", p. 214.

(iii) वस्तु क्रय में लाभ तथा क्रय न करने के नुकसान बतलाना।

संक्षेप में कहा जा सकता है कि इच्छा उत्पन्न करने के लिए ग्राहकों को यह बतलाया जाना चाहिए कि प्रस्तावित वस्तु का क्रय उनके जीवन में पूर्णता लाने, उन्हें आनन्दित करने, तथा समाज में प्रतिष्ठा बनाये रखने के लिए परमावश्यक है।

4. **विश्वास दिलाना एवं विक्रयकर्ता (Convincing and Sales Talk)**: वस्तुओं के प्रति ग्राहकों की इच्छा उत्पन्न करने के बाद विक्रयकर्ताओं को चाहिए कि वे उन्हें वस्तुओं की श्रेष्ठता व उपयोगिता के बारे में विश्वास दिलायें। विक्रयवार्ता के दौरान ग्राहकों को यह बताया जाना चाहिए कि वस्तुएँ उनके द्वारा खर्च की जाने वाली मुद्रा के प्रति पूर्ण न्याय करेंगी। विश्वास दिलाने के लिए विक्रयकर्ताओं को चाहिए कि वे निम्न तकनीकें काम में लायें–

(i) ग्राहकों के समक्ष वस्तुओं का पुनः प्रदर्शन करें अथवा ग्राहकों को ही वस्तुओं की जाँच करने का अवसर दें।

(ii) सन्तुष्ट ग्राहकों एवं विशेषज्ञों के प्रमाण–पत्र प्रस्तुत करें।

(iii) कम्पनी प्रमाण प्रस्तुत करें।

(iv) गारन्टी, वस्तु–वापसी की सुविधा, आदि की शर्त व पूर्ण सुविधाएँ प्रदान करें।

(v) विक्रेता संस्था की ख्याति एवं स्वयं का आत्मविश्वास प्रकट करें।

(vi) आपत्तियाँ एवं प्रतिरोध को समाप्त करें।

5. **विक्रय समापन करना एवं विक्रय-वार्ता (Closing the Sale and Sales Talk)**: विक्रय समापन करना विक्रयवार्ता का अन्तिम चरण है जिसे विक्रयवार्ता का चरमोत्कर्ष कहा गया है। इस चरण पर ग्राहक क्रय करने या न करने का निर्णय लेते हैं। यदि ग्राहक क्रय नहीं करने का निर्णय लेते हैं तो विक्रयवार्ता की समस्त मेहनत निष्फल जाती है, इसलिए विक्रयकर्ता को चाहिए कि वे अल्फ्रेड ग्रॉस के मतानुसार निम्न कार्य करके विक्रय समापन का प्रयास करें:

(i) क्रियादेश के लिए पूछताछ करके।

(ii) ग्राहकों की गर्भित स्वीकृति को स्पष्ट करके।

(iii) विशिष्ट प्रेरणा या प्रलोभन दे करके।

(iv) माल समाप्त हो सकता है, कीमतें बढ़ सकती हैं, आदि बातें कह करके।

(v) दो या तीन विकल्पों में से किसी एक के चयन में सहयोग करके।

(vi) आश्वासन देकर।

(vii) अधिकारपूर्वक कह करके।

(viii) वस्तु चयन की प्रशंसा करके।

(ix) ठहराव को स्वीकारात्मक रूप देने का प्रयास करके।

कभी–कभी वस्तु को पैक करने का आदेश देकर या बिल बनाने का संकेत करके भी विक्रयकर्ता विक्रय का समापन करने का प्रयास कर सकते हैं। प्रत्यक्ष अपील भी विक्रय समापन की अन्य प्रमुख तकनीक है। विक्रय के समापन के बाद जब तक वस्तु पैक न कर दी जाये अथवा ग्राहक को प्रसन्न–वदन मुद्रा में विदा न कर दिया जाये तब तक उसे वैयक्तिक स्पर्श का अनुभव कराया जाना चाहिए।

उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट है कि विक्रयवार्ता का क्षेत्र काफी विस्तत है और सम्पूर्ण विक्रय प्रविधि विक्रयवार्ता ही है। अतएव, विक्रयवार्ता का नियोजन और प्रस्तुतीकरण काफी प्रभावी होना चाहिए ताकि ग्राहक न केवल प्रस्तावित वस्तुयें ही खरीदें बल्कि पुर्नक्रय भी करें।

वैयक्तिक विक्रय के लाभ
(Merits of Personal Selling)

वस्तुओं का विक्रय दो प्रकार से होता है—एक तो वैयक्तिक व दूसरा अवैयक्तिक। वैयक्तिक विक्रय में वस्तुओं के क्रेता व विक्रेता आमने—सामने होते हैं, लेकिन अवैयक्तिक विक्रय पत्र—व्यवहार व टेलीफोन, आदि से होता है। वैयक्तिक विक्रय में अवैयक्तिक विक्रय की तुलना में कुछ लाभ हैं जो निम्न प्रकार हैं—

1. **भावी ग्राहकों का पता लगता है (Pinpoints Prospects)**: वैयक्तिक विक्रय का सबसे पहला लाभ यह है कि इस तरीके से पूरे ग्राहकों का पता लग जाता है या तो उनकी वस्तु के ग्राहक हैं या वे ग्राहक बन सकते हैं। इससे विक्रयकर्ता अपना ध्यान उस ओर एकाग्र होकर लगा सकता है। विज्ञापन व विक्रय प्रवर्तन इन बातों का पता नहीं लगा सकते हैं।
2. **शंकाओं का समाधान करता है (Meet Objections)**: वैयक्तिक विक्रय का दूसरा लाभ यह है कि इससे क्रेताओं की शंकाओं का समाधान उचित रूप से किया जा सकता है। उनकी आपत्तियों का निवारण कर सकते हैं और क्रय के लिए उचित वातावरण बना सकते हैं। ऐसा करने से आदेश मिलने की सम्भावनाएँ बढ़ जाती है।
3. **वस्तु का प्रदर्शन करता है (Demonstrates the Product)**: ग्राहक को वस्तु की लाभप्रदता व उसकी वांछनीयता का विश्वास दिलाने के लिए आवश्यक है कि उसको वस्तु का प्रयोग करने का उचित अवसर देते हुए उसका वास्तविक प्रदर्शन किया जाय। वैयक्तिक विक्रय वस्तुओं का प्रत्यक्ष प्रदर्शन करके यह अवसर प्रदान करता है।
4. **विक्रय समाप्ति में सहायता देता है (Helps close of the sale)**: वैयक्तिक विक्रय का एक लाभ यह भी है कि यह विक्रय समाप्ति में सहायता देता है तथा शंकाओं का समाधान कर विक्रय के लिए दबाव डालता है। विज्ञापन व विक्रय संवर्द्धन तो क्रेता को क्रय करने के लिए प्रेरित करते हैं लेकिन वे इतने प्रभावशाली नहीं होते हैं जितना वैयक्तिक विक्रय।
5. **समय सामंजस्य (Time co-ordination)**: इसमें विक्रयकर्ता ऐसी व्यवस्था कर लेता है कि जब कभी भी क्रेता वस्तु को क्रय करने के लिए तैयार होता है विक्रयकर्ता उसी समय उपस्थित हो जाता है। और उसको तुरन्त सेवा दे देता है।
6. **संचार सुविधा प्रदान करता है (Provides Communication)**: वैयक्तिक विक्रय निर्माताओं के लिए संचार सुविधाएँ प्रदान करता है। विक्रयकर्ता को वस्तुओं के विक्रय के सम्बन्ध में बहुत—सी सूचनाएँ प्राप्त होती हैं; जैसे, बाजार दशाएँ, प्रतियोगी क्रियाएँ, संस्था की नीतियों के बारे में ग्राहक की प्रतिक्रियाएँ, आदि। विक्रयकर्ता इन सभी बातों को निर्माता तक पहुंचाता है। जिससे कि निर्माता अपनी नीतियों व वस्तुओं में आवश्यक परिवर्तन कर अपने आपको जीवित ही नहीं रख पाते हैं बल्कि उनकी बिक्री बढ़ाने में भी सहायता मिलती है।
7. **गैर-विक्रय कार्य करता है (Performs non-selling work)**: एक विक्रयकर्ता का मुख्य कार्य विक्रय करना है लेकिन यह अपने विक्रय कार्य के अतिरिक्त अन्य गैर—विक्रय कार्य भी करता है जो निर्माता को लाभकारी होते हैं; जैसे, बाजार अनुसन्धान करना, मरम्मत सेवा प्रदान करना, ग्राहकों की शिकायतों का निवारण करना, आदि।
8. **सामाजिक प्रेरणा प्रदान करता है। (Provides social drive)**: वैयक्तिक विक्रय ग्राहक व विक्रयकर्ता के बीच एक मित्रता जैसा सामाजिक सम्बन्ध बना देता है जिसका परिणाम यह होता है कि उसको आदेश मिलते रहते हैं और वह अपनी वस्तु बेचने में सफल होता रहता है।

वैयक्तिक विक्रय के दोष या सीमाएँ
(Demerits or Limitations of Personal Selling)

वैयक्तिक विक्रय के जिन दोषों की विवेचना हम निम्न पंक्तियों में कर रहे हैं वास्तव में यह इसके दोष नहीं हैं। यह तो सापेक्षिक हैं। इसका अर्थ यह है कि कुछ आदेशों में दोष हो सकते हैं जबकि अन्य दशाओं में नहीं। इन्हीं दोषों को वैयक्तिक विक्रय की सीमाएँ भी कहते हैं।

1. **लागतें (Costs)**– वैयक्तिक विक्रय का सबसे बड़ा दोष लागत का है। वैयक्तिक विक्रय में विक्रयकर्ता को पारिश्रमिक, यात्रा व्यय, भत्ते व अन्य सुविधाएँ देनी होती हैं जिनका कुछ योग काफी होता है जो वस्तु की विक्रय लागत को बढ़ा देता है। लेकिन यदि व्यक्तिगत सम्पर्क टेलीफोन व पत्र–व्यवहार से किया जाता है तो लागत बहुत कम पड़ती है।

   वैयक्तिक विक्रय की अधिक लागत निर्माता के लिए लाभप्रद ही रहती है। इसका कारण यह है कि इसमें क्रेता से व्यक्तिगत सम्पर्क होता है जो धीरे–धीरे सामाजिक प्रेरणा में परिवर्तित हो जाता है जिससे आदेश अपने आप या बहुत थोड़े प्रयास से मिलते रहते हैं, साथ ही उसकी आपत्तियाँ व बाजारू स्थिति व स्थान–स्थान की प्रतियोगिता का भी पता लगता रहता है।

2. **सही समय में उपस्थित होने में कठिनाई (Difficulty in reaching at right time)**– वैयक्तिक विक्रय की दूसरी कठिनाई यह बतायी जाती है कि इसमें विक्रयकर्ता ग्राहक के पास उस समय नहीं पहुंच पाता जबकि ग्राहक क्रय सम्बंधी निर्णय लेने की स्थिति में हो। साथ ही क्रय आदेश लेने के लिए विक्रयकर्ता को कई बार सम्भावित ग्राहक से मुलाकात करनी पड़ती है। वास्तव में, इस दोष में कुछ सत्यता दिखायी देती है लेकिन इसके लिए यह सुझाव दिया जाता है कि निर्माता को विभिन्न साधनों से विज्ञापन इस प्रकार करना चाहिए कि उसका विज्ञापन सदा ही उसके सामने रहे और आदेश देते समय उसको याद बनी रहे।

3. **अच्छे विक्रयकर्ताओं का अभाव (Lack of good salesmen)**– वैयक्तिक विक्रय का एक दोष यह भी बताया जाता है कि अच्छे विक्रेताओं का प्रत्येक देश में अभाव है, इसमें भी कोई सत्यता दिखायी नहीं देती है। वास्तव में, अच्छे विक्रेता जन्मजात पैदा नहीं होते बल्कि उचित प्रशिक्षण देकर उन्हें तैयार किया जाता है।

अध्याय-19
विक्रय संवर्द्धन
(Sales Promotion)

विक्रय संवर्द्धन– अर्थ एवं परिभाषाएँ
(Sales Promotion— Meaning and Definition)

'विक्रय संवर्द्धन' दो शब्दों– 'विक्रय' और संवर्द्धन से बना है जिसका अर्थ बिक्री बढ़ाने से लिया जाता है।[1] **बालिग** का कहना है कि विक्रय बढ़ाने वाली अथवा उसकी वद्धि में सहायता करने वाली प्रत्येक क्रिया अथवा निर्णय विक्रय संवर्द्धन कहलाता है। चार्ल्स एम. एडवर्ड्स एवं विलियम एच. हॉवर्ड ने भी लिखा है कि "वह प्रत्येक क्रिया जो प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से लाभकारी बिक्री को बढ़ाने में सहयोग करती है, विक्रय संवर्द्धन में सम्मिलित की जाती है।"[2]

विक्रय प्रबन्ध का प्रमुख उत्तरदायित्व विक्रय परिमाण में आशातीत वद्धि करते हुए संस्था के निर्धारित विक्रय लक्ष्यों की पूर्ति करना होता है। इस प्रधान उद्देश्य की पूर्ति के लिए विक्रय प्रबन्धक सामान्यतः दो उपाय काम में लाते हैं। **प्रथम,** एक अच्छे विक्रय संगठन की स्थापना करके वे विक्रय–लक्ष्यों की प्राप्ति का प्रयास करते हैं। **द्वितीय,** वे विक्रय–लक्ष्यों की प्राप्ति हेतु बाह्य कदम उठाते हैं। क्योंकि उत्तम विक्रय संगठन के होने से ही बिक्री बढ़ जाये, यह आवश्यक नह है। विक्रय प्रबन्धकों द्वारा उठाये जाने वाले बाह्य कदम ही विक्रय संवर्द्धन के नाम से जाने जाते हैं। इन **बाह्य कदमों** अथवा कार्यों में नये बाजारों की खोज करना, ग्राहकों को अधिकाधिक क्रय हेतु प्रोत्साहित करना, विज्ञापन करना आदि को सम्मिलित किया जाता है। वैसे यह ध्यान देने योग्य बात है कि तकनीकी अर्थ में विज्ञापन क्रियायें विक्रय संवर्द्धन के क्षेत्र से बाहर रखी जाती हैं। विक्रय संवर्द्धन को वाणिज्ययन (Merchandising), रेखा के नीचे की क्रिया (Below the-line activity) 'माध्यम विहीन विज्ञापन' (Non-media advertising) आदि नामों से भी पुकारा जाता है।

विक्रय संवर्द्धन की कुछ प्रमुख परिभाषायें इस प्रकार हैं–

1. **ए. एच. आर. डिलेन्स** के शब्दों में "विक्रय संवर्द्धन से आशय विक्रय वद्धि के लिए किये गये कार्यों से है। इस शब्द से आशय विक्रय–प्रयत्नों से हैं जो कि व्यक्तिगत–विक्रय एवं विज्ञापन के पूरक हैं और जिनके समन्वय से ये उनको अधिकाधिक प्रभावशाली बनाने में सहायक होते हैं।"[3]
2. **जॉर्ज डब्ल्यू. हॉपकिन्स** (George W. Hopkins) ने विक्रय संवर्द्धन की परिभाषा देते हुए कहा है, "विज्ञापन एवं विक्रय की प्रक्रियाओं को प्रभावशाली बनाने के लिए जिन संगठित प्रयासों की सहायता ली जाती है, उन्हें विक्रय संवर्द्धन के नाम से सम्बोधित किया जाता है।"[4]
3. **हैरोल्ड व्हाइटहैड** (Harold Whitehead) के शब्दों में, "विक्रय संवर्द्धन से आशय वास्तविक एवं सम्भावित थोक–विक्रेता, फुटकर व्यापारी, उपभोक्ताओं और यहाँ तक कि स्वयं फर्म के विक्रयकर्ताओ में सूचनाओं का प्रसारण है।"[5]

---

1. **H. Simmons :** "Successful Sales Promotion", 1954. p. 1.
2. **Charles M. Edwards and William H. Howard,** "Retail Advertising and Sales Promotion", New York, 1943.
3. Any steps that are taken for the purpose of obtaining or increasing sales often this term refers specially to selling efforts that are designed to supplement personal selling and advertising and by co-ordination, help them to become more effective.
A.H.R. Delens "Principles of Market Research". p. 244.
4. "Sales promotion is an organised effort applied to the selling job to secure the greatest effectiveness for advertising and for dealers' help".
G.W. Hopkins
5. "Sales Promotion includes the dissemination of information to wholeslers, retailers, customers—actual and potential, and not least to the firms own salesman".
Harold Whitehead, "The Administration of Marketing and Selling". p. 136.

4. **जे. आर. डॉबमेन** (J.R. Daubman) के अनुसार, "विक्रय संवर्द्धन से आशय फुटकर व्यापारियों के कार्य को अधिक सरल बनाना है, ग्राहकों के मस्तिष्क में इच्छा (desire) उत्पन्न करना है एवं व्यापारियों को और अधिक श्रेष्ठ व्यापारी बनाना है।[6]
5. **के. एस. हॉवर्ड** (K.S. Howard) के अनुसार, "विज्ञापन एवं प्रकाशन के निश्चित क्षेत्रों में सम्मिलित होने वाली क्रियाओं के अतिरिक्त वे समस्त क्रियाएँ जो कि वास्तविक विक्रय में सहायक हैं, विक्रय संवर्द्धन कहलाती हैं।"[7]
6. **अमेरिकन मार्केटिंग एसोसियशन** (A. M. A.) के अनुसार, "विक्रय सम्वर्द्धन में वैयक्तिक विक्रय (Personal Selling), विज्ञापन एवं प्रकाशन के अलावा वे समस्त अनियमित क्रियाएँ जैसे– प्रदर्शन (displays), दिखावा एवं प्रदर्शनी, प्रदर्शन (demonstrations) आदि सम्मिलित की जाती हैं जो उपभोक्ता एवं व्यापारी की प्रभावशीलता को प्रोत्साहित करती है।"[8]
7. **ल्यूइक एवं जीगलर** के अनुसार, "विक्रय सम्वर्द्धन" 'विपणन सम्वर्द्धन' का वह उपकरण है जो वस्तु के प्रयोग में वद्धि करता है और वस्तु के बाजार का भी विस्तार करता है या नवीन वस्तु का परिचय कराता है।"[9]
8. **जॉनसन के अनुसार,** "विक्रय सम्वर्द्धन में वे सभी क्रियायें सम्मिलित होती हैं जिनका उद्देश्य विक्रेताओं, विज्ञापन विभागों, व्यापारियों एवं वितरकों के कार्यों को सम्पन्न करना तथा विक्रेताओं के कार्यों को अधिक प्रभावपूर्ण बनाना होता है ताकि विक्रय बढ़ सके और उपभोक्ताओं को क्रय में अधिक रुचि लेने को प्रेरित किया जा सके।"[10]
9. **जॉन एलन मरफी** के शब्दों में, "विक्रय सम्वर्द्धन वे समस्त क्रियाएँ हैं जो विक्रयकर्ताओं को सहयोग देने हेतु की जाती हैं। इनमें विक्रय साहित्य, औपचारिक प्रस्तुतीकरण, कैटलॉग, विक्रय पुस्तिकायें, नीति–विवरण, विक्रय प्रतिरोध को तोड़ने वाले साधन एवं विधियाँ आदि सम्मिलित हैं।[11]

उपर्युक्त परिभाषाओं के आधार पर कहा जा सकता है कि 'विक्रय सम्वर्द्धन'[12] को निम्न तीन अर्थों में लिया जाता है–

1. **संकीर्ण अर्थ में**–संकीर्ण अर्थ में विक्रय सम्वर्द्धन का आशय ऐसी क्रियाओं से है जो कि वैयक्तिक विक्रय में सहायक होती हैं।
2. **विस्तत अर्थ में** –विस्तत अर्थ में विक्रय सम्वर्द्धन से आशय उन समस्त क्रियाओं से हैं जो कि विक्रय की वद्धि के लिए की जाती हैं। इस दष्टिकोण से विक्रय सम्वर्द्धन के अन्तर्गत विज्ञापन, व्यक्तिगत विक्रय, उत्पादों में नवीनता लाना, विपणन प्रणालियों में सुधार, विशेष योजनायें, प्रतियोगिताएँ, स्थायी प्रदर्शन आदि सभी सम्मिलित किये जाते हैं।
3. **विशिष्ट अर्थ में**–विक्रय सम्वर्द्धन का अर्थ उन क्रियाओं से है जो विक्रय वद्धि के लिए अनियमित रूप से सम्पन्न की जाती हैं और जिनमें विज्ञापन, वैयक्तिक विक्रय तथा प्रकाशन से सम्बन्धित क्रियाओं को सम्मिलित नह किया जाता है। वस्तुतः विक्रय सम्वर्द्धन को इसी अर्थ में समझा जाना चाहिए।

---

6. **J. R. Daubman,** "Fundamentals of Sales Management", p. 302.
7. **K. S. Howards,** "Methods of Sales Promotion". Mc Graw-Hill.
8. "Those marketing activities other than personal selling, advertising and publicity, that stimulation consumer purchasing and dealer effectiveness such as displays, shows and expositions, demonstration and various non-recurrent selling not in the ordinary routine".

AMA

9. **J.F. Luick and W. I Ziegler,** "Sales Promotion and Modern Merchandising", p. 1.
10. "Sales Promotion consists of all those activities whose purpose is to supplement to co-ordinate and to make sure more effective the efforts of the sales force, of the advertising department, and of the distributors and to increase sales and otherwise stimulate consumers to take greater initiative in buying"

L. K. Johnson "Sales and Marketing Management; Text and Cases". p. 540.

11. See an article "Advertising and Selling" published in 1946, quoted by **Harry Simmons,** op. cit., 1.
12. जॉन केमेरोन आस्पवे की परिभाषा इस अर्थ का प्रतिनिधित्व करती है। उनके अनुसार, "विक्रय सम्वर्द्धन उन समस्त कार्यों को सम्मिलित करता है जो उत्पाद के विपणन में किये जाते हैं जैसे–व्यक्तिगत विक्रय, विज्ञापन और बाजार को विस्तत करने सम्बन्धी कार्य।"

—**John Cameron Asplay,** "Sales Promotion Handbook". p. 23.

विक्रय सम्वर्द्धन की विशेषताएँ
(Characteristics of Sales Promotion)

'विक्रय सम्वर्द्धन की विशेषतायें निम्नानुसार हैं–

1. विक्रय सम्वर्द्धन 'विक्रय बिन्दु' पर ग्राहकों के ध्यान को वस्तुओं और सेवाओं के क्रयार्थ आकृष्ट करता है।
2. विक्रय सम्वर्द्धन वस्तुओं और सेवाओं को ग्राहकों की ओर धकेलने वाली क्रियाओं का समूह है।
3. विक्रय सम्वर्द्धन उत्पाद, सम्पत्ति या सेवा के मौद्रिक हस्तान्तरण की इच्छा की जन घोषणा है जो संकेतों, प्रदर्शनों, डाक एवं अन्य अनियमित विपणन क्रियाओं द्वारा की जाती है।
4. विक्रय सम्वर्द्धन में उन अनियमित क्रियाओं को सम्मिलित किया जाता है जो कि उपभोक्ताओं एवं व्यापारियों को माल खरीदने के लिए प्रेरित करती हैं।
5. विक्रय सम्वर्द्धन में विज्ञापन, वैयक्तिक विक्रय तथा प्रकाशन को सम्मिलित नह किया जाता है।
6. विक्रय सम्वर्द्धन विज्ञापन एवं वैयक्तिक विक्रय को अधिक प्रभावशाली बनाने वाली क्रियाओं का समूह है। वस्तुतः विक्रय सम्वर्द्धन विज्ञापन एवं वैयक्तिक विक्रय के मध्य की खाई को पाटने वाला पुल है।

विज्ञापन का विक्रय सम्वर्द्धन से सम्बन्ध
(Relationships of Advertising with Sales Promotion)

प्रो. फ्रेडरिक ए. एगमोर (Frederic A. Egmore) का कहना है कि विक्रय कार्य के दो पहलू हैं–(i) वैयक्तिक विक्रय एवं (ii) अवैयक्तिक विक्रय अर्थात् विज्ञापन। वैयक्तिक विक्रय का आशय व्यवसायी द्वारा विक्रय के लिए किये गये वैयक्तिक प्रयत्नों से है जिसमें विक्रेता स्वयं सम्भावित एवं वर्तमान ग्राहकों से सम्पर्क स्थापित करता है और विक्रय कला का सहारा लेकर वस्तुएँ बेचने का प्रयास करता है। विज्ञापन का आशय व्यक्तियों को अवैयक्तिक तौर पर वस्तुओं की उपलब्धि के बारे में सूचना देना होता है। विक्रय सम्वर्द्धन वस्तुओं के वैयक्तिक तथा अवैयक्तिक विक्रय एवं संस्था के मध्य किया गया समन्वय है। एगमोर के इन विचारों से स्पष्ट होता है कि विक्रय सम्वर्द्धन वैयक्तिक विक्रय एवं विज्ञापन में समन्वय स्थापित करता है।

प्रो. डी. एल. हेग (D. L. Hague) का कहना है कि "विज्ञापन वस्तुओं के सम्बन्ध में हजारों उपभोक्ताओं को शिक्षित करता है और व्यापक विक्रय का आधार बनता है जबकि सम्वर्द्धन कार्य विक्रय–शक्ति तथा स्वयं के व्यक्तियों को शिक्षित करना है। अन्य दष्टिकोण से विज्ञापन वस्तुओं के प्रति व्यक्तियों को खींचता है, जबकि विक्रय सम्वर्द्धन व्यक्तियों की ओर वस्तुओं को धकेलता है।"

उपर्युक्त विचारों से स्पष्ट है कि विज्ञापन का सम्बन्ध जनसामान्य के बड़े वर्ग से होता है तथा व्यक्तिगत विक्रय का सम्बन्ध कुछ ही व्यक्तियों तक सीमित होता है। किन्तु, विक्रय सम्वर्द्धन विज्ञापन तथा व्यक्तिगत विक्रय दोनों ही से सम्बन्धित होता है जो कि विज्ञापन एवं वैयक्तिक विक्रय के मध्य की खाई को पाटने का प्रयत्न करता है। इसे निम्नांकित चित्र द्वारा समझा जा सकता है–

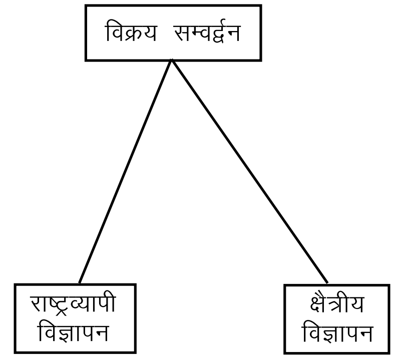

चित्र 19.1

उपर्युक्त चित्र बतलाता है कि यदि कोई कम्पनी अपना नवीन उत्पादन बाजार में विक्रय के लिए प्रस्तुत करना चाहती है तथा उस उत्पादन के लिए विज्ञापन द्वारा राष्ट्रव्यापी प्रचार करती है तो केवल इस प्रचार मात्र से उस वस्तु का विक्रय नह हो जायेगा, वरन् उसके लिए फुटकर–विक्रेताओं के पास वस्तुएँ पहुँचाने एवं उन्हें उन वस्तुओं को क्रय करने के लिए प्रेरित करने की आवश्यकता होगी और इसके लिए व्यक्तिगत सम्पर्क की आवश्यकता होगी। इस व्यक्तिगत सम्पर्क एवं विज्ञापन के मध्य की दूरी को कम करने के लिए मुफ्त नमूने, कूपन, विभिन्न प्रतियोगिताएँ आदि की सहायता ली जायेगी ताकि विक्रय में वद्धि की जा सके। विक्रय वद्धि की ये ही समस्त विधियाँ विक्रय सम्वर्द्धन कही जाती हैं।

निष्कर्ष के तौर पर यह कहा जा सकता है कि विज्ञापन एवं विक्रय सम्वर्द्धन क्रियाएँ एक–दूसरे की पूरक हैं और एक दूसरे को प्रभावशाली बनाती हैं। इतने पर भी इनमें जो प्रमुख अन्तर हैं वे इस प्रकार हैं–

1. विज्ञापन अप्रत्यक्ष सम्पर्क का साधन है जबकि विक्रय सम्वर्द्धन ग्राहकों से प्रत्यक्ष सम्पर्क स्थापित करने का साधन है।
2. विज्ञापन वैयक्तिक विक्रय के कार्य को सरल बनाता है किन्तु विक्रय सम्वर्द्धन वैयक्तिक विक्रय और विज्ञापन के बीच की दूरी को कम करता है।
3. विज्ञापन का भौगोलिक क्षेत्र विशाल होता है किन्तु, विक्रय सम्वर्द्धन का सीमित होता है।
4. विज्ञापन व्यवसाय की दैनिक क्रिया है जबकि विक्रय सम्वर्द्धन विशिष्ट क्रिया अथवा अनियमित क्रिया।
5. विज्ञापन के साधनों पर (डाक द्वारा विज्ञापन को छोड़कर) विज्ञापत–कर्ता का नियन्त्रण रहता है किन्तु विक्रय सम्वर्द्धन में व्यावसायिक संस्थाओं का।
6. विज्ञापन वस्तुओं की ओर ग्राहकों को खचता है, जबकि विक्रय–सम्वर्द्धन ग्राहकों की ओर वस्तुओं को धकेलता है।
7. विज्ञापन असंख्य ग्राहकों को शिक्षित करने का कार्य है तथा व्यापक विक्रयण का आधार है जबकि विक्रय सम्वर्द्धन अपने ही व्यक्तियों को शिक्षित करने और अपनी ही विक्रय शक्ति को प्रोत्साहित करने का कार्य है।

विक्रय-सम्वर्द्धन के उद्देश्य
(Objects of Sales Promotion)

विक्रय सम्वर्द्धन का प्रमुख उद्देश्य सदैव बिक्री में वद्धि करना होता है। यह उद्देश्य समय के दष्टिकोण को ध्यान में रखकर विभिन्न इकाइयों में इस प्रकार विभक्त कर लिया जाता है कि थोड़े अथवा अधिक समय में इससे कुछ लाभ प्राप्त किये जा सकें।

दूसरे शब्दों में यह कहा जा सकता है विक्रय सम्वर्द्धन का मुख्य लक्ष्य हर सम्भव लाभार्जन करना होता है चाहे वह दीर्घ अवधि में हो अथवा अल्प–अवधि में। विक्रय सम्वर्द्धन के निम्न उद्देश्य हैं[13]–

1. नये उत्पादन को बाजार में प्रवेश करने में सहायता पहुँचाना।
2. थोक व्यापारी तथा फुटकर व्यापारी को अधिक क्रय के लिए प्रोत्साहित करना।
3. वर्तमान उपभोक्ताओं को अपने उत्पादनों को और अधिक मात्रा में प्रयोग करने के लिए प्रोत्साहित करना।
4. नये उपभोक्ताओं को आकर्षित करना।
5. विशेष मौसम के फलस्वरूप विक्रय की कमी को कुछ अंशों तक दूर करना।
6. प्रतिस्पर्द्धी व्यापारियों के विक्रय–सम्वर्द्धन की नीतियों में जवाबी कार्यवाही करना।
7. फुटकर भण्डारों में वस्तुओं के प्रदर्शन क्षेत्र में वद्धि करने के उद्देश्य से फुटकर विक्रेताओं का अधिक सहयोग प्राप्त करना।
8. वैयक्तिक विक्रय एवं विज्ञापन में समन्वय स्थापित करना।
9. संस्था के विक्रयकर्ताओं को माल के अधिक विक्रय के लिए प्रोत्साहित करना एवं सहायता पहुँचाना।

13. See **M. J. Baker,** "Marketing : An Introductory Text", pp. 228-29.

विक्रय सम्वर्द्धन विभाग के कार्य
(Functions of Sales Department)

विक्रय सम्वर्द्धन विभाग का प्रमुख कार्य विपणन और वैयक्तिक विक्रय के बीच की दूरी को समाप्त करना है। **विलियम जे. स्टेन्टन** लिखते हैं कि "वास्तव में, विक्रय सम्वर्द्धन का प्रमुख कार्य विज्ञापन और वैयक्तिक विक्रय के बीच पुल का काम करना है ताकि इन दोनों क्षेत्रों के प्रयास पूरक बन सकें और समन्वित हो सकें।[14]

वर्तमान में विक्रय सम्वर्द्धन विभाग के कार्यों अथवा दायित्वों का क्षेत्र काफी व्यापक होता जा रहा है। एक समय था जब प्रत्येक वह विषम कार्य जिसे विज्ञापन अथवा विक्रय विभाग नह कर पाता था, विक्रय सम्वर्द्धन विभाग को सौंप दिया जाता था। किन्तु, अब इस विभाग के कार्य निश्चित से हो चुके हैं और उनकी एक पूर्ण सूची तैयार करने का कार्य भी कर लिया गया है। **हेरी सिमन्स** के अनुसार विक्रय सम्वर्द्धन विभाग के प्रमुख कार्य अग्रलिखित हैं[15]–

1. **संस्थागत कार्य (Institutional Functions):** (i) कम्पनी उत्पाद कार्य तथा (ii) विक्रयकर्ताओं की क्रियायें सम्मिलित की गई हैं।
2. **समन्वयात्मक कार्य (Coordinating Functions):** इनमें (i) विभागीय क्रियायों का समन्वय, (ii) विक्रय विभाग से सम्पर्क, (iii) विज्ञापन विभाग से सम्पर्क एवं (iv) उत्पादन विभाग से सम्पर्क सम्बन्धी क्रियायें सम्मिलित की गई हैं।
3. **वाणिज्यन कार्य (Merchandising Functions):** इनमें (i) वाणिज्यन क्रियायें, (ii) प्रतियोगिता योजनायें, (iii) प्रदर्शन एवं सेम्पलिंग तथा (iv) व्यापार सम्बन्धी क्रियायें सम्मिलित की गई हैं।
4. **प्रकाशन या प्रचार कार्य (Publicity Functions):** इनमें (i) विज्ञापन क्रियायें, (ii) प्रत्यक्ष डाक क्रियायें, (iii) बाह विज्ञापन, (iv) जन सम्बन्ध, तथा (v) सभायें, प्रस्ताव व प्रदर्शनियों से सम्बद्ध क्रियायें सम्मिलित की गई हैं।
5. **शैक्षणिक कार्य (Educational Functions):** इनमें (i) शैक्षणिक गतिविधियाँ, (ii) पत्राचार सम्पर्क, (iii) गह पत्रिकाएँ, (iv) गतिचित्र, एवं (v) अनुसन्धान तथा विश्लेषण से सम्बद्ध क्रियायें सम्मिलित की गई हैं।
6. **विपणन कार्य (Marketing Function):** इनमें (i) फुटकर व्यापारी एवं डीलर्स क्रियायें (ii) फुटकर भण्डार कार्य, (iii) वितरक जॉबर्स एवं थोक व्यापारी क्रियायें, (iv) विक्रय बिन्दु प्रदर्शन या सजावट, तथा (v) भावी व्यापारियों एवं वितरकों से सम्बद्ध क्रियायें सम्मिलित की गई हैं।

विक्रय सम्वर्द्धन का महत्व
(Importance of Sales Promotion)

वर्तमान में, विक्रय सम्वर्द्धन के दिनोंदिन अभिवद्धित महत्व ने इसे आधुनिक व्यावसायिक क्रिया–कलापों का एक अभिन्न पहलू बना दिया है। विक्रय सम्वर्द्धन का आधुनिक दष्टिकोण इससे पहले की भाँति आवश्यक बुराई नह मानता है और इससे सम्बद्ध क्रियाओं के व्ययों की पूर्ति हेतु विज्ञापन एवं विक्रय विभाग की कृपा पर निर्भर नह करता है। अतः विक्रय सम्वर्द्धन विभाग परिपूर्ण विभाग का दर्जा प्राप्त कर चुका है और इसके लिए पथक बजट तैयार किया है। आज विक्रय सम्वर्द्धन का महत्व एक समन्वय करने वाली क्रिया के रूप में स्वीकार किया जाने लगा है। **हैरी सिमन्स** लिखते हैं कि "विक्रय सम्वर्द्धन अधिकांशतः विक्रय विज्ञापन, अनुसन्धान, वाणिज्यन और जनसम्पर्क विभागों के प्रयासों तथा क्रिया–कलापों के समन्वय कार्य है जो विक्रय बिन्दु पर विक्रय प्रतिरोध में कमी लाता है।"[16]

विलियम जे. स्टेन्टन का विचार है[17] कि फुटकर विक्रयण के दौरान उत्पन्न होने वाले उपभोक्ता असन्तोष को एक श्रेष्ठ विक्रय सम्वर्द्धन कार्यक्रम द्वारा कम किया जा सकता है। स्व–सेवा, विक्रय–मशीनों द्वारा बिक्री एवं अन्य विक्रय विधियों जिनमें विक्रयकर्ताओं का प्रयोग नह किया जाता है, वहाँ विक्रय सम्वर्द्धन उपायों की आवश्यकता काफी बढ़ गयी है। इसी प्रकार,

---

14. **W. J. Stanton,** "Fundamentals of Marketing", p. 515.
15. **Harry Simmons,** op. cit., pp. 7-24.
16. Ibid., p. 1.
17. **W. J. Stanton,** op. cit., p. 516.

भावनात्मक क्रय के बढ़ने और फुटकर भण्डारों द्वारा उनकी उत्पाद रेखाओं के विविध होने के साथ–साथ विक्रय सम्वर्द्धन कार्यक्रमों का महत्व भी बढ़ता जा रहा है। इसके अतिरिक्त, इस व्यस्त विश्व में ग्राहक विज्ञापनों के प्रति रुचि तो दिखाते हैं, किन्तु अतिशीघ्र उन्हें भूल भी जाते हैं। बहुत बार क्रय करते समय ग्राहकों को विज्ञापन याद नह आ पाते हैं। ऐसी परिस्थितियों में विक्रय सम्वर्द्धन उपाय बिक्री करने हेतु काफी कारगर प्रमाणित होते हैं।

विक्रय सम्बर्द्धन क्रियाएँ आज तीव्र प्रतिस्पर्धा के युग में न केवल व्यावसायिक संस्थाओं को जीवन देती हैं, अपितु उन्हें गत्यात्मक भी बनाये रखती हैं। विक्रय सम्वर्द्धन के महत्व को निम्न दष्टिकोणों से आँका जा सकता है।[18]

1. विक्रय सम्वर्द्धन विज्ञापन तथा वैयक्तिक विक्रय के बीच की खाई को पाटता है और दोनों की क्षेत्रों की क्रियाओं को प्रभावी बनाता है।
2. उत्पादकों, मध्यस्थों एवं अन्य वितरण संस्थाओं के विक्रय की मात्रा में वद्धि होती है जिससे उनके लाभ बढ़ते हैं।
3. उत्पादकों के उत्पादन का पैमाना व्यापक होता है और उत्पादन लागतों में कमी आती है।
4. मध्यस्थों को अधिक संग्रहण के लिए प्रोत्साहन मिलता है क्योंकि उन्हें उत्पादकों द्वारा विविध छूटें और सुविधाएं दी जाती हैं।
5. नई वस्तुओं की माँग में वद्धि होती है। उत्पादों के जीवन–चक्र की जन्मावस्था एवं परिपक्वता की अवस्था में विक्रय सम्वर्द्धन महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाता है।
6. मौसमी वस्तुओं की खपत भी स्थायी होने लगती है। 'बेमौसम विक्रय' सरल हो जाता है।
7. संस्था की ख्याति बढ़ती है क्योंकि अनेक प्रकार की प्रतियोगिताएँ, नमूनों का वितरण, प्रीमियम व्यवस्थाएँ संस्था के प्रति जनता के हृदय में स्थान बनाती हैं।
8. साधारणतः न बिक सकने वाली वस्तुओं का भी विक्रय होने लगता है।
9. बाजार सम्बन्धी सूचनाएँ प्राप्त होती हैं जिससे उत्तम विपणन कार्यक्रम और योजनाएँ बनाना सम्भव हो जाता है।
10. संस्था की प्रतिस्पर्धी स्थिति भी सुदढ़ होती है क्योंकि क्रय हेतु प्रलोभन दिये जाने के कारण माल के न बिकने की सम्भावनाएँ समाप्त हो जाती हैं।
11. ग्राहकों को नवीन, सस्ती एवं अच्छी वस्तुएँ प्राप्त होती हैं। मुफ्त नमूने तथा विक्रय साहित्य प्राप्त होता है जो उनकी जानकारी में वद्धि करता है उन्हें संस्था का स्थायी ग्राहक बनाता है।
12. देश का आर्थिक विकास तीव्र होता है। रोजगार के अवसर बढ़ते हैं। जीवन–स्तर ऊँचा होता है। तीव्र प्रसार की अवस्थाओं में विक्रय सम्वर्द्धन अर्थव्यवस्था को संकट से उबारता है।
13. अति निकट भविष्य में विक्रय सम्वर्द्धन व्यवसाय की नियमित क्रियाओं का अभिन्न अंग बन जायेगा।

विक्रय सम्वर्द्धन प्रबन्धक के कार्य, कर्तव्य या दायित्व
(Functions, Duties and Responsibilities of a Sales Promotion Manager)

एक विक्रय सम्वर्द्धन प्रबन्धक के प्रमुख कार्य, कर्तव्य अथवा दायित्व निम्नलिखित हैं–

1. **विक्रयकर्ताओं पर नियंत्रण**–व्यावसायिक संगठन के आकार के अनुसार उसमें विक्रयकर्ताओं की संख्या होती है। बड़े संगठन में विक्रयकर्ताओं की संख्या भी अधिक होती है। अतः इस प्रबन्धक का प्रमुख कार्य यह होता है कि समस्त विक्रयकर्ताओं पर नियंत्रण रखें। इस उद्देश्य की पूर्ति के लिए वह प्रत्येक विक्रयकर्ता से उसके द्वारा किये गये कार्यों की दैनिक अथवा साप्ताहिक रिपोर्ट मँगवाता है, उनकी जाँच व अध्ययन करता है, आवश्यक निर्देश देता है, उनकी गतिविधियों की जानकारी रखता है और उनको विशिष्ट विक्रय प्रसार योजनाओं से व अन्य सूचनाओं से अवगत कराता है एवं उनकी आवश्यकतानुसार उपर्युक्त सहायता करता है।

18. **Philip Kotler** "Marketing Management: Analysis, Planning and Control" 1979, p. 340

2. **व्यापारियों से सम्पर्क (Liaison)**–यह प्रबन्धक थोक व्यापारियों द्वारा तथा फुटकर व्यापारियों से भी सम्पर्क रखता है। वह उनके आवश्यक सूचनाएँ देकर प्रदर्शन सामग्री (display material) भेजकर एवं सुधरी हुई तकनीकों की सूची देकर इन व्यापारियों की सेवा करता है। यदि किन्हीं व्यापारियों को उनका माल बेचने में कठिनाई होती है तो वह उनको आवश्यक परामर्श भी देता है।
3. **विक्रय-नीतियों को क्रियान्वित करना**–कम्पनी के संचालक–मण्डल अथवा सम्बन्धित अधिकारियों को विक्रय–नीति बनाने में सहायता करता है। इसके अतिरिक्त कम्पनी की विक्रय–नीति को अन्तिम रूप देकर इसे प्रबन्धक के पास भेज देते हैं। अब इस प्रबन्धक का दायित्व हो जाता है कि वह इस नीति को क्रियान्वित करे एवं उसकी रिपोर्ट सम्बन्धित अधिकारियों को दे।
4. **विशिष्ट प्रचार योजनाएँ**–अपनी वस्तुओं के विक्रय–सम्वर्द्धन के उद्देश्य से वह प्रबन्धक आवश्यक प्रचार योजनाएँ जैसे इनामी योजना, प्रतिस्पर्धा, कूपन प्रणाली अथवा अन्य इसी प्रकार की विशिष्ट प्रचार योजनाओं को बनाता है और उन्हें कार्यान्वित करवाता है।
5. **प्रशासकीय कार्य**–इस प्रबन्धक को अपने विभाग के प्रशासन सम्बन्धी कार्य भी करने पड़ते हैं। इसका यह कार्य भी अत्यन्त महत्वपूर्ण है। यदि उसके विभाग का प्रशासन शिथिल है तो विक्रय–व्यवस्था बिगड़ जावेगी। उसके प्रशासन सम्बन्धी कार्यों में उसके विभाग का संगठन, नियोजन एवं नियंत्रण आदि प्रमुख है।
6. **बजट बनाना**–इस प्रबन्धकों को अपने विभाग का बजट भी बनाना पड़ता है। इस बजट को बनाने में अत्यन्त सावधानी एवं अनुभव की आवश्यकता पड़ती है। यह बजट आदर्श, होना चाहिए। यदि बजट में आवश्यकता से कम राशि रखी गई है तो उसको विक्रय–सम्वर्द्धन सम्बन्धी क्रियाओं के संचालन में कठिनता आवेगी और उन क्रियाओं को प्रभावशाली ढंग से क्रियान्वित नहीं किया जा सकेगा और यदि अधिक राशि रखी गई है तो उसका लाभप्रद ढंग से उपयोग नहीं किया जा सकेगा।
7. **विक्रयकर्ताओं सम्बन्धी कार्य**–इस प्रबन्धक को विक्रयकर्ताओं का चयन करना होता है अतः प्रत्याशियों से आवेदन–पत्रों को मंगाना, उन्हें साक्षात्कार के लिए बुलाना एवं योग्यतम व्यक्तियों को विक्रयकर्ता के पद पर नियुक्त करना आदि भी उसके कार्य हैं। इसके पश्चात् यदि आवश्यक हो और कम्पनी की ओर से प्रशिक्षण की व्यवस्था हो तो उनके प्रशिक्षण की व्यवस्था करनी होती है। यह प्रबन्धक उन विक्रयकर्ताओं के लिए कार्य–क्षेत्र भी निर्धारित करता है जिसमें कि उन्हें कार्य करना होता है।
8. **व्यय पर नियंत्रण**–उसको विक्रय सम्वर्द्धन पर राशि का व्यय स्वीकृत बजट के अनुसार ही करना पड़ता है, अतः उसे सदैव बजट को ध्यान में रखकर व्यय करना चाहिए। हाँ, यदि किन्हीं विशेष परिस्थितियों में अधिक धन–राशि व्यय करने की आवश्यकता पड़े तो उसे पहले बजट कमेटी से स्वीकृति ले लेनी चाहिए।
9. **अन्य विभागों से सामंजस्य**–विक्रय सम्वर्द्धन व्यवस्थापक का एक महत्वपूर्ण कार्य यह भी है कि वह कम्पनी के अन्य विभागों से और विशेषतः विपणन समूह के विभिन्न विभागों से प्रभावशील सामंजस्य रखे।

विक्रय सम्वर्द्धन के प्रकार एवं विधियाँ
(Types and Methods of Sales Promotion)

वर्तमान कठोर प्रतिस्पर्धा के युग में अपनी वस्तुओं का सफल विक्रय करना वास्तव में एक कला है। जो इस कला में प्रवीण हैं, वे अपने अन्य प्रतिस्पर्धियों को पीछे छोड़ देते हैं और अपने माल का विक्रय द्रुतगति से बड़ी मात्रा में करते हैं। विक्रय सम्वर्द्धनकार्य प्रायः मध्यस्थों, उपभोक्ताओं, प्रतिस्पर्धी स्थितियों, संस्था की ख्याति, अर्थव्यवस्था की स्थिति आदि अनेक बातों को ध्यान में रखकर किये जाते हैं। उपभोक्ताओं के लिए जो विक्रय सम्वर्द्धन विधियाँ अपनायी जाती हैं वे मध्यस्थों के लिए अपनायी जानी वाली विधियों से भिन्न होती हैं। उपभोक्ताओं के लिए विक्रय सम्वर्द्धन के वे उपाय अपनाये जाते हैं जिनमें उपभोक्ता उन वस्तुओं को क्रय करने के लिए दुकानदार तक पहुंचने के लिए प्रेरित होता है। किन्तु मध्यस्थों के लिए विक्रय सम्वर्द्धन की विधियाँ अपनायी जाती हैं जिनसे वे उनकी दुकानों पर उन विशिष्ट वस्तुओं को रखने तथा उपभोक्ताओं को आकृष्ट करने के लिए अपनाये जाने वाले सम्वर्द्धन उपाय, 'उपभोक्ता सम्वर्द्धन' (Consumer Promotions) के नाम से जाने जाते हैं।

मध्यस्थों के लिए अपनाये जाने वाले सम्वर्द्धन उपाय 'व्यापार सम्वर्द्धन' (Trade Promotions) के नाम से जाने जाते हैं। व्यवहार में, विक्रय सम्वर्द्धन की ऐसी विधियाँ भी अपनायी जाने लगी हैं जिनसे उपभोक्ता–व्यापारी संयुक्त सम्वर्द्धन (Consumer-Trade Combined Promotions) कहा जाता है।

उपभोक्ता संवर्द्धन विधियाँ
(Consumer Promotion Methods)

उपभोक्ता सम्वर्द्धन के अन्तर्गत विक्रय सम्वर्द्धन की वे समस्त विधियाँ सम्मिलित हैं जो प्रत्यक्ष रूप से उपभोक्ता से सम्बन्धित रहती हैं। इन विधियों अथवा उपायों को उपभोक्ता के निवास स्थान पर, उसके कार्यालय पर, वस्तु–विक्रय की दुकान पर अथवा परिस्थिति के अनुसार अन्य उपयुक्त स्थान पर क्रियान्वित किया जा सकता है। उदाहरण के लिए नमूने के पैकेट कूपन आदि उनके निवास स्थान पर भेजा जा सकता हे, विभिन्न प्रतियोगिताओं के आयोजन के सम्बन्ध में समाचार पत्रों आदि के माध्यम से उनके निवास स्थान अथवा कार्यालय में सूचना दी जा सकती है, कार्यविधि प्रदर्शन के द्वारा विक्रय–सम्वर्द्धन का कार्य उनके घर पर अथवा दुकान पर किया जा सकता है। मूल्य में कमी, प्रब्याजि तथा प्रदर्शन द्वारा विक्रय–सम्वर्द्धन के उपाय वस्तु विक्रय–स्थल पर भी किये जा सकते हैं।

उपभोक्ता–संवर्द्धन के लिए प्रायः निम्नलिखित विधियों को परिस्थिति एवं सुविधा के अनुसार अपनाया जाता है–

1. **मुफ्त नमूना (Free Samples)**: उपभोक्ताओं को नमूने के मुफ्त पैकेट बांटना विक्रय सम्वर्द्धन का एक प्रभावशाली उपाय है। नमूने के पैकेट का उपभोग करके उपभोक्ता स्वतः ही वस्तु के गुण के प्रति आकष्ट हो सकता है। यदि वस्तु के गुणों ने उपभोक्ता को एक बार प्रभावित कर दिया तो वह वस्तु का स्थायी ग्राहक बन सकता है। यह ध्यान रहे कि नमूने के मुफ्त पैकेट प्रायः उन्हीं उत्पादनों के बांटे जाते हैं जिनका मूल्य बहुत कम होता है, जैसे बीड़ी, सिगरेट, मंजन, छोटी–छोटी दवाइयाँ, तेल, इत्र, अगरबत्ती, पाठ्य–पुस्तकें आदि। मूल्यवान वस्तुओं को मुफ्त नमूने के रूप में नहीं दिया जा सकता है।

   कभी–कभी नवीन उत्पादनों को प्रचलित करने के लिए भी नमूने देने आवश्यक हो जाते हैं। उदाहरण के लिए भारत में जब चाय का प्रचलन लोकप्रिय नहीं था, तब चाय की कुछ कम्पनियाँ, विशेषतः लिपटन्स तथा ब्रुक–बॉण्ड कम्पनियाँ व्यस्त सड़कों के किनारे चाय के स्टॉल लगाकर राहगीरों को मुफ्त चाय पिलाती थीं। धीरे–धीरे अब चाय भारतीयों के जीवन का एक आवश्यक अंग बन गई है। यदि कोई नवीन और अधिक अच्छे (improved) गुण वाली वस्तु बाजार में लाई गई हो, तब भी नमूने का वितरण लाभप्रद होता है। कपड़े धोने का सर्फ पाउडर जब बाजार में प्रस्तुत किया गया था कि तब यह किस प्रकार सामान्य साबुन से भिन्न है और किस प्रकार अधिक उपयोगी तथा सुविधाजनक है, प्रचारित किया गया था।

   नमूने के पैकेट घर–घर वितरण किये जा सकते हैं या सड़क पर ये मुफ्त नमूने के रूप में बांटे जा सकते हैं। कभी–कभी डाक से भी नमूने के पैकेट भेजे जाते हैं। नमूने भेजने के लिए या तो सम्भावित ग्राहकों की सूची बनायी जाती है अथवा विज्ञापनों को पढ़कर नमूने की माँग करने वाले व्यक्तियों को ये भेज दिये जाते हैं। ऐसे विज्ञापनों में यह निर्देश दिया जाता है कि नमूना प्राप्त करने के इच्छुक व्यक्ति इसके लिए कम्पनी को लिखें।

2. **कूपन (Coupons):** कुछ कम्पनियाँ विक्रय–सम्वर्द्धन के लिए कूपन–पद्धति का प्रयोग करती है। जिसके अन्तर्गत उपभोक्ता को वस्तु–क्रय करने में मूल्य में कुछ छूट दी जाती है अथवा कुछ मुफ्त वस्तु प्राप्त होने का प्रलोभन दिया जाता है। कभी–कभी कूपन अखबार में छपवा दिये जाते हैं। जिन्हें लेकर फुटकर–विक्रेता के पास जाने पर मूल्य में कुछ छूट मिलती है अथवा वह वस्तु खरीदने पर अन्य कोई वस्तु मुफ्त मिलती है। कभी–कभी वस्तु पैकिंग के अन्दर कूपन रख दिये जाते हैं और निश्चित संख्या में कूपन एकत्रित कर लेने के पश्चात् उन्हें कुछ नकद छूट मिल जाती है अथवा अन्य कोई वस्तु इनाम में दे दी जाती है। सबसे पहले इस विधि को हमारे यहाँ सन् 1969 में स्वास्तिक ऑयल मिल्स, बम्बई ने अपनाया था। निरक्षरता के अधिक होने के कारण हमारे यहाँ यह विधि प्रचलति नही हो सकती।

3. **प्रतियोगिताएँ (Contests):** प्रतियोगिताओं का आयोजन विक्रय–सम्वर्द्धन का एक प्रभावशाली उपाय है। ये प्रतियोगिताएँ तीन वर्गों की हो सकती हैं– विक्रयकर्ताओं की, व्यापारियों की तथा उपभोक्ताओं की। विक्रयकर्ताओं

की प्रतियोगिता अथवा व्यापारियों की प्रतियोगिता का प्रमुख उद्देश्य उनसे माल के अधिक विक्रय की भावना को प्रोत्साहन करना है। जो विक्रयकर्ता या व्यापारी सबसे अधिक मूल्य का अथवा सबसे अधिक मात्रा में विक्रय करता है, उसे इनाम दिया जाता है। कभी–कभी कम्पनी न्यूनतम विभिन्न राशियों के विक्रय के लिए अलग–अलग इनाम निश्चित कर देती है। उपभोक्ताओं को इस प्रतियोगिता में विज्ञापित उतपादन के पैकिंग का ढक्कन (Carton), खाली डिब्बा, अन्दर रखे गये कूपन आथवा कैशमीमों आदि को संलग्न करने को कहा जाता है तथा साथ में कभी कभी उस वस्तु की पसन्दगी के सम्बन्ध में एक वाक्य भी लिखने को कहा जाता है। जैसे , 'मैं पॉड्स क्रीम पसन्द करता हूँ क्योंकि....... ।' कभी–कभी उस वस्तु के नये उपयोग बतलाने के लिए कहा जाता है, जैसा कि कुछ समय पूर्व 'डिटॉल' के निर्माताओं ने किया था। अतः इच्छुक उपभोक्ता उस वस्तु को खरीदने के लिए प्रेरित होते हैं और कम्पनी को उस वस्तु के विज्ञापन व प्रचार के लिए उपयुक्त 'नारे' (Slogans) भी सहज में लिम जाते हैं। उदारहण के लिए लेक्टोक्लेमाइन के लिए "Golden opportunity Contest" तथा हॉरलिक्स के लिए "Golden Treasure Hunt Contest" आयोजित की गई थी।

4. **प्रदर्शन (Demonstration):** प्रायः कहा जाता है कि, "आँखों से देखी सब सच्ची और सुनी–सुनाई सब झूँठी।" यदि किसी उपभोक्ता के समक्ष किसी वस्तु के गुण अनेक बार बतलाये भी जावें तो उसका प्रभाव उस पर होगा अथवा नहीं, इस बात में शंका है। किन्तु यदि उस वस्तु के गुण तथा कार्य करने की विधि का प्रदर्शन उपभोक्ताओं के समक्ष किया जावे, तो उस वस्तु से प्रभावित होगा ही।

   प्रदर्शन की विधि के अन्तर्गत वस्तु की कार्य–संचालन विधि गुण, प्रकृति, विशेषताओं आदि का उपभोक्ताओं के समक्ष प्रत्यक्ष प्रदर्शन किया जात है। परिस्थिति के अनुसार ऐसा प्रदर्शन विक्रयशाला में किया जा सकता है। ऐसी वस्तुएँ, जिनको उठाने, रखने आथवा एक स्थान से दूसरे स्थान पर लाने ले जाने में असुविधा होती है, उनका प्रदर्शन प्रायः विक्रय–शाला में ही किया जाता है, जैसे रेफ्रीजरेटर, कूलर रेडियो आदि। किनतु आकार में छोटी और वजन में हल्की छोटी–मोटी वस्तुओं का प्रदर्शन उपभोक्ताओं के निवास स्थान अथवा चलते फिरते सड़कों पर भी किया जा सकता है।

5. **मूल्यों में कमी (Price Reduction):** मूल्यों मे कमी का उद्देश्य पुराने उपभोक्ताओं को वस्तु को खरीदने के लिए प्रोत्साहित करना और नवीन उपभोक्ताओं को वस्तु खरीदने के लिए एवं उपभोग करने के लिए प्रोत्साहित करना होता है। मूल्यों में कमी, विक्रय सम्वर्द्धन का एक ऐसा उपाय है जिससे अधिक से अधिक उपभोक्ता आकर्षित किये जा सकते हैं। मूल्यों में कमी का साधन विक्रयशाला के अन्तगर्त की जाने वाली विक्रय सम्वर्द्धन की विधि है।

   विज्ञापन अथवा सूचना–पट्ट के द्वारा उपभोक्ता तक वस्तु के मूल्यों में कमी की सूचना पहुँचायी जाती हैं, जिसका लाभ उपभोक्ता विक्रयशाला में पहुँचकर ही उठा सकता है। विक्रय–मूल्यों में कमी अस्थायी रूप से थोड़ी अवधि के लिए की जाती है तथा इस आकर्षण का लाभ प्राप्त करने की एक निश्चित अवधि पहले से ही निश्चित कर दी जाती है। उस अवधि तक ही मूल्य में कमी का लाभ उपभोक्ताओं को मिलता है। मूल्यों में कमी की अवधि का चुनाव प्रायः विशेष त्यौहारों अथवा विशेष अवसरों पर किया जाता है। प्रायः एक विशेष प्रकार के उत्पादन पर विशेष अवधि के लिए मूल्य में कमी की घोषणा की जाती है, ताकि इस विशेष अवधि मे उस वस्तु का उपयोग करने वाले अधिक से अधिक व्यक्ति आकर्षित किये जा सकें।

   मूल्यों में कमी कुल विक्रय पर एक निश्चित प्रतिशत के आधार पर दी जा सकती है अथवा वस्तु के रूप में भी दी जा सकती है, जैसे– 'तीन टूथ–पेस्ट दो टूथ–पेस्ट के मूल्यों में' 'दीपावली के शुभ अवसर पर मूल्यों में 10% की कमी', 'स्वतन्त्रता दिवस के शुभ अवसर पर मूल्यों में 15% की कमी' अथवा 'आप 5 ऊनी वस्त्र धुलवाइये, हम 4 वस्त्रों की धुलाई लेंगे' आदि।

   मूल्यों में कमी को प्रभावशील बनाने के लिए कभी–कभी पुराने मूल्य के साथ साथ नये घटे हुए मूल्यों को भी प्रदर्शित किया जाता है ताकि उपभोक्ताओं पर विशेष प्रभाव पड़ सके। कम मूल्य में वस्तु प्राप्त होने के आकर्षण के कारण अनेक नये उपभोक्ताओं भी इस ओर आकर्षित हो जाते हैं।

भारत में प्रतिष्ठित एवं ख्याति प्राप्त व्यापार संगठनों द्वारा 'मूल्यों में कमी' का उपभोक्ताओं पर प्रभाव पड़ता है, क्योंकि वे वास्तव में मूल्यों में कमी करते हैं – जैसे बाटा शू कम्पनी, देहली क्लॉथ मिल्स, मफतलाल ग्रुप खादी – भण्डार आदि। अनेक व्यापार संगठन वास्तव में मूल्यों में कमी न करके उनमें वद्धि कर देते हैं, और फिर उस बढ़े हुए मूल्य मे कमी करने का जोर–शोर से प्रचार करते हैं। यह उचित विधि नहीं है। कभी–कभी वर्ष पर दामों में भारी कमी का साइन बोर्ड लगाये रखना स्वयं में एक धोखा है।

6. **प्रीमियम अथवा अधिमूल्य (Premiums):** अल्फर्ड ग्रॉस के अनुसार, "किसी वस्तु अथवा सेवा को क्रय करने को प्रोत्साहित करने के लिए प्रदान की जाने वाली कोई व्यापारिक वस्तु आथवा कोई अन्य उपयोगी वस्तु (Or other thing of value) प्रीमियम कहलाती है।"

विक्रय संवर्द्धन के लिए यह एक ऐसा प्रभावपूर्ण उपाय है, जिसे आजकल बहुत प्रयोग में लाया जाने लगा। प्रीमियम देने का उद्देश्य यद्यपि नये उपभोक्ताओं को भी प्रोत्साहित करने का होता है, किन्तु इसका मुख्य लक्ष्य उस उत्पादन के पुराने उपभोक्ताओं को प्रोत्साहित करना होता है।

प्रीमियम वस्तु के रूप में दिया जाता है, जिसका मूल्य प्रायः काफी कम होता है। प्रीमियम के रूप में दी जाने वाली वस्तु प्रायः विक्रय की जाने वाली वस्तु के पैकेट के भीतर ही बन्द कर दी जाती है तथा उस पर यह सूचना लिख दी जाती है कि इस पैकेट के भीतर अमुक वस्तु है। कभी कभी पैकेट के ऊपर प्रीमियम के रूप में प्राप्त होने वाली वस्तु की सूचना मात्र छपी रहती है तथा यह निर्देश दिया हुआ होता है कि प्रीमियम की वस्तु विक्रेता से प्राप्त कर लें। अनेक बार पैकेट के भीतर से एक कूपन निकलता है और उस कूपन को दुकानदान को दने पर, प्रीमियम की वस्तु प्राप्त की जा सकती है। आजकल प्रीमियम की वस्तु को पैकेट के ऊपर ही इस प्रकार चिपका दिया जाता है अथवा पारदर्शक कागज में इस प्रकार पैक किया जाता है कि वह वस्तु बाहर से दिखादी देती रहती है और उपभोक्ता उस प्रीमियाम की वस्तु को देखकर आकर्षित हो उठता है।

प्रीमियम के कुछ समय पूर्व के उदाहरण ये हैं – रेड लेबिल चाय के 250 ग्राम के पैकेट के साथ एक स्टील की चम्मच मुफ्त, सर्फ के तीन बड़े डिब्बों के साथ एक प्लास्टिक की बाल्टी, सिबाका टूथ पेस्ट के पैकिंग में एक छोटा खिलौना आदि।

7. **विज्ञापन सामग्री का प्रदर्शन (Display of Advertising Materials):** इसके अन्तर्गत विक्रयशाला में प्रदर्शित की जाने वाली विभिन्न विज्ञापन सामग्री, जैसे – काउन्टर पर रखे जाने वाले कार्ड, पोस्टर, छोटे–छोटे लटकाने वाले कागज अथवा प्लास्टिक के खिलौने आदि सम्मिलित किये जाते हैं। इनका प्रमुख उद्देश्य ग्राहकों को वस्तु की जानकारी देना होता है। इस विधि में यह सब सामग्री उत्पादकों द्वारा दुकानदारों को दी जाती है ताकि दुकानदार इनका प्रदर्शन अपनी विक्रयशाला में कर सकें।

इस विधि में एक प्रमुख कठिनाई यह है कि दुकानदार को प्रदर्शन की अनेक प्रकार की सामग्री अनेक उत्पादकों से मिलती है, अतः किस उत्पादक द्वारा प्रदान की गई विज्ञापन सामग्री का प्रदर्शन करे ओर किसका नहीं, यह एक समस्या रहती है। दूसरे, दुकान में सीमित स्थान होता है। अतः उत्पादकों को इस और विशेष सावधान रहना चाहिए कि दुकानदार को प्रदर्शन हेतु दी जाने वाली सामग्री उसकी आवश्यकता के अनुरूप आकार एवं डिजाइन की होनी चाहिए तथा साथ ही कुछ इस प्रकार की नवीनता भी होनी चाहिए ताकि दुकानदार उसका प्रदर्शन करें, रद्दी में नहीं डाल दें।

8. **मेले तथा प्रदर्शनियाँ (Fairs and Exhibitions):** मेले एवं प्रदर्शनियाँ भी विक्रय संवर्द्धन के महत्त्वपूर्ण साधन हैं। ये मेले एवं प्रदर्शनियां स्थानीय, क्षेत्रीय, राष्ट्रीय अथवा अन्तर्राष्ट्रीय आधार पर आयोजित किये जाते हैं। मेले तो प्रायः एतिहासिक अथवा धार्मिक आधार पर निश्चित स्थान तथा निश्चित समय पर लगते हैं, किन्तु प्रदर्शनकारियों का कोई निश्चित समय, निश्चित स्थान तथा निश्चित आयोजक नहीं होते। प्रदर्शनकारियों में छोटे एवं बड़े निर्माताओं को अपने औद्योगिक उत्पादन का प्रदर्शन करने एवं उनकी विशेषताओ आदि के विषय में बताने का अच्छा अवसर प्राप्त हो जाता है। अधिकांश औद्योगिक प्रदर्शनियाँ सरकार के सक्रिय सहयोग में आयोजित की जाती है। ऐसी प्रदर्शनियाँ राष्ट्रीय व अन्तर्राष्ट्रीय प्रदर्शिनयां आयोजित की जा चुकी हैं।

9. **निःशुल्क प्रशिक्षण (Free Training):** उपभोक्ताओं द्वारा खरीदी जाने वाली वस्तुओं के अत्यधिक तकनीकी एवं जटिल होने पर उत्पादक अथवा वितरक उनकी वस्तु, उपयोग, देखरेख, मरम्मत आदि के बारे में प्रशिक्षण दे सकते हैं अथवा प्रशिक्षण की व्यवस्था कर सकते हैं। ऐसा करने से उपभोक्ताओं को वस्तु क्रय हेतु प्रोत्साहन मिलता है। उदाहरण के लिए सिलाई–कढ़ाई के निःशुल्क प्रशिक्षण की व्यवस्था द्वारा सिलाई कढ़ाई की मशीनें सरलता के साथ बेची जा सकती हैं। इसी प्रकार स्वेटर या जर्सियां बनाने वाली मशीनों को बेचाा जा सकता है। कपड़े धोने अथवा अन्य ऐसी ही कई वस्तुएँ भी आसानी से बेची जा सकती हैं यदि उनके उपयोग के तरीकों को सिखाने का प्रशिक्षण निर्माता अथवा वितरकों की ओर से दिया जाये।

10. **धन वापसी प्रस्ताव (Money Return Offers):** यह वह विधि है, जिसमें उपभोक्ताओं को एक प्रतिज्ञा का प्रस्ताव दिया जाता है और उन व्यक्तियों को निश्चित धनराशि वापिस भेजने की बातें कही जाती हैं जो कि विशेष वस्तु के क्रय का प्रमाण–पत्र संस्था को भेज देते हैं। स्पष्ट है कि इस विधि में निर्माता यह घोषणा करता है कि जो भी उपभोक्ता उसको वस्तु की खरीद का प्रमाण–पत्र भेजेगा, उसे एक निश्चित धन वापिस कर दिया जायेगा। इस विधि को सम्भ्वतः सबसे पहले "मैकलीन्स टूथपेस्ट" बनाने वाली कम्पनी ने अपनाया था।

11. **ट्रेडिंग स्टाम्प (Trading Stamp):** यह विधि भी काफी प्रचलित है। इसमें विक्रेता क्रेता को हर बार वस्तु की खरीद के समय एक टिकट देता है जिसे क्रेता सुरक्षित रखता है। एक निश्चित मात्रा में टिकट एकत्रित हो जाने के बाद उन्हें विक्रेता को लौटाकर कोई वस्तु निश्चित मूल्य तक की मुफ्त ली जा सकती है।

12. **उपभोक्ता सेवाएँ (Consumer Services):** कुछ विद्वानों ने इस विधि को उपभोक्ता शिक्षण का मान दिया है किन्तु किर्कपेट्रिक का कहना है कि "उपभोक्ता सेवाएँ काफली व्यापक और सही पद है।"[19] उपभोक्ता संवर्द्धन की इस विधि के पीछे यह मान्यता है कि निर्माता जितनी अधिक अच्दी सेवा अपने उपभोक्ताओं की करेगा, वे उतने ही अधिक अच्छे उपभोक्ता बनेंगे। ऐसी सेवाओं को दो भागों में विभक्त किया जात सकता हैः–

    1. **विक्रय से पूर्व की सेवाएँ** – क्रय से पूर्व उपभोक्ताओ को यह शिक्षा, सूचना अथवा राय देना कि सर्वाधिक बुद्धिमतापूर्वक वस्तुओं की खरीद कैसे की जा सकती है, एक महत्त्वपूर्ण उपभोक्ता सेवा है। यह सेवा ग्राहक की खरीद को विवेकपूर्ण और लाभकारी बनाती है तथा उसे अत्यधिक सन्तोष प्रदान करती है जिससे उन निर्माताओं के साथ उनके मानसिक सम्बन्ध घनिष्ठ बनते चले जाते हैं जो उसे ऐसी जानकारी प्रदान करते हैं। इस प्रकार विभिन्न प्रकार की पूछताछ का सन्तोषजनक उत्तर और क्रय से पूर्व वस्तु के प्रयोग और उसकी देखरेख के बारे में दिया जाने वाला प्रशिक्षण भी विक्रय से पूर्व की सेवाओं मे सम्मिलित किया जाता है। इन सेवाओं की उपलब्धि हेतु निर्माता अथवा वितरक टेग्स (Tags) लेबल्स, विक्रय–साहित्य भाषण, प्रशिक्षण पाठ्यक्रम, स्वीकर्स ब्यूरो, फैशन शो, प्रदर्शनियाँ, पत्राचार, गह–पत्रिकाएँ कारखाने अथवा विक्रयशाला के भ्रमण हेतु निमन्त्रित आदि तकनीकों को प्रयुक्त किया जा सकता है।

    2. **विक्रयोपरान्त सेवाएँ** – अनेक उत्पाद ऐसे होते हैं जिन्हें विक्रय से पूर्व सेवाओं की जरूरत होती है। और अनेक उत्पाद ऐसे होते हैं जिन्हें विक्रय के बाद। व्यवहार में अनेक उत्पाद ऐसे भी होते हैं जिन्हें विक्रय से पूर्व ओर पश्चात् सेवाओं की जरूरत होती है। उदाहरण के लिए मशीनरी जैसी वस्तुओं के मामलों में उनकी संस्थापन से पूर्व तथा पश्चात् तक सेवाओं की जरूरत होती है। कम तकनीकि अथवा गैर तकनीकी वस्तुओं के सम्बन्ध में भी विक्रयोपरान्त सेवाओं की आवश्यकता पड़ती रहती है। इसलिए जो निर्माता और वितरक विक्रयोपरान्त सेवाओं के दिये जाने की व्यवस्था करते हैं, उनकी वस्तुओं का विक्रय बढ़ जाता है। इन सेवाओं में संस्थापन सेवाएँ, देखभाल सेवाएँ, मरम्मत सेवाएँ, प्रशिक्षण सेवाएँ, पूछताछ सेवाएँ आदि को सम्मिलित किया जा सकता है। ये सेवाएँ वस्तुओं की बिक्री को प्रभावित करती हैं। अतएव इन्हें भी विक्रय संवर्द्धन उपायों में सम्मिलित किया गया है।

वर्तमान में इन सेवाओं को विपणन प्रबन्धक आवश्यक बुराई के रूप में देखना छोड़ चुके हैं और इनको व्यवसाय मान लिया गया है। गोदरेज एपलायऐन्सेज के बम्बई डिवीजन के विपणन प्रमुख श्री वी. सुब्रहमन्यम का कहना है कि "हमारे संचाालक

---

19. Kirk Patrick, "Salesmanship", 1970, p. 124.

उन प्रदेशों में उत्पाद की बिक्री न करने को कहते हैं। जिनमें हम सेवायें उपलब्ध नही करा सकते। सेवा मूलतः मानवीय संसाधन क्रिया है। अन्य कम्पनियाँ हमारे उत्पादों की नकल कर सकती हैं किन्तु, हमारी सेवाओं की नहीं। सेवाओं जैसी आधारभूत संरचना के निर्माण में वर्षो लगते हैं और यह संरचना उत्पाद भिन्नता का स्तम्भ होती है। वस्तुतः गोदरेज दिल्ली अकेले में अपने 5 लाख रेफ्रीजरेटर्स की सर्विसिंग को गंभीरता से ले रहा है। 35 वर्षों से गोदरेज का विक्रयोपरान्त सेवा डिवीजन सतत अपनी सेवाओं में सुधार कर रहा है। इसी प्रकार मोदी जिरोक्स कॉपियर्स के महाप्रबन्धक श्री सन्दीप माथुर का कहना है कि "हमारे लिए सेवा बहुत बड़ा व्यवसाय है।" उनकी कम्पनी का ग्राहक सेवा एवं वितरण विभाग सबसे बड़ा है। कम्पनी के कुल 1800 कर्मचारियों में से 700 इस विभाग में हैं और कम्पनी कुल आय 200 करोड़ रु. सालाना है जिसमें से 65 करोड़ रु. की आय 'सेवा आय' है। इसी प्रकार मारूति कम्पनी ने सन् 1989 में सेवा विभाग की स्थापना की है जो असफल पुर्जो के विश्लेषण, मारूति अधिकृत सेवा केन्द्रों के अंकेक्षण, मेकेनिकों के बीच वार्षिक प्रतियोगितायें, सर्विस ट्रेनिंग सेन्टर्स आदि के जरिये विक्रय से पूर्व एवं बाद की सेवाओं की देखभाल करता है। कम्प्यूटर्स के क्षेत्र में भी विक्रय से पूर्व तथा बाद की सेवाओं को भारतीय कम्पनियाँ उपलब्ध कराने लगी हैं ताकि ग्राहक सन्तुष्ट रहे।[20]

व्यापार सवंर्द्धन विधियाँ
(Trade Promotion Methods)

विक्रय संवर्द्धन की किसी भी योजना की सफलता संदिग्ध रहती है, यदि थोक विक्रेताओं व फुटकर व्यापारियों का सक्रिय सहयोग प्राप्त न हो और इसके लिए उनको प्रोत्साहित करना आवश्यक है। अतः उपभोक्ताओं को दष्टि में रखकर जो विक्रय संवर्द्धन का कार्य किया जाता है उसमें थोक विक्रेताओं एवं फुटकर विक्रेताओं आदि मध्यस्थों को सम्मिलित करना अति आवश्यक है जब तक मध्यस्थों को विक्रय संवर्द्धन हेतु किसी प्रकार का प्रलोभन अथवा प्रोत्साहन नहीं दिया जावे तब तक उनका सहयोग प्राप्त करना कठिन होता है एवं जब तक मध्यस्थों का पूर्ण सहयोग विक्रय संवर्द्धन की योजना में न हो तब तक उसमें सफलता की सम्भावना कम ही रहती है।

विक्रय संवर्द्धन के कार्यक्रम में मध्यस्थ अनेक प्रकार से अतिरिक्त श्रम करते हैं जैसे कूपन एकत्रित करना, प्रवेश–पत्रों का वितरण, प्रीमियम देना, नमूने के पैकेट बाँटना आदि। उन्हें इस अतिरिक्त कार्य का पारिश्रमिक तो मिलना ही चाहिए अन्यथा उनके सहयोग के अभाव में उपभोक्ता सवंर्द्धन के साथ–साथ मध्यस्थों के प्रोत्साहन के लिए विक्रय संवर्द्धन योजनाओं का निर्माण किया जाता है। कभी कभी ऐसा भी होता है कि केवल थोक व्यापारी अथवा फुटकर व्यापारी अथवा दोनों को ही ध्यान मे रखकर विक्रय संवर्द्धन योजना बनायी जाती है जिसका प्रमुख उद्देश्य अधिक विक्रय द्वारा व्यापार का विकास करने कि लिए थोक एवं फुटकर विक्रेताओं को प्रोत्साहित करना होता है। इस प्रकार की विक्रय संवर्द्धन योजनाओं को व्यापार संवर्द्धन कहा जाता हैः–

व्यापार संवर्द्धन के लिए सामान्यतः निम्नलिखित विधियाँ अथवा उपाय काम में लाये जाते हैंः–

1. **विक्रय प्रतियोगिताएँ (Sales Contests):** थोक एवं फुटकर विक्रेताओं और विक्रयकर्ताओं के लिए आयोजित प्रतियोगिताएँ प्रायः सर्वाधिक विक्रय के लिए रखी जाती हैं। सबसे अधिक विक्रय में सफल रहने वाले व्यक्ति को प्रतियोगिता का प्रथम पुरस्कार दिया जाता है। प्रतियोगिता में अन्य विजयी विक्रेताओं को विभिन्न प्रकार के आकर्षक पुरस्कार दिये जाते हैं। प्रतियोगिताओं का आयोजन केवल थोक व्यापारियों के लिए अथवा केवल फुटकर व्यापारियों के लिए पथक–पथक अथवा दोनों के लिए एक साथ भी किया जा सकता हैं। इसी प्रकार विक्रयकर्ताओं के लिए भी पथक से विक्रय प्रतियोगिताओं के विक्रय संवर्द्धन का सर्वाधिक प्रभावपूर्ण उपकरण माना गया है। वर्तमान में विभिन्न प्रकार की विक्रय प्रतियोगिताएँ आयोजित की जा रही हैं। किन्तु एक उत्तम प्रतियोगिता का आयोजन करते समय विक्रय संवर्द्धन प्रबन्धकों को चाहिए कि वे निम्न तत्वों पर ध्यान देंः (i) प्रतियोगिता के चालू रहने की अवधि, (ii) प्रतियोगिता की लागत, (iii) विजेताओं की संख्या जो पुरस्कार में हिस्सा लेंगे, (iv) पुरस्कारों की प्रकृति एवं श्रेणियां, (v) प्रतियोगिता के नियम, (vi) प्रतियोगिता का उद्देश्य अधिकाधिक बिक्री को सम्भव बनाना, न कि सर्वोत्तम

20. Economic Times, 1 May 1993

विक्रयकर्ता अथवा व्यापारी का निर्धारण करना, (vii) प्रतियोगिता का अपीलिंग होना, (viii) प्रतियोगिता का हर वर्ष बदलते रहना। (ix) प्रतियोगिता का प्रेरक होना, (x) पुरस्कार में अनावश्यक विलम्ब अथवा पक्षपात न करना।

2. **विज्ञापन, प्रदर्शन का भत्ता एवं विशेष बट्टा (Advertising, Display Allowance and Special Discount):** थोक–विक्रेता एवं फुटकर विक्रेता की हार्दिक इच्छा विक्रय में वद्धि करने की होती है जिसके लिए वह विभिन्न प्रकार के प्रदर्शन व विज्ञापन आदि की योजनाएँ क्रियान्वित करने को तत्पर रहता है, किन्तु अनेक परेशानियों एवं उसमें होने वाले व्यय के कारण वह ऐसा नहीं कर पाता। यदि विज्ञापन अथवा प्रदर्शन के लिए कुछ भत्ता (Allowance) दे दिया जावे तो वह विज्ञापन एवं प्रदर्शन के कार्य में रूचि लेने लगेगा। इससे मध्यस्थों के साथ–साथ उत्पादक को भी लाभ होता है क्योंकि इससे विक्रय में वद्धि हो जाती है। यही कारण है कि विक्रय–संवर्द्धन के लिए भत्ता देने का प्रावधान भी किया जाता है। इस भत्ते के साथ–साथ कभी–कभी विज्ञापन एवं प्रदर्शन के लिए कुछ सामग्री भी दी जाती है।

   उत्पादक कभी–कभी मध्यस्थों को उनके द्वारा क्रय पर भी कुछ छूट भी देते हैं। ये छूट प्रायः एक निश्चित मात्रा में (अथवा मूल्य की) वस्तु क्रय करने पर मूल्य में कमी के रूप में दी जाती है। इस प्रकार, थोक व्यापारी अथवा फुटकर व्यापारी अधिक मात्रा में वस्तुएँ खरीदने को प्रोत्साहित होते हैं। यह छूट या बट्टा एक निश्चित प्रतिशत के आधार पर दिया जा सकता है जो क्रय की मात्रा में उत्तरोत्तर बढ़ने के साथ बढ़ाया जा सकता है अथवा क्रय की मात्रा जैसे–जैसे बढ़ती जावे वैसे–वैसे मूल्य में कमी (Reduction in price) भी अधिक कर दी जा सकती है।

3. **व्यापारिक प्रीमियम (Dealer Premiums):** व्यापारिक प्रीमियम मध्यस्थों तथा विक्रेताओं को उनके द्वारा किये गये विक्रय में वद्धि के अतिरिक्त प्रयासों के लिए दिया जाने वाला पुरस्कार है। यह प्रीमियम थोक व्यापरियों, फुटकर व्यापारियों एवं अन्य विक्रेताओं को दिया जाता है। ऐसा प्रीमियम प्रायः वस्तुओं के रूप में दिया जाता है जैसे दीवाल घड़ियाँ, कुर्सियाँ, मेज, तश्तरी आदि। प्रीमियम एक निश्चित मात्रा में (अथवा मूल्य की) वस्तुएँ बेचने पर अथवा किसी एक ब्राण्ड की वस्तु को सर्वाधिक बेचने के लिए दिया जा सकता है। व्यवसाय के क्षेत्र में अलग–अलग प्रीमियम की योजनाएँ बनाई जाती हैं।

4. **विक्रय सहायता (Sales Assistance):** उत्पादक संस्थाएँ मध्यस्थों के विश्वास एवं सहयोग को प्राप्त करने के लिए उन्हें विक्रय सहायता प्रदान करती है जिससे कि मध्यस्थ उनकी वस्तुओं के प्रति एक संरक्षणात्मक प्रवत्ति लेकर चलते हैं और उत्पादकों के माल का विक्रय वे अधिकाधिक करते है। ऐसी विक्रय सहायता अनेक तरह से दी जा सकती है। प्रमुखतः उत्पादक संस्थाएँ मध्यस्थों को उनकी विक्रय का निर्माण एवं क्रियन्वयन में सहयोग देकर तथा मध्यस्थों के विक्रयकर्ताओं को प्रशिक्षण देकर विक्रय संवर्द्धन का कार्य कर सकती है।

5. **प्रबन्ध सहायता (Management Assistance):** उत्पादक संस्थाएँ उन मध्यस्थों को, जिन्हें कि प्रबन्धकीय ज्ञान नहीं होता है, प्रबन्धकीय ज्ञान एवं अनुभव उपलब्ध कराके उनकी सहायता करती है जिससे उत्पादक संस्थाएँ उन मध्यस्थों का विश्वास एवं सहयोग जीतने में सफल हो जाती है। मध्यस्थ संस्थाओं को भी परामर्श आदि प्राप्त होता रहता है। इस प्रकार अप्रत्यक्ष तौर पर उत्पादक विक्रय साहित्य एवं परामर्श आदि देकर अपनी वस्तुओं की बिक्री को बढ़ाने में सफल रहते हैं।

6. **क्रय भत्ता देना (Providing Purchase Allowance):** इस विधि में एक निश्चित मात्रा अथवा मूल्य तक माल क्रय करने वाले व्यापारी को क्रय भत्ता दिया जाता है। यह क्रय भत्ता नकद अथवा बिल में कटौती के रूप मे दे दिया जाता है। इससे वस्तु की लागत कम हो जाती है और व्यापारी उस पर अधिक लाभ कमा सकते हैं।

7. **पुनः क्रय भत्ता देना (Providing Repurchase Allowance):** यह वह भत्ता है जो हर प्रथम खरीद पर दिया जाता है। एक व्यापारी द्वारा खरीद करने पर वह इस भत्ते को पाने का अधिकारी हो जाता है। इस विधि से विक्रय कम नहीं हो पाता है।

8. **गणना एवं पुनः गणना (Count and Recount Method):** यह वह निधि है जिसमें व्यापारी के स्टॉक की गणना की जाती हैं एक गणना योजना में सम्मिलित होने पर तथा दूसरी बाद जब योजना बन्द होती है। इन दोनों गणनाओं के बीच जितना माल बिकता है उसकी मात्रा या मूल्य पर कुछ रकम भत्ते के रूप में दी जाती है।

9. **अन्य उपाय** – उत्पादक संस्थाएँ निम्न उपायों द्वारा भी विक्रय संवर्द्धन कार्य करती हैं। (i) मध्यस्थों के विक्रयस्थलों तथा भण्डारों के आधुनिकीकरण का व्यय भार स्वयं करके, (ii) मरम्मत सुविधाएँ प्रदान करके, (iii) फैशन शो विक्रय स्थलों पर आयोजित करके, (iv) स्टोर एवं वातायन सजावट के लिए अनेक प्रकार की सुविधाएँ एवं बोर्ड, तख्तियाँ, पताकाएँ, शेल्फ, दीवार–कलैण्डर, पोस्टर्स आदि सामान दे करके, (v) समय–समय पर पत्र लिख करके एवं विक्रय साहित्य उपलब्ध करके, (vi) गह–पत्रिकाएँ प्रकाशित करके, (vii) ट्रेडिंग स्टाम्प उपलब्ध करके। ट्रेडिंग स्टाम्प वस्तुतः उपभोक्ताओं के लिए फुटकर व्यापारियों को दी जाती है जिससे कि उपभोक्ताओं को वस्तुएँ खरीदने के लिए प्रेरित किया जा सके। इस विधि में कोई उत्पादक संस्था हरे, पीले, या लाल या किसी अन्य रंग के ट्रेडिंग स्टाम्प निकालती है और व्यापारियों को निर्देशित कर देती है कि यदि कोई ग्राहक अमुक किस्म के स्टाम्प अमुक मात्रा में लावे तो उसे अमुक वस्तु मुफ्त में दी जाये। इन वस्तुओं की कीमत उत्पादक संस्थाओं द्वारा मध्यस्थ संस्थाओं को दी जाती है। किन्तु यहाँ उत्पादक मध्यस्थों को अर्थात् थोक या फुटकर व्यापारियों को यह भी निर्देशन देते हैं कि अमुक मात्रा में अमुक वस्तु खरीदने पर ही ट्रेडिंग स्टाम्प दिये जायें। इससे उत्पादकों का माल बिकता है; मध्यस्थों की बिक्री बढ़ती है और उपभोक्ताओं को मुफ्त में इनामी माल मिलता है।

उपभोक्ता-व्यापारी संयुक्त संवर्द्धन विधियाँ
(Consumer-trader Combined Promotion Method)

विक्रय संवर्द्धन का कार्य एक ओर तो उपभोक्ता को, दूसरी ओर थोक व फुटकर व्यापारियों को ध्यान में रखकर किया जाता है। वास्तव में उपभोक्ता संवर्द्धन और व्यापार संवर्द्धन एक ही सिक्के के दो पहलू हैं तथा एक दूसरे के पूरक हैं। यदि उपभोक्ता को किसी विशेष वस्तु को क्रय करने के लिए प्रोत्साहित कर लिया जावे किन्तु विक्रेता उस वस्तु को विक्रय के लिए अपनी विक्रयशाला में स्टॉक करने को तैयार न हो तो विक्रय संवर्द्धन की सम्पूर्ण योजना ठप्प हो सकती है। दूसरी ओर, यदि थोक एवं फुटकर विक्रेताओं पर व्यापार संवर्द्धन की योजना लागू करके उन्हे उस वस्तु का स्टॉक रखने के लिए प्रेरित कर भी लिया जावे किन्तु उपभोक्ता संवर्द्धन एवं व्यापार संवर्द्धन की योजनाएँ साथ–साथ चलाई जावे तो अच्छा परिणाम प्राप्त होने की सम्भावना रहती है।

दोनों संवर्द्धन की योजनाओं में समन्वय होने से ही वास्तव में विक्रय संवर्द्धन कार्य सन्तोषजनक ढंग से सम्पन्न किया जा सकता हैं एक ओर तो उपभोक्ता संवर्द्धन से उपभोक्ता उस उत्पादन का क्रय करने के लिए प्रोत्साहित होते हैं दूसरी ओर व्यापार संवर्द्धन की योजनाओं से थोक एवं फुटकर विक्रेता उस वस्तु का विक्रय बढ़ाने में रूचि देने लगते हैं। फलतः इन दोनों में समन्वय होने से ही विक्रय संवर्द्धन का कार्यक्रम सफलता से सम्पादित किया जा सकता है।

व्यापार संवर्द्धन एवं उपभोक्ता संवर्द्धन योजनाओं में समन्वय का एक वास्तविक उदाहरण यहाँ दिया जा रहा है। गोंदिया की एक बीड़ी उत्पादक फर्म ने एक साथ तीन प्रकार की योजनाएँ रखी। प्रथम योजना उन उपभोक्ताओं के लिए थी जो बीड़ी के बण्डल खरीदते थे। प्रत्येक बण्डल में एक कूपन निकलता था जिसे दुकानदार के पास ले जाने पर तीन बीड़ियों का उपहार मिलता था। दूसरी योजना फुटकर व्यापारियों के लिए थी जिसमें 20 बीड़ी के बण्डलों के प्रत्येक पुड़े में एक इनामी कूपन होता था। इसमें अनेक पुरस्कार रखे गये थे। तीसरी योजना के अन्तगर्त एक बीडी के बोर (जिसमें 84 पुड़े होते थे) मे एक कूपन निकलता था जिसमें अनेक आकर्षक इनाम रखे थे। इस प्रकार एक साथ ही थोक व्यापारी, फुटकर व्यापारी एवं उपभोक्ताओं तीनो को प्रोत्साहित किया गया जिससे उस बीड़ी की फर्म के विक्रय संवर्द्धन की योजना निश्चय रूप में सफल रही। इसी प्रकार सन् 1972 में आयुर्वेद सेवश्रम प्राइवेट लि. द्वारा 'आयुर्वेद द्वितीय महान भेंट योजना' शीर्षक के अधीन संयुक्त संवर्द्धन का कार्यक्रम चलाया गया था जो काफी सफल रहा।

विक्रय संवर्द्धन उद्देश्य एवं उपुयक्त विधियाँ
(Sales Promotion Objectives and Appropriate Methods)

हमारे देश में प्रीमियम, प्रतियोगिताएँ, कूपन, प्राइस–ऑफ व्यवहार, नमूने आदि प्रमुख संवर्द्धन विधियाँ हैं। अग्र तालिका विभिन्न उद्देश्यों के सन्दर्भ में उपयुक्त विधियों का उल्लेख करती हैः

संवर्द्धन उद्देश्य	संवर्द्धन विधियाँ
1. नव उत्पाद परिचय	कूपन एवं नमूने
2. नये कलेवर या आकार का प्रस्तुतीकरण	कूपन, नमूने एवं कीमत व्यवहार
3. नये क्षेत्रों में प्रवेश	कूपन एवं नमूने
4. श्रेष्ठ फुटकर वितरकों की प्राप्ति	कीमत व्यवहार
5. उपभोक्ता क्रय बारम्बारता वद्धि	प्रतियोगिताएँ एवं कीमत व्यवहार
6. ब्राण्ड चेतना वद्धि	प्रतियोगिताएँ
7. ब्राण्ड निष्ठा बनाये रखना	प्रीमियम एवं प्रतियोगिताएँ
8. ऑफ–सीजन विक्रय सुधार	प्रीमियम एवं कीमत व्यवहार
9. दुकानों में प्रदर्शन स्थान प्राप्ति	प्रीमियम एवं प्रतियोगिताएँ
10. उत्पाद का सही उपयोग शिक्षण	नमूने एवं प्रतियोगिताएँ
11. विशिष्ट उपभोक्ता समूह का ध्यानाकर्षण	कूपन एवं नमूने
12. उत्पादों के नये उद्योगों की जानकारी	नमूने एवं प्रतियोगिताएँ
13. क्रय निरन्तरता बनाये रखना	प्रीमियम एवं प्रतियोगिताएँ
14. शोध हेतु नाम एवं पते प्राप्त करना	नमूने, प्रतियोगिताएँ, कूपन प्रीमियम आदि।